ग्रन्थ-सख्या—१६१

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भडार
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रथम सस्करण
स० २०१२ वि०
मूल्य १०)

मुद्रक—
बी० पी० ठाकुर
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

को—

सशक्त लेखनी के साथ ही

जिनके पास एक

उदार हृदय

भी है।

दो शब्द

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा निरीक्षित तथा हिन्दी के गण्यमान्य विद्वानों द्वारा अनुमोदित इस सुन्दर गवेषणात्मक प्रबन्ध के लिए किसी अतिरिक्त प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं है। फिर भी डा० प्रेमशंकर का स्नेहानुरोध है कि मैं इसके आमुख रूप में दो शब्द लिखूँ।

जयशंकर प्रसाद वर्तमान हिन्दी-साहित्य के युग-पुरुष हैं। यों तो उनके भक्तों और साहित्यानुयायियों का अभाव नहीं है, परन्तु उनके गौरव के अनुकूल व्याख्यान-विवेचन अभी कम ही हुआ है। मुझे सन्तोष है है कि डा० प्रेमशकर ने अत्यन्त अध्यवसाय तथा मर्मज्ञता के साथ प्रसाद-काव्य का अवगाहन किया है। इनकी आलोचक-दृष्टि बडी पैनी है और उसके पीछे सर्वत्र रस-ग्रहण की प्रेरणा भी है, इसीलिए वे उसके मर्म का उद्घाटन विदग्धतापूर्वक कर सके हैं।

अनुसन्धान के हिन्दी में प्राय दो स्वरूप उपलब्ध होते हैं—तथ्यपरक और तत्वपरक। इसमें सन्देह नहीं कि तथ्य-शोध अनुसन्धान का प्रथम सोपान है, किन्तु उसको इसी रूप में ग्रहण भी करना चाहिए वह सोपान ही है लक्ष्य नहीं है। प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक ने साहित्यिक अनुसन्धान के इस महत्त्वपूर्ण सत्य को कभी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया, और प्रसाद के व्याख्याता की इससे वडी सिद्धि क्या हो सकती है?

मैं अपनी शुभकामनाओं सहित 'प्रसाद का काव्य' हिन्दी के सहृदय विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ।

वर्षारम्भ, स० २०१२ वि०
दिल्ली विश्वविद्यालय

नगेन्द्र

निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक पी-एच० डी० के प्रबन्ध-रूप में लिखी गई थी। इच्छा होते हुए भी, कई कारणों से मैं उसमें अधिक परिवर्तन नहीं कर सका हूँ और प्रबन्ध लगभग मूलरूप में ही पाठकों के समक्ष आ रहा है। इसे लिखते समय मैं मुख्यतया अनुसन्धान का एक जिज्ञासु विद्यार्थी रहा हूँ। इसीलिए मैं चाहूँगा, कि पुस्तक को कवि प्रसाद के विषय में 'अन्तिम शब्द' समझने की भूल न की जाय।

पुस्तक में प्रसादजी के क्रमिक विकास का निर्देश मैंने किया है। 'चित्राधार' से 'कामायनी' तक वे क्रमशः उत्तरोत्तर आगे बढ़ते गये हैं। पुस्तक में मैंने आलोचना की किसी विशेष प्रणाली को नहीं अपनाया है। यद्यपि एडवर्ड थाम्पसन की पुस्तक 'रवीन्द्रनाथ टैगोर' की शैली मुझे अच्छी लगी है, किन्तु मैंने स्वतंत्र रीति से प्रसाद के कवि को किंचित निकट से देखने का प्रयास किया है। पुस्तक में मैं व्याख्याकार ही अधिक रहा हूँ ताकि कविताओं के भाव प्रकाश में आ सकें और कवि के विषय में प्रचलित बहुत-सी भ्रान्तियाँ दूर हो जायें। इसी कारण भाषा कहीं-कहीं काव्यात्मक हो गई है। आशा है भविष्य में इसका परिष्कार कर लूँगा। प्रसाद के व्यक्तित्व को मैंने विश्वकाव्य की पृष्ठभूमि में रखकर देखने का प्रयत्न किया है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे महाकवि वाल्मीकि, कालिदास, होमर अथवा शेक्सपियर के समकक्ष हैं; किन्तु इतना अवश्य है कि प्रसादजी में विकास की पर्याप्त रेखाएँ और सम्भावनाएँ थीं, और यदि वे कुछ समय तक हमारे बीच और रहते तो सम्भवतः महान कवियों के समीप आ जाते। पुस्तक में यथास्थान दर्शन, मनोविज्ञान आदि की भी चर्चा है। सम्भव है मैं अपनी महात्वाकांक्षा में इस दिशा में आवश्यकता से आगे बढ़ गया होऊँ, इसके लिए मैं क्षमा चाहूँगा।

यह एक नवयुवक का प्रथम प्रयास है। इस अवस्था में किसी तटस्थ और निष्पक्ष दृष्टिकोण की माँग करना ज्यादती होगी। एक नए लेखक की सारी कमज़ोरियाँ पुस्तक में मिलेंगी। मैं अपनी सीमाओं को जानता हूँ, इसलिए जो

भी सज्जन पुस्तक के विषय में अपने सुझाव देंगे, मैं उनका स्वागत करूँगा। आशा है कि आगामी संस्करण में मैं अधिक न्याय कर सकूँगा।

प्रस्तुत पुस्तक गुरुजनों के पथ-प्रदर्शन, विद्वानों के सहयोग और मित्रो के स्नेह का परिणाम है। उन्हीं के सहारे मैं जीवन में आगे बढ़ सका हूँ। नाम कहाँ तक गिनाऊँ, मैं उन सबका हृदय से आभारी हूँ।

भूलो के लिए क्षमा माँगता हुआ मैं यह पुस्तक आपके सामने रख रहा हूँ।

लखनऊ क्रिश्चियन कालेज
१० जून, १९५५

प्रेमशंकर

विषय-सूची

पृष्ठभूमि

काव्य-विकास

कामायनी

मूल्यांकन

परिशिष्ट

पृष्ठभूमि

१—प्रसाद-काव्य की पृष्ठभूमि

२—प्रसाद का व्यक्तित्व

३—'इन्दु' की प्रगति

प्रसाद-काव्य की पृष्ठभूमि

परम्परा और पृष्ठभूमि—

काव्य के निर्माण में परम्परा और पृष्ठभूमि का विशेष योग रहता है। कवि एक ओर यदि अपनी परम्परा से प्रभावित हो सकता है, तो साथ ही देश, काल की परिस्थितिया पृष्ठभूमि का कार्य करती है। काव्य में उनका स्वरूप किसी-न-किसी प्रकार आभासित होता रहता है, और कभी-कभी तो कवियो की कृतिया युग का संपूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। कालिदास की रचनाओ मे भारत के स्वर्णयुग का समस्त वैभव दिखाई देता है। जीवन के ...य सघर्षों से मुक्त कलाकार सौन्दर्य और शृगार के सरस वातावरण ...चरण करता है। वैभवशाली नगर, सुन्दरी नारिया, सुकुमार प्रसाधन उसमें मिलते है। सघर्ष अथवा सक्रान्ति-काल के कवि के स्वर में एक विद्रोह की भावना होती है। गेटे के व्यक्तित्व का निर्माण सघर्षशील परिस्थितियो मे ही हुआ था। इस प्रकार समाज की दशा तथा साहित्य की परम्परा दोनो ही काव्य की पृष्ठभूमि का कार्य करते है। अपने अतीत से प्रेरणा लेता हुआ कवि युग के अनुकूल नवनिर्माण मे सलग्न होता है। यदि परम्परावादी कवि मे अनुसरण की भावना अधिक रहती है, तो स्वच्छन्दतावादी कवि विद्रोही अधिक होता है, किन्तु दोनो पर ही युग की छाया रहती है। 'इस प्रकार कला क्रमश. क्रियाशील स्वीकृति और विद्रोह के दो विरोधी मार्गो पर चलती है[१]।'

प्रसाद के पूर्व काव्य की एक दीर्घ परम्परा मिलती है। आधुनिक काव्य के अतिरिक्त सस्कृत मे वाल्मीकि, कालिदास, जयदेव के आदर्श थे। पाश्चात्य

---

१. Art moves from stage to stage ..... by two opposing paths; the way of constructive acceptance, and the way of revolt.
–Convention and Revolt in Poetry, by John Livingston Lowes, page 87.

काव्य में होमर, दान्ते, शेक्सपियर, गेटे आदि की परम्परा थी। फारसी तथा ईरानी काव्य में रूमी, उमरखैयाम आदि कार्य कर चुके थे। हिन्दी मे तुलसी, सूर, जायसी, कबीर, विद्यापति आदि का कृतित्व सम्मुख था। प्रसाद की मूल प्रवृत्तिया एक स्वच्छन्दतावादी कलाकार तथा दार्शनिक, चिन्तनशील कवि के सयोग से निर्मित है। काव्य और दर्शन का अद्भुत सम्मिश्रण उनमें दिखाई देता है। यद्यपि उन्होने काव्य की किसी परम्परा अथवा परिपाटी विशेष का अनुसरण नही किया, किन्तु उन पर काव्य की उस परम्परा की छाया अवश्य है जो रस को आत्मा मानकर चलती है। वास्तव में उन्होने आरम्भ में महाकवियो से प्रेरणा ग्रहण की और अन्त मे एक महा कलाकार की भाति उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व सम्मुख आया। उन्होने अपने युग और देश की समस्त चेतना को काव्य के माध्यम से प्रकाशित करने का प्रयत्न किया। अन्तर्मुखी कलाकार होते हुए भी वे व्यक्तिवादी नही है, और समाज की समस्याओ का समाधान प्रस्तुत करते है। प्रसाद का प्रवेश एक विद्रोही कलाकार के रूप में नही हुआ। उन्होने प्रचलित परम्परा के प्रति कोई आन्दोलन नही चलाया। उन्होने अपनी कृतियो से काव्य की सच्ची परम्परा को आगे वढाया। उनका मूल स्वर यदि राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित था, तो साथ ही उन्हे महान कवियो से भी शक्ति मिली। परम्परा और प्रगति को साथ लेकर चलनेवाले प्रसाद के काव्य की पृष्ठभूमि, उसे प्रभावित करती है।

प्रसाद का जन्म उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम भाग में हुआ था, और वीसवी शताब्दी के लगभग अर्द्धभाग के पूर्व ही वह समाप्त हो गया। उन्नीसवी शताब्दी मे भारतीय विद्रोह के समाप्त होते ही देश मे अपेक्षाकृत अधिक शान्त वातावरण छा गया[२]। महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र मे भारतीयो को समानता और धार्मिक स्वतन्त्रता का वचन दिया गया। देश की जनता को कुछ सान्त्वना मिली और उसने एक नये सिरे से सोचना आरम्भ किया। इसी समय पश्चिम की विचार-धाराएँ देश में प्रवेश कर रही थी। रूसो, वाल्टायर और मिल के राजनैतिक मत विचार-विनिमय का विषय

---

२. "After the great events, fierce passions and tremendous problems of the mutiny, we pass into a comparatively mild and humdrum atmosphere"

-History of **British India** by Roberts, page 387.

बन गये थे। पाश्चात्य भाषा और साहित्य के सम्पर्क मे आने के कारण अनेक नवीन विचार-धाराएँ देश को प्राप्त हो रही थी। हाल मे ही उत्पन्न होनेवाला मध्यवर्ग शिक्षा की ओर अधिक अग्रसर होने लगा।

१९वीं शताब्दी का अन्तिम भाग—

शिक्षित वर्ग का दृढ विश्वास था कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए देश में सामाजिक सुधार आवश्यक है। राजा राममोहन राय ने वहुत पूर्व ही ब्रह्म-समाज की नीव डाली थी, अव केशवचन्द्र सेन ने उसका नेतृत्व किया। उन्ही के प्रयास से १८७२ में विवाह ऐक्ट पास हुआ। ब्रह्मसमाज सुधार करने में प्रयत्न-शील था। वह वेदान्त धर्म को स्वीकार करता था, किन्तु सव प्रकार की मूर्ति-पूजा के विरुद्ध था। दया अथवा परोपकार भाव से सव के साथ परस्पर व्यव-हार करना वह उचित मानता था[१]। वगाल में ब्रह्मसमाज की ही भाति पूना मे रानाडे ने प्रार्थना-समाज की स्थापना की। उनका कार्यक्रम अधिक क्रान्ति-कारी था और वे प्राचीन रूढियो मे आमूल परिवर्तन कर देना चाहते थे। इसी के प्रतिक्रिया-स्वरूप आर्यसमाज का उदय हुआ और वेदो को उच्च स्थान दिया गया। वह प्रत्येक वैदिक वस्तु को महान मानकर सामाजिक सुधार का पक्षपाती था। अपने अतीत से उसने पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की और उसका लक्ष्य सांस्कृतिक चेतना ही अधिक रहा। लाला लाजपत राय आदि के नेतृत्व में उसे पर्याप्त वल प्राप्त हुआ। उत्तर भारत के आर्यसमाज की भाति ही दक्षिण में थियासाफी का आविर्भाव हुआ। वनारस मे एनीवीसेन्ट ने उसके लिए प्रयत्न किया। इस आन्दोलन में राष्ट्रीयता के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना भी अधिक थी। इन सभी सामाजिक आन्दोलनो के अतिरिक्त वगाल में रामकृष्ण परमहस 'लोकत्सग्रह' तथा समाजसेवा का प्रचार कर रहे थे। इस प्रकार १८५७ के पश्चात् भारत में अनेक सामाजिक सुधार के आन्दोलन उठ खडे हुए, जिन्होंने देश में नयी जागृति और चेतना को प्रसारित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

देश में राष्ट्रीयता की भावना वहुत पूर्व ही कार्य कर रही थी। मराठा आदि अनेक शक्तियो ने अँग्रेजो के विरुद्ध मोर्चा लिया था। विद्रोह भारतीय राष्ट्रीय भावना का ही एक विस्फोट था। सामाजिक सुधार के आन्दोलनो के मूल में भी देशप्रेम की ही भावना कार्य कर रही थी। राष्ट्रीय भावना तथा राजनैतिक आन्दोलन का नियमित कार्यक्रम १८८५ ई० में कांग्रेस के जन्म

---

१. राजा राममोहन राय, ले० नलिनचन्द्र गांगुली, पृ० ७०

से आरम्भ होता है। आरम्भ में काग्रेस की रूप-रेखा इतनी उदार थी कि उसे तत्कालीन वायसराय तथा अन्य अंग्रेजो का भी सहयोग प्राप्त था[४]। तिलक के आगमन के साथ ही काग्रेस मे एक नवीन विचार-धारा का प्रवेश हुआ और उसमें दो वर्ग हो गये—एक वर्ग क्रान्तिकारी आन्दोलन का पक्षपाती था और दूसरा वैधानिक उपायो से स्वराज्य चाहता था। तिलक ने पूना में अपने पत्र 'केसरी' द्वारा क्रान्तिकारी विचार-धाराओं का प्रकाशन आरम्भ किया। उन्होंने यहा तक कहा कि, "अपने को कुएँ के मेढक की भाति वन्दी न वना दो। प्रत्येक वन्धन तोडकर श्रीमद्भगवद्गीता का अनुसरण करो। शिवाजी ने अफजल खा को मारकर कोई पाप नही किया। वे अपनी भूमि से शत्रुओ को निकाल देना चाहते थे[५]।" तिलक का ही समर्थन विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपत राय ने भी किया। तिलक राजनैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक सभी क्षेत्रो में कार्य करते दिखाई देते है। उधर काग्रेस में ही सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि व्यक्ति वैधानिक रीति से स्वराज्य-प्राप्ति का प्रयत्न कर रहे थे। दादाभाई नौरोजी भी क्रान्ति के समर्थक न थे। देश में राजनैतिक आन्दोलनो के कारण जनता में एक जागृति अवश्य आ गयी थी, किन्तु अभी तक उसकी रूप-रेखा सुस्थिर न थी।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्त तक भारत में चेतना की एक लहर-सी दौड चुकी थी। सामाजिक, सास्कृतिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रो में व्यक्ति कार्य कर रहे थे, और उनके मूल में राष्ट्रीयता की प्रवल भावना थी, साथ ही वे देश के सामाजिक स्तर को भी ऊँचा उठाना चाहते थे। अपने इतिहास की ओर भी लोगो का ध्यान आकर्षित होने लगा था, और वे अतीत से प्रेरणा प्राप्त करना चाहते थे। विश्व में प्रचलित नवीन विचार-धाराओ से भी उन्होने कुछ-न-कुछ ग्रहण ही किया। इस प्रकार राष्ट्रीय भावना का स्वरूप धीरे-धीरे वन रहा था और देश की विखरी हुई शक्तियाँ सगठित की जा रही थीं। उन्नीसवी शताब्दी ने उस सुदृढ पृष्ठभूमि का कार्य किया, जिस पर आगे चलकर वीसवी शताब्दी के शक्तिशाली भारत का निर्माण हुआ, जो राजनीति, समाज, साहित्य प्रत्येक दृष्टि से प्रगतिशील रहा।

---

४. The History of the Congress by Dr. P. Sitaramayya, page 25

५. Contemporary Thought of India, page 137.

भारतेन्दु-युग—

उन्नीसवी शताब्दी के इस आन्दोलित वातावरण मे हिन्दी साहित्य की नवीन परम्परा का विकास हुआ। भारतेन्दु ने अपने युग का प्रतिनिधित्व किया। देश की अनेक रूढियो और कुरीतियो के सुधार का उन्होने प्रयास किया। इस सामाजिक कार्य के लिए प्राय. उन्हे नाटको का अवलम्ब ग्रहण करना पडा, किन्तु कविता में भी उन्होने इन भावनाओ को स्थान दिया। साहित्य के क्षेत्र मे एक सर्वथा नयी चेतना का आरम्भ भारतेन्दु-युग से ही हो जाता है। भारतेन्दु ने कहा था—

> आवहु, मिलिकै, रोवहु सब भारत भाई
> हा, हा, भारत-दुर्दशा न देखी जाई।

भारतेन्दु-युग में प्राचीन-नवीन का सम्मिलन, देश-प्रेम, समाज-सेवा आदि भावनाएँ एक ही साथ प्राप्त होती है। यद्यपि सामाजिक दृष्टि के कारण गद्य का ही अवलम्ब अधिक ग्रहण किया गया, किन्तु काव्य में भी सुधारवादी भावनाएँ प्रतिपादित की गई। काव्य के भाव, भापा, शैली सभी मे भारतेन्दु ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया। उस समय की प्रचलित विचार-धारा से वे पूर्णतया प्रभावित थे। अग्रेजो का अनुग्रह स्वीकार करते हुए भी वे कहते है—"पै धन विदेस चलि जात, यहै अति ख्वारी।" अनेक सामाजिक कुरीतियो पर उन्होने व्यग्य किये। वे एक सच्चे राष्ट्रप्रेमी थे। वास्तव मे 'नवीन धारा के बीच भारतेन्दु की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति का था। नीलदेवी, भारत-दुर्दशा आदि नाटको के भीतर आयी हुई कविताओ मे देश-दशा की जो मार्मिक व्यजना है, वह तो है ही, बहुत-सी स्वतन्त्र कविताएँ भी उन्होने लिखी जिनमे कही देश की अतीत गौरव-गाथा का गर्व, कही वर्तमान अधोगति की क्षोभभरी वेदना, कही भविष्य की भावना से जगी हुई चिन्ता इत्यादि अनेक पुनीत भावो का सचार पाया जाता है।'[६] सामाजिक रचनाओ के अतिरिक्त उनकी प्रेम और शृंगार की रचनाएँ अनुभूति की तीव्रता में अत्यन्त सरस है। इस प्रकार भारतेन्दु के बहुमुखी व्यक्तित्व ने आगे की परम्परा को प्रभावित किया। उनके समय मे ही प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण प्रेमघन, जगमोहन सिह आदि ने कार्य किया। इन सभी कवियो की कविताएँ अनेक विषयो को लेकर चलती थी। वे देश की दशा पर दुख प्रकट करते थे, समाज की कुरीतियो के सुधार की चर्चा भी उन्होने की, और अनेक सामान्य

---

६. हिन्दी साहित्य का इतिहास, ले० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ५१२

विषयो पर भी वे लिखते थे। प्रेमघनजी ने प्रयाग का सनातनधर्म सम्मेलन, प्रतापनारायण जी ने गौरक्षा आदि पर कविताएँ लिखी। भारतेन्दु-युग ने विभिन्न दिशाओ में कार्य किया, और आधुनिक हिन्दी-काव्य की राष्ट्रीय परम्परा को जन्म दिया। जीवन और काव्य एक दूसरे के अधिक निकट आ गये तथा रीतिकाव्य की घोर शृंगारिकता से काव्य को मुक्ति मिली। उसने हिन्दी काव्य की सुदृढ पृष्ठभूमि का कार्य किया। भारतेन्दु के वहुमुखी व्यक्तित्व ने स्वय प्रसाद जी को बहुत प्रभावित किया और उन्होने उनसे प्रेरणा ली।

बीसवीं शताब्दी का आरम्भ—

प्रसाद का वास्तविक कृतित्व बीसवी शताब्दी में ही आरम्भ होता है। राजनैतिक क्षेत्र में इसी समय गोखले और गाधी का प्रवेश हुआ। गाधी ने देश की वागडोर हाथ में ली और महामना मालवीय, मोतीलाल नेहरू आदि अनेक विचारशील नेता भी साथ ही थे। गाधी ने अपने महान् व्यक्तित्व से सत्य, अहिसा का प्रचार किया। उसी समय १९०९ में मार्ले मिन्टो सुधार आये, और वाद में १९१९ का भी ऐक्ट आया। इस प्रकार भारतीयो को कुछ अधिकार मिलने लगे। काग्रेस भारतीय राष्ट्रीय भावना का प्रतिनिधित्व कर रही थी। अग्रेजो ने हिन्दू-मुसलमानो में पारस्परिक वैमनस्य फैलाने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया, किन्तु गाधी अपनी सम्पूर्ण शक्ति से देश का नेतृत्व कर रहे थे। जनता को वे अत्यधिक प्रिय थे[७]। सामाजिक सुधार का कार्य अव भी आर्यसमाज, थिय़ासाफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन आदि के द्वारा हो रहा था। स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो मे भारत के मस्तक को ऊँचा कर दिया था। शिक्षा का भी प्रसार देश में जोरो से इसी समय हुआ। स्थान-स्थान पर स्कूल और विश्वविद्यालय खुलने लगे, और भारतीय विश्व की सभी विचार-धाराओ मे परिचय प्राप्त करने लगे। साहित्य के क्षेत्र में रवीन्द्र का आगमन एक नयी दिशा का सूचक था। पडित जवाहरलाल नेहरू ने गाधी और रवीन्द्र के व्यक्तित्व की तुलना करते हुए उन्हे इस युग की सर्वश्रेष्ठ विभूतिया कहा है[८]। रवीन्द्र भारतीय सभ्यता और सस्कृति के प्रतीक थे, तो गाधी भारतीय जनता के। हिन्दी साहित्य की विचार-धारा का प्रतिनिधित्व 'सरस्वती'

---

७. Autobiography by Nehru, page 128

८ 'Tagore and Gandhi have undoubtedly been the two outstanding and dominating figures of India.—Discovery of India, page 405

करती है। बीसवी शताब्दी के आरम्भ की साहित्यिक प्रवृत्तिया उसी के माध्यम से अभिव्यक्त हुई। दूसरे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लिये 'हिन्दी की वर्तमान अवस्था' के विषय मे कहा गया था, 'हिन्दी के जिस नये पौधे मे आज से तीस-पैंतीस वर्ष पहले कोमल-कोमल पत्ते दिखायी दिये थे, वे अब इस समय, अनेक पल्लव-पुजो से आच्छादित है[९]।' द्विवेदी-युग का काव्य प्रयोगशील अवस्था मे दिखायी देता है, जो अपने निर्माण में सलग्न था। अनेक विचार-धाराएँ उसपर अपना प्रभाव डाल रही थी, और वह हिन्दी की परम्परा का सृजन कर रहा था। इसी के कुछ समय बाद छायावाद-युग का आरम्भ हो जाता है, जिसका प्रतिनिधित्व 'इन्दु' ने किया। प्रसाद-काव्य पर वर्तमान दशा का पूरा प्रभाव पडा, और उनके कृतित्व में युग की प्रवृत्तिया प्राप्त होती हैं। मूलत वे भावुक सास्कृतिक कलाकार है, जो विचारो को प्रतिपादित करते चलते हैं।'

बीसवी शताब्दी का भारत एक विकासशील देश रहा है। स्वय विश्व के नवीन इतिहास का निर्माण हो रहा था। प्रगतिशील सामाजिक विचार-धाराएँ नवनिर्माण मे लगी हुई थी। मार्क्स के पश्चात् लेनिन ने क्रान्ति को पुन जीवन प्रदान किया था। वह गरीबो को भूमि, भूखे को वस्त्र, तथा शान्ति के लिए समस्त राष्ट्र को एक सूत्र मे बाधना चाहता था। राजनैतिक विचार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे पदार्पण करने लगे और साहित्य ने भी इसमे सहयोग दिया। इसी के साथ अन्तर्राष्ट्रीयता और मानवता की भावनाओ मे भी विकास हुआ। पारस्परिक सघर्षो के दुष्परिणामो को देखकर कुछ विचारकों ने शान्ति का सन्देश दिया। सन् १९१८ मे विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका था। इस प्रकार चारो ओर विश्व मे एक नवीन चेतना और जागृति आ रही थी। शासन-सत्ता धीरे-धीरे जनता के हाथ में पहुँच रही थी। यह राष्ट्रीय भावना इस युग मे आकर पूर्व की अपेक्षा अधिक व्यापक हो गई। ऐसे भी व्यक्तियो का उदय हुआ जो सार्वभौमिक स्तर पर विचार करने लगे। 'अन्तर्राष्ट्रीयता देशो की समाजवादिता का ही एक स्वरूप है[१०]।' धर्म की रूढिवादिता पर भी आक्रमण हो रहे थे और उसकी एक नवीन व्याख्या की जाने लगी। योरोपीय सभ्यता अपनी बौद्धिकता को लेकर समस्याओ का समाधान करने में लग गयी। इस प्रकार जीवन के क्षेत्र मे नवीन प्रयोग हो रहे थे।

---

९. 'सरस्वती', अक्टूबर, १९११, पृष्ठ ४६५

१०. "Internationalism is the socialism of nations.—A Short History of the World, by H. G. Wells, page 281.

साहित्य, कला, विज्ञान की दृष्टि से भी बीसवी शताब्दी का आरम्भ पर्याप्त प्रगति कर चुका था। विज्ञान के क्षेत्र मे अनेक नवीन आविष्कार हो रहे थे, जो सभ्यता को और भी आगे बढा सके। उपयोगितावाद, आदर्शवाद को जीवन के निकट लाकर प्रस्तुत करने का प्रयत्न होने लगा। केवल विज्ञान के द्वारा ही सुख-शान्ति न होने देखकर ही विचारको ने मानवतावाद का अवलम्ब ग्रहण किया। मिल आदि विचारक पूर्व ही इसकी नीव डाल चुके थे। विचारको ने दर्शन को एक व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया था। राजनैतिक क्षेत्र की स्थिति स्थायी नही थी, किन्तु चिन्तको ने अपनी विचार-धारा को विश्व कल्याण के लिये लगा दिया। ये ही आधुनिक सभ्यता की मुख्य प्रवृत्तिया थी। यूरोप की इस नयी सभ्यता का प्रभाव उसके समाज और साहित्य पर पूर्ण रूप से पड रहा था[११]। अब तक जिन परम्पराओ के आधार पर कार्य हो रहा था, उनमें स्थिति के अनुकूल परिवर्तन हुआ। साहित्य ने एक बार देश और काल के बन्धन फिर तोडे। कविता के क्षेत्र मे नवीन प्रयोग हुए, यद्यपि गद्य में अधिक कार्य हुआ। यूरोप की इस नवीन चेतना ने सर्वत्र अपना प्रभाव डाला।

द्विवेदी-युग—

बीसवी शताब्दी में जातीय भावना का स्थान राष्ट्रीयता ने ग्रहण कर लिया। भारत की कल्पना माता के रूप में होने लगी। राष्ट्रीय प्रेरणा के लिए कवि अपने प्राचीन आदर्शो को पुन सम्मुख लाने का प्रयास करने लगे। उन्हे यदि वीरता की प्रेरणा विक्रमादित्य से मिलती, तो जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए राम और कृष्ण का आदर्श आकृष्ट करता। इसी पृथ्वी पर अपनी समस्याओ का समाधान करने की इच्छा से उसने ईश्वर को भी देश मे बुला लिया। देवत्व का मानवीकरण हो गया। इस बढती हुई देशप्रेम की भावना मे समस्त कवि-समाज ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार योग दिया। इस भावना का विकास भी होता गया, और कवि ने देश की सीमाओ से आगे बढकर विश्व की ओर भी झाका। राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र से द्विवेदी-युग के काव्य ने अतीत गौरव, राष्ट्रीय भावना, मानवता-भाव को ग्रहण किया। इन सभी भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए भारतेन्दु-युग ने गद्य का अवलम्ब लिया था। द्विवेदी-युग ने इतिवृत्तात्मक पद्य

---

११ The Riddle of the Universe by Ernest Haeckel, page 2

में उन्ही तथ्यो को प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त साहित्यिक क्षेत्र मे इस युग ने भारतेन्दु की क्रान्ति को आगे बढाया। गद्य और पद्य के क्षेत्र अलग-अलग हो गये। केवल शिक्षा और राजनीति का क्षेत्र गद्य को मिला। कविता मे आदर्श पर जोर दिया गया। कवियो ने लोक-रुचि का काव्यात्मक सस्करण प्रस्तुत किया। द्विवेदी-युग मे कालिदास के ग्रन्थो का अनुवाद हुआ और द्विवेदी जी ने स्वय सस्कृतवृत्तो में 'कुमारसम्भव' प्रस्तुत किया। सरसता और लालित्य को प्रधानता दी जाने लगी। ज्यो-ज्यो जनता मे राजनैतिक और सामाजिक जागृति होती जाती थी, विषय भी बढते जा रहे थे। इस प्रकार द्विवेदी-युग में एक ऐसे साहित्य का निर्माण होने लगा था, जो राष्ट्रीय होते हुए भी शाश्वत मनोभावनाओ की ओर अग्रसर था। भाषा की दृष्टि से काव्य को परिमार्जन प्राप्त हो चुका था और उसमें अव शैथिल्य कम रह गया था। नवीन छन्दो का प्रयोग होने लगा था। गुप्तजी के हरिगीतिका को पर्याप्त ख्याति मिली। नवीन शैलियो में काव्य वनने लगा। उधर पश्चिम का प्रकाश भी भारत मे आ रहा था। विक्टोरिया-युग मे भी स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्तिया शेष थी[१२]। द्विवेदी-युग मे स्वच्छन्दता का साधारण आभास मिलने लगा था। आगे चलकर गुप्त जी ने गीतिकाव्य मे भी रचना की। द्विवेदी-युग का कवि जनता के बीच रहकर अपने काव्य का निर्माण कर सका। उसमे देश के लिए सन्देश था, फिर भी साहित्य की अन्तरात्मा बोल रही थी। इसी युग की परम्परा ने आगे चलकर काव्य के उपादानो को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। सच्चे कवि के समान ये युग से प्रभावित हुए और उस पर अपनी छाप भी लगा दी। यद्यपि समस्त चेतना का प्रयोग वे न कर सके।

द्विवेदीयुगीन साहित्य मे गद्य के अतिरिक्त कविता का भी पर्याप्त विकास हुआ। खडी बोली का एक आन्दोलन-सा उठ खडा हुआ। श्रीधर पाठक ने १९४३ वि० में 'एकान्तवास योगी' प्रकाशित की। बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री ने तो 'खडी बोली आन्दोलन' नामक पुस्तक ही छपवा दी। इस प्रकार कविता मे भी खडी बोली का समावेश हुआ। प० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भक्ति-काल और रीति-कालीन परम्परा के स्थान पर सस्कृत साहित्य को महत्व दिया। 'सरस्वती' पत्रिका ने हिन्दी-विकास को आरम्भ किया। द्विवेदी जी भाषा का परिष्कार करते जा रहे थे। 'गद्य और पद्य का पदविन्यास एक ही होना चाहिये',

---

१२. There is an element of romanticism in all victorian poets,—A History of English Literature—by E. Leogoius & Cazamian, page 1161,

खड़ी बोली में कविता की। उन सभी पर द्विवेदी जी का प्रभाव किसी-न-किसी रूप में पडा।

इस खडी वोली की द्विवेदी-परम्परा के अतिरिक्त एक दूसरी काव्य-धारा भी चली जा रही थी। कुछ कवि तो अब भी ब्रजभापा को ही माध्यम वनाये हुए थे। प्राय सभी में कुछ-न-कुछ व्यक्तिगत विशेपताएँ मिल जाती है। ब्रजभाषा के कवि प्राय श्रृगार, भक्ति और वीरता की प्राचीन परिपाटी पर कार्य कर रहे थे। खडी वोली के ये कवि द्विवेदी-परम्परा से अपना पृथक् अस्तित्व रखते हुए भी नवीनता की ओर उन्मुख थे। राय देवीप्रसाद पूर्ण ने ब्रजभाषा की काव्य-परम्परा का निर्वाह अन्तिम समय तक किया। सनातनधर्मी होते हुए भी उनमें देशभक्ति की भावना है। 'वसत-वियोग' में उन्होने भारतभूमि का चित्रण एक विस्तृत उद्यान के रूप मे किया है। नाथूराम 'शकर' शर्मा की समस्यापूर्तिया प्रसिद्ध है। आर्यसमाज से सम्वन्ध रखने के कारण देश के सामाजिक पतन पर उन्होने क्षोभ प्रकट किया। इन्ही के साथ 'सनेही' जी ने भी देशभक्तिपूर्ण राष्ट्रीय रचना की। सत्यनारायण कविरत्न ने एक वार पुन सूर के माधुर्य की याद दिला दी। इन कवियो ने यद्यपि ब्रजभाषा मे रचना की, किन्तु खडी वोली के विकास के कारण कभी-कभी उसका भी अवलम्ब लिया। श्रृगार भावना के साथ ही देश और समाज को भी साथ लेकर वे चलते थे। खडी वोली का स्वतन्त्र आभास श्रीधर पाठक मे पूर्व ही मिल चुका था। काव्य में स्वच्छन्दता का आभास उन्होने दे दिया था, उसी का स्वर श्री रामनरेश त्रिपाठी मे दिखाई दिया। 'मिलन',' पथिक' और 'स्वप्न' नामक तीन खडकाव्यो में सरस कल्पना है।

अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद—

अग्रेजी साहित्य मे स्वच्छन्दतावादी कवियो ने गीतिकाव्य का एक नवीन द्वार खोला था। अनुभूति की सत्यता और तीव्रता को ही कविता का प्राण मानकर अल्प आयु मे ही विदा ले लेनेवाले कीट्स, शेली और वाइरन का स्वर आज भी अपनी सगीतात्मकता में अमर है। प्रेम और सौन्दर्य में ही जीवन को वाध देनेवाले, इन गायक कवियो की तन्मय वाणी मे मध्ययुगीन विलास और यौवन के साथ ही विद्रोह-भाव भी झलक रहा है। जीवन और कविता दोनो में समान रूप से क्रान्ति करनेवाले ये कवि पूर्णतया स्वच्छन्दतावादी थे। आगे आनेवाली गीतिकाव्य-परम्परा उनकी नैसर्गिक स्वर-लहरी से प्रभावित है। इस सगीतमयता के पश्चात् ही विक्टोरिया-युग के कवियो ने एक वार पुनः विस्तृत क्षेत्र पर कार्य करने का प्रयत्न किया। उसमे भावना के साथ ही आदर्श-

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन उन्होने किया। द्विवेदी-युग का समस्त विशाल काव्य-निर्माण महावीरप्रसाद जी द्विवेदी की साधना का परिणाम है। उन्ही की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त का आगमन हुआ। गुप्त जी का काव्यक्षेत्र साधारण भारतीय जीवन का प्रतिरूप बनकर आया। 'साकेत' में कवि ने कृषक, श्रमजीवी, युद्धप्रथा, सत्याग्रह, विश्वबन्धुत्व आदि अनेक विषयो पर विचार किया है। नारी-भावना के महत्व को ऊचा उठाने के लिये काव्य की उपेक्षिता उर्मिला को उन्होने प्रधान पद प्रदान किया। इसके अतिरिक्त वे प्राचीनता के पुजारी होते हुए भी नवीनता के समर्थक है। 'भारत भारती' का सदेश "जग जाय तेरी नोक से, सोये हुए हों भाव जो", राष्ट्रीयता का स्वरूप प्रस्तुत कर रहा था। यह हमारे देशप्रेम साहित्य की अनुपम कृति है। इस प्रबन्ध और मुक्तक की परम्परा के अतिरिक्त उन्होने सुन्दर गीतो की भी रचना की। गुप्तजी राष्ट्रीय प्रतिनिधि कवि के रूप में साहित्य मे आये। 'हरिऔध जी' ने प्राचीन आदर्शो और आख्यानो के सहारे काव्य-रचना की। उनके 'प्रियप्रवास' की राधा एक लोकहितैषिणी और मर्यादामयी नारी है, कृष्ण एक सक्रिय लोकनेता है और यशोदा स्वय भारतमाता की प्रतीक-सी है। राधा और कृष्ण के चित्रण में उनका देवत्व पीछे छूट चुका है। राधा सेवा करने में तत्पर हो जाती है और कृष्ण मगल करने की दृष्टि से राजनीतिज्ञ हो जाते है। "इस काव्य-ग्रन्थ में विश्वप्रेम, लोक-सेवा, बौद्धिक व्याख्या, उन्नयन, नेतृत्व, सघटन, लोकरक्षा, त्याग, कर्तव्य की महत्ता, देवत्व का त्याग आदि कई नवीन तत्व सामने आते है[१३]।" उनके राधा, कृष्ण और राम, सीता, लक्ष्मण रूप में क्रमश भारतीयो के लिए आदर्श नेता का ही अकन किया गया।

मैथिलीशरण गुप्त तथा हरिऔध का काव्यक्षेत्र विस्तृत था। गुप्तजी ने राम, मानव, कृषक, नारी सभी का चित्र प्रस्तुत किया। 'हरिऔध' ने यदि एक ओर 'प्रियप्रवास' महाकाव्य की रचना की, तो दूसरी ओर चुभते और चोखे चौपदो द्वारा नीति की बाते कही। कबीर की साखियो का अधिक साहित्यिक सस्करण सम्मुख आया। इन दोनो महाकवियों के अतिरिक्त अन्य भी कवि देश और जाति का स्वर अलाप रहे थे। प० रामचरित उपाध्याय ने 'राष्ट्र-भारती', 'भारत-भक्ति' आदि काव्य-ग्रन्थो के द्वारा अपनी राष्ट्रीय भावना का प्रकाशन किया। लोचनप्रसाद पाण्डेय ने सरल भाषा के द्वारा मानव और प्रकृति के तादात्म्य पर प्रकाश डाला। इसके अतिरिक्त अन्य कवियो ने

१३　आधुनिक काव्य-धारा का सास्कृतिक स्रोत, ले० डा० केसरीनारायण

खडी बोली में कविता की। उन सभी पर द्विवेदी जी का प्रभाव किसी-न-किसी रूप में पड़ा।

इस खडी बोली की द्विवेदी-परम्परा के अतिरिक्त एक दूसरी काव्य-धारा भी चली जा रही थी। कुछ कवि तो अब भी ब्रजभाषा को ही माध्यम बनाये हुए थे। प्राय सभी मे कुछ-न-कुछ व्यक्तिगत विशेषताएँ मिल जाती है। ब्रजभाषा के कवि प्राय शृगार, भक्ति और वीरता की प्राचीन परिपाटी पर कार्य कर रहे थे। खडी बोली के ये कवि द्विवेदी-परम्परा से अपना पृथक् अस्तित्व रखते हुए भी नवीनता की ओर उन्मुख थे। राय देवीप्रसाद पूर्ण ने ब्रजभाषा की काव्य-परम्परा का निर्वाह अन्तिम समय तक किया। सनातनधर्मी होते हुए भी उनमें देशभक्ति की भावना है। 'वसत-वियोग' में उन्होने भारतभूमि का चित्रण एक विस्तृत उद्यान के रूप में किया है। नाथूराम 'शकर' शर्मा की समस्यापूर्तिया प्रसिद्ध है। आर्यसमाज से सम्बन्ध रखने के कारण देश के सामाजिक पतन पर उन्होने क्षोभ प्रकट किया। इन्ही के साथ 'सनेही' जी ने भी देशभक्तिपूर्ण राष्ट्रीय रचना की। सत्यनारायण कविरत्न ने एक बार पुन: सूर के माधुर्य की याद दिला दी। इन कवियो ने यद्यपि ब्रजभाषा में रचना की, किन्तु खडी बोली के विकास के कारण कभी-कभी उसका भी अवलम्ब लिया। शृगार भावना के साथ ही देश और समाज को भी साथ लेकर वे चलते थे। खडी बोली का स्वतन्त्र आभास श्रीधर पाठक मे पूर्व ही मिल चुका था। काव्य मे स्वच्छन्दता का आभास उन्होने दे दिया था, उसी का स्वर श्री रामनरेश त्रिपाठी मे दिखाई दिया। 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' नामक तीन खडकाव्यो मे सरस कल्पना है।

अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद—

अग्रेजी साहित्य मे स्वच्छन्दतावादी कवियो ने गीतिकाव्य का एक नवीन द्वार खोला था। अनुभूति की सत्यता और तीव्रता को ही कविता का प्राण मानकर अल्प आयु मे ही विदा ले लेनेवाले कीट्स, शेली और बाइरन का स्वर आज भी अपनी सगीतात्मकता में अमर है। प्रेम और सौन्दर्य मे ही जीवन को बाध देनेवाले, इन गायक कवियो की तन्मय वाणी मे मध्ययुगीन विलास और यौवन के साथ ही विद्रोह-भाव भी झलक रहा है। जीवन और कविता दोनो में समान रूप से क्रान्ति करनेवाले ये कवि पूर्णतया स्वच्छन्दतावादी थे। आगे आनेवाली गीतिकाव्य-परम्परा उनकी नैसर्गिक स्वर-लहरी से प्रभावित है। इस सगीतमयता के पश्चात् ही विक्टोरिया-युग के कवियो ने एक बार पुनः विस्तृत क्षेत्र पर कार्य करने का प्रयत्न किया। उसमे भावना के साथ ही आदर्श-

वादिता, सामाजिक प्रतिक्रिया भी दिखाई देती है। स्वच्छन्दतावाद के प्रेम-सौन्दर्य और यौवन की एक धूमिल रेखा भी काव्य में दिखायी देती है, किन्तु तन्मयता, प्रवाह और विद्रोह पीछे छूट चुका था। टेनीसन के काव्य में उसकी आत्मा और उसकी भावना स्वय प्रतिविम्बित होती है। स्वच्छन्दतावाद का उत्तराधिकारी होने के नाते उसने प्राचीनता की प्रमुख विशेषताओ के द्वारा उसे सुधार के साथ प्रस्तुत किया[१८]। टेनीसन के साथ ही राबर्ट ब्राउनिग कविता में अपने चिन्तन को लेकर आया। उसकी पत्नी ने भी उसी के स्वर में स्वर मिलाकर गायन आरम्भ किया था। परिस्थितियो के कारण ब्राउनिग के काव्य में एक प्रगतिशीलता भी दिखायी देती है। उसमें एक पौरुष झलकता रहता है। विक्टोरिया-युग के स्विनबर्न, रोजेटी, फिट-जराल्ड, मैथ्यू आर्नाल्ड आदि कवियो में अपनी व्यक्तिगत विशेषताएँ है। स्वच्छन्दतावादी युग की भाति यद्यपि इन कलाकारो में एक ही सुकोमल भाव-धारा नही मिलती, किन्तु उनमें किसी-न-किसी रूप में स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव है। विक्टोरिया-युग की इस प्रमुख धारा के अतिरिक्त कतिपय अन्य कवि भी मिलते है। मेरीडेथ, हार्डी, लुई स्टीवेन्सन, रडियर्ड किपलिंग आदि ने भी कविता की इसी धारा के अन्तर्गत रचना की। यदि स्वच्छन्दतावाद ने काव्य-परम्परा को विद्रोह सिखाया तो विक्टोरिया-काल ने प्राचीन और नवीन का सगम प्रस्तुत किया। इसी के साथ-साथ काव्य में रहस्यभावना को भी अवसर मिला। इस दृष्टि से अग्रेजी काव्य की यह परम्परा अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि उसमे समन्वय दृष्टि मिलती है। उसमे अनेक रूप है। इसी के प्रभाव-स्वरूप यथार्थवाद का युग आया। विक्टोरिया-युग की बौद्धिक प्रवृत्तियो ने बीसवी शताब्दी के आरम्भ होते ही काव्य में यथार्थवाद को प्रमुखता प्रदान की। परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियो ने इस काव्य को एक नवीन स्वरूप ग्रहण करने के लिए विवश कर दिया।

साहित्य और समाज के अत्यधिक निकट आ जाने से कविता के स्थान पर गद्य को १९वी शताब्दी के अन्त में ही पुन प्रमुखता मिलने लगी थी। किन्तु फिर भी कविता की धारा पूर्णतया समाप्त नही हो गई थी।

---

१८ "As the heir of romantic tradition he completes and corrects it by incorporating with it the essential tenents of classicism"

—A History of English Literature, page 1163.

इस समय दो प्रकार के लेखक इस नवीन परम्परा में कार्य कर रहे थे। एक तो वे, जो यथार्थवादी दृष्टिकोण रखते थे, और दूसरे वे, जिनमें कुछ स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तिया थीं, और जो आदर्श की ओर अधिक झुके हुए थे। कविता के क्षेत्र मे अधिक समय तक कोई महत्वपूर्ण व्यक्तित्व नही दिखायी देता। शेली, कीट्स और बाइरन की स्वच्छन्दतावादी परम्परा पर चलने के लिए कवि को सामाजिक स्थिति का सहयोग प्राप्त न था। इस कारण उसने रहस्यभावना के आधार पर एक विशद चित्रण खड़ा करने का प्रयास किया। इसमे मानव की मूल वृत्तियो को ही अपनाया गया। फ्रान्सिस थाम्पसन ने इसके लिए प्रकृति का भी अवलम्ब ग्रहण किया। 'सूर्यास्त', 'स्वर्ग का अहेरी' आदि उसकी इसी प्रकार की कविताएँ है। उसने एक स्वर्गीय प्रेम की प्राचीन कल्पना कर ली। आधुनिक युग का श्रेष्ठ कवि डब्लू० बी० यीट्स भी माना जाता है। उसने स्पष्ट कह दिया था कि "मै कविता के साम्राज्य में शान्ति के स्वर को पूर्ण शक्ति से ऊँचा रक्खूगा। बिना शान्ति के आनन्द असम्भव है। युद्ध जीवन के बदले मृत्यु ही तो देता है।" उसने रहस्यमय सौन्दर्य की उपासना की। उसकी कविता मे एक ओर यदि अपने देश आयरलैण्ड के लिए अपार प्रेम है तो दूसरी ओर मानवता के लिए शान्ति की कामना। इसी के साथ वह और भी ऊपर उठने का प्रयास कर रहा था। गीताजलि की भूमिका में उसने लिखा था कि "इसकी एक पक्ति पढकर मै संसार की समस्त विडम्बना भूल जाता हूँ। एक महान् सस्कृति का प्रतीक होते हुए भी उसमे साधारण भूमि का विकास है, मानो तृण गुल्म। उसमें एक ऐसी परम्परा है जहा काव्य और धर्म एकाकार हो जाते है। शताब्दियो तक बौद्धिक, नैसर्गिक कल्पना और भावना उसमें प्रवेश कर अन्त मे प्रतिभाशाली व्यक्ति के द्वारा असख्य विचारो मे प्रस्फुटित हो उठती है[१५]।" इस प्रकार अँग्रेजी काव्य की नवीनतम प्रवृत्तियो में दार्शनिकता के स्पष्ट लक्षण दिखाई देते है। इस दृष्टि से वह स्वच्छन्दतावाद को उच्च भूमि पर ले जाने मे प्रयत्नशील है।

---

१५. "To read one line of his is to forget all the troubles of the world ... . The work of a supreme culture they yet appear as much the growth of the common soil as the grass and the rushes. —Introduction to Gitanjali by W. B. Yeats, page 13.

प्रसाद का प्रवेश—

ऐसी ही थी साहित्य और समाज की परिस्थिति, जब प्रसाद ने पदार्पण किया। कविता, नाटक, उपन्यास और कहानी सभी क्षेत्रो मे अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा से कार्य करनेवाले इस महान् कलाकार ने अपने समय की समस्त सास्कृतिक चेतना का रसात्मक सस्करण साहित्य में प्रस्तुत किया है। उनके साहित्य मे वे अनुभूतिया मिलती है जिनका सम्वन्ध परम्परा और पूर्वपीठिका से है। द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता और जातीयता के विरोध में जो छायावाद उठ खडा हुआ था, उसका चरम विकास कवि प्रसाद में स्पष्ट है। भावना की दृष्टि से कवि में अनुभूति की सच्चाई है, भावो की गहनता। उसका काव्य एक ऐसे आधार पर निर्मित है, जहा कवि एक स्वतन्त्र पक्षी की भाति धरणी के ही गीत गाता रहता है। कवि का राष्ट्रीय प्रेम अतीत के प्रति अनुराग और सास्कृतिक मोह के रूप में प्रस्फुटित हुआ है। आदि पुरुष मनु, महाराणा प्रताप, वुद्ध आदि भी उनके काव्य के विषय है। किन्तु इस कथानक के अतिरिक्त प्रसाद ने उस सास्कृतिक परम्परा से प्रेरणा ग्रहण की, जिसपर भारतीय साहित्य आधारित है। अभिनवगुप्त के सौन्दर्यवाद की व्याख्या करते हुए उन्होने रहस्यवाद को पूर्णतया भारतीय प्रमाणित कर दिया[१८]। छायावाद के विषय में उनका मत एक ऐसे ठोस धरातल पर अवलम्वित था, जिसे व्यर्थ की वस्तु कहकर टालना सम्भव नही। 'हमारी जन्मभूमि थी यही, कही से हम आये थे नही' के द्वारा एक वार उन्होने पुन आर्यजाति के गौरवपूर्ण मगीत को प्रम्तुत किया। इस भावना का पूर्ण विकास कवि के नाटकों मे ही हुआ। भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग को लेकर कवि ने अपनी कल्पना के द्वारा उनमें नवीन जीवन भर दिया। शताब्दियो पूर्व होते हुए भी वे चिर-नवीन है। रवीन्द्र का आदर्श तो कवि के सम्मुख प्रत्यक्ष था। कालिदास, रवीन्द्र की परम्परा मे ही प्रसाद ने एक नवीन चरण रक्खा था। भारतीय दर्शन का विशद अध्ययन करनेवाले इस कलाकार ने 'कामायनी' में उनका काव्यात्मक सकलन प्रस्तुत कर दिया। उपनिपदो का अद्वैतवाद, शैव-दर्शन की प्रत्यभिज्ञा, बौद्धो की करुणा एक साथ उसके काव्य में प्रस्फुटित हो उठे। हिन्दू-मुसलमानो के मास्कृतिक मम्मिलन से जायमी ने मूफियो का प्रेमतत्व प्रस्तुत किया था। 'आसू' के विरह-वर्णन में एक ओर यदि स्वच्छन्दतावादी कवियो की सी आत्मकथा है तो दूमरी ओर मूफियो के तन्मय प्रेम की-सी अभिव्यजना। 'झरना' के गीतो मे यदि मानव और प्रकृति की भावनाओ का सम्मिलन है, तो 'लहर'

---

१८ काव्य और कला तथा अन्य निवन्ध, पृष्ठ २१

मे अपूर्व तन्मयता। भावना के क्षेत्र में प्रेम और यौवन के गायक कवि प्रसाद ने सुन्दर शब्दो मे मानवीय भावनाओ के साथ ही अपनी सास्कृतिक चेतना को अकित किया। 'कामायनी' मे एक साथ युग और हिन्दी की परम्परा साकार हो उठी है। गाधी-युग की इस कृति में कवि ने श्रद्धा से तकली भी कतवा दी है। राजनीति के क्षेत्र में सारस्वत प्रदेश का समस्त नियमन दिखाया गया है। प्राचीनतम कथानक पर लिखा गया यह काव्य मानवता के नवीनतम रूप को प्रस्तुत करता है और भावी मानवता के लिए अनेक मगलमय सदेश भी देता है। एक ओर यदि सारस्वत प्रदेश का सकेतात्मक राजनैतिक चित्रण है, तो दूसरी ओर मानव के अन्तरतम में उठनेवाली सूक्ष्मतम अनुभूतियो का अकन। राष्ट्रीय रगमच पर कवि प्रसाद ने एक शाश्वत और चिरन्तन सत्य को अकित किया है। काव्य के सीमित क्षेत्र मे, भावना और शब्द के बन्धनो में एक साथ इतनी भावनाओ का समाहार कवि की महानता का परिचायक है। भाषा के क्षेत्र में प्रसाद ने उसे लालित्य और माधुर्य प्रदान किया। खडी बोली का सर्वोत्तम स्वरूप उनमें मिलता है[१९]। पूर्व-पश्चिम, प्राचीन-अर्वाचीन, आदर्श-यथार्थ, श्रेय-प्रेय सभी का समन्वय कवि ने अपने काव्य मे प्रस्तुत किया। इस प्रकार प्रसाद के काव्य में एक परम्परा और सस्कृति निहित है। क्रान्तिकारी गुणो की दृष्टि से प्रसाद के भाव, भाषा, शैली में एक मौलिकता है।

प्रसाद अपनी व्यक्तिगत विशेषताओ के होते हुए भी छायावाद युग के कवि है। छायावाद हिन्दी साहित्य में एक प्रतिक्रिया और क्राति के रूप मे सम्मुख आया था। द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मक का स्थान कोमलकान्त पदावली और सूक्ष्म अकन को मिला। खडी बोली का सुन्दरतम स्वरूप इसी काल मे प्रस्तुत हुआ। पल्लव के पन्त के शब्दो में 'उसने तुतलाना छोड दिया, वह अब पिय को प्रिय कहने लगी।' बौद्धिकता के स्थान पर दर्शन अपने सरस रूप में प्रस्तुत हुआ। अभी तक देवत्व मे मानवीय भावनाओ को भरने का प्रयास किया जाता था। छायावादी कलाकार ने मानव को उसकी मानवीयता मे ईश्वर से महान मान लिया। जातीयता और राष्ट्रीयता के बन्धनो में द्विवेदी-युग का काव्य

---

१९. The classical poet on the other hand, exhausts, not a form only, but the language of his time and when he is wholly a classical poet, the language of his time will be the language of perfection.

—What is a classic by T. S. Iliot, page 24.

अभी तक शाश्वत चेतना को न ग्रहण कर सका था। अब कवि ने दार्शनिक भूमि पर खड़े होकर चिरन्तन सत्य का अंकन आरम्भ किया। इसके अतिरिक्त प्रकृति, जीवन, मानव का साहित्य के साथ तादात्म्य स्थापित करने का यह एक सफल प्रयत्न था। एक बार हिन्दी में भी कालिदास, शेक्सपियर, गेटे की परम्परा लहलहा उठी। निराला के क्रान्तिकारी स्वरूप ने छन्दबन्ध की कारा तोड़ दी। पन्त के आरम्भिक काव्य ने प्रकृति और मानव को एक ही व्यापक रंगमंच पर लाकर मिला दिया था। इस प्रकार प्रसाद, निराला, पन्त तीनों ही नवीन स्वर के कवि थे। इनमें एक व्यापक मानवीय भावना, शाश्वत चेतना के साथ ही समाज, देश और काल का स्वर है। आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध दर्शन के कारण इतना बढ़ गया कि काव्य में रहस्यवाद का भी प्रवेश होने लगा। महादेवी के गीतों में उसका सुन्दर प्रतिपादन हुआ। प्रतीकों का आश्रय भी इन कवियों को ग्रहण करना पड़ा। इस समय प्रेम का जो स्वर आरम्भ हुआ था, वह लौकिक स्वरूप से लेकर मानवता और ब्रह्म तक चला गया। व्यक्तिवाद का स्वरूप काव्य में आकर प्रस्फुटित हुआ। कलाकार और राजनीतिज्ञ के क्षेत्र अलग-अलग हो गये। इधर साहित्य में भी विभाजन हो गया। गद्य के द्वारा सांसारिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया जाने लगा। स्वयं प्रसाद ने उपन्यासों में सामयिक विषयों पर विचार किया। काव्य को सूक्ष्म चित्रण के लिए रक्खा गया।

कवि प्रसाद ने परम्परा का अनुकरण न करते हुए भी उसमें योग दिया। उन्होंने स्वयं प्राचीन का एक नवीन संस्करण ही प्रस्तुत किया। 'कामायनी' विश्व के महाकाव्यों में एक आगामी चरण है। 'आँसू' विरह-काव्यों में 'मेघदूत' के समीप रक्खा जा सकता है। दीर्घ काव्य-परम्परा के होते हुए भी जिस समय कवि ने पदार्पण किया, उसके सम्मुख एक विचित्र समस्या थी। उसने महान् कलाकारों की भाँति अपने नवीन पथ का निर्माण किया। प्रसाद प्राचीन परिपाटी और स्वच्छन्दतावाद के संगम रूप में हिन्दी में प्रतिष्ठित हैं। युग के कवि रूप में उन्होंने आसपास बिखरी हुई सामग्री का उपयोग किया। छायावाद की समस्त विभूति उनके काव्य में प्रस्फुटित हुई है। हिन्दी की चली आती हुई काव्य-परम्परा को उन्होंने आगे बढ़ाया है। "उतनी क्षमता का कोई दूसरा कलाकार हिन्दी साहित्य के इस युग में दिखाई नहीं देता। इस प्रकार वे युग के प्रवर्तक ही नहीं, उसकी सर्वश्रेष्ठ विभूति भी सिद्ध होते हैं।"

यह ध्यान रखना होगा कि प्रसाद जी के साहित्य की परम्परा मूलतः भारतीय है। उन्होंने उपनिषद्-दर्शन से अपने रहस्यवाद की प्रेरणा ली थी। इसके

अतिरिक्त धीरे-धीरे उनके काव्य मे परिष्कार होता गया है। भारत की प्रगतिशील सामाजिक परिस्थितियो ने उन्हे प्रभावित किया। 'प्रेम-पथिक' का सीमित क्षेत्र 'कामायनी' तक आते-आते सार्वभौमिक स्वरूप ग्रहण कर लेता है। प्रसाद के यौवनकाल की राष्ट्रीयता अन्तिम समय तक प्रखर रूप धारण कर चुकी थी। भारतीय नेताओं के सम्मुख स्वतन्त्रता ही केवल एकमात्र लक्ष्य नही रह गया था। वे ससार मे भारत को एक उन्नत राष्ट्र के रूप में देखने को इच्छुक थे। देश की अनेक सामाजिक कुरीतियों को सुधारने का भी उन्होने प्रयत्न किया। वे राष्ट्रीय के स्थान पर सार्वभौमिक दृष्टिकोण से विचार करने लगे थे। गाधी के सत्य, अहिसा एक जीवन-दर्शन के रूप मे स्वीकार किये जा चुके थे। साहित्यिक क्षेत्र में भी 'कला कला के लिए' और 'कला जीवन के लिए' का सघर्ष कम हो चुका था। इस प्रकार समय की गति-विधि के साथ कवि की रचनाओ में भी विकास होता गया।

प्रसाद का व्यक्तित्व

कवि—

कवि भावनाओ का गायक है। वह प्रत्येक निर्माण स्वय करता है और इस दृष्टि से एक महान कृतिकार है। रचना में अल्पतम अवयवो का प्रयोग करने के कारण भी उसे महत्वपूर्ण पद प्राप्त है। भावना-क्षेत्र में प्राचीन भारतीय दर्शन कवि और ऋषि में निकट साम्य स्थापित करता है। ऋग्वेद के अनुसार वह दिव्य रूपो का निर्माता है[1]। भारतीय कवियो की परम्परा भी महर्षि वाल्मीकि से प्रारम्भ होती है। ग्रीक शब्द 'पोयइटेस' (Poeites) से उत्पन्न 'पोयट' शब्द का अर्थ है—शिल्पी, सगीतमय विचारो का निर्माता। कविकर्म जीवन की एक महान साधना है। कारलायल का कथन है कि 'देवदूत इस रहस्य का उद्घाटनकर्ता होता है कि हम क्या करें, कवि हमें बताता है कि हम किससे प्रेम करें[2]।' कवि अपनी कृतियो से आदर्श प्रस्तुत करता है। वह ससार में जो कुछ भी अनुभव करता और देखता है, उसकी उस पर एक प्रतिक्रिया होती है, और उसे वह भाषा के माध्यम से व्यक्त कर देता है। इस प्रकार वह विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति है। आवेहयात के अनुसार 'शायर वही है जिसमे असर पैदा करनेवाली सिफत खुदादाद हो, जिससे जो कैफियत वह आप उठाता है, वही कैफियत सुननेवालो के दिल पर छा जाय और असर कर जाय।' वेदो से लेकर आधुनिक युग की परिभाषा तक में कवि को असाधारण कृतिकार के रूप में स्वीकार किया गया है। भावना, अनुभूति ही उनकी शक्ति है, जिसके अभाव में वह एक चरण भी नही चल सकता। इसी कारण वर्ड्सवर्थ तो काव्य को भावना रूप में ही स्वीकार करता है[3]। कवि की विचारधारा उसकी कृतियो मे निहित रहती है।

---

१. कवि कवित्वा दिवि रूपम् आसजत् .ऋग्वेद, १०।१२४।७

२ 'The prophet is a revealer of what we are to do, the poet of what we are to love."–Thomas Carlyle

३. "Poetry is emotion."–Wordsworth.

कवि जीवन का व्याख्याकार है। वह ससार से प्रेरणा ग्रहण करता है। आन्तरिक और वाह्य दोनो ही पक्षो पर उसका ध्यान रहता है और वह उन्हे साथ लेकर चलता है। आन्तरिक अनुभूति से कवि की व्यक्तिगत भावना का अधिक सम्बन्ध होता है। दूसरो की भावनाओ को वह अपने निकट ले आता है। प्रकृति के अन्तस्तल में जाकर उसके मौन स्वरूप से चेतना ग्रहण करने की शक्ति कवि को सहज सुलभ होती है। उसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है और वह असूर्यम्पश्या तक पहुँच जाता है। उसकी कल्पना अत्यन्त तीव्र होती है। वाह्य पक्ष से समाज तथा काल का अधिक सम्बन्ध रहता है; किन्तु अन्तर्मुखी होते हुए भी कवि समाज की अवहेलना नही कर पाता। देश-काल का स्वर उसके स्वाभाविक सगीत मे स्थान पाता है। वह अपने युग का प्रति-विम्ब होता है। वास्तव में अन्तर और वाह्य पक्ष का सर्वाग सम्पूर्ण भावात्मक प्रकाशन ही सुन्दर काव्य की परिभाषा कही जा सकती है।

कवि का जीवन उसकी कृतियो मे परोक्ष रूप से झांका करता है। जो कार्य साधारण व्यक्ति व्याख्या से करता है, उसे वह सकेत मात्र से कर लेता है। वह जिस ससार से अनुप्राणित होता है, उसकी व्याख्या भी अपने आदर्शों के अनुसार करता है। प्राचीन युग का ऋषि कवि तथा आज का स्वच्छन्दतावादी कलाकार, दोनो ही अनुभूति और कल्पना से अपनी कृति का निर्माण करते है। विश्व के सभी महान कवियो के काव्य में उनके जीवन की छाया परोक्ष रूप से प्राप्त होती है।

काव्य का पूर्णतया रसास्वादन करने के लिए कवि की सामाजिक तथा व्यक्तिगत स्थिति से परिचित होना आवश्यक है। किस परिस्थिति में, किन मनोदशाओ से विवश होकर कवि का प्रकृत सगीत प्रवाहित हुआ होगा, यह ज्ञात हो जाने पर काव्य की आत्मा तक पहुँचा जा सकता है। करुणा से द्रवित वाल्मीकि के 'मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा.' की अन्तरात्मा तक जाने के लिए क्रौंचवध की कथा जानना अनिवार्य है। ससार के विशिष्ट कवियो की जीवनानुभूति उनके काव्य में मुखरित हुई। गेटे के जीवन का सम्पूर्ण सघर्ष ही फाउस्ट का चरित्र वनकर आया[४]। होलब्रुक जैकसन ने

---

४. "Goethe's attainment of life-wisdom was...the issue of a long and bitter struggle."
Goethe by Robertson, page 320.

अपनी पुस्तक 'पाठक तथा आलोचक' मे कहा है कि 'आलोचक अथवा पाठक किसी कृति का पूर्ण आनन्द तभी ले सकते है, जब उस कवि की अनुभूति अथवा काव्य मे उसकी छाया का आभास प्राप्त हो सके[५]।' प्रसाद के युग के साथ उनके जीवन और व्यक्तित्व का अध्ययन कृतित्व को भली भाति समझने के लिए आवश्यक है।

शैशव—

कवि प्रसाद के पितामह बाबू शिवरतनसाहु काशी के अत्यन्त प्रतिष्ठित नागरिक थे। वे तम्बाकू के भारी व्यापारी थे और एक विशेष प्रकार की सुरती बनाने के कारण 'सुंघनीसाहु' के नाम से विख्यात हुए। धन-धान्य से परिवार भरा पूरा रहता था। कोई भी धार्मिक अथवा विद्वान काशी में आता तो साहु जी उसका बडा स्वागत करते। काशी की जनता उनकी दानशीलता से लाभान्वित हो रही थी। उनके यहा प्राय कवियो, गायको, कलाकारो की गोष्ठी होती रहती। वे इतने अधिक उदार थे कि मार्ग में बैठे हुए भिखारी को अपने वस्त्र उतारकर दे देना साधारण सी बात समझते थे। लोग उन्हें 'महादेव' कहकर प्रणाम करते थे। कवि के पिता बाबू देवीप्रसाद साहु ने पितामह का-सा ही हृदय पाया था।

ऐसे वैभवपूर्ण और सर्वसम्पन्न वातावरण में प्रसाद का जन्म माघ शुक्ल दशमी, १९४६ वि० को हुआ। उस समय व्यापार अपने चरम उत्कर्ष पर था, किसी प्रकार का कोई अभाव न था। तीसरे वर्ष में केदारेश्वर के मन्दिर में प्रसाद का सर्वप्रथम क्षौर सस्कार हुआ। उनके माता-पिता तथा समस्त परिवार ने पुत्र के लिए इष्टदेव शकर से बडी प्रार्थना की थी। वैद्यनाथधाम के झारखण्ड से लेकर उज्जयिनी के महाकाल तक के ज्योतिर्लिगो की आराधना के फल-स्वरूप पुत्ररत्न का जन्म हुआ था। इस ईश्वरीय कृपा का स्मरण रखने के लिये शैशव में उन्हे 'झारखण्डी' कहकर पुकारा जाता था। कुछ समय अनन्तर ही वे वैद्यनाथधाम ले जाये गये, जहा इनका नामकरण सस्कार हुआ। कवि के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना पर प्रकाश डालते हुए उनके मित्र डा० राजेन्द्र नारायण शर्मा लिखते है, "अन्नप्राशन सस्कार के बाद उसी पूजा-विधि में पुस्तक, वही, मसिपात्र, लेखनी, तथा बच्चे के मन को लुभानेवाली अन्य बहुत-सी सप्तरगी वस्तुओ तथा खेलने के योग्य लाल-पीली पदार्थावलियो के बीच शिशु प्रसाद को अपने मन की चीज चुन लेने के लिए छोड दिया गया। लोगो के

---

५. Readers and Critic—Holebrook Jackson

आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब सब कुछ छोड प्रसादजी ने केवल लेखनी उठा ली और उसी से खेलना वरण किया[५]।" शिव के प्रसादस्वरूप इस महान् कवि का जन्म हुआ था। जीवन के प्रथम चरण में ही अपने पाणि-पल्लवो में लेखनी उठा लेना उसके आगामी विकास का परिचायक है। आज उसकी सार्थकता मे किसे सन्देह हो सकता है। पाच वर्ष की अवस्था में सस्कार सम्पन्न कराने के लिए प्रसाद को जौनपुर तथा विन्ध्याचल ले जाया गया। वहा की प्रकृति के उन्मुक्त सौन्दर्य ने कवि की शैशवकालीन स्मृतियो पर अपनी छाया डाल दी। सुन्दर पर्वत श्रेणिया, बहते हुए निर्भर, प्रकृति का नव-नव रूप, सभी ने उनके नादान हृदय मे कुतूहल और जिज्ञासा भर दी। 'अहरौरा के आस-पास की पहाडियो में, उनकी सन्धि से सवेग भागती हुई जल की छोटी-छोटी धाराओ ने, उनके कल-कल, छल-छल सगीत ने हृदय में शीतल अनुभूति की उन्मेप क्रीडा को जन्म दिया।' 'चित्राधार' की रचनाओ मे प्रकृति का ही स्वरूप अकित है। झरना के सजीव चित्र की प्रेरणा कवि को शैशव काल मे ही प्राप्त हुई। प्रकृति का प्रथम दर्शन आगे चलकर मानवीय भावनाओ के तादात्म्य से एक स्वस्थ जीवन दर्शन मे परिवर्तित हो गया, जहा प्रकृति और मानव मे कोई अन्तर नही रह जाता। प्रकृति का यह प्रथम दर्शन कवि के समस्त साहित्य में क्षीण रेखा की भाति दिखायी देता है। आरम्भ मे ही मस्तिष्क पर इन दृश्यो का प्रभाव पडा। इस प्रकार पाचवे वर्ष मे कवि ने दो छोटी-छोटी यात्राएँ की, जिनका सम्बन्ध उनके सस्कारो से है। जौनपुर मे शीतला का एक सिद्ध पीठ है, वही वे ले जाये गये। उसी के साथ वे विन्ध्याचल भी गये। उसका सौन्दर्य भी वे न भूल सके।

नौ वर्ष की अवस्था मे प्रसाद ने एक लम्बी यात्रा की। चित्रकूट, नैमिपारण्य, मथुरा, ओकारेश्वर, धाराक्षेत्र, उज्जैन तक का पर्यटन किया। इस अवसर पर परिवार के अधिकाश व्यक्ति भी साथ थे। चित्रकूट की पार्वतीय शोभा, नैमिपारण्य का निर्जन वन, मथुरा की वनस्थली तथा अन्य क्षेत्रो के मनोरम सौन्दर्य पर वे अवश्य रीझ उठे होगे। इसी समय उन्होने 'कलाधर' उपनाम से सर्वप्रथम एक कविता रचकर अपने गुरु 'रसमयसिद्ध' को दिखायी —

हारे सुरेस रमेस धनेस, गनेसहुँ सेस न पावत पारे।
पारे है कोटिक पातकी पुंज, 'कलाधर' ताहि छिनो छिच तारे॥
तारेन की गिनती सम नाहिं, सुबेते तरे प्रभु पापी बिचारे।
चारे चले न बिरंचिहि के, जो दयालु ह्वै संकर नेक निहारे॥

---

५. 'प्रसाद' का बचपन—'सुमित्रा', जुलाई, १९५१

कवि के विशाल भवन के सम्मुख ही एक शिवालय है, जिसे उनके पूर्वजों ने वनवाया था। उनका परिवार शैव था। अनेक अवसरो पर मन्दिर में नृत्य हुआ करते थे। बालक प्रसाद भी भगवद्भक्ति मे तन्मय होकर भक्तो का स्तुति-पाठ करना देखते रहते थे। प्रात काल वातावरण को मुखरित कर देनेवाली घटे की ध्वनि उनके लिए उस समय केवल एक जिज्ञासा, कूतूहल का विषय थी। मन्दिर के पास ही एक शैवध्वज जी भी साक्षात् शिव का रूप बनाकर रहते थे। कवि भी अपनी शिशु-जिज्ञासा लेकर उनसे अनेक प्रश्न करता था। उन्होने स्वय एक स्थान पर लिखा है, "युवक यह जानकर कि राजकीय शिवालय में प्राभातिक पूजन हो रहा है, उसी ओर चला। शिवालय के सुविस्तृत प्रागण में मनोहर मन्दिर मध्यवर्ती मूर्ति को प्रणाम कर युवक भी आनन्द से अपनी वीणा बजाकर गाने लगा —

'हे शिव धन्य तुम्हारी माया
जेहि बस भूलि भ्रमत हैं सब ही, सुर अरु असुर निकाया।'

—चित्राधार, 'वभ्रुवाहन', पृष्ठ २९

जीवन के आरम्भ मे शिव की भक्ति करनेवाला कवि अन्त में शैव-दर्शन से प्रभावित हुआ।

आरम्भ से ही प्रसाद की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। पिता ने घर पर सस्कृत, हिन्दी, अँग्रेजी, फारसी आदि भाषाओ के पढाने की व्यवस्था कर दी। कवि की प्रारम्भिक शिक्षा प्राचीन परिपाटी के अनुसार हुई। घर पर उन्हे कई अध्यापक पढाने आया करते थे। स्वर्गीय सोहिनी लाल जी 'रसमय-सिद्ध' उनके प्रधान गुरु थे। वे वाद में स्थानीय क्वीन्स कालेज जाने लगे। प्रसादजी के मित्र श्री विश्वम्भरनाथ जिज्जा का कथन है कि "आठ-नौ वर्ष की अवस्था में ही उन्होने अमरकोश तथा लघुकौमुदी कठस्थ कर ली थी[७]।" निश्चय ही यह कवि की असाधारण वुद्धि और प्रतिभा का परिचायक है। आठ वर्ष की अवस्था में गेटे ने भी लेटिन में एक निवन्ध लिखकर लोगो को आश्चर्य-चकित कर दिया था[८]। मिल्टन ने भी दस-पन्द्रह वर्ष की अवस्था तक वहुत अध्ययन कर लिया था। यूनानी और लेटिन लेखको की एक वडी लम्वी सूची

---

७ 'सगम', १८ फरवरी, १९५१, पृष्ठ ४१

८ Living biographies of famous men—page 105.

प्रस्तुत की जाती है, जिसे उसने युवावस्था के पूर्व ही पढ लिया था[१]। इस प्रकार प्रसाद का अध्ययन महाकवियो की भाति सुन्दर रीति से आरम्भ हुआ।

परिवर्तन—

प्रसाद लगभग बारह वर्ष के ही थे कि १९०१ ई० में उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। घर का समस्त भार बड़े भाई शम्भुरतन पर आ पडा। वे स्वतन्त्र इच्छा के निर्भीक व्यक्ति थे। हृष्ट-पुष्ट शरीर के साथ ही उन्हे पहलवानी का शौक था। सायकाल अपनी टमटम पर घूमने निकल जाते। रोब के कारण यदि कोई दौड लगाता, तो उसे पछाड देते। उनका ध्यान व्यवसाय की ओर अधिक न था। धीरे-धीरे उसे हानि पहुँचने लगी और पूर्वजो की थाती को सभालना भी कठिन हो गया। शम्भूरतनजी अन्य व्यक्तियो पर बहुत अधिक विश्वास रखते थे, और उन्हे अन्त में धोखा हुआ।

प्रसादजी के पिता देवीप्रसाद की मृत्यु के पश्चात् ही गृहकलह आरम्भ हो गया। कुछ समय तक प्रसाद की माता ने इसे रोका, पर वह उग्र रूप धारण करता गया। शम्भुरतनजी ने अपनी उदारता और सहृदयता से उसे कम करने का पूर्ण प्रयत्न किया, किन्तु वह बढता ही गया। अन्त में प्रसाद के चाचा और बडे भाई मे मुकदमेबाजी हुई। यह मुकदमा लगभग तीन-चार वर्षो तक चलता रहा। अन्त मे शम्भुरतनजी की विजय हुई। समस्त सम्पत्ति का बटवारा हो गया। इस बीच ध्यान न देने के कारण सारा पैतृक व्यवसाय भी चौपट हो गया। अन्य व्यक्ति लूट मचा रहे थे। जब शम्भुरतनजी ने बटवारे के पश्चात् अपने घर में प्रवेश किया, तब वहा भोजन आदि के पात्र तक न थे। इस अवसर पर प्रसादजी ने अपने एक मित्र से बताया था कि जब कभी घर मे कोई काम-काज होता था, तो दूकान का टाट उलट दिया जाता था। उसके नीचे बिखरी हुई पूजी मात्र से वह कार्य भली भाति सम्पन्न हो जाता था। जिस घर मे रजत पात्रो मे भोजन किया जाता था, उसी मे शम्भुरतनजी ने एक नवीन गृहस्थी का निर्माण किया।

---

१. "In the art of education he performed wonders; and a formidable list is given of authors, Greek and Latin, that were read by youth..." —Lives of English Poets by S. Johnson.-Vol. 1, page 62.

दूकान के साथ ही लाखो के ऋण का भार भी शम्भुरतनजी पर आ पडा। एक-एक करके सम्पत्ति विक्रय की जाने लगी। वनारस में चौक पर खडी हुई भारी इमारत भी बेच देनी पडी। प्रसाद इस पतन को देख रहे थे, मानो मनु स्वय इस आकस्मिक परिवर्तन से डोल उठा हो। कवि ने स्वर्ग के विगत वैभव का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह उसकी अनुभूति पर निर्भर है। इसी कारण उसमें एक आन्तरिक सत्य है, एक ताप है। प्लेटो भी कवि को प्रेरणा-मय प्राणी मानता है[१०]। इन्ही झझावतो के बीच प्रसाद की कालेज-शिक्षा भी छूट गयी। वे आठवें तक ही पढ सके। सम्भवत विश्व के समस्त कलाकारों के साथ यही हुआ है। रवीन्द्र, कालिदास, होमर, दान्ते, शेक्सपियर जीवन की पाठशाला में पढते थे। उन्होने ससार की महान पुस्तक का अध्ययन किया था। अब प्रसादजी को प्राय नारियल बाजारवाली दूकान पर वैठना पडता था। घर पर अब भी शिक्षा का क्रम बराबर चल रहा था। अपने गुरु रसमयसिद्ध से उन्हे उपनिषद्, पुराण, वेद, भारतीय दर्शन का अध्ययन करने की प्रेरणा मिली। प्रसाद का समस्त साहित्य इसी विस्तृत अध्ययन और चिन्तन से अनुप्राणित है।

वनारस चौक से दालमडी में जो गली दाई ओर मुडती है, उसी में लगभग चार हाथ पर नारियल बाजार में सुघनीसाहु की दूकान थी। उसी पर प्रसाद को वैठना पड़ता। शम्भुरतनजी शरीर की ओर विशेष ध्यान देते थे। स्वय प्रसादजी भी खूब कसरत करते थे। वे उन इने-गिने साहित्यकारो में थे, जिन्हें एक स्वस्थ शरीर मे एक स्वस्थ मस्तिष्क प्राप्त हुआ था। प्रसादजी के पास सौन्दर्य, धन और यश तीनो ही थे। इसी समय की एक स्मरणीय घटना है। एक स्थान पर शम्भुरतनजी के लिए मारण जाप हो रहा था। सौभाग्यवश जहा यह जाप हो रहा था, वही पर एक दरजी रहता था, जिसका नाम भी यही था। अपने नाम का मारण जाप सुनकर उसे वडा क्रोध आया। वह उन लोगो को मारने दौडा। इस प्रकार जाप भग हो गया। सयोगवश वह दरजी शम्भुरतनजी के कपडे भी सिलता था। उसने जाकर अपने स्वामी को सब समाचार सुनाया। प्रसादजी ने उस अवसर पर कहा था, "भाग्य के अनुकूल सभी कुछ होता है[११]।"

---

१०. "All good poets compose their beautiful poems not by art, but because they are inspired" —Plato Selected Passages by R W Livingstone, page 186

११ श्री रत्नशकर जी से वार्त्तालाप।

अब प्रसादजी का परिवार एक वैभवशाली परिवार न रह गया था। ऋण में सभी कुछ समाप्त हो गया था। किसी प्रकार शम्भुरतनजी बिखरे हुए व्यापार को सुधारने का प्रयास कर रहे थे। इसी समय प्रसादजी की माता का देहान्त हो गया। कवि माता के पुनीत दुलार और स्नेह से भी वंचित हो गया। प्रसाद ने जीवनपर्यन्त माता का स्नेह भाभी को दिया। भाभी आज भी जीवित है। जब कोई इस महान कलाकार के जीवन के विषय में कुछ जानने का प्रयास करता है, तो उनकी आखो में आसू छलक आते है, और वे केवल यही कहती है कि 'मेरे लिए तो वह केवल शकर था . . . ।' सघर्षो के बीच भी प्रसादजी का अध्ययन चल रहा था। इसी बीच उन्होंने ब्रजभाषा मे सवैया, घनाक्षरी आदि लिखना आरम्भ कर दिया था। वे प्राय दूकान की वही पर बैठे-बैठे लिखा करते थे। एक दिन शम्भुरतनजी को ज्ञात हुआ कि प्रसाद कविता लिखते है। उन्होंने कहा, 'हमें अपना व्यापार सम्भालना है, शकर। बाप-दादो के डीह को बचाना है। देखो, तुम्हारा इस अवसर पर कविता आदि करना अच्छा नही लगता..... ।' पर कलाकार के प्राणो का नैसर्गिक स्रोत रोका नही जा सकता। वह एक ऐसी निर्मल स्रोतस्विनी है, जो जीवनपर्यन्त झरझर बहती रहती है। वे लिखते रहते और यदि हिसाब-किताब की वही कम हो जाती, तो बहाना करते कि रद्दी नही रह गई थी, इसलिए उसी की पुडिया बनाकर दे दी। शम्भुरतनजी ने हिन्दी के कवियो की दुर्दशा देखी थी। वे अनुभवी व्यक्ति थे। उनकी धारणा थी कि भावुकता एक महान अभिशाप है। जब कभी कविता के कारण शम्भुरतनजी प्रसाद को मीठी झिडकी दिया करते, तो प्रसादजी की भाभी सदा कवि की रक्षा करती। इस प्रकार आरम्भ से ही प्रसाद ने नारी को श्रद्धा के रूप मे देखा था। वे सदा उसे एक 'चेतना का वरदान' मानते है। शम्भुरतनजी चाहते थे, पूर्वजो के विगत वैभव को, नव-जीवन प्रदान करना। किन्तु कठोर परिश्रम करके भी वे अपना स्वप्न पूरा न कर सके। उनका शरीर जर्जर हो गया था, और माता की मृत्यु के लगभग दो ही वर्षो पश्चात् उनका स्वर्गवास हो गया।

उत्तरदायित्व के दिन—

प्रसाद की अवस्था इस समय केवल सत्रह वर्ष की थी। उन्हे जीवन का अधिक अनुभव न था। वे अपनी भावुकता का आनन्द ही ले रहे थे कि उन पर यह वज्रपात हुआ। इस प्रकार केवल पाच-छ. वर्षो के भीतर ही प्रसाद ने तीन अवसान देखे—पिता, माता और भाई। स्नेह-देवालय के महान शृग गिर गये। वे अकेले ही रह गये, निस्सहाय। ऐसे सकटकाल में भारतीय दर्शन ने

प्रसादजी को नवीन प्रेरणा दी। सम्भवत कामायनी का 'शक्तिशाली हो विजयी बनो' उनके मस्तिष्क में उस समय गूज उठा होगा। उनके चारो ओर विषमताएँ खेल रही थी। लोग उन्हें अल्पावस्था का जानकर लूट लेना चाहते थे, पर उनके हाथो में यश था। उन्हे स्वय अपना विवाह भी करना पडा। इसके अनन्तर उनके दो और विवाह हुए। उनकी तीसरी पत्नी अब भी जीवित है। वास्तव में प्रथम पत्नी के निधन के पश्चात् वे स्वय विवाह नही करना चाहते थे, किन्तु अपनी भाभी के अनुरोध से उन्हें करना पडा। इसी अनुरोध से उन्होने तीसरी बार भी विवाह किया। इस प्रकार कवि ने अपने छोटे-से जीवन में कितनी बार अपने स्नेह को खण्डित होते देखा था। नियति के निर्मम विधान के सम्मुख इसी कारण वे जीवन-भर झुके रहे। जीवन की इन कठोरताओ ने उन्हे नियति में विश्वास करने के लिए विवश कर दिया था। इसी अवसर पर प्रसादजी मे भक्ति का स्रोत भी उमड आया था। वे घटो शिवालय में पूजन करते। इस पूजन के उद्देश्य के विषय में उन्होने स्वय लिखा है, "निराशा में, अशान्ति में, सुख में, उस अपूर्व सुन्दर चन्द्र की भक्ति-रूपी किरणें तुम्हें शान्ति प्रदान करेंगी। और यदि तुम्हें कोई कष्ट हो, तो उस अशरण-शरण-चरण में लोटकर रोवो, वे अश्रु तुम्हे सुधा के समान सुखद होगे और तुम्हारे सब सन्ताप को हर लेंगे।" (चित्राधार, 'भक्ति' लेख, पृष्ठ १३७)।

सत्रह वर्ष की अल्प आयु में ही एक भारी व्यवसाय और परिवार का उत्तरदायित्व भावुक प्रसाद पर आ पडा। वे अपने पूर्वजो के गौरव को एक बार पुन: स्थापित करना चाहते थे। भावुकता और ज्ञान ससार की कलुषता से आजीवन उनकी रक्षा करते रहे। प्रसादजी ने अपने व्यवसाय को देखना आरम्भ किया। बाहर से जब कभी कोई व्यापारी आता, तो वे स्वय उससे बातचीत करते। इत्र आदि बनते समय वे जाकर उसका पाग देख लिया करते और इसमें तो कन्नौज के व्यापारियो को भी मात कर देते थे। अपने पैतृक व्यापार को सभालने का उन्होने प्रत्येक प्रयास किया। गृह-कलह के पश्चात् व्यापार की दशा बडी जर्जर हो गयी थी। सुघनीसाहु का काशी में अब भी वही नाम था, किन्तु व्यवसाय की दृष्टि से निस्सन्देह वह पीछे था। प्रसादजी ने आजीवन अपने विगत वैभव को पाने का प्रयास किया, और अन्त मे सभी कुछ नियति के भरोसे पर छोड दिया। उन्होने धीरे-धीरे समस्त ऋण चुका दिया था। ऋण को वे कुम्भीपाक की नरक कल्पना की भाति मानते थे, जो मनुष्य की समस्त चेतना को निचोड लेता है। वह अत्यन्त दुर्दान्त स्थिति है। लगभग १९३०-३१ मे वे ऋणमुक्त हो सके थे।

बडे भाई की मृत्यु के पश्चात् ही उन्होने अपने जीवन में अनेक परिवर्तन

कर दिये थे । किसी प्रकार का कोई व्यसन उन्हे नही था । प्रात काल उठकर वे गगा नदी की ओर ही भ्रमण के लिए निकल जाते थे । यदि उतना समय न होता, तो वे नियावाग तक ही चले जाते । वहा से लौटकर कसरत करने के पश्चात् ही नियमित रूप से लिखने वैठ जाते । स्नान-पूजन के पश्चात् दूकान चले जाते । यहा पर भी रसिको की मडली जमा रहती । इसी दूकान के सामने प्रसादजी ने एक खाली वरामदा मित्रो के वैठने के लिए ले लिया था । नित्यप्रति सन्ध्या समय यही पर वैठक होती थी । अच्छा खासा दरवार जमा रहता था । दूकान से लौटकर वे रात को देर तक लिखा करते थे । उनकी अधिकाश साहित्य-साधना ससार के प्रमुख कलाकारो की भाति रजनी के प्रहरो में ही निर्मित हुई ।

जैसा कि उनकी सर्वप्रथम रचना में, जो उन्होने ९ वर्ष की अवस्था में की थी, स्पष्ट है कि आरम्भ मे उनका उपनाम 'कलाधर' था । अव तक चली आती हुई रीतिकालीन परिपाटी का ही यह प्रभाव था, जो वाद में समय की गति के अनुसार समाप्त हो गया । वडे भाई के समय मे लुक-छिपकर होने-वाली कविताधारा अव अपनी स्वच्छन्द धारा मे फूट पडी थी । लगभग वीस वर्ष तक की सभी गद्य-पद्य रचनाएँ 'चित्राधार' मे सगृहीत है ।

आरम्भिक प्रेरणा—

कवि-जीवन के आरम्भ में जिन व्यक्तियो से उन्होने विशेष प्रेरणा ली, उनमे एक उनके पडोसी मुशी कालिन्दीप्रसाद और दूसरे रीवानिवासी श्री रामानन्द थे । मुशी कालिन्दीप्रसाद उर्दू-फारसी के अच्छे विद्वान थे । प्रसाद ने इन विषयो के अध्ययन मे उनसे पर्याप्त सहायता ली थी । मुशी-जी प्रायः उन्हे अच्छे-अच्छे शेर सुनाया करते थे । उनकी कई पक्तिया तो प्रसादजी को अत्यधिक प्रिय थी ।

हां, रुकते-रुकते रुकेंगे आसू
ये रोना है, कुछ हँसी नहीं है ।[12]

राय कृष्णदासजी ने इन पक्तियो मे उलट-फेर कर दिया है । वास्तव में ये इस प्रकार है—

थमते थमते थमेंगे आंसू
रोना है, कुछ हँसी नहीं है—मीर
शेरो सुखन, पृष्ठ ८२

* * *

१२. 'नई धारा' में 'प्रसाद की याद' शीर्षक राय साहब का लेख ।

हमने देखी है किसी शोख की मस्ती भरी आख ।
मिलती जुलती है छलकते हुए पैमाने से ।।

* * *

मुहब्बत में नहीं है फर्क जीने और मरने का ।
उसी को देखकर जीते है, जिस काफिर पे दम निकले ।

—गालिब

इसी प्रकार सूफी कवि उमर खैय्याम, रूमी, हाफिज तथा उर्दू के जौक, सौदा, गालिब आदि के अनेक सुन्दर आशार मुशीजी से प्रसाद को सुनने को मिलते थे। सूफी दर्शन की ओर अभिरुचि उत्पन्न कराने का श्रेय भी उन्ही को है। प्रसादजी को इसी प्रकार उमर खैय्याम की एक रुबाई विशेष प्रिय थी —

"The Ball no Question makes of Ayes and Noes,
But Right or Left as strikes the Player goes,
And He that toss'd Thee down into the Field,
He knows about it all He knows—HE knows !"

रामानन्दजी कवि के अनन्य मित्र थे। अपना 'उर्दूशतक' उन्होनें प्रसादजी के कहने से प्रकाशित कराया था। वह भारतजीवन प्रेस में १९२३ ई० में मुद्रित हुआ था। उसमें सौ कवित्त और सवैये थे, जिनमें भावो की तन्मयता और अनुभूति की सत्यता है। उर्दू शैली में होने के कारण उनमे सुन्दर व्यजना भी है। ध्यान देने पर प्रसाद के काव्य में 'उर्दूशतक' के भावो की छाया प्राप्त हो जाती है। तुलना के लिए उर्दूशतक और प्रसाद की पक्तिया ही पर्याप्त होगी :—

उर्दूशतक— वुलवुल के रोने को न जाने सैयाद कदर
आशिक ही जाने, क्या जल्लाद उसे जाने है ।

* * *

आंसू— बेसुध जो अपने सुख से
जिनकी है सुप्त व्यथाएँ
अवकाश भला है किन को
सुनने को करुण कथाएँ

* * *

उर्दूशतक— लाख समझावे कोई आखों में चुभी है जाकी
ताकी कहीं सूरत उतारे से उतरती है।

* * *

आसू— अब छुटता नहीं छुडाये
रँग गया हृदय है ऐसा ।

* * *

उर्दूशतक— हाथ किसी के न होते हबीब हैं ।

* * *

लहर— पागल रे वह मिलता है कब !

इस प्रकार रामानन्द के जीवन और कविता दोनो से ही प्रसाद ने अपने यौवन के प्रथम प्रहर मे प्रेरणा ग्रहण की थी ।

प्रसादजी की कविता का आरम्भ ब्रजभाषा से ही हुआ था । उनकी सर्व-प्रथम रचना 'भारतेन्दु' पत्र में जुलाई १९०६ ई० मे प्रकाशित हुई थी । उस समय ब्रजभाषा का ही प्रचार था । साथ ही उसके विरोध मे खडी बोली भी धीरे-धीरे आ रही थी —

सावन आये वियोगिन को तन
आली अनंग लगे अति तावन ।
तावन होय लगी अबला
तड़पै जब बिज्जु छटा छवि छावन ॥
छावन कैसे कहूँ मैं विदेस
लगे जुगनू हिय आग लगावन ।
गावन लागो मयूर 'कलाधर'
झाँपि कै मेघ लगे बरसावन ॥

ब्रजभाषा की रीतिकालीन शैली का स्पष्ट प्रभाव इन रचनाओ में दिखायी पडता है ।

आरम्भिक काव्य—

हिन्दी में प्रसाद का आगमन एक सर्वथा नवीन दिशा का सूचक था। इन्दु कला २, किरण १, श्रावण शुक्ल २, १९६७ वि० में उन्होने अपने लेख 'कवि और कविता' के अन्त में लिखा :—

"शृगार रस की मधुरता पान करते-करते आपकी मनोवृत्तिया शिथिल तथा अकुला गयी है । इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी, अपने को भुला देनेवाली कविताओ की आवश्यकता है । अस्तु, धीरे-धीरे जातीय सगीतमयी, वृत्तिस्फुरणकारिणी, आलस्य को भंग करनेवाली, आनन्द बरसाने-वाली, धीर, गम्भीर, पदविक्षेपकारिणी, शान्तिमयी कविता की ओर हम लोगो

को अग्रसर होना चाहिए। अब दूर नही है, सरस्वती अपनी मलिनता को त्याग रही है और नवल रूप धारण करके प्राभातिक ऊषा को लजावेगी। एक बार वीणाधारिणी अपनी वीणा को पचम स्वर में फिर ललकारेंगी। भारत की भारती फिर भी भारत ही की होगी।"

प्रसादजी का उस समय बडा विरोध हुआ। स्व० लाला भगवानदीन ने 'उर्वशी' चम्पू की कटु आलोचना 'लक्ष्मी' में प्रकाशित की थी। उन्होंने लिखा, 'साहुजी साहित्य-प्रेमी जान पडते है, परन्तु हमें खेद से कहना पडता है कि इस चम्पू की रचना में उन्हे सफलता नही प्राप्त हुई। कोई-कोई सस्कृत कविता का अनुवादमात्र है। हम साहुजी को सलाह देते है कि ऐसे ग्रन्थो के प्रकाशन में व्यर्थ व्यय न किया करें।' इसी प्रकार 'प्रेमराज्य' के विपय में उन्होने लिखा, "काव्य बिलकुल नीरस और अनेक दोषों से पूर्ण है। एक भी छन्द यतिभग दोष से रहित नही है।"

उस काल के सर्वोपरि आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद का विरोध किया। उसे 'अभिव्यजना की एक शैली मात्र' कहकर टाल देने का प्रयास किया। छायावाद केवल बँधे हुए क्षेत्र के भीतर चलनेवाला काव्य माना गया[१३]। उसमें अनुभूति की सचाई तक मानने के लिए कोई तैयार न था। प्रसादजी ने इस विरोध में कभी भी अपना मानसिक सन्तुलन नही खोया। वे बराबर लिखते ही गये। "एक महाशय ने कह दिया कि प्रसाद-जी तो बाबा आदम के जमाने के चरित्रो को अपने नाटको में रखते है, गडे मुर्दे उखाडते है, तो दूसरे महाशय नयी भाषा मे कहने लगे, प्रसादजी तो 'एस्के-पिस्ट' है, जीवन से भागते है। एक तीसरे महाशय रहस्यवाद के नाम से ही इतना घबडा उठे कि प्रसादजी का सारा रहस्यवाद उन्हे रूढिवाद जँचने लगा। एक चौथे महाशय कुछ इधर-उधर की टोह लगाकर कहने लगे, प्रसादजी के साहित्य में मध्यकालीन विलास और खुमारी ही उन्हें मिलती है। बस समालोचनाओ का ताता इसी तरह बध गया और लोग मनमानी हाकने लगे[१४]।"

गतिशील चरण—

प्रसादजी ने सभी आरोपो का उत्तर सदा अपने क्रियाशील और गतिमान साहित्य से दिया। अनेक प्रकार की आवाजें उनसे टकराकर लौट गयी। वे निरन्तर काम करते गये, और एक दिन साहित्य के महारथियो को उनके सम्मुख

---

१३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ५८२।
१४. जयशंकर प्रसाद, ले० नन्ददुलारे वाजपेयी : पृष्ठ ३, ४।

झुकना पडा। जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है, लाला भगवानदीन की कटु आलोचना के उत्तर में उन्होंने 'चम्पू' पर एक लेख लिखा था। यह 'इन्दु' कला २, किरण १, श्रावण शुक्ल २, सवत् १९६७ मे प्रकाशित हुआ था। इसमें प्रसादजी ने साहित्य दर्पण के "दृश्य श्रव्यत्व भेदेन पुन काव्यम् द्विधामतम्" से लेकर, नरहरि चम्पूकार, साहित्याचार्य अम्बिकादत्त जी, अग्निपुराण, आदि अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये। इस प्रकार उन्होने स्वय अपने साहित्य की मान्यताएँ आलोचको के सम्मुख रक्खी। जव लाला भगवानदीन की आलोचना का उत्तर 'इन्दु' के सम्पादक, प्रसादजी के भाजे अम्बिकाप्रसाद गुप्त ने कला १, किरण ६, पौष सम्वत् १९६६ में 'समालोचना की समालोचना' के द्वारा दिया और कुछ कटु शब्द भी कहे, तो प्रसादजी ने उन्हे मना किया। हिन्दी के लगभग छ· चम्पू की तालिका भी उन्होने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रूप में प्रस्तुत की। प्रसादजी ने साहित्य के विषय में अनेक लेख लिखकर अपने विचारो का प्रतिपादन किया। वास्तव मे वे साहित्यिक दलवन्दी से सर्वथा दूर रहकर कार्य करना चाहते थे। वे सच्चे अर्थ मे साहित्य-साधक थे। नियमित रूप से लिखते रहना ही उनका काम था। उस समय उनके विरोध को देखकर कई मित्रो ने उनसे कहा कि आप आज्ञा दे तो लिखू, तो उन्होने हँसकर कहा, "समय स्वयं सव प्रकट कर देगा।" और वास्तव मे यही हुआ भी। 'कामायनी' कवि के निधन के पश्चात् पुरस्कृत हुई थी।

प्रसाद के साथ ही निराला और पन्त भी काव्य के क्षेत्र मे पदार्पण कर रहे थे। इनके स्वर मे द्विवेदी-युग की सीधी-सादी परिपाटी के प्रति विद्रोह की एक भावना थी। जीवन की बढती हुई अनेक विषमताओ और जटिलताओ के बीच वे अपनी कविता को स्थान देना चाहते थे। इसके लिए उन्होने रीति और भक्ति दोनो को त्याग दिया। रीतिकाल की समस्त खुमारी राजदरबारो के ही उपयुक्त थी। श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, रत्नाकर, हरिऔध आदि द्विवेदी-युग के प्रमुख कवि भी समय की गति के साथ शीघ्रता से नही चल रहे थे। श्रीधरजी ने गोल्डस्मिथ के हरमिट और ट्रैवलर का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया था। गुप्त जी का काव्य वैष्णव धर्म, जातीयता और राष्ट्रीयता से अधिक प्रभावित था। वे जीवन की सीधी-सादी सरल पगडडी पर चले जा रहे थे। हरिऔध जी में करुणा की मात्रा अधिक थी। रत्नाकर जी अलकार के प्रेमी थे। इस प्रकार खडी बोली के इस युग ने यद्यपि रीतिकाल के विरुद्ध एक आन्दोलन अवश्य कर दिया था, किन्तु अव भी वह समय से पीछे था। समय की सम्पूर्ण क्रान्ति का स्वर उसमे न था। इन्ही के साथ यह भी स्वीकार करना होगा कि छायावाद को जो सफलता प्राप्त हुई, उसकी पृष्ठभूमि द्विवेदी-

युग में ही आरम्भ हो चुकी थी। वास्तव में छायावाद ने उस युग की समस्त वस्तुओ को ग्रहण कर लिया, किन्तु इतने से ही सन्तुष्ट न रह सका। उसका चरण और आगे बढा।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मई १९२७ में सरस्वती में एक लेख लिखकर पंत की 'वीणा' की आलोचना 'कवि किंकर' नाम से की। पंत ने इसका उत्तर देते हुए द्विवेदीजी का उद्धरण प्रस्तुत किया, "व्यास, कालिदास के होते हुए तथा सूर, तुलसी के अमर काव्यो के रहते हुए भी ये कवि यशोलिप्सु, कवित्व-हता छायावाद के छोकडे, कमल यमल, अरविन्द मलिंद आदि अनोखे-अनोखे उपनामो की लागूल लगा, कामा-फुलिस्टापो से जर्जरित, प्रश्न आश्चर्य चिह्नो के तीरो से मर्माहत कभी गज गज की लम्बी, कभी दो ही अगुल की, टेढी-मेढी, ऊँची-नीची, यतिहीन, छन्दहीन, शब्द-अर्थ तुकशून्य काली सतरो की चीटियो की टोलिया तथा अस्पृश्य काव्य के गुह्यातिगुह्य घरौंदे बना, ताडपत्र, भोजपत्र को छोड बहुमूल्य कागज पर मनोहर टाइप में, अनोखे-अनोखे चित्रो की सजधज तथा उत्सव के साथ छपवाकर जो 'विन्ध्यस्तरेत् सागरम्' की चेष्टा कर रहे है, यह सरासर इनकी हिमाकत, धृष्ठता, अहमन्यता, तथा 'हम चुनी दीगरेनेस्त' के सिवा और क्या हो सकता है।"[१५] इतना ही नही, 'पल्लव' की भूमिका में आकर पंतजी ने अपने काव्य का व्यापक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया। यह वह समय था जब कि निराला की कविताएँ 'सरस्वती' से वापिस चली आती थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, महावीरप्रसाद द्विवेदी आदि एक प्रकार से इस नवीन क्रान्ति का स्वागत नही कर रहे थे। अतीत और परम्परा का मोह उन्हे उसे स्वीकार नही करने देता था। आई० ए० रिचर्ड्स की मनोवैज्ञानिक समालोचना के उद्धरण प्रस्तुत कर आचार्य शुक्ल जी ने छायावाद का विरोध किया। अपने लेख 'काव्य में रहस्यवाद' में उसे 'विलायती हवाओ की तरह बगला से आया हुआ बताया और नकल कहा[१६]। इतना ही नही, आगे चलकर उन्होने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी इन तीन क्रान्तिकारी कवियो को वह स्थान नही दिया, जो आज उन्हे प्राप्त है।

इस महान विरोध के कारण प्रसाद को स्वयं अपने काव्य की व्याख्या करनी पडी। उन्होंने अपने लक्ष्य, नीति और प्रवृत्ति को स्पष्ट रूप से जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। छायावाद की व्याख्या करते हुए प्रसाद ने कुछ

---

१५. 'भारतेन्दु'—भाग १, १९२८

१६ चिन्तामणि, दूसरा भाग, पृष्ठ १४५, १५५।

निवन्ध भी लिखे। काव्य को 'आत्मा की सकल्पात्मक मूल अनुभूति' वताया। रहस्यवाद को उन्होने पूर्णतया भारतीय सिद्ध किया। छायावाद के विषय मे कहा, 'ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ है[१७]'। इतना ही नही, उन्होने यह भी स्पष्ट कर दिया कि आधुनिक छायावाद केवल पश्चिम अथवा वगला का अनुकरण मात्र ही नही है। इस प्रकार एक महान कलाकार की भाति प्रसाद ने परिस्थिति से युद्ध किया। समय के विकास के साथ ही उनका यश भी वढता गया; किन्तु अँग्रेजी के कवि ड्राइडन की भाति उन्होने कभी उसका लाभ नही उठाया।

इन्दु—

प्रसाद का साहित्यिक जीवन 'इन्दु' पत्रिका से प्रकाश मे आ गया। 'इन्दु' मासिक पत्रिका थी। प्रसाद की योजना के अनुसार उसका समस्त कार्य होता था। इसके सम्पादक और प्रकाशक उनके भाजे अम्बिकाप्रसाद गुप्त थे। इसकी पहली सख्या, कला १, किरण १, शुक्ल श्रावण सवत् १९६६ (१९०९ ई०) मे प्रकाशित हुई। प्रथम सख्या में ही नवीन दिशा की सूचना थी। प्रस्तावना के अनुसार......"साहित्य का कोई लक्ष्य विशेष नही होता है और उसके लिए कोई विधि का निवन्धन नही है, क्योकि साहित्य स्वतन्त्र प्रकृति, सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है, वह किसी की परतन्त्रता को सहन नही कर सकता, संसार में जो कुछ सत्य और सुन्दर है, वही साहित्य का विषय है। साहित्य केवल सत्य और सौन्दर्य की चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और सौन्दर्य को पूर्ण रूप से विकसित करता है, आनन्दमय हृदय के अनुशीलन में और स्वतन्त्र आलोचना में उसकी सत्ता देखी जाती है।" इस प्रकार इन्दु के विकास के ही साथ कवि पथ पर अग्रसर होता चला गया।

सामाजिक जीवन—

प्रसादजी का जीवन एक साधक का-सा था। किसी प्रकार की सभा आदि में जाना उन्हे प्रिय न था। इसका तात्पर्य यह कभी नही है कि वे अभिमानी थे। वास्तव में वे सकोचशील व्यक्ति थे, प्राय. घर अथवा दूकान पर ही अपने मित्रो के साथ वैठकर वातचीत किया करते थे। नियमित रूप से साहित्यिक व्यक्ति उनके पास आ जाते और फिर रात को देर तक कार्यक्रम चलता रहता। प्रसाद दूसरो को प्राय: उत्साहित करते रहते। वे

---

१७. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध (२००१ वि०), पृष्ठ ९३।

मित्रो के साथ कभी-कभी नौका-विहार के लिए चले जाते और सारनाथ भी घूम आते। बैठे हुए व्यक्ति प्राय एक दूसरे से हास-परिहास किया करते और कभी-कभी बिलकुल दरबारी ढग के काम होने लगते। इस अवसर पर भी प्रसाद जी सदा मुसकराया करते। स्वय हास-परिहास अथवा बातचीत में वे प्राय खुलकर भाग नही लिया करते थे। भाग-बूटी नित्यप्रति ही छनती थी, किन्तु वे प्राय उसका सेवन नही करते थे। अधिक आग्रह करने पर हृदय की ओर सकेत करते हुए कहते, "सारी मस्ती इसमें भरी हुई है, अधिक लेना व्यर्थ है[१८]।" उनमें शिष्टता, और शालीनता अधिक थी। वे सयत स्वभाव के व्यक्ति थे और उनके मित्रो का कथन है कि प्राय मुखर नही होते थे। 'लहर' की पक्तियो में उनकी आन्तरिक अभिव्यक्ति है —

'क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ'

उनकी मौलिकता तो इसी से झलकती है कि उन्होने अपनी जो पुस्तकें काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को दी, उनमें "श्रीमती का० ना० प्र० स० को सादर समर्पित" लिखा हुआ है। इससे यह ज्ञात होता है कि प्रसादजी में हिन्दी और प्रचारिणी के प्रति कितनी आदर की भावना थी। वे इसी प्रचारिणी में घटो बैठकर अध्ययन करते थे। वे एक ऐसे वीतरागी की भाति थे, जो जीवन में रहकर भी उससे दूर रहता है। समृद्धिशाली वातावरण में रहते हुए भी उन्होने जीवन को खुली आखो से देखने और पढ़ने का प्रयास किया। उनका समस्त साहित्य इसी अनुभव पर आधारित है। जीवन और उनके साहित्य में इतनी अधिक निकटता है कि उन्हे एक दूसरे से अलग करके नही देखा जा सकता। एक महान कलाकार के साहित्य में उसका जीवन पग-पग पर बोलता है[१९]। इसी कारण दाण्डायन ऋषि, देवसेना देवी, विजया छलना, काशी का गुडा जैसे अनेक प्रकार के पात्र एक साथ उनके साहित्य मे मिल जाते हैं। गेटे से जब राजा ने युद्ध के गीत लिखने के लिए कहा, तो उसने उत्तर दिया था, "मैं उस वस्तु का वर्णन करने मे असमर्थ हूँ, जिसका अनुभव मैंने नही किया।' प्रसाद प्रत्येक वस्तु को बड़े ध्यान से देखते और सुनते थे।

---

१८ सगम 'प्रसाद स्मृति अक' १८ फरवरी १९५१, पृष्ठ ४२।

१९ "Shakespeare's plays are a reproduction, in miniature of the whole stupendous drama of life." –Living Biographies of Famous Men (1944). Ed. Henry Thomas, Danate Tomas, Page 80

उनके यहा आरम्भ से ही भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्ति आया-जाया करते थे। बाल्यकाल में ही वे ब्रजभाषा के कवियो की रचनाएँ ध्यान से सुनते थे। धर्म और दर्शन के विषय में होनेवाले वाद-विवाद के समय भी वे प्रस्तुत रहते। इस साहित्यिक और कलात्मक वातावरण के अतिरिक्त अन्य प्रकार के व्यक्तियो से भी उनका सम्पर्क यही हुआ। दूर-दूर से व्यवसायी आकर उनके घर पर ठहरते। इनमें नेपाल की तराई के व्यक्ति, कन्नौज के इत्रवाले तथा भारत के विभिन्न प्रान्तो के व्यापारी होते थे। मकान के सामने ही एक छोटा-सा घर था। उसी मे ये सब आगन्तुक ठहराये जाते थे। बालक प्रसाद का कुतूहल आरम्भ से ही इनसे अनेक प्रकार के प्रश्न किया करता था। प्रसादजी जब बड़े हुए, तब वे विभिन्न विषयो का ज्ञान प्राप्त करने को सदा प्रयत्नशील रहते। अपनी प्रसिद्ध 'ममता' कहानी की प्रेरणा उन्होने सारनाथ के भग्नावशेषो से प्राप्त की थी। 'आधी' का रामेश्वर उनका एक मित्र था। उनकी सवेदना ने वास्तविकता से ही अपने पात्र प्राप्त किये है। काव्य की प्रेरणा उनके आन्तरिक जीवन से अधिक सम्बन्ध रखती है। अन्तर्मुखी होने के कारण वह उनकी जीवनानुभूति पर अधिक अवलम्बित है। नाटक, कहानी और उपन्यास मे भी उनका अनुभव झलक जाता है। इसी अनुभूति के कारण उनके ऐतिहासिक पात्र भी निर्जीव और जड नही प्रतीत होते। उनमे एक मांसलता है, जो पाठक को अपनी ओर बरबस ही आकृष्ट कर लेती है। प्रसाद का गुडा भी सहज ही हमारी सहानुभूति प्राप्त कर लेता है। प्राय प्रत्येक स्थिति और वस्तु का विश्लेषण करने के पश्चात् वे उसके आधार तक जाते थे। इसी कारण उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी केवल अध्ययनाश्रित न होकर, जीवन के अधिक निकट है। कहाकवि प्रत्यक्ष परोक्ष दोनो ही ज्ञान से रचना करते है।[२०]

अपने राजनीतिक जीवन मे प्रसाद पूर्ण देशभक्त थे। उन्होने स्वय राजनीति में सक्रिय भाग नही लिया, किन्तु अपने विचारो में वे पूर्णतया देशप्रेमी थे। काग्रेस की अपेक्षा गाधी जी के व्यक्तित्व ने उन्हे अधिक प्रभावित किया था। वे देशभक्ति के साथ ही सास्कृतिक उत्थान के भी पक्षपाती थे। अपने ऐतिहासिक नाटको के द्वारा उन्होने इसी सास्कृतिक और ऐतिहासिक पुनरुत्थान का प्रयास किया। भारतीय सस्कृति के प्रति मोह रखते हुए भी वे रूढिवादी नही थे। जीवन में दीर्घ समय तक वे शुद्ध खद्दर पहनते रहे। जाति-पाति, छुआछूत, पाखड आदि से वे कोसो दूर थे। एक बार जब उनकी जाति के व्यक्तियो ने उन्हे सभापति बना दिया, तब उन्होने उसे ऊपरी मन मे स्वीकार कर लिया

---

२०. Principles of Literary Criticism, Page 181.

और बाद मे तार दे दिया कि न आ सकूगा। काशी में अखिल भारतीय काग्रेस अधिवेशन के अवसर पर उन्होने गाधी जी का दर्शन किया था। शक्ति के उपासक होते हुए भी वे अहिंसा के पुजारी थे और बौद्धदर्शन की ओर अधिक झुके थे। उनकी धारणा थी कि करुणा ही मानव का कल्याण कर सकती है। आसू में उन्होने अपनी भावना का प्रतिपादन किया है। प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्य में करुणा-ममता का स्वर है।

इसके अतिरिक्त जीवन की सामयिक समस्याओ के विषय में वे किसी भी महान् कलाकार की भाति जागरूक रहते थे। 'तितली' और 'ककाल' में इन समस्याओ पर विस्तार से विचार किया गया है। काव्य के सीमित क्षेत्र में इसका पूरा अवसर नही मिलता। नारी-उद्धार, अछूत-समस्या, रूढिवादिता, धर्म आदि सभी पर उन्होने विचार किया। प्राय साथियो से वे कहा करते थे कि हमारा सामाजिक सगठन शिथिल होता जा रहा है। वे उसका पुनरुत्थान चाहते थे।

प्रसादजी कवि के सामाजिक उत्तरदायित्व को भली भाति जानते थे। उन्होने अप्रैल १९१२ इन्दु कला ३, किरण ५ (पृष्ठ ४०२) मे लिखा था "जब तक समाज के उपकार के लिए कवि की लेखनी ने कुछ कार्य न किया हो, तब तक केवल उसकी उपमा और शब्द-वैचित्र्य तथा अलकारो पर भूलकर हम उसे एक ऐसे कवि के आसन पर नही बिठा सकते, जिसने कि अपनी लेखनी से समाज की प्रत्येक कृतियो को स्पन्दित करके उनमें जीवन डालने का उद्योग किया है।"

व्यक्तिगत जीवन—

प्रसाद के जीवन की प्रेम-घटना को लेकर विद्वानों में पर्याप्त वाद-विवाद हो चुका है। कुछ लोग तो अनर्गल धारणाएँ बना लेते हैं। इसमें सन्देह नही कि 'आसू' के वियोग-वर्णन के मूल में कोई लौकिक आलम्बन है। उसकी अनुभूति इतनी प्रत्यक्ष है कि उससे कवि की वैयक्तिक भावना का स्पष्ट परिचय मिल जाता है। उनके साहित्य मे बिखरी हुई प्रेम और अतृप्ति की भावना इसका प्रमाण है कि उनकी जीवनानुभूति में कोई ऐसा प्रसग अवश्य था। किन्तु प्रसाद के काव्य मे उक्त भावना का उदात्तीकरण भी होता गया है और अन्त में वह वैयक्तिक घटना उच्चतर मानसिक और दार्शनिक भूमि पर रक्खी जा सकी है। उनके परवर्ती काव्य को देखने मे पता चलता है कि सौन्दर्य और प्रेम के विषय में उनकी बडी उदात्त भावना थी। 'कामायनी' में उन्होने लिखा है —

उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनन्त अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं ।

सौन्दर्य को उज्ज्वलता, वरदान और चेतना से विभूपित करके उन्होंने उसे असाधारण महत्व दिया है । प्रेम को वे मनुष्य की शक्ति मानते हैं । उनके 'प्रेमराज्य' में भी समस्त सृष्टि नवीन ज्योति से आलोकित हो उठती है । वे उदात्त सौन्दर्य और प्रेम के गायक कवि हैं, विलास और खुमारी के नही । उनकी प्रेम-भावना मे ऐसा असाधारण उन्मेप हुआ, जो मानवता के आदि पुरुष मनु का भी पथ-प्रदर्शन कर सका । प्रसाद की भावना विना प्रेम और करुणा के एक चरण भी आगे नही वढती । साहित्य का विश्लेपण करने पर प्रतीत होगा कि उन्होंने अपनी कल्पना के द्वारा सभी में एक हृदय रखने का प्रयास किया है । चाणक्य-जैसे कूटनीतिज्ञ व्यक्ति ने भी कभी सुवासिनी से प्रेम किया था । वह कहता है, "मेरे उस सरल हृदय मे उत्कट इच्छा थी कि कोई भी सुन्दर मन मेरा साथी हो । प्रत्येक नवीन परिचय में उत्सुकता थी और उसके लिए मन में सर्वस्व लुटा देने की सन्नद्धता थी ।[२१]" अनेक स्थलो पर प्रेम की जो परिभापाएँ कवि ने की हैं, उनमे वासना की गन्ध नही मिलती । वे इस विपय में इतने अधिक सतर्क थे कि 'कामायनी' के वासना-वर्णन को सूक्ष्म मानसिक अनुभावो के द्वारा ही प्रस्तुत किया, ताकि वह उच्छृंखल न वन जाय । 'ध्रुवस्वामिनी' मे कोमा कहती है, 'सवके जीवन मे एक वार प्रेम की दीपावली जलती है । जली होगी अवश्य । तुम्हारे भी जीवन मे आलोक का महोत्सव आया होगा, जिसमे हृदय हृदय को पहचानने का प्रयत्न करता है, उदार वनता है और सर्वस्व दान करने का उत्साह रखता है[२२] ।'

प्रसाद की हिन्दी को सवमे महत्वपूर्ण देन, उनकी नारी-भावना है । कवि ने नारी को शक्तिरूपा माना है । स्वच्छन्दतावादी कलाकारो की भाति नारी उनके लिए केवल शारीरिक आकर्पण और सौन्दर्य की वस्तु नहीं रह गयी । प्रसादजी को स्वय तीन विवाह करने पडे थे । नारी-जीवन के तीन विविध स्वरूपो को तो उन्हे निकट से देखने का अवसर मिला ही था । किन्तु 'आंसू' के विरह-वर्णन को देखकर यह अनुमान भी उचित है कि कवि के जीवन मे कोई आकर अवश्य चला गया था । कवि के जीवन-काल मे ही उनके अनेक

---

२१. चन्द्रगुप्त (२००२ वि०), पृष्ठ १३०.

२२. ध्रुवस्वामिनी (२००१ वि०), पृष्ठ ६६.

साथियो ने इस विषय में उनसे अनेक प्रश्न किये। वे सदा इस प्रश्न को सुनकर हँस पडा करते थे, और बात को टाल जाते थे। प्रसाद-जैसे गम्भीर व्यक्ति के मुख से उनकी आन्तरिक कहानी को सुन लेना सहज न था। एक मित्र के अत्यधिक अनुरोध पर एक बार उन्होंने सक्षेप में केवल इतना ही कहा था, "प्रेम को प्रकट कर देने से उसका मूल्य समाप्त हो जाता है। हा, मेरे जीवन में एक मधुर स्वप्न और मनोहर कल्पना रही है, जिसे मैंने आजीवन सँजोने का प्रयत्न किया है। उस प्रीति की पवित्रता को मैंने जीवन का सर्वस्व समर्पित कर भी जीवित रक्खा है।" इससे कवि की आन्तरिक भावनाओ की छाया-मात्र ही मिल सकी। प्रसाद नीरव प्रेम के उपासक है, तभी उन्होंने लिखा था

> कमल कोश भरे मकरद सो
> जिमि विराजत चारु अमन्द सों
> निज सुगन्ध लिये वह आप ही
> रहत मोद भरे चुपचाप ही।
>
> (चित्राधार, पृष्ठ १६५)

इसी प्रकार की नीरव प्रेम-पीडा कवि के साहित्य में दिखायी देती है। नारी-भावना में कवि ने अपनी कोमल भावनाओ का प्रकाशन किया है। महाकवि गेटे के जीवन में भी नारी ने एक महान प्रेरणा का कार्य किया था। किन्तु उस कवि मे इतना अधिक विद्रोह था कि वह किसी भी भावना को छिपा नही सकता था। वह भी अपने स्नेह में कभी उच्छृखल नही हुआ था। अपने जीवन में सब से अधिक लोटे बफ को प्यार किया था। 'वर्थर' लिखने के बाद उसने केवल यही कहा था, "जीवित मनुष्य को प्यार और मृतक का आदर करती चलो[२३]।"

प्रसाद ने नारी को सदा आदर और सम्मान की दृष्टि से देखा। परमपुरुष की शक्तिरूपा ही उनकी नारी थी। वे नारी और पुरुष के मधुर सम्बन्ध को ही सृष्टि का सर्वोत्तम लक्ष्य मानते है। उनका नैसर्गिक मिलन ही जीवन की पूर्णता का प्रतीक है। इस भावना का उन्होंने जीवन मे सदा निर्वाह करने का प्रयत्न किया। "वे स्वय श्रद्धा के साथ स्त्रियो का विशेष आदर करते थे, और

---

२३ "Go on loving the live man, and respect the dead one."
–Goethe. The History of a man by Emile Ludwig (1934), Page 82

उनका यह आदर केवल काल्पनिक या शब्दाडम्बर में नही, वरन् उनके नित्य-प्रति के व्यवहार मे प्रकट होता था। जैसे, कुछ मित्रो के साथ प्रसादजी जब मार्ग मे चलते और सामने से कुछ स्त्रिया या गगा पुजैयावाली कुलकामिनियो का गोल आता हुआ दिखायी देता, तो वे झट मित्रो को एक दूसरे मार्ग से चलने के लिए सकेत करते, और ऐसा करने मे कभी-कभी मित्रो को घूमकर एक दूसरे लम्बे मार्ग से जाने मे कुछ अधिक चलने का कष्ट भी करना पडता था[२४]।" प्रसादजी ने जीवन भर जिस स्मृति को सँजोने का प्रयास किया, उसे कोई भी नही जान सका, यही उनके चरित्र की सब से भारी विशेषता थी। वे साक्षात शकर थे, जो समस्त पीडा को स्वय विष की भाति पी लेना जानते थे। "आत्मगोपन की दुर्लभ कलात्मक क्षमता रखनेवाला यह विलक्षण कलाकार आत्मगोपन की कला मे भी पूर्ण पटु है[२५]।" 'कामना' नाटक के सन्तोष के शब्दो में मानो स्वय कवि बोल उठा हो, "जिस पिच्छल भूमि पर स्खलन विवेक बनकर खडा होता है, जहा प्राण अपनी अतृप्त अभिलाषा का आनन्द-निकेतन देखकर पूर्ण वेग से धमनियो मे दौडने लगता है, जहा चिन्ता विस्मृत होकर विश्राम करने लगती है, वहीं रमणी का तुम्हारा रूप देखा था और यह नही कह सकता कि मै झुक नही गया[२६]।"

प्रसाद ने अपने जीवन में अनेक उत्थान-पतन देखे थे। वैभव और अकिंचनता एक साथ उनके जीवन मे आये थे। रजतपात्रो मे भोजन करनेवाले प्रसाद को अनेक वर्ष तक ऋणीरूप में रहना पडा। उनके आन्तरिक जीवन मे भी यही स्थिति थी। तीन-तीन नारियो का उनके जीवन मे समावेश हुआ था। माता का दुलार उनसे यौवन के आरम्भ के पूर्व ही विदा ले चुका था। मा के चले जाने के पश्चात् जीवनपर्यन्त उन्होने अपनी भाभी की ही पूजा की। कवि के साहित्य पर दृष्टिपात करने से इतना अनुमान अवश्य होता है कि उसे जीवन मे अत्यधिक प्रेम और स्नेह मिला था। किन्तु उसका आकस्मिक परिवर्तन कवि के जीवन की एक टीस और वेदना बनकर रह गया। इसकी अभिव्यक्ति 'आसू' मे प्रमुख रूप से हुई है। किन्तु यह धूमिल भावना सर्वत्र झाकती रहती है। रमणी-हृदय उनके लिए इसी कारण एक समस्या-सा रहा :--

---

२४. संगम, प्रसाद स्मृति अंक, १८ फरवरी १९५१, पृष्ठ ४३।

२५. जागरण, ३१ अक्टूबर, १९३२।

२६. कामना (२००१ वि०), पृष्ठ ७०।

रमणी हृदय अथाह जो न दिखलायी पड़ता
भीतर है क्या बात न जानी जाती उनकी
—कानन-कुसुम (२००७ वि०), पृष्ठ ७०

उनकी प्रणय-कथा का थोडा-बहुत आभास 'आत्मकथा' द्वारा भी प्राप्त होता है। जनवरी-फरवरी १९३२ में हस का 'आत्मकथाक' प्रकाशित हुआ था। प्रेमचन्दजी ने प्रसादजी से भी अपने विषय में लिखने का बडा अनुरोध किया। इस पर उन्होने आगेवाली कविता लिखकर भेज दी थी। मुखपृष्ठ पर वह 'आत्मकथा' शीर्षक से प्रकाशित हुई। उनके आन्तरिक प्रेम-भावना को स्पष्ट जानने के लिए यह आवश्यक है कि उसका विश्लेषण कर लिया जाय —

मधुप गुनगुना कर कह जाता कौन कहानी यह अपनी
मुरझाकर गिर रहीं पत्तिया देखो कितनी आज घनी।
इस गम्भीर अनन्त नीलिमा में असख्य जीवन इतिहास
यह लो, करते ही रहते है अपना व्यग्य मलिन उपहास।
तब भी कहते हो कह डालू दुर्बलता अपनी बीती
तुम सुनकर सुख पाओगे, देखोगे यह गागर रीती।
किन्तु कहीं ऐसा न हो कि तुम ही खाली करने वाले
अपने को समझो, मेरा रस ले अपनी भरने वाले।
यह विडम्बना ! अरी सरलते ! तेरी हसी उडाऊँ मैं
भूलें अपनी, या प्रवचना औरो की दिखलाऊँ मै।
उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चादनी रातों की
अरे खिलखिला कर हँसते होनेवाली उन बातों की।
मिला कहा वह सुख जिसका मै स्वप्न देखकर जाग गया
आलिगन में आते-आते मुसक्या कर जो भाग गया।
जिसके अरुण कपोलो की मतवाली सुन्दर छाया में
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया में।
उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पन्था की
सीवन को उधेड कर देखोगे क्यो मेरी कन्था की।
छोटे-से जीवन की कैसी बडी कथाएँ आज कहूँ
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मै मौन रहूँ।
सुनकर क्या तुम भला करोगे मेरी भोली आत्मकथा
अभी समय भी नहीं थकी सोयी है मेरी मौन व्यथा।

आरम्भ मे ही कवि अपनी कथा की स्मृति का चित्र पस्तुत करता है। जीवन बढ़ता चला जा रहा है। समय के वृक्ष से पल्लव भरे जा रहे है।

किन्तु अब भी कवि उस प्रहर को भूल नही सका। इसी स्थान पर कवि यह भी कहता है कि ससार के विस्तृत रगमंच पर केवल उसका ही तो जीवन नही है। अनेक प्राणी अपनी आन्तरिक कहानिया लिये हुए चले जा रहे है। समस्त संसार की भाति ही कवि अपनी भी कथा को एक समझता है। इस स्थिति मे जब कि ससार की प्रगति धूमिल स्मृतियो का उपहास करती है, वह उन्हे दुहराना नही चाहता। अतीत के अचल में रुक जाना वह उचित नही समझता। वह कहता है, तुम तब भी क्यो चाहते हो कि मै अपनी पिछली पराजय और एक भूल कह डालू। और फिर यदि तुम्हारे अनुरोध पर अतीत के उन पृष्ठो को खोल भी द्, तो मेरे पास है ही क्या। दूसरो ने मेरे साथ कैसे छल-कपट किया, अथवा मेरी कौन-सी भूल थी, यही न। कवि को बरबस ही वे सुन्दर दिन याद आ जाते है, जब शुभ्र चन्द्रिका मे वह किसी अपरिचित के साथ जीवन का आनन्द ले रहा था। आज भी वह तरल हँसी कवि नही भूल सका। किन्तु मिलन का यह पर्व वह अधिक समय तक न मना सका। यहा पर कवि अपने प्रेम के अन्त हो जाने का कोई भी कारण नही प्रस्तुत करता। वह कहता है, "मिलन एक स्वप्न-मात्र था, अधिक समय तक मै सुख का आनन्द न ले सका। वह केवल एक क्षण के लिए ही आया था, अनजान मे आकर अनायास ही चला गया।" कवि उस अपरिचित पथिक के रूप का भी एक रेखाचित्र कर देता है। उसके सुन्दर कपोलो की लाली उषा की अरुणिमा की भाति थी। कवि मिलन का वर्णन अधिक नही कर पाता। उज्ज्वल गाथा वह कैसे गा सकता है? आज वह जीवन-पथ पर बढा चला जा रहा है। केवल स्मृतिया ही उसका पाथेय है। इन्ही स्मृतियो के सहारे वह आगे जायगा। वह अनुरोध करता है, मै अकिचन हूँ, मेरी अतीत कथा न सुनो। जीवन दो पल का है, किन्तु उस कथा का इतिहास विस्तृत! मै स्वय मौन रहकर ससार को सुनना चाहता हूँ। आज जीवन के झझावातो में मैने अपनी पीडा को सुला दिया है। इस कारण उसे सोने ही दो[२७]।

इससे यह आभासित होता है कि कोई न कोई उनके जीवन में अवश्य आया था। प्रेम की इस स्मृति को कवि ने आजीवन सँजोने का प्रयास किया। यद्यपि इस आत्मकथा से स्पष्ट नही होता कि प्रेम के अन्त का क्या कारण है, किन्तु अन्य रचनाओ मे इसका आभास प्राप्त होता है। 'आसू' में 'छलना' आदि शब्दो का प्रयोग प्रिय का परिचय दे देता है। 'झरना' और 'लहर' की अधि-

२७. हंस का आत्मकथांक—जनवरी-फरवरी १९३२.
'लहर' —पृष्ठ ११

काश कविताओं में कथा की स्मृतिया मिलती है। बौद्धिकता के विकास के साथ ही यह वेदनानुभूति एक स्वस्थ जीवन दर्शन मे विकसित हो गयी। 'आसू' के प्रथम और द्वितीय सस्करण मे भी अन्तर है। उनका सम्पूर्ण साहित्य प्रेम, करुणा से ओत-प्रोत है। प्रसाद प्रेम के ही गायक कवि है। एक वार उन्होंने अधिक प्रश्न करने पर 'आसू' की एक प्रति पर लिख दिया था —

'ओ मेरे प्रेम वता दे
तू स्त्री है या कि पुरुष है
दोनों ही पूछ रहे है
कोमल है या कि परुष है।

प्रसाद को मित्रो से वडा स्नेह रहता था, किन्तु उन्हे धोखा भी हुआ। उन्होंने लिखा है, 'मित्र मान लेने पर मनुष्य उससे शिवि के समान आत्मत्याग, वोधिसत्व के सदृश सर्वस्व समर्पण की जो आशा करता है और उसकी शक्ति की सीमा को तो प्राय अतिरजित देखता है, वैसी स्थिति में अपने को डालना मुझे पसन्द नही। क्योकि जीवन का हिसाब-किताब उस काल्पनिक गणित के आधार पर रखने का मेरा अभ्यास नही है, जिसके द्वारा मनुष्य सवके ऊपर अपना पावना ही निकाल लिया करता है[२८]।' इस भाति प्रसाद सदा देना जानते थे, लेना नहीं। अपने मित्रो के लिये वे सब कुछ त्याग कर सकते थे। स्वय राय कृष्णदासजी ने इसे स्वीकार किया है कि प्रसादजी ने अनेक गद्य-गीत केवल इसी कारण नष्ट कर दिये थे कि उनके मित्र की साहित्यिक प्रगति में वाधा न पडे[२९]।

काशी का जीवन—

प्रसादजी को काशी से विशेष प्रेम था। उसके सास्कृतिक वातावरण में वे पले थे। गगा की लहरो पर थिरकती हुई नौकाओ पर उन्होंने असख्य वार अपना कठ खोला था। दूर-दूर से आये हुए नर-नारी जब विश्वनाथ के मन्दिर में पूजन के पश्चात् लौटते, तो उनका कवि-हृदय वरवस ही कह उठता था, 'आज भी भारत में धर्म-भावना मर न सकी।' वनारस के कजली और फाग उन्हे विशेष प्रिय थे। स्वय सगीत-प्रेमी होने के कारण उनकी धारणा थी कि जनता के कठ मे निकले हुए इन नैसर्गिक गीतो में अनुभूति की सच्चाई और तीव्रता अधिक रहती है। करुणा और शृगार से भरी नउनिया और

---

२८. आधी, पृष्ठ ६।
२९ हिमालय

सहेवना के लोकगीतो को कवि ने अनेक वार सुना था । काशी से वे इतना अधिक सन्तुष्ट रहते थे कि प्राय बाहर नही जाते थे । अन्तिम समय मे जब जलवायु परिवर्तन के लिए उपचारको ने वाहर जाने को कहा, तो वे बोले, 'जीवन भर बाबा विश्वनाथ की छाया मे रहा, अब कहा जाऊँ ।' 'गुडा' आज भी काशी के वातावरण को सजग कर देता है । एक वार अपने पुत्र रत्न-शकर के अत्यधिक अनुरोध पर वे लखनऊ प्रदर्शनी देखने गये थे, जो सम्भवतः उनकी अन्तिम यात्रा थी। इसके पूर्व १९३१ मे वे सपरिवार पुरी आदि देखने गये थे । समुद्र का प्रथम वार दर्शन करते ही उनका कवि-हृदय बोल उठा था ·

'हे सागर सगम अरुण नील'

—जागरण, २२ फरवरी, १९३२

बनारसी रग मे रँगे हुए प्रसाद की सबसे बडी विशेषता थी, उनकी मस्ती । वे जीवन का पूर्ण आनन्द लेते थे, पूर्ण तन्मय रहते थे । वे उन व्यक्तियो में थे, जो जीवन की प्रत्येक बूद का पान स्वय करते और कराते है, तथा रिक्त हो जाने पर भी ठहाका मारकर हँस पडते है । वे सौन्दर्य के उपासक थे और आनन्द के पुजारी । इसी आनन्द-भावना ने उन्हे जीवन के प्रति एक सरस और मगलमय दृष्टिकोण प्रदान किया था । उनका सम्पूर्ण साहित्य इसी आनन्द का प्रतीक है । उनका शराबी पात्र मधुआ कहता है, "मौज बहार की एक घडी, एक लम्बे दुखपूर्ण जीवन से अच्छी है । उसकी खुमारी मे रूखे दिन काट लिये जा सकते है ।" जीवन के इस उपभोग मे प्रसाद उमर खैय्याम की भाति नही थे । वे शैव थे और चिरन्तन आनन्द की खोज मे सदा लगे रहे । आन्तरिक जीवन मे प्रसाद एक अध्ययनशील, चिन्तनशील और गम्भीर व्यक्ति थे । सामाजिक जीवन मे वे त्यागी, सदय और सरल थे। उनके जीवनकाल में ही जनार्दनप्रसाद झा द्विज ने चित्ररेखा प्रस्तुत करते हुए लिखा था "किसी बात का इन्हे अभिमान नही । विद्या, बुद्धि, बल, वैभव, रूप, यश, कला-कौशल सब कुछ पाकर भी मानो ये इन सब से भागे-भागे फिरते है । इनका प्रत्येक व्यवहार इनके निस्वार्थ एवं निस्पृह प्रेम का द्योतक है । ये औरो से कभी कुछ नही लेना चाहते, अपनी ओर से ही बराबर कुछ-न-कुछ देते रहना चाहते है । सच्चे प्रेम की यह ज्योति व्यापार की प्रत्येक दिशा मे सदैव छिटकी रहती है । इनमें केवल परिवार-प्रेम अथवा मित्र-प्रेम ही नहीं, अपने देश, समाज, साहित्य, सस्कृति और धर्म के प्रति भी अगाध अनुराग भरा हुआ है । अपनी प्राचीन सभ्यता के तो ये भक्त है। यही भक्ति इनके रहन-

सहन और स्वभाव की सादगी के रूप में हमारे सामने आती है किन्तु यह सादगी, सुरुचि और स्वाभाविकता का कभी साथ नही छोडती। कान्ति और कमनीयता की विभूति बरसानेवाला इनका चिर तारुण्य, इस तारुण्य की मधुरिमा को अभिव्यक्त करनेवाला इनका मोहक मुखमडल, मुखमडल पर निरन्तर थिरकती रहनेवाली अनुपम आह्लाद ज्योति और इस आह्लाद ज्योति को सदैव जगाये रखनेवाली इनकी मीठी मुसकान है[३०]।"

सम्पूर्ण व्यक्तित्व—

प्रसादजी ने साहित्य के अक्षय भण्डार को भरा। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास विविध अगो में उन्होने कार्य किया। जीवन के अन्तिम समय में उन्हें पर्याप्त ख्याति प्राप्त हो चुकी थी। साहित्य में उनका स्थान बन चुका था, पर अत्यधिक परिश्रम के कारण उनका शरीर भी शिथिल हो चला था। लखनऊ प्रदर्शनी से लौटने के बाद ही वे अस्वस्थ हो गये। लोगो ने उन्हे बहुतेरा समझाया कि आप जलवायु परिवर्तन के लिए बाहर चले जाइये, पर उन्होने न माना। वे घोर नियतिवादी थे और जीवन की कठोरताओ ने उन्हें इस अदृश्य शक्ति पर विश्वास करने के लिए विवश कर दिया था। दिन-पर-दिन रोग बढता ही गया। उन्हें यक्ष्मा हो गया था। ऐसी ही स्थिति में हिन्दी का यह यशस्वी कलाकार १५ नवम्बर १९३७ को प्रात काल इस ससार से उठ गया, और छोड गया अपने व्यक्तित्व और कृतित्व का सौरभ, जो युगो तक आने-वाली मानवता का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा। प्रसादजी राष्ट्रीय होते हुए भी अपनी सास्कृतिक धारणाओं में अन्तर्राष्ट्रीय है। उनका साहित्य मानवता की व्यापक और उदात्त भूमि पर खडा है। प्रसाद ने हीगेल के अनुसार अपने जीवन को ही काव्य बना दिया[३१]।

प्रेमचन्दजी ने उनके नाटको को देखकर यह आक्षेप लगाया था कि वे गड़े मुर्दे उखाडते है, किन्तु 'ककाल' के निकलने पर उन्हे स्वय दुख हुआ और उन्होने उसकी प्रशसा की। साथ ही प्रसादजी से क्षमा मागते हुए कहा था कि यदि मेरी कटु आलोचना से आप हिन्दी को ऐसी महान कृतिया दे दिया करें, तो मैं सौ बार आलोचना करूँगा। अपने युग के ये दोनो महान कलाकार प्रात काल बेनिया बाग में मिलते थे। 'गीतिका' का प्रथम सस्करण १९३६ के लगभग

---

३० जागरण—३१ अक्तूबर १९३२.

३१ Poet should make his life itself a poetry.
—Hegel

निकला था। प्रसादजी ने उसकी भूमिका मे लिखा, "निरालाजी हिन्दी कविता की नवीन धारा के कवि है और साथ ही भारती-मन्दिर के गायक भी हैं। उनमे केवल पिक की पचम पुकार ही नही, कनेरी की-सी एक ही मीठी तान नही, अपितु उनकी गीतिका मे सब स्वरो का समावेश है .....।"

कविता के क्षेत्र मे वे किसी कवि विशेप से प्रभावित कभी नही हुए। "सस्कृत मे कालिदास के काव्य से उन्हे प्रेम था और वे प्राय उसका अध्ययन करते रहते थे। इसके अतिरिक्त पडितराज के भामिनीविलास से उन्हे विशेप प्रेम था, जिसका छन्द 'अये जलधिनन्दिनी' वे प्राय मित्रो को सुनाया करते थे[३२]।" हिन्दी मे वे भारतेन्दु की भावात्मक प्रणाली की सदा प्रसशा करते थे। रीतिकाल के कवियो मे भी उन्हे घनानन्द, देव आदि की भावपूर्ण रचनाओ से रुचि थी। 'वद्दरा वरसै, रितु मे घिरि कै, नित ही अखिया उघरी वरसै' उनके मित्रो ने कई वार उनके मुख से सुना था। उर्दू कविता में शमा और परवाना के प्रसग को वे अनेक प्रकार से कहते थे। जिस समय प्रसाद साहित्य मे कार्य कर रहे थे, रवीन्द्र की पर्याप्त ख्याति थी। एक वार वे काशी आये हुए थे। प्रसादजी उनसे मिलने अर्दली वाजार के टैगोर-निवास में गये। लगभग दो घटे तक वातचीत होती रही। उसी समय गुरुदेव ने वताया था कि हिन्दी में वे कवीर आदि से अधिक प्रभावित है, उन्होने यह भी स्वीकार किया कि उन्हे वैष्णव कवियो से प्रेरणा मिली है[३३]। प्रसादजी ने हिन्दी की प्रगति के विपय में कहा था कि आज हिन्दी का कवि भी उसी परम्परा पर कार्य कर रहा है, किन्तु उसमें नूतनता है।

आज 'प्रसाद-मन्दिर' पर नागरी-प्रचारिणी सभा का प्रस्तर लगा हुआ है, जो उन्हे 'हिन्दी की नवीन शैली का प्रवर्त्तक' कह रहा है। प्रसाद कवि से भी महान व्यक्ति थे जिसे भली भाति जान लेने पर ही उनके काव्य का पूर्ण आनन्द

---

३२. नई धारा, फरवरी १९५१.

३३ "I found in the vaishnava poets lyrical moment; and images startling and new ... In them language was fluid, verse could sing ... They gave one form. They make many experiments in metre. And then there was the boldness of their imagery." Rabindranath Tagore by Edward Thompson (1948), page 27.

लिया जा सकता है । १९४० में निरालाजी ने आदरणीय प्रसादजी के प्रति लिखा था --

'किया मूक को मुखर, लिया कुछ, दिया अधिकतर
पिया गरल पर किया जाति साहित्य को अमर ।'

महान कवि का यह महान काव्य अध्ययन का विपय है जिसमें उसकी आत्मा-निहित है । प्रेमचन्दजी ने भी कहा था, लेखक के पास होता ही क्या है, जिसे वह अलग-अलग बाट दे । लेखक के पास तो उसकी तपस्या ही होती है, वही सबको वह दे सकता है । उससे सब लोग लाभ भी उठाते है । लेखक तो अपनी तपस्या का कुछ भी अश अपने लिये नही रख छोडता । और लोग जो तपस्या करते है, वह तो अपने लिए । लेखक जो तपस्या करता है, उससे जनता का कल्याण होता है । वह अपने लिए कुछ भी नही करता[१] ।"

प्रसादजी के जीवन की सबसे बडी विशेषता यह थी कि उनके विचार कथन और काव्य में समानता रहती थी । इसी काण उनका साहित्य ही उनका जीवन है । आदर्शवादी कवि ने यथार्थ भूमि पर खडे होकर जिस सार्वभौमिक साहित्य का निर्माण अपनी कुशल तूलिका से किया है, वह आनेवाली मानवता का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा । इस महाकवि ने किसी परम्परा का पालन नही किया, उसका व्यक्तित्व और उसकी प्रतिभा ऐसी असाधारण है कि उसका अनुकरण भी सम्भव नही ।

---

२९. प्रेमचन्द—घर में—पृष्ठ ३४०

'इन्दु' की प्रगति

प्रसाद का सम्पूर्ण साहित्य एक क्रमिक विकास के रूप मे सम्मुख आता है। कवि निरन्तर भावना तथा कला के क्षेत्र मे गतिमान होता जाता है। चित्राधार का कवि अन्त मे कामायनी के प्रौढ लेखक के रूप मे प्रतिष्ठित होता है। इन्दु की फाइलो में प्रसाद के व्यक्तित्व-विकास का इतिहास निहित है और इस दृष्टि से इन पत्र-पत्रिकाओ का अध्ययन आवश्यक है। प्रसाद के कुछ पूर्व ही गुप्तजी, हरिऔधजी, श्रीधर पाठक आदि कवि द्विवेदीजी की छाया मे कार्य कर रहे थे। सरस्वती पत्रिका इस धारा का प्रतिनिधित्व करती है। इन्दु के साथ ही छायावाद युग का आरम्भ हो जाता है।

प्रसाद के जीवनवृत्त से ज्ञात होता है कि नौ वर्ष की अवस्था मे ही उन्होंने एक सवैया ब्रजभाषा मे लिखकर अपने गुरु को दिखाया था। यद्यपि उस समय खडी बोली को साहित्य की भाषा बनाने का पूर्ण प्रयत्न हो रहा था, किन्तु अभी तक वह अपनी निर्माणावस्था में ही थी। गद्य के क्षेत्र मे तो खडी बोली को स्वीकार किया जा चुका था, किन्तु काव्य का माध्यम अभी तक प्राय ब्रजभाषा बनी हुई थी। द्विवेदीजी के प्रयास से उसमे व्याकरण आदि की दृष्टि से सुधार हो गया था किन्तु लालित्य और सरसता का अभाव था। उसके रूखेपन के कारण ही शृंगार रस के कवित्त और सवैयो मे अब भी ब्रजभाषा चल रही थी। इसके अतिरिक्त कवि-गोष्ठियो मे समस्यापूर्तियो का बडा प्रचलन था। स्वय प्रसादजी के यहा अनेक सस्कृत, हिन्दी, फारसी के कवि आकर अपनी रचनाए सुनाते थे। वास्तव मे कवि के जीवन की यही प्रथम प्रेरणा थी। इस प्रकार काव्य की दृष्टि से अधिक परिवर्तन इस समय भी न हुआ था। हरिऔधजी, गुप्तजी आदि ने अभी-अभी कार्य आरम्भ किया था। ऐसी ही स्थिति मे प्रसादजी ने सर्वप्रथम ब्रजभाषा मे 'कलाधर' उपनाम से कविता आरम्भ की थी। कवि ऐसे वैभवपूर्ण और समृद्धिशाली वातावरण मे उत्पन्न हुआ था कि अल्प आयु में ही जीवन की विषमता, देश की राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान सम्भव नही था। इस कारण आरम्भिक काव्य मे वातावरण की ही छाया है। घर मे होनेवाली शिव की भक्ति से कवि अनुप्राणित हुआ।

उसके काव्य में भक्ति-भावना को स्थान मिला। साथ ही परम्परा के अनुसार होने वाली शृंगारिकता भी मिलती है। किन्तु इन प्रकाशित रचनाओं में कवि की प्रतिभा का प्रथम परिचय मिल जाता है।

प्रसाद की कविता लुक-छिपकर आरम्भ हुई। वे दूकान पर बैठे-बैठे हिसाब के बहीखातों पर लिख देते थे। सरस्वती और लक्ष्मी का मिलन भी प्रसाद के जीवन की महान विशेषता है। जब कभी बड़े भाई हिसाब के साथ-ही-साथ कविता की पंक्तियां देख लेते, तो मुस्करा उठते, कहते, 'लड़का है ठीक हो जायगा।' अपने गुरु 'रसमयसिद्ध' के कहने से प्रसाद ने एक-दो बार घर पर बैठे हुए कवि-समाज के बीच अपनी कविता सुनाई थी। वे आशु कवि भी थे। एक बार उनके घर पर ब्रजभाषा के कुछ कवि बैठे थे और एक समस्या पर विचार हो रहा था। प्रसादजी ने वहीं बैठे-बैठे समस्यापूर्ति की, और एक सवैया लिखकर इस प्रकार सुनाया

भई ढीठ फिरैं चल चंचल ह्वै, यह रीति 'प्रसाद' चलाई नई।
नई देखि मनोहरता कतहूँ, थिरता इनमें नहिं पाई गई।
गई लाज स्वरूप सुधा छवि कै न तबौं इनकी कुटिलाई गई।
गई खोजत और ही ठौर तुम्हें अखियां अब तो हरजाई भईं॥

उस समय प्रायः कविता के प्रकाशन का सर्वोत्तम साधन इस प्रकार की गोष्ठियां ही थीं। हिन्दी-समाचार-पत्रों की दशा शोचनीय थी। उनके शैशव मरण के कारण प्रायः कोई भी व्यक्ति पत्र निकालने का साहस न करता था। धीरे-धीरे स्थिति में परिवर्तन आने लगा। सर्वप्रथम बार प्रसाद की कविता, 'भारतेन्दु' (जुलाई १९०६) में प्रकाशित हुई।

सावन आए वियोगिन को तन,
आली अनंग लगे अति सावन।
लावन हीय लगी अबला
तड़पै जब विज्जु छटा छवि छावन॥
छावन कैसे कहूँ में विदेश
लगे जुगनू हिय आग लगावन।
गायन लागे मयूर 'कलाधर',
झापि कै मेघ लगे बरसावन॥

प्रसादजी के कवि जीवन का वास्तविक आरम्भ १९०९ से होता है। उन्होंने इसी समय एक मासिक पत्र के प्रकाशन की व्यवस्था की। इसके सम्पादकत्व का भार उन्होंने अपने भांजे अम्बिकाप्रसाद गुप्त को सौंपा।

इसका प्रथम अक कला १, किरण १, श्रावण शुक्ल द्वितीया सम्वत १९६६ को प्रकाशित हुआ। इसका लक्ष्य कवि प्रसाद ने अपनी कविता मे इस प्रकार व्यक्त किया ·

सज्जन चित्त चकोरन को, हुलसावन भावनपूरो अनिन्दु है
मोहन काव्य के प्रेमिन के हित, सांच सुधारस को बलिबिन्दु है
ज्ञान प्रकाश प्रसार हिए विच, ऐसो जो मूरखता तमबिन्दु है
काव्य महोदधि ते प्रकट्यो, रस रीति कला दुत पूरण इन्दु है।

इस प्रकार प्रसाद ने आरम्भ से ही काव्य मे रस, रीति और कला के समन्वय को महत्त्व दिया। इस कविता मे ब्रजभाषा के शब्दो को नवीनता दी गई है। ज्ञान, प्रकाश आदि शब्द इसी प्रकार के है। साथ ही अभिव्यञ्जना मे एक मौलिकता है। काव्य को भारतीय परम्परा के अनुसार ग्रहण किया गया, जिसके अन्तर्गत समस्त साहित्य आ जाता है। कोई भी 'वाक्यम् रसात्मकम्' साहित्य-दर्पणकार के अनुसार 'काव्य' है। इसी शास्त्र-परम्परा के आधार पर रघुवश मे 'वागर्थाविव सपृक्तौ' को काव्य माना गया और तुलसी ने भी 'गिरा अर्थ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न' कह दिया। प्रसाद जी ने भी व्यापक अर्थ में काव्य का प्रयोग किया है। 'इसी कारण काव्य के महासागर से यह इन्दु निकल रहा है, जिसमे रस, रीति और कला है।' प्रस्तावना मे कहा गया .'साहित्य स्वतन्त्र प्रकृति, सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है। वह किसी की परतन्त्रता को सहन नही कर सकता, संसार मे जो कुछ सत्य और सुन्दर है, वही साहित्य का विषय है। साहित्य केवल सत्य और सौंदर्य की चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और सौन्दर्य को पूर्ण रूप से विकसित करता है, आनन्दमय हृदय के अनुशीलन मे और स्वतन्त्र आलोचना मे उसकी सत्ता देखी जाती है।'

इसी अक मे प्रसाद ने शारदाष्टक कविता, तथा प्रकृति-सौंदर्य लेख भी लिखा था। शारदा अथवा सरस्वती-वन्दना की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आती है। सस्कृत के प्राय सभी कवियो की कृतियो मे सरस्वती की वन्दना आरम्भ मे ही की गई है। कालिदास मे कहीं-कहीं शिव की उपासना भी है।

एकैश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणतबहुफले यः स्वयं कृत्तिवासाः
कान्तासंमिश्रदेहोऽप्य विषयमनसां य. परस्ताद्यतीनाम्
अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमान.
सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः।

—मालविकाग्निमित्र

'अपने भक्तो को मनवाछित फल देने का अक्षय भडार पास होते हुए भी जो केवल चर्म से ही सन्तोष कर लेते हैं, अर्द्धभाग मे अपनी प्रियतमा को रखने पर भी ससार के भोगो से जिनका मन विरक्त है, अपने आठ रूपो से ससार का पालन-पोषण करके भी जिनसे अभिमान दूर है, ऐसे ससार के स्वामी शकर जी, पाप की ओर भागने वाली हमारी बुद्धि को सत्कार्य की ओर प्रवृत्त कर दें।' रघुवश, अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशी आदि के आरम्भ में भी शिव-वन्दना है। भक्त कवियो ने अपने उपास्य को ही प्रणाम किया। हिन्दी के कवियो में सूर ने 'वन्दौं चरन कमल हरिराई' के द्वारा अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की। तुलसी ने तो काव्य को केवल राम का प्रसाद ही मान लिया था। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन अथवा अन्य शृगारी कवि भी उपास्य अथवा सरस्वती का अभिनन्दन करते हैं। केशव ने अपनी चमत्कारी शैली मे 'वानी जगरानी की उदारता बखानी जाय, ऐसी मति उदित उदार कौन की भई' के द्वारा सरस्वती की आरम्भ में ही पूजा की। कविगण सरस्वती से आशीर्वाद लेते थे, क्योकि कविता उन्ही का एक वरदान है। प्रसाद की इस 'शारदाष्टक' कविता मे इसी परम्परा का पालन है। जन्म से ही शैव होने के कारण वे शिव के अनन्य भक्त थे। नौ वर्ष की अवस्था मे उन्होंने जो सर्वप्रथम रचना की थी उसमे भी शकर की स्तुति है। इन्दु की प्रथम किरण में शारदा से वन्दना करते हुए कवि सम्भवत उसके दीर्घ जीवन की कामना करता है। लगभग बत्तीस पक्तियो की ब्रजभाषा की इस कविता मे शारदा को अनेक गुणो और अवयवो से विभूषित किया गया है। भक्तिभावना से प्रेरित होकर ही कवि ने वन्दना की है। इसमे कवि का उपनाम 'कलाधर' ही आया है। आरम्भ में वन्दना करता हुआ कवि वरदान मागता है

> वन्दे मुकुलित नवल नील अरविन्द नयनि वर
> वरदे रविशशिलाछित अनुपम सुखे सुधाधर
> धरति कमल कर वीणा वाजत जगदानन्दे
> आनन्दामृति वरसति जय जय शारद वन्दे।

इसके पश्चात् कवि सरस्वती के रूप और गुणो का वर्णन करता है। शारदा रस की मूर्ति है। एक हाथ मे शुभ्र कमडल है दूसरे में विद्यारस का पात्र। वीणा भी वज रही है। इन्द्रधनुष पर विद्युत की भाति शारदा विराजमान है, अन्त मे कवि कहता है

> ब्रह्मलोकवासिनि, जय कविकुल कठनिवासिनि
> नन्दनवीच विहारिणि, जय मराल वर वाहिनि

ईशभक्त सुखदायिनि, ध्यावत नित प्रति नारद
विद्यामृत वरपाकारिणि, वन्दे जय शारद ।

इस प्रकार हिन्दी की रीतिकालीन चमत्कारी परम्परा पीछे छूट गई है। वहां तो पितु के चार मुख, पूत के पाच मुख और नाती के षट्मुखो से वर्णित किए जाने पर भी बानी जगरानी की उदारता ही बनी रहती है :

पितु बरने चार मुख, पूत बरने पाच मुख
नाती बरने षट्-मुख तदपि नई नई ।
—केशव ।

प्रसाद की स्तुति कालिदास की परम्परा के अधिक समीप है । कवि भक्ति भावना मे वरदान मागता है । इसके अतिरिक्त इसी किरण एक के 'प्रकृति सौन्दर्य' लेख में कवि ने उसे 'ईश्वरीय रचना का एक अद्भुत समूह' माना है। लेखक के अनुसार वह अद्भुत रस की जन्मदातृ है। प्रकृति के पल-पल परिवर्तित स्वरूप मे ही उसका समस्त सौन्दर्य निहित है। द्वीप, महाद्वीप, प्रायद्वीप, समुद्र, नदी, पर्वत, नगर अथवा सम्पूर्ण जल स्थल मे सौन्दर्य पाकर कवि ऋतु-परिवर्तन पर रीझ उठता है । वसन्त, ग्रीष्म, पावस, शरद्, शिशिर, हेमन्त सभी मे प्रकृति की सुषमा है । अन्त मे कवि प्रकृति को देवि मानकर उसकी अपार रूप-राशि पर आश्चर्यचकित हो जाता है और उससे एक तादात्म्य स्थापित करता है। 'यह सब क्या है, हे देवि, यह सब तुम्हारी ही आश्चर्यजनक लीला है, इसमे तुम्हारे अनन्त वर्ण रजित मनोहर रूप को देखकर कौन आश्चर्य-चकित नही हो जाता ।' —चित्राधार, (१९८५ वि० संस्करण) पृष्ठ १२५

आगे चलकर प्रकृति भावना का विकास होता गया । प्रसाद के काव्य मे प्रकृति एक पृष्ठभूमि बनकर आई है । उसका मानवीय भावनाओ के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है। प्रकृति का स्वतत्र वर्णन प्रसाद के काव्य मे कम मिलता है । उसके एक व्यापक रगमच पर ही उनके पात्रो की भावनाए क्रीडा करती है। अरुण मे कोकिल बरबस ही पूछ देता है 'छि, कुमारी के सोए हुए सौन्दर्य पर दृष्टिपात करनेवाले धृष्ट, तुम कौन।' प्रसाद के प्रतीक विधान मे भी प्रकृति के नाना रूपो का महत्वपूर्ण स्थान है। श्रद्धा मेघ-वन बीच गुलाबी रग का बिजली का फूल है। काव्य-विकास के साथ-ही-साथ कवि की जड प्रकृति की चेतना और सजीव होती जाती है। 'साहित्य में विश्व सुन्दरी प्रकृति मे चेतनता का आरोप सस्कृति वाङमय मे प्रचुरता से उपलब्ध होता है । यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद सौन्दर्य के शरीर त्वं शम्भो

का अनुकरण मात्र है। वर्तमान हिन्दी मे इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी अभिव्यजना होने लगी है, वह साहित्य मे रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहं का इदम् से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।'[1] कवि ने शैशव काल में ही प्रकृति के जिस मनोरम रूप को देखा था, वही उसके काव्य में भी बोल रहा है। इस प्रकार प्रकृति भावना का उत्तरोत्तर विकास होता गया।

दूसरी किरण में प्रसाद का 'प्रेमपथिक' प्रकाशित हुआ। यह एक आख्यायिका-कविता है। आरम्भ मे ही कथा का आरम्भ हो जाता है। एक पथिक अपने नगर को छोडकर चल पडता है।

छांडि के अभिराम अति, सुखधाम चारु अराम।
पथिक इक कीन्ह्यो गमन, सुप्रवास को अभिराम॥

इसी के पश्चात पी कहा की ध्वनि सुनते ही उसकी वेदना जागृत हो जाती है। वह बढता चला जाता है। सरोवर के निकट जल पीकर फिर चल पडता है। निर्जन प्रदेश में बिखरी हुई प्रकृति की उस अनुपम सौन्दर्य राशि को देखकर आनन्दित हो उठता है। पथिक को आभास होता है कि आज भी प्रकृति में वही स्निग्धता है, उतना ही सौन्दर्य। कोई व्यक्ति नेपथ्य से पथिक को प्रेम के पथ की विपमता वता देता है। प्रेम का नवीन सन्देश पाकर उसे एक नई चेतना मिलती है। तभी स्वय प्रेम विहँसकर कहता है कि प्रेम का सिन्धु विस्तृत है। अन्त मे कवि कहता है

भए दुर्वल दीन तन, अरु नैन ते जलधार।
वही आशा छाह रट, पुनि हाय वारहिं वार॥

ब्रजभाषा की इस कविता में कवि ने प्रेम की परिभाषा प्रस्तुत की। उसमे उसे एक सार्वभौमिक स्तर पर लाकर प्रस्तुत किया। इस प्रकार शृगारिक पक्ष के दूर हो जाने से उसमे एक निर्माल्य आ गया है। अन्त में प्रसाद का यही प्रेम-दर्शन आनन्दवाद में परिणत हो जाता है। प्रेम को जीवन की अमूल्य निधि माननेवाले इस कवि के काव्य-विकास मे प्रेमपथिक का विशेप महत्व है। आगे चलकर माघ शुक्ल ५, १९७० वि० को स्वय कवि ने इसका परिवर्तित, परिवर्द्धित, तुकान्तविहीन हिन्दी रूप प्रस्तुत किया। वास्तव में इसकी रचना १९६२ वि० में ही कवि ने कर ली थी[2]।

---

१ काव्य और कला, पृष्ठ ३९
२. भूमिका।

'इन्दु' की प्रगति

तीसरी किरण (आश्विन शुक्ल स० १९६६) में शारदीय शोभा, प्रभात, रजनी, कमलिनी, भ्रमर, मानस कविताएँ प्रकाशित हुई । शारदीय शोभा के अन्तर्गत सर्वप्रथम प्रभात का वर्णन किया गया है। मधुर समीर विलास कर रहा है । विहग कलरव मे तन्मय है । दिवाकर अपने करो को पसारता आ रहा है। भ्रमरो का दल सरोरुह देखने मे व्यस्त है। समस्त शस्यश्यामला जलकणो से पूरित है । इसी शारदीय शोभा के अन्तर्गत रजनी का भी चित्रण कवि ने किया है । सुसन्ध्या के आगमन से रजनी और भी सुन्दर प्रतीत हो रही है। प्रभात का-सा विहगम कलरव, दिवाकर की किरणे, अरविन्द-विकास, ओसकण अब नही दिखाई देते, फिर भी रजनी सुन्दर है। कवि का कथन है

> इन्दुकला परिवेष्टित तारा निकर व्योम मुक्तासम ।
> पै वा रजनी राज्य माहि नहि वायु प्रभात मनोरम ।।
>
> —चित्राधार, पृष्ठ १४५

कमलिनी पर केवल चार पक्तिया है

> नित कान्त प्रकाश लखे नलिनी,
> बिखरावत चारु पराग कनी ।
> मनु पाय पियै अति आनन्द सौं,
> यह दान लुटावत बेहद सो ।

इसी प्रकार भ्रमर पर भी

> मधुपावलि गूजत मौज भरे,
> लहि वायु प्रसंग भरी लहरें ।
> ठहरै स्वर भूरि उठै श्रवनै,
> जेहि सोचति आनन्द माहि सनै ।

परिवेष्टित, प्रकाश, स्वर, मधुपावलि आदि शब्द खडी बोली के है । इसी इसके अतिरिक्त कवित, सवैया का भी इसमे अनुसरण नही किया गया । इसी तीसरी किरण मे (पृष्ठ ४२) मानस कविता भी है । मानस को कवि ने मानसरोवर की भांति विमल और विशाल माना है । उसमे चिन्ता, हर्ष, विषाद, क्रोध, निर्वेद, लोभ, मोह, आनन्द आदि के अनेक भेद निवास करते है । मनुष्य इनी के पुलिन पर बैठकर अनोखी तरगो की मनमानी तान सुनता है । इसमे अनेक आशा के रत्न और मुक्ता भरे हुए है । कल्पना गा भी स्रोत यही मन है, दुख मे इसे व्यग्रता होती है । उसमे अत्यन्त सूक्ष्म भाव

नाओ का विकास है। इस प्रकार कवि मानव-अन्तरतम के रहस्य को छूने का प्रयत्न कर रहा है। इसकी अभिव्यजना शैली में नवीनता आ गई है। कवि की प्रगति दिखाई देने लगती है। अन्त मे वह मानस को सम्बोधित करते हुए कहता है

तव तरग की सीमा यहि विधि नाहि,
खेलत जा मह चित्त मराल सुख चाहि।
—चित्राधार, पृष्ठ १४३

चौथी किरण (कार्तिक शुक्ल २, सवत् १९६६) में 'प्रेमराज्य' का एक खण्ड प्रकाशित हुआ। सम्पादक ने लिखा था , 'प्रबन्ध वडा होने के कारण तथा आप सज्जनो की सेवा में उपहार देने के हेतु उक्त वावू साहव ने स्वय पुस्तकाकार पृथक प्रकाशित करा दिया है। अतएव अब आगामी वार से इन्दु में प्रेमराज्य प्रकाशित न होगा।' प्रेमराज्य की कथा दो भागो मे विभाजित है। पूर्वार्द्ध के आरम्भ में टालीकोट की युद्धभूमि का दृश्य है। सूर्यकेतु महाराज की सेना यवनो से युद्ध के लिए प्रस्तुत है। सिहद्वार पर नरेश सेना का निरीक्षण कर रहे है। तभी पाच वर्ष का छोटा-सा बालक आ गया। नरेश ने पुत्र के सुन्दर मुख को चूम लिया। वे बोले कि मै तुम्हे देखकर प्रिया का वियोग भूल जाता हूँ। वीरकर्म कर रहा हूँ, समझ नही पाता कि तुझे किसके हाथ सौंप दू। तभी एक भील ने आकर राजा से उस सुन्दर बालक को माग लिया। राजा ने राजकुवर उसे दे दिया। और फिर युद्ध आरम्भ हो गया। महाराज ने अपार शक्ति का प्रदर्शन किया, अन्त मे वे भी मारे गए। कवि इसके पश्चात् भारतभूमि की महानता का वर्णन करता है। इक्ष्वाकु, दुष्यन्त आदि महान यशस्वी राजाओ ने यही जन्म लिया। वह अनेक शूर-वीरो की चर्चा करता है। 'सेनापति रणक्षेत्र से भाग आया था। उसने घर लौटकर देखा कि उसकी पत्नी नही है। उसने अपनी वालिका ललिता को चूम लिया। तभी उसे अपनी पत्नी का पत्र मिला कि तुम्हारे रहते महाराज स्वर्ग कैसे चले गए। सेनापति को पश्चात्ताप हुआ, वह उत्तर की ओर चल पडा।' यह एक भील जाति के जीवन की कथा है। उत्तरार्द्ध मे एक वाला अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य मे वन को भी उल्लसित कर रही है। वह प्रसूनो की माला गूथ रही है। इतने मे ही एक युवक आकर उसके दृग मीच लेता है। वाला कह उठती है—'चन्द्रकेतु'। दोनो ही प्रकृति की उस विशाल सुन्दर गोद मे आनन्द मनाने लगते है। तभी भील वालक आकर कहते है—हम चन्द्रकेतु और ललिता को राजा रानी वनाकर सभी सहचर प्रजा, अमात्य, सैन्य सेनानी होंगे। शिला

के सिंहासन पर, वे मणि का हार और कुसुम तथा कलियो के मुकुट से सजाकर उन्हे बिठाते है। सभी बालक प्रसन्न हो उठते है। वे पथिको को निर्भय लूटने को कहते है, तभी चन्द्रकेतु बोल उठता है :

अहो लखो यह विश्वेश्वर की सृष्टि अनूपम
शिवस्वरूप तिनमाहि, विराजत लखि सबही सम।

वह ससार को शिव का अव्यक्त स्वरूप मानकर उसके प्रत्येक प्राणी को प्रेम करने का सदेश देता है। शिव प्रेम का ही स्वरूप है। बालक उसे दादा कहकर आज्ञा स्वीकार करते है। तभी एक तपस्वी आकर चन्द्रकेतु और ललिता को वरदान देता है कि वे दोनो प्रेमराज्य के स्वामी बने रहे। बालको के पिता वृद्ध भील भी उनकी अभ्यर्थना करते है। अन्त मे

वह किशोर नव चन्द्रकेतु ललिताहु किशोरी
तन्मय लखत परस्पर इकटक अद्भुत जोरी
लखे नवल यह प्रेमराज्य अति ह्वै आनन्दित
चमकि उठ्यो नव चारु चन्द्र तारागण वन्दित[3]।

—चित्राधार, पृष्ठ ६९

पाचवी किरण (मार्गशीर्ष, शुक्ल २ सवत १९६६, पृष्ठ ७७) में कल्पना सुख कविता प्रकाशित हुई। इसमे कल्पना को सम्बोधित करके कवि ने उसे सुखयान और मनुष्य जीवनप्राण कहा है। प्रत्यक्ष, भावी, भूत सभी को रगने की शक्ति इसमें है। विश्व कल्पना की छाया मे ही विश्राम करता है। वह व्याकुल नर का मीत है। शैशव के मनोहर चित्रो को अकित करने की शक्ति उसमे है। आशा और स्फूर्ति का सचार भी इसी के द्वारा होता है। मनुष्य को यही आकर सुख मिलता है। अन्त मे कवि कल्पना को विकसित रूप मे देखता है

कहु प्रेममय ससार। नव प्रेमिका को प्यार
कल्पित सुछाया चित्र। वहु रचहु तुम जगमित्र।

—चित्राधार, पृष्ठ १४१

इस प्रकार कवि कल्पना की व्यापकता का अकन करता है। इसी अवसर पर कवि की स्वतन्त्रता का भी आभास मिल जाता है। अन्तिम पक्तियो

३. 'प्रेमराज्य' का प्रकाशन ग्रन्थाकार काशी से १९०९ ई० में हुआ था। आज वह 'चित्राधार' में संगृहीत है।

नाओ का विकास है। इस प्रकार कवि मानव-अन्तरतम के रहस्य को छूने का प्रयत्न कर रहा है। इसकी अभिव्यजना शैली में नवीनता आ गई है। कवि की प्रगति दिखाई देने लगती है। अन्त में वह मानस को सम्बोधित करते हुए कहता है

> तव तरग की सीमा यहि विधि नाहिं,
> खेलत जा मह चित्त मराल सुख चाहि।
>
> —चित्राधार, पृष्ठ १४३

चौथी किरण (कार्तिक शुक्ल २, सवत् १९६६) में 'प्रेमराज्य' का एक खण्ड प्रकाशित हुआ। सम्पादक ने लिखा था , 'प्रवन्ध बडा होने के कारण तथा आप सज्जनो की सेवा मे उपहार देने के हेतु उक्त बाबू साहब ने स्वय पुस्तकाकार पृथक प्रकाशित करा दिया है। अतएव अब आगामी बार से इन्दु में प्रेमराज्य प्रकाशित न होगा।' प्रेमराज्य की कथा दो भागो में विभाजित है। पूर्वार्द्ध के आरम्भ मे टालीकोट की युद्धभूमि का दृश्य है। सूर्यकेतु महाराज की सेना यवनो मे युद्ध के लिए प्रस्तुत है। सिहद्वार पर नरेश सेना का निरीक्षण कर रहे है। तभी पाच वर्ष का छोटा-सा बालक आ गया। नरेश ने पुत्र के सुन्दर मुख को चूम लिया। वे वोले कि मै तुम्हे देखकर प्रिया का वियोग भूल जाता हूँ। वीरकर्म कर रहा हूँ, समझ नही पाता कि तुझे किसके हाथ सौंप दू। तभी एक भील ने आकर राजा से उस सुन्दर बालक को माग लिया। राजा ने राजकुवर उसे दे दिया। और फिर युद्ध आरम्भ हो गया। महाराज ने अपार शक्ति का प्रदर्शन किया, अन्त मे वे भी मारे गए। कवि इसके पश्चात् भारतभूमि की महानता का वर्णन करता है। इक्ष्वाकु, दुष्यन्त आदि महान यशस्वी राजाओ ने यही जन्म लिया। वह अनेक शूर-वीरो की चर्चा करता है। 'सेनापति रणक्षेत्र से भाग आया था। उसने घर लौटकर देखा कि उसकी पत्नी नही है। उसने अपनी वालिका ललिता को चूम लिया। तभी उसे अपनी पत्नी का पत्र मिला कि तुम्हारे रहते महाराज स्वर्ग कैसे चले गए। सेनापति को पश्चात्ताप हुआ, वह उत्तर की ओर चल पडा।' यह एक भील जाति के जीवन की कथा है। उत्तरार्द्ध में एक वाला अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य मे वन को भी उल्लसित कर रही है। वह प्रसूनो की माला गूथ रही है। इतने मे ही एक युवक आकर उसके दृग मीच लेता है। वाला कह उठती है—'चन्द्रकेतु'। दोनो ही प्रकृति की उस विशाल सुन्दर गोद में आनन्द मनाने लगते है। तभी भील वालक आकर कहते है—हम चन्द्रकेतु और ललिता को राजा रानी बनाकर सभी सहचर प्रजा, अमात्य, सैन्य सेनानी होगे। शिला

के सिंहासन पर, वे मणि का हार और कुसुम तथा कलियो के मुकुट से सजाकर उन्हे बिठाते है। सभी बालक प्रसन्न हो उठते है। वे पथिको को निर्भय लूटने को कहते है, तभी चन्द्रकेतु बोल उठता है :

अहो लखो यह विश्वेश्वर की सृष्टि अनूपम
शिवस्वरूप तिनमांहि, विराजत लखि सबही सम।

वह ससार को शिव का अव्यक्त स्वरूप मानकर उसके प्रत्येक प्राणी को प्रेम करने का सदेश देता है। शिव प्रेम का ही स्वरूप है। बालक उसे दादा कहकर आज्ञा स्वीकार करते है। तभी एक तपस्वी आकर चन्द्रकेतु और ललिता को वरदान देता है कि वे दोनो प्रेमराज्य के स्वामी बने रहे। बालको के पिता वृद्ध भील भी उनकी अभ्यर्थना करते है। अन्त मे

वह किशोर नव चन्द्रकेतु ललिताहु किशोरी
तन्मय लखत परस्पर इकटक अद्भुत जोरी
लखे नवल यह प्रेमराज्य अति ह्वै आनन्दित
चमकि उठ्यो नव चारु चन्द्र तारागण वन्दित[3]।

—चित्राधार, पृष्ठ ६९

पाचवी किरण (मार्गशीर्ष, शुक्ल २ सवत १९६६, पृष्ठ ७७) मे कल्पना सुख कविता प्रकाशित हुई। इसमे कल्पना को सम्बोधित करके कवि ने उसे सुखयान और मनुष्य जीवनप्रान कहा है। प्रत्यक्ष, भावी, भूत सभी को रगने की शक्ति इसमे है। विश्व कल्पना की छाया मे ही विश्राम करता है। वह व्याकुल नर का मीत है। शैशव के मनोहर चित्रो को अकित करने की शक्ति उसमे है। आशा और स्फूर्ति का सचार भी इसी के द्वारा होता है। मनुष्य को यही आकर सुख मिलता है। अन्त में कवि कल्पना को विकसित रूप मे देखता है .

कहुं प्रेममय ससार। नव प्रेमिका को प्यार
कल्पित सुछाया चित्र। बहु रचहु तुम जगमित्र।

—चित्राधार, पृष्ठ १४१

इस प्रकार कवि कल्पना की व्यापकता का अकन करता है। इसी अवसर पर कवि की स्वतन्त्रता का भी आभास मिल जाता है। अन्तिम पक्तियो

---

३. 'प्रेमराज्य' का प्रकाशन ग्रन्थाकार काशी से १९०९ ई० में हुआ था। आज वह 'चित्राधार' में संगृहीत है।

नाओ का विकास है । इस प्रकार कवि मानव-अन्तरतम के रहस्य को छूने का प्रयत्न कर रहा है । इसकी अभिव्यजना शैली में नवीनता आ गई है। कवि की प्रगति दिखाई देने लगती है । अन्त में वह मानस को सम्बोधित करते हुए कहता है

तव तरग की सीमा यहि विधि नाहि,
खेलत जा मह चित्त मराल सुख चाहि ।
—चित्राधार, पृष्ठ १४३

चौथी किरण (कार्तिक शुक्ल २, सवत् १९६६) मे 'प्रेमराज्य' का एक खण्ड प्रकाशित हुआ । सम्पादक ने लिखा था , 'प्रवन्ध बडा होने के कारण तथा आप सज्जनो की सेवा मे उपहार देने के हेतु उक्त बाबू साहब ने स्वय पुस्तकाकार पृथक प्रकाशित करा दिया है । अतएव अब आगामी वार से इन्दु मे प्रेमराज्य प्रकाशित न होगा ।' प्रेमराज्य की कथा दो भागो में विभाजित है । पूर्वार्द्ध के आरम्भ मे टाली़कोट की युद्धभूमि का दृश्य है । सूर्यकेतु महाराज की सेना यवनो से युद्ध के लिए प्रस्तुत है । सिंहद्वार पर नरेश सेना का निरीक्षण कर रहे है । तभी पाच वर्प का छोटा-सा बालक आ गया । नरेश ने पुत्र के सुन्दर मुख को चूम लिया । वे बोले कि मै तुम्हे देखकर प्रिया का वियोग भूल जाता हूँ । वीरकर्म कर रहा हूँ, समझ नही पाता कि तुझे किसके हाथ सौप दू । तभी एक भील ने आकर राजा से उस सुन्दर बालक को माग लिया । राजा ने राजकुवर उसे दे दिया । और फिर युद्ध आरम्भ हो गया । महाराज ने अपार शक्ति का प्रदर्शन किया, अन्त में वे भी मारे गए । कवि इसके पश्चात् भारतभूमि की महानता का वर्णन करता है । इक्ष्वाकु, दुष्यन्त आदि महान यशस्वी राजाओ ने यही जन्म लिया । वह अनेक शूर-वीरो की चर्चा करता है । 'सेनापति रणक्षेत्र से भाग आया था । उसने घर लौटकर देखा कि उसकी पत्नी नही है । उसने अपनी वालिका ललिता को चूम लिया । तभी उसे अपनी पत्नी का पत्र मिला कि तुम्हारे रहते महाराज स्वर्ग कैसे चले गए । सेनापति को पश्चात्ताप हुआ, वह उत्तर की ओर चल पडा ।' यह एक भील जाति के जीवन की कथा है । उत्तरार्द्ध में एक वाला अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य मे वन को भी उल्लसित कर रही है । वह प्रसूनो की माला गूथ रही है । इतने मे ही एक युवक आकर उसके दृग मीच लेता है । वाला कह उठती है—'चन्द्रकेतु' । दोनो ही प्रकृति की उस विशाल सुन्दर गोद में आनन्द मनाने लगते है । तभी भील वालक आकर कहते है—हम चन्द्रकेतु और ललिता को राजा रानी वनाकर सभी सहचर प्रजा, अमात्य, सैन्य सेनानी होगे । शिला

के सिंहासन पर, वे मणि का हार और कुसुम तथा कलियो के मुकुट से सजाकर उन्हे विठाते हैं। सभी बालक प्रसन्न हो उठते है। वे पथिको को निर्भय लूटने को कहते है, तभी चन्द्रकेतु बोल उठता है :

> अहो लखो यह विश्वेश्वर की सृष्टि अनूपम
> शिवस्वरूप तिनमाहि, विराजत लखि सवही सम।

वह ससार को शिव का अव्यक्त स्वरूप मानकर उसके प्रत्येक प्राणी को प्रेम करने का सदेश देता है। शिव प्रेम का ही स्वरूप है। बालक उसे दादा कहकर आज्ञा स्वीकार करते है। तभी एक तपस्वी आकर चन्द्रकेतु और ललिता को वरदान देता है कि वे दोनो प्रेमराज्य के स्वामी बने रहे। बालको के पिता वृद्ध भील भी उनकी अभ्यर्थना करते है। अन्त मे

> वह किशोर नव चन्द्रकेतु ललिताहु किशोरी
> तन्मय लखत परस्पर इकटक अद्भुत जोरी
> लखे नवल यह प्रेमराज्य अति ह्वै आनन्दित
> चमकि उठ्यो नव चारु चन्द्र तारागण वन्दित[3]।
>
> —चित्राधार, पृष्ठ ६९

पाचवी किरण (मार्गशीर्ष, शुक्ल २ सवत १९६६, पृष्ठ ७७) में कल्पना सुख कविता प्रकाशित हुई। इसमे कल्पना को सम्बोधित करके कवि ने उसे सुखयान और मनुष्य जीवनप्रान कहा है। प्रत्यक्ष, भावी, भूत सभी को रगने की शक्ति इसमें है। विश्व कल्पना की छाया मे ही विश्राम करता है। वह व्याकुल नर का मीत है। शैशव के मनोहर चित्रो को अकित करने की शक्ति उसमे है। आशा और स्फूर्ति का सचार भी इसी के द्वारा होता है। मनुष्य को यही आकर सुख मिलता है। अन्त में कवि कल्पना को विकसित रूप मे देखता है

> कहु प्रेममय ससार। नव प्रेमिका को प्यार
> कल्पित सुछाया चित्र। वहु रचहु तुम जगमित्र।
>
> —चित्राधार, पृष्ठ १४१

इस प्रकार कवि कल्पना की व्यापकता का अकन करता है। इसी अवसर पर कवि की स्वतन्त्रता का भी आभास मिल जाता है। अन्तिम पक्तियो

---

३. 'प्रेमराज्य' का प्रकाशन ग्रन्थाकार काशी से १९०९ ई० में हुआ था। आज वह 'चित्राधार' में संगृहीत है।

में चित्र और मित्र का प्रयोग साम्य के आधार पर किया गया है। यही प्रवृत्ति क्रमश विकसित होकर प्रसादजी को छन्दो की स्वतन्त्रता प्रदान करती है। छायावाद युग में कल्पना ही कवि की आराध्य देवी थी। भक्ति की परम्परा पीछे छूट चुकी थी। कवि कल्पना को ही अपना सर्वस्व मानता था। प्रसाद के आगामी चरण का आभास इसी स्थान पर मिल जाता है। छायावादी कवियो ने कल्पना की ही स्तुति की —

कल्पना के कानन की रानी — निराला
कल्पना के ये शिशु नादान — पन्त

छठी किरण (पौष सवत १९६६, पृष्ठ ८५) मे 'बनवासिनी बाला' कविता प्रकाशित हुई। यह भी एक लम्बी कविता है। आरम्भ में ही कण्व महर्षि का तपोवन सुशोभित है। रसाल, कदम्ब, तमाल, अशोक आदि के वृक्ष लगे हुए है। मालती, चम्पक, नवमल्लिका आदि के सुन्दर प्रसून कुसुमित हो रहे हैं। पवन सौरभ का सन्देश वहन कर रहा है। प्रियम्वदा और अनसूया मालिनि के तीर बैठी हुई है। दोनो के ही मुख पर पवित्र भाव है। उनका अग वल्कल वसन से विभूपित है। गले मे सुमन की माला है। वे युगल मनोहर बन-बालाएँ अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती है। तभी प्रियम्वदा कह उठती है कि सामने की चम्पकलतिका अग-अग में कलिकाओ को भरकर मुरझाई जा रही है। इनमे मधुर मकरन्द, पराग, सुगन्ध, सुन्दर रूप, सुरग सभी कुछ है, किन्तु शुष्क परिमल पर मधुकर भी तो नही आते। मधुकर मधु मे अन्धा है उसमें विवेक नही। वास्तव मे

पाइ समीपहि जाही, सो वाही सो पागै
ये तो परम विलासी, नहि जानत अनुरागै

अनुसूया अपनी सखी के इस कथन पर खीझ उठती है। वह कहती है कि वन मे तो कोई अन्य सुननेवाला भी नही है फिर तुम क्यो बक रही हो। वन मे यदि मयूर नाचता रहे, तो कौन देखने आएगा। ये वालसनेही लतिका, तरु, वीरुध है, अब इन्ही का सिंचन करना होगा। शकुन्तला के वियोग मे माधवी लता भी आर्द्र हो उठी है, उसके भी शोकाश्रु छलक आए है। शकुन्तला को

शकुन्तला का नाम सुनते ही प्रियम्वदा चौंक उठती है। उसे दुख होता है और कहती है कि राज का सुख पाकर शकुन्तला अपनी सखियो को भी भूल गई। अनेक दिवस व्यतीत हो गए पर उसने कोई भी समाचार न दिया। गौतमी भी कुछ नही बताती। नगर मे तो शकुन्तला महारानी होगी। सीधी वनबाला तो आज पति के प्रेम में पागल हो गई है, भला सखियो को क्यो पूछेगी ? तभी उन दोनो को याद आता है

> अबहिं शुकहिं आहार देइबो है हम वारी
> बहुत अबेर भई सु कुटीरहिं चलिए प्यारी।
>
> —चित्राधार, वनमिलन, पृष्ठ ५५

तभी कश्यप का शिष्य गालव, कण्व ऋषि के विषय में पूछकर अग्निहोत्र-शाला में चला जाता है। वे दोनो भी गुरु के पास जाकर सिर झुकाकर बैठ जाती हैं। गालव ऋषि को प्रणाम कर कहता है कि महाराजा दुष्यन्त मुनिवर के शाप से मुक्त हो गए है। शकुन्तला, दुष्यन्त और उनका पुत्र भरत शीघ्र आश्रम को आ रहे होगें। महर्षि कण्व, प्रियम्वदा, अनुसूया सभी इस समाचार को पाकर अत्यधिक प्रसन्न हो उठते हैं और इसी समय—

> शकुन्तला, दुष्यन्त, बीच में भरत सुहावत
> धर्म, शान्ति, आनन्द मनहुँ साथहिं चलि आवत।

सखिया आकुल होकर गले मिली। उस शुद्ध तपोवन मे करुणा और प्रेम का प्रवाह उमड आया। श्रद्धा, भक्ति और सरलता एक ही स्थान पर एकत्र हो गए थे। प्रियम्वदा भरत को गोद में लेकर बारम्बार उसका मुख चूम लेती थी। अनुसूया शकुन्तला के साथ थी। वे सरलस्वभावा वनवासी वनिताएँ अनेक प्रश्न करती जा रही थी। प्रियम्वदा ने दुष्यन्त को उपालम्भ दिया। तभी अनुसूया बोल उठी, ये बडे सीधे हैं री, इनका यही स्वभाव है, पगली। शकुन्तला दोनों को समझाने लगती है। इसी अवसर पर कवि प्रसाद नारी के प्रेम की अभिव्यक्ति करते हैं। शकुन्तला कहती है

> अब यह मेरो एक विनय धरि ध्यान सुनै तू
> इनके विगत चरित्रन को नहिं नेक गुनै तू।
> जामें फिर नहिं बिछुरैं, सब यह ही मति ठानो
> सदा हमारे संग चलो अति ही सुख मानो।

यज्ञ-अग्नि प्रज्वलित हो उठी थी। सभी ने उसे प्रणाम किया। अन्त में शकुन्तला ने अपने पिता महर्षि कण्व से दोनो सखियो, प्रियम्वदा और अनुसूया

को माग लिया। नन्दन कानन मे कचन, ककन, किंकिन का कलनाद छा गया। चारो ओर सौरभ बिखर गया। सौन्दर्य वही साकार हो उठा, मानो स्वर्ग मे स्वय मेनका उतर आई हो। कण्व ने आशीर्वाद दिया, सभी चल दिए। और अन्त में

चिर बिछुरे सब मिले हिए आनन्द बढ़ावन
मालिनि तरल तरग लगी मंगल को गावन।

इस प्रकार 'वनवासिनी बाला' मे एक बार कालिदास के अभिज्ञान-शाकुन्तलम् का सक्षिप्त हिन्दी सस्करण प्रसाद ने प्रस्तुत किया। वनबालाओ के सौन्दर्य वर्णन मे कवि की मौलिकता झलक रही है। भाषा में परिमार्जन होता जा रहा है। कवि प्रेम की समस्याओ का समावेश करता जा रहा है। विश्व-विख्यात महानाटक का एक खड कवि ने कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया। इससे यह स्पष्ट है कि प्रसादजी इस समय तक कालिदास का विस्तृत अध्य-यन कर चुके थे।

अब इन्दु की पर्याप्त ख्याति हो गई थी। हिन्दी-जगत मे उसने अपना एक स्थान बना लिया था। प्रसादजी की प्रतिभा भी निखरने लगी थी। इन्दु को प्रकाशन सामग्री का अभाव न था। प्रसाद इन्दु के द्वारा स्वय अपने साहित्य का प्रचार कभी नही चाहते थे। इस सकुचित उद्देश्य को लेकर उन्होने जीवन मे कोई कार्य नही किया। उनकी इच्छा थी कि इन्दु कविता को रसभूमि पर लाकर प्रस्तुत करे। उसके प्रत्येक अक पर लिखा हुआ आदेश वाक्य 'रस, रीति कलायुत' स्वय इसका प्रमाण है। कवि ने स्वय उसकी प्रथम किरण की प्रस्ता-वना मे ही साहित्य का मानदड स्थापित कर दिया था। इसी का पालन वे करते रहे। आरम्भ मे प्रकाशन सामग्री की कठिनाई होने से प्रसादजी स्वय अपनी ही अनेक रचनाएँ दे दिया करते थे। अब धीरे-धीरे इन्दु की नीव जमने से यह कठिनाई न रही।

आठवी किरण (फाल्गुन शुक्ल स० १९६६) होलिकाक थी। इसमें प्रसाद ने भक्ति (पृ० १२२) शीर्षक लेख दिया था। कवि ने श्रद्धा के जिस अलौकिक और महान स्वरूप का विकास अपने महाकाव्य कामायनी मे प्रस्तुत किया उसका प्रथम आभास इसी लेख द्वारा मिल जाता है। श्रद्धा और भक्ति मे समन्वय स्थापित करते हुए प्रसादजी उन दोनो मे अधिक अन्तर नही मानते। सस्कृत के 'श्रद्धाभक्तिज्ञानयोगादवैहि' से कवि के ज्ञान का भी परिचय मिलता है। वह अध्ययन की ओर अग्रसर दिखाई देता है। अन्त में महर्षि उपमन्यु और परमेश्वर का कथानक भी उसने प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त कवि

अपने जीवन के अल्पकाल में ही कुछ उत्थान-पतन देख चुका था। उसने सकटों का सामना भी किया था। विपत्ति के निर्मम प्रहार उसने झेले थे। ऐसी अवस्था मे कुलगत शैव होने के कारण भक्ति मे आस्था हो जाना स्वाभाविक ही है। तभी तो प्रसादजी कहते है 'निराशा मे, अशान्ति मे, सुख मे उस अपूर्व सुन्दर चन्द्र की भक्तिरूपी किरणे तुम्हे शान्ति प्रदान करेंगी। और यदि तुम्हे कोई कष्ट हो तो उस अशरण शरण चरण मे लोटकर रोओ, वे अश्रु तुम्हे सुधा के समान सुखद होगे और तुम्हारे सब सन्ताप को हर लेगे। उस चरण के सौरभ से तुम्हारी मानसिक निर्बलता दूर हो जायगी, तुम्हारा घ्राण अपूर्व सुगन्ध से आमोदित हो जायगा। तुम्हारे पास चिन्ता, निराशा कभी फटकने न पावेगी।' —चित्राधार, पृष्ठ १३८

इस प्रकार जीवन के अत्यन्त निराशापूर्ण क्षणो मे भक्ति ने कवि को साहस और शक्ति दी। इसी होलिकाक में प्रसाद की रसाल मजरी कविता (पृष्ठ १२९) प्रकाशित हुई। फाल्गुन के अवसर पर ही आम्र मजरी दिखाई देने लगती है। वृक्ष मधुभार से झुक-झुक जाते है। पवन मजरी का सौरभ बिखेरने लगता है। कवि का विचार है कि ऋतुनायक की कृपा से ही रसाल मजरी को नवल रूप प्राप्त हुआ है। इसमें अब भी भीना मकरन्द है। सम्भवत किसी मधुकर ने मरन्द नही लिया। कवि मलयानिल से धीरे-धीरे आने के लिए कहता है। कोकिल से वह विनय करता है कि तनिक दूर हटकर बैठो। तुम्हारा पचम राग सुनते ही मजरी हिल उठेगी। तुम्हारे नेत्रो की लाली भी वह नही सहन कर सकती। वह पुन एक बार मलयानिल को वरज देता है·

फुल्ल कुमुद वन मांहि कीजिये तौं लौं केली
मलयानिल जब लौं बिकसै मंजरी नवेली।

फिर वह मधुकर को भी समझाता है कि तुम्हारी मधुपान की क्रिया अच्छी नही है। यह मजरी अभी नवीन है। अन्त मे कहता है

चंचलता तजि देहु अजू अपनी विचारि के
मंजु मंजरी पाइ भार दीजे सम्हारि के।

—चित्राधार, पृष्ठ १४७

इस प्रकार कविता मे कवि कोकिल, मलयानिल, मधुकर आदि से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। जड मे चेतनता का आरोप उसने पूर्व ही आरम्भ कर दिया था। इस स्थल पर वह तन्मय होकर वार्तालाप करने लगता है। मजरी के कौमार्य की अभिव्यक्ति के लिए उसने मलयानिल, कोकिल की चपलता

को रोकने का प्रयत्न किया। अन्त में कवि एक सकेत भी दे जाता है कि चचलता छोड दो।

नवी किरण (चैत्र, सवत् १९६७) से इन्दु ने नए वर्ष में प्रवेश किया। इसमें कवि की 'ब्रह्मर्षि' कथा प्रकाशित हुई, जिसका आधार पौराणिक है। इसमे विश्वामित्र की महानता का वर्णन है। इसी कथा का अन्य स्वरूप प्रसादजी ने 'करुणालय' मे आगे चलकर लिया है, जिसमें शुन शेफ का वर्णन भी है। पौराणिक आधार पर लिखी इस कथा में कवि की सुन्दर प्राजल भाषा के दर्शन होते है। ब्रह्मर्षि कवि की प्रथम कथा है।

दसवी किरण (वैशाख शुक्ल २ सवत १९६७, पृ० १६१) मे अयोध्योद्धार नामक एक अन्य लम्बी कविता प्रकाशित हुई। आरम्भ में कुशावती नगरी का वर्णन है। सुन्दर प्रकृति चारो ओर फैली हुई है। विशाल भवनो में रत्नजटित शृगार है। राज्यप्रासाद में कुशराज कुमार शैय्या पर शयन कर रहे हैं। प्रात काल कोई कामिनी कहने लगती है,—हरिश्चन्द्र, दिलीप, रघुवश के तुम वशज हो। कवि वाल्मीकि ने उस कीर्ति का यशोगान किया है। राम के सुराज्य काही जग मे नाम रहेगा। अन्त मे कहती है

तुम छाइ रहे कुशवती, अरु सोये रघुवश की ध्वजा
उठि जागहु सुप्रभात है जेहि जागे सुख सोवती प्रजा।

कुश उसके दुख और कष्ट का कारण पूछते है। वह कहती है कि अवध नगरी आज पराधीन और विलासिता है। उसका वैभव समाप्त हो गया। उसका भाग्य ही बदल चुका है, आप उद्धार कीजिए। कुश ने वचन दिया कि वे कल ही अवध को उबारेगे। दूसरे ही दिन कुश ने कुमुद को युद्ध में परास्त किया और इस प्रकार अयोध्या का उद्धार हुआ। अन्त मे कुमुदिनी से कुश ने परिणय कर लिया और

अवध नगर सुखसाज
महा सुखमा सो छायो।
—'अयोध्या का उद्धार', चित्राधार, पृष्ठ ४५

अयोध्योद्धार मे पुन 'रघुवश' के एक कथा-खण्ड का वर्णन मिलता है। इसी के साथ रामसम्बन्धी सस्कृत ग्रन्थो का उल्लेख भी है, जो कवि के अध्ययन का परिचायक है। उसने यह भी स्वीकार किया है कि इसमे कालिदास की ही परम्परा का पालन है। 'रघुवश' के सोलहवे सर्ग के आरम्भ मे ही कहा गया है कि तब आदि साल रघुवशी वीरो ने सब मे बडे भाई कुश को प्रमुख बना

दिया क्योकि भ्रातृ प्रेम उनके कुल का धर्म रहा है।[४] इस कविता से कवि की इस शक्ति का आभास मिलता है कि वह प्रवन्ध काव्य तक भी जा सकता है। इसमे उसकी कल्पना, नवीन योजना प्रस्फुटित हुई है। उसने सस्कृत के प्रियम्वदा, सुन्दरी तथा मालिनी आदि छन्दो का भी प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त इसमें राष्ट्रीय भावना का भी आभास मिलता है। युवती का अयोध्या की हीन दशा का वर्णन तत्कालीन भारतीय परिस्थिति के निकट है। इस प्रकार सम्भव है इस कथा से कवि का साकेतिक अर्थ भी रहा हो।

इसी अक मे सम्राट सप्तम एडवर्ड के निधन पर सम्पादक ने हार्दिक शोक प्रकट किया। इसी समय प्रसाद ने 'शोकोच्छ्वास' नामक एक छोटी-सी कविता-पुस्तक भी प्रकाशित की थी। उसमें स्वर्गीय सम्राट सप्तम एडवर्ड का चित्र प्रस्तुत किया गया था। उसमें दो भाग थे। प्रथम भाग 'अश्रु प्रवाह' के अन्तर्गत वत्तीस पक्तिया थी। कवि भारत के मलीन मुख को देखकर नरपालक सातवे एडवर्ड के निधन का अनुमान कर लेता है। वह कठोर काल के सम्मुख विवश हो जाता है। सम्राट शील के सागर, उजागर थे। अन्त मे कवि उनकी आत्मा की शान्ति के लिए कामना करता है।

ग्यारहवी किरण (ज्येष्ठ सवत १९६७, पृष्ठ १८१) मे, प्रसादजी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन शीर्षक लेख मे काव्य की विवेचना की। भारत शीर्षक कविता मे प्रथम वार उनकी राष्ट्रीय भावना स्पष्ट रूप मे सम्मुख आई। कवि को दुख है कि उसका सुन्दर भारत आज नष्ट हो गया है। वह भारत भाग्य दिवाकर से हिमगिरि पर उदय होने का अनुनय करता है। वह दुर्दशा का चित्रण करता हुआ कहता है कि चारो ओर पाप, कलह, द्वेष है। नई सभ्यता की कौंध चमक रही है। अन्तिम पक्तिया है

> वहुत दिवस दुख सह बीते दे सुख के अवसर
> उदय होहु हिमगिरि पर भारत भाग्य दिवाकर।

इसी के पश्चात् एडवर्ड सप्तम के निधन पर लिखा गया दूसरा खड 'समाधि सुमन' है। इसमे चौवीस पक्तिया है। कवि धरा को कोमल हो जाने के लिए कहता है क्योकि उसी मे सम्राट सो रहे है। 'शोकोच्छ्वास' और 'समाधि-सुमन' को वाद मे कवि ने एक पुस्तिका-रूप मे प्रकाशित करवाया।

इस प्रकार कवि ने सम्राट के निधन पर शोक प्रकट किया, साथ ही भारत

---

४. अथेतरे सप्त रघुप्रवीरा ज्येष्ठं पुरोजन्मतया गुणैश्च।
चक्रु कुशं रत्न विशेष-भाजं सौभ्रात्रयेषाहि कुलानुसारि।

की दुर्दशा से क्षुब्ध होकर राष्ट्रीय उदबोधन का गीत गाया। यही दशा राजनैतिक क्षेत्र में भी थी। भारतीय नेता अग्रेजो के ऋणी थे। उन अधिकाश नेताओ ने विदेश मे शिक्षा पाई थी। उन्होंने स्वतन्त्रता के सुख को जाना था। देश-विदेश के पर्यटन तथा अध्ययन से ही उन्हे नवीन ज्ञान और प्रकाश मिला था। भारतेन्दु ने स्वय इस ऋण को स्वीकार किया, पर साथ ही उन्हे दुख भी था।[१] उन्होंने सम्राट् एडवर्ड सप्तम के आगमन पर कविता लिखी थी। अग्रेजो ने देशहित के अनेक कार्य किए थे। रेलें, सडकें, पाठशाला आदि सुख, साधन निर्माण किए गए थे। इस प्रकार भारतीय नेताओ मे अग्रेजो के प्रति कृतज्ञता की एक भावना थी, किन्तु साथ ही विद्रोह भी। इसी वैधानिक राष्ट्रीय भावना के कारण क्रान्तिकारियो को जनता का सहयोग न प्राप्त हो सका। अन्त मे काग्रेस मे गरम दलवालो के स्थान पर नरम दलवालो का प्राधान्य हुआ। गाधी की अहिंसा ही अन्त मे विजयी हुई। काग्रेस किसी प्रकार की हिंसा के पक्ष में नही थी वह वैधानिक उपायो से स्वतत्रता चाहती थी। सन् १९१२ में लार्ड हार्डिज पर वम फेंका गया। इस पर बाकीपुर में काग्रेस ने सभापति के भाषण के बाद, बरखास्त होने के रिवाज को तोडकर इस घटना पर दुख प्रकट किया। साथ ही प्रेस ऐक्ट का कई सालो तक काग्रेस ने विरोध किया। १९१४ में इसी आशय का एक प्रस्ताव पास किया गया, 'हिन्दुस्तान के लोगो ने जिस राजभक्ति का परिचय दिया है, उसे देखने हुए यह काग्रेस सरकार से प्रार्थना करती है कि वह इस राजभक्ति को और गहरी व स्थिर बनावे [१]।' प्रसादजी हिंसावादी नही थे। उनकी इन दो कविताओ में इसी राजभक्ति और राष्ट्रीयता का समन्वय है। वे सदा गाधीवाद के समर्थक रहे।

बारहवी किरण (आषाढ सवत् १९६७) में स्मृति शीर्षक कविता है। व्रज मे उद्धव लौट आए। वे नन्दनन्दन को वृन्दावन की कथा सुनाने लगे। उद्धवजी कहते है वृन्दावन मे सघन कुज और सुन्दर प्रसून विकसित है। मधुकरगण मदहोश होकर नृत्य करते है। अनेक प्रकार के सुन्दर वृक्ष भी वहा शोभायमान है। किन्तु व्रज की बालाएँ अत्यन्त दुखी है। वे तुम्हे खोजते-खोजते व्याकुल हो उठती है। आज भी वशीवट मे सुन्दर समीर वहता है। यमुना-तट पर वह लहर जाता है। किन्तु—

---

५ अगरेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।

६ काग्रेस का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ६७, ६८

तव वियोगवस बाला अंचल नाहि उड़ावत
कृश शरीर सो वृन्दावन महं धीरे धावत ।

कृष्ण जी सम्भवत उस कथा को सुनकर द्रवीभूत हो गए, बोले, यह गाथा सुनकर आज भी मन विह्वल हो जाता है। मझे उसी सुखकारी वृन्दावन तथा गोपिकाओ के सहवास का स्मरण हो आता है। हम वन-वन में गलबाही देकर विहार करते थे। मेरी ही चितवन में वे सम्पूर्ण ससार भूल जाती थी। मेरी इच्छा है कि एक बार पुन यमुना के तीर, तमाल के कुजो में, वृजबालाओ के अक मे विहार करूँ। इतना ही नही

तरु छाया में वंशीवट में, वृन्दावन में
एक बार विहरौं फिर ऊधो वा मधुबन में

उद्धवशतक के विख्यात कथानक का एक अश इस कविता में मिलता है। कवि अन्त मे कृष्ण को प्रेम-विभोर की अवस्था मे चित्रित करता है। उनकी समस्त स्मृतिया जागृत हो उठती हैं और वे वृन्दावन के उस अतीत को एक बार पुन पा लेने के लिए विकल हो जाते हैं।

इसी किरण मे (२०८ पृष्ठ) 'रसाल' कविता है। कवि रसाल को तरुवरराज कहकर सम्बोधित करता है। रसाल के ही कारण कानन में मजरी की मधुर गन्ध भरी रहती है, मधुलोभी मधुकर गुजार करते हैं। कवि उसे सुखद बताता है। ग्रीष्म के निदाघ मे उससे श्रमित पथिक को सुशीतल छाया मिलती है। हरित सघन रूप को निरखते ही पथिक के हृदय में सुख बरस जाता है। नवलघन देखते ही उसका तन पुलकित हो उठता है। पल्लव, कोपल हो जाते हैं। अन्त मे कवि का कथन है

लहत अपार यश परम रसाल
विहग करत गान बैठि तव डाल।
—चित्राधार, पृष्ठ १४९

इसी वर्ष 'सरोज' (१९१० ई०) के प्रथम अक के लिए कवि ने लिखा था—

अरुण अभ्युदय से हो मुदित मन, प्रशान्त सरसी में खिल रहा है
प्रथम पत्र का प्रसार करके, सरोज अलिगण से मिल रहा है।

* * *

तुम्हारे केसर से हो सुगन्धित, परागमय ही रहे मधुव्रत
प्रसाद विश्वेश का हो तुम पर, यही हृदय से निकल रहा है।

कला २, किरण १, श्रावण शुक्ल २, सम्वत १९६७ से 'इन्दु' पत्रिका अपने द्वितीय वर्ष मे प्रवेश करती है। सम्भवत इस एक वर्ष के जीवन को कवि

ईश्वर की ही कृपा मानता है। वह प्रार्थना करता है, महेश्वर की ओर शकरजी के अनेक रूप प्रस्तुत करता है। मस्तक पर विशाल जटाएँ है, मानो शरद् के घन, वे नागचर्म परिधान किए है, कण्ठ मे नागहार है। कवि बरबस ही कह उठता है —हे अनाथनाथ, कामदेव का दमन करनेवाले, तुम्हे मै प्रणाम करता हूँ। वेद के अनुसार तुम अनादि, अनन्त पुरुष हो। नाथ, तुम्हारा अन्त ही नहीं मिलता। सुनता हूँ, आपका निवास श्मशान में भी है। इस प्रकार कवि शकर के सभी रूपो का वर्णन कर जाता है। अन्त मे पुन शिव शब्द का माहात्म्य बताता है, कहता है—हे देव, दीन केवल तुम तक ही आ सकता है, तुम्हारा ओढर नाम है न। मै आज तक इधर-उधर भटकता रहा, कभी शान्ति न पा सका

चन्द्रभाल सुचन्द्र नैन, त्रिनैन गिरीश, गिरीश
रक्ष रक्ष कृपालु पाहि, दयाब्धि हे जगदीश।

इस प्रार्थना से कवि की आन्तरिक भावनाओ का परिचय प्राप्त हो जाता है। इसी अवसर पर वह ससार के अनेक कष्टो मे उलझ गया था। वह अपने भगवान शकर से इसके निवारण की प्रार्थना करता है। कवि का यह आत्म-समर्पण परिस्थिति-जन्य है। यही भक्ति क्रमश दर्शन मे परिवर्तित हो जाती है।

इसी किरण मे (पृष्ठ ४) 'सन्ध्यातारा' कविता प्रकाशित हुई। कवि अन्य प्राकृतिक अवयवो की भाति इससे भी सम्बोधित करके ही कहता है—तारा, तुम सुन्दर वर्ण होकर गगन मे झलक रहे हो, तुम्हारा रूप अत्यन्त सुन्दर है। अनुपम सध्या सुकुमारी आशा के समान एक तारा ग्रहण करती है। प्राची की तरुणी प्रभात मिलन की आशा से एकटक देख रही है। नीलघन चिकुर भार से कामिनी दबी जा रही है। भयभीत नाविक को यह दीप पथ दिखा रहा है। अन्त मे कवि कहता है

शान्ति निशा महिषी को राजचिन्ह रूप
तुमहि लखत सन्ध्या तारा शुभ रूप।

—चित्राधार, पृष्ठ १६०

इसके अतिरिक्त इसी किरण मे (पृष्ठ १२) पचायत शीर्षक कथा और चम्पू लेख (पृष्ठ १५) भी है। पचायत के आरम्भ मे मन्दाकिनी के तट पर रमणीक भवन मे स्कन्द और गणेश टहल रहे है। तभी नारदजी आ जाते है। विवाद बढते देख वे कहते है कि पचायत निर्णय करेगी। नारद ने जाकर शकर से सभी कथा कह दी। शकर ने कहा कि अपने पिता को निर्णायक बनाओ। ब्रह्मा ने भी नारद को कलहकारी बनाया और सभी को शकर के सम्मुख एकत्र होने को कहा। पचायत जम गई थी, ब्रह्मा ने कहा कि ससार की परि-

क्रमा पूर्व ही कर लेने वाला व्यक्ति महान होगा । स्कन्द मयूर पर चल पडे । गणेश ने केवल माता पिता की परिक्रमा की । ब्रह्मा ने निर्णय किया, उन्होने विश्वरूप जगज्जनक, जननी ही की परिक्रमा कर ली, सो भी तुम्हारे पहले ही ।[७]

'चम्पू' लेख का भी कारण है । प्रसाद के चम्पू की तीव्र आलोचना लाला भगवानदीन ने की थी । कवि ने इसी कारण यह विद्वत्तापूर्ण लेख प्रस्तुत किया । साहित्यदर्पण, अग्निपुराण आदि प्राचीन भारतीय ग्रन्थो में चम्पू का वर्णन मिलता है[८] । यह एक गद्य-पद्यमय रचना है । इसके २८ भेद माने गए है । अग्निपुराण के 'मिश्र वपुरिति ख्यात' के अनुसार वह एक मिश्रकाव्य है । प्रसाद गद्य पद्यात्मक काव्य को चम्पू कहते है । संस्कृत में रामायण चम्पू, भारत-चम्पू आदि है । हिन्दी मे उनका अभाव है । उन्होने हिन्दी के ६ चम्पू भी गिनाए ।

इसी किरण मे (पृष्ठ १८) प्रसाद का 'कवि और कविता' लेख भी प्रकाशित हुआ । इन्दु के आरम्भ में ही वे साहित्य की व्यापकता का निर्देश कर चुके थे । पूर्ववर्ती रचनाओ मे काव्य, साहित्य की इसी स्वच्छन्द धारा का परिचय प्राप्त होता है । कवि इन दिनो भारतीय साहित्य के अध्ययन मे लगा हुआ था । इसी कारण अब तक की रचनाओ में पौराणिक, प्राचीन कथाओ के रूपान्तर मिलते है, अथवा परम्परागत विषयो का प्रतिपादन । वनमिलन, अयोध्या का उद्धार आदि में कालिदास से कवि ने प्रेरणा ली । शारदीय शोभा, रसाल मजरी, सध्यातारा, प्रार्थना आदि अत्यन्त प्राचीन विषय है । अभी कवि को नवीन कथावस्तु अधिक नही प्राप्त हो रही थी, किन्तु इन प्राचीन विषयो के प्रतिपादन मे प्रसाद की मौलिकता और नवीनता लक्षित होती है । नवीन उपमा, सुन्दर भाषा कवि की प्रतिभा का परिचय देते है । 'कवि और कविता' मे प्रसाद ने अपने नए दृष्टिकोण को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया । आरम्भ मे ही वे कहते है 'कवियो को लोगो ने सृष्टिकर्ता माना है, . । वह ससार के साचे में नही ढलता किन्तु ससार को अपने साचे मे ढालना चाहता है । मनुष्य के हृदय के लिए वह बडी सुन्दर सृष्टि रचता है, जिसमे प्रवेश करने से कविता-

---

७. चित्राधार, पृष्ठ ११७

८. दृश्य श्रव्यत्व भेदेन पुनः काव्यम् द्विधामतम्—साहित्य दर्पण ।
दृश्यं श्रव्यमिति द्वेधा तत्काव्यं परकीर्तितम्—गद्य काव्य मीमांसा ।
—अम्बिकादत्त ।
गद्यं पद्यं, गद्यपद्यं श्रव्यमितित्रिधा—नरहरि चम्पू ।
गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते—साहित्य दर्पण ।

पाठक एक प्रकार वाह्यज्ञानशून्य होकर नित्य वसन्तमय कनक-कमल-मकरन्दपूर कानन में आनन्दमय समय व्यतीत करता है।' प्रसादजी कवि की सृष्टि को विलक्षण चमत्कारिणी बताते हैं। इसी से सच्चा कवि अमर जीवन लाभ करता है। वह कल्पनाप्रधान होता है। वह सौन्दर्य का आलोचक भी है। इस अवसर पर प्रसाद ने तुलसी के गिरा अनयन नयन बिनु बानी का उदाहरण दिया है। कवि का एक अन्य गुण वे प्रकृति-ज्ञान मानते हैं। प्रकृति से कवि का तादात्म्य हो जाता है। वाल्मीकि ने रामायण की रचना कुसुमित बन मे की थी। कविता में अपार शक्ति होती है। वह भाव परिवर्तित करा सकती है। सच्ची कविता से अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है।

कविता की एक रूपरेखा निश्चित कर देने के पश्चात प्रसादजी उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार करते है। कविता प्राय सब भाषाओ में पद्यमय देखी जाती है[१]। वेद भी छन्दमय है। इस पद्यमय रचना का कारण कवि उसके सक्षिप्त रूप, प्रभावमयता और चिरस्थायित्व को बताता है। चित्रकारी, सगीत आदि मे कविता की भाति शक्ति नही होती। उत्तररामचरित, शाकुन्तल, रामचरितमानस आदि से उदाहरण देकर प्रसाद कविता की अनभूति पर विचार करते है। इसी स्थल पर उन्होने कविता के दो भाग कर दिए कथामूलक, भावमूलक। कथामूलक काव्य में प्राय ऐतिहासिक वा पौराणिक आधार होता है। समयानुकूल अथवा आवश्यकतानुसार ही भाव का समावेश दिखाई पडता है। भावमूलक कविता में भाव की प्रधानता रहती है, जैसे वेणीसहार नाटक। हिन्दी में उन्होने श्रीधर पाठक के ऊजड ग्राम को इसी भावमूलक विभाग के अन्तर्गत रक्खा है। प्रेमपथिक की कथा स्वय एकान्तवासी योगी के अधिक समीप है, जो गोल्डस्मिथ के 'दि हरमिट' का अनुवाद है। इसी अवसर पर प्रसाद नायिकाभेद से भरी शृगार रस की कविता का विरोध करते है। शृगार रस के विषय मे लिखते हुए वे कहते है कि 'हिन्दी मे वैष्णव कवियो की प्रधानता है, और उन्ही की कविता व्रजभाषा की मूल है। सूर, केशव, तुलसी, तोपनिधि आदि वैष्णव कवि है। केवल

---

१ The combination of dancing with some kind of choral singing, and often also with instrumental music is very widespread

—The Growth of Literature, Vol III, by H M. Chadwick, N K. Chadwick, page 875

नायिकाओ मे शृंगार रस को सीमित कर देने से उसका सौन्दर्य नष्ट हो गया। वास्तव मे कालिदास के शृंगार वर्णन की पवित्रता ही उसे एक महान काव्य बना देती है। ऋषिकन्या शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के हृदय में जो आसक्ति उत्पन्न हुई उसे भी समाज बन्धन में ले आने के लिए कविकुलगुरु कालिदास कैसा अच्छा लिखते है :

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्य्यमस्यामभिलाषि मे मनः
संताहि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरण प्रवृत्तयः।

प्रसादजी जयदेव के गीतगोविन्द से एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वे कहते है कि 'हिन्दी मे वसन्तकानन की मधुर शोभा है, पर गम्भीर तरगमय अनन्त महासागर की कल्लोलमालायें दृष्टिगोचर नही होती है। अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी अपने को भुला देनेवाली कविताओ की आवश्यकता है।'

प्रसाद के काव्य विकास की दृष्टि से यह लेख महत्वपूर्ण है। प्रसादजी ने कवि के तीन गुण माने है---कल्पना शक्ति, सौन्दर्य की आलोचना और प्रकृतिज्ञान। कवि ने शृंगार-रस का एक नवीन, उदात्त सस्करण प्रस्तुत किया। उनके आदर्श कालिदास है। इसमें सन्देह नही कि कवि ने जिस महान उद्देश्य की घोषणा इस लेख मे कर दी है, उसी की पूर्ति में वह आजीवन प्रयत्नशील रहा।

इसी के पश्चात् (पृष्ठ २४) 'वर्षा मे नदी कूल' कविता है। इसमें कवि ने त्रिपदी छन्द का प्रयोग किया। आरम्भ में ही सुन्दर मेघो का वर्णन है। मलयानिल चला जा रहा है। कादम्बिनि सुन्दर रूप सवार कर आ गई है। नदी में हिलोरे उठ रही है। उसकी धारा कल कल करती हुई बही जा रही है। अन्त मे कवि उस सुन्दरता पर मुग्ध हो उठता है।

कूल तरुश्रेनी, अति सुखदेनी सुन्दर रूप विराजे
वर्षा नटिनि के पट मनोहर, चारु किनारी राजे।

—चित्राधार, पृष्ठ १५०

दूसरी किरण (भाद्रपद शुक्ल २ सवत १९६७) में मुखपृष्ठ पर ही 'पावस' कविता मिलती है। पावस का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि आरम्भ में ही सुन्दर कदम्ब पर चढी हुई मालती की शोभा देखता है। शस्य-श्यामला पर सुमन बिखरे है। वसुन्धरा नव तृण गुल्मो से शोभायमान है। यह हरित वितान वर्षा का आसन-सा प्रतीत हो रहा है। गिरिशृंगो पर शिखी मेघो के साथ सुशोभित है। कोकिल की कुहू कुहू सुन्दर वाणी को भी लज्जित कर देती है। नदी कूलों में दबी चली जा रही है। सुरभित पवन

सभी को मदमत्त कर देता है, मानो मनोहर कामिनी शीतल कर से हृदय का स्पर्श कर रही हो। अन्त में कवि पावस से ही कह उठता है

तुम अति सुन्दर हे पावस हो बने चारु सुखदायी
तुमहि वियोगी औ सयोगी, सबहि लखे टकलाई।

अब तक 'कलाधर' 'प्रसाद' हो चुके थे। इस कविता में कालिदास की भाति ऋतुवर्णन का प्रयास दिखाई देता है। यद्यपि ऋतुसहार के वर्णन में विशद कल्पना-योजना है, किन्तु प्रसाद के इस पावस में भी एक चित्र प्रस्तुत हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस किरण में इन्द्रधनुष, चित्र, नीरद तीन अन्य कविताएँ है। इन्द्रधनुष में कवि आरम्भ में ही उसके सप्तवर्ण का चित्र प्रस्तुत करता है। इसमें अनेक उपमाएँ भी कवि ने रखी है। सम्भवत भानु के सप्तअश्व की यह वल्गा है अथवा मेघ-वाहन का धनुष। चित्र कविता में एक प्रगतिशील जीवन दर्शन की नियोजना है। आशा की नदी का कूल नही मिलता। कुसुम स्वच्छन्द पवन के विना नही खिलता। कमलाकर में चतुर अलि भूल जाता है। अन्त में कवि का सन्देश है

मन को अथाह गम्भीर समुद्र बनाओ
चचल तरग को चित से वेग हटाओ।

नीरद (पृष्ठ १६०) में कवि आरम्भ मे उसका एक चित्र खीचता है। इसमें कृषक-जन को हर्षित करने की शक्ति है। प्रकृति प्रसन्न हो उठती है। चातक भी नाच उठे है। वास्तव में नीरद जीवनदाता है। इस प्रकार प्रकृति की इन चार कविताओ में कवि धीरे-धीरे एक व्यापक रगमच पर आता प्रतीत होता है। खडीबोली का भी प्रयास आरम्भ हो गया है। इसी में ग्राम कहानी प्रकाशित हुई जिसमे अग्रेजी शब्द भी आए है।

तीसरी किरण (आश्विन शुक्ल २, सवत १९६७) में दो कविताएँ है— विभो और अष्टमूर्ति। विभो में कवि ने ईश्वर से प्रार्थना की है। यद्यपि वह पातकी है, फिर भी दास। वह ज्ञान के प्रकाश की भिक्षा मागता है। यहा पर प्रसाद की भक्ति-भावना अधिक व्यापक हो गई है। वह केवल शिव को ही नही वरन् देव को भी अपनी सहायता के लिए पुकारते है। अष्टमूर्ति में कवि प्रभो को धरा, कीलाल, वैश्वानर, आकाश, समीर, दिनेश, चन्द्र आदि आठ रूपो में देखता है। उसे सर्वत्र ईश्वर की माया दृष्टिगोचर होती है। उसने उनके सर्वव्यापी रूप को जान लिया। अन्त मे प्रार्थना करता है

दुखी जनो के दुख को निवारि के
सुखी करे धर्म महा प्रचारि के ।
—चित्राधार, पृष्ठ १३९

इस प्रकार शैव-कवि क्रमश व्यापक भावना की ओर अग्रसर हो रहा है। समय-समय पर वह जीवन-पथ पर चलता हुआ ईश्वर को सहायता के लिए पुकार लेता है। उसे इस प्रकार एक नवीन शक्ति प्राप्त होती है। इसी में चन्दा कहानी भी प्रकाशित हुई।

चौथी किरण (कार्तिक शुक्ल २, सवत १९६७) मे मुखपृष्ठ पर ही 'शारदीय महापूजन' है। इस कविता में शारदा की वन्दना की गई है। उन्हे विश्वधारिणी, विश्वपालिनी, विश्वेशि आदि गुणो से अलकृत किया गया है। दूसरी कविता विनय है। भक्तिभावना से अनुप्राणित कवि ईश्वर को वरदायक रूप में स्वीकार करता है।

इन दोनो ही भक्त कविताओ के पश्चात् प्रसाद का 'कविता रसास्वाद' लेख है। पूर्व लेख कवि और कविता में वे अपने नवीन दृष्टिकोण का प्रतिपादन कर चुके थे। लेख के आरम्भ मे ही प्रसादजी कविता के विषय मे श्रीहर्ष और साहित्यदर्पणकार की परिभाषा प्रस्तुत करते है[१०]। वे कविता के आस्वाद को अनोखा मानते है। उसके लिए सहृदयता की अपेक्षा है। वह अपूर्व आह्लाद प्रदान करती है। प्रसादजी ने वाल्मीकि रामायण से उदाहरण प्रस्तुत किए। अन्त मे उनका विचार है कि उसका आनन्द सत्वमय है, लक्ष्य सप्रकाशानन्द। इसी प्रकार प्रसाद ने कविता के अन्य अगो पर विचार किया, जिसमे साहित्यशास्त्र के नवनिर्माण की भावना निहित है।

इसी कला मे चार अन्य कविताएँ भी है, प्राभातिक कुसुम, शरत-पूर्णिमा, काशी, विस्मृत प्रेम। ये सभी अब 'चित्राधार' में सगृहीत है। प्रथम तीन कविताएँ प्रकृतिविषयक है। उन सभी के रूप गुणो पर वह रीझ उठता है, पर तादात्म्य नही हो पाता। विस्मृत प्रेम मे कवि ने अपने प्रेमदर्शन का प्रतिपादन किया। छोटी-सी कविता के रूप मे यह प्रथम प्रयास है। इसके पूर्व प्रेमपथिक, प्रेमराज्य ने कवि अपने प्रेमदर्शन की अभिव्यक्ति कर चुका है। विस्मृत प्रेम में कवि आश्चर्य करता है कि छवि पूर्ण होने पर भी हिय क्यो चकचूर है। यद्यपि सिन्धु की तरगो मे सब कुछ विलीन हो चुका है, प्रणय की

---

१०. सत्वोद्रेकादखण्डस्व प्रकाशानन्दचिन्मय। वेदान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मानन्द सहोदर '—साहित्यदर्पण।

लिपि भी घुल गई, किन्तु अब भी मन राग नही त्याग देता। कवि हृदय से अपने प्रश्न का उत्तर मागता है, कि विस्मरण क्यो नही करता ! ऊपर हरी मेंहदी, किन्तु भीतर अरुणिमा, ऐसी ही मन की दशा है। अब भी अस्फुट हृदय गूज उठता है। शून्य नभ की भाति हृदय निराश क्यो हो गया ? इस प्रकार कवि के हृदय में धीरे-धीरे जिज्ञासा का उदय हो रहा है, जो आगे चलकर दर्शन में परिणत हो जाती है।

पाचवी किरण (मार्गशीर्ष शुक्ल २, सवत् १९६७) में 'जलविहारिणी' कविता है। इसकी भाषा भी खडीबोली है। चन्द्रिका अपनी अनुपम छटा दिखला रही है। कुसुम कलिया खिल रही है। दूर-दूर तक सुधा का सुन्दर सरोवर हिलोरें ले रहा है। सम्मुख ही गिरिश्रेणी तथा उपवन है। प्रकृति का मनमुग्धकारी गान गूज रहा है। शैल सिर उठाकर हिरण के समान खडा है। न जाने कहा से सुन्दर शब्द आ रहे है। स्वच्छ सुन्दर नीर की चचल तरगो मे छोटी-सी मनमोहिनी तरी चली जा रही है। आकाश मे पख फैलाकर विहगम उडा जा रहा है। चन्द्रमा के साथ ही शुक्र की उपमा में कवि कहता है

> या नवीना कामिनी की दीखती जोडी भली
> एक विकसित कुसुम है तो दूसरी जैसे कली।
>
> —कानन-कुसुम, पृष्ठ ४१

विद्याधर की बालिकाएँ जलविहार करने आ गई है। कवि सम्पूर्ण चित्र का सरस वर्णन करता हुआ अन्त में प्रकृति के इस अलौकिक रूप पर रीझ उठता है। इस प्रकार वह प्रकृति के अन्तरतम मे प्रवेश कर रहा है। उसका कुतूहल भी जाग उठा है। खडीबोली की इन आरम्भिक कविताओ में प्रसाद के विकास को देखा जा सकता है।

फिर सातवी किरण (माघ शुक्ल २, सवत १९६७, पृष्ठ २६९) में 'नीरव प्रेम' कविता प्रकाशित हुई। कवि नीरव प्रेम की उपमा कमल कोप मे वन्दी मकरन्द से देता है। अधरो के प्रथम भाषण की भाति वह प्राण मे गूजता रहता है। इच्छा होते हुए भी भाव प्रकट नही हो पाते। प्रेम मन-ही-मन रोकर सो जाता है। समस्त ससार को मुखरित करने वाला प्रेम स्वयम् मौन रहता है। कवि का यह प्रेम दर्शन क्रमश विकसित होता चला गया। प्रसाद का प्रेम मौन रहता है। इसी मे उसकी महानता है। कवि के प्रिय और प्रेमी अपने प्रेम की अभिव्यक्ति मुख से नही करते। प्रेम सदा उनके मन, प्राणो में गूजा करता है। देवसेना, मालविका अपने मूक प्रेम मे ही अमर है। यौवन

के प्रथम पहर का कवि-हृदय इन पक्तियो मे बोल रहा है। कवि धीरे-धीरे परम्पराओ से दूर होता जा रहा है। नीरव प्रेम के इस दर्शन मे कामायनी के लज्जा सर्ग का वीज निहित है, क्योकि वहा भी

भाषा बन भौंहो की काली
रेखा सी भ्रम में पड़ी रही।

इसी के विकास ने छायावाद के रहस्योन्मुख प्रेम का प्रसार किया।

इसके अनन्तर चार किरणे होलिकाक (फाल्गुन-ज्येष्ठ, सवत १९६७-६८) के रूप मे प्रकाशित हुई। इसमे होली का गुलाल कविता है। कवि ने प्रेम के रग को ही फाग मे उडते हुए दिखाया है। इसी के साथ विसर्जन, चन्द्रोदय आदि कविताएँ है और सज्जन नामक उनका प्रथम नाटक। चन्द्रोदय प्रकृति विपयक कविता है। अनेक उपमाओ के कारण प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण नही हो सका। विसर्जन मे कवि प्रेम की मृगतृष्णा मे भूला प्रतीत होता है। वह अपने हृदय को अनेक प्रकार सान्त्वना देने का प्रयत्न करता है। आशा, निराशा के झूलो पर अव वह नही झूलना चाहता। इस प्रकार कवि प्रेम की विविधता पर आ रहा है। 'सज्जन' प्रसादजी का नाटक के क्षेत्र मे प्रयास है। उसमे पाच छोटे-छोटे अक है। कथावस्तु महाभारत के पाडव-कौरव सघर्प से ली गई है। अन्त मे धर्म का राज्य होता है। पुन वारहवी किरण मे (आपाढ शुक्ल २, सवत १९६८) वभ्रुवाहन नामक पौराणिक कथा प्रकाशित हुई। इसमे वीच-वीच मे दो चार प्रकृति सम्वन्धी कविताएँ भी है।

तीसरी कला (आश्विन, सवत १९६८) से इन्दु ने तीसरे वर्प मे प्रवेश किया। प्रथम किरण में ही चार कविताएँ है। 'भारतेन्दु प्रकाश' मे कवि ने भारतेन्दु के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की है। प्रसाद उनसे अत्यन्त प्रभावित थे। उनकी धारणा थी कि भारतेन्दु ने शृगार रस का परिष्कार किया और हिन्दी रगमच की स्वतन्त्र स्थापना भी की[११]। इस कविता मे भारतेन्दु का लाक्षणिक अर्थ लेकर उनके गुणो का वर्णन किया गया। हिन्दी रजनीगन्धा उन्ही से खिल सकी। अन्य तीन कविताएँ खडी वोली मे है। 'प्रभो' मे कवि ने पुन प्रार्थना की। 'रजनीगन्धा' के आरम्भ मे कवि ने सन्ध्या का वर्णन किया है। रजनी के आगमन के साथ-ही-साथ रजनीगन्धा भी खिल गई। निशा सखी के लिए उसके हृदय मे अपार प्रेम है। 'देवमन्दिर' मे कवि ने समस्त विश्व को ही अदृश्य शक्ति का अनन्त मन्दिर मान लिया है। आत्मा-परमात्मा

११. काव्य और कला, पृष्ठ ७४

के सम्बन्ध में भी उसने विचार किया। पचभौतिक शरीर में ही वह मन्दिर है। वह सर्वव्यापी है। इस प्रकार कवि दर्शन की ओर अग्रसर होता प्रतीत होता है।

दूसरी किरण (कार्तिक सवत १९६८) में एकान्त में, ठहरो, बालक्रीडा तीन खडी बोली की कविताएँ है। 'एकान्त मे' कवि प्रकृति के नीरव सौन्दर्य का चित्रण करता है। अन्त में ससार की निस्तब्धता को उस पूर्ण से मिलाकर जडप्रकृति को सब जीव में अनमिल रहने देता है। 'ठहरो' में कवि नम्र बनने के लिए सान्त्वना चाहता है। 'बालक्रीडा' की प्रेरणा कवि को बालको की नैसर्गिक भावना से प्राप्त हुई है। इन कविताओं में भाषा का प्राजल रूप स्पष्ट दिखाई देता है। कवि को खडी बोली में भी सफलता प्राप्त हो रही है।

दो के पश्चात् तीसरी किरण में प्रसादजी ने राजराजेश्वर नामक कविता में दिल्ली के दरबार का वर्णन किया। इसके तीन भाग है। स्वागत में कवि प्रफुल्लित भारत को देखकर सम्राट के आगमन की कल्पना कर लेता है। वह शासन की बडाई भी करता है। दरबार में ब्रिटिश सिंह की दहाड का वर्णन है। श्रीयुत पचमजार्ज और श्रीमती रानी मेरी को सिंहासनारूढ दिखाया गया है। घर-घर में आनन्द छाया है। सर्वत्र राजेश्वर का ही तो यशोगान हो रहा है। अन्त में कवि राजेश्वर को विदा देता है। वह राजा से प्रार्थना करता है कि भारत का भी हृदय में ध्यान रखिएगा। भारत ने आपको राजा माना है। अन्त मे कहता है

> भारत को भी सुखी बना दो, रहे न आरत
> तुम नहिं भूलो इसे, तुम्हें नहिं भूले भारत।

इसे प्रसाद जी ने पुस्तकाकार भी प्रकाशित करा दिया था। इसी के पश्चात् (पृष्ठ २०६) 'नववसन्त' कविता है। इसमे पूर्णिमा का वर्णन आरम्भ में है। यमुना के जल में इन्दु प्रतिबिम्बित हो रहा है। निकट ही कुसुम-कानन तथा शुभ्र प्रासाद है। मनोहर कुज में एक सुन्दरी बैठी है। धृष्ट मारुत उसके अचल को उडा देता है। कामिनी अन्यमनस्क होकर टहलने लगी, तभी एक युवक आ गया। दोनो ही तन्मय हो उठे, और

> दृश्य सुन्दर हो गए, मन में अपूर्व विकास था
> आन्तरिक औ बाह्य सबमें नव वसन्त विलास था।

इस लघु प्रेमकथा मे कवि ने मिलन का मधुर चित्र प्रस्तुत किया है। इसी के अनन्तर 'वसन्त विनोद' शीर्षक मे लगभग दस ब्रजभाषा की कविताएँ

है[१२]। 'वसन्त' में कवि प्रश्न करता है कि तूने कौन-सा मन्त्र पढ दिया। पतझर ने रोष से जिन द्रुमो को पल्लवविहीन कर दिया था, उनमें तूने सुमन लगा दिए। 'चन्द्र' में कवि ने चकोरी की ओर देखने की अनुनय-विनय की है। न जाने कब से वह रूप-सुधा की प्यासी तेरी आस लगाए बैठी है। 'कोकिल' मे कवि यह जानने के हेतु उत्सुक है कि वह किसकी धुन लगाए है, वह किसे चाहता है। 'चातक' में कवि प्रेमी के परिणाम पूछता है। सब सुधि बिसारि के घन की ओर देखनेवाले चातक को कौन-सा सुख मिल जाता है? वह पाषाण कभी न द्रवित होगा। सिरिस सुमन कानन में पुण्य से पूर्ण प्रेम का पुज है। अपनी समस्त सुकुमारता को लेकर वह भ्रमर का विनोद करता है। तरुवर पथिको को छाया देता है। वह उदार तपसी है, फिर भी स्वार्थ मे मूढ नर उसे काट डालते हैं। इन कवित्तो में प्रकृति के विभिन्न अवयवो का सौन्दर्य प्रश्न के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। 'आवाहन' और 'सुनो' में प्रिय से निवेदन किया जा रहा है कि

वेगि प्रानप्यारे नेक कंठ सों लगाओ तो

इस प्रकार ब्रजभाषा के इन कवित्तो में प्राचीन परम्परा की एक नवीन अभिव्यक्ति मिलती है। भाषा, छन्द परम्परागत होने पर भी कवि की व्यजना में मौलिकता है।

चौथी किरण (मार्च १९१२ ई०) में सरोज, महाक्रीडा, करुणाकुज, सौन्दर्य आदि कविताएँ प्रकाशित हुई। 'सरोज' में कवि ने प्रभात के सन्देश का वर्णन किया है। मनुष्य निर्लिप्त तथा कर्त्तव्य मे स्थिर हो, की ध्वनि प्रभाती से निकल रही है। 'महाक्रीडा' में सुन्दर प्राची का वर्णन है। कल्पना कहती है कि यह महाशिशु खेल है। इसके अनन्तर कवि चितचोर से वार्तालाप आरम्भ कर देता है। प्रकृति के कण-कण मे वह व्याप्त है, उसका छिप जाना सम्भव नही। पुरुष प्रकृति का यह खेल चिरन्तन है। इस कविता से कवि की रहस्यवादी प्रवृत्तियो का आभास मिलता है। 'करुणाकुज' मे कवि ने एक जीवन दर्शन प्रस्तुत किया है। प्रकृति के रूप में सम्भवत वह स्वयम् ही को सम्बोधित करके कह रहा है—पथिक तुम्हारा अग शिथिल और क्लान्त क्यो है? किस मृगमरीचिका में भूले हो? चारो ओर बिखरी हुई प्रकृति की विभूति तुम्हे नही दिखाई देती। त्रस्त पथिक, विश्वेश की करुणा पग-पग पर छाई है। अन्त में

---

१२. चित्राधार, 'मकरन्द बिन्दु', पृष्ठ १७१-१९०

लक्ष्मण भरत को आता देख सामना करना चाहते थे, किन्तु राम ने मना कर दिया । अन्त मे

चरण स्पर्श के लिए भरत भुज ज्यो बढे
राम बाहु गल बीच पडे, सुद्र से मढे ।
अहा विमल स्वर्गीय भाव फिर आ गया
नीलकमल मकरन्दबिन्दु से छा गया ।

—कानन-कुसुम, 'चित्रकूट', पृष्ठ ९५

इस कविता की प्रेरणा सम्भवत वाल्मीकि अथवा तुलसी है । किन्तु विषय सामग्री तुलसी के अधिक निकट प्रतीत होती है ।

आज राम सेवक जस लेऊँ । भरतहि समर सिखावन देऊँ ॥

*   *   *

सुनि रघुवर बानी बिवुध, देखि भरत पर हेतु ।
सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपानिकेतु ॥

—अयोध्याकाड

सस्कृत की कोमल-कान्त पदावली का समावेश कवि के प्रौढ रूप का परिचायक है । अन्य कविता 'भरत' (पृष्ठ ८५) है । हिमगिरि के उत्तुग शृग से कवि को भारत के गर्व का परिचय प्राप्त हो जाता है । प्रात की रवि-रश्मियो से वह मणिमय हो उठता है । निकट ही ऋषिवर्य का रम्य विशाल आश्रम है । यही एक सुन्दर बालक सिंह के शिशु से खेल रहा है । इस वीर बालक के औद्धत्य को देखकर सिहिनी क्रोध से गरजने लगी । वह रोष से तनकर बोला—क्रीडा मे बाधा देगी तू, पीट दूगा, चली जा, भाग जा । कवि भारतवासियो से इस निर्भीक बालक के विषय मे प्रश्न करते हुए कहता है कि यही भरत बालक है, जिसके नाम से इस वरभूमि को भारत की सज्ञा दी गई । कश्यप के गुरुकुल में वह शिक्षा प्राप्त कर रहा है । दुर्दैववश बिछुड जानेवाली अपनी माता की गोद मे मोद भरना है । अपने बलशाली भुजदड से उसने भारत का प्रथम साम्राज्य स्थापित किया । वह दुष्यन्त का वीर बालक है । भारत का वह शिररत्न भरत है । कालिदास ने भरत का चित्रण किया है—

अर्धपीतस्तन मातुरामर्दक्लिष्ट केसरम्
प्रक्रीडितु सिहशिशु बलात्कारेण कर्षति ।

—अभिज्ञान शाकुन्तल, सातवा अक, १४

'वह सिंहिनी के स्तनो से आधा ही दूध पिए हुए उसके शिशु को खेलने के लिए बलपूर्वक घसीटे ले जा रहा है, और उसके केसर छिटक गए हैं।'

इस अतुकान्त कविता की प्रेरणा कालिदास ही प्रतीत होते हैं। किन्तु इसमें देशप्रेम की प्रबलता है।

दूसरी किरण (फरवरी, १९१३ ई०) मे 'करुणालय' प्रकाशित हुआ। इसकी कथा का सकेत 'ब्रह्मर्षि' मे भी मिलता है। यह एक पौराणिक कथा है। इसमे अतुकान्त छन्द का प्रयोग किया गया है। यह दृश्यकाव्य गीतिनाटच के ढग पर लिखा गया। इसमे हरिश्चन्द्र सम्बन्धी कथा है। इस प्रकार क्रमश कवि की प्रबन्धशक्ति के दर्शन हो रहे हैं।

तीसरी किरण मे (मार्च १९१३ ई०) ब्रजभाषा की एक कविता 'वसन्तोत्सव' है।

> रे बसन्त रस भीगे कौन मत्र पढि दीने तू।
>
> —चित्राधार, पृष्ठ १८१

इसमें पूर्व कविता का प्रभाव प्रतीत होता है। चौथी किरण (अप्रैल, १९१३ ई०) मे 'करुण क्रन्दन', 'भक्तियोग', 'निशीथ नदी' आदि कविताएँ है। 'करुण क्रन्दन' मे कवि जीवन के झझटो से त्रस्त होकर ईश्वर से प्रार्थना करता है। दिन रात होनेवाले मानसिक विप्लवो से वह मुक्ति चाहता है। 'भक्तियोग' लम्बी कविता है। कवि आरम्भ में दिननाथ के पीत कर का वर्णन करता है। उसे ससार मे सब सुख के ही साथी दिखाई देते हैं। डूबते को कोई नही बचाता। प्रकृति के अनेक रूपक वह प्रस्तुत करता है। कवि ध्यान मे था, सन्ध्या बोली,—विश्व का आनन्द मन्दिर इसी प्रकार न खो दे। तू सुख छोडकर किसके कुहक जाल मे पडा है। तेरे भाल मे ही स्पष्ट सुख लेख है। इतना ही नही वह कहती है—

> फिर भागते हो क्यो, न हटता यो कभी निर्भीक है
>
> संसार तेरा कर रहा स्वागत, चलो, सब ठीक है।
>
> —कानन-कुसुम, पृष्ठ २८

भक्त आनन्द-विह्वल हो उठा। उसने प्रेममय सर्वेश को जान लिया। उसे समस्त ससार ही मित्र प्रतीत होने लगा। कवि सुख-दुख से ऊपर उठ जाता है। अन्त मे कहता है—

> फिर वह हमारा, हम उसी के, वह हमी, हम वह हुए
>
> तब तुम न मुझसे भिन्न हो, सब एक ही फिर हो गए।

'निशीथ नदी' मे भी कवि शीतल लहरो से चित्त की शान्ति ही चाहता है, ताकि दुख पिपासा समाप्त हो जाय। इस अवसर पर सम्भवत कवि के जीवन मे

झझावात आ रहा था । कठोर धरातल पर उसे अनेक कटु अनुभव हो रहे थे । उसके हृदय मे निराशा छा रही थी, ससार मे शूल मिल रहे थे । इस विषम वेला मे वह प्रकृति के व्यापक सौन्दर्य को देखता है । उसे एक नवीन प्रेरणा, चेतना और स्फूर्ति प्राप्त होती है । समस्त ससार को वह आत्मवत देखने लगता है । अह इद का समन्वय स्थापित हो जाता है । कवि का यह जीवनदर्शन ही उसके काव्य का प्राण है । प्रकृति और मानव के सम्बन्ध की व्याख्या बढती जा रही है । कवि का साहित्यिक व्यक्तित्व स्पष्ट हो उठता है । भक्ति मे आगे कवि का यह अन्य चरण है, जिसमे वह मानवता को अपना आधार बना रहा है ।

पाचवी किरण (मई १९१३ ई०) में दलित कुमुदिनी, प्रथम प्रभात, भूल कविताएँ है । 'दलित कुमुदिनी' मे कवि ने कालचक्र की न्यारी गति की ओर सकेत किया । 'सुन्दर सरोवर' मे कुमुदिनी विकसित हो रही थी, चारो ओर उसका सौरभ बिखर रहा था । अनायास ही किसी स्वार्थी मतवाले हाथी ने उसे पददलित कर दिया । उसका सौन्दर्य जाता रहा (कानन-कुसुम, पृष्ठ ५४) । 'प्रथम प्रभात' मे कवि की रहस्यवादी प्रवृत्तियो का आभास मिलता है । आरम्भ में ही वह कहता है कि अन्त करण के नवीन मनोहर नीड मे मनोवृत्तिया खग-कुल-सी सो रही थीं । नील गगन-सा हृदय शान्त था, बाह्य आन्तरिक प्रकृति भी सो रही थी । अचानक किसी मलयानिल ने स्पर्श से गुदगुदा दिया । मधुर-मधुर स्वर्गीय गान गाने लगा । प्राण-पपीहा आनन्द मे बोल उठा । विश्व विमल आनन्द भवन प्रतीत हुआ । मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था (झरना, पृष्ठ ५) कवि रहस्योन्मुख भावना की ओर बढता प्रतीत हो रहा है । 'भूल' गजल की शैली पर है । इसमें प्रेम की ही अभिव्यजना है ।

प्रसाद उनको न भूलो तुम, तुम्हारा जो कि प्रेमी है
न सज्जन छोडते उसको, जिसे स्वीकार करते है ।

छठी किरण (जून, १९१३ ई०) मे 'विनोद बिन्दु' शीर्षक के अन्तर्गत 'चूक हमारी', 'प्रेमोपालम्भ', 'उत्तर' व्रजभाषा मे प्रणय सम्बन्धी कविताएँ है । इनमें कवि की कल्पना, रोमान्स दोनो ही प्राप्त होते है ।

कला चार का दूसरा खड जुलाई १९१३ मे आरम्भ होता है । इसी प्रथम किरण मे 'नमस्कार' खडी बोली और 'विदाई' व्रजभाषा की कविताएँ है । 'विदाई' में कवि अपनी समस्त शुभ कामनाओ सहित विदा देता है । (चित्राधार, पृष्ठ १५६) । 'नमस्कार' मे समस्त प्रकृति मे फैली हुई सत्ता को कवि प्रणाम करता है, अन्त में कहता है—

उस मन्दिर के नाथ को, निरुपम निरमय स्वस्थ को,
नमस्कार मेरा सदा, पूरे विश्व गृहस्थ को।
—कानन-कुसुम, पृष्ठ ४,

कवि उपनिषद् दर्शन, अद्वैत भावना की ओर अग्रसर प्रतीत होता है।

दूसरी किरण में (अगस्त, १९१३) 'श्रीकृष्ण जयन्ती' लम्बी कविता है। इस अतुकान्त कविता में कवि ने किसी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथा का आधार नही ग्रहण किया। समस्त ससार को दुखी देखकर वह कृष्ण से प्रेरणा प्राप्त करता है। उसने कृष्ण के जीवन दर्शन को ही अपनाया है। आरम्भ मे ही कवि जगत के आन्तरिक अन्धकार पर दुख प्रकट करता है। प्रकृति के अणु-अणु, कण-कण मे एक सन्देश निहित है। वह द्विजकुल-चातक से ससार को ललकारने की अनुनय करता है। तब मानव जाति गोधन बनेगी। सब जीवो को परमानन्दमय कर्ममार्ग दिखाई देगा। यमुना से वह वेगपूर्वक बहने के लिए कहता है, जिससे सब कुछ हरा रहे। घन आकाश को घेर ले किन्तु अब नवल ज्योति नही छिप सकती। भवबन्धन के द्वार उन्मुक्त होगे। ससार दिव्य, अलौकिक हर्ष और आलोक प्राप्त करेगा। अन्त मे वह कहता है।

जलद जाल-सा शीतलकारी जगत को
विद्युद्वृन्द समान तेजमय ज्योति वह
प्रकट हुई। पपिहा पुकार सा मधुर औ
मनमोहन आनन्द विश्व में छा गया
बरस पड़े नव नीरद मोती ओ, जुही।
—कानन-कुसुम, पृष्ठ १२३

तीसरी किरण (सितम्बर १९१३ ई०) में 'देहु चरण मे प्रीति' शीर्षक से ब्रजभाषा की चार कविताएँ है। कवि का कथन है कि ईश्वर को करुणा-निधान, पतित-पावन जानकर ही व्यक्ति पाप करते है। पुण्य और पाप जाना नही जाता। ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है।

आगे चलकर कला पाच, खड एक, किरण एक (जनवरी १९१४) मे पतित-पावन कविता प्रकाशित हुई। इसमे ईश्वर की महान करुणा की ओर इगित किया गया। इसके अतिरिक्त 'रमणी हृदय', 'खोलो द्वार' आदि अन्य कविताएँ है। 'रमणी हृदय' में नारी-हृदय की रहस्यमयता प्रदर्शित की गई है। उसे जान लेना कठिन है। यह सानेट के आधार पर लिखी गई। 'खोलो द्वार' भी सानेट की भाति है। कवि अपार दुख मे है। वह अपने प्रियतम से द्वार खोलने

की अनुनय करता है जिससे उसका भी सुप्रभात होवे। इसी में 'प्रायश्चित्त' नामक लघु नाटक भी है।

दूसरी किरण (फरवरी १९१४ ई०) में मुखपृष्ठ पर ही 'याचना' निकली। इसमें कवि प्रार्थना करता है कि ईश्वर इतनी शक्ति दो, जिससे जीवन के समस्त सघर्षों मे भी तुझे न भूल सकूं। ससार की विषमताओ का भी उसने वर्णन किया, जो उस समय वह झेल रहा था। दूसरी कविता 'खजन' मे प्रकृति और मानवीय भावनाओ का तादात्म्य है। उसके वर्णन में भी मौलिकता है। अन्त मे कवि ने कहा।

सत्य क्या जीवन शरद् के ये प्रथम खजन अहो,

—कानन-कुसुम, पृष्ठ ६६

इसके अतिरिक्त 'विनोद विन्दु' शीर्षक से चार अन्य कविताएँ भी है। कवि के हृदय में किसी अज्ञात का प्रवेश हो गया है। उसकी सुन्दर छटा मे मन उलझ गया। जीवनघन मे कवि नवप्रकाश की याचना करता है, जिससे अमा भी राका बन जाय, सर्वत्र प्रेमपताका फहरे। चारो ओर विमल वसन्त का साम्राज्य देखकर कवि प्रसन्न है। उसके प्राणो की कोकिला पचम स्वर में कूकने लगी। (झरना, पृष्ठ ७९, ८१, ८२)। उसका हृदय बीती गाथाएँ नही सुनाना चाहता, कठ गद्गद् हो उठा है, वह कह नही सकता। इन कविताओ मे आभासित है कि कवि का सक्रमण काल लगभग समाप्त हो गया है और उसकी अनुभूति व्यापक होती जा रही है।

तीसरी किरण (मार्च १९१४) मे मुखपृष्ठ पर 'हा सारथे रथ रोक दो' कविता है। आराधना की साधिका भूमि को देखकर कवि रुक जाना चाहता है। इसी स्थल पर सर्वस्व की साधना हुई थी। वह स्मृति का समाधिस्थान है। इसके अतिरिक्त 'मकरन्द विन्दु' शीर्षक मे व्रजभाषा की चार कविताएं है। कवि स्वयम् को करुणानिधि के हाथो मे समर्पित कर देता है। वह चरण कमल मे मनमधुकर को लीन कर देना चाहता है।

चौथी किरण (अप्रैल १९१४) मे 'गगासागर', 'विरह', 'मोहन' कविताएँ है। 'गगासागर' का कवि अपने प्रिय को अगाध सागर मानता है। वह मन के मिलन को ही वास्तविक कहता है। अन्त मे प्रिय के उदार वक्ष में स्थान चाहता है, जिससे सुख से रह सके। 'विरह' मे प्रेम की नीद को ही स्मृति का जागरण कहा गया है। 'मोहन' मे कवि सुप्रेम-रस का प्याला पिला देने की

अनुनय करता है। विश्व-भर में फैले हुए सौन्दर्य की एक रस बूद वह भी मागता है। अन्त में प्रार्थना करता है .

आनन्द से पुलककर, हों रोम रोम भीने
संगीत वह सुधामय अपना सुना दे मोहन ।
—कानन-कुसुम, पृष्ठ ७८

पाचवी किरण (मई १९१४ ई०) की प्रथम कविता 'मिलन' है। कवि के प्राण गृहपति सदृश अपने प्राणाधार से मिल रहे है। फिर मन्दिर मे अमर आलोक है। कल्पना वीणा बज रही है। इस प्रकार वह नवीन जीवन पा रहा है। इसके अतिरिक्त चार ब्रजभाषा की कविताएँ है। कवि को नेत्रो की सब बात निराली लगती है। मिलन की आशा में वे फरकती रहती है। शेष सभी कविताएँ भक्ति की है।

छठी किरण (जून १९१४) मे 'महाराणा का महत्त्व' काव्य प्रकाशित हुआ। इसमें ऐतिहासिक कथा ली गई है। आरम्भ मे ही बेगम की शिविका चली जा रही है। प्रताप के पुत्र अमर सिंह ने सभी को बन्दी कर लिया। अन्त मे प्रताप ने उन्हे सम्मान-सहित छोड दिया। इससे रहीमखा अत्यन्त अपमानित हुआ। उसने अकबर से प्रार्थना की कि प्रताप सच्चा वीर है, उससे युद्ध न किया जाय। इस कविता मे कवि अपनी प्रौढता पर आ गया है। प्रकृति-वर्णन भी अत्यन्त सुन्दर हुआ है। इस तुकविहीन काव्य मे कविता, कला दोनो ही दृष्टि से कवि को अधिक सफलता प्राप्त हुई है।

इसके पश्चात् कला ५, खड २, तीसरी किरण (सितम्बर १९१४ ई०) मे 'प्रियतम' कविता है। कवि जीवन-धन से प्रश्न करता है कि क्या सर्वत्र तुम्हारा यही न्याय है। तुम मुझे करुणा दे सके, प्रेम नही। मै अन्तर मे स्मृति भरकर जीवन निःशेष कर दूगा। कुछ मत दो, केवल अपना बना लो[१३]। इसके अतिरिक्त 'मकरन्द बिन्दु' शीर्षक से पाच कविताएँ है। कवि करुण व्यथा लेकर ही प्रेम को जीवित रखना चाहता है। धन की अधियारी मे तमाल झूल क्यो रहे है? दोनो दृगो के हरियारी मे बरसने पर उसे आश्चर्य है। अन्य तीन कविताएँ ब्रजभाषा की है जिनमे कवि भक्ति-भावना से प्रेरित होकर दीनबन्धु का स्मरण करता है।

चौथी किरण, (अक्तूबर १९१४ ई०) मे 'मेरी कचाई', 'तेरा प्रेम' कविताएँ

---

१३. कानन-कुसुम—पृष्ठ ७६, झरना — पृष्ठ ३०

है। 'मेरी कचाई' अतुकान्त कविता मे कवि स्वयम् को दोषी कहता है। वह कहता है कि मै कायर हूँ, तुमसे मिलता नही। प्रियतम, मेरी बेबसी तुम्हे ज्ञात है ही। मुझे अपनी अनुकम्पा से वचित न करो। 'तेरा प्रेम' मे कवि प्रेम-हलाहल को सुख से पीता है। वह मृगमरीचिका आशा में भटक चुका है। प्रियतम के आखो के आसू का स्नान चाहता है। वह प्रार्थना करता है

मेरे मरुमय जीवन के हे सुधास्रोत, दिखला जाओ।

—झरना, पृष्ठ ३२

पाचवी किरण (नवम्बर १९१४) मे 'प्रेमपथ' शीर्षक से 'प्रेमपथिक' के खडी बोली रूप का कुछ अश प्रकाशित हुआ। इसके पूर्व वह ब्रजभाषा में (इदु कला १, किरण २, भाद्रपद शुक्ल २, सम्वत १९६६) निकल चुका था। 'महाराणा का महत्व' की भाति यह भी अतुकान्त है। आगे फिर छठी किरण (दिसम्बर १९१४) में 'चमेली' शीर्षक से इसी का अन्य अश भी प्रकाशित हुआ। 'प्रेमपथिक' का खडी बोली रूपान्तर माघ शुक्ल ५, सवत् १९७० को प्रथम वार पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ।

इन्दु ने अपने छठे वर्ष में प्रवेश किया। कला ६, खड १, किरण १, पौष शुक्ल (१९७१ वि०, जनवरी १९१५ ई०) मे 'तुम्हारा स्मरण' तथा 'हमारा हृदय' कविताएँ है। स्मरण मात्र से कवि की समस्त वेदना विस्मृत हो जाती है, उसे विश्वबोध होता है। वह विश्व-जनता में अपने अज्ञात को पा जाता है। अन्त मे कवि कहता है

नए नए कौतुक दिखलाकर
जितना दूर किया चाहो
उतना ही यह दौड दौड कर
चचल हृदय निकट होता।

—कानन-कुसुम, पृष्ठ ६०

'हमारा हृदय' की भावनाएँ 'मेरी कचाई' कविता के समीप है। इसी अक में राज्यश्री नाटक भी प्रकाशित हुआ।

दूसरी किरण (फरवरी १९१५) मे अर्चना, प्रत्याशा है। मन-मन्दिर मे अपनी अर्चना की उपेक्षा मे कवि को कष्ट होता है, वह प्रियतम को मनुहार करता है। 'प्रत्याशा' मे वह कहता है

यदि किरण हिम-बिन्दु मधुर मकरन्द से
बनी सुधा, रख दी है हीरक पात्र में
मत छलकाओ इसे, प्रेम परिपूर्ण है।

—झरना, पृष्ठ ३८

तीसरी किरण (मार्च, १९१५ ई०) के मुखपृष्ठ पर 'स्वभाव' चतुर्दशपदी है। इसमें प्रियतम इच्छा न होते हुए भी एक दूसरे से परिचित हो गए (झरना, पृष्ठ २६)। इस प्रकार प्रसाद अतुकान्त कविताओ के द्वारा जिज्ञासा, रहस्य और स्वच्छन्दता की ओर बढ रहे है। चौथी किरण (अप्रैल, १९१५ ई०) के मुखपृष्ठ पर ही 'विनय' है। कवि अपनी सीधी-सादी भाषा में भाव-विभोर होकर कहता है

मिलो अब आ के आनन्द कंद,
रहे तव पद में आठो याम।
बना लो हृदय बीच निज धाम
करो हमको प्रभु पूरन काम॥

—कानन-कुसुम, पृ० ५८

आगे चलकर कला ६, खड २, किरण १ (जुलाई १९१५ ई०) में प्रसादजी ने हिन्दी मे तुकान्तहीन परम्परा के विषय में लिखा. 'हमने भिन्न तुकान्त कविता लिखने के लिए प्राय २१ और ३१ मात्राओ के छन्द व्यवहृत किए है। चतुर्दशपदी कविता तीन छन्दो मे हमने लिखी है।' इस प्रकार कवि ने स्वयम् काव्य का विश्लेषण किया। दूसरी किरण (अगस्त, १९१५ ई०) मे 'दर्शन' चतुर्दशपदी है। निर्मल जल पर सुधा भरी चन्द्रिका हँस रही थी, कवि की नाव भी विछल पडी। नीरव व्योम मे वशी की स्वर लहरी गूज रही थी। नौका द्विगुणित गति से चल पडी, किन्तु वही किसी के मुख छवि की घनी किरणे रजत रज्जु-सी नौका से लिपट गई, और

बीच नदी में नाव हमारी रुक गई
उस मोहन मुख का दर्शन होने लगा।

बीच मे किसी कारण इन्दु एक वर्ष के लिए स्थगित हो गई। अन्त में प्रसाद ने पुन सितम्बर १९१६ ई० मे उसका प्रकाशन आरम्भ करवाया। इसी समय कला ६, खड २, किरण ३, (सितम्बर १९१६ ई०) मे मुखपृष्ठ पर ही 'सुखभरी नीद' चतुर्दशपदी प्रकाशित हुई। कवि ने कलिका की माला गूथी थी कि प्रियतम के आने तक वह खिल जायेगी। सुखद शीत मारुत में वह-सो

गया, कलिकाएँ खिल गई । हृदय के निकट की कली न खिल सकी । स्वप्न भग होने पर कवि ने देखा तो चन्द्रालोक से रजित कोमल बादल नभ में छा गए, उस पर बैठकर कोई पवन सहारे चला गया । वह व्याकुल हो उठा, अक में भर लेने के लिए । किन्तु सुरभित सुमन से पुन नीद आ गई । इस प्रकार कवि अज्ञात लोक की ओर बढ रहा है । उसकी भक्ति पीछे छूट चुकी है, वह प्रेम का रहस्य-मय सगीत जानने मे प्रयत्नशील है ।

चार-पाच किरण एक साथ निकली (अक्तूबर, नवम्बर, १९१६ ई०) । मुखपृष्ठ पर ही 'मिल जाओ गले' कविता है । प्रिय को सर्वत्र प्रियतम का प्रति-बिम्ब दिखाई दे रहा है । प्रकृति के कण-कण में प्रियतम व्याप्त है । कुसुमित कानन की छाया-सी कमनीयता कवि आरम्भ में ही देख चुका था, अन्त मे कहता है

> तुमसे कहता हूँ प्रियतम ! देखो इधर
> अब न और भटकाओ मिल जाओ गले ।
> —कानन-कुसुम, पृष्ठ ८२

लगभग दस वर्ष तक इन्दु किन्ही कारणो से तिरोहित हो गया था । इस बीच प्रसाद की विशाख, कामना, अजातशत्रु, आसू आदि रचनाएँ प्रकाश में आई । हिन्दी जगत मे उनका विशिष्ट स्थान बन चुका था । दस वर्ष लुप्त रहने के पश्चात् प्रसाद ने पुन इन्दु का प्रकाशन आरम्भ कराया और बराबर उसमें उनकी रचनाएँ निकलती रही । कवि स्वतन्त्रता के ही कारण निरन्तर कला में निखरता गया[१४] ।

कला, ८, किरण १, (पौप सवत १९८३, जनवरी १९२७ ई०) मे मुख-पृष्ठ पर ही 'अनुनय' कविता प्रकाशित हुई । कवि ने मानवता के लिए प्रार्थना की, 'सुधा-सीकर मे नहला दो' । प्रसाद की अभिव्यक्ति, भावना, शैली मे प्रौढता आ चुकी थी । छायावाद की प्रवृत्तिया उनमे सुन्दर रूप में दिखाई देती है । दूसरी किरण मे 'तेरा रूप' प्रकाशित हुई । नयनो में, मन में किसी छलिया का अमल अनूप रूप भरा हुआ है । जल, थल, मारुत, व्योम में वह सर्वत्र छाया है । खोजते-खोजते पागल प्रेम विभोर हो जाना पडता है[१५] । तीसरी किरण मे (मार्च १९२७)

---

१४ Poetry makes its decision in freedom
—The Freedom of poetry, by Derec Stanford.
(The Falcon Press Ltd 1947) Page 17

१५. स्कन्दगुप्त, पृष्ठ ४५

'गाने दो' कविता निकली। सब जीवन धूप-छाह के खेल सदृश वीता जा रहा है। समय हमे भविष्य रण मे लगाकर न जाने कहा छिप जाता है। लहर, हवा के झोके, मेघ, विजली सभी से जीवन का नाता है, इनके रोकने का साहस किसी मे नही। अन्त मे कवि कहता है :

> वंशी को वस वज जाने दो
> मीठी मीड़ों को आने दो
> आख वन्द करके गाने दो
> जो कुछ हमको आता है।

—स्कन्दगुप्त, पृष्ठ ९४

कुछ दिनो के पश्चात् 'इन्दु' सदा के लिए अन्तर्धान हो गया। इन्दु के साथ ही प्रसाद के जीवन की समस्त साधना का विकास होता गया। कवि की साधना इन्ही मे छिपी हुई है। आरम्भ मे भक्ति मे विभोर होकर प्रसाद ने व्रजभाषा के कवित्त गाये थे। अध्ययन मे उन्होने कुछ पौराणिक आख्यानो पर कविताएँ लिखी। जीवन के मधुमास मे सम्भवत अन्तर छलक उठने के कारण प्रसाद प्रणयगीत भी गाने लगे। रीतिकालीन परम्परा के अनेक विषयो पर भी उन्होने लिखा। धीरे-धीरे व्रजभाषा छुट गई। खडी वोली के साथ-ही-साथ कवि अपने भावो को सार्वभौमिकता भी प्रदान करने लगा। जड मे चेतन का आरोप, रहस्योन्मुखता, प्रेम, वन्दना, करुणा आदि से प्रसाद ने अपने स्वतन्त्र जीवन-दर्शन का निर्माण भी किया। छायावाद की स्वरलहरी मे वे गा उठे। अतुकान्त कविता उन्होने आरम्भ कर ही दी थी। इस प्रकार 'इन्दु' का कवि के काव्य-विकास मे महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अतिरिक्त उसकी मानसिक स्थिति का आभास भी इससे मिलता जाता है। इन्दु का इतिहास प्रसाद के काव्य और छायावाद मे विशेष सम्वन्ध रखता है। इनका ही परिपाक आगे चलकर कामायनी में होता है[१६]।

जागरण और हंस—

इन्दु के तिरोहित हो जाने के पश्चात् प्रसाद की रचनाएँ अन्य पत्रो में प्रकाशित होती रही। माघ १९२८ वि० वसन्त पंचमी, ११ फरवरी १९३२ ई० से 'जागरण' पाक्षिक का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसके सम्पादक शिवपूजन सहाय जी थे। प्रथम अक में ही प्रसाद का 'ले चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे-

---

१६. जयशकर प्रसाद—ले० नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ ६९

धीरे' गीत प्रकाशित हुआ। इसकी रचना १९।१२।३१ को पुरी के समुद्र-तट पर हुई थी। इसमें कवि अपने नाविक से अनुनय करता है कि मुझे उस निर्जन में ले चलो, जहा सागरलहरी, अम्बर के कानो में कोलाहल की अवनी तजकर निश्छल प्रेम-कथा कह रही हो। इसी प्रकार कवि अनेक प्रशान्त, नीरव चित्रो का निर्माण करता है। इसमे किसी प्रकार भी उसका पलायनवाद नही है। वह जीवन के भौतिक धरातल मे उठकर आदर्श लोक का निर्माण चाहता है। यह कवि की महान साधना है। वह प्रकृति की पूर्ण शान्ति के सहारे रहस्यवादी भूमि पर जाना चाहता है। इसी मे अन्य कविता 'वरुणा की शान्त कछार' है। इसे कवि ने मूलगन्ध कुटी विहार के वार्षिकोत्सव के अवसर पर लिखा था। इससे आभास मिलता है कि वे बौद्ध दर्शन से भी प्रभावित हो रहे थे। महात्मा बुद्ध को कवि ने स्वर्ग-वसुधा, मस्तिष्क-हृदय के समन्वयकर्ता रूप मे देखा, जिन्होने मानवता को सन्देश दिया था—

तोड सकते हो तुम भव-बन्ध, तुम्हें है यह पूरा अधिकार।

—लहर, पृष्ठ १२

इसी अक मे प्रसादजी का गत देवोत्थान के अवसर पर लिखित प्रबोधिनी गद्यकाव्य प्रकाशित हुआ। उन्होने देशवासियो को इसमे जागरण का सदेश दिया। इसी से तितली उपन्यास क्रमश धारावाहिक रूप में निकलने लगा।

दूसरे अक (२२ फरवरी, १९३२) में 'सागर सगम' कविता है, जो पुरी मे मकर सक्रान्ति १९८८ विक्रमी को लिखी गई थी। इस गीत में कवि ने सागर की अरुणिमा, नीलिमा से प्रेरणा ग्रहण की। अतलान्त महागम्भीर जलधि अपनी नियत अवधि तजकर लहरो के भीषण हासो मे युग युग की मधुर कामना के बन्धन ढीले कर देता है। अनन्त मिलन का भी कवि को आभास मिलता है। वे विराट की ओर अग्रसर है। काव्य कला की दृष्टि से कवि अपने सर्वश्रेष्ठ गीतो के निर्माण मे सलग्न है।

चौथे अक, होलिकाक, (२२ मार्च, १९३२ ई०) मे 'आसू' के कतिपय छन्द प्रकाशित हुए। इनका शीर्षक 'ज्वाला' था। दसवे अक मे (१८ जून, १९३२ ई०) प्रसाद का अन्य सुन्दर गीत 'मेरी आखो की पुतली मे तू बनकर प्राण समा जा रे' प्रकाशित हुआ। कवि को इससे एक चेतना प्राप्त होगी। कन-कन मे स्पन्दन मन मे मलयानिल नन्दन करुणा का नव अभिनन्दन हो। वही जीवनगीत कवि सुनना चाहता है। अन्त मे कहता है

खिच जाय अधर पर वह रेखा
जिसमें अंकित हो मधु लेखा
जिसको यह विश्व करे देखा
वह स्मित का चित्र बना जा रे।

—लहर, पृष्ठ २८

इसी के पश्चात् प्रेमचन्द जी ने 'जागरण' को साप्ताहिक रूप प्रदान किया। वे स्वय इसका सम्पादन भी करते थे। इसके अतिरिक्त 'हस' मासिक पत्र भी उन्ही की प्रेरणा से निकल रहा था। अप्रैल १९३० के अक मे 'कोई खोजने' शीर्षक से 'कामायनी' के काम सर्ग का कुछ अश प्रकाशित हुआ। मई, १९३० में 'मानवता का विकास' शीर्षक मे श्रद्धा का कुछ भाग निकला। जनवरी १९३१ मे 'प्रलय की छाया' कविता प्रकाशित हुई। ऐतिहासिक घटना के आधार पर नारी का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कवि ने प्रस्तुत किया है। इसमे गुर्जर की रानी कमला के अन्तर में क्षण-क्षण मे उठनेवाले भावो का चित्रण है। यौवन मे उन्मत्त नारी अपने रूप से सुलतान को भस्म कर देना चाहती थी, किन्तु यही उसकी भारी दुर्बलता थी। उसकी वासना ने उसे छल लिया। उसके बालप्रेमी मानिक ने अन्त मे अपने स्वामी गुर्जरेश का प्रतिशोध लिया, सुलतान की हत्या कर दी। कमला पश्चात्ताप से सिहर उठी। मानसिक परिवर्तन, प्रकृति तथा मानव के घात-प्रतिघात के चित्रण ने इस कविता को सौन्दर्य प्रदान किया। जनवरी, फरवरी, १९३२ के 'आत्मकथाक' के मुखपृष्ठ पर प्रसादजी की कविता 'आत्मकथा' प्रकाशित हुई। इससे कवि के व्यक्तिगत जीवन का आभास मिलता है। उसके आलिगन मे आते-आते मुसक्या कर कोई भाग गया था। वह उस पीडा को व्यर्थ नही कहना चाहता। नवम्बर, १९३६ मे 'ताडव' शीर्षक से 'दर्शन' सर्ग का कुछ भाग प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त 'हस' में प्रसाद जी के काव्य और कला सम्बन्धी निबन्ध भी इसी समय प्रकाशित हुए।

इस प्रकार, इन्दु, जागरण, हस आदि में प्रकाशित इन रचनाओ से प्रसादजी के काव्य-विकास का परिचय प्राप्त होता है। आरम्भिक परम्परागत, धार्मिक, भक्ति की कविता उनको आगे ले जाने के लिए थी[१७]। उसमे तन्मयता तथा आन्तरिक अनुभूति की तीव्रता अधिक है। प्राचीन विषयो के प्रतिपादन मे भी नवीनता

---

१७. Religious Poetry, even more than other Poetry requires shifting by man's experience.
—Rabindranath Tagore by E. Thompson–Page 309.

का आभास आरम्भ से ही मिलता है। क्रमश व्यक्तिवाद का विकास सार्वभौमिक स्तर पर होकर जड चेतन में अपनी भावना को आरोपित कर देता है। लम्बी पौराणिक ऐतिहासिक कथा कविताओ में भी प्रसाद ने केवल कथा का आधार लिया है। अध्ययन के द्वारा कवि को दर्शन का ज्ञान होता है। अनुभव के द्वारा वह एक नवीन जीवन-दर्शन का निर्माण करता है और यही प्रसाद का प्रौढतम चरण है। जातीयता, भक्ति, राष्ट्रीयता सभी कुछ पीछे छूट जाते है, वह आदर्श रचना मे उन्मुख हो जाता है। इस प्रकार एक महान कलाकार की भाति वे अपनी ही भूमि मे अपना बीज डालते है। सभी धर्म कवि-धर्म में तिरोहित हो जाते है। प्रेम, करुणा का प्रथम चरण अन्त मे मानवता के शृगार में लग जाता है। प्रसाद अपने ससार-निर्माण में सफल हो जाते है। इन पत्र-पत्रिकाओ में प्रसाद जी की बहुमुखी प्रतिभा निहित है और उनमें कवि के सम्पूर्ण क्रमिक विकास को देखा जा सकता है।

काव्य-विकास

१—ब्रजभाषा की रचनायें

२—खड़ी बोली का प्रथम चरण

३—आंसू

४—गीत सृष्टि

५—नाटकों के गीत

ब्रजभाषा की रचनाएँ

चित्राधार, प्रेमपथिक

परिस्थितियां--

भारतेन्दु ने गद्य के क्षेत्र मे जितनी क्रान्ति की थी, उतनी पद्य मे नही। कृष्ण की प्रेमलीला कविता की विषय सामग्री थी। इसी के बीच कभी-कभी देश और समाज का स्वर भी सुनाई देने लगता था, किन्तु उनमें इतिवृत्तात्मकता के दर्शन होते थे। कवि का हृदय रसमयी कविताओ मे ही उलझा था, प्रकृति-चित्रण में भी केवल बधी-बधाई परम्परागत उक्तिया ही देखने को मिलती थी। प्रकृति और मानव दूर होते जा रहे थे। अलकारो के बीच रस का आविर्भाव तो होने लगा था, किन्तु अभी काव्य मे नैसर्गिक प्रवाह का अभाव था। भारतेन्दु के पश्चात् ही उनके सहयोगियो ने काव्य के लिये भी खडी बोली को माध्यम बनाने का प्रयत्न किया। इन व्यक्तियो ने एक बार कबीर और नामदेव की परम्परा की ओर भी मुडकर देखा, जिसमें खडी बोली का स्वरूप सधुक्कडी भाषा में निहित था। श्रीधर पाठक के कई अनुनाद खडी बोली मे आ चुके थे। अन्त में द्विवेदीजी ने युग का नेतृत्व किया और उनकी छाया मे खडी बोली के कवियो ने कार्य आरम्भ किया। गुप्तजी का आदर्शवाद काव्य मे स्थान पा चुका था। इसी समय प्रसाद ने प्रवेश किया। द्विवेदी-युग के यौवन-काल मे ही छायावाद की इस महान विभूति ने अपना प्रथम चरण रक्खा।

प्राचीन परिपाटी के वातावरण मे ही प्रसाद का पालन-पोषण हुआ था। आरम्भिक शिक्षा भी उन्हे सस्कृत के विद्वानो द्वारा प्राप्त हुई थी। उस समय उनके घर पर प्राय ही ब्रजभाषा के कवियो का जमघट लगा रहता था। इस वातावरण ने कवि पर भी अपना प्रभाव डाला। प्रसाद का आरम्भ ब्रजभाषा से ही हुआ था। उनका प्रथम सग्रह 'चित्राधार' है। इसके सर्वप्रथम संस्करण (१९७५ वि०) मे ब्रजभाषा और खडी बोली दोनो ही की कवितायें थी। किन्तु द्वितीय सस्करण (सवत् १९८५) में केवल ब्रजभाषा की ही कवितायें रक्खी गई।

ब्रजभाषा की रचनाएँ

चित्राधार, प्रेमपथिक

परिस्थितियां--

भारतेन्दु ने गद्य के क्षेत्र मे जितनी क्रान्ति की थी, उतनी पद्य में नही। कृष्ण की प्रेमलीला कविता की विषय सामग्री थी। इसी के बीच कभी-कभी देश और समाज का स्वर भी सुनाई देने लगता था, किन्तु उनमें इतिवृत्तात्मकता के दर्शन होते थे। कवि का हृदय रसमयी कविताओ मे ही उलझा था, प्रकृति-चित्रण में भी केवल बधी-बधाई परम्परागत उक्तिया ही देखने को मिलती थी। प्रकृति और मानव दूर होते जा रहे थे। अलकारो के बीच रस का आविर्भाव तो होने लगा था, किन्तु अभी काव्य मे नैसर्गिक प्रवाह का अभाव था। भारतेन्दु के पश्चात् ही उनके सहयोगियो ने काव्य के लिये भी खडी बोली को माध्यम बनाने का प्रयत्न किया। इन व्यक्तियो ने एक बार कबीर और नामदेव की परम्परा की ओर भी मुडकर देखा, जिसमें खडी बोली का स्वरूप सधुक्कडी भाषा में निहित था। श्रीधर पाठक के कई अनुवाद खडी बोली मे आ चुके थे। अन्त मे द्विवेदीजी ने युग का नेतृत्व किया और उनकी छाया मे खडी बोली के कवियो ने कार्य आरम्भ किया। गुप्तजी का आदर्शवाद काव्य मे स्थान पा चुका था। इसी समय प्रसाद ने प्रवेश किया। द्विवेदी-युग के यौवन-काल में ही छायावाद की इस महान विभूति ने अपना प्रथम चरण रक्खा।

प्राचीन परिपाटी के वातावरण मे ही प्रसाद का पालन-पोषण हुआ था। आरम्भिक शिक्षा भी उन्हे सस्कृत के विद्वानो द्वारा प्राप्त हुई थी। उस समय उनके घर पर प्राय ही ब्रजभाषा के कवियो का जमघट लगा रहता था। इस वातावरण ने कवि पर भी अपना प्रभाव डाला। प्रसाद का आरम्भ ब्रजभाषा से ही हुआ था। उनका प्रथम सग्रह 'चित्राधार' है। इसके सर्वप्रथम सस्करण (१९७५ वि०) मे ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनो ही की कवितायें थी। किन्तु द्वितीय सस्करण (सवत् १९८५) मे केवल ब्रजभाषा की ही कवितायें रक्खी गई।

बीस वर्ष तक की प्राय समस्त रचनायें उसमे सगृहीत है। इनमें से अधिकाश 'इन्दु' तथा अन्य पत्रिकाओ में प्रकाशित हो चुकी थी। व्रजभाषा मे नवीन भावनाओ की अभिव्यक्ति इन आरम्भिक कविताओ में भी प्राप्त हो जाती हैं। माधुर्य भाव के अन्तर्गत भक्ति, प्रणय तथा प्रकृति-विषयक कवितायें उन्होने आरम्भ मे लिखी। विषय की दृष्टि से उनमे अधिक मौलिकता भले ही न मिले, किन्तु कवि के भावो मे नवीनता है। जिस जिज्ञासा और कुतूहल को लेकर प्रसाद 'चित्राधार' मे आये है, उसी का क्रमश विकास होता चला गया। परम्पराओ से प्रेरणा लेते हुये भी उन्होने लक्षण ग्रन्थो के आधार पर काव्य-रचना करना नही सीखा। आदि से अन्त तक कवि का हृदयपक्ष ही प्रधान है। धीरे-धीरे अध्ययन, अनुभव के द्वारा उसमे प्रोढता आती गई। भावो की सूक्ष्मता, शैली की गीतात्मकना तथा अभिव्यक्ति की नवीनता इन आरम्भिक रचनाओ मे भी देखी जा सकती है। कवि ने ऐसा आधार ग्रहण किया है जिस पर वह अधिक समय तक खडा हो सकता है। उसका प्रेरणा-स्रोत सूख नही सकता। जीवन के शैशवकाल मे ही अमरकटक, नैमिषारण्य आदि की यात्राओ में प्रकृति का जो वैभव कवि ने देखा था, उसी की छाया इनमे मिलेगी। धीरे-धीरे प्रकृति का यह स्वरूप विराट होता चला जाता है। वह अपनी जिज्ञासा से अनेक कल्पनाओ का सृजन करता हैं। आख्यानक कविताओ की प्रेरणा प्रसाद ने महान भारतीय कवि वाल्मीकि, कालिदास, तुलसी, सूर आदि मे प्राप्त की थी।

आख्यानक कविताएं--

आख्यानक कविताओं की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से साहित्य में चली आ रही है। किसी कथा-खड को लेकर कम-से-कम पात्रो के द्वारा लक्ष्य विशेष तक जाना ही इसका प्रमुख उद्देश्य होता हैं। कथा के मार्मिक दृश्यो के द्वारा ही कवि अपने विषय का प्रतिपादन कर लेता है। सस्कृत काव्यों मे महाकाव्य, खडकाव्य आदि का विभाजन हो जाने से आख्यानक कविता पृथक् रूप मे नही मिलती। अग्रेजी साहित्य मे इसकी पर्याप्त प्रतिष्ठा हैं। यद्यपि कथा के विकास का साधन गद्य ही बनाया गया, किन्तु कविता के द्वारा अनेक वर्णनात्मक रचनायें भी प्रस्तुत की गई। प्रसाद के पूर्व हिन्दी में आख्यानक कविता का आरम्भ हो चुका था। श्रीधर पाठक ऊजड ग्राम, एकान्तवास-योगी, श्रातपथिक आदि गोल्डस्मिथ के अनुवाद कर चुके थे। चित्राधार मे 'वनमिलन', 'प्रेमराज्य', 'अयोध्या का का उद्धार' तीन आख्यानक कविताएँ है।

अयोध्या का उद्धार—

'अयोध्या का उद्धार' की प्रेरणा कालिदास के रघुवंश का सोलहवां सर्ग है। आरम्भ में ही कवि कहता है कि 'लव आदि सात रघुवंश वीरों ने सब से बड़े भाई कुश को अपना प्रमुख बनाया, क्योंकि उनके कुल का धर्म था 'भ्रातृप्रेम।'

अथेतरे सप्त रघुप्रवीरा ज्येष्ठं पुरोजन्मतया गुणैश्च ।
चक्रुः कुशं रत्नविशेषभाजं सौभ्रात्रमेषां हि कुलानुसारि ॥१६।१

इसी के पश्चात् कालिदास का कथन है।

अथार्धरात्रे स्तिमितप्रदीपे शय्यागृहे सुप्तजने प्रबुद्धः ।
कुशः प्रवासस्थ कलत्रवेषामदृष्टपूर्वां वनितामपश्यत् ॥१६।४

'एक दिवस अर्द्धरात्रि के समय, शयनकक्ष का दीप टिमटिमा रहा था, सभी व्यक्ति सो रहे थे। कुश को एक स्त्री दिखाई दी। उसे उन्होंने इसके पूर्व कभी न देखा था, किन्तु उसके वेश से आभासित हुआ कि पति परदेश में है। कुश के बारम्बार प्रश्न करने पर, उसने अयोध्यापुरी की दीन दशा का वर्णन किया। किसी दिन, भगवान राम के समय वह कुबेर की अलकापुरी से भी महान थी, किन्तु आज उसमें उदासी छाई है। इस अवसर पर कालिदास ने अत्यन्त सजीव काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। अन्त में वह स्त्री हाथ जोड़कर प्रार्थना करती है।

तदर्हसीमां वसतिं विसृज्य मामभ्युपेतुं कुलराजधानीम् ।
हित्वा तनुं कारणमानुषीं तां यथा गुरुस्ते परमात्ममूर्तिम् ॥१६।२२

'आपके पिता राम ने राक्षसों का वध करने के लिये मनुष्य का शरीर स्वयं धारण किया था, और उसे त्यागकर परमात्मा में विलीन हो गये। अब आप इस नवीन राजधानी कुशावती को छोड़कर कुलगत नगरी, उजड़ी अयोध्या चलिये।'

अयोध्या की नगरदेवी अन्तर्धान हो गई। अपनी विशाल सेना के साथ राजा कुश ने अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। और,

तां शिल्पिसंघाः प्रभुणा नियुक्तास्तथागतां संभृत साधनत्वात् ।
पुरं नवीचक्रुरपां विसर्गान्मेघा निदाघग्लपितामिवोर्वीम् ॥१६।३८

'जिस प्रकार इन्द्र की आज्ञा से मेघ, जलवर्षा से उष्ण, तप्त पृथ्वी को भी हरीतिमा प्रदान कर देते हैं, उस प्रकार कुश के आदेशानुसार शिल्पियों ने तुरन्त अनेक साधनों से अयोध्या को नवजीवन दे दिया।'

कुश उस सुन्दर नगरी में रहने लगे। समस्त प्रजा सुखी हो गई। इसी के पश्चात् कवि ग्रीष्मऋतु का वर्णन करता है। अयोध्या ग्रीष्म ऋतु मे भी एक विलक्षण सौन्दर्य से समन्वित हो गई थी। एक दिन कुश रानियो सहित सरयू नदी मे जलविहार के लिये गये। जलक्रीडा के समय अगस्त्य ऋषि को, पिता जी द्वारा दिया गया जैत्र कुश से जल मे खो गया। अत्यधिक परिश्रम के पश्चात् भी वह न मिला। तभी किसी ने वताया कि इसमें कुमुद नाग निवास करता है। राजा कुश ने रोष में धनुष की प्रत्यचा चढा ली, तभी नागराज कुमुद एक कन्या सहित आकर प्रस्तुत हो गया। उसने आभूषण देकर प्रार्थना की कि आप मेरी छोटी वहन कुमुद्वती को अपनी पत्नी रूप में ग्रहण कर लीजिए। अन्त में,

तस्या स्पृष्टे मनुजपतिना साहचर्याय हस्ते
मांगल्योर्णावलयिनि पुर पावकस्योच्छिखस्य।
दिव्यस्तूर्यध्वनिरुदचरद्व्यश्नुवानो दिगन्ता-
न्गन्धोदग्र तदनु ववृषु पुष्पमाश्चर्यमेघा ॥१६।८७

'राजा कुश ने अग्नि के सम्मुख उस कन्या का कगन से बधा हाथ पकड लिया, उसी समय तूर्य आदि वाद्यो की ध्वनि से समस्त दिशाएँ गूज उठी और विलक्षण मेघराशि आकाश से सुगन्धित प्रसूनो की वर्षा करने लगी।'

महाराजा रामचन्द्र के वाद कुश को कुशावती और लव को श्रावस्ती इत्यादि राज्य मिले और अयोध्या उजड गई। यही वात प्राय राम सम्बन्धी अधिकाश सस्कृत ग्रन्थो मे देखने को मिलती है। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाड मे लिखा है कि अयोध्या महाराज रामचन्द्र के वाद वहुत दिन तक उजडी पडी रही, फिर किसी ऋषभ नामक राजा ने उसे वसाया। भागवत इत्यादि ग्रन्थ तथा इतिहासो मे मिलता है कि रामचन्द्र के वाद सुमित्र तक उनके वश में राज रहा। अस्तु महाकवि कालिदास के सोलहवे सर्ग की कथा का अनुसरण करके कुश के द्वारा यह अयोध्योद्वार होना लिखा गया है[1]।

प्रसाद ने अपनी कविता की कथावस्तु 'रघुवश' से ग्रहण की है। कविता के आरम्भ मे वे कहते है

नवल तमाल कल कुज सो घने
सरित तीर अति रम्य है वने
अरध रैनि मह भीजि भावती
लसत चारु नगरी कुशावती

—चित्राधार, पृष्ठ ४५

---

१ इन्दु—कला १, किरण १०, वैशाख सवत् १९६७

कुश राजकुमार नीद मे सुख-सेज पर सो रहे है। तभी उनके कान मे वीणा की-सी मन्द ध्वनि सुनाई दी। एक भामिनी पुखराज की पुतरी की भाति खडी थी। कुश सुन रहे थे, "तुम हरिश्चन्द्र कुल के कुमार हो। दुख सहकर भी उन्होने सत्य का परित्याग नही किया। कुश, आप इसी रघुवश के कर्णधार है। जिस वश का चरित्र वाल्मीकि ने लिख दिया है, उसे आप क्यो भूल रहे है ?" तभी कुश ने उस नारी के दुख और कष्ट का कारण पूछा। सुन्दरी मजु वाणी में बोली, 'आज इक्ष्वाकु आदि की विमल कीर्ति का प्रसार करनेवाली नगरी नागकुल के आधीन है। अन्त मे उसने कहा—

रघु, दिलीप, अज आदि नृप दशरथ, राम उदार
पाल्यो जाको सदय ह्वै तासु करहु उद्धार।

राजा कुश ने उसको अयोध्या के उद्धार का वचन दिया। प्रातःकाल ही राजसभा मे समस्त राज्य दान कर दिया और सेना सहित अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। कुमुद अवध की सीमा पर दूत का सदेश पाकर ही सेना लेकर आ पहुँचा। दोनो दलों में भयंकर युद्ध हुआ। राजा कुश घोर पराक्रम और शौर्य का प्रदर्शन कर रहे थे। कुमुद भयभीत होकर अपने निवास मे छिप गया अन्त मे परम सुन्दरी कुमुद्वती तथा अनेक रत्न-आभूषण लेकर कुमुद राजा कुश की सेवा मे प्रस्तुत हुआ, और

कुश कुमुद्वती को परिणय सबको मन भायो
अवध नगर सुख-साज महा सुखमा सो छायो।

'रघुवंश' से तुलना—

कालिदास से अनुप्राणित होने पर भी प्रसाद की कथा मे कुछ अन्तर है। 'रघुवश' की नगरदेवी अयोध्या की परिवर्तित दीन दशा का वर्णन करके अन्तर्धान हो जाती है। 'प्रसाद' की भामिनी कुश को सुन्दरी कुमुद्वती की भी सूचना दे जाती है। 'रघुवश' मे राजा कुश ने अपने कुशल शिल्पियो के द्वारा अयोध्या नगरी का नवनिर्माण करा दिया। उसमे नागराज को जल का स्वामी दिखाया गया, जो जलविहार मे गिर जानेवाला कुश का जैत्र चुरा लेता है। अन्त मे वह यह भी कहता है कि मेरी बहन गेंद खेल रही थी, उसी ने आभूषण पकड लिया। 'प्रसाद' के 'अयोध्या का उद्धार' मे अवध की सीमा पर कुश और

कुमुद की सेनाओ में भीषण युद्ध होता है। नागवशी कुमुद निवासस्थान में छिप जाता है। कुश के दूत से सदेश पाकर वह रमणी कुमुद्वती को लेकर प्रस्तुत होता है तथा परिणय का प्रस्ताव रखता है। अन्त मे कुश कुमुद्वती का विवाह सम्पन्न हो जाता है, और अयोध्या मे सुख-शान्ति छा जाती है। इस प्रकार प्रसाद मे पर्याप्त स्वाभाविकता है किन्तु 'रघुवश' अपने सम्पूर्ण काव्य-वैभव से सज्जित है।

विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से कालिदास 'प्रसाद' के इस आरम्भिक प्रयास से बहुत आगे है। कालिदास की विशद कल्पना, सूक्ष्म निरीक्षण, इस सर्ग में मिलते है। अयोध्या की नगरदेवी के वर्णन मे कवि की कल्पना की महानता निहित है। वह कहती है, "स्वामी के न रहने से, अटारियो के कोठे नष्ट हो गये है। मेरी अयोध्या ऐसी उदास प्रतीत होती है, मानो सूर्यास्त की वह सन्ध्या, जिसमे वायु के वेग से घन-खड इधर-उधर छितरा गये हो। नगर की बावलियो का जल, क्रीडा करनेवाली सुन्दरियो के हाथ की थपकियो से मृदग के समान बज उठता था। आजकल अटारियों के झरोखो से रात्रि के समय दीपक की किरणे नही दिखाई देती और दिन में भी सौन्दर्यमयी सुन्दरिया नही झाकती ।" इसी प्रकार कुश की सेना के प्रस्थान का भी विशद वर्णन है। ग्रीष्म ऋतु का चित्र भी इसी कला-कौशल से प्रस्तुत किया गया है। 'ग्रीष्म का गलता हुआ हिम ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो दक्षिण दिशा से सूर्य के लौट आने की प्रसन्नता मे उत्तर दिशा ने आनन्द के शीतल अश्रुओ की भाति जल की शीतल धारा हिमगिरि से बहा दी हो।' इसी प्रकार जलक्रीडा के समय रानियो के सौन्दर्य का वर्णन, शृगार की चरम सीमा है। "नौका के चलने से जल मे लहरिया उठ रही है, जिससे सुन्दरियो की आख का अजन घुल गया है, और उसके स्थान पर मदपान की अरुणिमा छा गई है। " प्रसाद के वर्णन में भी विकासशील प्रवृत्तिया है। उसमे उपमाये अधिक नही मिलती। कवि वर्णनात्मक हो गया है। किन्तु उसमें अधिक शिथिलता नही दिखाई देती। कालिदास को प्रबन्ध के क्षेत्र में विशद वर्णन का अवसर था। प्रसाद आख्यानक काव्य के सीमित क्षेत्र मे अधिक विस्तार से न लिख सकते थे। फिर भी कवि के इस आरम्भिक चरण मे आगामी प्रौढ विकास के चिह्न है।-कविता के अन्त मे प्रसाद ने कुश तथा शौर्य को सौन्दर्य के सम्मुख झुका भी दिया है

सुन्दरि के दृग बान लखे रोष सबही गयो
छाड्यो शर सन्धान अवध माहि तब ही गयो।

'वन-मिलन'--

'वन मिलन' कथा-काव्य की प्रेरणा भी कालिदास है। प्रसाद को सस्कृत साहित्य के अध्ययन से विषय सामग्री प्राप्त होती जा रही थी। वे सस्कृत के आदर्श की स्थापना हिन्दी मे चाहते थे। उन्होने स्वयम् कालिदास को शृगार का आदर्श कवि माना है[२]। 'वन मिलन' की कथा 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' से अनुप्राणित है। 'शाकुन्तल' में सर्वप्रथम कालिदास भगवान शिव की प्रार्थना करते है। सूत्रधार और नटी के वार्तालाप के पश्चात् ही अहेरी दुष्यन्त का वर्णन है। शकुन्तला और दुष्यन्त के प्रणय-सम्बन्ध की स्थापना करके कवि ने कथानक को कण्व के वनाश्रम से हटाकर राजनगरी मे प्रस्तुत कर दिया है। शार्ङ्गरव शिष्य के साथ महर्षि कण्व ने शकुन्तला को विदा किया। शापवश दुष्यन्त अपनी प्रेमिका को नही पहचान पाते। शकुन्तला राजपुरोहित के यहा आश्रय पाती है। एक मछुवा के द्वारा राजा को अपने नाम की अगूठी वापिस मिल जाती है, जो उन्होने शकुन्तला को दी थी, और उससे जल मे गिर गई थी। कालिदास ने राजा के वियोगवर्णन में मधुमास के सौन्दर्य तक को रोक दिया है। राजा वियोग की ज्वाला मे जल रहा है। एक दिन राजा माघव्य की रक्षा के लिये जाते है। मार्ग में लौटते हुए महर्षि कश्यप का दर्शन करने के लिये रुक जाते है। यही वन मे उन्हे एक तेजस्वी बालक सिंह शिशु के साथ खेलता दिखाई देता है। दुष्यन्त उसके हाथ में बघी हुई रक्षा की अपराजिता जडी गिर जाने पर भूमि से उठा लेते है, पर वह महर्षि कश्यप के अनुसार साप नही हो जाती। यही वन मे दुष्यन्त और शकुन्तला का मिलन होता है। मारीच उस बालक के लिये भविष्यवाणी करते है कि आज का सर्वदमन, कल भरत होगा। वे गालव से कहते है,

> गालव, इदानीमेव विहायसा गत्वा मम वचनात्तत्र भवते कण्वाय प्रियमावेदय यथा पुत्रवती शकुन्तला तच्छापनिवृत्तौ स्मृतिमन्ता दुष्यन्तेन प्रतिगृहीतेति।

'गालव, तुम अभी आकाश-मार्ग से चले जाओ। मेरी ओर से कण्व को यह शुभ समाचार देना कि शापमुक्त होकर दुष्यन्त ने सभी कुछ स्मरण कर शकुन्तला और उसके पुत्र को ग्रहण कर लिया है।'

---

२. इन्दु, कला २, किरण १, श्रावण सं० १९६७, 'कवि और कविता' लेख।

प्रसाद के 'वन-मिलन' की कथा देखने से स्पष्ट हो जाता है कि 'शाकुन्तल' कथा की समाप्ति ही 'वन-मिलन' का आरम्भ है। कवि प्रसाद ने कालिदास के नाटक को आगे बढाया है। 'वन-मिलन' के आरम्भ में ही कवि हिमालय की गरिमा का वर्णन करता है, जहा मालिनि नदी प्रवाहित हो रही है, तथा

तेहि कटि तट मह कण्व महर्षि तपोवन सोहै।
सखा कटाक्षन ते हरिनी जह मुनि मन मोहै॥
सरस रसाल, कदम्ब, तमालन की सुचि पाती।
धय, अशोक, अरु देवदारु तरुगन बहु भाती॥

—चित्राधार, पृष्ठ ५५

इसी के पश्चात् कवि ने वन-श्री का सुन्दर वर्णन किया है। वही प्रियम्वदा और अनसूया अपनी सखी शकुन्तला को मन-ही-मन उपालम्भ देती है, कि वह उन्हें महलो में जाते ही भूल गई। माधवी लता भी विरह-अश्रु बहा रही है। उसी समय कश्यप का शिष्य गालव ऋषिवर को शुभ समाचार सुनाता है कि दुष्यन्त शापमुक्त हो चुके है। और तभी दुष्यन्त, शकुन्तला, भरत आ पहुँचे। वन मे आनन्द बिखर गया। शकुन्तला लौटते समय अपनी सखी प्रियम्बदा, अनसूया को भी सग ले गई।

'वन-मिलन' और 'शाकुन्तल'—

इस प्रकार प्रसाद ने यद्यपि कण्व, कश्यप, गालव, दुष्यन्त, शकुन्तला, भरत, प्रियम्वदा, अनसूया आदि सभी पात्र 'शाकुन्तल' से प्राप्त किये है, किन्तु उनके कथा मे मौलिकता है। कालिदास ने नाटक को अपनी कथा का माध्यम बनाया। प्रसाद ने छोटे-से कथा-काव्य में ही उसका समावेश किया। प्रकृति के साथ वन-वालाओं का तादात्म्य कालिदास ने कराया है, किन्तु प्रसाद अधिक वर्णनात्मक है। गौतमी के साथ जाती हुई शकुन्तला, लताओ की ओट हो जाने वाले दुष्यन्त से कह जाती है

लतावलय सतापहारक, आमत्रये त्वा भूयोऽपि परिभोगाय. .

'हे सन्ताप हरनेवाले लतापुज, मै पुन विहार के लिये तुम्हें निमन्त्रण दे जाती हूँ!' दुष्यन्त के पास जाते समय शकुन्तला के अचल को हरिण पकड लेता है। वन का समस्त वैभव सजल नयनो मे उस सौन्दर्य राशि को विदा देता है। प्रकृति के व्यापक रगमच पर ही कालिदास का नाटक आधारित है। प्रसाद की प्रकृति भी शकुन्तला के वियोग मे दुखी है, किन्तु वह मानवीय भावनाओ से

एकाकार नही होने पाती। उसमें रमणीयता है, तन्मयता नही, भाव है, भावावेश नही। बुद्धि आगे चली जाती है, हृदय पीछे छूट जाता है। तभी तो शकुन्तला, दुष्यन्त, भरत प्रसाद के लिये केवल धर्म, शान्ति, आनन्द अथवा श्रद्धा, भक्ति, सरलता के पुज है। किन्तु कालिदास की प्रकृति तो राजा की आज्ञा से, वसन्त नही मनाती। मधुमास स्वय रुक जाता है। 'वन-मिलन' के सीमित क्षेत्र में किसी पात्र का विस्तृत चरित्र-चित्रण अथवा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सम्भव नही। अनसूया और प्रियम्वदा ही कथा के अधिकाश भाग में दिखाई देती है। ये शकुन्तला को अत्यधिक प्रेम करती है, और उसके बिना दुखी है। उनके प्रेम मे हल्का-सा उपालम्भ भी झलक जाता है। शकुन्तला से मिलने पर भी प्रियम्वदा बारम्बार भरत का मुख चूमने लगती है। वे अनेक कथायें सुनाने लगती है। प्रियम्वदा तो उपालम्भ देते हुये दुष्यन्त से कह देती है .

'अहो होत है अधिक निठुर नर सब, नारी सों...'

शकुन्तला भी अपनी सहेलियो को प्रेम करती है, अन्त मे उन्हे अपने साथ ही ले जाती है। वह भारतीय नारी के उच्चादर्श को लेकर अपनी सखियो से कहती है कि इनके विमल चरित्र के विषय मे कुछ न कहो। कालिदास का मृग शकुन्तला की विदा के समय उसका अचल पकड लेता है, किन्तु 'प्रसाद' का मृग शकुन्तला के चरणो का चुम्बन लेकर अपना आनन्द प्रकट कर देता है। कवि ने सस्कृत के प्रियम्वदा, सुन्दरी तथा मालिनी आदि छन्दो का प्रयोग किया है। कविता का माध्यम व्रजभाषा होने पर भी उसमे आधुनिकता अधिक है। प्रेरित, कर्णिकार, वीरुध आदि शब्द सस्कृत से लिये गये है। इस प्रकार कवि की नवीनता इसमें प्रतीत होती है और उसमें विकास के चिह्न निहित हैं।

'प्रेमराज्य'--

तीसरी आख्यानक कविता 'प्रेमराज्य' है। इसका आधार एतिहासिक घटना है। इतिहास के अनुसार सन् १५६४ ई० में विजयनगर और अहमदाबाद के बीच टालीकोट का युद्ध हुआ था[३]। केवल इसी छोटे-से कथा-सूत्र को लेकर कवि ने काव्य का निर्माण किया। सम्पूर्ण काव्य-कथा को दो भागो में विभाजित कर दिया गया है। आरम्भ मे टालीकोट के युद्ध का वर्णन है। वही राजा सूर्य्यकेतु अपना १चवर्षीय बालक भील को दे देते है। सेनापति के विश्वासघात से वे युद्ध मे मारे जाते है। घर आने पर सेनापति को उसकी पत्नी नही मिलती।

---

३. The Cambridge History of India, Vol. III, Page 448

पति की कायरता से दुखी होकर वह भी चली जाती है। सेनापति साधु हो जाता ह। उत्तरार्ध मे ललिता और राजकुमार चन्द्रकेतु का परिणय दिखाया गया है। इस प्रकार इसमे शोर्य और प्रेम का समन्वय कवि ने प्रस्तुत किया है।

कथानक की ृष्टि से 'प्रेमराज्य' प्रसाद की एक मौलिक कृति है जिसकी ेरणा इतिहास से प्राप्त हुई। उसमें किसी कथा विशेष का अनुसरण नही ग्रहण किया गया। वीर रस के परिपाक की दृष्टि से कवि ने 'पूर्वार्द्ध' में सूर्य्यकेतुसिह और यवनराज के युद्धभूमि मे मिलन को वीरकर्म तथा कायरता का दृश्य कहा है। महाराज यद्यपि वृद्ध थे, किन्तु हृदय में अत्यधिक उत्साह तथा भुजदडो में पौरुष था। भुजाये फड़क उठी, मानो वीर रस स्वयम् उमगित हो उठा हो। राजा ने हर-हर कर इस प्रकार धावा किया, जैसे गरुड़ पन्नग प्रवाल पर। स्वयम् अप्सराए एक वीर के सिर के लिये अपना तन-मन वार देने को प्रस्तुत थी। महाराज सूर्य्यकेतु ने अरिगणो का वध करके धर्म्म का पालन किया, अन्त में उन्हे सुगति प्राप्त हुई। इस अवसर पर कवि सूर्य्यकेतु की वीरगति से भारत-भूमि को सौभाग्यशालिनी कहता है, जहा महान वीरो ने जन्म लिया। इक्ष्वाकु का वल ससार मे प्रसिद्ध है। दुष्यन्त राजाओ के सिरमौर थे। भरत की सुकीर्ति अनन्त है। उन्होने जम्बूद्वीप को विभाजित कर अपने नाम से भारतखड वसाया। और

भये भीष्म, रणभीष्म, हरण अरिदर्प
जामदग्नि ते रच्यो, समर करिदर्प।
जिनकी देव प्रतिज्ञा की सुख्याति
गाइ गाइ नहि वाणी, अजहुँ अघाति।

—चित्राधार, पृष्ठ ६७

इस प्रकार कवि भारत गौरव के द्वारा एक उद्‍वोधन गीत गाने का प्रयत्न कर रहा है। उसमे राष्ट्रीयता की भावना निहित है। इसके सफल प्रतिपादन के लिये ही उसने यवनो मे युद्ध दिखाया है। यही नही, स्वयम् सेनापति की पत्नी भी अपने पति की कायरता से क्षुब्ध होकर चली जाती है। सूर्य्यकेतु महाराज का गौरवपूर्ण चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। अन्त मे कवि एक सकेत भी कर देता है

'वसुन्धरे, तव रक्त पिपासा धन्य'

सेनापति मातृभूमिद्रोही है, सभी उसका उपहास करते है। इस प्रकार कवि वीरता के आदर्श की स्थापना कर देता है, किन्तु केवल यही चरम सत्य नही है। यह तो केवल वसुन्धरा की रक्त पिपासा है, जो न जाने कब शान्त होगी।

उत्तरार्द्ध मे प्रकृति के सुन्दर रगमच पर कवि ने प्रणय-कथा की स्थापना की है। प्रकृति की विभूति मे ही प्रेम और सौन्दर्य स्वच्छन्द विचरण कर सकते है। प्रभजन परिमल से पूरित वन मे इधर-उधर विचर रहा है। इसी अवसर पर कवि ने वाला का प्रवेश कराया है। उसके सौन्दर्य-वर्णन मे प्रसाद की नवीनता स्पष्ट दिखाई दे जाती है। 'वन-मिलन' में अनुसूया, प्रियम्वदा के लज्जा-शील सौन्दर्य मे भी कवि ने कालिदास अथवा व्रजभाषा की परम्परा का अनुसरण नही किया था। यहा भी उसके अग-अग मे श्री भरी हुई है। पास ही मृगछौना, मराल, शिखी भी तो स्तब्ध-से खडे है। यही नही

लखि मूरति शान्त सुरसरी हू को मन्द प्रवाह है
कुंजन में छपिके सुमन, देखत सहित उछाह है।

—चित्राधार, पृष्ठ ६९

उसकी गति मराल की भाति थी। पुरुष पात्र, प्रेमी चन्द्रकेतु का प्रवेश प्रसाद ने अत्यन्त नाटकीय रीति से कराया है। चन्द्रकेतु बाला के दृग मीचकर पूछता है, "बोलो हम कौन है ?" वह बोल उठी, "चन्द्रकेतु, दृग खोलो।" और दोनो हस पडे, मानो शरद्घन से मुक्ताविन्दु बरस उठे हो। इस प्रेम को कुसुमित करने तथा शृगारिकता प्रदान करने के लिये कवि ने पुन रजनी के सौन्दर्य का सरस चित्र प्रस्तुत किया है। आकाश में ताराओ की पक्ति निशा-रानी के कठ का हीरक-हार बन रही थी। विधु-मडल सुधा की वर्षा कर रहा था। चन्द्रकेतु ललिता शिला पर युगल-सुधाकर की भाति बैठे थे। इस प्रकार सौन्दर्य-वर्णन मे कवि ने प्रकृति को स्थान दिया है और उसी से सुन्दर प्रतीक लिए है।

प्रथम भाग मे ही कवि ने वीरता के आदर्श की स्थापना करते हुए यह स्पष्ट कह दिया था कि युद्ध धरणी की रक्त पिपासा है। इसी आदर्श का विकास इस खड मे कवि ने किया है। बालक कहने लगते है कि अब हम पथिको को निर्भय लूटेंगे। तभी चन्द्रकेतु विश्वेश्वर की अनुपम सृष्टि की चर्चा करता है। यह विराट ससार शिव का ही अव्यक्त रूप है। सर्वत्र उसकी ज्योति का आभास प्राप्त होता है। जब वह चन्द्र-सूर्य मृगनैनो से देखता है, तभी तममय जगत मे नर आखो से देखने लगते है। वह प्रकृति की पराशक्ति है, उसका वाहन वृषभ है, धर्म का प्रतिनिधि। परस्पर प्रेम करो, विरोध कैसा। अन्त मे .

वह किशोर नवचन्द्रकेतु ललिताहु किशोरी
तन्मय लखत परस्पर इकटक अद्भुत जोरी।

लखे नवल यह प्रेमराज्य अति ह्वै आनन्दित
चमकि उठ्यो नव चारु चन्द्र तारागन वन्दित।

—चित्राधार, पृष्ठ ७५

इस प्रकार युद्ध से आरम्भ होनेवाला काव्य अन्त में एक महान मानवीय सन्देश देकर समाप्त हो जाता है। इसमें शिव के विराट स्वरूप का अंकन किया गया है। प्रसाद आरम्भ से ही शैव थे। धीरे-धीरे यह भक्ति जीनव-दर्शन में परिवर्तित होने लगी। शैव दर्शन के आभासवाद के अनुसार भी महेश्वर समस्त सृष्टि के रचयिता हैं[४]। यह सृष्टि केवल उनके व्यक्तित्व का आभास मात्र है। महेश्वर की सत्ता माया, आत्मा और आणव से पृथक है। वह प्रेम की प्रतिमूर्ति है। उसके लास्य (नृत्य) मे सृष्टि का निर्माण है। शैव साधु ईश्वर की प्रार्थना करते हुये कहा करते थे, "जब मैंने शान्तिपूर्वक ईश्वरीय प्रेम का चिन्तन किया, तो मुझे नैसर्गिक आनन्द प्राप्त हुआ। उस दिन मुझे शकर भी कटु लगी, और मधु भी नीरस, क्योकि मै आनन्दमग्न था।" दक्षिण तथा काश्मीर के अनेक शैव भक्तो ने शिव की इसी रूप में उपासना की है। उनकी धारणा है कि वे मूर्ख हैं जो शिव और प्रेम में अन्तर रखते है। यही नही, शिव का ताडव नृत्य भी भक्तो की रक्षा के लिये होता है। अभिज्ञानशाकुन्तल के आरम्भ में कालिदास ने कहा है

या सृष्टि स्रष्टुराद्या वहति विधिहुत या हविर्या च होत्री
ये द्वे काल विधत्त श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
या माहु सर्वबीज प्रकृतिरिति यया प्राणिन. प्राणवन्त
प्रत्यक्षाभि. प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीश

शिव का दर्शन उस जल के रूप में प्रत्यक्ष होता है, जिसे ब्रह्मा ने सर्वप्रथम निर्मित किया। वे उस अग्नि की भाति है जो विधि द्वारा दी गई हव्य सामग्री ग्रहण करती है। वे यज्ञ करनेवाले होता हैं। वही सूर्य, चन्द्रमा हैं जो दिवस रात्रि का समय निर्धारित करते है। उस आकाश के रूप में है जिसका गुण

---

४. अनपेक्षस्य वशिनो देशकालाकृतिक्रमा
नियता नेति स विभुर्नितयो विश्वाकृति शिव
विभुत्वात्सर्वगो नित्यभावादाद्यन्तवर्जित
विश्वाकृतित्वाच्चिदचित तद्वैचित्र्यावभासक ॥

—तन्त्रालोक, १।९८।९९

शब्द है और जो ससार भर में रमा है। वे पृथ्वी की भाति है, जो सब वीजो की जन्मदात्री है, और उस वायु की भाति जो सब जीवो को जीवन देती है। जल अग्नि, होता, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी, वायु आदि अनेक रूपो में सबको दिखाई देने वाले भगवान सबका कल्याण करो।

इस प्रकार कवि एक उच्च भाव-भूमि पर चला जाता है। लौकिक धरातल पर अलौकिक और आदर्श की स्थापना प्रसाद साहित्य की विशेषता है। 'प्रेम-राज्य' की प्रशसा करते हुये उस समय ही कहा गया था कि 'कविता मे मधुर शब्दो का समावेश हुआ है। छन्द शुद्ध बना है और कही-कही लालित्य भी है[५]।' इसके अतिरिक्त उस समय ही 'विहार बन्धु' आदि पत्रो मे प्रेमराज्य की आलोचनाये निकली, जिनमे प्राय सभी में कविता को सुन्दर कहा गया। उसी समय लाला भगवानदीन जी ने इसकी कटु आलोचना की थी कि 'काव्य बिलकुल निरस और अनेक दोषो से पूर्ण है। एक भी छन्द यतिभग दोष से रहित नही है[६]।' प्रसाद जी ने स्वय इसका उत्तर दिया था—'छन्द की दृष्टि से इसमें रोला छन्द है। कविवर भिखारीदास के छन्दोर्णव पिंगल मे उसका लक्ष्य केवल अनियमित रोला कहकर दिया गया है।

स्फुट कविताएं—

इन आख्यानक कविताओ के अतिरिक्त स्फुट रचनायें 'पराग' और 'मकरन्द विन्दु' शीर्षको के अन्तर्गत सगृहीत है। 'पराग' की अधिकाश रचनायें प्रकृति विषयक है—शारदीय शोभा, रसाल, प्रभातकुसुम, नीरद, शरदपूर्णिमा, इन्द्रधनुष आदि। प्रकृति सम्वन्धी इन रचनाओ की प्रेरणा के दो ही प्रमुख कारण प्रतीत होते है। शैशव मे कवि ने उज्जैन, अहरौरा, अमरकटक आदि अत्यन्त सुन्दर प्रकृति स्थलो मे भ्रमण किया था। वे समस्त सुन्दर चित्र उसके मस्तिष्क पर चित्रित हो उठे थे। इसके अतिरिक्त घर पर होनेवाली कविता उस समय भी रीतिकाल की परम्परा से प्रभावित थी। शृगार रस की कवितायें भारतेन्दु युग मे मिलती है। प्रकृति प्राय इन कवियो की रचनाओ मे उद्दीपन बनकर आती थी। कविगोष्ठियो में पढे जानेवाले इन कवित्त और सवैयो से भी कवि को आरम्भिक प्रेरणा अवश्य मिली होगी। किन्तु प्रसाद की इन सर्वप्रथम कविताओ को देखने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतेन्दु ने शृगार, प्रकृति,

---

५. सम्पादक, 'भारतमित्र' पत्रिका, फाल्गुन सं० १९६६

६. 'लक्ष्मी', जनवरी, सन् १९११ ई०

देश आदि के विषय मे जो नवीन प्रयोग आरम्भ किया था, उसका विकास होने लगा था। अलकार का स्थान अनुभूति को प्राप्त हो रहा था, और शब्दाडम्बर मे भी कविता मुक्त हो चुकी थी।

प्रसाद की प्रकृतिविषयक इन कविताओ की सबसे बडी विशेषता उनके 'शीर्षक' हैं। अभी तक समस्त कविता सवैया और कवित्त में बधी हुई थी। कभी-कभी सूर के पदो की भी शैली दिखाई दे जाती थी। प्रसाद ने अपनी प्रत्येक कविता का एक शीर्षक दे दिया है। गीतिकाव्य की प्रवृत्तिया आरम्भिक रचनाओ में ही प्राप्त हो जाती है, जो उन्हे 'लहर' के सर्वोत्तम गीतो तक ले जा सकी। कविता के परम्परागत विषयो को भी कवि रसमय बनाने में प्रयत्नशील है। धीरे-धीरे उसमें मधुर भावों का समावेश हो रहा है। इसके अतिरिक्त प्रसाद ने ब्रजभाषा की कविता को समस्यापूर्ति के सकुचित वातावरण से बाहर निकाल लिया। उसमें नवीन उपमाये और नूतन शब्द-योजना है।

एक शीर्षक के अन्तर्गत ही समस्त चित्र को प्रस्तुत कर देने का प्रयास भी कविताओ में मिलता है। 'शारदीय शोभा' के अन्तर्गत ही प्रभात, रजनी और चन्द्र का वर्णन किया गया है। उपमा, उदाहरण प्रकृति और मानव के मध्य एक प्रकार का व्यवधान प्रस्तुत कर देते हैं। केवल प्रकृति का वर्णन होने के कारण उसमे उपमा-विधान अपेक्षाकृत कम है। प्रकृति की जडता मे चेतनता भरने तथा मानवीकरण की इच्छा मे प्रसाद प्राय उसे सम्बोधित करने लगते है। इस क्रिया में प्रकृति के अधिक-से-अधिक निकट जाने का प्रयास है। मलयानिल, रसाल सभी से कवि एक अपनत्व स्थापित करने का प्रयत्न करता है। प्रसाद की प्रकृति केवल मानवीय भावनाओ का मनोरजन ही नही करती, वरन् वह ससार की शोभा है। प्रकृति के गुणो का विश्लेषण करने के लिये उन्होने ऐसे शब्द चुने है, जो मानव पर भी आरोपित होते हैं। तरुवरराज की उदारता, विहग का यश-गान, मेघो की छाया सभी में रसात्मकता निहित है। इसके अतिरिक्त प्रकृति मे कवि को सकेत भी प्राप्त होते हैं। 'प्रभात कुसुम' गर्व से डाली पर झूल रहा है, किन्तु कुछ क्षण ही में तो धूल-धूसरित हो जायगा। कवि का आवेग कभी-कभी इस सीमा तक बढ जाता है कि वह उसे कुछ देना भी चाहता है

पै हम हिय ते देत असीस अहै तुम को नित
समय-समय पुनि आय सुधारस को वरसहु इन।

—चित्राधार, पृष्ठ १५८

इस प्रकार प्रसाद के प्रकृति-वर्णन मे नवीनता है। इसके पूर्व अँग्रेजी की प्रकृति कविता की भी चर्चा हिन्दी मे होने लगी थी। पाठक जी ने अनुवाद भी किए थे। प्रगीतात्मकता तथा अन्तर्वृत्ति निरूपण इस काव्य की प्रमुख विशेपतायें हैं। अँग्रेजी साहित्य मे प्रकृतिविपयक कविता को एक स्वतन्त्र स्थान प्राप्त है (Poets of Nature)। स्पेन्सर, शेक्सपियर मिल्टन आदि की पेस्टोरल कविता प्रकृति का आलम्बन लेकर ही हुई। अपने 'ऊजड ग्राम' के आरम्भ मे ही गोल्डस्मिथ कहता है कि सध्या मे बरबस ही मुसकरा पडनेवाले ग्राम तुम मुझे अत्यधिक प्रिय हो। 'श्रान्त पथिक' मे भी प्रकृति का वर्णन पृष्ठभूमि के रूप मे किया गया है। शेली, कीट्स आदि स्वच्छन्दतावादी कवियो ने प्रकृति मे व्यक्तिगत अनुभूति को आरोपित किया। अप्रस्तुत रूप विधान के द्वारा जीवन की अनुभूतियो का भी प्रकाशन इनमें मिलेगा। बाइरन ने कहा था, "पथहीन वनो मे एक आनन्द है, निर्जन तट पर सुख है। वही समाज है, जहा कोई न हो। गम्भीर सागर के गर्जन में भी सगीत है। मैं मनुष्य को कम प्यार नही करता किन्तु प्रकृति को उससे भी अधिक . ।"[७] प्रकृति के इस सौन्दर्य से स्वच्छन्दतावादी कवि ने अपनी आन्तरिक अनुभूति को समन्वित कर दिया। शेली ने प्रतीची से आते हुये पवन को रूप प्रदान किया था। उसके लिये वह वसन्त की श्वास था[८]। इस लम्बी कविता में शेली ने अपनी समस्त तन्मयता भर देने का प्रयत्न किया। इसी प्रकार उसने चन्द्रमा, रजनी, लवा आदि से वाते की थी। कीट्स कोकिल को 'अमर पछी' की सज्ञा दे देता है। उसे उसके सगीत मे युगो

---

७. "There is a pleasure in the pathless woods,
There is rapture on the lonely shore,
There is society where none intrudes,
By the deep sea, and music in its roar,
I love not man the less, but nature more.. ."

—Byron–Childe Harold, IV

८. "O wild West Wind, thou breath of Autumn's being

–P. B. Shelley—Ode to the West Wind.

का आभास मिला था[९]। वर्ड्स्वर्थ मे आकर प्रकृति में परोक्ष सत्ता का आरोप होने लगता है। प्रकृति के सौन्दर्य पर रीझ उठनेवाले स्वच्छन्दतावादी कवि उसमें किसी अन्य वस्तु का आभास नही पाते। वर्ड्स्वर्थ और कोलरिज प्रकृति मे परोक्ष सत्ता को खोजना चाहते है। उनकी कविता में दार्शनिक प्रवृत्तियो ने भी स्थान पाया। प्रकृति मानव को एक महान सदेश दे जाती है। वर्ड्स्वर्थ प्रकृति का केवल एक उपासक नही रह गया, जो बारम्बार उस मनोहारिणी छटा मे स्वयम् को उलझा देता था, वरन् उसने उसके अतस्तल में जाने का प्रयत्न किया। उसने गम्भीरतापूर्वक प्रकृति को जिज्ञासा और कुतूहल से देखा। उसके-लिये प्रकृति एक मूक शिक्षक है। उसका कथन है, "आकाश इतना स्वच्छ था, पवन में ऐसी निस्तब्धता थी, दिन भी इसी प्रकार था कि जहा कही भी मैंने देखा, मुझे तुम्हारा प्रतिविम्ब दिखाई दिया। वह कभी-कभी काप जाता था, किन्तु अलग न हो सका[१०]।" कोलरिज ने तो प्रकृति में कृतिकार की सत्ता का अनुभव किया। इस प्रकार अँगरेजी के प्रकृति-वर्णन की छाया उस समय के हिन्दी साहित्य पर पड़ रही थी। वर्ड्स्वर्थ, कोलरिज दोनो की प्रवृत्ति प्रकृति में परोक्ष सत्ता का सकेत पाने की ओर थी जो हिन्दी को प्रभावित कर रही थी।

सस्कृत के प्रकृति-वर्णन मे कालिदास और माघ का स्थान सर्वोपरि है। कालिदास के कुमारसम्भव, मेघदूत, शाकुन्तल तथा भवभूति के उत्तरराम-चरित आदि के अनुवाद हिन्दी में आ रहे थे। आरम्भ में स्वयम् प्रसादजी कालिदास से प्रभावित हुये थे। वास्तव में प्रकृति के व्यापक रगमच पर ही कालि-दास का काव्य निर्मित है। प्रकृति को आलम्बन और उद्दीपन दोनो ही रूपो मे उन्होने ग्रहण किया है। शाकुन्तल की प्रकृति सचेतन हो उठी है। वह स्वयम् मुखर हो जाती है। कुमारसम्भव के आरम्भ में ही हिमालय का विशद् वर्णन एक पृष्ठभूमि अथवा रगमच के रूप में किया गया है, जिस पर समस्त काव्य

---

९ "Thou wast not born for death, immortal bird"
—J. Keats—Ode to Nightingale.

१० "So pure the sky, so quiet was the air !
So like, so very like, was day to day !
Whene'er I look'd, thy image still was there,
It trembled, but it never pass'd away"
—W Wordsworth—Nature and the Poet.

की रचना कवि ने की है। प्रकृति की जितनी विशद योजना कालिदास में है, अन्यत्र कही नही। उसके प्रत्येक रूप का वर्णन कवि ने अत्यन्त कुशलता से प्रस्तुत किया है। उनका निरीक्षण अत्यधिक सूक्ष्म है। वस्तु-चित्रण के साथ-ही-साथ उपमाये भी चलती है। 'ऋतुसहार' की प्रकृति एक उद्दीपन बन गई है। वह यौवन को अपने अनेक रूपो से उन्मत्त कर देती है। कालिदास का पावस जूही की नव कलिकाओ, मालती, मौलसिरी के प्रसूनो की माला गूथ रहा है, मानो प्रेमी प्रेमिका के लिये पुष्पमाल बना रहा हो।

शिरसि बकुलमालां मालतीभिः समेतां
विकसितनवपुष्पैर्यूथिकाकुड्मलैश्च ।
विकचनवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां
रचयति जलदौघः कान्तवत्काल एषः ॥
ऋतुसंहार, द्वितीय सर्ग, २५

प्रकृति के प्रत्येक स्वरूप का ज्ञान कालिदास को था। वाल्मीकि की भाति उसमे प्रकृति के सकेत नही मिलते। रामायण का प्रकृति-वर्णन केवल आलम्बन रूप में है, किन्तु कालिदास की प्रकृति 'नवयौवना' है। उसकी सश्लिष्ट योजना में सर्वत्र सौन्दर्य झाका करता है। इस प्रकार कालिदास का विस्तृत ज्ञान तथा कल्पना प्रकृति और जीवन के अतिरसात्मक स्वरूप को प्रस्तुत करते है[११]। माघ मे प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण की अद्भुत क्षमता है।

हिन्दी मे रीतिकालीन प्रकृति-वर्णन के विरोध मे भारतेन्दु अपनी रसात्मक अनुभूति प्रस्तुत कर चुके थे। उपमा, उत्प्रेक्षा आदि के होते हुये भी उनके वर्णन में कृत्रिमता अधिक नही है। उसी के पश्चात् श्रीधर पाठक, रामचन्द्र शुक्ल, हरिऔध आदि कवि अपनी उदार दृष्टि लेकर आ रहे थे, किन्तु अब भी मनुष्य और प्रकृति एक दूसरे के पूरक न बन सके थे। प्रसाद ने प्रकृति-वर्णन मे सरसता ला दी। इसी के द्वारा उन्होने शृगार का उदात्त स्वरूप प्रस्तुत किया। प्रकृति-प्रेम की कवितायें और गीत आन्तरिक अनुभूति से अनुप्राणित है।

---

११. The width of Kalidasa's knowledge and the depth of his observation of nature and life are shown to the highest advantage

—A History of Sanskrit Literature, by A. B. Keith, Page 105.

प्रकृति के कुछ रूपो को वे देख सके है। कभी शारदीय शोभा मे प्रभात, रजनी और चन्द्र उन्हें सुन्दर प्रतीत होते है, तो रसाल मजरी बसन्त का दान। वर्षा में नदी-कूल की छवि से धारा पुलकित हो उठती है। उद्यानलता माली से जल पाते ही लहलहा उठती है। यही नही, कवि का प्रश्न है

> भरि अक अहौ तुम भेंटति को
> तरु के हिय दाह समेटति को।
> टक लाइ सबै दृग फूलन ते
> मकरद भरे अँसुवा कन ते।
> तुम देखति हौ केहि आस भरी
> नहिं बोलति हौ तरु पास खरी।

—चित्राधार, पृष्ठ १५१

प्रसाद के प्रकृति विषयो मे विविधता है। उसके प्रत्येक स्वरूप पर वे रीझ उठाते हैं, किन्तु वे उसमे खो नही जाते। 'चित्राधार' मे उनका प्रेम शृगार से अधिक है, वे प्रकृति से एकाकार नही हो जाते। तादात्म्य स्थापित करने के प्रयत्न का एक आभास मात्र मिलकर रहा जाता है। प्रकृति के सौन्दर्य के विषय मे उनकी जिज्ञासा अधिक है। अग्रेजी कवि वर्ड्स्वर्थ की भाति प्रसाद प्रकृति के अन्तस्तल मे तन्मय नही हो जाते। वे उसके सौन्दर्य को देखकर प्रश्न करते है। प्रकृति को देखते ही उनका कौतूहल जागृत हो जाता है, उनकी चेतना गतिमान् हो जाती है। अपनी भावनाओ की सूक्ष्मता लेकर उन्होने प्रकृति का वर्णन किया। उनका हृदय अपनी जिज्ञासा को सभालने मे उलझ जाता है, और इस प्रकार प्रकृति से तन्मय नही हो पाता। इस जिज्ञासा के क्रमिक विकास ने कवि को एक नवीन जीवन-दर्शन की स्थापना करने मे सहायता दी, जहा प्रकृति मनुष्य के लिये चिरसहचरी बन जाती है। कालिदास की वर्णनशैली और वर्ड्स्वर्थ, कोलरिज की रहस्योन्मुख प्रवृत्तिया प्रसाद में जिज्ञासा बनकर आई है। यदि एक ओर सस्कृत के महान कवि की भाति प्रसाद ने विविध प्रकृति रूपो पर दृष्टिपात किया, तो दूसरी ओर प्रकृति को जिज्ञासा भरकर उन्होने देखा। प्रकृति उन्हे अत्यन्त रहस्यमय प्रतीत हुई। इस प्रवृति के बीज 'चित्राधार' में निहित है। इसमे भारतीय दार्शनिकता को भी आगे चलकर कवि ने समन्वित कर दिया। उन्हे इनके लिये प्रतीको का भी अवलम्ब ग्रहण करना पडा। हिन्दी मे प्रकृति वर्णन का पुनरुत्थान काल इसी समय आरम्भ हो जाता है।

प्रणय भावना--

प्राकृतिक दृश्यो के अतिरिक्त कल्पनासुख, मानस, विदाई, नीरव प्रेम, विस्तृत प्रेम, विसर्जन आदि कवितायें विषय की दृष्टि से भी नवीन है। इस प्रकार के विषय आगे चलकर छायावाद के प्रमुख अग बन गये, किन्तु प्रसाद ने अपने आरम्भिक काल मे ही इन पर रचना आरम्भ कर दी थी। कल्पना की शक्ति को उन्होने पूर्व ही पहचान लिया था। इसी प्रकार उनके प्रेम-दर्शन मे भी नवीन स्वर था। वास्तविक प्रेम अपनी ही सीमाओ में मौन रहता है, प्राणो मे गूजता है। एक ओर शृगार मे झूमती हुई, दूसरी ओर खडी बोली की शुष्क आदर्शवादी कविता के लिये, प्रेम की यह परिभाषा सर्वथा नवीन थी। सम्भवत प्रत्येक महान कलाकार का स्वर आरम्भ से ही एक नवीन रागिनी लेकर प्रस्तुत होता है। अपने मानस मे कल्पना भरकर प्रसाद ने नीरव प्रेम का सदा शृगार किया। सुवासिनी ने एक विदेशी नारी को समझाया था, "प्रेम मे स्मृति का ही सुख है। एक टीस उठती है, वही तो प्रेम का प्राण है[११]।"

'मकरन्द बिन्दु' की कविताओ मे अपेक्षाकृत नवीनता कम है। सवैया, कवित्त और पद की शैली मे लिखी गई इन कविताओ को प्रेम, प्रकृति और भक्ति मे विभाजित किया जा सकता है। प्रेम विषयक कविताओ मे उपालम्भ की भावना भी मिलती है। प्रेमी बारम्बार अपने प्राणप्यारे से अनुनय-विनय करता है कि 'मुझे नेक कठ से लगा लो'। इस अवसर पर प्रकृति भी उद्दीपन बन कर आ जाती है। कुसुमाकर ने कानन को अनुरजित कर दिया है, इस अवसर पर प्रिय अपने प्रियतम को पुकारने लगता है। प्रसाद ने प्रथम दर्शन मे भी प्रेम की उत्पत्ति स्वीकार कर ली है

देखत ही ताहि पहिचानों सो परत कहो,
बरबस ही लागत प्रसाद वह प्यारो क्यो।

प्रेम का कारण स्वयम् कवि को भी ज्ञात नहीं, यही उसकी विशेषता है। इतना ही नही, उसने आकर हृदय मे उसी प्रकार आसन जमा लिया, जैसे कमला कमल पर, किन्तु उसे आभास नही मिला। शृगार वर्णन मे अमल चन्द, कुरग आदि के द्वारा ही रूप प्रस्तुत किया गया किन्तु वह सौन्दर्य नेत्रो की अपेक्षा हृदय मे समा जाता है। कवि स्वयम भी कह देता है कि कलिका अपने सौन्दर्य को छिपाये रहो, भ्रमर चारो ओर फिर रहे है। प्रेम एक सौरभ है,

---

११. चन्द्रगुप्त : पृष्ठ १९३

जिससे हृदय सुरभित हो उठता है। प्रेम, प्रकृति को कवि एक समन्वित रूप मे प्रस्तुत कर रहा है, जो आगे चलकर उसके स्वतन्त्र काव्य दर्शन में परिणत हो जाता है। भारतेन्दु की भांति प्रसाद की शृंगार-भावना परिष्कृत है, उसमें विकास के चिह्न मिलते है। प्रकृति के विषय में कवि की वही जिज्ञासा है, वही कुतूहल। वसन्त कौन मन्त्र पढ देता है कि समस्त प्रकृति सरस हो उठती है। मलयानिल किसे पुकार रहा है? रसाल की शिखाओ पर कोकिला कौन-सा गीत गा रही है? प्रकृति के विषय में यदि जिज्ञासा है, तो प्रेम की विचित्र दशा उसे आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। आसू पियूष से भी सरस है। कही-कही पर परम्परा का आभास भी मिल जाता है, जिसमें लोकगीतो का-सा स्वर है।

'जिया ना जराव जरी जाय रही होरी है .'

इसके अतिरिक्त कवि प्रेम के द्वारा दार्शनिक तथ्य भी पा जाता है। 'लोग गवाइ के पावत है', आदि बातें उसे ज्ञात हो जाती है।

भक्तिपरक कविताएं—

भक्ति की कविताओ का मूल प्रेरक वह धार्मिक वातावरण ही प्रतीत होता है, जिसमे कवि प्रसाद का जीवन विकसित हुआ। इन कविताओ में परम्परा कहीं-कही अधिक स्पष्ट हो जाती है। कवि पूर्ण भक्त नहीं था, उसमें केवल भक्ति की भावना थी। यही कारण है कि भक्त कवियो की-सी तन्मयता उसमें नही मिलती। सगुण भक्त कवियो की प्रणाली के अनुसार प्रसाद ने भी अपने उपास्य को दीनबन्धु, करुणासमुद्र, सच्चिदानन्द, नाथ आदि से सम्बोधित किया है। प्रसाद का उपास्य राम अथवा कृष्ण नही है। वह रसपूर्ण, रूपवान, सगुण है, किन्तु उसका नामकरण कवि ने नही किया, केवल गुणों से विभूपित कर दिया है। यह भक्ति की भावना सासारिक सघर्पो से त्रस्त होने से कभी-कभी प्रबल हो उठती है। विश्लेपण करने पर इस भक्ति-भावना का कोई विशेप कारण नही प्रतीत होता। इससे स्पष्ट है कि कवि परम्परा से प्रभावित है। पुण्य, पाप, परमार्थ, स्वार्थ आदि की ही प्राचीन समस्यायें इसमें प्रतिध्वनित होती है। इतिहास स्वयम् इसका साक्षी है कि दीनबन्धु ने पापीजनो को भी शरण दी है, कवि इसकी भी पुनरक्ति करता है। इसी के साथ ही कवि सामयिक समस्याओ पर भी आ जाता है:

'मन्दिर, मसजिद, गिरजा सब में खोजत सब भरमायो'

इन कविताओ मे कवि का हृदय पक्ष अधिक साथ नही देता। यही कारण

है कि आगे चलकर भक्ति की अपेक्षा वह दर्शन की ओर अधिक उन्मुख हुआ। किसी विशेष उपास्य को उसने हृदयगम नही किया, किन्तु कालान्तर में अनेक दर्शनो से वह प्रभावित हुआ। उसे प्रकृति के प्रत्येक कण में किसी अज्ञात शक्ति का आभास मिलने लगता है। भक्ति की अपेक्षा श्रद्धा और शक्ति तत्व का, प्रसाद की कविता में अधिक विकास हुआ। स्वच्छन्दता में बाधा प्रस्तुत करनेवाली यह परम्परा शीघ्र ही कवि से छूट गई।

'चित्राधार' का स्वरूप--

चित्राधार की कविताओ पर एक विहगम दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि भाव की दृष्टि से उनमे नवीनता अवश्य मिलती है। अभिव्यजना की नवीन शैली उसने अपनाई है, जो रीतिकालीन कवियो की अपेक्षा कालिदास, भारतेन्दु के अधिक समीप है। अध्ययन के साथ ही उसमे परिपक्वता आती गई। आरम्भिक रचनाओ मे भी परिष्कृत शृगार-भावना के दर्शन होते है। द्विवेदी-युग की शुष्कता और रीतिकालीन मर्यादाहीन शृगारिकता के बीच नैसर्गिक सौन्दर्य की एक क्षीण रेखा इन कविताओ मे मिल जाती है। आख्यानक कविताओ से प्रबन्ध शक्ति का भी आभास मिलता है। कवि की सश्लिष्ट योजना, लक्षणा शैली यद्यपि शिथिल है किन्तु उसमें विकास के चिह्न है। इन कविताओ का इस दृष्टि से प्रयोगात्मक और ऐतिहासिक महत्व है। 'मानस' में जिस मनोवैज्ञानिक एवम् मानसिक विवेचना की ओर उन्होने सकेत किया था, उसका बराबर विकास होता गया। कवि का व्यक्तित्व आभासित होने लगता है, वह राधा कृष्ण के रूपक द्वारा शृंगार की अभिव्यक्ति नही करता। अभी तक जीवन मे अधिक सघर्षो के न आने से इन कविताओ मे एक सीधी-सादी प्रणाली ही दिखाई देती है। कभी कवि प्रकृति मे रमता है, कभी ईश्वर को पुकारता है और कभी प्रेम मे उलझता है। भाषा की दृष्टि से अभी वह पूर्णतया परम्परामुक्त नही हो सका। हा, अलकारो से अवश्य वह मुक्त है। किन्तु जहा कही वह उनके मोह में पड़ा भी है, वर्णन में व्यवधान अधिक नही पड़ता। पयार, त्रिपदी, बगला से तथा प्रियम्वदा, सुन्दरी, मालिनी आदि छन्द उन्होने सस्कृत से ग्रहण किये। वैभवशाली वातावरण मे पले हुए प्रसाद अभी जीवन को खुली आखो से भली-भाति न देख सके थे, किन्तु उनमे जिज्ञासा थी, कुतूहल था। यही कारण है कि आगे चलकर उनकी भावना एक सार्वभौमिक धरातल पर पहुँच गई। तत्कालीन ब्रजभाषा की कविताओ से तुलना करने पर प्रसाद की आरम्भिक रचनाओ मे भी अधिक सौन्दर्य दिखाई पडेगा। जिस शृगारी कविता को छूना द्विवेदी-युग में एक

अपराध सा बन गया था, उमी की एक नयी मीमासा लेकर प्रसाद ने प्रवेश किया था।

'प्रेमपथिक'—

नवयुवक प्रसाद की प्रेम-भावना 'प्रेम पथिक' में आकर पूर्ण प्रस्फुटित हुई। कवि ने इसे लगभग सोलह-सत्रह वर्ष की अवस्था मे लिखा था। स्वय उन्होंने उसके खडी बोली सस्करण (माघ शुक्ल ५, १९७० वि०) मे निवेदन किया कि, 'यह काव्य ब्रजभाषा मे आठ वर्ष पहले मैंने लिखा था।' इसका कुछ भाग इन्दु, कला एक, किरण दो, भाद्रपद शुक्ल, २, १९६६ वि० में प्रकाशित हुआ था। यद्यपि स्वय दोनो ही सस्करणो में से किसी मे भी कवि ने इसकी कथा के विषय मे कोई भूमिका नही प्रस्तुत की, किन्तु एक स्थान पर उसने ऐसी पुस्तक का सकेत किया, जिसकी कथा भी 'प्रेमपथिक' की भाति है। इन्दु, कला दो, किरण एक, श्रावण स० १९६७ मे प्रसाद जी ने 'कवि और कविता' शीर्षक एक लम्बा लेख लिखा था। इसमें उन्होंने भावमयी कविता के दो विभाग किये, कथामूलक और भावमूलक। कथामूलक भावमयी कविता के अन्तर्गत उन्होंने श्रीधर पाठक के 'ऊजड ग्राम' को रक्खा। इतिहास से विदित है कि पाठक जी ने 'एकान्तवास योगी' (स० १९४३ वि०, जनवरी १८८६), 'ऊजड ग्राम' तथा 'श्रान्तपथिक' का पाद्यिक अनुवाद क्रमश गोल्डस्मिथ के हरमिट, डेजर्टेड विलेज और ट्रेवलर से किया। उन्होंने 'एकान्तवास योगी' लावनी अथवा ख्याल के ढग पर लिखी। 'श्रातपथिक' की रचना रोला छन्द मे की। ये अनुवाद उस समय अत्यधिक लोकप्रिय हुये थे[१३]। 'एकान्तवास योगी' और 'श्रान्तपथिक' खडी बोली मे तथा 'ऊजड-ग्राम' ब्रजभाषा मे थे। एकान्तवासी योगी की कथा प्रणय सम्बन्धी है।

एकान्तवास योगी—

सुनिये झाडखड वनवासी, दयाशील हे वैरागी।
करके कृपा बता दे मुझको, कहा जलै है वह आगी।

---

१३. "Several girls being known to have made it their constant companion with which they would not part even at bed time" Preface to fifth edition

—एकान्तवास योगी।

मै भटका करता हूँ बन में, भूल गया हूँ राह ।
तू जो मुझे वहां पहुँचा दे, यह गुण होय अयाह ।

पथिक कहता है, "मै वन मे इधर-उधर भटका करता हूँ, राह भूल गया हूँ मुझे मार्ग बता दो ।" तभी वन मे ही रहनेवाले एक वैरागी ने कहा, "पुत्र, वहा मत जाना । भ्रम की अग्नि का कभी विश्वास न करना । सम्मुख जलनेवाला प्रकाश सत्य नही, मिथ्या है । यही निकट ही मेरा दरिद्रकुटीर है । चलो, आज रात वही विश्राम करो । मै पर्वत की घाटियो में स्वच्छन्द विचरण करता रहता हूँ । मुझ पर परमेश्वर की दया है, मै पशु-हिंसा नही करता । कन्द, मूल, फल खाकर प्रसन्न रहता हूँ । सुजान बटोही, चिन्ता छोडकर मगन हो जा । जगत का व्यर्थ मोह छोडकर तन-मन भगवान को अर्पित कर दे ।" ये मृदुल वचन पथिक को ओस-बिन्दु की भाति प्रतीत हुये । वह योगी के साथ चल दिया । बहुत दूर झाडखड मे उसकी पर्णशाला बनी हुई थी । योगी ने पथिक का हृदय से स्वागत किया । किन्तु इस समस्त परिचर्या से भी उसका शोक कम न हो सका । पथिक अब भी मलिन, व्यथित और पीडित था—

गद्गद् कंठ हृदय भर आया, ली उसास उसने भारी
नेत्रों से फिर अश्रुपात की एक साथ बंध गई धारी ।
बहे अनर्गल अश्रुधार यह ज्यो पावस का मेह
आर्द्र कपोल, चिबुक, वक्षस्थल, सजल हुई सब देह ।

ज्ञानी वैरागी ने स्थिति का अनुभव कर लिया । वह स्वयम् उसी व्यथा से पीडित था और ससार के समस्त दुख, सन्ताप सहन कर चुका था । उसने अत्यन्त कोमल, मृदुल वाणी मे कहना आरम्भ किया, "परदेसी, तू क्यो दुखी है ? क्या घर का सुख तुझ से छूट गया है ? अपने लोगो से बिछुडकर तू उनकी सुधि मे रो रहा है, अथवा मैत्री का बुरा परिणाम तुझे मिला है । क्या तेरे अपार दुख का कारण प्रेम तो नही है, जिसका निर्वाह ससार मे कठिन है । धन के बल से प्राप्त होनेवाला सासारिक सुख पल भर मे समाप्त हो जाता है । सासारिक मैत्री भी केवल एक कथा है । अपनी स्वार्थसिद्धि के हेतु ही जगत् मित्र बन जाता है । तू प्रेम पन्थ मे पडकर व्यर्थ ही स्वयम् को कष्ट दे रहा है । इस कुटिल क्रूर पृथ्वी पर प्रेम का वास भला कहा सम्भव है ? आकाश के प्रसून की भाति उसकी आशा व्यर्थ है ।" अन्त मे योगी ने कहा

'बड़ी लाज है युवा पुरुष, नहिं इसमें तेरी शोभा है
तज तरुणी का ध्यान, मान, मन जिस पर तेरा लोभा है ।'

योगी ने आश्चर्य-चकित होकर देखा, पथिक का रूप, लावण्य प्रकट हो गया था। प्रभात के समय अरुणोदय के साथ ही आकाश स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार बटोही का सुप्त सौन्दर्य उदित हो उठा। वैरागी को विश्वास हो गया कि वह पथिक पुरुष नही, कोई सुन्दरी है। वह दुखिनी नम्र होकर बोली, "साधुवर, मेरा अपराध क्षमा कीजियेगा। मै भाग्यहीन, एक दीन विरहिणी हूँ। मैंने इस पुनीत आश्रम को अपवित्र कर डाला। मेरी दशा शोचनीय है, मुझ प्रेम-व्यथित अबला पर दया कीजिये। केवल प्रेम-प्रेरणावश मैने अपना गृह त्याग दिया, और प्राणपति के लिये पुरुष वेश धारण कर लिया। टाइन नदी के रम्य तट पर ही मेरे पिता की अतुल सम्पत्ति थी। वे अत्यन्त धर्मशील और उदार थे। बाल्यावस्था में ही मा के स्वर्गवासी हो जाने से उन्होने मुझे बड़े स्नेह से पाला था। एकमात्र बालिका होने के कारण मै ही उस धन-वैभव की स्वामिनी थी। सुख-ही-सुख में मेरा शैशव व्यतीत हो गया, मै यौवन के द्वार पर आ गई। अनेक युवक मेरे पास आने लगे। उनमें से ही एक कुमार एडविन भी मेरा प्रेमी था। वह सभ्य, सौम्य, सुशील, सुजान तथा सभी मानवीय गुणो से अलकृत था। विधि ने विश्व का समस्त सौन्दर्य ही उसमें सगृहीत कर दिया था। आज तक केवल उसकी मूर्ति के सहारे ही जी रही हूँ। अब भी मुझे मिलने की आशा बनी हुई है। दिन-रात उसी की आराधना करती रहती हूँ, वही मेरा इष्टदेव, जीवन-प्राण है। पर्वत-घाटियो में घूमते समय उसकी अमृतमयी वाणी से सुधारस बरसा करता था। उसका सौन्दर्य अपूर्व था,

> **उसके मन की सुघराई की उपमा उचित कहां पाऊ**
> **मुकुलित नवल कुसुम कलिका सम कहते फिर फिर सकुचाऊ।**
> **यद्यपि ओस-विन्दु अति उज्ज्वल, मुक्ता विमल अनूप**
> **किन्तु एक परमाणु मात्र भी नहि उसके अनुरूप।**

किन्तु विधि का विधान ही कुछ और था। मै अपने रूप के अहकार मे चपल हो उठी। प्रेम-परीक्षा करने के लिये उसकी अवहेलना करने लगी। प्रेम करते हुए भी उसकी उपेक्षा की। उसे मेरे शुष्क व्यवहार से अत्यधिक कष्ट हुआ। अन्त मे वह निराश होकर चला गया। मै कभी प्राणनाथ को नही भूल सकती, प्राणदान के द्वारा उसका ऋण चुका दूगी। एडविन ने मुझसे प्रेम किया, मै जीवन देकर उसका प्रतिदान करूँगी।"

वह वैरागी स्वयम् एडविन ही तो था। उसने युवती को हृदय से लगा लिया, और बोला, "मेरी अजलैना, इतने दिन के बिछुड़े हम लोग पुन मिल रहे है। ईश्वर को वारम्बार धन्यवाद है। अब मै तुझे छोड़कर कभी कही नही

जाऊँगा। तू ही मेरा सर्वस्व है।" योगी को रमणी ने भी वाहुपाशों में भर लिया। ये दोनो ही प्रेम-रस का पान आनन्दित होकर कर रहे थे। अन्त में कवि कहता है :

परम प्रशस्य अहो प्रेमी ये, कठिन प्रेम इनने साधा
इस अनन्यता सहित धन्य, अपने प्यारे को आराधा।
प्रेम वियोग परितापित होकर, दिया सभी कुछ त्याग
वन वन फिरना लिया एक ने, दूजे ने वैराग।
धन्य अजलैना तेरा व्रत, धन्य एडविन का यह नेम
धन्य-धन्य यह मनोदमन, और धन्य अटल उनका यह प्रेम।
रहो निरन्तर साथ परस्पर, भोगो सुख आनन्द
जुग जुग जिओ जुगुल जोड़ी, मिल पियो प्रेम मकरन्द।

गोल्डस्मिथ की मूल कविता मे प्रेम के उच्च आदर्श की स्थापना की गई है। उसी के साथ प्रकृति का वर्णन भी होता रहता है। साहित्यिक नृत्य गीतो की यह प्रणाली उस समय अत्यधिक लोकप्रिय थी। वर्णनात्मक काव्य के अन्तर्गत ही यह आते थे। इनमें नृत्य, प्रवन्धकाव्य तथा नाटक का एक साथ समन्वय होता था[१४]। आगे चलकर नृत्य गौण हो गया था। सस्कृत में भी ग्यारहवी शताब्दी के लगभग कविता मे ही कुछ कथायें लिखी गई [१५]। शतक भी साहित्यिक नृत्य गीतों के निकट है। क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार के काव्य निवन्ध लिखे। 'तारा शशाक' भी एक प्रेमकथा ही है। इस प्रकार की कथाये सभी साहित्यो में मिलती है। किसी लघु मर्म कथा के द्वारा भावाभिव्यक्ति करने से उसमे सरसता अधिक आ जाती है। सामान्य जनता भी उसका आनन्द ले सकती है[१६]। स्वच्छन्द, प्राकृतिक भावधारा सीधे अन्तस्तल को छूने की शक्ति रखती है। अपने प्रारम्भिक रूप

---

१४. "A Ballad is not a song. Usually it holds a story: it is the fragment of an epic." —
A History of English Literature By Legouis, Cazamian, Page 175.

१५. A History of Sanskrit Literature, Page 290.

१६ "Ballad is the delight of the common people." A Critical History of English Poetry—
By J C. Grierson, J. C Smith (1947), page 227.

में वह ग्राम गीतो के अधिक समीप थे, किन्तु धीरे धीरे उसे साहित्यिक वातावरण में ले आया गया। इस प्रकार इन साहित्यिक नृत्य गीतो का पर्याप्त प्रचलन रहा। स्वय गोल्डस्मिथ का 'ट्रेवलर' पाच वर्षो में छ सस्करण पा चुका था। 'ऊजड़ ग्राम' एक वर्ष में ही छ बार मुद्रित हुआ। श्रीधर पाठक के इन अनुवादो का हिन्दी साहित्य के इतिहास मे एक अपना स्थान है।

प्रेम पथिक--

प्रसाद आरम्भ से ही नवीनता लेकर चले थे। एकान्तवास योगी' से अनुप्राणित 'प्रेमपथिक' में स्वच्छन्दता का विकास हुआ। आरम्भ में ही कवि कथा आरम्भ कर देता है

'छाडिकै अभिराम अति सुखधाम चारु अराम
पथिक इक कीन्ह्यो गमन, सुप्रवास को अभिराम।'

जाते समय पथिक ने ग्राम देवता को प्रणाम किया। पथ पर चलते-चलते भास्कर की किरणें प्रखर हो गई, वह वट वृक्ष की शीतल छाया में विश्राम करने लगा। पपीहा की 'पी कहा' सुनते ही उसे अपनी प्रिया का ध्यान हो आया। वह बढता ही गया। आगे उसे एक निर्मल जल का सरोवर मिला। पानी पीकर वह पुन चलने लगा और मरुभूमि में पहुँच गया। उसके कपोलो पर अविरल आसू की धारा थी। वह मन-ही-मन सोच रहा था कि इस निर्जन में एक वृक्ष के अतिरिक्त कोई अन्य छाया नही है। तृण भी नही दिखाई देता। जो कुछ है, वह भी सूखता चला जा रहा है। रस के मेघ भी यहा मेरे मीत बनकर नही बरस जाते। दिवस और रजनी में कोई अन्तर नही प्रतीत होता। इसी प्रकार विचार करते-करते पथिक व्याकुल हो उठा

काह करूँ, कित जाऊँ, कछु न दिखाय
हाय, हाय, जक लागी कहु न सुहाय।

तभी एक मनुष्य आकर बोला कि तुम तो अत्यन्त कोमल प्रकृति के प्रतीत होते हो। पथिक, यह वही उपवन कुज है, जिसमें अलिपुज भूलकर भी पग नही रखता। इस तरु मे एक भी डाल कुसुमित नही है। चन्द्रमा वही है, किन्तु चकोर नही दिखाई देता। इस उपवन मे वायु भी कही नही रहती। इस मारुत के स्पर्श मात्र मे कलिकायें मुरझा जाती है, और--

'प्रेम ! चक्रवर्ती राजा के राज
य ! दुहाई सुनी जात नहिं काज।'

पथिक, तुम्हे सुकुमार देखकर हम शिक्षा देते है कि इस पथ में अनेक दुख है, तुम लौट जाओ। तभी पथिक बोला, "तुम कौन हो ? किस स्थान के वासी हो ? मेरे स्वामी, प्रेम के जाल मे पड़े मुझको दयाकर उबार लो।" उस अपरिचित ने पुन आरम्भ किया, "मै स्वयम् प्रेम हूँ, मेरे मित्र ! तुम अभय हो जाओ, मेरी कृपा तुम पर है।" पथिक ने पागलो की भाति हाय-हाय करते हुये प्रेम को पकड़ लिया। वह आकुल होकर कहने लगा '

"तुमने इतने दिनो तक मुझे व्यर्थ ही हैरान किया। आज शिक्षा देने आये। तुम्ही प्रिया के दृगो मे समाये थे, और मेरे हृदय में वाण मार गए थे। पुतलियो मे तुमने हलाहल भर दिया था। काली लम्बी लटो में तुम फास वन गये थे। अधरो मे विद्युत की भाति मदिर मुसकान तुमने ही भर दी थी। कपोलो के बीच झलकनेवाली अरुणिमा मे तुम्हारा ही प्रतिविम्ब था। आज मुझे तुम्हारा छल-बल ज्ञात हुआ। नल आदि तुम्हारे ही जाल में फँस गये थे। शकुन्तला, दमयन्ती, राजकुमारी, कुवर, गन्धर्व, नर, किन्नर, यक्ष आदि सभी तुम्हारे तीर्थ में स्नान कर चुके। उन्हे कभी तृप्ति नही मिली, पिपासा बुझ न सकी। बताओ '

'कठ विगत किय प्रानहि दीनहि क्रूर
अपने जन को मारत बनिके सूर।'

प्रेम पथिक की इन बातो पर हँस पड़ा। वह बोला, "अब तो तुम मेरे बन्धनो में हो। हृदय मे कुछ धीरज रखो, पीर सहन कर लो। आशा, निराशा, अश्रुधार, कम्पन सभी मन के भूषण है। यदि प्रिय की कामना है, तो जलज की रीति सीखो; सदा रसाकुल होकर प्रीति का उपभोग करो। पथिक, धीर धर कर चलो, पथ दूर है। स्नेह में चूर होकर आगे बढो।"

पथिक को एक नवीन शक्ति मिली। वह कृतज्ञ होकर बोला, 'प्रेम, तुम्हारे समान अन्य कोई नही है। शका, दृढता, हर्ष, शोक एक साथ तुम मे एकाकार हो उठे है। प्रेम का सिन्धु अथाह है, न उसकी कोई सीमायें है और न तट। उसमें सदा ऊँची तरगें उठा करती है। सुख दुख से मुक्ति पाने के लिये नौका पर चलना होगा। प्रेम का नाम न लेना, इसे भूल जाओ। दूसरो को शिक्षा देते हो, अपनी ही दशा देखो। अभी तक प्रेम जाल में पड़े हो। अन्त मे,

'भये दुर्बल दीन तन अरु नैन ते जलधार
वही आशा छाह रट, पुनि हाय वारहि बार।'

'प्रेमपथिक' उस समय की ब्रजभाषा कविता के लिये एक सर्वथा नवीन प्रयास था। कवित्त, सवैया और पदो मे बधी हुई कविता के स्थान पर प्रसाद ने नया प्रयोग किया। शृगार के स्थान पर इसमें प्रेम का ही स्वरूप प्रस्तुत किया

गया है। प्रेम को कवि ने साकारता प्रदान की है। वह पथिक से वार्तालाप करता है। आरम्भ में वह मनुष्य के रूप में ही पथिक के सम्मुख प्रस्तुत होता है, और अपने परिचय में स्वयम् को 'प्रेम' कहता है। वह बीहड़ और निर्जन पथ की चर्चा करने लगता है। अपनी साकेतिक शैली मे प्रसाद ने प्रेम का जो उदात्त स्वरूप प्रस्तुत किया, वह सर्वथा नवीन है। प्रेम स्वयम् कहता है

'यह वह श्रमशाला है रहे जो सून
सून रहें पै कलरव नितप्रति दून।'

'प्रेम की भाषा मौन है, किन्तु फिर भी प्राणो मे सदा नव चेतना रहती है। इतिहास स्वयम् इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य सदा प्रेम के पीछे भटकता रहा है। प्रेम में तृप्ति भी कभी नही होती। पिपासा की शान्ति स्वयम् प्रेम का अन्त कर देगी। इस कारण पिपासा ही प्रेम का जीवन है। प्रेम एक ऐसा तीर्थ है, जिसमें नर, किन्नर और यक्ष तक ने स्नान किया। जन्म से लेकर मरण तक मनुष्य प्रेम की आवश्यकता मे सघर्ष करता रहता है[१०]।' प्रेम का सिन्धु अथाह है, पर उसके द्वारा मनुष्य पार हो सकता है।

इस प्रकार 'चित्राधार' के प्रेम से कवि ने आगे बढने का प्रयत्न किया है। उसके कवित्त और सवैयों में प्रेमी का प्रेमिका के प्रति वही परम्परागत उपालम्भ और निवेदन अधिक मिलता है। प्रेमी बारम्बार प्रार्थना करता है कि हमें दर्शन दो। उस 'अनग की छलना' को वह आज भी नही भूल सका। वेदना मे उसे अश्रु पीयूष से भी अधिक शीतल प्रतीत हो रहे हैं। ब्रजभाषा काव्य मे प्रथम बार प्रसाद ने प्रेम की स्वतन्त्र सत्ता का प्रदर्शन किया। उसकी शृगारिकता भी दूर हो चुकी है। वह स्वयम् एक ऐसी शक्ति बनकर प्रस्तुत हुआ कि बिना किसी रूप के ही स्थिर रह सकता है। इसी प्रेम के साथ ही काव्य मे कवि का व्यक्तित्व भी अधिक प्रस्फुटित हो उठा है। अभी तक प्रसाद प्रकृति के रमणीय स्वरूप और ईश्वर के गुणो पर ही मुग्ध थे। प्रेमपथिक मे सर्वप्रथम बार वे मानव के इतना अधिक निकट जा सके हैं कि उनके काव्य को मानवीय आधार प्राप्त हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि अब भी प्रकृति के प्रति उनकी अभिरुचि है किन्तु अब वह मानवीय भावनाओं का आधार बन गई है। प्रेम के गुणो का प्रतिपादन करने के लिये ही कवि ने उसका अवलम्ब ग्रहण किया है। 'पी कहां' प्रियतम का स्मरण करा देता है, मारुत के लगने से कलिकायें भी मुरझा जाती हैं।

---

१० 'From cradle to the grave human beings struggle under the need for love" Dr O Spudgeon Eng

यदि एक ओर ब्रजभाषा के लिये प्रेमपथिक सर्वथा एक नवीन प्रयोग था तो आगे चलकर इसके खड़ी बोली के रूपान्तर ने छायावाद के प्रथम चरण का कार्य किया। वियोगी हरि जी का 'प्रेमपथिक' भक्ति का अधिक आग्रह करता है। प्रसाद का 'प्रेमपथिक' आख्यानक कविता के भावात्मक आदर्श को लेकर प्रस्तुत हुआ। इसके ब्रज-सस्करण मे ही प्रसाद ने छन्द के विषय मे थोड़ी-सी स्वच्छन्दता लेना आरम्भ कर दी थी। चारु, उद्‌गार, सुविभार, धारि आदि मे तुक पूर्णतया नही मिलते। आगे चलकर खड़ी बोली का रूप तो अतुकान्त ही हो गया। प्रेम का अप्रस्तुत विधान आगे आनेवाली रहस्यात्मकता का सूचक है। उस समय के कवियो—भगवानदीन, सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाकर की अपेक्षा प्रसाद मे निस्सन्देह अधिक रसात्मकता थी। भगवानदीन जी पुरानी ढग की ही कविता लिखते थे। परम्परा का आभास उनमें मिलता है। कविरत्न जी में ब्रजभूमि की छाप है। 'भ्रमरदूत' में नन्ददास का अनुकरण है। रत्नाकर जी की कविता मे यद्यपि नई उक्तिया थी, किन्तु उसमें आलकारिकता अधिक आ गई थी। इस प्रकार प्रसाद ब्रजभाषा के भी स्वतन्त्र कवि है और वे घनानन्द आदि के अधिक समीप है।

ब्रजभाषा की रचनायें—

'प्रसाद' की ब्रजभाषा की रचनायें आगे न चल सकी, किन्तु उनका एक ऐतिहासिक महत्त्व है। उस समय की ब्रजभाषा काव्य परम्परा पर एक दृष्टि डालने से यह ज्ञात हो जाता है कि केवल विषय की दृष्टि से भारतेन्दु ने उसमें सुधार किया था। शृगार और रीति के साथ ही देश, काल सम्बन्धी कवितायें भी ब्रजभाषा के माध्यम से होने लगी थी। एक ओर यदि वे अगिया में छिपे हुये चितचोर को ठीक रीतिकालीन कवियो की भाति खोजते थे, तो दूसरी ओर उन्होने भारत की दुर्दशा पर भी उसी भाषा में दुख प्रकट किया। नवीन विषयो की ओर उन्मुख रहने पर भी भाव की दृष्टि से वह परम्परा के आवरण को न उतार सकी थी। कवि-गोष्ठियो मे अब भी रसमय समस्यापूर्तिया ही चला करती थी। प्रसाद ने कल्पना-सुख, मानस, नीरव प्रेम आदि नवीनतम विषयो पर काव्य-रचना की। शृगार मे भी उन्होने पर्याप्त परिष्कार कर लिया। प्रकृति को केवल उद्दीपन न बनाकर उन्होने उसके अनेक सुन्दर रूपो से रमणीयता प्राप्त की। एक जिज्ञासा भरी दृष्टि से प्रकृति की फैली हुई विभूति को देखा। नहीं तो नाथूराम शकर शर्मा का कथन था

> 'काहू विधि विधि की बनावट बचेगी नाहि
> जो पै वा वियोगिन की आह कढ़ जाएगी।'

शैली की दृष्टि से उन्होने नवीन छन्दो का उपयोग किया। भक्ति की कविताओ में वे सगुणोपासक कवियों की तन्मयता तक नही पहुँच सकते। भक्ति तो उनके लिये दर्शन तक जाने का एक आधार बनी, किन्तु अपने समय की भक्ति कविताओ में उनकी ही भावना में अधिक वैयक्तिक स्वर था। राधाकृष्ण की आड़ में ही भक्ति के साथ शृंगार का भी वर्णन करनेवाले कवियो का अनुसरण प्रसाद ने नही किया। उन्होने 'दीनवन्धु' रूप को ग्रहण किया। इस दृष्टि से अपने व्रजभाषा के आरम्भिक और अन्तिम काल में भी उनका स्वर स्वतन्त्रता की ओर उन्मुख था।

'प्रसाद' की इन आरम्भिक कृतियो मे ही उनका विकासशील स्वर झलक जाता है। कवि की कई कृतियो में अध्ययन का प्रभाव मिलता है। इस अध्ययन ने उसे प्रौढता प्रदान की। आगे चलकर उसने अनुभव के द्वारा उसे एक जीवन दर्शन के रूप मे प्रस्तुत कर दिया। प्रसाद का ज्ञान काव्य मे रसमय होकर आया है। कालिदास के महान काव्यो से अनुप्राणित प्रसाद की आरम्भिक रचनायें अन्त में स्वयम् शृंगार की एक उदात्त कल्पना अकित करती है। 'प्रेमपथिक' के प्रेम का आदर्श ही अन्त मे उनके समस्त साहित्य की आत्मा बन जाता है। प्रसाद प्रेम के कवि हैं। कवि की प्रवन्धात्मकता लम्बी रचनाओ से विदित हो जाती है। नाटको को अपनी विचारधारा का प्रमुख माध्यम बनाने के कारण उन्होने काव्य मे उसे अपेक्षाकृत कम स्थान दिया है। काव्य में लिखी गई कथायें महाकाव्य का ही एक लघु सस्करण होती है। आरम्भ से ही कवि ने नवीन प्रयोग करने आरम्भ कर दिये थे, और धीरे-धीरे उन्ही का विकास होता गया, उनमें प्रौढता आती गई। भावना की दृष्टि मे उसने द्विवेदी-युग की शुष्कता को सरस वनाया। प्रसाद ने वास्तव में शृंगार का जो स्वस्थ स्वरूप प्रस्तुत किया, उसकी रेखायें व्रजभाषा की इन आरम्भिक रचनाओं में ही मिल जाती है। प्रेम की व्यापक परिभाषा तो वह कर ही चुका है। आगे चलकर प्रकृति के जिस विशाल रगमच पर उसने समस्त साहित्य को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया, उसके चिह्न भी यही प्राप्त हो जाते है। प्रकृति के सौन्दर्य पर रीझनेवाले कवि ने अन्त में मानव में वही सौन्दर्य खोज निकाला। प्रकृति के स्थान पर मानव आ गया, किन्तु अव भी उसकी अपेक्षा कवि को थी। जिस प्रकार व्रजभाषा के कवि प्रकृति का वर्णन मनुष्य जगत का उद्दीपन बनाकर करते थे, उसी प्रकार अनेक वार प्रसाद ने भी किया है, किन्तु उनकी भावना आरम्भ मे ही अधिक सूक्ष्म और उन शृंगारी कवियो की अपेक्षा अधिक परिष्कृत और जिज्ञासामय है। यह जिज्ञासा ही आगे उनके विकास मे सहायक हुई है। यदि 'चित्राधार' में ये

जिज्ञासाये न होती, तो प्रसाद जी प्रेमाख्यानक शृगारी कवियो की श्रेणी से ऊपर उठकर उच्चतर रहस्य काव्य का सृजन न कर पाते[१८]।

प्रसाद को यदि प्रकृति से दर्शन प्राप्त हुआ तो भक्ति भावना ने उन्हे आदर्श प्रदान किया। इस दृष्टि से आरम्भ में आनेवाली इन परम्परा-प्रभावित विचार-धाराओ का भी कम-से-कम एक ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य है। प्रकृति और सृष्टि को ब्रह्म की छाया मानकर चलनेवाले इस कवि ने इस विश्व को ही 'प्रियतममय' वना दिया। इद, अह का समस्त भेद यही समाप्त हो जाता है। आगे चलकर स्वच्छन्दतावादी होते हुये भी प्रसाद ने काव्य में जिस महान आदर्श की स्थापना की, वह भारतीय विचार-धारा का ही एक नवीन सस्करण है। प्रसाद की ब्रजभाषा में भाव, शैली की दृष्टि से एक नवीनता भी है, जो आगामी युग की सूचक है। इसके अतिरिक्त उनकी ब्रजभाषा भी सूर की पदावली से भिन्न है। ब्रज के आस-पास बोली जानेवाली ब्रजभाषा में देशज शब्द अधिक हैं, किन्तु प्रसाद की भाषा में सस्कृत के तत्सम शब्द भी मिल जाते हैं। काशी में रहकर कवि ने ब्रजभाषा का अध्ययन केवल कवि-गोष्ठी के वातावरण तथा पुस्तको के द्वारा ही किया था। विन्दु, हिमकन, अमरतरगिनि, परिमल, प्रभजन, आदि अनेक शब्द आगामी चरण का सकेत दे देते है। गद्य के क्षेत्र में अत्यधिक प्राजल भाषा का प्रयोग उन्होने आरम्भ कर दिया था। आगे चलकर भाषा की दृष्टि से प्रसाद को इतनी अधिक सफलता प्राप्त हुई कि उनके गद्य और पद्य की भाषा एक-सी हो गई। कवि की अन्तर्दृष्टि इतनी व्यापक प्रतीत होती है कि सामाजिक वातावरण के अनुसार वह आनेवाली समस्याओ को काव्य मे स्थान दे सका। वीस वर्ष तक की कविता में रवीन्द्र में भी पुनरावृत्ति तथा विराम के स्थल प्राप्त होते है। विषय भी इतने नवीन नही है, जितना कि नव-युवक कवि का अनुमान था। कुछ धूमिल चित्र भी है, निराशा से पूर्ण, जो प्राय जीवन के आरम्भिक भाग में कवियो को कटु अनुभवो के द्वारा प्राप्त होते हैं। प्रेम कवितायें, प्रभात सन्ध्या के चित्र भी है[१९]। रवीन्द्र की भाति प्रसाद ने भी आरम्भिक प्रेरणा भारतीय साहित्य से प्राप्त की। प्रत्येक कवि अपने साहित्य की महान कृतियो से प्रभावित होता है। मिल्टन ने आरम्भिक अवस्था में

---

१८. जयशकर प्रसाद—ले० नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ ६६

१९. "The pieces show him in possession of a device which he was to use for more than most poets, that of repetition and the refrain. The subjects

लैटिन की समस्त सुन्दर कृतियो का अध्ययन समाप्त कर लिया था। गेटे होमर की रचनाओ को सदा अपने ही साथ रखता था। डान्टे ने वर्जिल को अपना गुरु ही मान लिया था। इस प्रकार आरम्भ में अध्ययन कवि को विषय सामग्री देता है। रवीन्द्र को वैष्णव कवियो से बडी प्रेरणा प्राप्त हुई थी। कालिदास से प्रकृति, कबीर से रहस्यवाद की भी उन्हे प्रेरणा मिली। आगे चलकर कवि स्वयम् अपनी भावाभिव्यक्ति के लिये नवीन सामग्री सजोने लगता है। अनुभव के द्वारा वह इस ज्ञान को समन्वित कर कविता को स्थायित्व प्रदान करता है। प्रसाद ने आरम्भ में भारतीय साहित्य के जिन विभिन्न अगो से प्रेरणा प्राप्त की थी, आगे चलकर स्वयम् उनकी कविताओ में वे ही गुण प्राप्त होने लगते हैं। आरम्भ में ही कवि एक ठोस धरातल पर खड़ा दिखाई देता है। देश और काल की बदलती हुई परिस्थितियो के साथ कवि ने सदा समझौता किया।

---

are not as fresh as the young poet perhaps thought them There are gloomy pieces, full of the disillusionment which is often the bitter experience of poets not three quarters through their teens There are love poems there are poems which celebrate dawn and evening .
—Rabindranath, by Thompson Page 34.

खड़ी बोली का प्रथम चरण

इन्दु-काल मे ब्रजभाषा के साथ प्रसाद ने खड़ी बोली में भी लिखना आरम्भ कर दिया था। बीस वर्ष की अवस्था के पश्चात् उन्होने खड़ी बोली ही को काव्य का माध्यम बना लिया। विकास की दृष्टि से 'चित्र' को ही उनकी सर्वप्रथम खड़ी बोली कविता मानना पड़ता है।

आशा तटनी का कूल नहीं मिलता है
स्वच्छन्द पवन बिन कुसुम नहीं खिलता है।
कमलाकर में अति चतुर भूल जाता है
फूले फूलों पर फिरता टकराता है।
मन को अथाह गम्भीर समुद्र बनाओ
चंचल तरंग को चित से वेग हटावो।
शैवाल तरंगों में ऊपर बहता है
मुक्ता समूह थिर जल भीतर रहता है।

—इन्दु, कला २, किरण २, १९६७ वि०, पृष्ठ ५७

स्फुट रचनाओ की दृष्टि से कानन-कुसुम प्रसाद की खड़ी बोली कविताओ का प्रथम सग्रह है। उसमें 'सम्वत् १९६६ से १९७४ तक की कविताओ का सग्रह', लिखा है, किन्तु इन्दु मे उनकी सर्वप्रथम खड़ी बोली की प्रकाशित रचना 'चित्र' ही है। इस समय आचार्य द्विवेदी जी खड़ी बोली का नेतृत्व कर रहे थे। ब्रजभाषा की घोर शृगारिकता के विरुद्ध जो आन्दोलन उस समय खड़ा हो गया था, वह साहित्य की एक अन्य सीमा थी। यदि शृगारी कवि नायिका में ही कविता को बाध देते थे, तो द्विवेदी-युग का कवि आदर्श तक जाने के लिए कृत्रिमता का सहारा ले रहा था। गद्य के क्षेत्र में तो इतिवृत्तात्मकता उचित है, किन्तु काव्य मे वह आत्मा को ही समाप्त कर देती है। कवि प्रकृति को देखता था, उसका चित्रण करता था, किन्तु उससे तन्मय होकर, पाठक तक उसी चित्र को पहुँचा देने की शक्ति उसमे न थी। पवित्रता, आदर्शवादिता और पौराणिक आख्यानो द्वारा शृगार का परिष्कार नही किया जा रहा था, वरन् वह साहित्य से दूर होता जा रहा था। इस यथार्थवादी शुष्कता ने यदि गद्य के क्षेत्र मे प्रेमचन्द जैसे महान कलाकारो को शक्ति दी, तो काव्य मे गुप्तजी की परिश्रमसाध्य कृतिया आई। आदर्शवादिता की रक्षा में कवि जीवन की कठोर वास्तविकतासे

के इस काव्य में ग्यारह पात्र रख दिये है। किन्तु इसे नाटक की सज्ञा नही दी जा सकती। नाटक का-सा व्यापक सघर्ष और द्वन्द इसमें नही मिलता। इसे प्रसाद की अन्य रचनाओ की भाति कथा काव्य अथवा आख्यानक कविता ही कहना अधिक उपयुक्त होगा, जिसमें नाटकीय शैली का भी समावेश करा दिया गया है। प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान को लेकर ही इस कथा का निर्माण हुआ।

कथानक को विकसित करने के लिए कुछ-कुछ गीति नाट्य की-सी शैली अपनाई गई है। तुकान्तविहीन मात्रिक छन्द में आवश्यकतानुसार विराम चिह्न भी दे दिये गये है। गण वृत्तो में लिखने के पूर्व भी अमित्राक्षर कविता होने लगी थी। किन्तु मात्रिक वृत्तो में उसका प्रयोग बिना चरणो के बन्धन में पडकर प्रसाद ने ही किया। सस्कृत का कुलक, अग्रेजी का ब्लैकवर्क्स तथा बगला के अमित्राक्षर की भाति ही कवि ने अतुकान्त काव्य की रचना की। अधिक बन्धन और प्रतिबन्ध न होने के कारण भाषा में एक प्रवाह-सा आ जाता है। इसके अतिरिक्त भावना की अभिव्यक्ति भी उसके नैसर्गिक रूप में हो सकती है। आगे चलकर कवियो की स्वच्छन्दता इस सीमा तक बढ गई कि उन्होने मात्राओ के भी बन्धन को तोड़ डाला। 'करुणालय' अपने तुकान्तविहीन मात्रिक छन्दो में खड़ी बोली में एक नवीन प्रयोग था।

करुणालय—

करुणालय के प्रथम दृश्य के आरम्भ मे ही महाराज हरिश्चन्द्र जल विहार करते हुए सहचरजनो सहित प्रवेश करते है। प्रकृति के अत्यधिक सुन्दर स्वरूप को देखकर वे मुग्ध हो उठते है। सरिता के प्रान्त में सान्ध्य-नीलिमा फैल रही है। निर्मल विधु धीरे-धीरे आकाश में चढा चला जा रहा है। मलयानिल से प्रकपित, जल की लहरो पर, शैवाल जाल झूमते है। जल मे लहरें उठ-उठकर नौका को बुलाती है। तारागण भी नाव की मस्तानी चाल को देख रहे है। विश्व में प्रेममय शान्ति भरी हुई है। पवन प्रेम-मदिरा पीकर, आनन्द से झूम-झूमकर धीरे-धीरे चल रहा है। कवि कहता है—नौके, कर्णधार बनकर स्वयम् पवन तुम्हे लिये जा रहा है। धीरे-धीरे चली चलो, तुम्हे जल्दी ही क्या है ? यहा प्रभजन का उत्पात नही है। देखो ·

मलयानिल अपने हाथो पर है धरे
तुम्हें लिये जाता है अच्छी चाल से
प्रकृति सहचरी-सी फैली है साथ में
प्रेम सुधामय चन्द्र तुम्हारा दीप है।

हरिश्चन्द्र का सेनापति ज्योतिष्मान महाराज का ध्यान तट-कानन की ओर आकर्षित कराता है। यही पर कभी जनपद था। इक्ष्वाकु-कुल ने अपने भुजबल से दस्युओ का दमन कर दिया। अब वे आख उठाकर आर्यो को नही देखते। हरिश्चन्द्र बोले 'देवगण सदा आर्यो के अनुकूल है। विश्व की समस्त सुख-शान्ति का उत्तरदायित्व हम पर है। आर्य जाति के चरणो में सब विभूतिया और गर्व के उपकरण उपहार है।' तभी नौका स्तब्ध हो गई, नेपथ्य से गर्जन होने लगा कि यह राजा मिथ्याभाषी और पाखंडी है। इसने सुतबलि देना निश्चित किया था, किन्तु आज तक अपना प्रण पूर्ण नही किया। हरिश्चन्द्र ने कहना आरम्भ किया,—'हे देव, सन्तान की अत्यधिक ममता होती है। अब मै बलि देने मे देर नही करूँगा। हे समुद्र और आकाश के देव, मुझे क्षमा कीजिये।'

द्वितीय दृश्य के आरम्भ में रोहित कानन में घूमता हुआ सोच रहा है कि पिता परमगुरु होता है, उसका आदेश पालन करना हितकर धर्म है। किन्तु निरर्थक मरने की कड़ी आज्ञा है, कैसे पालन करूँ? उसको हमारे प्राणो पर क्या अधिकार है? वह सार्वजनिक सम्पत्ति तो नही है। शैशव में ही बलि का क्रूर कर्म कर लेते तो अच्छा था। स्वच्छ नील नभ में अरुण रवि-रश्मिया थिरक रही है। सम्मुख नव प्रभात का सुखद दृश्य है। प्रकृति का मनोगत भाव कितना सुखदायक है। अब मै परिवर्तनशीला प्रकृति को देखूगा। देश देश स्वाधीन होकर घूमूगा। चारो ओर ही मृगया का आहार है, सभी जीव सहचर है। सब स्थानो में नवकिसलय की सेज सजी है। जब तक चाप मेरा सहायक है, क्या कमी रहेगी? तभी नेपथ्य से ध्वनि आई—

> चलो सदा चलना ही तुमको श्रेय है।
> खड़े रहो मत कर्म मार्ग विस्तीर्ण है।

'चलनेवाला आपदाओ और सारी बाधाओं को पीछे ही छोड़ देता है। चले चलो, तनिक भी घबराओ नही। बढो, बढो, इस भूमि मे रुकना मत। पवन की तरह चलो। यदि बैठ जाओगे, तो कुटिल ससार मे तुम्हे एक पग भी स्थान नही मिलेगा। जहा प्रेम के सघन शतदल खिले हुये है, शीतल जल का स्रोत बह रहा है, परिमल से मिला पवन दिन रात बहता रहता है, वही तुम्हें जाना है। ग्रीष्म के पथिक यहा मत ठहरो, चलो, बढो, अभी रम्य भवन अत्यन्त दूर है।' रोहिताश्व को एक नवीन शक्ति मिली।

तृतीय दृश्य में अजीगर्त अपनी पत्नी तारिणी से कहते है,—प्रिये, अब पास में एक भी पशु नही रह गया। तीन-तीन पुत्रो के भोजन का क्या

प्रबन्ध किया जाय। यह अरण्य भी फलो से खाली हो गया है। जहा किसी दिन लताये चरणो को चूम लेती थी, वही अब सूखे काटे गड़ते है। कानन की हरियाली फल-फूल देकर सब भूख मिटा देती थी, अब धूप में छाया भी नही मिलती। क्या करूँ प्रिये! तभी रोहिताश्व आ गया, और उसने दुख का कारण पूछा। अजीगर्त ने कहना आरम्भ किया कि तुम तो राजकुमार-से प्रतीत होते हो। तुम्हारा यह स्वर्णखचित शिरस्त्राण ही वैभव को बता रहा है। आज भूख का दुख मुझ पर छा रहा है। विकल अकाल से, जीवन की केवल एक आकुल आशा मे प्राण त्रस्त है। एक-एक दाने का आश्रय खोज रहा हूँ। आज वीभत्स पिशाच स्वयम् अपना ही मास खा लेना चाहता है। अधीर विडम्बना मेरे इन दुर्बल शब्दो पर हस रही है। क्या तुम मेरी कुछ सहायता करोगे? रोहिताश्व ने सौ गायो के बदले एक पुत्र मागा। अजीगर्त ने मध्यम पुत्र शुन शेफ को दे दिया।

चतुर्थ दृश्य में महाराजा हरिश्चन्द्र सिहासनासीन है। तभी शुन शेफ को साथ लेकर रोहिताश्व ने प्रवेश किया और बोला कि अब मुझे क्षमा कर दीजिये, मै पशु लेकर आ गया हूँ। यदि आप मेरी बलि दे देते तो राज्य मुझे किस प्रकार मिलता। बिना पुत्र के पिडदान भी सम्भव नही। तभी वशिष्ठ बोले,—राजन् मैने सब कुछ सुन लिया। राजकुमार ने उचित ही किया। यदि पिता ने इच्छा से इसे बलि के लिये दे दिया है, तो ठीक है। राजपुत्र के स्थान पर इसी की बलि दे दीजिये। देव तुरन्त प्रसन्न हो जायगे और आप भी सत्य सत्य होगे। उन्होने शुन शेफ से भी पूछ लिया और यज्ञ कार्य ठीक करने की आज्ञा देकर चले गये।

पचम दृश्य में यज्ञमडप में हरिश्चन्द्र, रोहित, वशिष्ठ, होता इत्यादि बैठे है। शुन शेफ यूप से बधा हुआ है। शक्ति उसे वध करने के लिये बढता है, पर सहसा रुक जाता है। वह शस्त्र फेककर कहता है कि, मुझसे यह घोर कर्म न होगा। तभी अजीगर्त ने प्रवेश किया और कहा कि मुझे एक सौ गायें और दे दीजिये, मै शीघ्र ही आपका कार्य कर दूगा। वशिष्ठ ने स्वीकार कर लिया। अजीगर्त शस्त्र लेकर चला, शुन शेफ ने कातर भरी दृष्टि से आकाश की ओर देखा.

हे हे करुणा के सिन्धु नियन्ता विश्व के
हे प्रतिपालक तृण, वीरुध के, सर्प के,
हाय प्रभो, क्या हम इस तेरी सृष्टि के
नहीं, दिखाता जो मुझ पर करुणा नहीं।

हे ज्योतिपपथ स्वामी, मै अनाथ, असहाय सहायता के लिये पुकार रहा हूँ। तुम्हारी करुणा कहा चली गई ? हे जगत्पिता, तुम तो हो, फिर भी हमें क्यो दुख हो रहा है :

त्राहि-त्राहि करुणालय। करुणा सद्म में
रखो, बचा लो। विनती है पद-पद्म में।

तभी विश्वामित्र ने अपने मधुच्छदा प्रभृति सौ पुत्रो सहित प्रवेश किया। वे वशिष्ठ से बोले,—महर्पि यह क्या अन्धेर मचा रखा है ? इसमें कौन-सा धर्म है ? क्या तुम स्वयम् इस प्रकार अपने पुत्र की बलि दे सकते हो ? और फिर आकाश की ओर देखकर कहने लगे,—रे मनुष्य, तू कितना नीचे गिर गया है ? आज भय और प्रलोभन तुझसे कैसे आसुरी कर्म करवा रहे हैं। मूर्ख, धर्म की छाप लगाकर आसुरी माया में फँस गया है। वे पुन वशिष्ठ से बोले,—यदि तुम्हारे देव को मनुष्य के प्राणो की आवश्यकता है, तो लो मेरे सौ पुत्र बलिदान के लिये प्रस्तुत है ।

वशिष्ठ लज्जित हो गये। तभी एक नारी आकर बोली,—हे देव, न्याय कर दीजिये। अरे ऋपि, तू नीच वधिक बन गया। विश्वामित्र, क्या तुम अपने ही पुत्र को नही पहिचानते ? विश्वामित्र ने सुव्रता को पहचान लिया। उन्होने राजा से शुन शेफ को मुक्त करवा लिया और सुव्रता से समस्त कथा भी जान ली। उन्हे अपने सौभाग्य से पत्नी और सुत मिल गये। विश्वामित्र बोले .

जगन्नियन्ता का यह सच्चा राज है
सबका ही वह पिता, न देता दुख है
कभी किसी को। उसने देखा सत्य को

तुम सब उसी देव का स्तवन करो, जो पूर्ण विश्व का परिपालक है।

जय जय विश्व के आधार।

इस प्रकार करुणालय की समाप्ति एक आदर्श स्थापना के साथ होती है। छोटी-सी पौराणिक घटना के द्वारा कवि का लक्ष्य करुणा का प्रतिपादन है। सब प्राणियो का आधार एक ही देव है, फिर पारस्परिक घृणा कैसी ? प्रसन्न तथा उदार होने के लिये उसी जगन्नियन्ता का अवलम्ब ग्रहण करना होगा। शुन शेफ भी आपत्ति काल मे उसी करुणानिधि को पुकारता है। बलि से जगदीश प्रसन्न नही होता। वह तो आसुरी क्रिया है। उसे केवल करुणा से ही जीता जा सकता है। यही करुणा का सिद्धान्त आगे चलकर बौद्ध धर्म से प्रभावित हुआ, और वह एक जीवन दर्शन के रूप में प्रतिपादित किया गया। इसके अतिरिक्त काव्य के

आरम्भ में प्रकृति के व्यापक चित्रपट का दर्शन प्राप्त होता है। पवन का धीरे-धीरे प्रेम की मदिरा से विह्वल होकर चलना, जल की लहरों का नाव को बुलाना आदि आगामी चरण का आभास दे देते है कि मानव और प्रकृति एक दूसरे के अधिक निकट आते जा रहे है। प्रकृति के साम्राज्य में सर्वत्र प्रेममय शान्ति भरी रहती है। इसी रगमच पर कवि करुणा की स्थापना करता है। हरिश्चन्द्र को प्रकृति एक सहचरी प्रतीत होती है। इतना ही नही, प्रकृति की गतिशीलता उन्हें एक नवीन सन्देश देती है। मानव प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त करता है। स्वयम् रोहिताश्व भी परिवर्तनशीला प्रकृति के सहारे आगे बढना चाहता है। प्रकृति और मानव एक दूसरे के निकट हैं। इस भावना में उत्तरोत्तर विकास होता गया, और अन्त में प्रसाद जड़ चेतन सभी में आनन्द का आरोप कर देते हैं। उन्हें विश्व के प्रत्येक कम्प में एक ताल दिखाई देने लगता है। देवसेना कहती है—'प्रत्येक परमाणु के मिलन में एक सम है, प्रत्येक हरी-हरी पत्ती के हिलने में एक लय है। पक्षियो को देखो, उनकी चह-चह, कल-कल, छल-छल में, काकली में, रागिनी है' इसी घने वृक्ष को वह प्रेम का तरु बना देती है[२]।

सम्पूर्ण कथा को लौकिक धरातल पर रखने का प्रयास कवि ने किया है। अपने पौराणिक रूप में वह अतीन्द्रिय और अलौकिक थी। केवल नेपथ्य को छोड़ कर प्राय समस्त भाग स्वाभाविक और लौकिक प्रतीत होता है। ऋषि का भी मानवीकरण कर दिया गया है। वशिष्ठ की भी दुर्बलतायें है। वे राजकुमार की प्रसन्नता के लिये शुन शेफ का बलिदान स्वीकार कर लेते हैं। विश्वामित्र से भी सुव्रता का प्रणय सम्बन्ध हुआ था। अन्त में उन्होने उस परिणीता को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार पौराणिक पात्रो को भी मानवीय भावनाओ से अलकृत कर दिया गया है। कवि अतीत के द्वारा वर्तमान का ही चित्रण करना चाहता है। अकाल की विभीपिका से अजीगर्त इतना अधिक त्रस्त है कि स्वयम् अपना पुत्र तक सौ गायो के लिये देने को प्रस्तुत हो जाता है। जीवन के कठोर धरातल पर उसे स्नेह का बलिदान देना पड़ता है। अन्य सौ गायें मिलने पर वह अपने पुत्र का वध करने को भी तत्पर हो जाता है। इसे अजीगर्त की क्रूरता नही कही जा सकती। यह केवल परिस्थितियो की विवशता है। अन्त मे जब बालक ईश्वर से दया की भिक्षा मागता है, उन्हे बारम्बार पुकारता है, तो भी उसे मानव के आगमन मे ही मुक्ति मिलती है। भक्ति का स्थान ईश्वर की करुणा ने ले लिया है। यज्ञ कार्य का पूरा फल शुन शेफ को मुक्त कर देने मे मिल जाता है। ईश्वर

---

२ स्कन्दगुप्त, पृष्ठ ५३

को कवि ने विश्व के आधार रूप मे स्वीकार किया है। वह तेज का आकार है, उसी की शुभ ज्योति से सत्य का पथ निर्धारित होता है। विश्व करुणा के द्वारा ही बन्धनो से मुक्ति पाकर प्रसन्न और उदार हो सकता है। इस प्रकार इस छोटी-सी पौराणिक कथा को प्रसाद ने मानवीयता प्रदान की है। एक जीवन-दर्शन का आभास भी करुणालय से मिलता है। कवि एक आदर्श की स्थापना मे सफल हुआ है।

महाराणा का महत्त्व—

'महाराणा का महत्त्व' एक ऐतिहासिक काव्य है। इन्दु कला ५, खंड १, किरण ६, जून १९१४ मे यह सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ था। इसमें कवि ने महाराणा की वीरता का चित्रण किया है। आरम्भ में ही खानखाना की बेगम की दासी प्रश्न करती है —क्यो जी, वह दुर्ग कितनी दूर है ? कानन में पतफड़ फैल-फैलकर अपना भीषण आतक दिखाता था। प्रबल प्रभजन वेगपूर्ण चला जा रहा था। देर से सूखे काटे और पत्ते बिखरे हुए थे। नव वसन्त का आगमन जगत को गति की सूचना दे रहा था। खानखाना का हरम महाराणा की विचरण भूमि में आ पहुँचा था। बेगम को चक्कर आ रहा था, उन्हे प्यास लगी थीं, सभी लोग रुक गये। एक सुन्दर स्थान पर वह दल ठहर गया। तभी कुछ राजपूत आ गये। दोनो दलो मे युद्ध होने लगा। अन्त में अमरसिंह की विजय हुई। राजपूत बन्दीगण को लेकर चले। दिन भर के विश्रान्त विहगकुल नीड़ से निकल कर डाल पर बैठने लगे। पश्चिम दिशि मे दिनकर अस्त हो रहा था। अर्बुदनिधि की घनी शैलमाला शान्त हो रही थी, जैसे जीवन में कर्मयोग-रत मानव को सदा शुभ शान्ति प्राप्त होती है। शैल-शिखाओ पर एक पुरुष बैठा था। उसकी आखो में जीवन-मरण की समस्या भरी थी। वह वीर श्रान्त था, किन्तु उसका हृदय अब भी उत्साह से भरा था। उसके मुख पर करुणा-मिश्रित वीरभाव था तथा अनुपम महिमा मडित शोभा थी। वह आर्य जाति का तेज है, देशभक्त और जननी का सच्चा पुत्र। इस प्रताप का नाम भारतीय इति-हास मे स्वर्णाक्षरो में लिखा है। वे अपनी लीलाभूमि के सुगौरव कुज में बैठे-बैठे वनशोभा देख रहे थे। तभी सालुम्ब्रापति कृष्णसिंह ने समाचार दिया कि स्त्री के साथ एक वृन्द बन्दी हुआ है। राजकुमार ने उन्हें यहा भेजा है। आर्यनाथ ने कहा कि क्षत्रिय कभी स्त्री को दुख नही देते। उसे किसने बन्दी किया ?

इस अबला के बल से होगे सबल क्या ?

वीर कभी परम सत्य को नही छोड़ देते। इस धर्म भूमि मेवाड़ में क्षुद्रकर्म

कदापि न होना चाहिये। शीघ्र उसे उसके स्वामी के पास भेज दीजिए। सिंह क्षुधित होकर भी डर से दबी शृगाली वृन्द की मृगया नही करता। सैनिको को मेरा सन्देश दीजिये कि आज से किसी अवलावृन्द को दुख न दिया जाय। बेगम अपने स्वामी के पास भेज दी गई। ऐतिहासिक आधार पर भी इस कथा की पुष्टि होती है।

नवाब ने समझा कि प्रताप ने बेगम के सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसे मुक्त किया, बोले—सुन्दर मुख की सर्वत्र विजय होती है। प्रिये, तुम्हारे उस अनुपम सौन्दर्य से वशीभूत होकर वह कानन-केसरी गान्धार के इस दाख पर दात न लगा सका। बेगम बोली—जरा चुप रहिये। शत्रु ने आपकी नारी को छोड़ दिया। आप विशेष बातें न बनाइये। नवाब तत्काल ही कहने लगे—जब से मै सेनापति होकर यहा आया हूँ, वीर प्रताप सदा विजयी रहता है। मै स्वाधीन जन्मभूमि के वीरपुत्र की रणक्रीड़ा देखता रह गया। अभी तक मैने क्रूर और निर्दय देखे थे, जो अपने स्वार्थ से युद्ध कार्य करते थे। जन्मभूमि और प्रजा सुख के लिये भला इतना आत्मोत्सर्ग किसने किया ? दुग्धफेन की शैया छोड़कर सूखे पत्ते कौन चबाता है ? वीर प्रताप दावाग्नि-सा दहकता है। यदि युद्ध मे मुझे पराजय भी प्राप्त होती तो इतना क्षोभ न होता। अब मै सेनापति नही रहना चाहता। बेगम ने कहा मै भी काश्मीर चलना चाहती हूँ। कुछ दिन की छुट्टी ले लीजिये। हो सके तो सम्राट और राणा मे शुभ सन्धि करा दीजिये। नवाब ने कहा—महान प्रताप वीर, दृढ और कुलमानी है। वह यवनो से सन्धि न करेगा। प्रताप सच्चा साधक, निज देश का सपूत और मुक्त पवन में पला हुआ वीर है।

साम्राज्य भवन पर चन्द्रिका सुशोभित हो रही थी। राजभवन में मणिमय दीपाधार आलोकित थे। वन्दी, चारण, प्रतिहारीगण सभागृह में खडे थे। शहशाह अकबर को नवाब ने सलाम किया। उन्होने शहशाह के पूछने पर बताया कि मेरा स्वास्थ्य यहा की जलवायु से ठीक नही हो रहा है। मै काश्मीर जाना चाहता हूँ। अकबर ने अस्वस्थता का कारण पूछा। निर्भय वरदान पाकर वे बोले—जिस दिन आपने मेवाड़ विजय के लिये मुझे सेनापति बनाया, मै बड़ा प्रसन्न था कि उस वीर को देखूगा। वास्तव में पर्वत की कन्दरायें ही उसका महल है, जगल ही बाग है, घास, फल, फूल आहार है। सुकुमारी कन्या और बालक का ग्रास छिन जाने पर भी वह मुगलवाहिनी के सम्मुख भिड़ जाता था। एक दिन राजकुमार ने बेगम को वन्दी बना लिया। प्रताप ने उसे सादर मेरे पास भेजकर मुझे बड़ा लज्जित किया। मै मनोवेदना मे व्याकुल हूँ। राणा ने कभी आपके राज्य पर आक्रमण नही किया। वह अपने छोटे राज्य मात्र से

सन्तुष्ट है। ईश्वर की नीति से भी उस उन्नत हृदय को दुख देना उचित नही। मेरी इच्छा है कि दो महत्वमय हृदय एक हो जाय, जिससे सुख-प्रेम का महान सौरभ सर्वत्र फैले। भारत के नर भी आपका यशोगान करेंगे। अकबर ने आज्ञा दी कि राणा से युद्ध बन्द कर दिया जाय। अन्त में—

कहा खानखाना ने हे उन्नत हृदय
भारत के सम्राट ! दयामय आपकी
सुयश लता की बीज उर्बरा भूमि में
शान्ति वारि से सिंचित हो, फलवती हो।

इस प्रकार 'महाराणा का महत्व' में राष्ट्रप्रेम की भावना निहित है। प्रताप भारतीय शौर्य और देशप्रेम के प्रतीक माने जाते है। इसी ऐतिहासिक कथांश को लेकर कवि ने प्रताप का चरित्र-चित्रण किया है। प्रताप वीरता के आदर्श है, वह कर्मयोगरत मानव है। कवि अपनी राष्ट्रीय भावना के कारण ही भारत-वासियो से उसका नाम पूछता है, जो आर्य जाति का तेज है। वीर होने के साथ ही वह परम सत्य को नही छोड़ता। स्वयम् नवाब भी उस शौर्य और पराक्रम पर मुग्ध हो जाता है। कवि ने एक विदेशी के मुख से प्रताप का यशोगान कराया है

सच्चा साधक है सपूत निज देश का,
मुक्त पवन में पला हुआ वह वीर है।

*　　　*　　　*

तिस पर भी उसके इस हृदय महत्व का
कैसे मैं वर्णन कर सकता हूँ, प्रभो !

खानखाना रणक्षेत्र मे प्रताप को देखता रह जाता था। प्रसाद जी अपने राष्ट्र-गौरव के प्रति सदा सचेत रहते थे और उसी का प्रकाशन इसमे मिलता है। काव्य-विकास की दृष्टि से उनमे पर्याप्त प्रौढता आ रही है। आरम्भ मे ही प्रकृति का सुन्दर चित्रण हुआ है। कवि परम्पराओ के बन्धन से मुक्त है। प्रकृति का उन्मुक्त वातावरण यद्यपि ऐतिहासिक चित्रण के कारण नही दिखाई देता, किन्तु यथास्थान वह अपनी सरसता को लेकर प्रस्तुत हुआ है

विस्तृत तरु शाखाओ के ही बीच में
छोटी-सी सरिता थी, जल भी स्वच्छ था,
कल-कल ध्वनि भी निकल रही संगीत-सी
व्याकुल को आश्वासन-सा देती हुई।

प्रकृति की सुन्दर छटा के बीच ही महाराणा प्रताप को भी दिखाया गया है। यह प्रकृति-चित्रण किसी तादात्म्य भावना को लेकर नही किया गया। वह केवल एक आधारशिला का कार्य करता है। शाही महल का चित्रण अत्यन्त कलात्मक ढग से किया गया है। केवल वाह्य रूप-रेखा से ही उसके मादक वातावरण का आभास मिल जाता है। मुगलो के वैभव की एक हल्की सी झाकी प्रस्तुत करने का प्रयास कवि ने किया है

तारा हीरक हार पहनकर, चन्द्रमुख
दिखलाती, उतरी आती थी चादनी
शाही महलो के सुन्दर मीनार से
जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेमिका
मन्थर गति से उतर रही हो सौध से।

इसी प्रकार जब नवाव ने प्रताप को सौन्दर्य से प्रभावित कहा था, तो केवल मधक कपोलो की स्वच्छ ललाई देखकर सुराही काप गई थी, वारुणी छलक उठी थी। वीरता के साथ ही सौन्दर्य को भी कवि ने स्थान दिया है। उसकी कल्पना यद्यपि किसी विस्तृत रगमच पर कार्य नही कर रही है, किन्तु इस छोटे से कथानक में भाषा का ओज, नाटकीय शैली, चरित्र-चित्रण की विशेषता दिखाई देती है। कथा का आरम्भ अत्यन्त नाटकीय ढग से किया गया है। समस्त कथा को चार खडो में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग में राजकुमार अमरसिह यवनो को वेगम के साथ वन्दी करते है। उसी के वाद प्रताप के सम्मुख उन्हे प्रस्तुत किया जाता है और वे उन्हे मुक्त कर देते हैं। इसके अनन्तर वेगम और खानखाना का वार्तालाप है। वेगम अकवर के पास जाने के लिये कहती है। अन्त में खानखाना अकवर से समस्त वृत्तान्त कहते है, और वे आज्ञा दे देते है कि प्रताप पर आक्रमण न हो। इस प्रकार कवि महाराणा प्रताप के महत्त्व की स्थापना करा देता है। उसका मुख्य उद्देश्य प्रताप की महानता का चित्रण है, और इस कार्य मे उसे सफलता प्राप्त हुई है। वेगम आदि पात्रो के द्वारा उसने इस ऐतिहासिक कथानक मे भी सरसता और सजीवता भर दी है। इक्कीस मात्रा के अरिल्ल छन्द का प्रयोग इस अतुकान्त कथा-काव्य मे किया गया है। इस प्रकार 'महाराणा का महत्त्व' में अनेक दृष्टि से आधुनिकता के दर्शन होते है।

'प्रेम पथिक'—

प्रसाद का विकसित रूप 'प्रेमपथिक' में दिखाई देता है। इसकी रचना कवि ने सम्वत् १९६६ के लगभग व्रजभाषा मे की थी। सम्वत् १९७० मे उसी का

"परिवर्तित परिवर्द्धित, तुकान्तविहीन हिन्दी रूप' उसने प्रस्तुत किया। वह अपने नए रूप में अधिक प्रौढ रचना है। प्रेमपथिक का कथानक एक सार्वभौमिक सिद्धान्त पर आधारित है। किसी के प्रेम मे योगी होना और प्रकृति के निर्जन क्षेत्र मे कुटी छाकर रहना एक ऐसी भावना है जो समान रूप से सब देशो के और श्रेणियो के स्त्री-पुरुषो के मर्म का स्पर्श स्वभावत करती आ रही है[१]। कवि प्रसाद ने भी अपनी सरस भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिये इस प्रचलित कथानक का आश्रय लिया। प्रसाद मुख्यत प्रेम और यौवन के कवि है। इस दृष्टि से प्रेमपथिक उनके कार्य्य की एक महत्वपूर्ण सीढी है। अनुभूति के नैसर्गिक स्वरूप से उन्होने इसकी रचना की। सम्पूर्ण कथा सक्षेप मे इस प्रकार है:

सन्ध्या की, हेमाभ तपन की, किरणें जिसको छूती है
रंजित करती है देखो जिस नई चमेली को मृद से
कौन जानता है कि उसे तम में जाकर छिपना होगा?
या फिर कोमल विधुकर उसको मीठी नींद सुला देगा।

प्रकृति के सम्पूर्ण यौवन पर विचार करने के पश्चात् पथिक सोचता है कि लीलामय की अद्‌भुत लीला किससे जानी जाती है? भविष्य जीवन का धुधला पट कौन उठा सकता है? तभी वह,सरिता के रम्य तटी में एक सुन्दर कुटिया देखता है। वन की समस्त प्रकृति उसका शृगार कर रही थी। एक तापसी पद-दलिता छाया-सी वही वैठी थी। उसने पथिक से रजनी भर विश्राम करने का अनुरोध किया और यह भी कहा कि यदि आत्मकथा मुझे सुनाने योग्य हो, तो वचित न करना। सौम्य अतिथि को पाकर यह निशा सहज में वीतेगी। हा, प्रभात होते ही तुम अपने पथ पर लग जाओगे, और दु खिनी यही ज्यो-की-त्यो रह जावेगी।

रजनी की छाया मे दुखी, प्रेमी, निराश सभी मीठी निद्रा में सो रहे थे। तारिकाओ के साथ-ही साथ नवमल्लिका पुष्पित होती जाती थी। चन्द्रमुखी रजनी शान्ति-राज्य-आसन पर आकर वैठ गई थी। तापसी ने पथिक से वन-वन भटकने का कारण पूछा। पथिक वोला·

शुभे! अतीत कथायें यद्यपि कष्ट हृदय को देती है
तो भी वज्र हृदय कर अपना, उसको तुम्हे सुनाता हूँ।

छोटे-से स्वच्छ नगर मे मेरी जन्मभूमि थी। इसी के पश्चात् पथिक अपनी जन्मभूमि का वर्णन विस्तार से करता है। कृपक समूह वहा सन्व्या को ग्राम्य

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, शुक्ल जी, पृष्ठ ५२२

गीत सुख से गाते थे। उस नगरी का नाम आनन्द नगर था। तटिनी के तट पर ही मैं पिता के साथ एक सुन्दर घर में रहता था। पास ही एक गृहस्थ सज्जन अपनी कन्या के साथ रहते थे। मेरे पिता की उनसे मैत्री थी। हम दोनो भी नित्य परस्पर खेला करते थे। नदी कूल, कुसुम कुज, उषा, सन्ध्या, खिली चादनी में एक ही डाल में लगे युगल कुसुम की भाति हम फिरा करते थे। एक दिन अनायास ही मेरे पिता इस ससार से चल बसे। इसी अवसर पर कवि कहता है -

कहां मित्रता कैसी बातें ? अरे कल्पना है सब ये
सच्चा मित्र कहा मिलता है ? दुखी हृदय की छाया-सा।

स्वार्थ, लोभ, प्रतिष्ठा और रूप ने मित्रता को बाध रक्खा है। ससार में हृदय खोलकर मिलनेवाले बड़े ही भाग्य से मिलते है।

बालक-बालिका दोनो प्रणयाकुर की भाति बढ रहे थे। सुख से ही ससार बना था। खेल खेल कर हृदय की कली खुल गई उसमें मधुर मकरन्द भर आया। नन्दन कानन का अरविन्द नवप्रणयानिल से खिल जाता था। विमल हृदय के छायापथ में अरुण विभा फैल रही थी। नवजीवन को वसन्त की सुखमय सन्ध्या घेर रही थी। प्रणय का खेल चल रहा था। एक दिवस पुतली का फलदान हो गया। विवाह के दिन हम दोनों छत पर बैठे प्रकृति की कला देख रहे थे। पुतली के घर उत्सव था, शहनाई बज रही थी। अन्त में वह चली गई। मैंने भी आनन्द नगर से विदा ली, और

छोड दिया सुखधाम सकल आराम, प्रेमपथ पथिक हुआ
जगत प्रवास बना था मेरा, सभी नगर ही थे परदेश।

मेरे मार्ग के बीच गिरि, कानन, जनपद, सरिताये आती थी, किन्तु हृदय की भाति मुझे शून्य आकाश ही दिखाई पड़ा। प्रकृति का समस्त क्रिया व्यापार पूर्ववत् चला जा रहा था, किन्तु प्रेमपथिक को सुख नही था। आसू बहकर विरह-वह्नि को शीतल करते थे। आशा-तरुवर दूर दिखाई देता था, जिसकी छाया उस मरुभूमिमय निराशा मे हृदय को सतोष देती थी।

एक दिवस प्राची में अधियारी बढती जाती थी। पूर्णचन्द्र आखमिचौनी की क्रीड़ा कर रहा था। मैं निर्मल सरिता के निकट बैठ गया। मुझे शैशव की समस्त सुखद स्मृतिया याद आ रही थी। तभी चन्द्रबिम्ब से देवदूत-सा एक व्यक्ति निकल कर कहने लगा—पथिक, प्रेम की राह अनोखी है। यहा भूल-भूल कर चलना पड़ता है। इसमे ऊपर घनी छाह है, तो नीचे काटे बिछे हुये हैं। प्रेमयज्ञ मे सर्वस्व हवन करना पड़ेगा। प्रेम पवित्र पदार्थ है, आदि। इस प्रकार प्रेम का

महान सन्देश देकर धीरे-धीरे स्वरलहरी-सी वह मूर्त्ति लोप हो गई। धीरे-धीरे रजनी बीत गई। मैं अपने आनन्द मार्ग पर चल निकला हूँ। कथा सुनते-सुनते ही तापसी बोली कि क्या तुम्हें अब भी उस पुतली, चमेली का ध्यान है? अन्त में पथिक ने उसे पहचान लिया :

कौन चमेली अरे दयानिधि, यह क्या कैसी लीला है ?

*　　　*　　　*

सच है, या कि स्वप्न है, क्या आश्चर्य आज मैं देख रहा
यह परदा कैसा उठता है, जो आंखो पर छाया था।

पुतली ने भी समस्त करुण कथा कह डाली कि उस विवाह मे मुझे कभी एक क्षण स्नेह नही मिला। मेरे पति धन-मद मे डूबे थे। अन्त में मुझे वैधव्य मिला। ठोकरो ने यहा लाकर पटका है। अब तो करुणानिधि से प्रार्थना किया करती हूँ कि दुखीजनो को शान्ति दें। किशोर ने भी जीवन के कल्याण-मार्ग मे प्रत्येक पद आगे रखने के लिये कहा। वह कहने लगा कि अपना प्रेम परिमित न कर दो। विश्वात्मा ही सुन्दरतम है। उस पर सर्वस्व न्योछावर करो। हम दोनो उस सौन्दर्य सुधासागर के कण है। आओ हम हृदय-हृदय से मिल जाये और जीवन-पथ मे सरिता होकर उस सागर तक दौड़ चले

चलो मिले सौन्दर्य प्रेमनिधि में, तब कहा चमेली ने
जहां अखड शान्ति रहती है वहां सदा स्वच्छन्द रहें।
लगी बनाने सोने का संसार तपन की पीत विभा
स्थिर हो लगे देखने दोनो के दृग-तारा अरुणोदय।

प्रेमदर्शन—

प्रेमपथिक में कवि ने प्रेमदर्शन की स्थापना कर ली है। अब तक जिस जिज्ञासा और कुतूहल से वह प्रकृति के कण-कण को निहारता रहता था, वही भावना मानव पर आकर केन्द्रित हो गई है। प्राकृतिक दृश्यो के उद्‌घाटन मे वह मानवीय मनोवृत्तियो का अकन करता चला जाता है। अब तक कवि का मानव प्रकृति के लिये था, अब प्रकृति मानव के लिये हो जाती है। कवि एक ऐसे मानवीय धरातल पर पहुँच गया है, जहा समस्त ससार उसे सौन्दर्य का सुधासागर प्रतीत होता है। विश्व स्वयम् ईश्वर है। किसी व्यक्ति मे अपनी अभिलाषाओ को केन्द्रित कर देने से ही दुख होता है। विश्व के अणु-अणु, कण-कण मे सौन्दर्य है। हम उस सौन्दर्य-सुधासागर की एक बूद मात्र है। केवल प्रकृति में मन को उलझा देना भारी भूल है। विश्वप्रेम के अन्तर्गत ही प्रकृति को भी रखना होगा। उस

सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र में छाई है। स्वयम् प्रकृति भी तो किसी असीम में विलीन होने जा रही है:

आत्मसमर्पण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर
प्रकृति मिला दो विश्वप्रेम में विश्व स्वयम् ही ईश्वर है।

कवि प्रेम और सौन्दर्य के तात्विक सिद्धान्त पर पहुँचने के पूर्व प्रकृति, मानव और जगत के सम्बन्ध की व्याख्या कर लेता है। इद में अह का समन्वय उसने स्थापित कर लिया है। आगे चलकर प्रसाद का यह चिन्तन आत्मा-परमात्मा की गम्भीर समस्या में कार्यरत हो जाता है। उपनिषद् के अनुसार

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाल्लोकानीशत ईशनीभि:
प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सचुकोचान्तकाले ससृज्य विश्वा भुवनानि गोपा:[४]

अपनी स्वरूपभूत विविध शक्तियों द्वारा इन सब लोको पर शासन करने-वाला रुद्र एक ही है, उसने किसी अन्य का आश्रय नही लिया। वह परमात्मा सब जीवो के भीतर स्थित है। सम्पूर्ण लोको की रचना करके, उनका रक्षक पर-मेश्वर प्रलयकाल में सभी को गुप्त कर देता है।

प्रसाद ने जगत और जीवन के बीच में जो समन्वय स्थापित किया है, उसमें दार्शनिक चिन्तन के साथ ही उनकी आन्तरिक अनुभूति का सयोग है। उसका निर्माण किसी आध्यात्मिक भूमि और रहस्यमय धरातल पर नही हुआ, वह जीवन के कठोर क्षेत्र की वस्तु है। दुख से परितापित व्यक्तियो को शीतलता प्रदान करने के लिये ही प्रकृति से भी आगे मानव तक जाना होगा। दर्शन का एक सुन्दर भावात्मक स्वरूप प्रसाद के काव्य में मिलता है। उन्होने वन के स्थान पर जीवन में साधना करने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। अपने प्रेम को व्यक्ति के स्थान पर समष्टि मे बिखेर देने से कोई कष्ट नही होगा। सुख-दुख में कोई मौलिक अन्तर नही है। दुखी व्यक्ति को सुख की आशा आनन्द देती है और बिना दुख के सुख का भी कोई अस्तित्व नही। प्रेम को किसी सीमा में नही बाधा जा सकता। वह अपरिमेय है, असीम है। रूमी ने प्रेम के गीत गाए हैं[५]। सौन्दर्य भी विश्वव्यापी है। सभी कुछ सुन्दर है—निर्झरिणी, शैलमालायें,

---

४ श्वेताश्वतरोपनिषद्, ३—२

५. दर इश्क मस्त बाश कि इश्कस्त हरचे हस्त
बेकारो बारे इश्क बरे यार बार नेस्त। (रूमी)
प्रेम में तन्मय हो जा। प्रेम सर्वस्व है। बिना इसमें लवलीन हुये प्रियतम का सामीप्य न प्राप्त होगा।

सारी प्रकृति और उससे भी अधिक सौन्दर्यमय है, मानव। उत्सर्ग के द्वारा ही जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त किया जा सकता है।

प्रेमपथिक के प्रेमदर्शन और जीवन सिद्धान्त में प्रसाद का विकास निहित है। जीवन-दर्शन की दृष्टि से यह प्रसादजी की प्रथम प्रौढ रचना है। कवि का उपनिषद्, शैवग्रन्थो आदि का अध्ययन इसमें आभासित होता है। चिन्तन, मनन के पश्चात् उन्होने स्वयम् अपने स्वतन्त्र दर्शन की स्थापना की। इसमें केवल अनुवाद नही है, किन्तु उन्होने उन ग्रन्थो को मानव के उपयोग में लाने का प्रयत्न किया है। दर्शन की अलौकिकता और आध्यात्मिकता पीछे छूट जाती है। प्रेम-पथिक के पात्र जीवन के कटु अनुभवो के पश्चात् ही इस सिद्धान्त पर पहुँचते है कि समस्त ससार में ही ईश्वर की सत्ता निहित है :

> किन्तु न परिमित करो प्रेम, सौहार्द, विश्वव्यापी कर दो
> क्षणभंगुर सौन्दर्य देखकर रीझो मत, देखो, देखो
> उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र में छाई है।

जीवन के आवश्यक और मूलभूत तत्व प्रेम, सौन्दर्य पर विचार करते हुए प्रसाद ने अपने विशाल साहित्य का निर्माण किया। अब तक यह प्रयोग चला आ रहा था। अपनी भक्ति भावना में भी प्रसाद ने ईश्वर को जगन्नियन्ता के रूप में स्वीकार किया था। प्रकृति के अनेक रूपो मे भी उन्हें उसी की सत्ता दिखाई देती थी। प्रेमपथिक मे आकर कवि मानव को पूर्णरूप से स्वीकार कर लेता है। मानव ही उसका ईश्वर है। कवि अपने जीवन के अनुभव से जिस निष्कर्ष पर पहुँचा है, उसी का विकास निरन्तर होता चला गया। प्रेम की परिभाषा में कवि का व्यक्तित्व आभासित हुआ है। प्रेम और प्रभु में कोई अन्तर नही। प्रेमयज्ञ मे स्वार्थ और कामना को हवन कर देना होगा। वह एक पवित्र पदार्थ है, जिसमे कपट की छाया भी नही रहती। उसका परिमित होना भी सम्भव नही। वह केवल व्यक्तिमात्र में नही रक्खा जा सकता। रूपजन्य प्रेम तो केवल मोह होता है। प्रेम में ऐन्द्रियता नही होती। प्रेम जगत का चालक है। इसके आकर्षण में खिचकर ही मिट्टी, जलपिंड आदि दिन-रात फेरा किया करते है[६]। प्रेम का मार्ग कठिन है। हिन्दी साहित्य में प्रेम की यह नवीन परिभाषा थी। यह लौकिक होते हुये भी अलौकिक थी। इस प्रेम में आदर्शवादिता अधिक है, स्वच्छन्दता कम। यही कारण है कि प्रसाद

---

६. Its love, its love that makes the world go round.
—Anon

का प्रेम अग्रेजी स्वच्छन्दतावादी कवियो की भाति आवेगमय नही हो पाता। शेली के प्रेमदर्शन के अनुसार निर्भर सरिता तक दौड़े चले जा रहे है, सरिता सागर मे अपना अस्तित्व विलीन कर देना चाहती है। आकाश का पवन मधुर भावनाओ से एकाकार हो रहा है। ससार में कुछ भी एकाकी नही, सभी वस्तुयें किसी नैसर्गिक नियम से एक दूसरे से आबद्ध है, फिर मै तुमसे क्यो न मिलू[७] ?

प्रसाद का प्रेम अनेक दर्शनो से मिलकर एक उच्च भावनाभूमि पर पहुँच गया है। वह बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक अधिक है। प्रेमपथिक का पथिक आरम्भ में इसी कारण दुखी रहता है, क्योकि उसने प्रेम के व्यापक स्वरूप को नही ग्रहण किया था। विश्व को ही प्रियतम मान लेने पर समस्त सज्ञायें उड़ जाती है, केवल सत्य सत्व रह जाता है। उस समय वियोग भी सयोग प्रतीत होता है। स्वय कवि के शब्दो में

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।

प्रसाद की यह आदर्शवादी प्रेमकल्पना अन्त मे रहस्यमयता का सृजन भी करती है। कवि की धारणा के अनुसार प्रेम का व्यापक रूप काम है। यह काम प्रेम का प्राचीन वैदिक रूप है। प्रेम को 'लव' अथवा 'इश्क' का पर्याय मान लेने से काम शब्द की महत्ता कम हो गई। शैवो का अद्वैतवाद, रहस्य सम्प्रदाय, वैष्णवो की माधुर्य-भावना, प्रेम रहस्य, कामकला की सौन्दर्योपासना आदि का उद्गम वेदो तथा उपनिपदो से है[८]। प्रसाद के प्रेम सम्बन्धी आदर्श में सात्विकता अधिक है। आगे चलकर इसमे स्वच्छन्दता के कारण किचित् परिवर्तन भी उन्होने

---

७. The fountains mingle with the river
And the rivers with the ocean,
The winds of heaven mix for ever
With a sweet emotion,
Nothing in the world is single,
All things by a law divine
In one another's being mingle—
Why not I with thine

—Shelley.

८. काव्य और कला।

किये , किन्तु उसकी उज्ज्वलता सदा बनी रही। प्रेमपथिक के कथानक की प्रेरणा सम्भव है गोल्डस्मिथ के एकान्तवासी योगी से ली गई हो, किन्तु इसमें कवि का व्यक्तित्व प्रधान है। वह चिन्तन और मनन का परिणाम है। एकान्तवासी योगी का पुरुष योगी हो जाता है, किन्तु प्रसाद की नारी तापसी होती है। कोमल भावनाओ की नारी को तापसी रूप दे देने से कथा में अधिक मार्मिकता आ गई है। इसके अतिरिक्त विषय-प्रतिपादन तथा दार्शनिक विवेचन की दृष्टि से प्रसाद अधिक दूर तक गये हैं। गोल्डस्मिथ की कथा का पर्यवसान एक मिलन मे ही हो जाता है, किन्तु प्रेमपथिक मानव को एक दार्शनिक तथ्य प्रदान करता है। इस छोटी-सी आख्यानक कविता के द्वारा प्रसादजी ने एक महान दर्शन का सफल निरूपण किया है। शैवदर्शन, उपनिषद्, सूफी भावना आदि के प्रभाव से प्रेमपथिक के प्रेम मे जो आदर्शवादिता आ गई है, उसमे प्रसाद के हृदय की अपेक्षा उनका बुद्धिपक्ष अधिक प्रबल है। उसमें प्रेम की मासलता नही, उसकी सात्विकता है। प्रेमपथिक हिन्दी साहित्य के लिये एक महत्वपूर्ण रचना है। रीतिकालीन शृगारी भावना के कारण द्विवेदी युग के कवि प्रेम और शृगार का नाम लेने मे भी घबड़ाते थे। प्रेम का वर्णन केवल इतिवृत्तात्मक शैली से किया जाता था। प्रसाद ने प्रेम और शृगार का आदर्शवादी स्वरूप प्रस्तुत किया। हिन्दी मे यह शृगार का नवनिर्माण था। धीरे-धीरे कवि ने इस आदर्शवादिता के बाह्य कलेवर को भी छोड़ दिया। उसका प्रेम व्यक्तिगत अनुभूति के विकास के कारण अपने स्वच्छन्द स्वरूप मे भी स्वस्थ और महान बना रहा। उसमे मानव जीवन के सघर्ष, घात प्रतिघात को स्थान मिलने लगा। सम्भवत उस समय की परिस्थिति को देखते हुये प्रसाद के लिये यह आवश्यक था कि सर्वप्रथम प्रेम का एक आदर्शवादी सात्विक स्वरूप प्रस्तुत किया जाय। इस दृष्टि से प्रेमपथिक ने खड़ी बोली को एक नवीन सन्देश दिया।

कानन-कुसुम—

'कानन-कुसुम' प्रसाद की खड़ी बोली की स्फुट कविताओ का प्रथम सग्रह है। इसमे लगभग सम्वत् १९६६ से लेकर सम्वत् १९७४ तक की कवितायें सगृहीत है। इनमें से अधिकाश इन्दु मे प्रकाशित हो चुकी है। विषय सामग्री की दृष्टि से कुछ कवितायें अब भी परम्परा से अनुप्राणित हैं। प्रकृति के विषय नववसन्त, जलद, आवाहन, रजनीगन्धा, सरोज, कोकिल, खजन आदि भी है। भावो और छन्दो का प्रवाह मन्द है और असाधारण अलकार के प्रयोग से शिथिलता भी आ गई है। कही-कही प्रकृति-वर्णन परम्परागत हो रहा है। ग्रीष्म के मध्याह्न

में जगतीतल पर पावक के कण फिरते है, हरे-हरे पत्ते वृक्षो से झर रहे हैं, प्रबल प्रभजन उन्हे साथ उड़ाये लिये जा रहा है। प्रकृति-वर्णन में कवि सजीवता नहीं भर सका। कभी-कभी वह परम्परा से मुक्त भी होना चाहता है, किन्तु वह केवल बाह्य वर्णन तक सीमित है। कोकिल से वह कहता है

गाओ नव उत्साह से, रुको न पल भर के लिये
कोकिल मलयज पवन में भरने को स्वर के लिये

प्रकृति के अन्तराल में न जाकर केवल परम्परागत प्रकृति-वर्णन की इन कविताओ में भाव की दृष्टि से नवीनता कम दिखाई देती है, और कही-कही भाषा भी त्रुटिपूर्ण है। देखिये, 'भरने को स्वर के लिये' का अनगढ और चिन्त्य प्रयोग। भापा का परिमार्जन और छन्दो का नवीन प्रयोग कवि के आगामी विकास में परिलक्षित हुआ है। स्थूल प्राकृतिक चित्रण में कवि का हृदय नही रमता। इन चित्रणो में एक नीरसता और शुष्कता है, जो द्विवेदी-युग की मूल प्रवृत्ति थी। रीतिकालीन प्रकृति मानव-जीवन से इतनी दूर हो गई थी कि केवल काव्य-सिद्धान्तो का पालन करने के लिये ही उसका वर्णन किया जाता था। प्रसाद जिस वातावरण में रह चुके थे उसमें भी नैसर्गिक प्रकृति का प्रवेश कम था। केवल जीवन की आरम्भिक घड़ियो में ही वे उसका वैभव देख सके थे। उसी के बाद उन्हें जीवन की समस्याओ में उलझ जाना पड़ा। इस प्रकार उनके लिये प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करना उतना सरल कार्य न था। आगे चलकर उन्होने प्रकृति का उपयोग मानवीय भावनाओ के चित्रण के लिये अलकार रूप में किया। इन प्रकृति विषयक कविताओ में कवि ने भापा और छन्द की दृष्टि से कुछ नवीन प्रयास किये है। उनकी भापा में प्राजलता और माधुर्य आता जा रहा है। परम्परा के साथ ही उन्होने इसी पृष्ठभूमि पर अपने नये प्रयोग किये। प्रकृति का यह परम्परागत वर्णन प्रसाद के लिये एक प्रारम्भिक पाठशाला थी। आगे चलकर इसी प्रकृति से उन्होने नवीन प्रेरणा ली, वह कवि का साधन है, जिसके सहारे वह आगे जाने का प्रयत्न कर रहा है .

धूलि धूसर है धरा मलिना तुम्हारे ही लिये
है फटी दूर्वादलों की श्याम साडी देखिये।

प्रकृति भावना में विकास के चिह्न मिल जाते है। कवि प्रकृति और मानव को एक दूसरे के निकट लाने का प्रयत्न करता है। प्रकृति-कवियो की भाति प्रसाद स्वयम् प्रकृति में तन्मय होकर उसमे एकाकार नही हो जाते, परन्तु वे उसे मानव के उपयोग में ले आते है। प्रकृति के विविध रूपो मे मानवीय भावनाओ

का आभास मिलने लगता है। रजनीगन्धा के हृदय का अनुराग उसके नाम को सार्थक कर देता है। कवि जलद का आवाहन इसीलिये करता है कि आनन्द के अकुर उग जायें। 'नव वसन्त' मे युवक-वसन्त के समागम से समस्त प्रकृति प्रफुल्लित हो उठती है। प्राण पपीहा भी बोलने लगता है। आख्यानक कविताओ मे प्रकृति एक पृष्ठभूमि का कार्य करती है। उसके रूपपरिवर्तन मात्र से मानव के सुख-दुख का आभास मिल जाता है। 'एकान्त' में जाकर कवि प्रकृति और जीव मे कोई अन्तर नही पाता। नीरव शान्ति में उसे विश्रान्ति मिलती है:

यह शून्यता वन की बनी बेजोड पूरी शान्ति से
करुणा कलित कैसी कला कमनीय कोमल कान्ति से

प्रकृति-वर्णन की सीमाओ से निकलकर प्रसाद ने नवीन विषयो को काव्य में स्थान दिया। प्रथम प्रभात, मर्मकथा, हृदय वेदना, सौन्दर्य, विरह, रमणी-हृदय आदि कवितायें कवि के आगामी परिवर्तन का आभास देती है। विषय और चित्रण की दृष्टि से इन कविताओ मे कवि की मौलिकता और नवीनता के दर्शन होते है। इनमें मनोवैज्ञानिकता का पुट पड़ने लगा था। सूक्ष्म मानसिक स्थितियों या मनोदशाओ के चित्रण की ओर प्रवृत्ति बढ रही थी। ये सभी शीर्षक क्रमशः छायावादी कविता के प्रमुख विषय बन गये। इनके प्रतिपादन मे भी कवि की परम्परागत प्रवृत्तिया अधिक स्पष्ट नही होती। इन कविताओ में उनकी व्यक्तिगत अनुभूति का प्रवेश होने लगता है। 'प्रथम प्रभात' में कवि अपने ही विषय मे कह जाता है। उसके अन्त करण के नवीन मनोहर नीड़ में मनोवृत्तिया खगकुल सी सो रही है। हृदय नील गगन की भाति शान्त है। वाह्य आन्तरिक प्रकृति सो रही है। इस प्रकार कवि प्राकृतिक गुणो और मानवीय भावनाओं को एक दूसरे पर आरोपित कर रहा है। छायावाद की आरम्भिक प्रवृत्तिया भी यही थी। प्रकृति-वर्णन से ही कवि अपने प्रथम प्रभात का चित्रण करता है। अन्त में कुसुम मकरन्द की वर्षा होने लगती है। प्राण पपीहा आनन्द से बोल उठता है। छवि बालारुण सी प्रकट हो जाती है। शून्य हृदय नवल-रागरजित हो जाता है। इसी अवसर पर प्रेम की व्याख्या प्रस्तुत हो जाती है

सद्यः स्नात हुआ फिर प्रेम सुतीर्थ में
मन पवित्र उत्साहपूर्ण भी हो गया,
विश्व विमल आनन्द भवन सा बन रहा
मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था

प्रसाद की कल्पना प्रकृति के नाना व्यापारों का चित्रण करने में कालिदास, वर्ड्स्वर्थ, मेरिडिथ की भाति नियोजित नही होती। वह प्रकृति के गुणो पर

मानवीय भावनाओ को आरोपित कर देते है । इससे काव्य में एक मार्मिकता आ जाती है। जब मानव का साथ प्रकृति भी देने लगती है, तो किसी भी भाव की तीव्रता बढ जाती है। रीतिकालीन कवियो ने जिस प्रकृति से उद्दीपन का काम लिया था, उसी से प्रसाद ने मानवीय भावनाओ का चित्रण किया। आगे चलकर कवि ने इस प्रकृति का उपयोग सुन्दर प्रतीको के रूप में भी किया। इससे शृगार का परिष्कार भी होता गया और सजीवता भी बढ गई। प्राकृतिक वस्तुओ और व्यापारो के उपमानो में उन्होने प्रतीकत्व भर दिया। प्रकृति के द्वारा प्रसाद ने अपने सौन्दर्य और यौवन को एक यथार्थ धरातल पर खड़ा किया।

जिन नवीन विषयो को प्रसाद ने आरम्भ में ही काव्य का विषय बनाया, उनमें मौलिकता है। साथ ही उनका व्यक्तित्व भी प्रकाश में आ जाता है। 'मर्मकथा' के द्वारा कवि प्रियतम और स्वयम् के सम्बन्ध की व्याख्या प्रस्तुत करता है। अपने हृदय की वेदना को वह वरदान मान लेता है और यही मधुर पीड़ा पीकर मस्त रहता है। इसी के द्वारा उसे प्रियतम का दर्शन प्राप्त हो जाता है। कल्पना में, यह हृदय की वेदना सहयोग देती है। करुणा और वेदना के चित्रण में कवि की अनुभूति का सयोग है। उसका व्यक्तित्व इन नवीन विषयो में झलक उठा है, जो क्रमश विकसित होता गया। सौन्दर्य की परिभाषा में प्रसाद ने एक व्यापक दृष्टिकोण से काम लिया है। इस अवसर पर प्रकृति के विविध व्यापारो से भी उन्होने सहायता ली। आकाश में नील नीरद देखकर चातक किस आशा में खड़ा रहता है? कलानिधि का अपूर्व विकास चकोरो को क्यो उल्लास प्रदान करता है? कमलावली देखकर भ्रमरावली क्यो गूजती है? कवि अपनी समस्त जिज्ञासा से प्रकृति के इन क्रिया व्यापारो को देखता है। इसी से उसे सौन्दर्य बोध हो जाता है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सौन्दर्य वस्तु में नही, दर्शन में है। मानव अथवा प्राकृतिक सुषमा में कोई अन्तर नही है। कवि का कथन है—

किन्तु प्रिय दर्शन स्वयम् सौन्दर्य है

* * *

देख लो जी भर इसे देखा करो
इस कलम से चित्त पर रेखा करो
लिखते लिखते चित्र वह बन जायगा
सत्य सुन्दर तब प्रकट हो जायगा।

—कानन कुसुम, पृष्ठ ५१

इसी प्रकार प्रेम और शृंगार के अन्य अवयवो के विषय में भी कवि निष्कर्ष पर पहुँचता है। नारी का हृदय एक विषम प्रहेलिका है। उसे समझ लेना सम्भव नही। रमणी हृदय अथाह है। उसके भीतर की वात नही जानी जाती। प्रसाद की नारी इसी कारण सदा रहस्यमय रहती है। मधूलिका का चरित्र स्वयम् अरुण के लिये एक प्रहेलिका वन गया था। चन्द्रगुप्त अन्तिम समय में ही जान सका कि मालविका उसे प्रेम करती थी। प्रसाद की नारी प्रेम का आधार है। प्रेम के विषय में भी कवि को वोध हो जाता है। स्वयम् वियोग को प्रेम-परिपाक के लिये आवश्यक मानकर कवि ने उसे सहचर कहा है। नवीन विषयों में वह उत्तरोत्तर विकासशील होता गया। मर्मकथा, हृदय वेदना, विरह, सौन्दर्य आदि आगे चलकर प्रसाद के काव्य में एक ऐसा स्थान वना लेते है, जिन पर उन्होने अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट किये है।

विनय की कविताओ में क्रमश भक्ति भावना कम होती जा रही है। अव कवि तन्मय होकर भक्ति के गीत नही गाता। उसे सर्वत्र ही ईश्वर की सत्ता का आभास मिलता है। वह निर्विकार लीलामय की शक्ति नही जान पाता। चन्द्रिका, नदी, उपवन सभी मे दयानिधि की छाया है। इस प्रकार विनय करते हुये कवि किसी भावावेश में नही दिखाई देता। एक जिज्ञासु दर्शक की भाति वह विमल इन्दु की विशाल किरणो में अनादि की अनन्त माया देखता है। अभी तक कवि परम्परा के वन्धनो में इतना लिप्त था कि भक्त कवियो की भाति प्रार्थना करने का प्रयत्न करता था। इसमें भक्त अथवा वैष्णव कवियो की भाति वह तन्मय न हो सका। 'कानन कुसुम' की विनय सम्वन्धी कविताओ में प्रसाद दार्शनिकता की ओर वढते दिखाई देते है। वौद्धिकता इस प्रकार की कविताओ में आरम्भ से ही थी, अध्ययन चिन्तन से कवि दार्शनिक प्रवृत्तियो की ओर झुक रहा है। दार्शनिक विचारो के साथ ही कवि कभी-कभी भक्ति भावना से अनुप्राणित होकर ईश्वर को पुकारता है। जीवन के अनेक झझावातो से भयभीत होकर वह मानस युद्ध में उनको अपना सारथी वनाना चाहता है। वह स्वयम् को उनके हाथो में समर्पित कर देता है। इस प्रकार की परिस्थितिजन्य विनय की कविताये अधिक नही है। विश्वेश से कवि करुणा लेकर धरणी का शृगार करता है। प्रकृति के प्रत्येक कण में विखरी हुई किसी परोक्ष सत्ता से उसे नवीन शक्ति और चेतना मिलती है। 'करुणा कुज' में समस्त विश्व प्रपीड़न को शान्ति मिल सकती है। जलद का आवाहन भी मानव कल्याण के ही लिये है। धीरे धीरे ईश्वर, प्रभु का स्थान एक परोक्ष रहस्यमयी सत्ता ग्रहण कर लेती है। कवि ईश्वर को शक्ति और सहायता के लिये नही पुकारता, केवल उसके आलोक में ही आगे

बढ सकता है। 'भक्तियोग' में सन्ध्या के समय प्रकृति की स्तब्धता में उस परम सत्ता का आभास मिलता है। प्रकृति की जड़ता से वह स्वयम् सकेत ग्रहण कर लेता है। अनेक सदेश उसे मिलते हैं

> फिर भागते हो क्यों ? न हटता यों कभी निर्भीक है
> संसार तेरा कर रहा स्वागत, चलो, सब ठीक है।

कवि को ज्ञात हो जाता है कि 'प्रेममय सर्वेश' सर्वव्यापी है। इस प्रकार भक्ति का स्थान दर्शन को मिल जाता है। इस दर्शन का विकास आगे चलकर किसी आध्यात्मिक आधार पर नही होता। वह प्रसाद का कठोर जीवन दर्शन है, जिसका निर्माण उन्होने अध्ययन की छाया में अपने सासारिक अनुभवों के आधार पर किया। इसी दार्शनिक प्रवृत्ति के कारण 'कानन-कुसुम' की कविताओ में कवि को जीवन के प्रति एक कर्मशील सन्देश देते हुये देखा जा सकता है। ससार से भीत हो जाना मूर्खता है। कवि स्वयम् प्रेममय नीर पीकर पूर्ण काम हो जाना चाहता है। 'चित्राधार' की भक्ति कविताओ से कवि को एक आधार मिल गया जिसका अवलम्ब लेकर वह आगे बढ़ सके। परम्परागत विषय ने उसे शक्ति दी। 'कानन-कुसुम' में बौद्धिक चिन्तन के द्वारा वह शरीर के स्थान पर सत्ता को ग्रहण करता प्रतीत होता है। सौन्दर्य और जड़ता में चेतनता के आरोप रूप में छायावादी प्रवृत्तिया कवि में दिखाई देने लगी थी।

आख्यानक कविताएं---

भाव-चित्रण के लिये आख्यानक कविता एक सुन्दर माध्यम है। इनमें कवि अपनी व्यक्तिगत अनुभूति और चिन्तन के आधार पर जीवन दर्शन भी प्रस्तुत कर सकता है। प्रसाद ने इतिहास के अनेक खडो को लेकर आख्यानक कविता की रचना की। अन्य कवियो की भाति उनकी इन कविताओ में इति-वृत्तात्मकता अधिक नही मिलती। गुप्त जी के 'जयद्रथ वध'में सघर्ष, द्वन्द के साथ ही एक लम्बा कथानक भी मिल जाता है। उसमें प्रवन्ध काव्यात्मकता पूर्ण विकसित है। उनकी 'पचवटी' में भी इसी प्रकार की प्रवृत्तिया मिलती है। प्रसाद की आख्यानक कविताओ में सकेत अधिक है। कवि इनके माध्यम से किसी घटना का वर्णन नहीं करना चाहता, वह केवल एक सन्देश छोड़ जाता है। इसी कारण प्रसाद की पौराणिक और ऐतिहासिक आख्यानक कविताओ में भी नवीनता है। वे उनके द्वारा कुछ अपनी बात कहते है। कवि के लिये वे सिद्धान्त प्रतिपादन, दार्शनिक स्थापन के माध्यम हैं। साहित्यिक नृत्य गीतो की पाश्चात्य परम्परा में भी प्राय किसी नैतिकता अथवा आदर्श के प्रतिपादन की विशेषता

रहती है और उसमे मानवीय भावनाएँ प्रधान होती है[९]। ब्रायट का 'अवाइड विद मी', आर्नाल्ड का 'सोहराव एण्ड रुस्तम' आदि इसके सफल उदाहरण है।

'कानन-कुसुम' मे चित्रकूट, भरत, शिल्पसौन्दर्य, कुरुक्षेत्र, वीर बालक, श्रीकृष्ण जयन्ती आदि आख्यानक कवितायें है। लगभग सभी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक आधार लेकर लिखी गई है। प्राचीन कथा के आधार पर प्रसाद ने नवीन दृष्टिकोण मे रचना की है। उसमे आधुनिकता स्पष्ट दिखाई देती है। पात्रो को नवीन स्वरूप कवि ने प्रदान किया है। 'चित्रकूट' के आरम्भ में ही राम-वैदेही स्फटिक शिला पर आसीन है। वैदेही प्रियतम के साथ कानन में भी सुखी थी। मृगी जनकसुता से सरल विलोकन सीख रही थी। राम के प्रश्न का उत्तर देते हुये सीता ने कहा कि नारी के सभी सुख पति के साथ रहते है। मधुर-मधुर आलाप करते ही वैदेही सोने लगी। तभी लक्ष्मण ने आकर कहा कि भरत ससैन्य वन में आ रहे है। राम ने बताया कि भरत मिलने आ रहे है। इसी के पश्चात् कवि ने रजनी के अन्तिम प्रहर का चित्र प्रस्तुत किया है। अभी खगवृन्द अपने नीड़ो में ही सो रहे थे। जानकी ने देखा कि लक्ष्मण वहा नही है। उन्होने उन्हे पुकारा, किन्तु लक्ष्मण नही रुके। कुछ क्षण मे कोलाहल सुनाई दिया। लक्ष्मण ने कहा,—भरत राजमद में हम पर आक्रमण करने आया है। राम ने उन्हे समझा दिया, और

> भरत इसी क्षण पहुँचे, दौड समीप में
> बढ़ा प्रकाश सुभ्रातृस्नेह के दीप में।
> चरण स्पर्श के लिये भरत भुज ज्यों बढ़े
> राम बाहु गल बीच पडे, सुख से मढ़े।
> अहा विमल स्वर्गीय भाव फिर आ गया
> नील कमल मकरन्द विन्दु से छा गया।[१०]

कविता का विषय रामचरित मानस के अयोध्याकांड से लिया गया है। "कारन कवन भरत आगमनू" को लेकर ही लक्ष्मण के हृदय में अनेक प्रकार के विचार उठने लगते है। उन्होने कल्पना की कि सम्भवत. भरत अकटक राज्य

---

९. A book of Narrative Verse—by V H Collins—Introduction

१०. कानन-कुसुम, पृष्ठ १०३

चाहते हैं। राम ने भरत को 'रविवश का हस' कहकर सान्त्वना दी थी। सीता के द्वारा लक्ष्मण को वत्स कहलाकर प्रसाद ने आदर्श की स्थापना का प्रयास किया है। सीता के सौन्दर्य वर्णन तथा प्रकृतिचित्रण में कवि ने स्वतन्त्रता से काम लिया है। स्फटिक शिला पर बैठे हुये राम-वैदेही निर्मल सर में नील कमल-कमलिनी की भाति थे। नाटकीय कथोपकथन के द्वारा सुन्दर उपमानो की व्यवस्था की गई है। राम ने जानकी के मुख को देखकर पूछा

स्वर्गंगा का कमल मिला कैसे कानन को
'नील मधुप को देख, वहीं उस कज कली ने
स्वयम् आगमन किया' कहा यह जनक लली ने

राम और सीता के प्रेम-चित्रण में प्रसादजी ने आदर्शवादिता का पूर्णतया पालन नही किया। उसमें शृगार का परिष्कृत रूप छलक आया है। राम के अक में सीता, नीलगगन के चन्द्रमा की भाति थी। कचभार बदन पर बिखर गये थे, मानो कमल के आस-पास सिवार। रजनी के अन्तिम प्रहर के सजीव वर्णन में कवि ने नवीन उपमाओ का प्रयोग किया है।

'भरत' कविता की प्रेरणा 'अभिज्ञानशाकुन्तल' का सप्तम अक है। प्रसाद ने इसमें केवल वीर बालक भरत का चित्रण किया है। दुष्यन्त, सुव्रता आदि को कोई स्थान नही दिया गया। कालिदास का बालक सर्वदमन शिशु सिह से कहता है

जिम्भ सिंघ दन्ताइँ दे गणइस्स

'खोल रे, सिह, अपना मुह, मै तेरे दात गिनूगा।' प्रसाद का भरत भी कहता है

'खोल, गोल मुख सिह बाल, मै देखकर
गिन लूगा तेरे दातों को है भले
देखूं तो कैसे यह कुटिल कठोर है।

—कानन-कुसुम, पृष्ठ १०५

प्रसाद की 'भरत' कविता में राष्ट्रीय भावना की प्रबलता है। भरत भारत के गौरव का प्रतीक है। आज भी हिमगिरि का उत्तुग शृग इसका परिचय दे रहा है। इसी ने अपने बलशाली भुजदडो मे भारत के प्रथम साम्राज्य की स्थापना की थी। कविता देश प्रेम से अनुप्राणित है। ऐतिहासिक पुरुष के द्वारा कवि भारत के अतीत गौरव का अकन करना चाहता है। 'अभिज्ञानशाकु-

न्तल' में मारीच ने सर्वदमन को जो वरदान दिया था[११], उसी का चित्रण कवि ने किया है ।

'शिल्प सौन्दर्य' एक ऐतिहासिक घटना के आधार पर है। कवि चारो ओर होने वाले घोर कोलाहल को देखकर अनेक कल्पनाये करता है। कही प्रलय का पयोधि तो नही आ रहा है। अत्याचारी आलमगीर ने आर्य मन्दिर खुदवा डाले थे। साथ ही मुगल साम्राज्य की बालू की दीवार भी गिर गई। इसी समय सूर्यमल धूमकेतु की भाति उदित हुये। और आज उनकी समस्त प्रतिहिंसा जागृत हो उठी है। वे मोतीमसजिद के प्रागण में खड़े है—कर में भीमगदा है, और मन में वेग। क्रुद्ध होकर उन्होने सबल हाथ उठाया, गदा छज्जे पर जा पड़ी, मर्मर की दीवाल काप कर रह गई। सूर्यमल रुक गये, और

कहा नष्ट कर देंगे यदि विद्वेष से
इसको, तो फिर एक वस्तु संसार की
सुन्दरता मे पूर्ण सदा के लिये ही
हो जायेगी लुप्त बड़ा आश्चर्य है
आज वह काम किया शिल्प-सौन्दर्य ने
जिसे न करतीं कभी सहस्रों वक्तृता

—कानन-कुसुम, पृष्ठ १०९

अन्त में कवि सन्देश देता है कि क्रूरता कभी वीरता नही होती। धर्म की प्रतिहिसा ने अनेक सुन्दर ग्रन्थ नष्ट कर दिये। विज्ञान, शिल्प, कला, साहित्य को हानि हुई। भारत के ध्वस शिल्प अपने करुण वेश मे भी वैभव छिपाये

---

११. तथा भाविनमेनं चक्रवर्तिनमवगच्छतु भवान् । पश्य,
रथेनानुद्घातस्तिमितगतिना तीर्णजलधि.
पुरा सप्तद्वीपा जयति वसुधामप्रतिरथ. ।
इहाय सत्वानां प्रसभदमनात्सर्वदमन.
पुनर्यास्यत्याख्या भरत इतिलोकस्य भरणात् । ७।३३.

तुम्हारा वश चलाने के अतिरिक्त यह चक्रवर्ती राजा भी होगा। देखो, यह बालक अपने दृढ़ और सीधे चलने वाले रथ पर चढकर समुद्र पार करके सात द्वीपो की पृथ्वी अकेले ही जीत लेगा, और संसार का कोई भी वीर इसके सामने न टिक सकेगा। यहा सभी जीवों को तंग करने के कारण इसका नाम सर्वदमन था। आगे यह संसार का भरण-पोषण करेगा, और भरत कहलायेगा।

हुये है। कवि का मुख्य उद्देश्य शिल्प सौन्दर्य के प्रभाव की स्थापना है। पाषाणो मे भी उसने जीवन डालने का प्रयास किया है। वह एक सार्वभौमिक धरातल पर जाकर इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि धर्म से कभी कभी अनेक अनिष्ट हो जाते है। कवि भारतीय भावना से भी प्रभावित है। अन्त में वह भारत के ध्वस शिल्प को ही सम्बोधित करता है। 'भरत' की भाति इसमें भी अतुकान्त छन्द का प्रयोग किया गया है।

'कुरुक्षेत्र' की रचना कृष्ण के लोकप्रसिद्ध चरित्र के आधार पर हुई है। कविता का आरम्भ मोहन के 'गोप बालक वेष' से होता है। वासुरी की केवल एक फूक में ही गोपबालो की सभा एकत्रित हो जाती थी। सभी उस रसीले राग में अनुराग पाते थे। इस भूमि में ऐसा कौन था जो मोहन को देखकर मोहित नही हो जाता था ? कालिन्दी के मनोहर कूल में धेनु चारण कार्य, कुज का वेणुवादन भूलकर अपने माता पिता के लिये कृष्ण ने कस को मार डाला। इसी के पश्चात् उन्होंने सत्रह कठोर आक्रमणो का सामना किया। अन्त मे मगध सम्राट् भी हार कर भाग गया था। कृष्ण ने सुभद्रा का विवाह पार्थ से कर दिया। वीर वार्हद्रथ कठिन रणनीति से मारा गया था। वे स्वयम् पाडवो के सरक्षक हो गये थे। अन्त में उन्होने ही धर्मराज्य की स्थापना की थी। राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का वध भी उन्ही के द्वारा हुआ। फिर पाडवो को कौरवो के कुटिल छल से विपिनवासी हो जाना पड़ा। अन्त में महाभारत का युद्ध हुआ। रथ रणक्षेत्र में खड़ा हुआ था। कृष्ण रथ के सारथी थे, किन्तु अर्जुन का हृदय दैन्य से भर गया। आज कृष्ण के करो मे मोहिनी वशी के स्थान पर रथ की रश्मि थी। उन्होने शख-ध्वनि की। अर्जुन ने कहा कि स्वार्थ से मै युद्ध न करूँगा। उसी के पश्चात् कृष्ण ने उन्हे कर्म करने का सन्देश दिया। इसमें गीता की छाया है

> क्यों हुये कादर निरादर वीर कर्मो का किया
> सव्यसाची ने हृदय दौर्वल्य क्यों धारण किया।

* * *

> क्लैब्य मा स्म गम पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते
> क्षुद्र हृदय दौर्वल्य त्यक्त्वोत्तिष्ठ परतप २–३

पार्थ, कायर मत बन ! यह तुझे शोभा नही देता। हृदय की क्षुद्र दुर्वलता त्याग कर, उठ जा।

> नर न कर सकता कभी वह एकमात्र निमित्त है
> प्रकृति को रोके नियति किसमें भला यह वित्त है।

* * *

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चितकर्तुमर्हति २–१७.

अखिल जगत में व्याप्त वह अविनाशी है। इस अव्यय का नाश करने की शक्ति किसी मे नही है।

आत्मा सबकी सदा थी, है, रहेगी, मान लो
नित्य चेतन सूत्र की गुरिया सभी को जान लो।

* * *

देही नित्यमवध्योऽय देहे सर्वस्व भारत
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्व शोचितुमर्हसि २–३०

सबके शरीर मे विद्यमान देहधारी आत्मा अवध्य होती है। भूतमात्र के विषय मे शोक करना उचित नही। आत्मा के विषय मे गीता ने विस्तार से विचार किया है।

कर्म जो निर्दिष्ट है, हो घोर, करना चाहिये
पर न फल पर कर्म के कुछ ध्यान रखना चाहिये।

* * *

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सगोऽस्त्वकर्मणि २–४७

कर्म पर तुझे अधिकार है, उसमे प्राप्त होनेवाले अनेक फलो पर कदापि नही। कर्म का फल तेरा हेतु न हो और कर्म न करने का भी आग्रह तुझे न रहे।

इस प्रकार कृष्ण ने 'कुरुक्षेत्र' मे अर्जुन को जो उपदेश दिये है, उनकी भावना गीता के अत्यन्त समीप है। श्रीकृष्ण के विविध रूपो का वर्णन करने के पश्चात् कवि गीता के 'कर्मवाद' की स्थापना करता है।

'वीर बालक' मे सिक्ख बालक जोरावर सिंह और फतेह सिंह की कथा है। आरम्भ में ही कवि कहता है कि आज इसी सरहिन्द मे भारत का सिर गौरव मडित होना चाहता है। जनता दुर्ग के सम्मुख एकत्र है। युगल बालको की कोमल मूर्तिया खड़ी हुई है। सूबा ने कर्कश स्वर से कहा कि 'पवित्र इस्लाम धर्म स्वीकार कर लो, सम्राट की कृपा से सब कुछ मिल जायगा'। यह सुनते ही जोरावर सिंह के मुख पर एक स्वर्गीय आलोक छा गया ; धमनियो में पैतृक रक्त-प्रवाह बहने लगा, वे बोले—'वाह गुरु की मेरी शिक्षा पूर्ण है। तुम मुझे व्यर्थ मत समझाओ।' लघु भ्राता ने भी बड़े भाई का साथ दिया। वे दोनो ही आकठ

ईंटो से चुन दिये गये। सूबा ने एक वार और कहा, अब भी समय है, बाहर निकल कर हमारी बात मान लो[१२]। बालक बोल उठे

क्यो अन्तिम प्रभु स्मरण कार्य में भी मुझे
छेड़ रहे हो ? प्रभु की इच्छा पूर्ण हो

कविता का मुख्य लक्ष्य 'शिल्पसौन्दर्य' की ही भाति धार्मिक असहिष्णुता का प्रदर्शन है। कवि स्वयम् कहता है कि इस निर्ममशास्त्र का क्या यही धर्म है ? यह तो धर्म का प्रबल भयानक रूप है। इसी कारण न जाने कितने व्यक्ति जला दिये गये, कितनो का ही बध हुआ, कितने निर्वासित कर डाले गये। धर्मान्धता की देवी के कारण असख्य व्यक्तियों को बलि हो जाना पड़ा। इस ऐतिहासिक कथानक में जातीयता की भावना के स्थान पर धार्मिक असहिष्णुता पर ही अधिक प्रकाश डाला गया है। इसमें भी अतुकान्त छन्द है। 'शरत्काल की प्रथम शशिकला सी हँसी' तथा 'बिना नाल के स्थलपद्म' सुन्दर उपमाएँ है।

अन्तिम आख्यानक कविता 'श्रीकृष्ण जयन्ती' है। जगत में अन्धकार व्याप्त है। घोर घन उठ रहे है। नीरद अपने नीर से भीगकर मन्थर गति से जा रहा है। वह रुक कर कृष्णवर्ण को लज्जित कर देना चाहता है। व्योम की भाति ही जगत में आन्तरिक अन्धकार है। उसे प्रकाश देने को दिव्य ज्योति सम्भवत प्रकट होगी। इसके अनन्तर सुर-सुन्दरी-वृन्द कुछ ताक रहे है। चचला झाक-झाक कर देखती है। मेघ भी प्रेम-सुधा छिडक रहा है। किसी के आनन्द-मय आगमन में समस्त प्रकृति बावली हो उठी है। चातक भी किसी को पुकार रहा है। कोई 'परदावाला' आ रहा है। कवि द्विजकुल चातको से ललकारने के लिये कहता है कि, सोये ससार के बालको जाग पडो। मानव जाति गोधन बनेगी, गोपाल ससार में आ रहे है। वे सब जीवो को परमानन्दमय कर्ममार्ग दिखलावेंगे। यमुना अपना क्षीण प्रवाह बढा दो। वृजकानन हरे हो जाओ। कृष्ण आ रहे हैं, प्रकृति के कण-कण आह्लादित हो उठो। अन्त में

जलद जात सा शीतलकारी जगत को
विद्युद्वृन्द समान तेजमय ज्योति वह
प्रकट हुई पपिहा-पुकार-सा मधुर औ

---

१२ His two remaining sons were arrested by of the governor of Sarhind and put to death (1705) —History of Aurangzeb, Vol III by Jadunath Sarkar, Page 319

मनमोहन आनन्द विश्व में छा गया
बरस पड़े नव नीरद मोती औ जुही

कानन-कुसुम, पृष्ठ १२६

अन्य छोटी कविताओ की अपेक्षा इन आख्यानक कविताओ में प्रसाद के काव्य-विकास का अधिक स्पष्ट आभास मिलता है। भावना और कल्पना में मौलिकता, गम्भीरता और एक अभिनव स्वतन्त्रता का सचार होने लगा है। काननकुसुम में कवि के अनेक रूपो के दर्शन एक साथ हो जाते है। उसकी कविताओ में विविधता है। प्रकृति, विनय, भक्ति, इतिहास, पुराण सभी से कवि ने प्रेरणा ग्रहण की है। भाषा की दृष्टि से उसमें परिमार्जन है। भावो का नैसर्गिक प्रवाह भी दिखाई देता है। स्वयम् कवि ने इनके विषय में कहा है कि "इसमें रगीन और सादे, सुगन्ध वाले और निर्गन्ध, मकरन्द से भरे हुये, पराग में लिपटे हुये, सभी तरह के कुसुम है। असयत भाव से एकत्र किये गये है।'[१३]

काव्य विकास—

काव्यविकास की दृष्टि से प्रसाद की खड़ी बोली के प्रथम चरण में स्थिरता है। परम्परा से उसने केवल विषय ग्रहण किये है। इतिहास और पुराण के आधार पर उसने जिन कविताओ की रचना की है, उनमे पूर्णतया अनुकरण ही नही किया गया है। कवि की स्वतन्त्रता और कल्पना ने सामग्री में इच्छानुसार परिवर्तन किये है। इतिहास के अनुसार वीर वालको की कथा का आधार जातीय है किन्तु कवि ने उसे एक अधिक व्यापक स्वरूप देकर धार्मिक असहिष्णुता की निन्दा की। 'प्रेमपथिक' की स्वतन्त्र कल्पना से उसने अपने जीवन-दर्शन की स्थापना की। इसके अतिरिक्त वह अपने भाव प्रकाशन के लिये ही इस प्रबन्धात्मक प्रणाली की ओर अधिक उन्मुख है। आगे चलकर उसने अपने नाटको को इसका साधन बना लिया और काव्य मे उपदेशात्मकता अपेक्षाकृत कम हो गई। उपमाओ मे कवि की नवीनता के दर्शन होते है। प्रकृति के प्रतीको का उपयोग भी मिलता है। मानवीय गुणो के लिये प्राकृतिक सौन्दर्य की उपमा कवि ने अनेक स्थलो पर दी है। प्रकृति की कविताओ में भी प्रसाद ने उसका उपयोग मानव के लिये ही किया है। कोकिला नवीन गीत ससार के लिये गाती है। रजनीगन्धा अनुराग परिमल बिखेरती है। अब कवि 'चित्राधार' की भाति केवल जिज्ञासा मे उसके सौन्दर्य को देखता ही नही रह जाता, उसे अनेक सन्देश मिलते है, जिन्हे वह मानव-कल्याण मे नियोजित करना चाहता है। आख्यानक कविताओ मे

---

१३. कानन-कुसुम—समर्पण।

प्रकृति एक सुन्दर पृष्ठभूमि का कार्य करती है। कवि ने नवीनतम विषयो पर भी रचना आरम्भ कर दी है। इस दृष्टि से विरह, प्रेम, वेदना आदि विषय छाया-वाद के समीप है।

आरम्भिक कविताओ में प्रसाद ने शृगार का पर्याप्त परिष्कार किया। कल्पना के द्वारा सौन्दर्य, प्रेम का एक नवीन रूप उन्होंने प्रस्तुत किया। यद्यपि नारी का अधिक चित्रण आरम्भ मे नही मिलता किन्तु जहा कही भी उसके सौन्दर्याकन का अवसर कवि को प्राप्त हुआ है, उसने परम्परा का पालन नहीं किया। स्वयम् सीता राम के अक में इम प्रकार सुशोभित थी, मानो नील गगन मे चन्द्रमुख, अथवा कमल के आसपास सिवार। राम और सीता के सम्बन्ध में जो आदर्शवादिता चली आ रही थी, उसका अनुकरण कवि ने नहीं किया। कृत्रिमता के स्थान पर एक सरमता, और मासलता इन कविताओ में मिलती है[१४]। इस प्रकार प्रसाद के काव्य ने अन्तस्तल को स्पर्श किया। भावो की प्रवाह-मयता के लिये ही उन्होने नवीन छन्दो की योजना की। सस्कृत काव्य में अतुकान्त छन्दो की रचना प्राचीन काल से चली आती थी। प्रसाद ने हिन्दी मे भी यही प्रयोग आरम्भ किया। इसमें भी वर्णविन्यास का प्रवाह, श्रुति के अनु-कूल गति आदि का उन्होने पूरा ध्यान रक्खा है। इक्कीस मात्रा का अरिल्ल छन्द विरति के हेर-फेर से अधिकाश आरम्भिक कविताओ मे प्रयुक्त किया गया है। गीत कविता के द्वारा प्रसाद ने माधुर्य भावना का प्रकाशन किया। छोटी-छोटी कविताओ में आदि से अन्त तक एक ही केन्द्रित भावना मिलती है। कवि ने वाह्य जगत की पूर्ण अवहेलना नही कर दी, किन्तु नाटक, कहानी, उपन्यास आदि के अन्य माध्यम भी होने के कारण उसने कविता के द्वारा अन्त सौन्दर्य का प्रकाशन किया। नवयुवक कवि प्रेम, मौन्दर्य और यौवन का एक उदात्त स्वरूप प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। वह सौन्दर्य और यौवन को उपभोग की दृष्टि से नही देखता, उसके हृदय में कुतूहल और जिज्ञासा रहती है। इसमें उसकी व्यक्तिगत अनुभूति के साथ ही अध्ययन का भी समन्वय है। प्रसाद ने प्रकृति, ईश्वर के साथ ही खड़ी वोली की आरम्भिक रचनाओ में मानव को भी अपना लिया है। प्रत्येक वस्तु का उपयोग उसी के लिये है। देश में भी मानवतावादी भावनाओ का प्रमार हो रहा था। कवीर का शुष्क और नीरस निर्गुणवाद

---

१४ नारी के प्रति प्राचीन महाकाव्यों का-सा औदात्य, कादम्बरी का-सा सहज स्वातन्त्र्य एक वार प्रसाद में पुनः जागृत हो उठा

जयशकर प्रसाद, पृष्ठ ६०

जनता की पूर्ण तृप्ति न कर सका था, और अन्त में वह तुलसी, सूर की सरस वाणी की ओर झुकी थी। प्रसाद जी ने इसी सरस परम्परा में योग दिया। इसका प्रयास आरम्भिक रचनाओ में ही उन्होने आरम्भ कर दिया था। देश काल की दृष्टि से प्रसाद के समय में एक समन्वय चल रहा था। उनकी कविताओ में भी एक समन्वय दृष्टि निहित है। आदर्श, यथार्थ दोनो का ही सगम उन्होने प्रस्तुत किया। भावना प्रधान होते हुये भी काव्य में जीवन की वास्तविकता का निरूपण है। काव्य प्रेम और चिन्तन की दृढ भूमि पर प्रस्तुत हुआ। आरम्भिक काव्य में ही कथा-काव्य के प्रति रुचि, और काव्य में नाटकीयता दिखाई देती है। नवीन विषयो और छन्दो की ओर कवि कल्पना के आवेग के साथ उन्मुख है।

अख्यानक कविताओं का स्वरूप—

प्रसाद की इन आरम्भिक आख्यानक कविताओ के सम्बन्ध में ज्ञातव्य बात यह है कि ये कथात्मक होती हुई भी वर्णनात्मक अथवा वाह्यार्थमूलक नही है। इनकी रचना में कवि के भावनात्मक आदर्श ही मुख्य प्रेरक है। अपनी नवोदित दार्शनिक तथा सामाजिक भावनाओ को ही कवि कतिपय आख्यानो का आधार लेकर व्यक्त करता है। इन आख्यानो में इसीलिये वाह्यार्थजीवी काव्य की सी परिपुष्ट वस्तुस्थापना और वर्णनात्मकता नही मिलती। प्रसादजी के इन आख्यानको की रचना में प्रयोगात्मक शैली ही काम करती है। कही वे नाट्यगीत की सवादशैली अपनाते है, कही कथा और संवादो की सम्मिलित शैली चलती है और कही कथात्मक शैली ही मुख्य रूप से वरती जाती है। कही आत्म-कथन द्वारा कथा का निर्माण होता है, कही तृतीय पुरुष (third person) में उसकी रचना होती है। इन समस्त प्रयोगो में प्रवन्ध-काव्य की प्रौढ पद्धति अथवा सर्गवद्ध वर्णनात्मकता का स्वरूप पूर्ण प्रस्फुटित नही हो पाता, एक आभास मात्र मिलकर रह जाता है। प्रसाद के ये प्रयोग उनकी दार्शनिक भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिये साधन का ही काम करते है।

अन्य विशेषता जिसकी ओर ये आख्यान सकेत करते है, कवि की अन्तर्मुखीन प्रवृत्ति और अन्तर्द्वन्द है। एक प्रकार से इनमें कवि के व्यक्तित्व-विकास का इतिवृत्त समाया हुआ है। यौवन सुलभ शृगारिक भावनायें और वीरोन्माद के भाव एक उच्चतर जीवनादर्श में परिवर्तित हो रहे थे। प्रसाद का यह व्यक्तित्व सम्बन्धी संघर्ष उनकी इन आख्यानक रचनाओ में भी प्रतिफलित हुआ है। यदि किसी कवि के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि उसकी सम्पूर्ण काव्यकृति उसके व्यक्तित्व के विकास मे पूर्णत सम्बद्ध है, और उसके वाहर

प्रकृति एक सुन्दर पृष्ठभूमि का कार्य करती है। कवि ने नवीनतम विषयो पर भी रचना आरम्भ कर दी है। इस दृष्टि से विरह, प्रेम, वेदना आदि विषय छाया-वाद के समीप है।

आरम्भिक कविताओ मे प्रसाद ने शृगार का पर्याप्त परिष्कार किया। कल्पना के द्वारा सौन्दर्य, प्रेम का एक नवीन रूप उन्होने प्रस्तुत किया। यद्यपि नारी का अधिक चित्रण आरम्भ मे नही मिलता किन्तु जहा कही भी उसके सौन्दर्याकन का अवसर कवि को प्राप्त हुआ है, उसने परम्परा का पालन नहीं किया। स्वयम् सीता राम के अक मे इस प्रकार सुशोभित थी, मानो नील गगन मे चन्द्रमुख, अथवा कमल के आसपास सिवार। राम और सीता के सम्बन्ध में जो आदर्शवादिता चली आ रही थी, उसका अनुकरण कवि ने नहीं किया। कृत्रिमता के स्थान पर एक सरसता, और मासलता इन कविताओ में मिलती है[१८]। इस प्रकार प्रसाद के काव्य ने अन्तस्तल को स्पर्श किया। भावो की प्रवाह-मयता के लिये ही उन्होने नवीन छन्दो की योजना की। सस्कृत काव्य में अतुकान्त छन्दो की रचना प्राचीन काल से चली आती थी। प्रसाद ने हिन्दी में भी यही प्रयोग आरम्भ किया। इसमें भी वर्णविन्यास का प्रवाह, श्रुति के अनु-कूल गति आदि का उन्होने पूरा ध्यान रक्खा है। इक्कीस मात्रा का अरिल्ल छन्द विरति के हेर-फेर से अधिकाश आरम्भिक कविताओ मे प्रयुक्त किया गया है। गीत कविता के द्वारा प्रसाद ने माधुर्य भावना का प्रकाशन किया। छोटी-छोटी कविताओ मे आदि से अन्त तक एक ही केन्द्रिस भावना मिलती है। कवि ने वाह्य जगत की पूर्ण अवहेलना नही कर दी, किन्तु नाटक, कहानी, उपन्यास आदि के अन्य माध्यम भी होने के कारण उसने कविता के द्वारा अन्त सौन्दर्य का प्रकाशन किया। नवयुवक कवि प्रेम, सौन्दर्य और यौवन का एक उदात्त स्वरूप प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। वह सौन्दर्य और यौवन को उपभोग की दृष्टि से नही देखता, उसके हृदय में कुतूहल और जिज्ञासा रहती है। इसमें उसकी व्यक्तिगत अनुभूति के साथ ही अध्ययन का भी समन्वय है। प्रसाद ने प्रकृति, ईश्वर के साथ ही खड़ी बोली की आरम्भिक रचनाओ मे मानव को भी अपना लिया है। प्रत्येक वस्तु का उपयोग उसी के लिये है। देश में भी मानवतावादी भावनाओ का प्रसार हो रहा था। कबीर का शुष्क और नीरस निर्गुणवाद

---

१८. नारी के प्रति प्राचीन महाकाव्यों का-सा औदात्य, कादम्बरी का-सा सहज स्वातन्त्र्य एक बार प्रसाद में पुन: जागृत हो उठा

जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ ६०

जनता की पूर्ण तृप्ति न कर सका था, और अन्त में वह तुलसी, सूर की सरस वाणी की ओर झुकी थी। प्रसाद जी ने इसी सरस परम्परा में योग दिया। इसका प्रयास आरम्भिक रचनाओ में ही उन्होने आरम्भ कर दिया था। देश काल की दृष्टि से प्रसाद के समय में एक समन्वय चल रहा था। उनकी कविताओ में भी एक समन्वय दृष्टि निहित है। आदर्श, यथार्थ दोनो का ही सगम उन्होने प्रस्तुत किया। भावना प्रधान होते हुये भी काव्य में जीवन की वास्तविकता का निरूपण है। काव्य प्रेम और चिन्तन की दृढ भूमि पर प्रस्तुत हुआ। आरम्भिक काव्य में ही कथा-काव्य के प्रति रुचि, और काव्य में नाटकीयता दिखाई देती है। नवीन विषयों और छन्दो की ओर कवि कल्पना के आवेग के साथ उन्मुख है।

अख्यानक कविताओं का स्वरूप—

प्रसाद की इन आरम्भिक आख्यानक कविताओ के सम्बन्ध में ज्ञातव्य बात यह है कि ये कथात्मक होती हुई भी वर्णनात्मक अथवा वाह्यार्थमूलक नही है। इनकी रचना में कवि के भावनात्मक आदर्श ही मुख्य प्रेरक है। अपनी नवोदित दार्शनिक तथा सामाजिक भावनाओ को ही कवि कतिपय आख्यानो का आधार लेकर व्यक्त करता है। इन आख्यानो में इसीलिये वाह्यार्थजीवी काव्य की सी परिपुष्ट वस्तुस्थापना और वर्णनात्मकता नही मिलती। प्रसादजी के इन आख्यानको की रचना में प्रयोगात्मक शैली ही काम करती है। कही वे नाट्यगीत की सवादशैली अपनाते है, कही कथा और संवादो की सम्मिलित शैली चलती है और कही कथात्मक शैली ही मुख्य रूप से बरती जाती है। कही आत्म-कथन द्वारा कथा का निर्माण होता है, कही तृतीय पुरुष (third person) में उसकी रचना होती है। इन समस्त प्रयोगो में प्रवन्ध-काव्य की प्रौढ पद्धति अथवा सर्गवद्ध वर्णनात्मकता का स्वरूप पूर्ण प्रस्फुटित नही हो पाता, एक आभास मात्र मिलकर रह जाता है। प्रसाद के ये प्रयोग उनकी दार्शनिक भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिये साधन का ही काम करते है।

अन्य विशेषता जिसकी ओर ये आख्यान संकेत करते है, कवि की अन्तर्मुखीन प्रवृत्ति और अन्तर्द्वन्द है। एक प्रकार से इनमें कवि के व्यक्तित्व-विकास का इतिवृत्त समाया हुआ है। यौवन सुलभ शृंगारिक भावनायें और वीरोन्माद के भाव एक उच्चतर जीवनादर्श में परिवर्तित हो रहे थे। प्रसाद का यह व्यक्तित्व सम्बन्धी सघर्ष उनकी इन आख्यानक रचनाओ में भी प्रतिफलित हुआ है। यदि किसी कवि के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि उसकी सम्पूर्ण काव्यकृति उसके व्यक्तित्व के विकास से पूर्णत सम्बद्ध है, और उसके बाहर

वह नही गई, तो प्रसादजी के सम्बन्ध में निसकोच कहा जा सकता है। इस दृष्टि मे प्रसाद की सम्पूर्ण काव्य-रचना अहकेन्द्रीय भी कही जा सकती है। इस अह की विविध दशायें और स्थितिया उनके काव्य में साक्षी रूप से उपस्थित हैं और कुल मिलाकर उनका काव्य उनके इस अह के विकास का ही इतिवृत्त है। किशोरवय के इन आख्यानो में प्रसाद की अहभावना शारीरिक इन्द्रियाकर्षण और सौन्दर्यानुभूति से अभिभूत-सी हो गई है, किन्तु उसमें निरन्तर इस बाह्याकर्षण से ऊपर उठने का एक अदम्य प्रयत्न भी दिखाई देता है जो उन्हें एक उच्च भाव-भूमि पर ले जा सका।

प्रसाद के इन आख्यानों की तुलना हिन्दी के तत्कालीन आख्यानक कवियों से समझ-बूझकर की जानी चाहिये। वर्णनप्रधान, बाह्यार्थजीवी आख्यानो से इनकी समता सुविधापूर्वक नही की जा सकती, क्योंकि इनकी प्रकृति ही उनसे भिन्न है। प्रसाद के आख्यानो में भावना की जो गहराई और निष्ठा दिखाई देती है वह उनकी अपनी वस्तु है। उनमे जो एक अनगढ प्रवाह दिखाई देता है वह कवि हृदय के ही अनिर्दिष्ट प्रवाह का प्रतिरूप है। ये आख्यान न तो वस्तु-विन्यास की दृष्टि से और न भाषा के सौन्दर्य या चमत्कार की दृष्टि से अधिक उल्लेखनीय है किन्तु इनमे प्रसाद के सघर्षशील व्यक्तित्व की मनोरम छाया देखी जा सकती है। मैथिलीशरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी के खडकाव्यो में विस्तार और व्यवस्था अधिक है। कथात्मक और वर्णनात्मक सौन्दर्य का स्वारस्य अधिक हैं। वे वस्तुमुखी, तटस्थ, विवरणप्रधान आख्यान है, जब कि प्रसाद के आख्यान व्यक्तित्वनिष्ठ, आत्माभिमुखी और भावप्रधान है।

प्रसादजी की इन आख्यानक रचनाओ के साथ श्रीधर पाठकजी की कतिपय कृतिया भी रक्खी जाती है और दोनो की समता और विभेद पर तुलनात्मक प्रकाश डाला जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में पाठकजी के आख्यानको का उल्लेख करते हुए उन्हें नवीन स्वच्छन्दतावादी काव्यशैली का प्रवर्त्तक ठहराया है[१५]। पाठकजी के इन आख्यानो (एकान्तवासी योगी, ऊजड़ गाव, श्रान्तपथिक) के सम्बन्ध में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि ये अग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ के Hermit, Deserted Village, Traveller नामक काव्याख्यानो के अनुवाद या रूपान्तर है, अतएव इन्हे मौलिक रचना का पद नही दिया जा सकता। यह कहने की आवश्यकता नही कि गोल्डस्मिथ की अनुभूतिया श्रीधर पाठक की मौलिक अनुभूतिया नही कहला सकती। साहित्य में

---

१५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ५२५

नये प्रवर्त्तन का श्रेय किसी छायानुवाद या रूपान्तरित रचना को देना उस साहित्य के प्रति न तो न्यायानुमोदित कहा जायगा और न समाननीय ही। कदाचित् किसी भी स्वावलम्बी साहित्य के इतिहास में ऐसी बात नही देखी गई। फिर, हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि अग्रेजी साहित्य के इतिहास में गोल्डस्मिथ पूर्णतया स्वच्छन्दतावादी नही माना जाता[१६]। उसकी कृतियो में स्वच्छन्दतावाद की थोड़ी सी अग्रसूचनामात्र मिलती है, विशेषत॰ उसके भाषा प्रयोगो में एक अभिनव सरलता है जो परम्परागत शैलियो से भिन्न है और नया रास्ता अपनाती है। केवल इतने आधार पर उसे नई शैली के प्रवर्तन का श्रेय नही दिया जाता। दूसरी बात यह है कि गोल्डस्मिथ और श्रीधर पाठक के व्यक्तित्वो मे भी स्पष्ट अन्तर है। गोल्डस्मिथ का सारा जीवन दु खमय और दुर्भाग्यग्रस्त रहा। उसकी रचनाओ में इसीलिए एक अतिरिक्त भावनामयता और सहानुभूति है। श्रीधर पाठकजी का जीवन अतिशय व्यवस्थित, साधन-सम्पन्न और अभिजात था। उनके लिए करुणा या सहानुभूति केवल मनोरजन या मानसिक सवेदना का विषय हो सकती थी। उनका प्रकृति-प्रेम एक नागरिक का प्रकृति-प्रेम है। पाठकजी की मौलिक और अनूदित रचनाओ मे भाषा की आलकारिकता स्पष्ट है। उनकी कृतियो में भाषा का माधुर्य और शालीनता है, किन्तु गोल्डस्मिथ की भाषा की-सी नैसर्गिक सरलता और अकृत्रिमता नही। उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व मे विद्रोह का कोई ऐसा तत्व नही जो उन्हे साहित्य के क्षेत्र मे नए प्रवर्तन की ओर ले जा सके। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी साहित्य के विकासक्रम को हमें अत्यन्त स्वतन्त्र और निष्पक्ष दृष्टि से देखना होगा, उसके विभिन्न व्यक्तित्वो की तटस्थ छान-बीन करनी होगी और उसके नवीन प्रवर्तनो को वास्तविक, सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियो के परिवेश में परखना होगा। प्रसाद की अन्तर्मुखी वृत्ति और उनके व्यक्तित्व का द्विधात्मक द्वन्द जिस आग्रह और निरंतरता के साथ उनकी इन आख्यानक रचनाओ में प्रतिफलित हुआ है, वह इन कृतियो को एक विशेष प्रकार की प्रगीतात्मक भावनामयता प्रदान करता है। ये आख्यानक रचनाएँ हिन्दी के तत्कालीन अन्य आख्यानों से प्रकृति और प्रवृत्ति दोनो में ही भिन्न है, अतएव इनकी परख प्रगीत आख्यान की भूमिका पर ही की जा सकती है, जो प्रसाद के समस्त आख्यानक रचनाओ का मूलाधार है। कामायनी का विशद और प्रौढ आख्यान भी इस विशेष प्रवृत्ति से रहित नही है।

---

१६. His inspiration remains classical—A History of English Literature. Page 852.

प्रसाद की आख्यानक कविताएँ एक समन्वित रूप का परिचय देती हैं। भारतीय साहित्य शास्त्र के अनुसार उन्हें खडकाव्य में ही स्थान देना होगा। कथा में उनका प्रवन्धत्व निहित है। पश्चिम में वर्णनात्मक काव्य के अन्तर्गत ही महाकाव्य, कथा-काव्य, साहित्यिक नृत्यगीत आदि आते हैं। कथा-काव्यो मे प्रबन्ध तथा नृत्यगीत दोनो की ही विशेषताये निहित रहती है। कवि विषय प्रतिपादन में, कथानिर्माण मे प्रबन्धकार हो जाता है। भावनाओ का अकन वह गीतकार रूप में करता है। अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी प्रवृत्तियो का सगम ही आख्यानक कविताओ की विशेषता है[१७]। किसी विशेष भावना के प्रतिपादन का वह सुन्दर माध्यम है। पश्चिम में नृत्यगीतो की साहित्यिक परम्परा कथा-काव्य का प्रथम चरण है। दूसरा चरण आख्यानक कविता का है और अन्त में महाकाव्य का स्थान आ जाता है। वर्ड्स्वर्थ ने साहित्यिक नृत्यगीतो को प्रस्तुत करते हुये उसकी भावानुभूति पर विशेष प्रकाश डाला। आख्यानक कवितायें भारतीय खडकाव्य के अधिक समीप हैं। साहित्य-दर्पणकार खडकाव्य के क्षेत्र को सकुचित कर देते हैं[१८]। किन्तु उसमें कथा की, पूर्णता का आग्रह है। महाकाव्य का एक भाग उसकी पूर्ति नही कर सकता। जीवन के किसी पक्ष पर विस्तार होते हुये भी उसमें पूर्णता अपेक्षित है। हिन्दी में 'जयद्रथ वध' इसी श्रेणी में आयेगा। प्रसाद की आख्यानक कवितायें जीवन की पूर्णता की दृष्टि से खडकाव्य के अन्तर्गत नही आ सकती। उनमें किसी विशेष उद्देश्य का, प्रतिपादन है। 'प्रेमपथिक' मे प्रेमादर्श, 'करुणालय' में करुणा और 'महाराणा का महत्व' में वीरता के आदर्श की स्थापना है। केवल एक साधारण-सी घटना और पात्रो की सीमित सख्या ही उसमें सहयोग देते हैं। इस दृष्टि से 'कानन-कुसुम' की अयोध्या का उद्धार, चित्रकूट, भरत आदि आख्यानक कवितायें भी उस श्रेणी में नही आ सकतीं। वास्तव में द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता ने आख्यानक कविताओ को प्रोत्साहित किया। किसी मार्मिक दृश्य को लेकर इनकी रचना की गई। गुप्तजी ने अपने 'द्वापर' आदि को उद्देश्य स्थापन का माध्यम बनाया। रवीन्द्र ने 'उर्वशी' आदि की रचना की। प्रसाद की इन आख्यानक कविताओ के मूल में लक्ष्य प्रतिपादन की भावना है। 'चित्राधार' से आरम्भ होकर वह 'लहर' तक चली गई। कवि ने इनमें अपनी प्रवन्ध शैली का परिष्कार किया। उसकी आन्तरिक अनुभूतिया विषय प्रतिपादन के साथ प्रस्तुत हुईं। उनमें पश्चिम के कथाकाव्यो से अधिक सामीप्य है। उन्होने यथार्थ चित्रण के साथ ही

---

१७ Narrative Verse-by Treble—Introduction

१८ खडकाव्य भवेत्काव्य स्यैकदेशानुसारि च।

अन्तर्मुखी भावनाओ को भी उसमे स्थान दिया। चौदहवी शताब्दी में ही चासर की 'दी पार्डनर्स टेल' में इसके चिह्न प्राप्त होते हैं। इस प्रणाली का प्रचार गद्यशैली के विकास के साथ ही साथ होता गया। स्पेन्सर, मिल्टन, ड्रायडन, कूपर, वर्ड्स्वर्थ, बाइरन, कीट्स आदि अनेक कवियो ने इसमें योग दिया। प्रसाद की आख्यानक कविताओं की शैली इनके अधिक निकट है। इस प्रकार कवि के खड़ी बोली के प्रथम चरण में भावी विकास के चिह्न निहित हैं।

आँसू

'आँसू' का प्रथम सस्करण १९८२ वि० में प्रकाशित हुआ था[1]। रचनाकाल की दृष्टि से अन्य गीत सृष्टियो के पूर्व ही उसकी रचना हो चुकी थी। यह कवि की एक विशेष प्रकार की रचना है। अपने आरम्भिक रूप में आँसू पूर्णतया एक विरह काव्य है। उसमे वियोग शृगार की प्रधानता है। लगभग एक सौ छब्बीस छन्दो में कवि ने प्रेमी की वेदनानुभूति, अतीत की स्मृति भरने का प्रयत्न किया है। करुणा कलित हृदय में बजती हुई विकल रागिनी से उन क्षणो की याद करता है, जब उसे अपलक नयनो से उस छवि को निरखने का अवसर प्राप्त हुआ था। उस दिन जीवन में मधुमास आया था। कवि उस रूप की कल्पना करता है। अन्त में विरह मिलन के सत्य का आभास उसे मिल जाता है। वह विस्मृति की समाधि पर कल्याण के मेघो की वर्षा चाहता है। अपने सुख को शिथिलता के कारण सुला देने की आकाक्षा है ताकि विपत्ति की चिन्ता समाप्त हो जाय। अन्त में कवि को आशा है—

चेतना लहर न उठेगी
जीवन समुद्र थिर होगा
सन्ध्या हो सर्ग प्रलय की
विच्छेद मिलन फिर होगा।

'आँसू' का द्वितीय सस्करण १९९० वि० में प्रकाशित हुआ[2]। इसमें छन्दो के क्रम में परिवर्तन कर दिया गया। इसके अतिरिक्त अन्य छन्दो का भी समावेश हुआ जो इस बीच लिखे गये थे, और कुल सख्या लगभग एक सौ नब्बे हो गई। आरम्भ में ही कवि अन्तरतम में उठनेवाली करुण भावनाओ की ओर सकेत कर देता है। कुछ विस्मृत बीती बातें उसे याद आ रही है। वह अनेक प्रश्न करता है, किन्तु उसे उत्तर नही मिलता। शून्य क्षितिज की प्रतिध्वनि ही लौट आती है। ये अतीत की स्मृतियाँ 'महामिलन' के अवशेष है, जब प्रिय से उसका समागम हुआ था। प्रेम के सागर में आज बरबस ही बाडव ज्वाला जाग उठी है। अनेक अभिलाषायें जाग-जाग कर सो जाती है। कवि उस कहानी के विषय में कहता है—

---

१ प्रकाशक : साहित्य-सदन, चिरगाव, झांसी।

२ प्रकाशक भारती-भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग।

मादक थी मोहमयी थी
मन बहलाने की क्रीड़ा
अब हृदय हिला देती है
वह मधुर प्रेम की पीड़ा।

कवि अपने प्रिय से बातें करने लगता है। आज उसके प्राणो में क्रन्दन हो रहा है, किन्तु कोई नही सुनता। जो अपने ही सुखो से बेसुध है, वे इस पर ध्यान नही देगे। उस दिन जब जीवन में भीषण अन्धकार छाया हुआ था, प्रलय-घटायें घिर रही थी, न जाने किस अनजान ने मन मे रस की बूद बरसा दी। प्रेमी ने उस रूप को ही सत्य मान लिया था। उसे अपनी अकिंचनता का ज्ञान न रहा। उस अपरिचित को देखते ही प्रणयी को आभास हुआ मानो वह युग-युग से परिचित है। वह ज्योत्स्ना और सागर का परिचय था। चन्द्रमा की प्रत्येक किरण सागर की लहरियो का आलिंगन कर लेती थी। प्रिय प्रियतम के प्राणो में समा जाना चाहता था। प्रेमी उस सौन्दर्य को अपलक नेत्रो से देखता ही रह गया। जीवन के पतझर मे मधुमास छा गया। वसन्त का सगीत अपनी सम्पूर्ण चेतना से गा उठा। कवि भी अपनी तन्मयता में कह उठता है—

शशि मुख पर घूंघट डाले
अंचल में दीप छिपाये
जीवन की गोधूली में
कौतूहल से तुम आये।

आज भी अन्तस्तल मे वह सौन्दर्य अकित है। मन के निस्सीम गगन में सौन्दर्य समा गया है। कवि रूपवर्णन करने लगता है। मुख पर बिखर जानेवाली अलकें उन जजीरों की भाँति थी, जो चन्द्रमा को बांधती है। काली आखों में यौवन की मदिरा छलक रही थी। केवल भ्रू-भगिमा से ही न जाने कितने हृदय घायल हो जाते थे। मुख के समीपस्थ कर्ण कमल पत्र की याद दिला देते थे। उस पावन शरीर की शोभा ऐसी थी, मानो चचला चन्द्रिका पर्व में स्नान कर आई हो। आज इस परिवर्तन के क्षण मे प्रेमी कहता है कि वह छलना थी, फिर भी मैंने उस पर विश्वास किया। शेक्सपियर मे भी एक स्थान पर यही भावना है[१]। उसमें न जाने कौन-सा सत्य निहित था। वह केवल रूपराशि थी, अथवा

---

१. "When my love swears that she is made of truth
I do believe her, though I know she lies."
—Shakespeare.

उसमें हृदय भी था। एक साथ अनेक प्रश्न प्रेमी के मस्तिष्क में आ रहे हैं। सम्भवत प्रणय का जीवन अपने अल्प समय में भी दीर्घजीवी होता है। मिलन वेला में प्रकृति अपने सम्पूर्ण वैभव को लेकर शृगार कर रही थी। अब तो केवल विस्मृति और मादकता ही शेष रह गई है, स्वप्न टूट गया। स्कन्द-गुप्त के मातृगुप्त ने भी अपनी भावना में तल्लीन होकर कहा था, "अमृत के सरोवर में स्वर्ण कमल खिल रहा था, भ्रमर वशी बजा रहा था, सौरभ और पराग की चहल-पहल थी। सबेरे सूर्य की किरणें उसे चूमने को लौटती थी, सन्ध्या में शीतल चाँदनी उसे अपनी चादर से ढँक देती थी। उस मधुर सौन्दर्य, उस अतीन्द्रिय जगत की साकार कल्पना की ओर मैंने हाथ बढाया था, वही स्वप्न टूट गया[४]।" शीतल प्रणय प्रेमी को विरह की अग्नि बनकर जलाने लगा है। आज और कल के अन्तर पर विचार करता-करता प्रेमी कहता है :

विष प्याली जो पी ली थी
वह मदिरा बनी नयन में
सौन्दर्य पलक प्याले का
अब प्रेम बना जीवन में।

मादकता जीवन में अनायास ही घुसकर क्रान्ति मचा देती है, और सज्ञा भी वरवस ही चली जाती है। प्रिय भी आकर चला गया। स्मृतियाँ वातावरण में घूम-फिर रही हैं। हृदय किसी के प्रेम में ऐसा रग गया है कि छूटता ही नही। प्रेमी अनुनय-विनय करता है कि मनोरथ सुमनों को कुचल न देना। मन में सुख-दुख दोनो ही समविष्ट हो रहे हैं। नियति अपना खेल कर रही है। प्रेमी को न जाने क्यो आज भी अपनी वेदना पर विशवास है कि उसका प्रियतम शिथिल आहो से खिचकर चला आयेगा। चिर दग्ध दुखी वसुधा का कण-कण आलोक दान का भिक्षुक है, प्रियतम अब भी उसमें जीवन का सचार कर सकता है। प्रेमी अपने अन्तरतम को समझाने लगता है कि जगती ही व्यथाओ से भरी हुई है। इसी के साथ ही वह वेदना को एक नवीन स्वरूप प्रदान करता है, वह दर्शन मे परिवर्तित हो जाती है।

सन्ध्या और रजनी के नीरव प्रहरो में भी वेदन ज्वाला सदा जलती रहती है। वेदना सदा सुहागिनि, मानवता के सिर की रोली है। हृदय की ज्वाला ही निर्मम जगती को मगलमय प्रकाश का दान दे सकती है। प्रेमी वेदना को एक चिरन्तन सत्य के रूप में स्वीकार कर अपने प्रेम से मधुवन में विहँसने की प्रार्थना

४. स्कन्दगुप्त, पृष्ठ १९

करता है। सच्चा जीवन जागृत होकर मंगल किरणो का सृजन करे। आशा का सुन्दर अचल जीवन में लहर उठे। प्रेमी का क्रन्दन समाप्त होकर, नवीन प्रकाश ग्रहण करता है। प्रेमी की कामना है कि उसका शिथिल हृदय पुनः मग्न हो उठे, उससे अनन्त यौवन का मधु झरने लगे। वेदना भी मधुर हो जावे, निर्दय हृदय को सहृदयता प्राप्त हो। प्रेमी के आँसू ही उसके लिये वरदान बन जाते हैं। उसे एक नवीन चेतना मिलती है। वह जलधारा में स्नान कर पवित्र हो जाता है। वेदना 'कल्याणी शीतल ज्वाला' के रूप में परिवर्तित हो जाती है। करुणा में भी आनन्द लहर उठे। मन की समस्त पीडायें हँस पड़ें। वेदना को प्रेमी अपनी चिर सगिनी के रूप मे स्वीकार कर जगती का कलुष धो देने की अनुनय करता है। उससे तादात्म्य स्थापित कर अनेक प्रशन पूछने लगता है। शून्य गगन में तुमने क्या देखा? सागर की पागल लहरियाँ जब कलानिधि की असीमता को छूने का प्रयास करती है, और अन्त में हाहाकार मचाती हुई उठ-उठकर गिर जाती हैं, वेदना अवशय देख सकी होगी। युगो से अपनी ही जड़ता में मौन पर्वतमालायें न जाने कौन-सा अभिशाप झेल रही है। इस प्रकार प्रणयी अपने ही अन्तस्तल मे बस जानेवाली पीडा और वेदना को सर्वत्र देख लेता है। पृथ्वी का अणु-अणु, कण-कण किसी स्नेह-छाया के लिये मचल चुका है। एक क्षण का मिलन अनन्त विदा में परिणत हो गया। सर्वत्र वेदना का ही साम्राज्य है। जगतीतल भूखा और प्यासा है। कवि प्रश्न करता है:

सूखी सरिता की शैय्या
वसुधा की करुण कहानी
कूलो में लीन न देखी
क्या तुमने मेरी रानी।

अन्त मे कवि जीवन के इस सत्य पर भी पहुँच जाता है कि लघु स्नेह से भरा दीपक रजनी भर जलकर बुझ जाता है। कवि अपने आँसुओ को ही वरदान मानकर उनसे कहता है:

सबका निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकन सा
आसू इस विश्व सदन में।

अनुभूति—

अपने वर्तमान रूप में 'आँसू' वेदना को सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान करता है। नवीन सस्करण मे कवि का वेदना दर्शन विशेष महत्वपूर्ण है। किसी व्यक्ति

के हृदय में प्रज्ज्वलित विरहाग्नि का धीरे-धीरे प्रसार होने लगता है। वेदना को कवि एक शाश्वत चेतना के रूप में ग्रहण करता है। लागफेलो की भी धारणा है कि प्रत्येक जीवन में पावस की कुछ बूदें अवश्य गिरती है, और कुछ दिवस अन्धकारमय और धूमिल अवश्य होते ह[५]। अपने आरम्भिक स्वरूप में 'आँसू' एक विरह काव्य मात्र था। उसमें कवि अपने मिलन के स्वप्न देखता है। आज वह अभिशापग्रस्त हो गया है। स्वप्न बीत चुका है। कल्पना ध्वस हो गई है। उसके जीवन में केवल स्मृतियाँ ही शेष है। नीरव प्रहरो में समस्त सचित पीडा अश्रुविन्दु वनकर वरस जाती है। 'आंसू' का प्रथम सस्करण 'पन्त' के 'ग्रन्थि' की भाँति एक असफल प्रणय,गाथा के रूप में प्रस्तुत हुआ है। हाँ, अन्तिम पक्तियो में कवि विस्मृति का सकेत, अवश्य कर देता है। वह विषाद की रेखाओ को आँसुओ से धो डालना चाहता है। आज सुख सो गया है, तो आपत्तियाँ भी विलीन हो जायें। आँसू का वर्तमान स्वरूप प्रसाद के वौद्धिक विकास तथा दार्शनिक चिन्तन का प्रतिरूप है। यौवन का झझावात समाप्त हो जाने पर कवि जगत और जीवन पर भी दृष्टिपात कर सका। वह अपने हृदय की सीमाओ के वाहर निकलता है और तभी उसे धरणी का कण-कण सूखा दिखाई देता है। वौद्ध दर्शन के 'दुखवाद' का सकेत 'लहर' के गीतो में भी विकसित हुआ। 'आँसू' केवल कवि की आत्माभिव्यक्ति न होकर व्यापक दर्शन में परिवर्तित हो गया। अब तक जिस वेदन ज्वाला को प्रणयी केवल अपने अन्तर में जलती हुई देख रहा था, वह कण-कण में व्याप्त हो जाती है। प्रणयी की घनीभूत पीडा जगत के ओर-छोर नाप जाती है। कवि का कथन है

यह ज्वालामुखी जगत की
यह विश्व वेदना वाला
तव भी तुम सतत अकेली
जलती हो मेरी ज्वाला।

* * *

इस व्यथित विश्व पतझड की
तुम जलती हो मृदु होली
हे अरुगे सदा सुहागिनि
मानवता सिर की रोली!

---

५ "Into each life some rain must fall,
Some days must be dark and dreary"
Longfellow—(The Rainy day)

स्वानुभूति का व्यापक प्रसार ही कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियो को एक जीवन-दर्शन के रूप मे प्रस्तुत करता है। कवि अधिक आशावादी भी हो जाता है। जिन आँसुओ को उसने केवल स्मृतियो के रूप मे अपनाया था, उन्हे ही सृष्टि-कल्याण में नियोजित करता है। 'आँसू' एक ओर यदि प्रणय-गाथा है तो साथ ही सामजस्य के चिह्न भी उसमें दिखाई देते है। जिस वेदना ने उसे गिरा दिया था, उसी के सहारे प्रणयी उठने का प्रयत्न करता है। इस आशावाद तथा वेदना दर्शन के अतिरिक्त नवीन सस्करण मे छन्दो के क्रम मे भी परिवर्तन किया गया है। इसके द्वारा प्रसाद काव्य को एक कथा का रूप प्रदान करना चाहते थे। यह कार्य केवल आत्माभिव्यक्ति के द्वारा ही उन्होने किया। 'प्रेमपथिक' की भाँति पात्रो की प्रत्यक्ष व्यवस्था तथा कथानक इस प्रणय काव्य मे नही मिलते। कवि की अन्त प्रेरणाये अपने गुजन के द्वारा जिन भावनाओ और चित्रो का समन्वय करती है, उनमे परस्पर एक तारतम्य प्रतीत होता है। सभी भावनाये एक ही केन्द्र-विन्दु से सम्बन्ध रखती है। मुक्तक गीतो मे घनीभूत वेदना अन्त मे एक समन्वित प्रभाव डालती है। आदि से अन्त तक आशा-निराशा का उत्थान-पतन चलता रहता है। एक भावना दूसरे का पूरक वन जाती है। यह भाव-साम्य ही उसमें प्रवन्धत्व ला देता है। कवि एक ही भावना से अनुप्राणित होने के कारण अपने स्वरो को सजोता गया, और अन्त मे उसने उन्हे उपस्थित किया। 'आँसू' की प्रारम्भिक पक्तियो का भावावेश वेदना दर्शन में बौद्धिकता को भी अपना लेता है। कवि आन्तरिक प्रलाप के सहारे एक ऐसे चिन्तन लोक में पहुँचता है, जहाँ उसकी वेदना व्यक्ति से समष्टि पर पहुँच जाती है। वेदना से इस नवीन निष्कर्ष का ग्रहण कवि के बौद्धिक विकास का परिणाम है। 'आँसू' का प्रवन्धत्व उसकी भावनाओ के केन्द्रीभूत प्रभावोत्पादन में है। फारसी कवियो की रुबाइयाँ भी कही-कही अपने सगृहीत रूप मे एक कथा का आभास देती है। 'आँसू' के प्रणय निवेदन से ही कथा का एक रेखाचित्र प्रस्तुत हो जाता है, जिसे भावुक कलाकार सकतो से चित्रित करता है। अन्तर्मुखी वृत्तियो की प्रधानता शारीरिक प्रेम को मानसिक प्रेम मे परिवर्तित कर देती है। इस प्रकार 'आँसू' का प्रत्येक छन्द उस मुक्ता की भाँति है, जो अकेला ही जगमगाता रहता है और मौक्तिक माल मे भी चमकता है[१]।

'आँसू' का आलम्बन केवल छाया सकेतो के द्वारा ही प्रकट हुआ है। प्रियतम सामने नही आता, केवल उसका आभास मिलकर रह जाता है। सौन्दर्य-

---

१. कवि प्रसाद : विनयमोहन शर्मा, पृष्ठ ७०

वर्णन की सूक्ष्मता उसे पूर्णतया शरीरी नही होने देती। 'आँसू' के पूर्व की रचनायें कवि के प्रेम का आभास देती है .

निर्दय होकर अपने प्रति, अपने को तुमको सौंप दिया
प्रेम नहीं करुणा करने को, क्षण भर तुमने समय दिया।

झरना, पृष्ठ ३०

'झरना' के गीतो में कवि ने रूप के भी चित्रो का निर्माण किया। किसी कल्पनातीत काल की घटना उसके प्राणो की स्वर बन जाती है। मिलन के पश्चात् वियोग की ओर भी साधारण सकेत कर दिया गया है। स्वयम् कवि का मन निर्झर प्रेम की पवित्र परछाई में झर चला। 'झरना' के गीत जिस प्रणय-भावना की ओर इगित मात्र कर देते है उसी का विकास आँसू है। कवि स्वयम् इसे 'घनीभूत पीडा' का मस्तक में स्मृति-सी बनकर दुर्दिन में बरसना मानता है। टेनीसन ने भी इन्ही अश्रुओ के लिये कहा था, "अश्रु, धूमिल अश्रु, मुझे स्वय ज्ञात नही कि इनका क्या आशय है। किसी स्वर्गिक निराशा की गहराई से ये अश्रु हृदय में भर आते है, और नेत्रो में साकार हो उठते है। लहलहाते हुये पतझर के खेतो को देखता हूँ, और उन दिनो की याद हो आती है, जो अब नही रहे[७]।" प्रसाद का 'आसू' भी अतीत की स्मृतियो का सकलन है। यौवन के प्रथम चरण में ही भावुक का अन्तस्तल मचल उठता है। वह किसी स्नेहिल प्राण की मधुरिम छाया मे विश्राम करने की कामना करता है। अनजान में आनेवाले अपरिचित पर ही वह जीवन का सर्वस्व चढा देता है। अनायास ही वह क्षणिक मिलन चिरन्तर वियोग का सृजन करता है। आज कल्पना, स्मृतियाँ ही प्रणयी का पाथेय है। कवि गीतो में अपनी भावनाओ को छिपाकर नही रख सकता। कीट्स के विषय में कहा जाता है कि उसका समस्त जीवन रचनाओ में ही निहित है, और कवितायें ही उसके कार्य है[८]।' 'आँसू' में भी प्रसाद का व्यक्तित्व और कृतित्व अपने सम्मिलित स्वरूप में प्रस्तुत हुआ है।

---

७ "Tears, idle tears, I know not what they mean,
Tears, from the depth of some divine despair
Rise in the heart, and gather to the eyes,
In looking on the happy autumn-fields,
And thinking of the days that are no more"
—Tennyson (The Princess)

८. "His life is in his writings, and his poems are his works indeed"--The Life and letters of John Keats—Page 9.

'आंसू' मे कवि का अन्तरतम बोल रहा है। आरम्भ में ही वह विस्मृत बीती बातो को याद करने का प्रयत्न करता है। उसकी समस्त चेतना आज कम्पित हो उठी है। धीरे-धीरे उसे एक-एक कर सभी बातें याद आती जाती है। परिवर्तित समय के चित्रण मे वह वियोग की अन्तर्दशाओ को ही प्रमुखता देता है। रूप वर्णन में ही नारी का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत हो जाता है। इस अवसर पर पुरुष नारी का प्रेम प्रकाश में आ जाता है। कवि उस सौन्दर्यांकन में अत्यन्त सूक्ष्म तूलिका का प्रयोग करता है, किन्तु सौन्दर्य तो अचल से भी झाका करता है। उसे वह स्मित रेखा आज अत्यन्त कुटिल प्रतीत हो रही है। प्रियतमा के नखशिख वर्णन मे वह अतीन्द्रिय कल्पना करने लगा। उस प्रेयसी का हास देखकर मधु ऊषा में विकसित होनेवाले कमल दल के समस्त वैभव को भी लज्जित हो जाना पडेगा। उस पाषाणी के विषय में वह सन्देह करता है।

वह रूप रूप था केवल
या हृदय रहा भी उसमें
जड़ता की सब माया थी
चैतन्य समझ कर मुझ में।

यदि हृदय होता तो प्रेयसी ने प्रेमी के पूजन का अपमान न किया होता। मिलन की उन सूखी और मादक घडियो को भूल जाना सम्भव नही। वह 'परिरम्भ' आदि की भी चर्चा करता है। प्रेमी के जीवन में इतनी अधिक निराशा आ गई है कि वह उन पलो को लौटा लाने की कल्पना भी नही कर सकता। समस्त आशा समाप्त हो चुकी है। कवि स्वीकार करता है

जल उठा स्नेह, दीपक सा
नवनीत हृदय था मेरा
अब शेष धूम रेखा से
चित्रित कर रहा अंधेरा।

मादकता की भांति आकर किसी का सज्ञा-सा चले जाना ही प्रेमी की आन्तरिक अभिव्यक्ति का रहस्य है। इस 'अज्ञात' को किसी रहस्य का रूप प्रदान करने का प्रयत्न व्यर्थ है। 'आंसू' का आलकारिक, किन्तु मादक रूप-वर्णन, लौकिक धरातल के प्रणय की ओर सकेत कर देता है। केवल 'महामिलन' अथवा 'अज्ञात प्रियतम' के कारण 'आंसू' को रहस्यवादी भावनाओ के बन्धन में नही बांधा जा सकता। किसी नैतिकता अथवा आध्यात्मिकता का आरोप काव्य की आतमा को ही समाप्त कर देगा। इस विरह-काव्य मे छायावाद की

समस्त शक्ति बोल उठी थी। वह स्थूल और कृत्रिम के प्रति एक विद्रोह था। 'आँसू' की स्वीकारोक्ति में ही इतना बल था कि एक बार हिन्दी साहित्य में हिलोर-सी आ गई थी। पन्त ने असफल प्रेम की अभिव्यक्ति 'ग्रन्थि' के कथाकाव्य मे की। प्रसाद ने गीतिकाव्य के द्वारा 'आँसू' मे जिस प्रणयानुभूति का प्रकाशन किया उसका आलम्बन सर्वथा लौकिक है। यह लौकिक सवेदना ही काव्य का प्राण है। काव्य के उपादानो में भावनाओ की सत्यता का महत्वपूर्ण स्थान है। 'आँसू' में अनुभूति की सच्चाई ही उसकी महानता है। वह कवि की साहसपूर्ण अभिव्यक्ति है। हिन्दी मे जब किसी के पास इतनी शक्ति नही थी कि वह इस तरह की बातें कहे, तब प्रसादजी ने उन्हे कहा। यह साहस और कवि की "सवेदना स्वत ही काव्य को आध्यात्मिक ऊँचाइयो पर ले गई है। दूसरे अध्यात्म का आवरण पहनाने की इसे आवश्यकता नही[१]।" प्रसाद का प्रियतम एक साधारण मानव की प्रणय-प्रतिमा है, किन्तु कवि की गम्भीर वेदना उसे रोमान्टिक मात्र नही रह जाने देती। भावो का गाम्भीर्य, वेदना-दर्शन और अन्त मे उस करुणा का व्यापक प्रसार मानवीय आलम्बन के होते हुये भी प्रेम को अपनी पूर्ण उच्च भावभूमि पर ले जाता है। प्रसाद आरम्भ से ही आदर्शवादी रहे है। 'आँसू' के विरह निवेदन में भी इसी आदर्श की रक्षा उन्होने की। रूप, विलास और वासना की यथार्थता अन्त में आदर्श प्रणय के रूप में प्रतिष्ठित हो जाती है। प्रेम का यह आदर्श, रूप का अशरीरी चित्रण, स्नेह के छाया सकेत ही काव्य में कही-कही रहस्यमय भावनाओ की सृष्टि करते है। यह कला की सर्वोत्कृष्टता है, आध्यात्मिक निरूपण नही। इस आदर्श-चित्रण के कारण प्रसाद के काव्य को 'वादो' मे बाधने की भूल की जाती है। किन्तु काव्य की अन्तरात्मा मे प्रवेश करने पर सदा मानव की स्वाभाविक अनुभूति ही दिखाई पडेगी। 'आँसू' का भावुक कवि किसी रहस्यमय अथवा अलौकिक सत्ता से प्रणय सम्बन्ध स्थापित नही करता। अन्यथा 'नख-शिख-वर्णन' की आवश्यकता क्या थी? लौकिक से ईश्वर तक जानेवाले सूफी अपने प्रेमी के 'नूर' मात्र की कामना करता है। सगुणोपासना करनेवाले भक्त कवियो ने भी रूप की अपेक्षा गुणो का ग्रहण ही अधिक किया है। 'सूर' ने कृष्ण के रूपवर्णन में भी अतीन्द्रियता रक्खी है। वैष्णव कवियो की रूपोपासना में भी सौन्दर्य केवल साधन है। उसके द्वारा कवि लक्ष्य तक जाना चाहता है। मर्यादा के कारण तुलसी की सीता केवल 'तिरछे करि नैन दे सैन तिन्हें, समुझाइ कछू मुसकाइ चली' के द्वारा ग्राम बालिकाओ के

---

१ जयशंकर प्रसाद, पृ० ६७

प्रशन का उत्तर दे देती है। यथार्थ चित्रण में भी प्रसाद ने आदर्श को लिया, और इसी का निर्वाह करने के लिये उन्हे प्रतीक विधान तथा छाया सकेतो का सहारा लेना पडा। आदि से अन्त तक 'आसू' में मानवीय भावनाओ की प्रधानता है। उसका यह मानवीय पक्ष ही उसे श्रेष्ठता प्रदान करता है।

सारोज आफ वर्थर--

गेटे के 'सारोज आफ वर्थर' के विषय मे भी लेखको के विभिन्न मत है। एक वर्ग यदि उसे एक साधारण उपन्यास के रूप मे स्वीकार करता है, तो अन्य, उसे कवि की 'आत्मकथा' कहता है। गेटे का जीवन सदा एक आन्तरिक अतृप्ति से भरा था। उसने अपने जीवन मे अनेक बार इस हृदय-पिपासा को शान्त करने का प्रयत्न किया। उसके साहित्य पर इस प्रयत्न की छाया है। स्वयम् उसका कथन है कि 'मेरी समस्त कृतिया एक महान स्वीकारोक्ति का भाग होती है[१०]।' गेटे के जीवन से ज्ञात होता है कि यौवन के आरम्भ में ही उसने लोटे वफ से प्रेम किया था। आजीवन वह इसी स्मृति को सजोता रहा। उमी समय गेटे के एक अन्तरग सखा जेरुसलम ने अपने प्राणो का अन्त कर लिया। वह एक मित्र की पत्नी से प्रेम करता था। अपने अभागे साथी को कवि ने स्वयम् की परिस्थिति के अत्यधिक निकट पाया। अभी तक प्रणय की स्मृतिया सजीव थी। उसने अनेक बार आत्महत्या का प्रयास किया, किन्तु निष्फल। अन्त में गेटे ने लगभग चौबीस वर्ष की अवस्था में 'वर्थर' की रचना की। इस प्रकार महाकवि ने अपने उपन्यास में एक ओर यदि मित्र जेरुसलम से प्रेरणा ली, तो साथ ही उसने अपनी आन्तरिक अभिव्यक्ति भी की। स्वयम् कवि ने इस विषय मे कहा था कि, "मूल्यवान युवक जेरुसलम की वेदना के साथ ही मैंने अपनी भावनाओ को भी समन्वित कर दिया है, और अब वह अत्यन्त सुन्दर है[११]।" इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् ही जर्मनी में एक विचित्र स्थिति आ गई थी। पाठको को उसमे अपनी ही भावनाओं की छाया मिली।

---

१०. "All my works ore fragments of a great confession";

११. The sufferings of this precious youth—and now I have put my own feelings in to this story, and it makes a marvellous whole—Goethe By Luduriq. Page 81.

'वर्थर' समाचार पत्रो की भाँति बिकने लगा। वह अत्यधिक लोकप्रिय हो गया। लगभग सैंतीस वर्ष की अवस्था में गेटे ने पुस्तक में परिवर्तन किये। अपने जीवन-काल में ही उसने वर्थर की रजत जयन्ती भी देख ली थी। प्रकाशन के समय इसकी मार्मिक अनुभूति ने देश में अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था। आत्महत्या की अनेक घटनायें सुनने को मिली, और पुस्तक किंचित काल के लिये वन्द भी कर दी गई थी। इस प्रकार कवि की आन्तरिक अनुभूति का स्वागत हुआ। उपन्यास के कथानक का उत्तरार्द्ध ही गेटे के जीवन के अधिक समीप है। वर्थर की आत्महत्या जेरुसलम से अनुप्राणित है[१२]। कथावस्तु के अनुसार गेटे के उपन्यास का आरम्भ प्रणय से होता है। निराशा की चरम सीमा में नायक की हत्या हो जाती है। इस वेदना की तीव्रता के साथ ही उसमें जीवन की प्रहेलिका पर विचार किया गया है। कवि अन्त में आशावाद का भी सृजन करता है। लगभग सैंतीस वर्ष की अवस्था में उसने अपने बौद्धिक विकास के साथ ही उपन्यास में परिवर्तन किया था। प्रसाद के 'आँसू' का नवीन सस्करण भी इसी विचार-परिवर्तन का प्रमाण है। युवक कवि की भावुकता पीछे छूट जाती है। उसकी निराशा आशा में वदलती है। एक नवीन ज्योति और प्रकाश लेकर वह जीवन पथ पर वढता है। 'आँसू' की आरम्भिक वेदना अन्त में व्यापक भूमि पर प्रतिष्ठित होती है। प्रणयोन्माद का ज्वार समाप्त होते ही गेटे ने इस उपन्यास में अन्य समस्याओ पर भी विचार किया। 'एक दूसरे को दुख देना, कष्ट पहुँचाना कितना बुरा है। नवयुवक यौवन के मधुमास मे ही अपना जीवन नष्ट कर देते है। निराशा उन्हे घेर लेती है। वे सदा यही कहा करते है कि सुख अनायास ही व्यतीत हो जाता है और दुख के पल काटे नहीं कटते। प्रत्येक दिवस यदि उन्मुक्त हृदय से प्रकृति का उपभोग किया जाय, तो आनेवाले कष्ट को सहन करने की शक्ति मिल सकती है[१३]।" इस प्रकार 'वर्थर' भी एक जीवन दर्शन को प्रस्तुत करता है। 'आँसू' और 'वर्थर' एक दूसरे के समीप है। दोनो मे ही लेखको की स्वानुभूति किसी न किसी अश में निहित है। जेरुसलम अपने प्राणो का अन्त कर पाठको की समस्त सहानुभूति प्राप्त कर लेता है। 'आँसू' की वेदना का वर्णन इस रूप मे किया गया है कि व्यक्ति का उसके साथ साधारणीकरण हो जाता है। आँसुओ के विषय में गेटे का कथन है कि

---

१२ The Life and work of Goethe by Robertson—Page 67

१३ Wisdom of Goethe—Page 106.

"जिसने दुख मे रोटियाँ नही खाईं; जो रजनी के आधे प्रहर में रोदन करता अपनी शय्या पर न बैठा, वह स्वर्गीय शक्ति का ज्ञान नही प्राप्त कर सकता[१४]।"

'वर्थर' में गेटे ने गद्य के माध्यम से ही प्रणय की आशा और निराशा का चित्रण किया है। जिस कथा का अवलम्ब उसने ग्रहण किया उसमे एक साथ दो प्रेमियो की कहानियाँ अपनी छाया डालती है। जेरुसलम केवल एक माध्यम है, जिसके द्वारा लेखक अन्तिम उद्देश्य तक जाना चाहता है। आरम्भ मे प्राप्त होनेवाली निराशा बौद्धिकता से मिलकर नवीन जीवन दर्शन में परिणत हो जाती है। जेरुसलम की मृत्यु ही एक नवीन सकेत करती है। गेटे ने वर्थर के प्रकाशित हो जाने पर उसकी एक प्रति लोटे वफ को भेजते हुये लिखा था, कि 'मैंने इसे सैकड़ों बार चूम लिया है। मुझे ऐसा लगता है, मानो ससार मे केवल यही एक प्रति है।' लेखक को अपनी इस पुस्तक से अत्यधिक प्रेम था। स्वयम् 'वर्थर' पर उसने एक कविता भी लिखी थी। "जीवन की समस्त निराशाओ के होते हुये भी गेटे ने प्रणय, पुस्तक और प्रशसको को पीछे ही छोड़ दिया। वह नवीन निर्माण मे लग गया[१५]।" इस प्रकार 'वर्थर' का उद्देश्य आत्मप्रकाश के द्वारा केवल करुणा का सचार ही नही था, लेखक जीवन दर्शन की स्थापना करने मे सफल हुआ। अलवर्ट और उसके मित्र मे उचित-अनुचित के विषय मे एक वाद विवाद होता है। पुण्य और पाप की परिभाषा करना सुगम नही। लेखक आध्यात्मिकता के अवलम्ब को नही ग्रहण करता। उसका विश्वास है कि दुख देनेवाले उन्माद, पागलपन और मादकता ही उसे किसी महान कार्य मे भी नियोजित कर सकते है। निराशाओ से घवडाकर किसी अदृश्य शक्ति के पूजन-अर्चन में लीन हो जाने की आध्यात्मिक परम्परा से दोनो ही कृतियाँ दूर है। 'वर्थर' का आधार मानवीय उत्थान-पतन है, जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति 'फाउस्ट' मे जाकर होती है। 'वर्थर' 'आँसू' की भाति कवि के यौवन काल की रचना है, जिसका आधार उसकी प्रणय कथा है। गद्य के माध्यम से ही वह अपनी स्वानुभूति का प्रकाशन करता है। अन्त मे उसने निराशा को आशा मे

१४. "Who ne'er his bread in sorrow ate,
Who ne'er the mournful midnight hours
Weeping upon his bed has sate,
He know You not, Ye Heavenly Powers."
—Wilhelm Meister—(Translated by Longfellow)

१५. Living Biographies of Famous Men, page 110.

परिणत कर दिया। केवल थोड़े से ही पृष्ठों में समाप्त हो जानेवाले इस उपन्यास ने यूरोप में उस समय एक तूफान-सा खड़ा कर दिया था। 'आँसू' की वेदना से भी हिन्दी जगत में एक हलचल सी मच गई।

वेदना—

'आँसू' का वेदना-दर्शन ही सम्पूर्ण गीतिकाव्य का प्राण है। कवि आरम्भ मे रुदन करता है। उसे बीते हुए क्षण बारम्बार याद आते है। प्रेयसी के रूप पर वह रीझ-रीझ उठता है। अन्त मे वह वेदना के साथ एक प्रकार की सन्धि कर लेता है। आन्तरिक वेदना और पीड़ा प्रेमी को एक नवीन प्रकाश देती है, जिसके सहारे वह आगे बढ़ता है। कवि की गहन अनुभूति वेदना को एक शाश्वत चेतना के रूप में स्वीकार करती है। वेदना की ज्वाला सदा जलती रहती है। नीलनिशा के अचल में हिमकर शिथिलित मन सो गया है, अस्ताचल की घाटी मे दिनकर खो चुका है, नक्षत्र स्वर्गगा की धारा में डूब जाते है, विजली कादम्बिनि कारा में वन्दिनी हो जाती है। किन्तु कवि प्रश्न करता है :

मणिदीप विश्व मन्दिर की
पहने किरणों की माला
तुम एक अकेली तव भी
जलती हो मेरी ज्वाला।

वेदन ज्वाला का चिरन्तन सत्य जगती को नवीन प्रकाश का दान देता है। काव्य के आरम्भ में प्राणो की व्यथा वन जानेवाली यह वेदना 'कल्याणी शीतल ज्वाला' हो जाती है। रोदन में प्रेमी अनायास ही मुस्करा उठा। रोते-रोते गाने लगा। निराशा मे आशा की जो किरण प्रेमी को अपनी ही वेदना के द्वारा प्राप्त होती है, उसे वह सम्पूर्ण ससार में विखेर देना चाहता है। 'निर्मम जगती' को इसी के द्वारा 'मगलमय उजाला' मिल सकता है। स्वयम् अपने प्रेम से कवि कहता है

वह मेरे प्रेम विहँसते
भागो, मेरे मधुवन में
फिर मधुर भावनाओं का
कलरव हो इस जीवन में।

कवि का यह जागृत निराशावाद ही उसका वरदान हो जाता है। एक ओर यदि 'आँसू' उत्कृष्ट विरह काव्य है, तो साथ ही वह जीवन के व्यावहारिक ज्ञान का उन्नायक है। यदि निराशा के पक में ही कल्याण का शतदल विकसित

हो सकता है, तो उसकी सार्थकता मे विश्वास क्यो न किया जाय। गिरता-उठता प्रणयी अन्त में एक महान उद्देश्य पर पहुँच जाता है। निराशा और प्रेम की असफलता उसकी प्रगति का बन्धन नही बन जाती। ठोकर खाकर वह आगे बढता है। प्रसाद के निराशावाद मे उनका मौलिक चिन्तन निहित है। साधारणतया निराशा के पश्चात् वैराग्य का उदय होता है। बौद्ध दर्शन के 'दु खवाद' मे यही भावना निहित है। ससार में केवल दुख का निवास समझने वाला भिक्षु उसके कारण और अन्त मे दु खनिरोध का प्रयत्न करता है। उसमे एक विरक्ति की भावना है, जो साधु हो जाने का भी आवाहन करती है। वेदान्तवादी जीवन की अस्थिरता का सकेत करता है। मैत्रि उपनिषद् में वृहद्रथ ने कहा कि केवल अस्थि, रक्त, मास से निर्मित शरीर पर अभिमान कैसा? कठोपनिषद् मे नचिकेता ने यमराज से कहा था—

अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्वस्थः प्रजानन् ।
अभिध्यायन वर्णरतिप्रमोदान अतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥

कठोपनिषद्, १-१-२८

मानव जीर्ण होनेवाला तथा मरणशील है, इस सत्य का भली भाँति ज्ञान रखनेवाला मनुष्य अजर-अमर महात्माओ का सग प्राप्त कर, भला नारी सौन्दर्य, क्रीडा, आमोद-प्रमोद का बारम्बार चिन्तन कर इस लोक मे अधिक समय तक आनन्द उपभोग की कल्पना क्यो करेगा।

उपनिषदो की कल्पना साख्य दर्शन मे मायावाद बनकर आई। साख्यवादी माया से सदा दूर रहने का उपदेश देते है। इस प्रकार 'आँसू' का वेदना दर्शन इन आध्यात्मिक और दार्शनिक निराशावाद की प्रवृत्तियो से भिन्न है। उसमें कवि के जीवनानुभव का योग है। उसमें किसी आध्यात्मिकता अथवा वैराग्य की छाया नही है। कवि जिस गाम्भीर्य के साथ प्रलाप कर रहा था, उसी गम्भीरता से वेदना को वरदान रूप में ग्रहण करता है। वासना से प्रेम, निराशा से आशा, निद्रा से जागृति और व्यक्ति से समष्टि का ग्रहण इसी वेदना दर्शन के द्वारा सम्भव हो सका। यदि अन्तस्तल मे जलती हुई वेदना ही समाप्त हो जाती तो कवि उसका व्यापक प्रसार कैसे कर पाता। पीडा के आकस्मिक परिवर्तन पर कवि कहता है :

आसू वर्षा से सिचकर
दोनों ही फूल हरा हो
उस शरद प्रसन्न नदी में
जीवन द्रव अमल भरा हो।

सूफी कवि—

जब कवि की मूर्च्छना समाप्त होती है तो वह सूफी कवियो की भाँति किसी अन्य शक्ति की ओर उन्मुख नही होता। वह जीवन को और भी अधिक दृढता से ग्रहण कर लेता है। 'आँसू' के प्रणय-निवेदन में सूफी कवियो की-सी तन्मयता है। सूफी कवि लौकिक प्रेम के सहारे अलौकिक शक्ति तक जाना चाहते है। 'आँसू' का कवि लौकिक को व्यापकत्व प्रदान कर व्यष्टि को समष्टि बना देता है। माधुर्य की सजीव प्रतिमा रबिया स्वय को परमात्मा की परमप्रिय पत्नी कहती थी। अल्लाह के 'जमाल' पर जान देनेवाले सूफी लौकिक प्रेम को एक साधन मात्र बनाते है। उनके आत्मसमर्पण और दीनता में भी ईश्वर को पाने की कामना है। रूमी तथा जामी ईश्वरप्राप्ति के लिये प्रेम का आग्रह करते है[१६]। उनके अनुसार अल्लाह कभी अमूर्त रूप में दर्शन नही देता और स्त्री रूप में ही उसका साक्षात्कार श्रेष्ठ होता है। सूफी मसनवियो में जो स्त्री-पुरुष का पारस्परिक प्रणय चित्रित है, उनमें परमात्मा ही वास्तविक आलम्बन और जीवात्मा ही आश्रय है। प्रेम की पुकार से सूफी परमात्मा को जान लेता है। उसका 'वस्ल' पा जाता है। माशूक को ही साकी मानकर वह आगे बढ़ता है। सूफी कवियो में प्रेम का वही ताप है जो 'आँसू' में, किन्तु लक्ष्य में अन्तर है। स्वयम् जायसी लौकिक कथा के रूपक द्वारा रहस्यवाद का सृजन करते है। सूफियो के काव्य में प्रेम की प्रधानता है और विचारो में एक अलौकिक कल्पना विचरण करती है[१७]। सूफी कविता का बहिरग प्रेममय होता है, किन्तु उसके अन्तरतम में रहस्यवादी भावना रहती है।

सूफी साधक प्रेम और सौन्दर्य की अलौकिक झाँकी देखने के प्रयासी होते है। उनकी साधना में लौकिक प्रेम का अधिक महत्त्व नही। प्रसाद के 'आँसू' की प्रेम कल्पना सर्वथा लौकिक भूमि पर प्रतिभाषित है, अतएव सूफियो की प्रेम-पद्धति से उसकी तुलना करना व्यर्थ है। सूफियो के प्रेम की आरम्भिक भूमिका अलौकिक है, उसकी विकास भूमि अलौकिक है और उसकी परिणति भी वही है। प्रसाद की प्रेम भूमिका लौकिक और मानवीय है, उसका विकास भी सासारिक धरातल पर होता है तथा उसकी परिणति होती है, उदात्त विश्वप्रेम या सर्वतोमुखी करुणा में। प्रसाद लौकिक या मानवीय प्रेम की वैयक्तिक भूमि से क्रमश ऊपर उठते है, वैयक्तिक सौन्दर्य और तज्जन्य अनुभूतियो से प्रभावित

---

१६ The Mystics of Islam—Page 109

१७ Sufism by Prof Arbery—Page 61

होते है, उन्हे परखते हैं और उनमे आगे बढने का उपक्रम करते है। अतएव प्रसाद की प्रेम कल्पना सूफी प्रेम साधना से अधिक एकीकृत नही होती, केवल किंचित साधारण साम्य मिल जाता है।

सूफी कवियो की भावप्रवणता तथा मुक्तक भावना अपने बाह्य रूप मे 'आसू' के निकट प्रतीत होती है। सूफियो की 'प्रेम की पीर' ही उनका सर्वस्व है। 'आसू' की वेदना ही उसकी आत्मा है। सूफियो की मादन और माधुर्य भावना मे अत्यधिक तन्मयता है। वे पागलो की भाति इस ससार का गीत गाकर भी ऊपर उठने का प्रयत्न करते है। फरीदुद्दीन अत्तार का कथन है :

> दर सिपहरे हुस्न दर बुर्जे जमाल
> आफतावे बूद इल्ला बेजवाल
> आफताव अज़ रश्के अकसे रूए ऊ
> जर्दतर अज़ आशिकाने बूए ऊ।
> हर कि दिल दर जुल्फे आदिलदार वस्त
> अज़ खयाले जुल्फ ऊ जुन्नार वस्त।

'वह अत्यन्त रूपवती तथा लावण्यमयी थी। उसका सौन्दर्य विकसित और सकुचित होने वाले अशुमाली की भाति प्रकाशमान था। सूर्य, उसकी रूप-राशि के सम्मुख लज्जित होकर धूमिल पड गया था। उसकी प्रभा सुन्दरी के प्रेमियो से भी अधिक पीत थी, जो गलियो मे पडे थे। प्रियतमा को केवल एक ही बार प्रेममय दृष्टि से देखनेवाला व्यक्ति उसी के ध्यान मे डूबा रह जाता है।'

सूफियो के सौन्दर्य वर्णन तथा प्रेमाभिव्यक्ति के पीछे रहस्यमय सकेत रहते है। स्थूल दृष्टि से उनमे कोई अलौकिक भावना नही मिलती, किन्तु अचल हटाते ही आध्यात्मिक आभास मिल जाता है। सूफी कवियो ने अपनी उद्देश्य-पूर्ति के लिये प्रतीको का सहारा लिया। प्रतीको को केवल भावनाओ का वाहन मानने वाला सूफी, हृदय की भावनाओ को उनसे अधिक महत्व देता है। रमणी की रमणीयता मे भी उन्हे किशोरता अधिक रुचिकर प्रतीत हुई। बुलबुल, तोता, मछली, वासुरी आदि प्रेममय प्रतीको के द्वारा वे भावो का प्रकाशन करते है। कण-कण मे प्रतीक खोजने वाला कवि प्रकृति से एक तादात्म्य स्थापित कर लेता है। प्रतीको द्वारा प्रस्तुत-अप्रस्तुत का सम्बन्ध जोडा गया। अन्योक्ति, सकेत, भावभगिमा तथा निदर्शन से प्रेमाभिव्यक्ति सूफी कवियो की विशेषता है। सम्पूर्ण काव्य का आधार प्रेम अथवा रति होने के कारण उन्होंने सुरा, साकी

को भी स्थान दिया। प्रेम मदिरा पीकर पागल होने वाला सूफी मूर्च्छना के सहारे साध्य तक जाने की आकाक्षा रखता है।

प्रसाद की प्रेम भावना सूफियो की भाति गम्भीर है। प्रेम को ही सर्वस्व मानकर चलने वाला सूफी प्राणो का मोह नही करता। वह प्रेम के सहारे परमात्मा को पा लेना चाहता है। 'आसू' अपने प्रेम को जगती के कण-कण में विखेर कर मगलमय प्रकाश करता है। उसमें उतना ही ताप है, जितना कि किसी भी सूफी मे होता है। भावप्रवणता में प्रसाद ने प्रस्तुत-अप्रस्तुत का सम्बन्ध स्थापित किया। 'मादकता' की भाति आकर 'सज्ञा' सा चले जाना प्रेम की जिस भावधारा की सृष्टि करता है, उसमें आवेग है। प्रतीको के आधार पर होने वाला सौन्दर्य तथा नखशिख वर्णन रीतिकालीन परम्परा की अवहेलना कर जाता है। वह केवल उद्दीपन मात्र का कार्य नही करता, उसमे प्रीति की प्रक्रिया है। प्रतीक योजना एक असाधारण कला है[१८]। प्रिय के सौन्दर्य से प्रेमी जो कुछ ग्रहण करता है, वह है, उसका सत्य। इसी कारण उसने छलना समझकर भी उससे प्रेम किया! मिथ्या जग का वही एक मात्र 'चिर सुन्दर' था। वन्द पलको से आसू मे जिस मधु मदिरा पान की चर्चा है, वह सूफियो की मूर्च्छना की भाति है। प्रतीक विधान द्वारा ही आसू का भावावेश अन्तिम समय तक जीवित रहता है। इस प्रकार अपने 'मानवीय प्रेम' मे 'आसू' सूफी कवियो की उस प्रेम परम्परा के समीप है, जिसमें रहस्यवाद का निर्माण हुआ। किन्तु 'आसू' में लौकिक पक्ष आदि से अन्त तक जीवित रहता है। स्वयम् प्रसाद ने माधुर्य भाव की चर्चा में रविया का उल्लेख किया है[१९]। 'जायसी' के 'पद्मावत' मे नागमती का विरह वर्णन प्रेम के जिस चरमोत्कर्ष का प्रतीक है, उसमें भी रहस्य भावना का अधिक आग्रह है। सूफियो की समस्त प्रेम पद्धति में इसी प्रकार के छाया सकेत मिलते है। 'छालो का फूटना' तथा प्रिय का लिंग विपर्यय

---

१८. "The essence of symbolism is its instance on a world of ideal beauty, and its conviction that this is realised through art The extasies which religion claims for the devout through prayer and contemplation are claimed by the symbolist for the poet through the exercise of his craft."
—Heritage of Symbolism by Bowra, page 6.

१९. काव्य और कला, पृष्ठ २१

आदि भी फारसी कविता के अधिक निकट है। शायर अपने माशूक को पुरुष रूप मे देखता है। फरीदुद्दीन अत्तार ईरानी सूफी कवि थे। उन्होने 'हिकायत शेख सनआ' मे एक ईसाई बालिका का रूप वर्णन किया है। उसमे भी प्रतीक विधान के द्वारा अभिव्यक्ति की गई और उसे पुरुष रूप मे सम्बोधित किया गया। कवि की व्यक्तिगत अनुभूति से निर्मित 'आसू', उसकी स्वतन्त्र रचना शक्ति की परिणाम है और उसे किसी दर्शन विशेष की छाया नही कहा जा सकता।

आँसू का आदर्श——

'आसू' के स्वस्थ प्रेम, जागृत निराशा, सूक्ष्म रूप ने उसे एक उच्च धरातल पर पहुँचा दिया है। इसी जीवन की यह कथा अपने आदर्श रूप मे इतनी गम्भीर हो गई है, कि उसे अलौकिक स्वीकार करने की इच्छा हो जाती है। विशेषतया 'आसू' के प्रियतम मे इस अलौकिकता का आरोप किया जाता है। यह आदर्श स्थापना ही कवि की महान कला कृति है। यदि प्रेम का आवेश अपनी अनुभूति के सत्य के कारण मार्मिक व्यजना तथा साधारणीकरण में सफल हुआ, तो उसकी आशामय परणति उसे ऊँचाई पर ले जाती है। स्वाभाविक उत्थान पतन में बधा हुआ प्रेमी अन्त मे अनेक जीवन सत्य जान लेता है। 'आसू' का यह जीवन दर्शन, वियोग पक्ष के होते हुये भी, उसे स्वस्थता प्रदान करता है। पीड़ा मे क्रन्दन करता हुआ कवि यह जान जाता है कि अपने ही सुख से बेसुध व्यक्ति, जिसकी वेदना भी सो गई है, दूसरो की करुणा कथा नही सुन सकता। प्रेमी केवल प्रिय के शारीरिक आकर्षण पर ही नही रीझा था, उसने 'चिर सत्य', 'चिर सुन्दर' के रूप मे उसका ग्रहण किया। प्रियतम सुन्दर ही नही थे, वे सौन्दर्य की मूर्ति थे। उनमे सुन्दरता साकार हो उठी थी। इसी कारण माया की छाया के सत्य को उसने हृदयगम किया। प्रेम का रग एक बार चढकर कभी नही छूटता। प्रेम के जिस भीषण पथ में प्रेमी आज आ गया है, उसमे इसके पूर्व कोई नहीं आया। बीहड बेला में वह सूने तट पर न जाने कौन सी लहरों में आ गया। कवि सभी कुछ नियति के हाथो सौंप देता है। सुख दुख नियति का ही दान है। उन दोनो मे कोई मौलिक अन्तर नही। केवल एक ही चेतना के दो रूप है। कवि जीवन मे जिस सामजस्य की स्थापना चाहता है उसके लिये कहता है—

मानव जीवन वेदी पर
परिणय हो विरह मिलन का
सुख-दुख दोनों नाचेंगे
है खेल आख का मन का।

सुख-दुख तो मन में उसी प्रकार निवास करते है, जैसे मालती कुज में चद्रिका और अन्धकार का मिलन। स्वयम् पन्तजी भी इसी सुख-दुख के समन्वय को स्वीकार करते है। बिना दुख के सुख का कोई मोल नहीं और दुख के बाद ही तो सुख आता है। उनकी 'मानव जग में बट जावें, सुख-दुख से और दुख-सुख से' पक्तियो में यही सकेत है। 'प्रसाद' में यह सामजस्य उनका मूल स्वर है। देवसेना कहती है, 'पवित्रता की माप है मलिनता, सुख का आलोचक है दुख, पुण्य की कसौटी है पाप[२०]।" आसू' का कवि सुख-दुख के मेल से दो रूठे हुये व्यक्तियो को मना लेना चाहता है। इसी अवसर पर प्रेमी को अपनी वेदना की शक्ति का बोध भी हो जाता है। धीरे धीरे वह व्यक्तिगत अनुभूति के क्षेत्र का प्रसार करता है। चारो ओर उसे निराशा ही निराशा दिखाई देती है। इस विश्व प्रपीड़न के प्रति उसका सकेत है

चुन-चुन ले रे कन-कन से
जगती की सजग व्यथायें

व्यक्तित्व का प्रसार उसकी वेदना को सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान करता है। जब यह अग्नि सर्वत्र ही प्रज्ज्वलित है, फिर व्यक्ति केवल अपने प्राणों का मोह क्यों करे ? वेदना अभिशाप नही, वास्तव मे मानवता का शृगार है। वही उसके सुहाग को अचल रखती है। वेदना, असन्तोष, और चिन्ता जगती को गति प्रदान करते है। कवि विषमताओ के बीच भी जीवन के प्रति जिस आस्था को पा लता है, वही 'आसू' को एक स्वस्थ धरातल पर प्रतिष्ठित करती है। सागर के अन्तराल में वडवानल की भाति जलती हुई वेदना सम्पर्ण कलुष भस्म कर सकती है। कवि वेदना को अपनी ही थाती समझ कर उससे तादात्म्य स्थापित कर लेता है। उसे यह भी आभासित हो जाता है कि विश्व ही मधु की भिक्षा माग रहा है। 'प्रलय की छाया' में भी यही पुकार है

अपना दल अचल पसार कर वनराजी
मागती है जीवन का विन्दु विन्दु ओस सा।
क्रन्दन करता सा जलनिधि भी
मागता है नित्य मानों जरठ भिखारी सा
जीवन की धारा मीठी-मीठी सरिताओ से।

लहर, पृष्ठ ७०

---

२० स्कन्दगुप्त, पृष्ठ ४८

जीवन का उपभोग करने की कामना ने प्रेमी को एक बार निराशा प्रदान की थी, आज उसी से आशा मिल जाती है। कवि जिन तात्विक निष्कर्षों पर पहुंच जाता है, वह उसे अनुभव के द्वारा प्राप्त हुये है, और बौद्धिक चिन्तन उनका साथ देता है। बौद्ध दर्शन की करुणा जीवन के प्रति जिस वैराग्य को जन्म देती है, उसी वेदना ने 'आसू' के प्रेमी को जीवन के रहस्य का द्वार खोल दिया। 'आसू' की यही सार्थकता है कि वह किसी निराशाजन्य जडता और गत्यावरोध का कारण नही बन जाता, वरन कालिमा धुल जाते ही वातावरण स्वच्छ हो जाता है। कवि जीवन की गम्भीरतर समस्याओ में प्रवेश करता है।

भाव-विकास--

भावना प्रकाशन के रूप मे 'आसू' प्रसाद के व्यक्तित्व का प्रौढ चरण है, जिसका पूर्ण विकास 'कामायनी' में हुआ। 'आसू' किसी न किसी रूप मे प्रसाद के अन्तरतम का छाया चित्र है, और आरम्भ के छन्दो मे उनका हृदय ही प्रधान है। अन्त मे बुद्धि आकर अपने चिन्तन से कथानक को मोड़ देती है। जेरूसलम की हत्या के पश्चात गेटे भी अपने 'वर्थर' मे जीवन के सत्य को दृढता से पकडता हुआ दिखाई देता है। प्रसाद के मानसिक चित्रण मे प्रकृति भी सहयोग देती है। मिलन काल मे मधु वर्षा के मेघ वियोग मे प्रलय घटा हो जाते है। 'आसू' मे केवल साधारण प्रणय के ही दर्शन नहीं होते, किन्तु उसमे एक गहन अनुभूति भी है। कवि वेदना सागर का मन्थन कर रत्न निकालने का प्रयत्न करता है। उर्दू और फारसी की गम्भीर रचनाएँ भी इसी सत्य का प्रतिपादन करती हैं।

> तड़पती क्यों है ऐ बुलबुल कमाल इतना तो पैदा कर
> कि तेरा अश्क जिस जा गिर पड़े गुलजार पैदा हो।

'सोज' की इन पक्तियो में वेदना की गम्भीरता से केवल व्यक्ति को ही साहस प्राप्त होता है। 'आसू' समष्टि तक चला जाता है। प्रेमादर्श का जो सकेत 'प्रेमपथिक' मे मिलता है, वह अलौकिक अधिक है। उसे 'शिवसमष्टि' के निकट प्रस्तुत किया जा सकता है। यद्यपि कथाकाव्य के द्वारा कवि प्रेम का ही एक स्वरूप प्रस्तुत करता है, किन्तु उसमे स्वाभाविकता और उसका प्रकृत रूप अपेक्षाकृत कम हो जाता है। 'आसू' अधिक व्यावहारिक और मानवीय जीवन की ही एक झाकी है। प्रसाद जड प्रकृति मे चेतनता का आरोप करते हुये अपनी सहानुभूति को आगे बढाते है। प्रेम-काव्य मे भी उनकी सामाजिकता बोलती

रहती है, जो उनके साहित्य का मूलाधार है। शैल मालाएँ युगो से मौन होकर अभिशाप झेल रही है। उन पर कोई वनस्पति भी नही उगने पाती। वह जनपद परस तिरस्कृत और अभिशप्त कही जाती है। कोई भी व्यक्ति वहा नहीं आता। कलिया भी मधुकर से छली जाकर वेदन स्वर में गाती रहती है। वसुधा की जिस करुण कहानी का सकेत कवि 'आसू' के अन्त में कर देता है, उसी को लेकर वह मानवता के कल्याण में अग्रसर होता है। प्रसाद का व्यक्तिवाद इसी कारण जान स्टुअर्ट मिल से भिन्न है। उसमें अधिक व्यावहारिकता और स्वाभाविकता है। कवि का समाजवाद ही मानो बोल उठा हो

> **फिर उन निराश नयनों की**
> **जिनके आसू सूखे है**
> **उस प्रलय दशा को देखा**
> **जो चिर वचित भूखे है।**

यही 'आसू' का रहस्य है। जीवन पथ पर जाता हुआ मानव उसकी प्रत्येक गतिविधि को देखकर अन्त में एक सामजस्य स्थापित करता है। 'आसू' की करुणा का यह चरमोत्कर्ष है। सूफी जब अपार्थिव और अलौकिक हो जाता है, तव प्रसाद का प्रेम जीवन का रहस्य जान जाता है। एक यदि अमानवीय है तो दूसरा केवल आदर्शमय। उसका क्षेत्र व्यापक और मगलमय है। 'कल्याण वर्षा' ही अन्त में उसका उद्देश्य हो जाता है।

'आसू' की भावनाओ में 'झरना' की सी जिज्ञासा अथवा साधारण प्रेम-कल्पना मात्र नही रह जाती। ब्रजभाषा की रचनाओं में परम्परा का जो प्रभाव था, वह प्रयोगकालीन कवि ने आगे चलकर त्याग दिया। अनेक कथाकाव्यो में ही उसकी मौलिकता का आभास मिलने लगा। 'प्रेमपथिक' में प्रेम और 'करुणालय' में करुणा के प्रतिपादन ने कवि-दर्शन पर प्रकाश डाला। 'झरना' मे प्रथम वार प्रसाद का व्यक्तित्व मुखर हुआ। 'चित्राधार' का कवि केवल प्रकृति को ही जिज्ञासा की दृष्टि मे देखता है। चारो ओर बिखरी हुई विभूति उसे आश्चर्य में डाल देती है। 'झरना' मे यही जिज्ञासा मानव तक चली आती है। कवि केवल वर्षा मे नदी कूल को देखकर ही प्रश्न नही करता, वरन मानव के विषय में उसका कुतूहल जागृत हो जाता है। इन मानवीय जिज्ञासाओ ने ही 'झरना' के कवि को छायावाद के समीप लाकर प्रस्तुत किया। 'काननकुसुम' की रचनायें भाषा की दृष्टि से खडी बोली में अवश्य है, किन्तु उसमे कवि अभी भी परम्परामुक्त न हो सका। वह 'रमणी हृदय' के प्रति भी जिज्ञासु हो उठता है, किन्तु स्थूल रूप

से। अन्तस्तल मे झाककर मानवीय भावनाओ को प्राप्त करने का प्रयत्न उनमे नही है। 'झरना' का कवि इस दृष्टि से अधिक गहराई मे उतरता दिखाई देता है। वह इसी चिन्तन के कारण जीवन के कुछ सत्य जान लेता है, जिनका प्रयोग मगलमय हो सकता है। रूप के वाह्य आकर्पण से हृदय की सुपमा तक जाने का जो प्रयत्न 'झरना' मे चल रहा था, उसी का पूर्ण विकास 'आसू' में मिलता है। हृदय का दान, उसकी वेदना आदि के छाया सकेत 'झरना' के गीतो में है। उसका प्रयोग आसू मे आकर अधिक मुखर हो उठा। प्रसाद ने पूर्णतया मानवीय धरातल का ग्रहण कर लिया है। कवि केवल एक जिज्ञासु नही रह जाता, वह जीवन के सत्य को जान लेने के लिये व्यग्र है। आसू के कवि को हम एक ऐसी पगडडी पर भागता हुआ पाते है, जो किसी महान उद्देश्य मे प्रयत्नशील है। गीतिकाव्य को उसने एक व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया। प्रेम की असफलता से प्राप्त व्यक्तिगत निराशा का उदात्तीकरण तथा प्रसार उसे सर्वव्यापी वना देता है। 'आसू' के चित्रो का सृजन अधिक विस्तृत आधार पर हुआ। अन्तर का वाह्य जगत के साथ एक सामजस्य सा स्थापित हो जाता है, जो साधारणीकरण मे सहायक होता है। दर्शक अथवा श्रोता के साथ काव्य का तादात्म्य भावानुभूति की गम्भीरता और उसके व्यापक प्रसार पर निर्भर रहता है। 'आसू' इस दृष्टि से एक सफल कृति है। स्वस्थ जीवन दर्शन 'आसू' को एक दुखान्त काव्य होने से वचा लेता है। उसका कवि एक ऐसे स्वस्थ और विस्तृत रगमच पर खडा है, जहा से उसका मानवतावाद स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

कलापक्ष—

कला की दृष्टि से 'आसू' एक श्रेष्ठ गीतिकाव्य है। स्वानुभूति का लयात्मक प्रकाशन गीतो का स्रष्टा है। गीतो में गीतकार का व्यक्तित्व निहित रहता है। आन्तरिक अनुभूति में रागात्मक सम्वन्ध के कारण एक विचित्र प्रकार की तन्मयता और विह्वलता आ जाती है, जो गीतो को लय, गति, सगीत प्रदान करती है। वाद्ययन्त्र पर गाये जाने वाले गीतो की प्राचीनतम परम्परा से लेकर आधुनिक अतुकान्त गीतो तक सगीत का प्रभाव है। अनुभूति की तन्मयता उसे सगीतत्व प्रदान करती है, जिसे राग रागिनियो मे भी वाधा जा सकता है। काव्य मे व्यक्तित्व की प्रधानता के साथ ही साथ गीतिकाव्य का अधिकाधिक विकास होता गया। पश्चिम का स्वच्छन्दतावादी काव्य गीतो पर ही निर्मित है। किसी विशेष मनोदशा मे प्रकाशित भावना इन गीतो मे निरन्तर गूजती रहती है। वर्डस्वर्थ ने इसी कारण सुन्दर काव्य में प्रवाहमयता को आवश्यक

माना है[२१]। गीतकार वाह्य जगत को आत्मवत देखता है। वह ससार का ग्रहण अपनी भावना के अनुसार करता है। उसकी भावुकता में वौद्धिक चिन्तन तथा दार्शनिक मनन का समावेश गीतो में गाम्भीर्य भर देता है। बाइरन के गीतो का विद्रोह वर्डस्वर्थ मे नही मिलता। छायावाद-युग में महादेवी की रहस्यानुभूति गीतो को अधिक गम्भीर कर देती है। 'आसू गीतिकाव्य के रूप में एक युग और परम्परा का प्रतिनिधि है। उसका भावावेश स्फुट छन्दो में रहकर भी अन्त मे एक प्रभाव की स्थापना में सफल होता है। भावानुभूति की सच्चाई ने 'आसू' को आवेग दिया। सगीतात्मकता उसके लाक्षणिक प्रयोगो और शब्दचयन मे है। केवल चौदह-चौदह के विराम से अठ्ठाइस मात्राओ के निश्चित छन्द के द्वारा 'आसू' का सृजन हुआ। श्रेष्ठ गीतिकाव्य के अवयव एक साथ उसमे साकार हो उठे है। विना किसी स्पष्ट कथानक के ही समन्वित रूप में प्रभावोत्पत्ति 'आसू' की श्रेष्ठता का प्रमाण है। प्रत्येक छन्द भाववेश के द्वारा अन्य से गुम्फित है। भावप्रवणता के ही चारो ओर समस्त छन्द केन्द्रित प्रतीत होते है। भावना का यह साम्य ही एक सी ध्वनि का सचार करता है। गीतिकाव्य की दृष्टि से 'आसू' का उत्तरार्द्ध अधिक सुन्दर है। वियोग वर्णन तथा रूप चित्रण में कवि का हृदय पक्ष ही प्रबल है। उसी के पश्चात वौद्धिकता का सयोग होता है। काव्य मे वौद्धिकता का समावेश जहा एक ओर दर्शन का सृजन करता है, वही गीतो का प्रवाह मन्द पड जाता है। 'आसू' मे चिन्तन का योग वेदना दर्शन को लेकर हुआ। आरम्भिक छन्दो की आत्मा है, वियोग भावना और अन्तिम भाग का प्राण है, उसका दार्शनिक निरूपण। इस प्रकार भावना और चिन्तन दोनो के ही योग से 'आसू' का एक विशिष्ट स्थान है। रागात्मिका वृत्ति तथा वौद्धिक चेतना उसमें एक समन्वित रूप मे प्रस्तुत हुई। जीवन दर्शन का निरूपण भी काव्यात्मक कलेवर में ही उपस्थित हुआ।

'आसू' का प्रतीक विधान ही उसके रूपकत्व का भार वहन करता है। प्रसाद के अधिकाश प्रतीक प्रकृति के विशाल वातावरण से ग्रहण किये गये है। साहित्य मे प्रतीक का इतिहास यद्यपि अत्यन्त प्राचीन है, किन्तु सूफियो ने इसमे विशेष योग दिया। प्रतीक के द्वारा धार्मिक यातना मे उन्हे मुक्ति मिली और भावो के प्रकाशन मे सरलता हुई। इन प्रतीको मे वे अपने ही प्रियतम की छाया देखते है। 'आसू' के प्रतीक उसके भावोद्रेक को जीवित रखते है। जडता मे चेतनता का आरोप, लाक्षणिक व्यजना, अन्योक्ति सभी सूक्ष्मता की

---

२१ Lyrical Ballads—Introduction,—Wordsworth

ओर अग्रसर है। नीलाम्बर मे नक्षत्र विखरे हुये है, उसी प्रकार हृदय मे स्मृतिया। भाव परिवर्तन के अनुसार ही हृदय नीलाम्बर होकर भी सागर मे परिवर्तित हो जाता है। सागर की लहरो का सगीत मन मे विस्मृति की कथाओ के समीप है। सागर के अन्तराल मे सोती हुई वडवाग्नि अनायास ही आन्दोलित होकर ज्वार को जन्म देती है। प्रणय भी इसी प्रकार विरहाग्नि का सृजन करता है। अलि कमल की पखुरियो मे वन्दी हो जाता है। प्रेमी का मन भी अलको मे उलझ गया। चातक और श्यामा का स्वर प्रेमी की 'करुणार्द्र कथा का ही प्रतीक है। झझा, विद्युत और नीरद माला वेदना का सकेत करते है, तभी तो प्रियतम के आने से पतझर भी मधुमास वन गया था। ज्योत्सना और सागर का परिचय प्रिय प्रियतम के प्रथम मिलन की भाति है। यह एक शाश्वत सत्य है कि युगो मे सागर की लहरो मे चन्द्रिका के लिये आन्दोलन होता रहा है। प्रियतम के आगमन का चित्र प्रस्तुत करते हुये कवि ने कहा

घन में सुन्दर विजली सी
विजली में चपल चमक सी
आंखों में काली पुतली
पुतली में श्याम झलक सी।

गोधूलि वेला मे ही ग्रामवालिका अचल की ओट मे दीप जलाती है। आखो मे मिलन की प्रतीक्षा डोलती रहती है। उधर अम्वर मे चन्द्रमा का उदय होता है, इधर सुन्दरी का मुख शशि की छवि से पूर्ण है। अचल का दीप झझा से वुझ नही जाता, किन्तु वह छिप भी तो नही सकता। प्रियतम के हृदय का प्रेम भी तो गुप्त न रह सका। प्रिय के जीवन की धूमिलता को प्रकाश का दान उस सौन्दर्य ने ही दिया था। उस दिन कितना कुतूहल था, मन में 'प्रथम परिचय मे ही प्राणो को छू लेने की आकाक्षा थी। साथ ही वह सौन्दर्य असाधारण था। घन मे सुन्दर विजली चमक जाती है' अपनी प्रभा से भर कर। प्रेयसी की काली आखों में भी काली पुतलिया डोल रही थी। किन्तु वे शून्य मात्र न थी, उनमें कोई सकेत था। "इसी प्रकार सुषमा का वर्णन करते हुये लावण्य के साथ 'राई' का व्यवहार ध्यान देने योग्य है। अति सुन्दर पर 'राई लोन वारना' नजर न लगने का बहुप्रचलित विधान है[२२]।"

सौन्दर्य वर्णन मे कवि ने अप्रस्तुत योजना का प्रयोग किया। सुन्दरता अत्यन्त सूक्ष्म और अशरीरी हो गई। सुन्दरी का मुख अलको से घिर कर काली

---

२२. हिन्दी का सामयिक साहित्य, पृष्ठ १८३

जजीरो मे वधे चन्द्रमा की भाति प्रतीत हो रहा था। नीलम की प्याली में मदिरा कुछ-कुछ ऐसी ही स्थिति थी, नेत्रो में झ्रगती हुई मादकता की। सफी कवियो के साकी में भी यही मादकता रहती है, जिससे आत्मा मदहोश हो जाती है। अत्तार ने कहा है :

हर दो चशमश फितनए उश्शाक बूद।
हर दो अवरूयश बखूबी ताक बूद॥

प्रियतमा के दोनो नेत्र प्रेमियो को व्याकुल कर देते थे। उसके मुख पर बिखरे हुए घन कुन्तल उन्हे और भी पागल करते थे। उसकी दोनो भौहे अत्यन्त सजीव थी।

कोमल कपोलो पर स्मित रेखा की कल्पना फारसी काव्य के अधिक निकट है। भारतीय काव्य में अधरो पर ही हास्य खेला करता है। सुन्दरी के ठुडडी मे चादी के से गढे का वर्णन भी अत्तार ने किया है[२३]। सीपी में मोती के दानो की भाति ही उसकी दशनपक्ति थी। कमल के समीप दो पुरइन रहते है। कमल पात पर जल बिन्दु क्षण भर भी नही ठहरते। प्रियतमा के कमल मुख के ही निकटस्थ कर्णो में भी प्रेमी की आर्त्तवाणी न रुक सकी। इस प्रकार प्रतीको के द्वारा भावाभिव्यजना भी होती रहती है। प्रत्येक प्रतीक सजीव एव सप्राण होता है। नारी के नखशिख वर्णन में नीलम की प्याली, चन्द्रमा, क्षितिज, कमल, मुक्ता आदि जिन प्रतीको का प्रयोग प्रसाद ने किया है, उन सभी मे भाव साम्य है। कामदेव का धनुप यदि प्राणो में मादकता घोल देता है, तो साधारण धनुप से वाण चलते है। सुन्दरी ने भी तो प्राणो की हत्या ही की थी। 'परिरम्भ कुम्भ की मदिरा' तथा 'मुख चन्द्र चादनी' के प्रतीको में कवि ने सम्भोग शृगार का साकेतिक चित्रण किया है। मिलन और विरह, सौन्दर्य तथा निर्दयता सभी का अंकन इन्ही प्रतीको द्वारा ही किया गया। विरोधाभास कही कही और भी चमत्कार ला देता है। हीरे को कोमल शिरीप कैसे कुचल सकता है? किन्तु नही, सौन्दर्य की सुकमारता ने ही तो प्रेमी के हृदय को पराजित किया। स्वय शीतल हिम प्रणयाग्नि वन कर जल उठा, और यही तो है, प्रेम का परिवर्तित रूप।

विरह के दिनो मे प्रकृति के सभी प्रतीक धूमिल और ग्रस्त रूप मे चित्रित है। मलयानिल भी नदी के तट पर एकाकी ही निश्वासें भरता है। मख्र पराग उडना रहता है, उसका भी मधु विलीन हो गया। अम्बर मे एक क्षण के लिये

२३ ईरान के सूफी कवि, पृष्ठ ११६

चपला चमक जाती है, और उसी के साथ सप्तवर्णी इन्द्रधनु भी तो दिखाई देता है। प्रियतम चला गया, आज उसका प्रकाश ही जीवन पथ का पाथेय बन गया। मेघो के जलदान से ही वन की कलिका को नव जीवन मिलता है। स्मृतिया प्रेमी में रस भरती है, करुणा मे भी आनन्द है। वीणा के स्वर उदात्त होकर अधिक झकार करते है। प्राणो ने रूठकर हठ ठान लिया। सागर मन्थन से बडवाग्नि निकली, और प्रेमी ने प्रिय के प्राणो को देखने का प्रयत्न किया, तभी उसे वेदना मिली। इसी प्रकार दीपक और शलभ का प्रतीक है, जो फारसी और उर्दू कवियो मे अधिक प्रमुखता प्राप्त कर चुका है। प्रेमी और प्रिय के सम्पूर्ण क्रिया व्यापारो का वर्णन इन दो प्रतीको के द्वारा फारसी के कवियो ने किया। इमी का विकास उर्दू मे हुआ। शलभ दीप के रूप पर जल मरता है, वह अपनी हस्ती फना कर देता है। परवाना और शमा उर्दू कवियो के अत्यन्त प्रिय प्रतीक रहे है। यदि माशूक के रूप की ज्वाला, उसकी सम्पूर्ण निर्दयता का प्रतिनिधि है, शमा, तो आशिक की सच्चाई, त्याग की प्रतिमूर्ति है परवाना। दोनो के मिलन मे दोनो का जलना दिखाया जाता है[२४]। किसी उर्दू कवि का कथन है :

ऐ किसकी जान के पीछे पड़े हो परवानों
ये शमा रोज जलाई बुझाई जाती है।

प्रसाद ने इस प्रसिद्ध प्रतीक में त्याग को प्रमुखता दी है। जलने की दीन दशा मे भी पतग फूल की भाति खिलता है। प्रेम मे प्राण दे देने मे भी सुख है। सच्चा प्रेम कभी प्रतिदान की आकाक्षा नही करता। प्रेम के विभिन्न व्यापारो के अतिरिक्त तात्विक निरूपण मे भी प्रतीको का प्रयोग 'आसू' मे किया गया। मन मे सुख-दुख लिपट कर सो रहे थे, मानो मालती कुज में छाया और अन्धकार। वेदना को एक दार्शनिक रूप देने में भी कवि ने प्रकृति के प्रतीको का उपयोग किया है। प्रकृति के चिरन्तन प्रतीको ने काव्य मे गाम्भीर्य भर दिया। सौन्दर्य का चापल्य समाप्त होने पर वह 'शिशु की उर्मिल निर्मलता' से समन्वित हो जाता है। इसी प्रकार सीपी में रत्नाकर का समावेश एक असम्भव कल्पना है, किन्तु आखो मे करुणा की दो बूदे ही समस्त धरणी को स्नेहसिक्त करने की शक्ति रखती है। कबीर की उल्टबासियो के पीछे भी इमी भाव निरूपण का सत्य है। अन्तिम

---

२४. "दोनों ओर प्रेम पलता है,
सखि पतंग भी जलता है, औ दीपक भी जलता है. ."
...मैथिलीशरण गुप्त।

पक्तियो में 'आसू' का कवि इतना अधिक भाव विह्वल हो उठता है कि उसव प्रतीक मुखरित हो उठते हैं। कवि प्रश्न करता है .

सूखी सरिता की शय्या
वसुधा की करुण कहानी
कूलो में लीन न देखी
क्या तुमने मेरी रानी !

प्रसाद के प्रतीक सम्पूर्ण चित्र को लेकर प्रस्तुत होते है। उनमें रूप, गुण स्थिति सभी का समावेश हो जाता है। प्रतीक स्वयम् अभिव्यक्ति कर देत है। घटायें प्रलय, वेदना का सकेत करती हुई चली आती है। प्रतीको में मनो भावो का प्रवेश प्रसाद की प्रमुख विशेषता है। उनके प्रतीक केवल वाह्य स्थूल वर्णन के ही लिये नही है, वे अन्तरतम की मनोदशा पर प्रकाश डालत है। प्रतीको के द्वारा कवि ने भावो के व्यापक निरूपण की भी रक्षा की। देश काल, परिस्थिति के अनुकूल प्रतीको मे विभिन्नता अवश्य रहती है, किन्तु उनकी भावधारा मे एक साम्य होता है। अग्रेजी की नाइटिन्गेल, फारस के बुलबुल तथा भारत की कोकिला मिलन और विदा के अनुसार एक ही भावना की अभिव्यक्ति करते है। प्रसाद का प्रतीक विधान अत्यन्त सुन्दर है। यह प्रतीक विधान यद्यपि छायावाद की विशेषता रही है, किन्तु इसमे उन्हे जितनी सफलता प्राप्त हुई, उतनी अन्य कवियो को नही। चित्र ही उनके काव्य की आत्मा है। पन्त की प्रकृति विपयक कविताओ में प्रेम का समावेश ही प्रतीको को स्थान दे सका। आकाश में विद्युत चमककर किसी प्रिय का आभास उन्हें दे जाती है। निराला के प्रतीको में दार्शनिक अभिव्यजना है। 'तुम' और 'मै' का सम्वन्ध-विश्लेपण उन्होने जिन प्रतीको के द्वारा किया, उनमें यही दार्शनिक नियोजना है। महादेवी के प्रतीक उनकी वेदना की अभिव्यक्ति करते है। उनके वर्णो मे निराला की-सी भास्वरता नही किन्तु अपनी धूमिलता मे ही वे मजीव है। पिक, चातक, रजनी, दीप, कमल, कुसुम सभी के पीछे वेदना का मकेत है। 'यामा' के चार प्रहर साध्यगीत, नीरजा, नीहार रश्मि भी जीवन के प्रतीक वन गये है। उनके काव्य मे प्रतीको का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। रहस्य वादी कवि की भाति उन्होने इन्ही मे मकेतो का कार्य लिया। दीपक साधना का प्रतीक है, तभी तो कवियित्री प्रार्थना करती है—

"दीप मेरे जल अकम्पित, घुल अचचल"

—दीपशिखा

दार्शनिक नियोजना, आध्यात्मिक सकेत तथा रहस्यवादी प्रवृत्तियो के कारण देवीजो का प्रतीक विधान कही-कही अस्पप्ट हो जाता है। प्रसाद के प्रतीक सजीव चित्र, सहज भावना के वाहक है और इस दृष्टि से वे सर्वोपरि है। आगे चलकर बच्चन ने भी मधु के प्रतीको का सहारा लिया, किन्तु उसमे अपेक्षाकृत मौलिकता कम है। प्रसाद के प्रतीको मे स्वच्छन्द कवियो की सी भावभगिमा है। कालिदास की उपमा सस्कृत काव्य में सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है, प्रसाद के प्रतीको का भी हिन्दी में यही स्थान है। शब्दशक्तियो में लक्षणा और व्यजना के द्वारा जो कार्य प्रसाद के पूर्व हो चुका था, उसे उन्होंने प्रतीको से किया। व्यक्तिगत अनुभूति के कारण उनके प्रतीक भी स्वनिर्मित है[२५]।

विप्रलम्भ काव्य-परम्परा—

'आसू' विप्रलम्भ शृगार का काव्य है। उसमें वेदना की प्रधानता है। यह वेदनानुभूति ही उसकी आत्मा है। वेदना आनन्द का ही दूसरा रूप है। इस आन्तरिक भाव की अनुभूति मन प्राणो से होती है। काव्य में वेदना का आरम्भ आदिकवि वाल्मीकि से होता है। यूनान के दुखान्त नाटको में भी इसी की प्रधानता है। वेदना अपनी कोमल अनुभूतियो के कारण मर्मस्थल को अधिक सरलता से स्पर्श कर सकती है। होमर मे सौदर्य और युद्ध का सघर्ष भी इसी दु खवाद से परिचालित है। सस्कृत मे भवभूति ने कहा .

> एको रसः करुण एव निमित्त भेदाद्
> भिन्नः पृथक्पृथगिव श्रयते विवर्त्तान्।
> आवर्त्त बुद्बुदतरंगभयान् विकारान्
> अम्भो यथा सलिलमेवहि तत्समस्तम्॥
>
> उत्तररामचरित

करुण रस ही एक रस है, जो विभिन्न भेद से भिन्न हो जाता है। वह समुदायो से विलग होकर भी आश्रय प्राप्त करता है। वह सर्वत्र जल की भाति है जो 'भवर, बुद्बुद, लहर सभी मे विद्यमान है। गेटे के 'वर्थ र' का प्रभाव विश्व-व्यापी था। स्वयम् कालिदास का मेघदूत विरही यक्ष का आन्तरिक प्रकाशन है। यक्ष के माध्यम से बोलती हुई सम्भंवत कवि की व्यक्तिगत अनुभूति उसकी सर्वोत्तमता का कारण है। अग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियो ने भी वेदना को

---

२५. "The poet who writes of his private exaltations has to find his own symbols."
—Heritage of Symbolism—Page 2.

ही प्रधानता दी। सम्पूर्ण गीतिकाव्य के भीतर ही भीतर एक धूमिल रेखा-सी दिखाई देती है। शेली ने पीड़ा मे माधुर्य खोजा। इसके पूर्व ही शेक्सपियर के दुखान्त नाटक मानव के अन्तरतम का उद्‌घाटन कर उसे अमरत्व दे चुके थे। सौन्दर्य का अन्यतम उपासक कीट्स भी प्रेम के पीछे वेदना की छाया पाता है। 'ला बेल डाम सान्स मर्सी' मे वेदना का स्वर है। अँग्रेजी मे शोकगीत (एलिजी) की रचना भी की गई। रोमान्टिक काव्य मे विरह के अनेक गीतो का निर्माण हुआ। फारसी मे विप्रलम्भ शृगार की प्रमुखता रही। वेदना के इस लौकिक पक्ष के अतिरिक्त रहस्यवादियो ने इसे अन्य रूप मे ग्रहण किया। इस पीड़ा के सहारे वे अलौकिक तक जाना चाहते थे। इस प्रकार साहित्य मे वेदना एक प्रमुख विचारधारा बन कर युगो से चली आ रही है।

हिन्दी मे कबीर की वेदना रहस्यवादी भावो से ओत-प्रोत है। उनकी 'विचित्र वेदना' अपार्थिव है। वैष्णव कवियो के माधुर्य में विरह के भी क्षण दिखाई देते है। जायसी मे पुन प्रेम की पीर जाग उठी। रत्नसेन और पद्मिनी के सकेतात्मक रूपक के द्वारा उन्होने जिस सूफी रहस्यवाद का प्रतिपादन किया, उसमे भारतीय दर्शन का भी योग था। रीतिकाल के विप्रलम्भ शृगार की कृत्रिमता की अपेक्षा भारत मे प्रचलित सूफी वेदना ने हिन्दी की वर्तमान काव्य परम्परा को अधिक प्रभावित किया। बिहारी की डोलती हुई नायिका की अपेक्षा पद्मावन का वियोग वर्णन छायावादी कवियो के अधिक समीप है। छायावाद युग मे वेदना को एक वार पुन प्रधानता मिली। द्विवेदी युग मे जिस 'दीनता' को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया गया, उसमें बौद्धिकता अधिक है। पन्त के स्वर मे 'आह से उपजे हुये गान' का सकेत मिला। उनकी धूलि सी ढेरी मे छिपे हुये मधुमय गानो ने हिन्दी को नवीन प्रेरणा दी। उन्होने 'आसू से' कविता में लिखा .

मेरा पावस ऋतु सा जीवन
मानस सा उमड़ा अपार मन
गहरे धुंधले धुले सांवले
मेघों से मेरे भरे नयन !

प्रकृति से प्रेरणा ग्रहण करने वाले कोमल भावनाओ के इस कवि ने वेदना को काव्य मे स्थान देकर कल्पना का नवीन द्वार खोल दिया। छाया, उच्छ्वास आदि कविताये इसी भावना मे प्रभावित है। निराला का पौरुषमय काव्य भी 'सरोज स्मृति' आदि कविताओ मे अश्रुमय हो गया। महादेवी ने वेदना को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। उनका सम्पूर्ण भावना-साम्राज्य ही पीड़ा का है।

चे 'नीर भरी दुख की बदली' हैं। मीरा के 'मेरो दरद न जाने कोय' मे जिस लोकगीत की परम्परा का हृदयवाद निहित है वह देवी में एक दार्शनिक चिन्तन का स्थान ग्रहण करता है। रहस्यवादी प्रवृत्तियो के कारण वेदना अलौकिक रूप धारण कर लेती है। अँग्रेजी कवियित्री रोजेटी की भांति उनकी करुणा इस धरातल से दूर किसी निर्माण मे प्रयत्नशील है। रोजेटी ने एक स्थान पर लिखा है—'मेरे प्रियतम, मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरे लिये कोई शोक गीत न गाना'[२६]। आसुओ के लिये महादेवी का कथन है :

जन्म से ये साथ हैं, मैंने इन्हीं का प्यार जाना
स्वजन ही समझा, दृगों के अश्रु को पानी न माना।

सूर की गोपिकाओ का विरह निवेदन सगुण भक्ति के मडन के लिये था। छायावादी कवि ने मानव के अन्तरतम का प्रकाशन मात्र किया। प्रसाद का दुखवाद मानवीय वृत्तियो की अभिव्यक्ति है। आनन्दवादी कवि होते हुये भी उन्होंने वेदना का चित्रण स्वाभाविक रूप मे किया है। आरम्भिक रचनाओ मे वेदना का अधिक आभास नही मिलता। 'झरना' का कवि अपनी व्यक्तिगत स्वानुभूति के कारण वेदन स्वर मे गाने लगता है। 'आसू' में प्रसाद का अन्तःकरण ही बोल उठता है। यौवन के प्रथम प्रहर में आने वाली यह शोक-भावना कवि के सम्पूर्ण साहित्य मे छाया बनकर डोलती रहती है। एक टीस, वेदना सर्वत्र निहित है। बौद्ध दर्शन की करुणा का योग भी उसके व्यक्तिगत प्रभुत्व को पूर्णतया समाप्त नही कर पाता। 'आसू' की वेदना अत्यन्त प्रबल है, किन्तु उसका पर्यवसान वेदना मे ही नही हो जाता। निराशा आशा के द्वार तक चली जाती है, अश्रु, मुसकरा उठते हैं। प्रसाद की वेदना इस जागृत स्वरूप के कारण ही महान जीवन दर्शन की नियोजना में सफल हो सकी। उसका उदात्तीकरण ही उसे गौरवान्वित करता है। उसमे 'मेघदूत' के यक्ष का सत्य है। यक्ष मेघ से तादात्म्य स्थापित करके कहता है :

संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोदप्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोध विश्लेषितस्य।

---

२६. "When I am dead, my dearest
Sing no sad songs for me."
—Rossetti, C. G.

गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणा
वाह्योद्यानस्तिहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥

मेघ ! केवल तुम्ही सन्तप्त प्राणियो को शीतलता का दान देते हो। इस कारण कुबेर के रोष से अपनी प्रिया से विलग हो जाने वाला मेरा विरही मन तुम्हारी ही शरण आया। तुम्ही मेरा सदेश ले जाओ। तुम्हे सज्जित होकर यक्षो की अलका में जाना होगा, जहा के प्रासादो में, केवल उद्यान में निर्मित शिव की मूर्ति पर सुशोभित चन्द्रिका से ही सदा प्रकाश रहता है।

इसी से मिलती जुलती घनानन्द की पक्तिया है .

घनआनन्द जीवन दायक हो, कछू मोरियो पीर हिये परसो
कबहूं वा विसासी सुजान के आगन मो असुवान हू लै बरसो।

करुणा और वेदना का अधिक से अधिक प्रसार उसे जीवन के एक शाश्वत सत्य के रूप में ग्रहण करता है। 'आसू' की व्यक्तिगत वेदना अन्त में एक आदर्श का निर्माण भी कर लेती है। प्रसाद के साहित्य मे प्राप्त वेदना की छाया उसे अस्वस्थ नही बना देती। अपनी आन्तरिक पीड़ा को लेकर भी स्कन्दगुप्त अपने उद्देश्य की स्थापना में सफल होता है। वेदना और करुणा के कोमल मनोभाव चरित्र चित्रण के आन्तरिक पक्ष में अधिक सहायता करते हैं। नाटको का आन्तरिक सघर्ष प्रसाद की इस करुणा का ही प्रतीक है। कवि तो चाणक्य के पाषाण हृदय मे भी करुणा की भावना भर देता है। पात्रो का यह आन्तरिक द्वन्द, घात-प्रतिघात वेदना से परिपूर्ण है। वेदना की जागृत, स्वस्थ कल्पना ही प्रसाद को निराशावादी नही हो जाने देती। करुणा के चरण आनन्द तक चले जाते हैं किन्तु साथ ही आनन्द अपनी कोमलता में किसी छाया से परिचालित रहता है। विश्व काव्य मे वेदना का यह पर्यवसान ही महान कवियो का सृजन करता है। 'कालिदास' के मेघदूत की वेदना एक व्यापक धरातल पर आकर 'रघुवश' और 'कुमारसम्भव' की रचना मे सलग्न होती है। शिव पार्वती के रूपको से चित्रित वेदना एक विशाल रगमच पर आधारित है। 'मेघदूत' का यक्ष अपनी भाव प्रवणता में विषाद का अधिक प्रसार नही कर पाता। शिव पार्वती के सयोग और वियोग मे मार्मिकता की अपेक्षा विस्तार अधिक है। गेटे के 'वर्थर' की वेदना 'फाउस्ट' की असीम करुणा मे परिणत हो जाती है। वह कहता है, 'आसू के साथ आसू भागते चले जा रहे हैं। मेरा अन्तरतम स्वयम् पर अधिकार खो चुका है। वह कोमल भावनाओ का अनुगामी है। मै दूर से ही निकट की वस्तुओ को देखता हूं। पर आज अन्तर्ध्यान हो जानेवाली समस्त वस्तुयें मेरे

लिये सत्य हो गई है[२७]। बौद्धिक विकास तथा जीवनानुभव से प्राप्त यह दर्शन वेदना की चिरन्तन छाया नही समाप्त कर पाता वरन् उसका उदात्तीकरण कर लेता है। वगला में रवीन्द्र के गीतो का सम्पूर्ण आनन्द भी करुणा की अवहेलना नही कर सका। रवीन्द्र का सगीत भी जिज्ञासु- वनकर विपाद की रेखाओ का अकन करता है :

पूर्णिमा निशीथे जवे दशदिके परिपूर्ण हासि
दूरस्मृति को था होते वाजाय व्याकुलकरा वासि
अरे अश्रुराशि।

पूर्णिमा की नीरव रजनी मे जब सर्वत्र उज्ज्वल, तरल हास विखर जाता है, सुदूर की स्मृतियाँ वशी मे अत्यन्त व्याकुल राग भर देती है, और वस फिर अश्रु झरते ही चले जाते है।

इस प्रकार रहस्यवादी जिस वेदना का प्रसार आध्यात्मिक उत्कर्प के लिये करता है, उसी के द्वारा मानवतावादी कवि जीवन के शाश्वत मूल्यो का उद्घाटन और शृगार करते है। 'प्रसाद' की करुणा आँसू में ही व्यापकत्व प्राप्त कर लेती है। 'कामायनी' के विशाल रगमच पर वह अधिक उदात्त और विस्तृत हो उठी है। कवि का व्यक्तिवाद पीछे छूट गया और नारी में ही 'करुणा ममता' को समन्वित कर दिया गया। विपाद रसानुभूति में वावा नही वन जाता। 'आसू' मे करुण रस की प्रधानता है पर उसका अन्त करुणा के विस्तार से होता है। शृगार मे करुणा का समन्वय काव्य को अधिक सवेदनशील वना देता है। प्रसाद का व्यक्तिगत करुणादर्शन स्वय स्वस्थ और प्रगतिशील था, वौद्ध दर्शन ने उसमें और भी अधिक योग दिया।

नियति--

वेदना को प्रसाद नियति से सम्वन्धित कर देते है। नियति एक अदृश्य शक्ति है, जो मानव की गति-विधि का सचालन करती है। साधारण भाग्यवाद

---

२७. "Tear follows tear,
My steadfast heart obeying
The tender impulse
Looses its control
What I possess
As from afar I see,
Those I have lost
become realities to me.
—Faust.

अथवा प्रारव्धता किसी अलौकिक सत्ता का अस्तित्व स्वीकार करते है। 'अ
का नियतिवाद वैयक्तिक अनुभूति से अनुप्राणित है। कवि अभिशाप को नि
का वरदान मानकर स्वीकार कर लेता है। काल के काले पट पर अस्फुट रे
लिखी रह जाती है। कवि सम्पूर्ण ससार में नियति नटी की कन्दुक क्रीड
देखता है, किन्तु अपनी व्यक्तिगत पीड़ा से समन्वित, विश्व का सम्पूर्ण अ
उसे व्यथित प्रतीत होता है। उसके कण-कण में अतृप्ति है। कवि ने अपनी भ
नाओ को ससार में आरोपित करने का जो प्रयत्न किया, उसी कारण नि
दुख का वाहक वन गई। वेदना दर्शन का प्रतिपादन करते हुए उन्होने कहा है

> **सकेत नियति का पाकर**
> **तम से जीवन उलझाये**
> **जब सोती गहन गुफा में**
> **चचल लट को छिटकाये।**

प्रेम की पराजय तथा पीड़ा को कवि नियति का दान मान लेता है। ट
सकेत मात्र से ही जीवन तम से उलझ जाता है। जीवन के आरम्भ मे
'प्रसाद' ने अनेक उत्थान-पतन देखे थे। कवि की सम्पूर्ण भावुकता ने प्रश्न वि
इसका कारण कौन है? इस कुतूहल का उत्तर ही नियति वन जाती है।
जीवन पर सदा अपनी छाया डालती रहती है। उसकी सत्ता का प्रसार व्य
है। उसी के सकेत से विश्व के पतझर मे वेदना होलिका की भाति जलती र
है। घनीभूत पीड़ा इसी नियति का दान है और अन्त में दुर्दिन में, आसू बन
वह उसी के आदेश से वरस जाती है। नियति का यह स्वरूप कवि की व्यक्ति
अनुभूति के कारण किंचित् एकागी अवश्य हो गया है। वह अभिशापो की ज
मात्र वनकर रह जाती है। विरह काव्य में उसके उदात्त पक्ष का चित्रण करने
अधिक अवसर मिलना भी सम्भव नही। विषाद का दान तो नियति करती
किन्तु जव कवि के हृदय में आशा की रेखाये खिच जाती है, वह सहयोग नह
पाती। वेदना का उदात्तीकरण व्यक्तित्व के प्रसार का परिणाम है। मनोवै
निक दृष्टि से 'आँसू' में प्रसाद की नियति कल्पना आत्मानुभूति से प्रभावित
यौवन के प्रथम चरण में ही वैभव का अन्त, एक साथ अनेक मृत्यु ने कवि
नियति की विडम्बना पर विश्वास करने के लिये विवश कर दिया था। श
का प्रलय नृत्य ही कवि जान सका। नियति की नटी भी इसी अभिशाप
लेकर नाच उठती है। धीरे-धीरे कवि की इस नियति भावना मे विकास हु
नाटको में नियति सुख दुख का सूत्रधार वन गई। कवि के बौद्धि क चिन्तन
दार्शनिक मनन ने उसमें परिवर्तन किया। शिव के लास्य में प्रलय के साथ

निर्माण भी तो है। 'कामायनी' मे नियति एक ओर देवविध्वस का कारण है, तो साथ ही आनन्दवाद तक भी वही ले जाती है। 'आंसू' मे नियति का विकास व्यक्तिगत अनुभूति के कारण दब गया, क्रमश उसमें परिष्कार होता चला गया।

नारी और सौन्दर्य--

'आंसू' का आलम्बन नारी रूप में चित्रित है। स्थूलतया रीतिकालीन नायिका परम्परा का आभास उसमें मिलेगा, किन्तु नारी अपने वाह्य आकर्षण के साथ ही गुणो को भी लेकर प्रस्तुत हुई। 'आंसू' का नखशिख वर्णन अपने प्रतीको में शृगार का परिष्कृत चित्र है। प्रसाद की आरम्भिक रचनाओ में जो परम्परा की छाया मिलती है, वह धीरे-धीरे व्यक्तिगत अनुभूति और चिन्तन के कारण दूर होती गई। 'कानन-कुसुम' मे 'रमणी हृदय के अथाह रूप' को देखने का प्रयत्न कवि ने किया। किसी को ज्ञान नही कि उसके अन्तरतम में क्या बहता रहता है? हिममडित शैलमालाओ के भीतर भी ज्वालामुखी जलते रहते है। सिन्धु की भाँति असीम नारी-हृदय के प्रति कवि की जिज्ञासा उदित हो जाती है[२८]। इसका विकास 'झरना' मे स्वच्छन्द प्रवृत्तियो के द्वारा हुआ। कवि नारी के विषय में एक जिज्ञासु नही रह जाता, वह उसके निकट चला जाता है। 'चित्राधार' की कविताओ का स्थूल नारी वर्णन तथा 'कानन-कुसुम' का नारी कुतूहल छूट जाता है। कवि आरम्भ में ही 'झरना' को समर्पित करते हुए प्रकट कर देता है कि वह अपने आलम्बन को निकट से देख सका। नारी की अगाध गम्भीरता अब भी बनी हुई है किन्तु कवि उसे समर्पण भी कर देता है। वह अब एक दृष्टा मात्र नही रह जाता। आलम्बन से प्राप्त निराशा की भावनाओ का आभास भी मिल जाता है:

किसी हृदय का यह विषाद है
छेडो मत यह सुख का कण है
उत्तेजित कर मत दौडाओ
करुणा का विश्रान्त चरण है॥

झरना, पृष्ठ १७

अनुनय, प्यास, बिखरा हुआ प्रेम आदि कविताओ मे विषाद की रेखाये स्पष्ट हो जाती है। दार्शनिक चिन्तन के कारण प्रकृति में मानवीय भावनाओ का आरोप दिखाई देता है, जो नारी के व्यक्तित्व को पूर्ण विकसित नही करता।

---

१. कानन-कुसुम, पृष्ठ ७०

'आँसू' के आलम्बन रूप में नारी अपने शुद्ध स्वरूप में प्रस्फुटित हुई। नारी और पुरुष के सम्बन्ध की व्याख्या लौकिक धरातल पर होने के कारण प्रकृति और पुरुष के प्रतीको से उत्पन्न अस्पष्टता नही आने पाती। नारी और पुरुष प्रेमिका, प्रेमी रूप मे स्थान पाते है। कवि ने अपने जीवन में जो अनुभव प्राप्त किये थे, उसी से उसने 'आँसू' की नारी का निर्माण किया। उसमें रूप, ताप, सभी कुछ है, जिन पर प्रेमी आकृष्ट हुआ। अपनी सम्पूर्ण मादकता को लेकर भी यह नारी केवल वासना और ऐन्द्रियता का प्रतीक बनकर नही रह जाती। अपने शारीरिक आकर्षण में भी वह गुणो से पूरित है। जिस दिन उसने प्रेमी के जीवन में प्रवेश किया, पतझर में भी मधुमास छा गया था। इसके पूर्व पतझर था, झाड़ खड़े थे किन्तु वह सौन्दर्यमयी किसलय तथा कुसुम बिछाती हुई आई थी। उसके शरीर में 'पावनता' का आरोप करते हुए कवि ने उसमें मधुर आलोक की व्यजना की। स्वप्न भग हो जाने के पश्चात् प्रेमी उसकी 'जड़ता' पर अवश्य विचार करता है, किन्तु प्रथम परिचय के समय वह केवल शारीरिक सौन्दर्य पर ही तो मुग्ध नही हुआ था। स्थूल सौन्दर्य जीवन में वह क्रान्ति नही ला सकता जो 'आँसू' की नारी प्रस्तुत कर सकी। उसकी रूपराशि में गुण निहित थे। प्रसाद की यह कल्पना योरप में युगो तक प्रचलित रहनेवाले 'हेलेन की सुन्दरता' से आगे वढ जाती है। भारत में पद्मिनी की रूप कल्पना भी इसी भावना के निकट है। 'प्रसाद' ने नारी को प्रेरणा के रूप में ग्रहण किया। 'आँसू' की प्रेरणा केवल नारी का सौन्दर्य नही, उससे प्राप्त प्रेम और निराशा है। रवीन्द्र ने नारी के अश्रुधार मे ससार के हृदय को वशीभूत कर लेने की शक्ति पाई, जैसे सागर का गाम्भीर्य पृथ्वी को घेरे रहता है[२९]।

'आँसू' में सौन्दर्य वर्णन के लिये जिन प्रतीकों का प्रयोग किया गया, उसमें भी नारी का गुण भासित होता है। उसमें यदि जीवन को सरस कर देने की शक्ति थी, तो आज विदा के क्षणो में उसका ज्ञान हुआ। उस छवि से सुकवि को प्रतिभा का दान मिला। नारी की जिस शक्ति का आभास 'आँसू' में मिल जाता है, उसका पूर्ण विकास गीतिकाव्य के कारण सम्भव न था। छोटे-छोटे

---

२९. "Woman, thou hast encircled the world's heart with the depth of thy tears as the sea has the earth"

—Tagore by R I Paul—Heart of Tagore, page 13

भाव खंडो मे केवल उसका सकेत मिलकर रह जाता है। नारी के अभाव मे जीवन का मरुभूमि हो जाना ही सम्पूर्ण वेदना का परिचायक है। एक ओर यदि नीलम की प्यालियो मे भरी मदिरा ने प्रेमी के प्राणो मे मादकता घोल दी, तो साथ ही उसके 'अन्तर के तार' भी खिच गये थे। नारी के गुण और रस से ही प्रेमी का हृदय भीग जाता है, रग गया है, जो अनेक प्रयत्न करने पर भी छुड़ाये नही छुटता। केवल सौन्दर्य पर रीझ उठनेवाला प्राणी पथ से प्रत्या-वर्तित भी हो सकता है, किन्तु 'आंसू' के आश्रय ने तो हृदय का व्यापार किया था, कैसे लौटे। नारी का रूप वर्णन करते समय भी उसके प्रत्येक अग मे एक गुण भर देने का प्रयत्न किया गया है। मुख चन्द्र की चाँदनी से अपना मुख धोकर प्रात काल जागृत होनेवाला प्रणयी इसी कारण स्नेह के अभाव में क्रन्दन करता है। प्रसाद ने नारी में स्नेह और सौहार्द की भावना भर दी, जिसने उसे केवल शरीरी सौन्दर्य-प्रतिमा होने से वचा लिया। सौन्दर्य और नारी के प्रति इस प्राजल दृष्टिकोण के कारण ही 'आंसू' मे व्यापकत्व का समावेश हो सका। उसकी नारी एक ऐसा आलम्बन है, जो केवल उद्दीपन वनकर नही रह जाती। नारी-भावना का उदात्तीकरण ही उसकी विशेपता है। छायावाद ने नारी को जिस चेतना के रूप में ग्रहण किया, उसका चरमोत्कर्प प्रसाद के साहित्य में मिलता है। व्यक्तिगत अनुभूति के कारण 'आंसू' की नारी वहुमुखी शक्ति से समन्वित न हो सकी। उसमें 'शक्तिरूपा' का आभास अधिक नही मिलता, किन्तु 'कामायनी' मे जाकर वह अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। अपने रूप में नारी किंचित निर्मम है, किन्तु यह केवल उसके हृदय का परि-वर्तन है, अन्यथा उसका आगमन वरदान है .

जिसमें इतराई फिरती
नारी निसर्ग सुन्दरता
छलकी पड़ती हो जिसमें
शिशु की उर्मिल निर्मलता

नारी की कोमल भावनायें ही उसका शृंगार है, और प्रेमी उन्ही से छला गया। विप्रलम्भ काव्य के कारण नारी को निष्ठुर प्रतिमा के रूप में चित्रित करना अनिवार्य है। 'आंसू' की नारी मे जिन निर्दय भावो को आरोपित किया गया, उसमें फारसी प्रेमिकाओ अथवा माशूको की ही 'वेवफाई' मात्र नही मिलती। नारी के चित्रण में कवि ने इतनी सूक्ष्म दृष्टि से कार्य किया है कि आदि से अन्त तक परिवर्तन के होते हुए भी, गाम्भीर्य जीवित रहता है। केवल पापाणहृदया होने के कारण प्रेमी उसकी नीचता का प्रदर्शन नही करने

लगता । 'प्रेमपथिक' की भाँति केवल शरीर पर रीझने के ही कारण उसे विरह का दुख नही हुआ, वह तो नियति का दान है। अपनी भूल को समझते ही वह भावना के प्रसार का प्रयत्न करता है। 'आँसू' की नारी अपने प्रेमिका रूप में मासल है। इस नारी भावना के क्रमिक विकास ने प्रसाद के साहित्य को गति प्रदान की। नारी और पुरुष की समस्या को कवि ने केवल व्यावहारिक ही नही, दार्शनिक रूप में भी देखने का प्रयत्न किया। प्रेम की अन्य प्रतिमायें सालवती, इरावती मधूलिका, देवसेना अपने उत्थान-पतन में भी इसी कारण पाठक की सम्पूर्ण सवेदना पा जाती है। नारी के जिस महान स्वरूप को प्रसाद ने साहित्य मे स्थान दिया, उसका सर्वप्रथम बार एक उन्मुक्त चित्र 'आँसू' में दिखाई देता है। 'आँसू' की नारी आलम्वन है, कवि की प्रेरणा, और उसके काव्य का प्राण भी।

प्रकृति---

'आँसू' मे प्रकृति वर्णन स्वतन्त्र रूप में नही किया गया। प्रकृति के विभिन्न अग काव्य मे प्रतीक वनकर आये है। प्रकृति के विविध व्यापारो से ही चित्र प्रस्तुत हो जाता है। आकाश हृदय वन जाता है, तो झझा वेदना। 'झरना' में प्रकृति के द्वारा भावनाओ के प्रकाशन का जो द्वार प्रसादजी ने खोल दिया, उसी का अधिक प्राजल स्वरूप 'आँसू' मे चित्रित हुआ। प्रकृति ही सम्पूर्ण भावनाओ का वाहक वन जाती है। आकाश में घिर जाने वाली मेघमालाये स्मृति वनकर आती है। धरणी के श्यामल अचल पर विखरी हुई अश्रुमाल ही वेदना का प्रतीक वन जाती है। मलयानिल की निश्वासो में वियोग है। भावपरिवर्तन के साथ ही प्रकृति के वर्णन मे भी नवीन प्रयोग आरम्भ हो जाता है। मिलन वेला में प्राणो को मादक कर देनेवाले रूप को पाने के लिये, अव तो वौना सागर मचलता दिखाई देता है। प्रतीक विधान के अतर्गत ही 'आँसू' का समस्त प्रकृति वर्णन स्थान पा जाता है। प्रकृति मानव से विभिन्न नही रह जाती। प्रत्येक मानववादी कवि के लिये इस सम्वन्व की स्थापना आवश्यक है। 'प्रसाद' ने इस सामजस्य के द्वारा मानवीय भावो को शाश्वत चेतना प्रदान की। तादात्म्य भावना के कारण ही प्रेमी कह उठता है

चातक की चकित पुकारें
श्यामा ध्वनि सरल रसीली
मेरी करुणार्द्र कथा की
टुकडी आँसू से गीली।

इसी प्रकार प्रकृति अप्रस्तुत को प्रस्तुत करने मे भी सहयोग देती है। व्यजना के द्वारा ही भावो का प्रतिपादन हो जाता है। प्रतीको के अतिरिक्त प्रकृति उपमान बनकर भी आती है। अपने इस रूप मे वह गुण, धर्म के निर्वाह मे सफल हुई है। प्रकृति के व्यापक रगमच की योजना 'आंसू' के सीमित वातावरण मे सम्भव न हो सकी, किन्तु विप्रलम्भ शृगार के निरूपण मे उसने योग दिया। आकृति और गुण दोनो ही प्रकार के साम्य लेकर प्रकृति का प्रयोग किया गया। प्रेमिका अथवा आलम्बन मे यदि शशि का सौन्दर्य था, तो साथ ही उसकी शीतल किरणे भी। सागर मे उठनेवाली हिलोरे करुणा कटाक्ष की भांति लौट जाती है। सौरभ भी विरह के दिनो मे सूखा हो जाता है। इस प्रकार 'आंसू' का समस्त प्रकृति वर्णन मानवीय भावनाओ के वाहन रूप मे हुआ, और इस दृष्टि से उसे सफलता प्राप्त हुई। पन्त के प्रकृति-वर्णन मे मानव प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध हो उठता है। वह 'चमत्कृत चित्र' बनकर कवि के मानस मे प्रवेश करती है। अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ ने भी प्रकृति मे इसी तन्मयता को प्राप्त किया था। 'आंसू' की प्रकृति महादेवी की भाति ही प्रतीक और उपमा बनकर आती है। दीप, शलभ, रजनी, नीहारिका आदि प्रकृति के अनेक उपादान देवी की करुणा और साधना के वाहक है। 'आसू' के प्रकृति वर्णन की ध्वनि और व्यजना सजीव और सुन्दर है। प्रसाद प्रकृति के कवि नही है, उन्होने उसका उपयोग मानव के लिये किया।

विशेषताएं—

भाव, भाषा, शैली की दृष्टि से 'आंसू' आधुनिक कविता की उस विचार-धारा का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमे प्रेम की स्वाभाविक प्रकृति, और प्रक्रिया को प्रधानता दी गई। यौवन काल की इस रचना मे कवि का व्यक्तिवाद आगामी उत्कर्ष का आभास दे देता है। जिस सीमित वातावरण मे 'आंसू' ने कला की सर्वोत्कृष्टता को प्रस्तुत किया, उसी का पूर्ण बहुमुखी विकास 'कामायनी' में जाकर हुआ। प्रेम के स्वाभाविक स्वच्छ रूप मे 'आंसू' की भावनाये साहित्य के उदात्त रूप का परिचायक है। वेदना का जागृत और प्रगतिशील रूप व्यक्तित्व का प्रसार है। साधारण सुख-दुख से ऊपर उठकर क्रन्दन करनेवाली 'आंसू' की विषाद भावना जगती को नवीन प्रकाश का दान देती है। 'आंसू' को केवल कवि की अतृप्त वासना नही कहा जा सकता। वह उस जागरूक चेतना का चित्र है, जिसमे कवि स्वाभाविक घात-प्रतिघात के बीच भी अपना पथ खोज लेता है। 'आंसू' का निराशावाद जीवन में जड़ता नही ला देता। महादेवी की रहस्योन्मुखी वेदना का अधिक व्यावहारिक सस्करण इस विप्रलम्भ काव्य में

मिलता है। एक सुन्दर गीत सृष्टि के रूप में 'आँसू' एक सफल रचना है। गीतिकाव्य के उपादानो का समावेश उसमें हुआ। सरस सघन भावना, सगीत, व्यक्तिगत अनुभूति, समन्वित प्रभाव आदि के प्रतिपादन में वह सफल है। अपने समय का समस्त साहस लेकर 'प्रसाद' ने 'आँसू' की रचना की, और एक निर्देश दिया। हिन्दी में छायावाद काव्य के प्रवर्तन में 'आसू' ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया। अपनी विशिष्ट कला के कारण उसने एक आदर्श का कार्य किया। वह एक नवीन क्रान्ति का सूचक था, साथ ही कवि के महान कृतित्व का परिचायक भी।

सामान्य विरह काव्यो से इसकी भिन्नता इस बात में है कि इसमे कवि की वैयक्तिक जीवन घटना का योग है। इसकी वियोगानुभूति व्यक्तिगत होने के कारण जहाँ एक ओर अत्यधिक गम्भीर और मार्मिक है, वही यह तीव्र इन्द्रियाकर्पण का परिणाम भी है। रचनाओ में कवि की तटस्थता और कल्पना की स्वच्छन्दता का अवकाश न होने के कारण वैयक्तिक वेदना की एक अतिरिक्त मात्रा आ गई है और यदि इस वेदना का एक अतिशय उदात्त दार्शनिक अनुभूति में पर्यवसान न होता तो इस कृति मे कला की सार्वजनिकता पूरी तरह उभर न पाती। वैसी स्थिति में रीतिकालीन शृगारिक रचनाओ की ही भाँति इसमे वियोग की शारीरिक और मानसिक प्रतिक्रियाओ का ही चित्रण हो पाता और यह रचना किसी प्रकार की उदात्त भावना, मनोरम कल्पना अथवा उच्च जीवन-सदेश से वचित ही रह जाती। किन्तु प्रसादजी का व्यक्तित्व उनकी वैयक्तिक अनुभूतियो मे ऊपर उठने की क्षमता रखता है। इस कृति मे हम अनुभूतियो के साथ प्रसाद के व्यक्तित्व का द्वन्द्व देख पाते हैं। इस द्वन्द्व में प्रसाद के व्यक्तित्व की, उनकी अनुभूतियो पर विजय भी हुई है और यही विजय उनकी इस रचना को उत्कर्प देती है।

आँसू काव्य में दार्शनिक चिन्तन या अनुभूति का योग मूल वियोगानुभूति से एकतान हो गया है, दोनो की पृथक् सत्ता नही रह गई है। वियोग की विह्वलताकारी अनुभूतियो से सान्त्वना और समाधान की सयमित अनुभूतियो तक पहुँचने की आसू की भावना-सरणि विशेपरूप से सुग्रथित है। यदि ऐसा न होता और इन पूर्ववर्ती और परवर्ती अनुभूतियो में कोई व्यवधान या खाई रह गई होती, तो रचना का स्वारस्य जाता रहता। उसमें नीति, आध्यात्मिकता या जीवन सदेश की भावना भूमि ऊपर से जोड़ी गई मालूम देती, जो काव्य के लिए एक बड़ा व्याघात होती। प्रस्तुत रचना में ऐसा कोई जोड़ नही आ पाया। यही नहीं, इसमें मर्मस्पर्शी वैयक्तिक अनुभूति के साथ उदात्त दार्शनिक

अनुभूति इतनी गहराई मे जाकर जुड़ गई है कि दोनो मे पूर्व अभिन्नता स्थापित हो सकी है।

आसू की नायिका परकीया है और प्रसाद का जीवन विकास एक नैतिकतावादी युग मे हुआ था। उनका पारिवारिक और सामाजिक वातावरण ही नही, हिन्दी साहित्य की सम्पूर्ण रचनात्मक दिशा उन दिनो आदर्शोन्मुखी थी। अतएव प्रसाद की उस जीवन घटना और उनके सामाजिक वातावरण और सस्कारो के वीच भी एक वडा द्वन्द्व उपस्थित हुआ था। आँसू मे इस द्वन्द्व की स्पष्ट छायाएँ दिखाई देती है और यह प्रसादजी तथा हिन्दी काव्य की एक नई विजय थी कि इस द्वन्द्व का भी समाहार किया जा सका। आसू मे प्रतीकात्मक सौन्दर्य वर्णन आदि इसी द्वन्द्व के सकेत है।

भारतीय साहित्य में प्रेम तथा विरह काव्य की परम्परा अनेक रूपो में मिलती है। 'कालिदास' का 'मेघदूत' विरही यक्ष की भावनाओ का प्रकाशन है। आदि से अन्त तक यक्ष मेघ को सदेश देता रहता है। कथासूत्र को समझाने के लिये आरम्भ और अन्त मे कवि केवल कतिपय सकेत कर देता है। सम्पूर्ण चित्राकन यक्ष के द्वारा ही कराया गया है। वह अपनी भावनाओ का प्रकाशन करता है, अपना सदेश कह देता है। मेघ को प्रियतमा तक जाने का मार्ग भी उसी ने वताया। पथ मे मिलनेवाले नगरो तथा निवासियो का चित्रण भी उसने किया। कालिदास की विशद कल्पना, सूक्ष्म चित्रण 'मेघदूत' में प्रबन्धत्व तथा गीतितत्व दोनो की ही प्रतिष्ठा कर सके। एक विरही की सम्पूर्ण व्यथा उसमे मिलती है। मेघ से उसका तादात्म्य हो जाता है। यक्ष अन्त मे निवेदन करता है

> एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे
> सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशवुद्धया।
> इष्टान्देशांजलद विचर प्रावृषा संभृत श्री-
> र्मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः॥

मेरे मेघ! जो कार्य मैने तुम्हे वताया, उसे कराना अत्यन्त अनुचित है। किन्तु मित्र समझ अथवा मुझ विरही पर करुणा कर, तुम प्रथम मेरा प्रिय सदेश कह देना। तदनन्तर अपना पावस रूप लेकर इच्छानुसार घूमते रहना। मेरी यही कामना है कि प्रेमिका कादम्विनी से एक क्षण के लिये भी तुम्हारा वियोग न हो, जो मुझे प्राप्त हुआ।

सूर की गोपिकाओ की विरह वेदना ने हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया। गीतिकाव्य मे उसका स्वर युगो तक थिरता रहा। तुलसी के आदर्शरूप राम भी 'हे खगकुल, हे मधुकरश्रेनी' कहकर विलाप कर उठे थे। 'जायसी' 'प्रेम की

पीर' से पद्मावत को रसमय कर गये। इस प्रकार वेदना साहित्य का स्वर सदा मे रही है। 'आँसू' के विप्रलम्भ शृगार में जीवन दर्शन की प्रतिष्ठा उसकी मौलिक वस्तु है। वेदना का दर्शन रूप में प्रकाशन काव्य में प्रस्तुत हुआ। बौद्धो ने करुणा दर्शन की उद्भावना अवश्य की, किन्तु साहित्य में उसकी अधिक प्रतिष्ठा न कर सके। 'आँसू' के विरह में भी जीवन के प्रति जो आशावाद निहित है, वही उसकी अमूल्य निधि है। वियोग प्रतिपादन के लिये प्राय साहित्य मे किमी न किसी कथा का अवलम्ब अवश्य ग्रहण किया गया। व्यथा की ताप-वृद्धि, उद्दीपन के लिये अनेक व्यवधान भी प्रस्तुत किये गये। विरहिणियो को पपीहा, चातक कष्ट देने लगे। 'आसू' लौकिक रूप में प्रस्तुत हुआ। केवल छाया सकेतो के द्वारा ही कवि मार्मिक अनुभूति का प्रकाशन करता है। सीमित पृष्ठभूमि पर केवल एक ही तूलिका के द्वारा जागृत चेतना से उसने चित्र प्रस्तुत किया, जो यदि अश्रु का दान देता है, तो साथ ही आँसुओ से ऊपर उठने का सदेश भी। जीवन की मार्मिक और शाश्वत समस्या पर आधारित 'आँसू' हिन्दी की विशिष्ट रचना है।

गीत सृष्टि, 'झरना' से 'लहर' तक

गीतिकाव्य--

झरना और लहर प्रसाद की गीत सृष्टि है। झरना का प्रकाशन १९२८ ई० मे हुआ था, और लहर का १९३५ मे। 'झरना' मे लगभग १९१४ से १९१७ तक की कविताएँ है। कवि के इन दोनो ही गीत सग्रहो मे गीतिकाव्य-परम्परा का विकास है, जिसे उसने अपने व्यक्तित्व मे नवीन स्वरूप प्रदान किया। गीतिकाव्य की भारतीय परम्परा काव्य के अन्य रूपो की भाँति धार्मिक ग्रन्थो मे उत्पन्न हुई है। वेद की ऋचाये समवेत स्वर से उच्चरित की जाती थी। 'सामवेद' में आकर सगीत तत्व की प्रधानता हो गई। उसकी ऋचाओ मे गेयता भी अधिक है। सगीत के वाद्ययत्र, अदम्बर, दुन्दुभि, कववीणा आदि का वर्णन वेदो मे मिलता है। गधर्ववेद मे नाट्य और सगीत की विवेचना की गई है। वेदो का सामूहिक रीति से पाठ सस्वर किया जाता था। सस्कृत मे ईसवी शताब्दी के पूर्व गीतिकाव्य का प्रचलन था[1]। उस समय केवल धार्मिक ग्रन्थो मे ही नही, किन्तु साहित्य मे भी उसका प्रयोग होता था। कालिदास के गीतो मे सस्कृत काव्य का चरम उत्कर्ष मिल जाता है। अपनी उदात्त-कल्पना और मनोरम चित्रणो के द्वारा इस कवि ने काव्य को अत्यधिक सरसता प्रदान की। यक्ष मेघ से अपनी प्रिया के लिये सन्देश देते समय जड़ और चेतन का अन्तर भी भूल जाता है। वह अनुनय विनय से कहता है .

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं सदेशं मे तदनु जलद श्रोस्यसि श्रोत्रपेयम
खिन्न: खिन्नः शिखरिषु पदंन्यस्य गन्तासि यत्र क्षीण क्षीणः परिलघुपय स्रोतसा-
चोपभुज्य (पूर्वमेघ, १३)

मै तुम्हे सर्वप्रथम वह मार्ग बताये देता हूँ, जिधर से जाने पर तुम्हे कोई कष्ट न होगा। इसके अनन्तर मै अपना प्रिय सन्देश भी कह दूगा। मार्ग में

---

[1] A strong school of lyric poetry existed about the christian era and probably much more earlier, we cannot seriously doubt, to its influence we may with reason ascribe the appearance and bloom of the Maharastri lyric about A D 200.
—A History of Sanskrit Literature By Keith, page 48.

चलते हुए जब कभी शिथिलता आने लगे, तो मार्ग की पर्वत चोटियो पर रुक लेना। जल के अभाव में क्षीण होने पर निर्झर का जल पीतें जाना।

इसके अतिरिक्त कालिदास में प्राकृत के गीत भी मिलते हैं। इस प्रकार गीतो के दो रूप दिखाई देते है—साहित्यिक और लोकभाषा सम्बन्धी। उस समय नाटक भी काव्य के ही अन्तर्गत रक्खे जाते थे, इस कारण गीतिकाव्य का कोई पृथक विधान न था। प्रबन्धकाव्यो में भी गीत बिखरे मिलते हैं। काव्य का भारतीय वर्गीकरण करने पर गीतिकाव्य की रूपरेखा इस प्रकार होगी
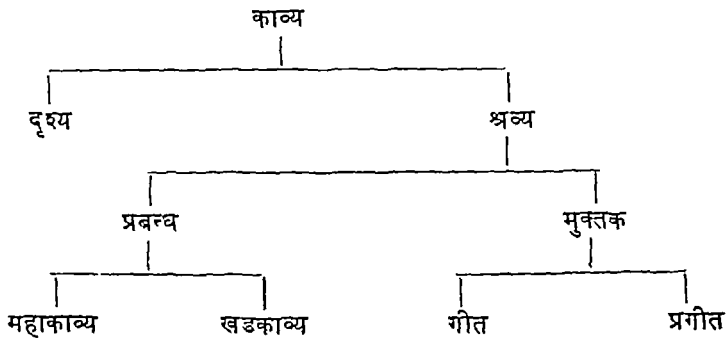
मुक्तक की स्वतन्त्र रचना में रसोद्रेक के लिये अनुबन्ध की आवश्यकता नही होती[२]। धीरे-धीरे मुक्तक अथवा गीत रचना के स्वरूप में परिवर्तन होता गया। सस्कृत की गीतिकाव्य परम्परा में सगीत को विशेष स्थान प्राप्त है। कालिदास के काव्य और नाटको के अतिरिक्त मृच्छकटिक, रत्नावली आदि में भी प्राकृत के गीत हैं, जिनमें कल्पना का स्वच्छन्द स्वरूप दिखाई देता है। इस प्रकार धर्म के स्थान पर सामूहिक उत्सवों और साहित्य में गीतिकाव्य का प्रवेश हुआ। सस्कृत में मुक्तक काव्य के ही अन्तर्गत वह आ जाता है।

हिन्दी साहित्य की गीतिकाव्य परम्परा का आरम्भिक स्वरूप वीरगाथा काल में दिखाई पड़ता है। इसके पूर्व वैदिक युग से लेकर विक्रम की ग्यारहवी शताब्दी तक स्वतन्त्र रूप में गीतिकाव्य की रचना अधिक नही हुई। वीर गीतो मे प्रेम और युद्ध का प्रसग प्रमुख था। शृगार और वीर रस का समन्वित स्वरूप इन कविताओ में मिलता है। ग्राम गीतो के रूप मे जनता में इनका प्रचार था और 'रासो' नाम से ग्रन्थो में इनका साहित्यिक स्वरूप आ रहा था। 'आल्हा ऊदल' के गीत विशेष उत्सवो पर जनता गाती है। सस्कृत का मुक्तक काव्य गीतो के निकट अवश्य था, किन्तु उसमें गीति तत्व बहुत कुछ अस्पष्ट

---

२ मुक्तक श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षम सताम — अग्निपुराण

रह गया है। वारहवी शताब्दी में जयदेव ने भारतीय गीतिकाव्य में एक नवीन क्रान्ति की। 'गीत गोविन्द' के गीतो में एक वार सौन्दर्य और रस छलक उठा। राधाकृष्ण के प्रेम में तन्मय होकर कवि ने जिन गीतो को जन्म दिया, उनमे कवि का अन्तर स्पन्दित हो उठा है। इन सरस गीतो मे मानव के अन्तराल को छू लेने की ऐसी शक्ति थी कि भारत में आज भी ये गीत गूजते रहते है। सस्कृत के इस सरस कलाकार ने गीतिकाव्य मे रस घोल दिया। 'गीत गोविन्द' का संगीत और काव्य हृदय को स्पर्श करता है[३]। सगीत की उत्कृष्ट राग रागिनियो का उसमें समावेश है। उनका पद है—

ललित लवग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे
मधुकर निकर करम्बित कोकिल कूजित कुंज कुटीरे
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते।
नृत्यति युवति जनेत समं सखि विरहि जनस्य दुरन्ते........

हिन्दी गीतिकाव्य को जयदेव के गीत गोविन्द ने प्रभावित किया।

वीरगीतो मे गीतिकाव्य का एक विशेप स्वरूप दिखाई देने लगा था। आगे चलकर मैथिल कोकिल विद्यापति ने जयदेव की परम्परा को विकसित किया। सिद्धो ने भी गीतो को पर्याप्त महत्त्व दिया। हिन्दी गीतिकाव्य की स्वतत्र परम्परा विद्यापति से ही आरम्भ होती है। जयदेव की भाति विद्यापति ने भी राधाकृष्ण को अपना विषय वनाया। इन आलम्बनो के द्वारा इस मैथिल कवि नें गीतो में शृगार और प्रेम का सागर लहरा दिया। अपनी सम्पूर्ण तन्मयता में स्वच्छन्द होकर गीत गानेवाले इस कवि ने ग्राम गीतो से अनुभूति लेकर उसे एक साहित्यिक रूप प्रदान किया। उनका रागात्मक आवेश पाठक को अपने साथ दूर तक खीच ले जाता है। माधुर्य और शृगार का नैसर्गिक स्वरूप इन गीतो का प्राण है। उनमें एक प्रकार की मादकता और ऐन्द्रियाकर्पण है, जो वगाल के वातावरण पर आज भी अपना प्रभाव डाले हुए है। 'देसिल वयना अवहट्टा' में विद्यापति ने शृगारिक पदो की रचना की, और रावाकृष्ण को आलम्वन वनाकर हिन्दी गीतिकाव्य परम्परा का एक नवीन द्वार खोल दिया। वियोग मे क्षण-क्षण सूखती हुई राधा का वर्णन है :

---

३. The Gita Govind is atonce a great poem, a gripping lyric drama and a heart entrancing opera—all rolled into rapturous music.

—The Indian song of songs (Gita Govind) Edwin Arnold Introduction.

माधव से अब सुन्दरि बाला
अविरल नयन बारि झरनी झर जनु सावन घन माला।
पुनिमक इन्दु बिन्दु मुख सुन्दर सो भेला अब ससि रेहा
कलेवर कमल कान्ति जिनि कामिनि दिन दिन खिन भेल देहा।

कृष्ण-चरित के गान में गीतिकाव्य की जो धारा पूरब में जयदेव और विद्यापति ने बहायी उसी का अवलम्बन ब्रज के भक्त कवियो ने किया[४]। उत्तर भारत के वैष्णव कवियो मे शृगार और सौन्दर्य की भावना कुछ सयत अवश्य हो गई थी, किन्तु आलम्बन राधा कृष्ण ही थे। निर्गुण उपासको के गीतो मे नीति और अध्यात्म की प्रधानता होने के कारण भावो की तन्मयता उतनी न आ सकी। कबीर की 'झीनी झीनी रे बीनी चदरिया' में वह भावप्रवणता, रागात्मक आवेश नही, जो सरस गीतकारो में। किन्तु सगीत का प्रभाव उसमें भी है। विरह आत्म निवेदन के गीतो में 'प्रेम की पीर' साकार हो उठी है। उपास्य की सत्ता का निरूपण करनेवाले रहस्यात्मक पदो में अनुभूति भी तीव्र हो जाती है। कल्पना और भाव प्रदर्शन की शक्ति होते हुए भी सन्तो की रचनाओ मे गीतिकाव्य अपने पूर्ण वैभव को न प्राप्त कर सका। मीरा की प्रेम-साधना मे एक बार पुन गीत तरगित हो उठे। प्रेमयोगिनी के रूप में उन्होंने गिरधर गोपाल को वरण किया था। उनके गीतो में अन्तरात्मा की करुण पुकार है, वेदनानुभूति है। आत्मसमर्पण की भावना में गायिका अपनी सुध बुध खोकर कह उठी .

दरस बिन दूखन लागे नैन
जब तें तुम बिछुरे पिय प्यारे, कबहुँ न पायो चैन
सब्द सुनत मोरी छतिया कांपे, मीठे लागैं बैन
एक टकटकी पथ निहारूँ, भई छमासी रैन

वेदना की तीव्र अनुभूति के कारण गीतो में एक तन्मयता और वैयक्तिकता की छाप है, जो उनका मुख्य आकर्षण है। भक्ति और प्रेम के सामजस्य मे गायिका ने बेसुध होकर गाया है। उसका गीत हृदय से निकलकर स्वच्छन्दता मे प्रवाहित होता है और सामारिक सम्बन्धो के प्रति विद्रोह की भावना भी बलवती होकर आई है। नीति, मर्यादा सभी को वे पार कर जाती है। नारी की समस्त सुकुमारता के साथ निष्ठा इन गीतो मे साकार हो उठी है। वैष्णव कवियो ने राधा-कृष्ण के प्रेम मे गीतिकाव्य का सागर ही लहरा दिया। इन भक्त कवियो

---

४. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १४२

मे भक्ति मे ज्ञान के स्थान पर प्रेम का अधिक आग्रह है। यह कृष्ण भक्ति अनेक रूपो मे बिखरी हुई मिलती है। कभी भक्त अपने आराध्य का चिन्तन दास बनकर करता है, तो कभी वह माधुर्य भाव मे डूब जाता है। कवियो ने कृष्ण को ही वरण कर लिया। सूर मे कृष्ण काव्य का चरम विकास हुआ। वे उसके प्रतिनिधि सर्वश्रेष्ठ कवि है। कृष्ण को अपना सखा बनाकर उन्होने पूर्ण स्वतत्र होकर अन्त करण का प्रकाशन किया। वे कृष्ण के प्रत्येक रूप पर रीझ उठते है। 'मैया मोरी मै नहि माखन खायो' मे वात्सल्य रस ही साकार हो जाता है। सयोग के अतिरिक्त वियोग शृगार मे सूर ने नारी का हृदय ही सम्मुख रख दिया है। गोपिकाओ के विरह निवेदन मे कवि ने वेदनानुभूति की परिणति प्रस्तुत की। 'भ्रमर गीत' मे वियोग का सागर ही उमड़ रहा है। सगुण भक्ति अपना अखड आधार पा गई है। कृष्ण की रूप माधुरी में पागल वृजबालायें ऊधो के समक्ष अपना हृदय खोलकर रख देती है। अनुभूति की इस सच्चाई और तीव्रता से एक बार वह ज्ञानी ब्रह्मवादी भी काप उठा था। विरह मे व्याकुल नारिया इतना ही कहती है

निसदिन बरसत नैन हमारे
सदा रहत पावस ऋतु हमपै जब ते स्याम सिधारे
दृग अंजन न रहत निसिवासर कर कपोल भये कारे
कंचुकि पट सूखत नहि कबहूँ उर बिच बहत पनारे

सूर के गीतो मे हिन्दी गीतिकाव्य को महान शक्ति प्राप्त हुई। रामकाव्य मे नैतिक बन्धनो के कारण गीतिकाव्य मे वह मार्मिकता न आ सकी। सूर की तन्मयता और माधुर्य तुलसी की कवितावली और विनयपत्रिका मे करुणा और विनय भावना का स्वरूप ग्रहण करते है। तुलसी भक्ति भावना मे बहते है, किन्तु उन्हे सदा मर्यादा का ध्यान रहता है। राम का लोकरजनकारी स्वरूप सम्मुख आ जाता है। आत्मनिवेदन के पदो में भी तुलसी का लोकपक्ष सचेत रहता है। भावुकता पर सदा दास्य भावना का नियन्त्रण रहता है। तुलसी की ग्राम कन्याये केवल यही कह सकती है

पुनि न फिरे दोउ बीर बटाऊ
स्यामल गौर सहज सुन्दर, सखि बारक बहुरि बिलोकिये काऊ

रीतिकाल मे काव्य का स्वरूप ही परिवर्तित हो गया। गीति काव्य को ग्राम गीतो से बड़ी प्रेरणा मिलती है। इस समय कविता का सम्बन्ध उससे भी छूट गया। वह कवित्त, सवैया और दोहो मे बांध दी गई। गीतिकाव्य का विकास

मन्थर पड़ गया। रीतिकालीन अवनत गीतिकाव्य को भारतेन्दु ने अपनी मौलिक प्रतिभा से ऊपर उठाया। श्री राधा कृष्ण की भक्ति में तथा अपनी प्रेमभावना में उन्होंने जो पद और गीत गाये उनमें भक्तिकालीन गीतिकाव्य की प्रवृत्तियो का यथेष्ट समावेश हुआ। इसके अतिरिक्त उन्होने शृगारी पदो में भी अधिक गीतात्मकता रक्खी। एक बार हिन्दी में पुन गीतो की सरस काव्यधारा का उदय हुआ। रीतिकाल के अश्लील शृगार के परिष्कार का प्रयास भारतेन्दु ने किया। स्वयम् 'राधारानी के चाकर' होने के कारण उनके गीतो में अत्यन्त मधुर अभिव्यजना मिल जाती है।

छिपाये छिपत न नैन लगे
उघरि परत सब जानि जात हैं, घूघट में न खगे
कितनों करौ दुराव दुरत नहिं, जब ये प्रेम पगे
निडर भये उघरे से डोलत, मोहन रग रगे।

भारतेन्दु युग मे काव्य की भाषा ब्रज ही थी। गीतिकाव्य का पुनरुत्थान तो स्वय भारतेन्दु ने ही कर दिया था, किन्तु नवीन सामाजिक परिस्थितियो के साथ उसमें परिवर्तन होने लगे। सत्यनारायण कविरत्न मे ब्रजभाषा तथा परम्परागत गीतिकाव्य का अन्तिम रूप मिलता है। इसी के पश्चात् साहित्य ने एक नवीन मार्ग अपनाया और गीतिकाव्य का स्वरूप भी बदलने लगा, जिसमें भारत के अतिरिक्त पश्चिम का भी योग था।

अंग्रेजी गीतिकाव्य—

उन्नीसवी शताब्दी का हिन्दी साहित्य समन्वय प्रधान है। अनेक सस्कृतियो और सभ्यताओ का सगम हो रहा था। उस समय नवीन विचार-धारायें काम करने लगी थी। बदलती हुई परिस्थितियो के अनुकूल साहित्य का निर्माण आवश्यक हो गया था। अँग्रेजी की साहित्यिक प्रवृत्तिया भी अपना प्रभाव डाल रही थी। वहाँ गीतिकाव्य स्वतन्त्र रूप से विकसित हो चुका था। फलस्वरूप उसका प्रभाव कुछ तो सीधे और कुछ बगला से होता हुआ हिन्दी गीतिकाव्य पर पडा। आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य की भूमिका के रूप मे पाश्चात्य धारा का प्रभाव अधिक पड़ा है[५]। पश्चिम के अनुसार गीतिकाव्य का स्वरूप इस प्रकार होगा

---

५ गीतिकाव्य, पृष्ठ २८
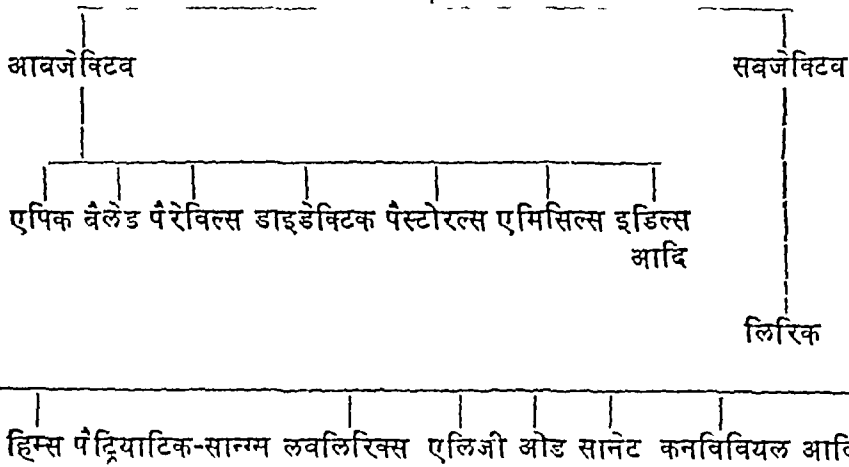
अँग्रेजी में गीतिकाव्य आत्माभिव्यजनावादी विभाग के अन्तर्गत आता है। लायर अथवा वीणा के साथ गाये जानेवाले गीतो का नाम लिरिक पड़ गया। ग्रीक साहित्य तथा अरस्तू की साहित्यिक मान्यताओ ने अँग्रेजी साहित्य को प्रभावित किया। आरम्भ मे गीतिकाव्य मे सगीत तत्व प्रधान था। होमर स्वयम् अपने गीतो को गा-गाकर सुनाया करता था। आरम्भ से ही गीतिकाव्य के दो स्वरूप प्राप्त होते हैं। ग्रामगीतो के रूप मे भी सगीतमय भावात्मक अभिव्यजना ही होती है। अपने साहित्यिक रूप मे गीतिकाव्य अधिक समय तक होमर से प्रभावित रहा। पर्याप्त समय तक गीतिकाव्य के साहित्यिक स्वरूप मे ग्रामगीतो का भी प्रभाव बना रहा। धीरे-धीरे सामाजिक विकास के साथ उसमे सगीत तत्व का स्थान भावो और विचारो को प्राप्त हुआ। गीतो मे व्यक्तित्व, कल्पना, भावना आदि का प्रवेश होने लगा। उसे एक आन्तरिक अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया गया। एलिजाबेथ युग मे गीतिकाव्यो की अत्यधिक रचना हुई और अनेक गीतो का निर्माण कवियो ने किया। इन गीतो मे धार्मिक, पौराणिक, प्रणय सभी प्रकार की भावनाये मिलती है। शेक्सपियर के गीतो में प्रेम की चर्चा अधिक थी। सच्चा प्रेम, अन्धा प्रेम, प्रेम से, वासनाविहीन जीवन, प्रेम और समय, प्रेम का शोकगीत, प्रेम का पक्षपात आदि अनेक गीतो का निर्माण उसने किया। उसके नाटको में भी यत्र-तत्र सुन्दर गीत है। 'प्रेम का शोकगीत' मे वह कहता है। 'मेरे काले कफन पर एक भी मधुर पुष्प न हो, कोई भी मित्र बधाई न दे। मेरा अकिंचन शव, अस्थियो के साथ जहाँ भी डाला जाय, वहाँ केवल सहस्रो उच्छ्वास मेरी रक्षा करें। मैं ऐसी जगह रहूँ कि

शोकमग्न सच्चा प्रेमी मेरा मजार तक न पा सके। इतना ही नही, वह रो भी न सके।[६]

शेक्सपियर के सानेट भावप्रधान थे। क्लासिकल कवियो में नैतिकता और बुद्धिवादी प्रवृत्तियाँ अधिक जागृत हो गई। अठारहवी शताब्दी में भावात्मक काव्य को प्रधानता प्राप्त हुई। काव्य के बाह्य स्वरूप में पर्याप्त सुधार हो चुका था और अब कवियो का ध्यान भावना परिष्कार की ओर गया। इन कवियो में अब भी पूर्ववर्ती युग की बौद्धिकता थी, किन्तु उन्होने सघर्षो की आन्तरिक रूप-रेखा पर भी विचार किया। प्रकृति, मानव, समाज का एक समन्वित रूप प्रस्तुत करने मे इन कवियो की रागात्मक अभिव्यक्ति अत्यन्त सरस न हो सकी। यह काल क्लासिकल और रोमान्टिक का सन्धियुग कहा जा सकता है। एक ओर कवि यदि अब भी प्राचीन विषयो से प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे, तो दूसरी ओर वे स्वच्छन्दता की ओर भी जा रहे थे। काव्य में इसी समय अनुभूति और कल्पना का प्राधान्य आरम्भ हो गया। अठारहवी शताब्दी के अन्तिम भाग मे ही स्वच्छन्दता की लहर उठ चुकी थी। रोमान्टिक युग में वर्ड्स्वर्थ के, प्रकृति से अनुप्राणित रहस्यवादी गीतो में कलात्मक सौन्दर्य का प्रकाशन हुआ। प्रकृति के अन्तराल मे प्रवेश कर उससे चेतना ग्रहण करने वाले इस प्रकृतिप्रेमी में अनुभूति की सच्चाई थी। अपनी पुस्तक 'लिरिकल बैलेड्स' की प्रसिद्ध भूमिका मे उसने कहा 'समस्त सुन्दर कविता उदात्त भावनाओ का गतिशील प्रवाह है। अनजान में इन सगृहीत भावनाओ से वह प्रेरणा ग्रहण करती है। प्रतिक्रिया के द्वारा उस पर चिन्तन छा जाता है और केवल चिन्तन में व्याप्त रहनेवाली भावना धीरे-धीरे मस्तिष्क में आकर प्रकाशित हो जाती है[७]।

---

६ Not a flower, not a flower sweet
　　　　On my black coffin let there be strown,
Not a friend, not a friend greet
　　　　My poor corpse, where my bones shall be thrown,
A thousand thousand sighs to save,
　　　　Lay me, O where
Sad true lover never find my grave,
　　　　To weep there —Dirge of Love

७ All good poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings .

Wordsworth—Lyrical Ballads.

परम्परा और रूढि के विरुद्ध कीट्स, शेली, वायरन ने विद्रोह किया। इन सौन्दर्यवादी कवियो मे एक ऐसी अतृप्ति और विद्रोही भावना थी कि प्राणो का स्वर निर्झर की भाँति वह निकला। उन्हे ससार में चारो ओर करुणा, सौन्दर्य और रस दिखाई पड़ा। एक क्षण जीवन की भौतिकता को भूलकर वे तन्मय होकर गा उठे। उन्होने किसी भी वस्तु का बन्धन नही स्वीकार किया। भावना का नैसर्गिक प्रवाह अन्तस्तल को छू लेने में सफल हुआ। शेली के लिये 'प्रफुल्लित जीवन के सर्वोत्तम आनन्दपूर्ण क्षणो का सग्रह' ही काव्य बन गया। कीट्स ने पशु पक्षी से अपना गान सीखा। वायरन केवल एक आलिगन की ही कामना से प्रसन्न था। इन सौन्दर्यवादी कवियो ने अनुभूति की तीव्रता में सौन्दर्य को एक छायात्मक स्वरूप प्रदान किया। उनका व्यक्तित्व उनके काव्य मे बोल उठा। काव्य में आन्तरिक अभिव्यक्ति को सरस रूप प्राप्त हुआ। गीत को कवियो ने आत्माभिव्यक्ति का एक साधन बना लिया जिसके द्वारा जड़ चेतन को वे अपना सन्देश देने लगे। एक ओर यदि इन गीतो मे अह की भावना थी तो दूसरी ओर वे अन्तस्तल से निकलते थे। किसी प्रसन्नता की आत्मा को देखकर शैली कहता है,—'मै तुझे प्रेम करता हूँ यद्यपि तुझे पख है तू ज्योति की भाँति उड़ सकता है। इन सब के अतिरिक्त भी मै तुझे प्रेम करता हूँ। ओ मेरे प्रेम, ओ मेरे जीवन, आ जाओ, एक बार पुन मेरे हृदय को अपना आवास बना लो।[८]' कीट्स ने बुलबुल से कहा था— 'ओ अमर पछी, तेरा जन्म मरण के लिये नही हुआ था। आनेवाली भूखी पीढियाँ तेरा अन्त कदापि नहीं कर सकती। विदा, विदा मेरे मधुमय सगीत, तेरा स्वर धूमिल पड़ता जा रहा है। निकट की झाड़ियों, निर्जन निर्झरो, पहाड़ियो, और अन्त में पर्वत घाटियो में वह खोता जा रहा है ..।[९] वायरन ने सौन्दर्य को मांसलता प्रदान की। सुन्दरी के लिए उसका कथन है—'वह मेघहीन, तारिका जटित आकाशमय रजनी की भाँति सौन्दर्य में विचरण करती है। उसके नेत्रो में कालिमा और प्रकाश का सर्वोत्तम स्वरूप साकार हो उठा है। उस सुकुमार ज्योति में इतना माधुर्य है कि स्वर्ग प्रकाशित दिवस को भी दान नही देता।'[१०]

---

८. I love though he has wings
And like light can flee....
Shelly—Invocation

९. Thou wast not born for death, immortal bird....
Keats—Ode to a nightingale.

१०. She walks in beauty, like the night
of cloudless climes and starry skies, ...
—Byron.

इस प्रकार इन गीतो में भी किसी न किसी रूप में भावो का आवेश है। कवि अन्तर्मुखी शैली के द्वारा अपनी व्यक्तिगत आन्तरिक अनुभूति का प्रकाशन करने लगे। सक्षिप्त रूप में वे किसी एक भावना का प्रतिपादन करते है। अपने स्वाभाविक और स्वच्छन्द प्रवाह में उनमें भावावेश अधिक होता है। प्राय सुकोमल, मधुर, मार्मिक भावनाओ की अभिव्यजना ही इनमें होती है। कही-कही एक अस्पष्टता सी भी दिखाई देने लगती है। कला की दृष्टि से गीतो ने एक नवीन धारा को जन्म दिया, जो व्यक्तिवाद के साथ ही नवीन चेतना से प्रभावित है। पश्चिम में गीतिकाव्य की परम्परा के अन्तर्गत अनेक भावनाओं को लेकर गीतो की रचना हुई। धर्म, राष्ट्र, प्रणय, शोक, गौरव, उत्सव आदि अनेक आधार पर गीतो का सृजन हुआ। उनमे एक साथ दर्शन, रहस्यमयता और तन्मयता का सामजस्य मिल जाता है।[११]

छायावाद का गीतिकाव्य—

पाश्चात्य गीतिकाव्य ने आधुनिक हिन्दी कविता को प्रभावित किया। द्विवेदी युग में गीतिकाव्य का पूर्ण विकास आदर्शवादिता के कारण न हो सका। छायावाद की स्वच्छन्दता के साथ ही साथ गीतो को प्रधानता मिली। हिन्दी का कवि गीतिकार हो उठा। एक बार हिन्दी ने भी प्रसाद, निराला, पन्त के रूप में मानो कीट्स, बायरन और शेली को पा लिया। उसी समय बगाल में रवीन्द्र का उदय हो रहा था। उन्होने पूर्व और पश्चिम का समन्वय प्रस्तुत किया। लोकभाषा में रचना करने के कारण सर्वप्रथम उनके गीतो में लोकगीतो की सरसता थी। वैष्णव कवियो से उन्होने माधुर्य भाव पाया। भारतीय सस्कृति और दर्शन ने उन्हे आधार दिया। पश्चिम की रूप सम्पत्ति से उन्हे सौन्दर्य ग्रहण, आत्माभिव्यक्ति की शक्ति मिली। सामाजिक झझावातो में उनका विद्रोही कठ फूट पड़ा। एक ओर यदि वे सूर, कबीर, मीराबाई की परम्परा मे है तो दूसरी ओर कालिदास की[१२]। अपनी सरसता में वे कहते है -

> बहु दिन परे आज मेघ गेछे चले, रविर किरण सुधा आकाशे उथले
> स्निग्ध श्याम पत्रपुटे आलोक फलकि उठे पुलक नाचिछे गाछे गाछे
> नवीन यौवन येन प्रेमेर मिलने कापे आनन्द विद्युत आनो नाचे।

(एक दीर्घ अवधि के पश्चात आज मेघ भी चले गये। अशुमाली की अमृत-मय रश्मिया समस्त अम्बर में प्रेमसुधा की वर्षा कर रही है। वृक्ष वृक्ष पर आनन्द

११. A History of English Literature, page 996.

१२ Tagore, 1st Part, page 14

पुलकित होकर नृत्य कर उठा है। स्निग्ध श्याम पत्र पुटो मे आलोक झिलमिल हो रहा है। प्रणय मिलन के नव उन्माद से हृदय मे सिहरन हो रही है और आनन्द की विपुल छटा नाच उठी है।)

छायावाद ने इतिवृत्तात्मकता और स्थूल के प्रति एक विद्रोह ही किया था। द्विवेदी युग की नैतिकता मे वह अपनी व्यक्तिगत अनुभूति का प्रकाशन स्वच्छ-न्दता से न कर सकना था। रवीन्द्र के रूप में उसे एक समन्वय शक्ति दिखाई दे रही थी। उसने शृगारिकता के परिष्कार का प्रयत्न किया। प्रेम, सौन्दर्य, यौवन, नारी आदि को सूक्ष्मतम रूप देने के प्रयत्न में छायावाद किसी अतीन्द्रिय लोक मे भी चला गया। वैष्णव कवियो की तन्मय और रागात्मक अनुभूति राधा और कृष्ण की आड़ मे खुलकर खेलती थी। छायावाद के सम्मुख इस आन्तरिक प्रकाशन की कठोर समस्या थी। छायावादी कवियो ने प्रतीको के द्वारा अपने लक्ष्य की पूर्ति की। नारी को उसने अशरीरी सौन्दर्य प्रदान किया। नारी केवल सुन्दरी न रहकर, साकार सौन्दर्य हो गई। उन्होंने अपने भावो को व्यापक बनाने के लिये प्रकृति का मानवीकरण कर लिया। जड़ता में चेतनता का आरोप किया गया। छायावाद ने गीतिशैली के द्वारा ही अपनी स्वच्छन्दता के मार्ग पर चलना आरम्भ किया। लय के नवीन प्रयोगो मे कवि इसी प्रकार की पूर्णता में सफल हुये। सच्ची भावना की अनुभूति द्वारा उद्भूत लय का स्वर समुच्चय और ध्वनि पाठक मे भी उसी भाव के अनुरूप प्रभाव उत्पन्न करने मे समर्थ हुए। छायावाद की कविता सच्ची भावसृष्टि का परिणाम है, जिसमे शब्द और अर्थ का, उपमान और प्रतीक के समान, मधुर लय से योग रहता है[13]। गीतो मे सौन्दर्याकर्षण, प्रणय निवेदन, अतृप्ति, वेदनानुभूति, जीवन की मार्मिक व्यजना मिलती है। छायावाद की कविताओ, विशेषतया गीतो मे ऐसा समन्वित स्वरूप सम्मुख आया कि शृगार, प्रेम, वियोग के अतिरिक्त देश और विश्व की भावनाओ की अभिव्यक्ति भी उनके द्वारा हुई। हिन्दी गीतिकाव्य का यह बहुमुखी प्रसार एक सर्वथा नवीन वस्तु है। अपने साहित्यिक रूप मे छायावाद के गीतो मे ग्रामगीतो की-सी भावप्रवणता न थी किन्तु वे साहित्य का सर्वोत्तम प्रकाशन थे। छायावाद का अधिकाश काव्य गीतो के रूप में ही बिखरा हुआ है। यह पूर्णतया उचित नही है कि छायावाद का गीतिकाव्य पश्चिम की देन है। स्वयम् रवीन्द्र के गीतो मे ही वैष्णव कवि, भारतीय दर्शन, सगीत और पश्चिम का सौन्दर्यवाद समन्वित रूप मे मिलते है। छायावाद ने भी मीरा से माधुरी ली,

---

१३. आधुनिक काव्यधारा--डा० केसरी नारायण शुक्ल, पृष्ठ २१६

तो कबीर से रहस्यवाद। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसने गीति-काव्य को एक सीमित परिधि से निकालकर उन्मुक्त वातावरण में लाकर खड़ा कर दिया, जिससे गीत प्रत्येक प्रकार की भावना के प्रकाशन का साधन बन सके। ऐसी ही स्थिति में प्रसाद की गीत सृष्टि हुई।

'झरना'—

'झरना' का कवि यौवन के द्वार पर खड़ा है। जीवन के अनेक झंझावात उसके सामने हैं। कवि एक ऐसी आधारभूमि पर आकर खड़ा हो गया है, जहाँ उसे बाह्य वस्तु से काव्य विषय चुनने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसकी व्यक्तिगत अनुभूति और मन की तरगें ही बरबस फूट पड़ती हैं। यौवन का आवेश उसके साथ है। प्रथम परिचय में ही उसने अपना आन्तरिक भाव किसी को समर्पित कर दिया, और आज उसी का खेल अपने सामने देख रहा है। झरना स्वच्छन्द गति से उछल-कूद कर झर-झर करता रहता है। कोई इसे उच्छृङ्खलता कह सकता है, और किसी के लिये वह यौवन के प्राणो का आवेग है। झरना में सरिता की-सी सीधी-सादी गति नही होती, वह बेसुध होकर बहता है। 'झरना' के गीतो में भी भावनायें अनेक रूपो में बिखरी हुई हैं। उत्थान-पतन, आशा-निराशा, सुख-दुख सभी उसमें तिरोहित हो रहे हैं। कवि अपने अन्तस्तल की प्रेरणा से ही कविता का स्रोत बहा रहा है। उसके प्राणो का यह निर्झर आजीवन उसे जल देता रहा, प्रेरणा न सूखी, न मर सकी।

आरम्भ में ही कवि झरना के अन्तस्तल को झाँक लेने के लिये विकल है। उसमें कुछ गहरी बात छिपी हुई है। उसे देखकर वह कल्पनातीत काल की घटना का स्मरण करने लगता है। प्रणय ने उसके तन मन को प्लावित कर दिया था। प्रेम की पवित्र परछाईं में झरना बहता जाता है। कवि का मन प्रकृति की इस सरस कृति से एकाकार हो उठा है। कवि का झरना हृदय के अन्तस्तल की गिरि गुहाओ को विदीर्ण करता हुआ प्रेमरस के प्लावन से विह्वल होकर बह रहा है। 'रवीन्द्रनाथ का मन रूपी निर्झर भी अपने अन्तर की अन्धगुहा के कारागार में आबद्ध रहने के पश्चात् प्रबल वेग से उमड़ता हुआ मुक्त आलोक में प्रवाहित हो पड़ा है।'

> भाङ रे हृदय भाङ रे बाधन,
> साध रे आज के प्राणेर साधन,
> लहरीर परे लहरी तुलिया
> आघातेर परे आघात कर।

मातिया जखन उठे थे पराण
किसेर आंधार किसेर पाषाण ।

(रे हृदय, आज बन्धनो को छिन्न-भिन्न करके अपनी अभिलाषा पूरी कर ले । लहर पर लहर उठाकर, आघात पर आघात करता चला जा । जब प्राण मतवाले हो उठे है तो कहाँ का अन्धकार और कैसा पाषाण ।)

दोनो कलाकारो का अन्तराल ही निर्झर बन गया है । प्रसाद का मानस विश्व के नीरव निर्जन में चमत्कृत हो उठता है। विश्वपति के आँगन में जब कभी कवि प्रार्थना की इच्छा मे विचारो का सकलन करता है, कामना के नूपुर झकृत हो उठते हैं । जीवन की यही उद्दाम लालसा समस्त गीतो में बिखरी हुई है । कवि अचल उठाकर कुछ देखने के लिये विकल है । प्रेम और भक्ति ने उसके प्राणो मे चेतना भर दी । उसी दिन तो उसका प्राण पपीहा बोला था । वातावरण मे एक मधुर-मधुर स्वर्गीय गान छाने लगा । अन्त मे कवि ने स्वयम् स्वीकार किया ।

सद्यः स्नात हुआ मै प्रेम सुतीर्थ में
मन पवित्र उत्साहपूर्ण-सा हो गया,
विश्व, विमल आनन्द भवन-सा हो गया ।
मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था । (झरना, पृष्ठ ६)

यही प्रेम कवि के गीतो का सर्वस्व हो जाता है । उसकी भावनाये इसी के चारो ओर फेरा करती है । प्रेमी के जीवन का प्रथम प्रभात हो चुका है । अब वह अपने और प्रियतम के बीच की प्राणो की दूरी को समाप्त करना चाहता है । वह अनेक अनुनय-विनय से अपने प्रियतम से द्वार खोलने का आग्रह करता है । उसे अधिक कामना नही है, केवल पैरो मे लिपट कर ही आकाक्षा की तृप्ति हो जायगी । वह कहता है ।

सुप्रभात मेरा भी होवे, इस रजनी का दुख अपार
मिट जावे जो तुमको देखूँ, खोलो, प्रियतम खोलो, द्वार ।

प्रेमी के इस आत्मसमर्पण मे निस्वार्थ प्रेम निहित है । वह अपने प्रियतम का चित्र बनाना आरम्भ कर देता है । इस सौन्दर्य की प्रतिमा को प्रणयी अपने प्राणो के निकट ला चुका है । प्रकृति का प्रत्येक कण उसे इसी प्रेम की खोज में पागल प्रतीत होता है । प्रेमी सोचता है—कभी तो अनायास ही फूल खिल उठेंगे, नयी कोपलो मे कोकिल किलकारेगा । उसी समय यदि एक क्षण भी पास बैठकर प्रियतम मदिरा मकरन्द पिला देगा, तो प्रणयी का समस्त जीवन सार्थक

है। उस दिन जब वसन्त अपनी अन्तिम झाँकी दिखला रहा था, कवि ने जिज्ञासा भरकर वसन्त से इस क्षण-क्षण परिवर्तन का कारण पूछा था। इस प्रश्न का उत्तर उसे नही मिलता। कुतूहल, जिज्ञासा गूजते ही रह जाते है। हृदय में करुणा और विषाद भर गया है। उसका स्वप्न सम्भवत जीवन के झझावातो में टूट चुका है। गोधूलि के मलिनाचल में कोई वनवासी वन में बैठा है। धनुष भग है, उसकी प्रत्यचा शिथिल, वशी नीरव, वीणा निस्पन्द। इस प्रतीक के द्वारा कवि ने निराश स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया। तममय अन्तरतम में स्मृतिया छाई हुई है। ठोकर खाकर निर्झर बिलख रहा है। अन्त में समस्त आन्तरिक पीड़ा अनुनय करती है।

> किसी हृदय का यह विषाद है,
> छेडो मत यह सुख का कण है।
> उत्तेजित कर मत दौडाओ,
> करुणा का विश्रान्त चरण है। (झरना, पृष्ठ १७)

प्रेमी के जीवन में अब केवल स्मृतियाँ ही शेष रह गई है। मिलन का क्षणिक स्वरूप चिरन्तन विदा में परिवर्तित हो चुका है। अतीत की स्मृतियाँ नीरव प्रहरो मे बड़ी सुखद लगती है। मनुष्य बारम्बार उन पलो को लौटा लाने के लिये मचल पड़ता है, जो किसी मूल्य पर भी नही मिल सकते। साक्षात प्रियतम अब आँखो से ओझल हो चुका है, अज्ञात बन गया है। कवि के हृदय मे कभी-कभी आशा की रेखाये दिखाई देने लगती है। हाफिज भी वियोग के एक क्षण को महत्व देते है।[१८] आशा कम किन्तु विश्वास अधिक है। प्रेम की पगडडी पीछे बिखरी हुई है। उस दिन जीवन का नव उल्लास दूर क्षितिज में जाकर सोता था। नवयौवन की प्रेम कल्पना के साथ ही विरह का तीव्र विनोद प्रेमी को प्राप्त हुआ। उसे वे दिन याद आते है जब उसका जीवन-स्रोत मन मारे चुप बहता था, उसमें कलकलनाद नही था, वह मन की बात न कहता था। किन्तु अनायास ही मन मुखरित होकर शान्त हो गया। वह जीवन की विजय थी, अथवा पराजय कौन जाने ? कवि प्रियतम को खोकर निर्जन की नग्न प्रकृति के सौन्दर्य पर मोहित होना

---

१८ दर्रे बागम बसर जहा यकसर नमी अरजद
बमै बफरोश दिल्के या कजीं बेहतर नमी अरजद (हाफिज)
(दुख में एक क्षण भी व्यतीत करना ससार के सम्पूर्ण सुखों से कहीं बढकर है। हमारी गुदडी को मदिरा से बदल ले। गुदडी का मूल्य उससे बढ़कर नहीं है।)

चाहता है, किन्तु मन साथ नही देता। प्रेमी अर्चना करता है। सम्भवत: मधुर मधु की वर्षा में भीग जाने से प्रियतम लौट आवे। उसे अपने प्रेम की तीव्रता पर विश्वास है। प्रेमी अपने अश्रुसलिल से प्रियतम का अभिसिंचन करेगा। काश, वे एक बार फिर आ जाते। अन्त में उसे अपना 'बिखरा हुआ प्रेम' स्पष्ट दिखाई देने लगता है। वह अकिंचन हो गया। प्रेमसुधाकर ही विलीन हो गया। कवि उस दिन की कल्पना करता है जब पुन मिलन होगा।

> बढ उमग सरिता आवेगी आर्द्र किये रूखी सिकता
> सकल कामना स्रोत लीन हो पूर्ण विरति कब पायेगी ?
>
> झरना, पृ० २५

प्रेमी का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है। भावावेश की मात्रा भी तीव्र है। कभी वह अतीत की स्मृतियो मे उलझता है, कभी प्राणो में जिज्ञासा भरकर प्रश्न करता है, कभी अनुनय-विनय से करुण हो उठता है। प्रियतम के चचल हृदय ने तो केवल खेल खेला और प्रणयी के लिये वह जीवन-मरण की समस्या बन गई। प्रेमी के हृदय मे एक विचित्र प्रकार का असन्तोष भर गया है। कभी कभी प्रसाद रीतिमुक्त कवियो की भाँति 'अनुनय' करते है

> हो जो अवकाश तुम्हें ध्यान कभी आवे मेरा
> अहो प्राणप्यारे, तो कठोरता न कीजिये।
> क्रोध से, विषाद से, दया या पूर्ण प्रीति से,
> किसी भी बहाने से तो याद किया कीजिये।

घनानन्द, देव का स्वर इस गीत मे तरगित हो उठा है। कभी कभी वे उर्दू शायरो की भाँति यह भी सोचने लगते है कि जीवनधन का औरो के प्रति प्रेम है। उस अवसर पर प्रेम अपने ऐन्द्रियस्वरूप मे प्रकट हो जाता है। प्रेमी प्रेम-पिपासा मे दौड़-दौडकर थक गया है। मृग-मरीचिका की आशा में हृदय खूब भटक चुका है। प्रियतम के केवल एक चुम्बन मात्र से वह पिपासा शान्त करना चाहता है। अँग्रेजी कवि मार्लो ने भी कहा था—मधुर सुन्दरी, मुझे एक चुम्बन से अमर कर दो।[१५]

धीरे-धीरे कवि की भावनाएँ विकास की ओर बढती जाती है। 'स्वप्नलोक' में ही प्रियतम का दर्शन होता है। जागरण के साथ ही वह चला जाता है। रीतिकालीन कवियो की 'निगोड़ी नीद' भाग्य को सुला देती है, किन्तु यहाँ यह छायावादी कवि का जागृत स्वप्न है, जिसे अपनी कल्पना मे वह प्रत्येक क्षण

---

१५ Sweet Helen, make me immortal with a kiss—Marlowe

देखता रहता है। प्रियतम उसकी आखो से दूर है, किन्तु प्राणो के अत्यधिक समीप। निर्मल जल पर जब सुधाभरी चन्द्रिका बिछल जाती है, नीरव व्योम में वशी की स्वर-लहरी गूज उठती है, मोहन-मुख का दर्शन होने लगता है। धीरे-धीरे प्रणय निवेदन व्यापक होने लगता है। प्रकृति के अणु-अणु, कण-कण, और समस्त विश्व में प्रियतम दिखाई देता है। 'प्रेमपथिक' का प्रियतम-मय विश्व' 'झरना' में भी स्थान ग्रहण करता है। किसी आध्यात्मिक आवरण से कवि प्रेम-ज्वाला का अन्त नही कर देना चाहता। वह इस प्रेम को विश्व-व्यापी बना देता है। वह जीवन के कठोर धरातल से ही ऊपर उठता है।

प्रियतम का परोक्ष मिलन ही काव्य में छाया-चित्र प्रस्तुत करता है। प्रकृति के प्रत्येक अश में उसी की सत्ता है। यह अज्ञात प्रियतम रहस्यमय है। कभी-कभी कवि पूरी प्रणय कथा मन ही मन दुहराता है। एक दिन उसे अनायास ही न जाने कहाँ से शक्ति मिल जाती है, हृदय की निराशा रुक जाती है। वह उसी प्रकार वेदना से निकल जाने को आतुर है, जैसे घटा से नवचन्द्र। लौकिक धरातल का प्रियतम रहस्यमय होने के साथ ही परम प्रकाश बन जाता है। प्रेमी काली-काली अलको और नीली आँखो मे नही उलझता, उसने हृदय का सौन्दर्य पा लिया है। उसे सर्वत्र सौन्दर्य दिखाई देता है।

> एक से एक मनोहर दृश्य
> प्रकृति की क्रीडा के सब छन्द
> सृष्टि में सब कुछ है अभिराम
> सभी में उन्नति है या ह्रास

प्रिय की आकाक्षा है कि प्रियतम भी देख ले कि उसका प्रेमी सृष्टि की मधुधारा में स्नान कर रहा है। युगो से प्रेमियो की यह कामना रही है कि प्रिय दूर रहकर भी उसका सन्देश लेता रहे। आज सृष्टि के कण-कण में प्रियतम का सौन्दर्य मिल रहा है। वह स्वय आकर यदि अपना रूप देख लेता, तो आसक्त हो जाता। मन्दाकिनी कोमल कलगान करती जा रही है। समय बीतता चला जा रहा है। दिवस, मास, वर्ष सभी एक-एक करके भागे जा रहे है। होली भी आ गई। आकाश मे तारो के फूल बरसते है, चाँदनी घुली हुई है, तितली के पख बिछलते है। उधर होलिका जली जा रही है, इधर प्रेमी के हृदय में ज्वाला। कवि कहता है—विश्व में शीतलता दान करने के लिये आन्तरिक वेदना को प्रसारित करना होगा।

सर्वत्र कवि प्रियतम की छाया देख रहा है। एकान्त मे वह निर्जन प्रकृति के शान्त रूप में उसे देखता है। झील में उसी की परछाई है। नभ, शशि, तारा

सभी झील मे प्रतिबिम्बित है, प्रिय का प्रियतम भी उसके हृदय मे आ गया है। कवि जीवन के उत्थान पतन में तात्विक निष्कर्ष पर पहुँच गया है कि सर्वत्र प्रियतम की छाया है। 'गीताजलि' की भी छाया प्रसाद की इन पक्तियो पर दिखाई देती है।

प्रार्थना और तपस्या क्यों ?
पुजारी किसकी है यह भक्ति
डरा है तू निज पापों से
इसी से करता निज अपमान (झरना, पृष्ठ ६४)

पुजारी यह मन्त्रोच्चारण, भजन और माला का जाप छोड़ दे। मन्दिर के कोने में किवाड़ बन्द कर तू किसकी पूजा कर रहा है ? अपनी आख खोलकर देख, तेरा ईश्वर तेरे सामने नही है[१६]।

रवीन्द्र की पक्तियो में धार्मिक आडम्बर के प्रति एक विद्रोह की भावना है किन्तु प्रसाद स्वयम् अपने मन को समझा रहे है। वे आगे की ओर बढना चाहते है। अब कवि किसी भी कृत्रिमता को अपने पास नही आने देना चाहता। उसे एक सत्य मिल गया है, जिसे किसी भी मूल्य पर न छोड़ेगा। उसे विश्वास है कि उसका हृदय शुद्ध सुवर्ण हृदय है। प्रियतम तो एक अतिथि था, आकर चला गया। सुधा में एक क्षण के लिये गरल भी तो मिल गया था। कवि जीवन-दर्शन को अपना चुका है, फिर भी कभी-कभी उस अतीत की याद हो ही आती है, वह भूलकर भी नही भूल पाता। 'वसन्त' मे वह कह उठता है।

मलयानिल पर बैठे आओ धीरे-धीरे नाथ
हँसते आओ सुमन सभी खिल जायें जिसके साथ।
मत झुकना हम स्वयं खड़े है माला लेकर राज।
कोकिल प्राण पंचमी स्वर लहरी में गाता आऊँ

झरना, पृष्ठ ८२

गीतों का स्वरूप—

इस प्रकार 'झरना' के गीतो में नवयुवक कवि के भावुक जीवन की कथा निहित है। उसकी प्रेरणा व्यक्तिगत अनुभूति है, जो उसे जीवन में प्राप्त हुई।

---

१६. Leave this chanting and singing and telling of beads whom dost thou worship in this lonely dark corner of a temple with doors all shut ? Open thine eyes and see thy God is not before thee.

—Gitanjali

अभी कवि में इतनी शक्ति और साहस नही है कि वह हृदय खोलकर रख सके। वह अपनी भावना पर अनेक प्रकार के आवरण चढाना चाहता है। उसे एक छाया रूप प्रदान करने में भी यही भावना काम करती है। अभी तक वह दर्शन के कारण गीतिकाव्य को उसके उत्कृष्ट स्वरूप में न प्रस्तुत कर सका। 'झरना' में भी भावना और अभिव्यक्ति के बीच कवि का स्वभावगत सकोच एक व्यवधान प्रस्तुत कर देता है। जहाँ कही वह अत्यन्त स्पष्टवादी हो जाता है, गीतो का स्तर साधारण होने लगता है, भावो में गाम्भीर्य नही रहता। उसमें कवि का अन्तरतम साथ नही चलता।

किसी पर मरना यही तो दुख है
उपेक्षा करना मुझे भी सुख है . ...

आदि गीतो मे अभिव्यक्ति की सरलता होते हुये भी भावानुभूति की वह गहराई नही जो कवि के गीतो का प्राण होती है। 'झरना' के गीतो की प्रेरणा कवि के व्यक्तिगत जीवन से अधिक सम्बन्ध रखती हैं। उसपर किसी प्रकार के रहस्यवाद की छाप लगाने का प्रयास उसके साथ अन्याय होगा। हाँ, छाया चित्रो और अशरीरी रूप के कारण कही-कही रहस्याभास अवश्य हो सकता है। शेली भी 'अज्ञात का स्वप्न' देखता है, किन्तु उसे रहस्यवाद कहना भूल होगी। प्रेम में स्वयम् एक ऐसी स्थिति आ जाती है, जब कि प्रेमी आत्मविस्मृत हो जाता है। शेली कहता है

'मै उस स्थान की ओर तेजी से भागा, जहाँ से मै आया था, ताकि उन्हें सुन्दर प्रहरो को उपहार में दे सकू, किन्तु किसे ? कवि को स्वयम् ज्ञात नही[१७]।'

प्रसाद के इन प्रणय गीतो में मिश्रित भावनाये विखरी हुई मिलती हैं। प्रकृति के प्रत्येक रूप को अब वह उसकी वास्तविकता में नही देख पाता। कभी प्रकृति प्रियतम के सौन्दर्य का शृंगार करती है, कभी कवि उसी मे प्रियतम का आभास पा जाता है। इस प्रकृति में प्रसादजी कालिदास की भाति तन्मय नही हो जाते, जिनका दुष्यन्त प्रकृति का चित्र बनाकर ही शकुन्तला को निकट ले आता है। वह सानुमती से कहता है .

कार्या सैकतलीन हसमियुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरो पावना

---

१७ I hasten'd to the spot whence I had come,
That I might these present it—O to Whom ?
—Shelly—A Dream of the Unknown.

शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निमार्तुमिच्छाम्यधः
शृंगे कृष्ण मृगस्य वामनयनं कराडयमाना मृगीम् । (६-१७)

(अभी मालिनी नदी वनानी है, जिसके वालुका तट पर हंस के जोड़े बैठे हो । उसके दोनों ओर हिमालय की वह घाटी भी दिखानी है जहाँ हरिण बैठे हुये हो । मै एक ऐसा वृक्ष भी खीचना चाहता हूँ जिस पर वल्कल वस्त्र टगे हो और उसी के नीचे एक हरिणी अपनी बायी आँख काले हरिण की सीग से रगड़कर खुजला रही हो ।)

गीतो की दृष्टि से 'झरना' एक प्रयोगशाला है । प्रसाद ने अनेक प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया । भावना की गहराई मे कवि जाने लगा है । उसे प्रेरणा का एक ऐसा स्रोत प्राप्त हो गया, जो कभी शुष्क नही हो सकता । धीरे-धीरे कवि आत्माभिव्यक्ति की ओर अग्रसर हो रहा है । इस प्रकार 'झरना' में सुन्दर गीतिकाव्य की आशा दिखाई देने लगती है । वहाँ कवि का एक व्यक्तिवादी स्वरूप ही सम्मुख आता है । आख्यानक कविताओ मे वह जिन मानवीय भावनाओ का चित्र बना चुका था, वही भावना गीतो में आकर केन्द्रित हो जाती है । इन छोटे-छोटे गीतो में व्यक्तिवाद को व्यापक बनाने का भी प्रयत्न है । उसने प्रकृति और मानव का भेद समाप्त कर दिया है । प्रकृति के प्रत्येक क्रिया व्यापार मे परम सत्ता की छाया दिखाई देने लगती है । यह अज्ञात किसी एकाकी साधना अथवा आध्यात्मिक पूजन से सम्बन्धित नही है । कवि जीवन के प्रति एक उदात्त भावना बना लेता है । बौद्ध दर्शन का 'बहुजनहिताय बहुजन सुखाय' साकार हो उठा है । 'झरना' के कवि ने एक नवीन दिशा ग्रहण की है । 'प्रेमपथिक' का आदर्शवादी प्रेम जीवन के कठोर धरातल पर ठहर नही सकता था । 'झरना' का प्रेम अधिक स्वाभाविक, सजीव और मासल है । वह अपनी करुणा से ससार का मगल करेगा । किन्तु अब भी 'झरना' के गीत किसी सुनिश्चित दिशा की सूचना नही देते । मन्दाकिनी की भाति उछलती-कूदती इन भावनाओ में गति है, जीवन है, आवेग है, किन्तु अब भी लक्ष्य का आभास नही मिलता । स्वयम् कवि के हृदय में अनेक शकायें उठ रही है, जिनका समाधान नही हुआ । काव्यविकास की दृष्टि से 'झरना' में निर्झर की सी स्वच्छन्दता है, जो जीवन से अनुप्राणित है । परिष्कृत कल्पना, सुन्दर उपमा, सरस भावना उसमें आभाषित है । कवि किरण से कहता है ।

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज, रंगी हो तुम किसके अनुराग
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान, उड़ाती हो परमाणु पराग ।

धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश, मधुर मुरली सी फिर भी मौन
किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती सी तुम कौन।

*   *   *

चपल! ठहरो कुछ लो विश्राम, चल चुकी हो पथ शून्य अनन्त
सुमन मन्दिर के खोलो द्वार, जगे फिर सोया वहां वसन्त।

झरना, पृष्ठ १४

इस प्रकार कवि ने प्रकृति का मानवीकरण कर दिया है। गीतो में सुन्दर व्यजना दिखाई देती है। प्रसाद प्रेम और सौन्दर्य की सरस भावनाओ के कवि है। इसी को वे आनन्द का मूल तत्व भी मानते है। 'झरना' के कवि ने केवल प्रणय गीत ही नही गाये है। वह किसी तथ्य को भी खोजता है। जीवन का झझावात अब भी यद्यपि पूर्णतया शान्त नही हो सका, किन्तु ज्वार उतरने लगा है। 'झरना' में अनेक सुन्दर चित्र कवि ने प्रस्तुत किये है। 'विषाद' के विषय में उन्होने कहा ·

कौन प्रकृति के करुण काव्य सा वृक्ष पत्र की मधु छाया में
लिखा हुआ सा अचल पडा है, अमृत सदृश नश्वर काया में।

*   *   *

निर्झर कौन बहुत बल खाकर बिलखाता ठुकराता फिरता ?
खोज रहा है स्थान धरा में, अपने ही चरणों में गिरता।

झरना, पृष्ठ १७

लहर—

'लहर' के प्रगीतो में प्रसाद की प्रौढ़ता अधिक निखर गई। इसके पूर्व 'आंसू' मे वह अपनी आन्तरिक अभिव्यक्ति कर चुका था। 'लहर' में कवि एक चिन्तन-शील कलाकार के रूप मे सम्मुख आता है, जिसने अतीत की घटनाओ से प्रेरणा ग्रहण की है। प्रसाद के सुन्दर गीतो की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उनमें केवल भावोच्छ्वास ही नही रहते, जिनमें प्रणय के विभिन्न व्यापार हो, किन्तु एक स्वस्थ जीवन-दर्शन की नियोजना भी होती है। कवि अनुभव के द्वारा सिद्धान्तो का निरूपण करता है। व्यक्तिगत अनुभूति व्यापक जीवन दर्शन की ओर उन्मुख होने लगती है। अपनी ही आकाक्षाओ से वह सम्पूर्ण सृष्टि का मूल्याकन करने में सफल होता है। 'लहर' का कवि यौवन का झझावात और जीवन की विषमता देख चुका था। वह अपने व्यक्तिगत सुख दुख में डूब जाने का अधिकार छोड़ देता है। चारो ओर बिखरी हुई करुणा के शृगार का प्रयत्न

करता दिखाई दे रहा है। रूप-चित्रण मे उसे अद्वितीय सफलता मिली है। प्रणय-गीतो के अतिरिक्त 'लहर' मे ऐतिहासिक और दार्शनिक चित्र भी मिलते हैं। वे सम्भवत: बौद्ध दर्शन के दु:खवाद और करुणा से प्रभावित हैं। 'सब्ब दुक्ख दुक्ख' को स्वीकार करनेवाले इस भावुक कलाकार ने ससार मे जहाँ चारो ओर निराशा और दीनता देखी, वही उसका अन्तिम समय तक उपभोग करने को कहा। अपने प्रथम चरण मे केवल 'शिव तत्व' को ही स्थान देने वाला कवि अन्य दर्शनो की ओर भी जा रहा है। इस दिशा-परिवर्तन मे प्रसाद अपने आदर्श नही बदल देते। उनमे सामजस्य और समन्वय की अद्भुत शक्ति थी जो समस्त साहित्य मे मिलती है। वे प्रत्येक अनुभव, ज्ञान और दर्शन का उपयोग करते जाते है किन्तु उसके मूल तत्व निश्चित है। ऐतिहासिक कथानको की ओर कवि की आरम्भ से ही अभिरुचि रही है। 'लहर' मे उसने इन ऐतिहासिक खडो मे जीवन ही फूक दिया है। कवि की कल्पना गीतो मे अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य मे प्रस्तुत हुई है।

'लहर' के आरम्भ मे ही कवि अपने अन्तस्तल को खोलने का प्रयत्न कर रहा है। 'लहर' कवि की अन्तरतम भावना का प्रतीक है। सागर के विशाल वक्षस्थल पर उठनेवाली अगणित लहरें उसके अन्तस्तल को छू लेती है। तूफान के समाप्त हो जाने पर ये ही छोटी-छोटी लहरियाँ हिलती डोलती रह जाती है। 'आँसू' यदि प्रसाद के जीवन की हलचल है, तो 'लहर' उसकी शान्ति। वह कवि की आन्तरिक दशा का प्रतीक है। कवि सम्भवत. शिथिल हो गया है और उसका मन एक क्षण विश्राम करना चाहता है। किन्तु जीवन मे विश्राम कैसा? मन को अनेक प्रकार की सान्त्वना देकर वह अपना आगामी चरण रखने के लिये प्रयत्न-शील है। प्राणो मे माधुरी और स्नेह भरकर वह आन्तरिक लहर को दुलारता है, मानो लोरियाँ ही गा उठा हो।

उठ-उठ री, लघु-लघु, लोल लहर।

अब भी हृदय में भावना है, भावना मे पवित्रता और गति है। सुप्तावस्था के बाद भावनायें अगड़ाई लेकर ही उठ सकती है। वह तो जीवन की एक मूर्च्छना थी और अब फिर उसी चेतना को पा लेना आवश्यक है। इस नवीन चेतना मे करुणा की मृदुल भावना होगी। 'प्रिय के वियोग में जो दुख होता है, उसमें कभी-कभी दया या करुणा का भी कुछ अश मिला रहता है।'[१८] कवि के नये चरण मे नवीनता करुणा और चेतना होगी। कवि देखता है कि केवल उसका ही अन्तर

---

१८. चिन्तामणि, भाग १, पृष्ठ ४८

मन नही, किन्तु ससार का कण-कण सूखा पड़ा है। अपनी प्राण लहरियो से वह ससार में सहानुभूति वितरित करने की अनुनय करता है। फिर, जीवन में निराशा कैसी ? अनुभव अमूल्य है—जीवन की थाती। जीवन के इस खेल में जय-पराजय तो लगी ही रहती है, इसकी क्या चिन्ता ? कोमल भावनायें ही जीवन की सज्जा बन सकती है। शीतलता, कौमार्य का कम्पन ही दग्ध वसुधा में हरीतिमा भर सकता है। बचपन का नैसर्गिक, भोला, हठीला रूप ही इसका प्रतीक है। कवि आश्चर्य करता है, स्वयम् अपनी निराशा पर, बरबस ही कह उठता है—

तू लौट कहा जाती है री :
यह खेल खेल ले ठहर ठहर

रवीन्द्र की लहरियाँ भी अतीत की पराजय, अनन्त अन्धकार से बढकर असीम ज्योति तक जाती है[१९]। गेटे की भी करुणा अन्त में विजय प्राप्त करती है जब कि प्रेम और वासना दूर हो जाते है[२०]।

जीवन उत्थान-पतन का ही दूसरा नाम है। मिट-मिट कर भी निर्माण होता है, गिर गिर कर ही मनुष्य आगे बढना सीखता है। अपने आप ही गिर पड़ने वाला प्रेमी अपने ही हाथो उठना चाहता है। पीछे पदचिह्न पड़े है किन्तु अभी तो आगे की मजिल भी शेष है न। लहरियो को सदा पदचिह्न बनाते हुये आगे बढते जाना है। सिकता पर भी रेखायें बन जायँ, मरुस्थल के शुष्क प्रदेश में सिहरन हो उठे। कवि की भाव लहरियाँ ही ससार के नीरस वातावरण में सरसता भर सकती है। रस सचार की इतनी महान क्षमता रखने वाले इस अन्तरतम को केवल अतीत की स्मृतियो से कैसे उलझा दिया जाय ? तभी कवि कहता है —

तू भूल न री पकज वन में
जीवन के सूनेपन में,
ओ प्यार पुलक से भरी ढुलक।
आ चूम पुलिन के विरस अमर।

---

१९ The great stream, from the tumult of the past which ties behind, to the bottomless dark, to the shoreless light

—Rabindra, page 239.

२०. Love and passion on slip away,
Loving kindness wins alway

—Gentle Reminders—3.

शतदल मे बन्दी भ्रमर अपना गान परिमित कर देता है, किन्तु कवि अपने गीतो मे करुणा भर कर ससार को मुखरित कर देने की कामना करता है। इनमें मधु भर कर वह जीवन मे सरसता ला देगा। धरा के कण-कण मे अतृप्ति और वेदना है। समस्त मानवता प्रेम की भूखी है। कवि इस प्रथम गीत में ही समष्टि की ओर उन्मुख है। अपनी व्यक्तिगत आन्तरिक अनुभूति से वह ससार का मगल चाहता है। इसलिये वह मन प्राणो को मना रहा है।

प्रबन्ध-काव्य की भाति गीतो मे किसी क्रमिक भाव विकास का मिलना प्राय कठिन होता है। प्रत्येक गीत मे एक भावना घनीभूत होती है, जो कवि की विशेष मनोदशा का परिचायक होती है। गीत सग्रह के चित्रो में विविधता मिलती है। उसका रूप सप्तवर्णी, इन्द्रधनुष की भाँति होता है। 'लहर' के गीतो में मेघाच्छन्न आकाश के बाद आनेवाली शरत् की प्रसन्न छवि अकित है। कवि अतीत को बिल्कुल भूल नही सका। प्रियतम को स्मृतियो मे बन्दी बनाकर वह आगे की ओर जीवन में सभी का शृगार करता बढ रहा है। प्रियतम अब अलको के अन्धकार में नही छिप सकता। प्रेमी ने उसे प्राणो मे बसा लिया है। अब वह कुतूहल और जिज्ञासा की वस्तु नही रह गया, चिर परिचित हो गया। कवि के अन्तरतम मे ही प्रियतम वास कर रहा है। रूमी ने भी कहा है

निगह करदम अन्दर दिलेखेश्तन
दरो जाश दीदम् दिगर जां न बूद। (दीवान, ५)

(अन्त मे मैने अपने हृदय के कोने मे दृष्टि डाली। देखता क्या हूँ कि वह वही पर उपस्थित है। दूसरे स्थानो मे व्यर्थ भटकता रहा)

प्रेमी ने अपने प्रेम को व्यापक बनाकर ही इस स्थिति को पाया है। महादेवी का प्रिय उन्ही मे वास करता है, इसी कारण वे परिचय नही प्राप्त करनी चाहती[२१]। कवि ने जिस प्रिय-प्रियतम सम्बन्ध की परिभाषा की है, उसमे सत्य और शिव का समावेश है। अब तक प्रियतम केवल इसी कारण आँखमिचौनी खेलता रहा, क्योंकि प्रेमी ने अपने अस्तित्व को विलग रक्खा था। आज कवि ने इस रहस्य को जान लिया है, उसका प्रिय उसके अन्तर मे ही बन्दी है। तभी कहता है :

तुम हो कौन और मैं क्या हूँ ?
इसमें क्या है धरा, सुनो।
मानस जलधि रहे चिर-चुम्बित
मेरे क्षितिज उदार बनो।

---

२१. प्रिय तुम मुझ में फिर परिचय क्या ?—महादेवी

कवि ने प्रियतम से जो अनुनय विनय की है, उसे ही वह अपने भी जीवन में स्थान देता है। मन आकाश की भाँति उदार रहे। प्राणो में सागर की-सी गहराई हो।

'हस' के आत्मकथाक में प्रकाशित कविता प्रसाद के आन्तरिक पक्ष पर प्रकाश डालनी है। इस आत्मकथा मे कवि के व्यक्तिगत जीवन का आभास मिल जाता है। उसने छाया रूपको के द्वारा अपनी आन्तरिक पीडा को छिपाने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु असम्भव। कवि का यह प्रियतम इसी पृथ्वी का वामी है, उसे किसी प्रकार का रहस्यमय स्वरूप प्रदान करना भूल होगी। स्वयम् प्रेम एक रहस्यमय वस्तु है, जिसे जानने के लिये मानव आजीवन प्रयत्नशील रहता है।

इसी के साथ प्रेमी वारम्वार विभिन्न रूपो में अपनी प्रणय कथा कहता जाता है। प्रणय का भिखारी आज जब वह पुन अपने द्वार पर लौट आया है, भिक्षा-गीत के द्वारा कहानी कह रहा है। उस दिन जीवन के पथ में प्रणयी चला जा रहा था। कम्पित करो मे छिन्न पात्र और अधरो पर मधु भिक्षा की रटन थी। निकट का नगर भी अनजान था, पथिक अकिंचन। निस्स-देह यह भूल ही थी। अकिंचन मधु की भीख चाहता था। उस दिन मधु की सरिता ही उमड़ आई। भिखारी के पास स्वयम् कोई भिक्षा माँगने चला आया था। प्रकृति का समस्त वैभव उस सगम पर प्रफुल्लित हो उठा। फूलो की पखु-रियाँ खुल गई, आखो का खेल चला, हृदयो ने सौरभ का दान दिया, और पागल मन विकल हो उठा। हृदय के छोटे-से पात्र मे वह सौन्दर्य, स्नेह-रस कैसे समा सकता था? प्रणयी उस अतीन्द्रिय मधुवन को देखकर स्वयम् आश्चर्य चकित था। उसी के शब्दो मे—

छिन्न पात्र में था भर आता
वह रस बरवस था न समाता
स्वय चकित-सा समझ न पाता
कहाँ छिपा था ऐसा मधुवन। (लहर, पृष्ठ १८)

उस दिन तो रस वर्षण हो रहा था। मनु ने भी श्रद्धा मे इस अवसर पर यही कहा था।

'क्षुद्र पात्र इसमें तुम कितनी, मधु धारा हो डाल रही'

कवि एक कुशल शब्दशिल्पी की भाँति सुन्दर साकेतिक भाषा में, मृदुल रूपको के द्वारा करुण गाथा कह जाता है। इन छाया-सकेतो में उसे सफलता प्राप्त हुई है।

प्रेमी प्रियतम की आँखो के भोलेपन पर रीझ उठा था। शैशव नैसर्गिकता, शुचिता का प्रतीक है। प्रियतम की आँखो मे शैशव की नैसर्गिकता थी, उसी की चपलता। इसी बाल-चापल्य ने तो अल्हड़ खेल खेला, आँखमिचौनी। आज जब वह खेल समाप्त हो चुका, तब प्रणयी को प्रत्येक घटना याद आ रही है। आँखो की चचलता पर फारसी और उर्दू के शायरों ने बहुत कुछ लिखा है। समस्त प्रणय विषमता का आदि अन्त नेत्र ही है। कवि आँखो के बचपन, उसके भोलेपन पर रीझा था, शोखी पर नही। उसने आज सारल्य को ही अपना धन मान लिया है। अपनी आँखो मे ही वह उसे बसा लेना चाहता है, तभी तो अनुनय करता है।

मेरी आंखों की पुतली में
तू बन कर प्राण समा जा रे!

जिस प्रियतम ने उसे निराशा दी है, वही उसे जीवन का गीत सुनाये, यही प्रणयी की कामना है। ससार भी स्तम्भित रह जाय उस पुनर्मिलन को देखकर। अब वह प्रियतम को केवल अपने बाहुपाशो मे जकड़कर नही रखना चाहता। वह प्रार्थना करता है कि 'जीवन धन इस जले जगत को वृन्दावन बन जाने दो'। हृदय के अन्धकार के लिये वह ज्योति की भिक्षा चाहता है। प्रणयी शशि सी सुन्दर रूपविभा नही देखना चाहता, वह नभ के अभिनव कलरव में अपना अनुराग फैला देने की आकाक्षा रखता है। वह अब भी प्रेम करना नही छोड़ देता, किन्तु किसी व्यक्ति को ही स्नेह दान करने वाला प्रणयी ससार भर के प्राणियो पर रीझ उठा है। लौकिक जीवन की यह सार्वभौमिकता दर्शन के क्षेत्र मे अद्वैत भावना का सृजन करती है। शैवागमो का आभासवाद भी इसी सत्य पर आधारित है। काव्य मे यही छायावाद का जीवन-दर्शन है। सूफी कवि इसी लौकिक प्रेरणा से अलौकिक और आध्यात्मिक स्तर पर चले जाते हैं, जो काव्य मे रहस्यवाद को स्थान देता है।

कवि मानस की गहराई में उतरता चला जा रहा है। सौन्दर्य के बाह्य आकर्षण को छोड़कर, वह अन्तस्तल में प्रवेश करता है, और वही तो शान्त, शीतल, पारदर्शी सौन्दर्य है। उसका विषाद दूर हो चुका है। भ्रम दूर हो गया, अब वह हँसना चाहता है, और अपने साथ ही प्रकृति को भी हँसाने की कामना करता है। इस प्रगतिशील चरण को चिरन्तन गति देने के लिये प्रणयी अपनी करुणा को अनेक प्रकार की सान्त्वना देता है। सन्ध्या के प्रहरो में उदास मन को देखकर वह सहज ही कल्पना कर लेता है कि यह अतीत की विकल वेदना का परिणाम है? अकिंचन से वह अनुरोध करता है कि तू अपना करुण स्वर छोड़-

कर बढ जा, सोने वाले जगकर अपने ही सुख का सपना देखें। वह अकिंचन मन को समझाता है—

पागल रे वह मिलता है कब
उसको तो देते ही है सब

प्रेम में प्रतिदान नही मिलता। प्रेम में तो देना ही देना रहता है, लेना कुछ नही। सागर की लहरें युगो से किसी के लिये मचल रही है किन्तु निष्फल। सृष्टि का कण-कण कराह रहा है—'मुझको न मिला रे कभी प्यार'। बस, इसी कारण कवि समस्त वसुधा पर अपनी करुणा बिखेर देता है। अपलक जगती हुई रात की छाया मे समस्त पीड़ित विश्व विश्राम करता रहे। वसुधा के अचल पर कन-कन-सी बिखरी हुई ओस की बूदें अम्बर की करुणा है। वे आंखो के आंसू जगती को शीतलता प्रदान करते है। यही कवि की जागृत प्रेरणा है। वह भी नयनो के उज्ज्वल मनहर आंसू से धरणी का सन्ताप हरेगा। वह उद्बोधन गीत गा उठता है—

अब जागो जीवन के प्रभात!
वसुधा पर ओस बने बिखरे
हिमकन आसू जो क्षोभ भरे
ऊषा बटोरती अरुण गात। (लहर, पृष्ठ २४)

पुरी के समुद्र दर्शन से अनुप्राणित कविताओ का गम्भीर दर्शन 'लहर' के प्रणय गीतो का चरम विकास है। व्यक्ति के स्थान पर कवि युग को देख रहा है। प्रसाद की समस्त प्रेमाभिव्यक्ति मे इसी गम्भीरता की छाया है, कही भी उच्छृङ्खलता नही। कवि नाविक से भुलावा देकर, जिस निर्जन एकान्त में ले जाने का निवेदन करता है, वह जीवन के प्रति पलायनवाद नही है। इस एकान्त में वह किसी महान निर्माण की कल्पना करेगा, जिसमे वह ससार को अमर जागरण का दान दे सके। सासारिक विषमताओ के बीच सम्भवत वह आत्मा का सूक्ष्म सगीत न सुन पाये। महादेवी भी एकान्त साधना करती है[२२]। 'लहर' मे कवि के साधारण प्रणयी रूप का दर्शन नही होता। उसने जीवन को गाम्भीर्य के साथ ग्रहण किया है। वह नीचे, गहराई में उतरता जा रहा है और आगामी चरम विकास की सूचना दे रहा है। 'प्रसाद' के ये गीत स्वच्छन्दतावादी कवियो के साधारण भावावेशी प्रणय गान नही है। उनमे आन्तरिक अनुभूति के साथ ही

---

२२ यहा मत आओ मत्त समीर

एक व्यापक दृष्टिकोण है, जो उन्हे 'कामायनी' तक ले जा सका। भावों की अभिव्यक्ति मे भी उन्होंने प्रतीको की छाया का अवलम्बन ग्रहण किया है। एक ओर इन प्रतीको ने जहाँ उन्हे शृगार का परिष्कार करने मे सहायता दी, वही कवि निरन्तर स्वस्थ जीवन-दर्शन की ओर बढता गया।

मूलगन्ध कुटी विहार, सारनाथ के उपलक्ष्य मे लिखी गई कविता में बौद्ध दर्शन की छाया है। कवि आरम्भ से ही बौद्ध दर्शन की करुणा से प्रभावित था। वरुणा की शान्त कछार इसी करुणा का प्रतीक है। 'विराग का प्यार' के विरोधाभास से कवि ने सुन्दर व्यजना की है। बौद्ध दर्शन के प्रतिपादन का भी किंचित प्रयत्न किया गया है। स्वर्ग से वसुधा की शुचिसन्धि का प्रयास, मस्तिष्क हृदय का अविकार, दु ख निदान आदि का सफल प्रयत्न बौद्ध दर्शन ने ही किया था। गौतम व्यथित विश्व की सजीव चेतनता बनकर अवतीर्ण हुये थे। कवि के शब्दो मे—

वे थे पुनीत परमाणु, दया ने जिनसे सृष्टि बनाई थी

अन्य कविताएं—

'अशोक की चिन्ता' कविता भी बौद्ध दर्शन से ही प्रभावित है। कलिंग विजय में भीषण नर-सहार देखकर सम्राट अशोक के मन मे विरक्ति की भावना भर गई थी[२३]। वह स्वय अपने कार्य पर पश्चात्ताप करता है, उसे क्षोभ होता है। यह जीवन पतग जलता जा रहा है। जीवन भी तो दो क्षण का ही है न। फिर तृष्णा और पिपासा के लिये इतना रक्तपात क्यों? आज मगध का सिर ऊंचा हो गया, विजित पद-तल मे गिरा पड़ा है, किन्तु दूर से आती हुई क्रन्दन ध्वनि विजयी का अभिमान भग कर देती है। यह वास्तविक विजय नही है। रक्त की धार बहाकर ही कलिंग नतमस्तक किया जा सका। शासन तो मानव के मन पर होना चाहिये। जीवन की नश्वरता मे मानव को सुखी किया जाय। जीवन की अस्थिरता के विषय मे अशोक सोचता है—

---

२३ According to Buddhist tradition Asoka was converted to Buddhism by the venerable monk Upagupta shortly after the Kalinga war In the Rock Edict. XIII, Asoka expresses genuine remorse for the sufferings caused by the war in the most touching language ...

The Age of Imperial Unity—Page 74.

वैभव की यह मधुशाला
जग पागल होने वाला
अब गिरा उठा मतवाला,
प्याले में फिर भी हाला,
यह क्षणिक चल रहा राग रग (लहर, पृष्ठ ४७)

कुछ क्षण के पश्चात् उत्सवशाला निर्जन हो जायगी। नूपुर मालाओ में नीरवता छायेगी। मधुबाला भी सोने लगेगी। प्याला ढुलक जायेगा, वहाँ मृदग और वीणा न वजेंगे। दु ख ही तो चिरन्तन है, सुख तो कभी-कभी दुख-घन में चपला की भाँति चमक जाता है। मरु-मरीचिका के वन में चचल-मन-कुरग उलझ गया है। सूने पल छूटते जा रहे है, काल का निषग खाली नही होता। सृष्टि के कण-कण में इसी उदासी की छाया है। वायु इसी करुण-गाथा को गा रही है। ऊषा उदास आती है, पीला मुख लेकर चली जाती है। अन्त में कवि इस निष्कर्ष पर पहुचता है कि जब क्षण भर के मिलन के अनन्तर चिर वियोग है, तो इतनी तृष्णा क्यो ? वह स्वयम् अपने भावी कार्य की घोषणा करता है कि ससृति का पग विक्षत है, वह डगमग चली जा रही है, अब उसे अनुलेप सदृश लगना होगा, इस मग में मृदु दल बिखेरना होगा। अन्त में स्वयम् से, अपनी अन्तर्वृत्तियो का प्रकाशन करता हुआ, कहता है—

भुनती वसुधा, तपते नग
दुखिया है सारा अग-जग
कटक मिलते है प्रति पग
जलती सिकता का यह मग
वह जा वन करुणा की तरग
जलता है यह जीवन पतंग

अपने मानसिक झझावात मे अशोक इस महान आदर्श की स्थापना अन्त मे करता है। चित्त की अन्तर्वृत्तियो का सफल प्रकाशन कवि ने किया है। हृदय में उठने वाले विचारो का प्रतिपादन, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की कुशलता का परिचायक है। बौद्ध दर्शन की करुणा पर आधारित इस कविता में प्रसादजी ने सूक्ष्मतम भावनाओ का अकन किया है और कवि का प्रगतिशील रूप उसमे देखा जा सकता है।

'शेरसिह का शस्त्र समर्पण' और 'पेशोला की प्रतिध्वनि' का आधार ऐतिहासिक है। जलियानवाला वाग में सिक्खो ने अँग्रेजी सेना का सामना किया। एक सिक्ख सेनापति ने जाति के साथ छल किया और शत्रुओ मे मिल गया।

उसने बारूद के स्थान पर आटे के गोले और लकड़ी भर दी। सिक्खों ने पराक्रम से युद्ध किया, किन्तु पराजित हुये। शेरसिंह ने अन्त में शस्त्र समर्पण किया। उसने सिक्खों की गौरव गाथा गाते हुये सतलज के तट पर मर मिटनेवाले वृद्ध वीरमूर्ति श्यामसिंह को याद किया। युद्ध में मृत्यु ही तो विजय होती है। युद्ध-भूमि युगों तक वीरत्व के गीत गाती रहेगी। मातृभूमि के सपूत प्राण की भिक्षा नहीं माँग सकते। वीर तो सभी कुछ त्याग कर सकते हैं प्रणयिनी के बाहुपाश दूध भरी दूध सी माँ की गोद। 'पेशोला की प्रतिध्वनि' भी अतीत गौरव का चित्र प्रस्तुत करती है। महाराणा प्रताप के इस प्रदेश में आज वह वीरता नहीं रह गई, केवल एक प्रतिध्वनि-सी उठकर रह जाती है। निर्धूम भस्म रहित ज्वलन पिंड की भाँति पेशोला का अरुण करुण बिम्ब ही दिखाई देता है। आज कोई भी भार को वहन करनेवाला व्यक्ति नहीं मिलता। केवल अरावली शृंग की भाँति समुन्नत सिर करके कोई नेपथ्य से पुकार उठता है,—मैं हूँ मेवाड़ में। अन्त में—

> गौरव की काया पड़ी माया है प्रताप की
> वही मेवाड़।
> किन्तु आज प्रतिध्वनि कहाँ? (लहर, पृष्ठ ५८)

दोनों ही अतुकान्त मात्राविहीन कविताओं की प्रेरणा भारतीय इतिहास का अतीत गौरव है। कवितायें राष्ट्रप्रेम से अनुप्राणित हैं। प्रसाद की राष्ट्रीय भावना किसी क्षणिक आवेश की भाँति नहीं है। उन्होंने इसमें चिरन्तन राष्ट्रीय भावनाओं को भरने का प्रयत्न किया है। भारतीय इतिहास का यह वैभव उन्होंने अपने नाटकों में और भी स्पष्ट किया।

प्रलय की छाया—

'प्रलय की छाया' सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सजीव रूप चित्र लेकर प्रस्तुत हुई है। नारी के अन्तरतम में रूप और यौवन को लेकर उठनेवाली आकांक्षा तथा क्षण-क्षण में परिवर्तित होनेवाली भावनाओं को अपनी तूलिका से चित्रित करने का प्रयत्न कवि ने किया है। चित्र के अनुकूल सुन्दर प्रतीकों का उपयोग किया गया है। गुर्जर की रानी कमला के मानस-पटल पर अतीत एक चित्रपट के लेख की भाँति आता जा रहा है। आज यौवन के ढलते प्रहर में वह सोच रही है,—उस उत्थान-पतन को वह देखती है—

थके हुये दिन के निराशा भरे जीवन की
सन्ध्या है आज भी तो धूसर क्षितिज में ।

लहर, पृष्ठ ५९

और उस दिन मैं अपने ही यौवन, सौन्दर्य से पागल हो उठी थी, जैसे मृग से कस्तूरी। मेरे यौवन को प्रकृति की विभूति सज्जित कर रही थी। नीली अलकें लहरो के समान मुझे चूमती थी, समीर मुझे छूकर ही साँस ले पाता था। मधुभार से चरण विजडित हो गये। यौवन, मादकता का भार लेकर, दो डग भी न चल सकी—अपरिमित थी वह मदहोशी। उस दिन तो मेरे रूप और सौन्दर्य का अभिषेक करने के लिये काम-बालायें स्वर्ग से उतर पड़ी। सौन्दर्य से भी सुन्दर उन गन्धर्व-नारियो को मेरे रूप पर बरबस ही मुसकराना पड़ा। समस्त गुजरात का कौमार्य मुझमे ही घनीभूत हो उठा था। स्वर्ग-कानन की अप्सराओ ने अरुण अधरो का चुम्बन किया, नूपुर झकृत हो उठे। जीवन के प्रथम मदिर पान मे ही मै मदहोश हो गई। मैने देखा—विश्व का वैभव मेरे चरणो पर लोट रहा था। और

बहती थी धीरे-धीरे सरिता
उस मधु यामिनी में
मदकल मलय पवन ले ले फूलों से
मधुर मरन्द बिन्दु उसमें मिलाता था।
चादनी के अचल में
हरा भरा पुलिन अलस नींद ले रहा। (लहर, पृष्ठ ६१)

मदिर यौवन भागा चला जा रहा था, सौन्दर्य की सुरभि लेकर। सृष्टि की समस्त स्निग्धता मुझे छू लेने के लिये व्याकुल थी। गुर्जरेश मेरे सकेतो पर चलते थे। अनायास ही नियति ने परिवर्तन किया। एक बार पुन सती पद्मिनी के आत्मगौरव की गाथाये गूज उठी। कुल की कन्याये अपने जीवन का भविष्य नये सिरे मे सोचने लगी। देव मन्दिरो की घटा ध्वनि भी मूक हो गई। उसी क्षण मैने सोचा—

पद्मिनी जली थी स्वय किन्तु मै जलाऊँगी
वह दावानल ज्वाला
जिसमें सुलतान जले।

किन्तु यह मेरी भूल थी। पद्मिनी का वाह्याकर्षण मुझ से कम हो सकता था, परन्तु मेरे पास वैसा हृदय कहाँ? हृदय की वह महानता और पवित्रता

मुझमें कहाँ थी ? मै केवल नेत्रो के तीन गुणो को लेकर ही सर्वत्र विजय प्राप्त करना चाहती थी[२४]

मुलतान का क्रोध गुजरात के हरे-भरे कानन को दावानल वनकर जलाने लगा। वालको की करुण पुकार, वृद्धो की आर्तवाणी, रमणियो का क्रन्दन भैरव सगीत वन गया। मै भी वीर पति के साथ देश की आपत्ति में कूद पड़ी। हम दोनो ही निर्वासित शरण खोजने लगे। एक दिन दुपहरी मे ही यवनो के दल से युद्ध करते मेरे गुर्जरेश दूर चले गये, और मै वन्दी हुई। एक क्षण के भुलावे मे आ गई, पद्मिनी का अनुकरण न कर सकी। उस आपदा मे भी रूप का ही ध्यान आया कि सुलतान भी तो यह रूप देखे और उसी के साथ अभूतपूर्व मृत्यु। क्षण क्षण मे विचारो का परिवर्तन हो रहा था

कभी सोचती थी प्रतिशोध लेना पति का
कभी निज रूप सुन्दरता की अनुभूति
क्षण भर चाहती जगाना मैं
सुलतान ही के उस निर्मम हृदय में
नारी मैं।
कितनी अवला थी और प्रमदा थी रूप की।

अन्तस्तल मे साहस वेगपूर्ण ओध सा उमडता था, पर मै इतनी हल्की थी कि तृण की भाँति विचारो मे तिरती फिरती थी। मैने सोचा, आज न जाने कितने दिनो वाद उस सुलतान का साक्षात्कार होगा। सौन्दर्यमयी वासना की आवी सी आकर चली गई। और तभी मणि मेखला मे लगी कृपाणी चमक उठी, पर आह, आत्महत्या भी न कर सकी। मन ने छल किया सोचा—

'जीवन सौभाग्य है, जीवन अलभ्य है'

सृष्टि का कण कण इसी जीवन की भीख मागता है। कमला पागलो सी कह उठी कि क्या मारकर भी मरने न दोगे ? सुलतान भारत की नारियो के इस मरण पर वोल उठा। पद्मिनी को खोकर उसने वहुत कुछ सीखा था। अपनी क्रूरताओ पर शासन करने के लिये कमला मे अनुनय करता रहा।

कमला स्वर्णपिजर मे वन्दिनी थी। एक दिन सन्ध्या के समय किसी अपरिचित के पद-शब्द से कांप उठी। वह शैशव अनुचर मानिक था। उसने स्नेह दान मांगा और तभी सुलतान की तातारी दासियो ने वन्दी किया। कमला ने

---

२४ अमिय, हलाहल, मद भरे, स्वेत, स्याम, रतनारि।
जियत, मरति, झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक वारि—रसलीन

मानिक को मृत्यु दड से बचा लिया। प्रतिशोध की भावना आकर लौट जाती थी। गुर्जरेश कर्णदेव ने सन्देश भेजा कि कमला अपने प्राणो का अन्त कर ले, किन्तु वह यह भी तो न कर सकी। रूप के बल से वह भारतेश्वरी होने के लिये आतुर थी। कमला ने सोचा

यह उपहार है, यह शृंगार है
मेरी रूप माधुरी का

हिमालय शृंग तक कमला के सौन्दर्य और कटाक्ष का शासन था, और इसी मे वह अपनी विजय समझ बैठी। एक दिन छल से काफूर ने अलाउद्दीन को मार डाला। खुसरो ने, मानिक ने जिस दिन सुलतान का अन्त किया उस दिन कमला कांप उठी। वह कहने लगी

नारी यह रूप तेरा जीवित अभिशाप है
जिसमें पवित्रता की छाया भी पडी नहीं

कमलावती देख रही थी—सौन्दर्य के अमल आवरण की सत्ता हिम बिन्दु सी ढुलक रही है। प्रलय की छाया मे असफल सृष्टि सोती है। इस कथा की प्रेरणा इतिहास है[२५]।

प्रसाद की कला इस कविता में अपने सर्वोत्तम रूप में प्रस्फुटित हुई है। नारी के अन्तस्तल में अनेक घात-प्रतिघातो का सजीव चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। कमला के प्राणो का झझावात नारी की स्वाभाविक सहज दुर्बलता है। क्षण-क्षण में परिवर्तित चचला जीत कर भी हार जाती है। सौन्दर्य वर्णन में अत्यधिक सूक्ष्म भावनाओ का भी अकन हुआ है। इस सौन्दर्याकन के साथ ही नारी की मानसिक प्रवृत्तियो के उद्घाटन में कवि को अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई है। कालिदास का सौन्दर्य-वर्णन आन्तरिक अनुभूतियो को इतनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नही देखता। रवीन्द्र की 'उर्वशी' अपनी सुन्दरता मे दार्शनिक पक्ष का अधिक प्रतिपादन करती है। नारी का यह नवीनतम विश्लेषण कवि ने इतिहास

---

२५ The first state doomed to extinction was Gujrat It was now ruled by Raja Karan, the Vaghela, Alauddin sent an army from Delhi The country was overrun, the capital was occupied, and Karan was forced to flee,

Malik Naib was sent to capture the daughter of Karan of Gujrat, whom her mother, now a member of royal harem wished to see The Cambridge Shorter History of India—
Page 223, 226

को आधार बनाकर प्रस्तुत किया। 'आख्यानक कविता के द्वारा कवि ने अनेक सुन्दर रूपको का सृजन किया। नारी के आन्तरिक द्वन्द्व के सूक्ष्म विश्लेषण को वह एक व्यापक रूप प्रदान करता है। केवल कमला ही नही सोचती कि जीवन सौभाग्य है, जीवन अलभ्य है। किन्तु—

कितनी मधुर भीख मांगते हैं सब ही
अपना दल अंचल पसार कर वन राजी
मांगती हैं जीवन का बिन्दु बिन्दु ओस सा।
क्रन्दन करता-सा जलनिधि भी
मांगता है नित्य मानो जरठ भिखारी सा
जीवन की धारा मीठी-मीठी सरिताओं से
व्याकुल हो विश्व, अन्ध तम से
भोर में ही मांगता है
जीवन की स्वर्णमयी किरणें प्रभा भरी।

गीत प्रगीत—

प्रसाद की गीत सृष्टि उनके महान साहित्यिक व्यक्तित्व का परिचायक है। छायावाद के गीतो, प्रगीतो की परम्परा पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद का अनुकरण मात्र नही थी। उसमे केवल विद्यापति की शृगारी भावनाओ की ही प्रतिध्वनि नही थी, और न वह बगला के ही महारे अपनी भावनाओं का प्रकाशन करती थी। छायावाद के प्रगीतो में एक समन्वय था, उनमे एक नवीन दृष्टि थी, कृतित्व मे पूर्ण। मुक्तक-रचनाओ मे प्रगीत निस्सदेह आगे बढ गये। कवि के व्यक्तित्व प्रकाशन का यह माध्यम छोटे से आकार मे किसी घनीभूत भावना का प्रकाशन करता है। सच्ची अनुभूति को लेकर चलनेवाले छायावाद के प्रगीतो मे विभिन्न भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई। प्रसाद की प्रेम, सौन्दर्य, राष्ट्रप्रेम आदि की भावनायें इनमे सगृहीत हैं। निराला की स्वच्छन्दता, पन्त की प्रकृति और महादेवी का रहस्यवाद इन्ही गीतो में साकार हो उठा। छायावादी कवियों ने प्रगीत को अपनी भावना, अभिव्यक्ति से नवीन सज्जा प्रदान की। प्रसाद के गीतो मे उनका दर्शन भी अपने गाम्भीर्य को लेकर प्रस्तुत हुआ है। इसी कारण उनके गीत 'निराला' की भांति छन्द बन्ध की कारा तोड़कर कम बहते हैं। 'निराला' के गीतो में यदि निर्झर का आवेग है तो 'प्रसाद' मे सागर की गहराई। पन्त मे सरिता की गति है तो महादेवी मे मेघराशि की-सी उदासी। 'प्रसाद' के प्रणय गीतो मे भी शैली की भाति आवेग के स्थान पर करुणा और गाम्भीर्य

अधिक है। इसी गाम्भीर्य के कारण प्रबन्ध-काव्य की रचना भी कवि गीति शैली पर करने में सफल हो सका। 'झरना' के गीतो में प्रणय का उन्मुक्त रूप है किन्तु 'लहर' में वह अधिक गम्भीर हो गया। कवि व्यक्तिगत अनुभूति को व्यापक धरातल पर लाकर देखता है। सुन्दर चित्र, मृदुल भाव, सरस कल्पना सभी सरस रूप लेकर प्रसाद के गीतो में साकार हो उठे हैं। आनन्दवादी कवि की वेदना भी अँग्रेजी कवियित्री रोजेटी अथवा महादेवी की भाति नही है। प्रसाद का दर्शन करुणा को भी आशा की रेखाओ में बाँध लेता है। अतृप्त आकाक्षाओ का रुदन भी जगती के लिये मगलमय गीत गाता है।

'झरना' यदि गीत सृष्टि का प्रयोग है, तो 'लहर' उसका उत्कर्ष। भावना प्रसार की दृष्टि से भी परिणति द्वितीय मे दिखाई देती है। 'लहर' की अधिकाश रचनाओ में एक जीवन दर्शन की नियोजना है। कवि बीती विभावरी को जागते हुये देखता है। वह जीवन के प्रभात का जागरण लाने के लिये उद्बोधन गीत गाता है। अतीत की प्रेरणा, आज उसके जीवन का पाथेय बन गई है। 'प्रलय की छाया' में कमला का आन्तरिक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण शाश्वत मूल्यो से प्रेरित हैं। मात्रा विहीन अतुकान्त छन्द में 'प्रसाद' को 'निराला' की सी सफलता दार्शनिक निरूपण के कारण न मिल सकी किन्तु अपने सजीव चित्रो मे प्रसाद के गीत सर्वोपरि है। प्रेम और सौन्दर्य के साथ ही ऐतिहासिक घटनाओ के द्वारा राष्ट्रीय भावना का भी प्रकाशन कवि ने किया। स्वयम् अलाउद्दीन भी कह उठा था कि

> देखता हूँ मरना ही भारत की नारियों का
> एक गीत भार है।

'झरना' का मानसिक झझावात 'लहर' में समाप्त हो जाता है और कवि की आगामी महती रचना का आभास मिल जाता है। सगीतात्मकता की दृष्टि मे 'बीती विभावरी जाग री' आदि गीत अत्यन्त सुन्दर है।

जीवन दर्शन की दृष्टि मे गीतकार प्रसाद इन छोटे छोटे गीतो द्वारा ही अनेक सत्यो तक पहुँच गये है। प्रेम अपरिमेय है, उसे सीमाओ मे बाधकर नही रक्खा जा सकता। ससार का कण कण प्रेम का भूखा है। व्यक्ति को अपनी करुणा मे विश्व का शृगार करना चाहिये। जीवन नश्वर है, फिर क्षणिक आकर्षण से क्या लाभ ? शरीर का रूप समाप्त हो जाता है, किन्तु हृदय का सौन्दर्य कभी नही मरता। प्रकृति के कण-कण में सौन्दर्य है। मानव के लिये प्रकृति है, और प्रकृति के लिये मानव, दोनो मे कोई अन्तर नही। सुख-दुख दोनो ही एक

आकाश के दो नक्षत्र है। इनमें सामजस्य आवश्यक है। जीवन को उत्कर्ष तक ले जाने की एक विधि कवि ने इन गीतों में निर्मित्त कर ली। वह राष्ट्र-प्रेम से भी अपरिचित नही है। इतिहास के भग्नावशेषो मे अतीत की गौरवगाथाये खोजता है। प्रसाद ने खड़ी बोली के प्रथम चरण मे शृगार के परिष्कार का जो प्रयास आरम्भ किया था, वह यहा आकर पूर्ण हो जाता है। उसकी ऐन्द्रियता लगभग समाप्त हो जाती है—सम्मुख केवल एक अशरीरी छाया-सौन्दर्य रह जाता है। इसमे किसी प्रकार की आध्यात्मिक प्रवृत्तियो का आरोप कवि ने नही किया। इसी लौकिक धरातल पर वह स्वर्ग का निर्माण करने में प्रयत्नशील है। विभिन्न दर्शनो को उसने अपने चिन्तन और अनुभूति में काव्य मे एकाकार कर दिया है। ये दार्शनिक विवेचन ऊपर से आरोपित किसी कृत्रिम उपकरण की भाति नही प्रतीत होतें, ये काव्य का ही एक भाग बन गये है। अशोक के मानसिक चिन्तन मे 'त्रिपिटिक' के उपदेश नही बोलते वरन् मानव की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है, जिस पर बौद्ध दर्शन की छाया है। नारी के रूप को जीवन का अभिशाप समझने वाली कमला, सन्यासिनी नही हो जाती, वह केवल जीवन की सन्ध्या और नियति की क्रीड़ा देखती रहती है,—बेबस, लाचार की भाति। कवि अपने काव्य को मानवीय मूल्यो पर प्रस्तुत करने के प्रयत्न मे सफल हुआ है। व्यक्ति से वह समष्टि पर पहुँच कर कहता है—

मेरा अनुराग फैलने दो
नभ के अभिनव कलरव में (लहर, पृष्ठ ३९)

कवि की विशेषता यही है कि वह प्रत्येक वस्तु का समाहार करता चला जाता है, कही भी असाधारण अलकरण से गीत बोझिल नही हो जाते। भाषा पर उसका अबाध अधिकार है और तूलिका पर पूर्ण नियन्त्रण। सौन्दर्य का मादक चित्राकन करने वाला कलाकार पेशोला की प्रतिध्वनि में प्रताप के पौरुष का भी सफल चित्र प्रस्तुत करता है। उसके विविध रूप इस गीत सृष्टि मे प्राप्त होते है। प्रसाद का रहस्यवाद अद्वैतवादियो की आध्यात्मिकता के निकट नही रक्खा जा सकता वह जीवन की एक रहस्यमय प्रवृत्ति है। छायावाद की समस्त प्रवृत्तियां इन गीतो मे अपने सर्वोत्तम स्वरुप में प्रकाशित हुई है। जड़ता मे चेतनता का आरोप, प्रेम का प्रकाशन, अतृप्ति सभी मिल जाते है। ध्वनि, रस, अलकार की दृष्टि से भी 'लहर' के गीत उत्कृष्ट है। सुन्दर उपमा, साग रूपक और उत्कृष्ट अलकार भी स्वाभाविक रीति से आ गये है, कवि ने किसी अलंकारवादी की भाति उनके लिये विशेष परिश्रम नही किया। इन स्फुट कविताओ मे प्रसाद का व्यक्तित्व

प्रसाद ने भारतेन्दु की परम्परा को आगे बढाया। उन्होने नाटक को एक साहित्यिक धरातल पर लाकर प्रस्तुत किया। प्रारम्भिक रचनाओ में परम्परा की छाया मिलती है। आरम्भिक प्रयास सज्जन, कल्याणी-परिणय, प्रायश्चित्त आदि में गीतो की सख्या अधिक नही है। सम्भाषण के लिए भी पद्य का प्रयोग किया गया है। गानेवाली 'सदा जुग जुग जीओ महराज' गाकर नृत्य करती है। कथोपकथन में कविता के द्वारा अधिक सरसता उत्पन्न हो जाती है और दर्शको पर उसका प्रभाव भी सरलता से पड़ता है। किन्तु बीच-बीच में इस प्रकार के पद्य खड बड़े अस्वाभाविक प्रतीत होते है। इसी कारण आगे चलकर प्रसाद ने इनका परित्याग कर दिया। गीत नाटक का ही एक अश बनकर आए है। रचना-क्रम के अनुसार आरम्भिक प्रयासो के पश्चात् राज्यश्री (जनवरी, १९१५ ई०) का प्रकाशन हुआ। इसके सात गीतो में चार सुरमा, दो राज्यश्री और एक समवेत स्वर से सभी मिलकर गाते है। सुरमा के गीतो में उसकी वेदना और करुणा का आभास है। उसके मन की कभी प्यास न बुझ सकी। वह घायल दुखिया है,— जीवन-धन की गाँठ भूल गई। सुरमा अपने गीतो के द्वारा घनीभूत वेदना का प्रकाशन करती है। अन्त मे विकटघोष को पाकर 'अलख अरूप' का भी जाप करने लगती है। राज्यश्री नेपथ्य से गान सुनती है और स्वयम् भी प्रार्थना करती है। नाटक के अन्त में सभी पात्र समवेत स्वर से 'करुणा कादम्बिनी' की वर्षा के लिए प्रार्थना करते है।

विशाख—

विशाख (सन् १९२१) मे गीतो के अतिरिक्त पद्य का प्रयोग भी सम्भाषण के लिए हुआ है। नाटक के आरम्भ में ही विशाख अतीत की अभिव्यक्ति गान के द्वारा करता है। चन्द्रलेखा सुख की परिभाषा जानना चाहती है। उसे जगत निर्दय और कठोर हृदय दिखाई देता है। वन्दिनी होकर वह प्रणय की आकुलता में गीत गाती है—

देखो नयनों ने एक झलक, वह छवि की छटा निराली थी
मधु पीकर मधुप रहे सोए, कमलों में कुछ कुछ लाली थी

विशाख, पृष्ठ २९

सखियाँ भी प्रणय सम्बन्धी गान गाती है। वे रानी का मनोरजन करती है। इस प्रेम-भावना के अतिरिक्त प्रेमानन्द परिव्राजक होकर प्रकृति का दर्शन करना चाहता है। वह स्वयम् गीत गाकर अपनी भावनाओ की अभिव्यक्ति करता है कि शुचिता से इस कुहक जाल को तोड़ दो। नर्तकी राजसभा मे मादकता का सगीत

अलापती है। इस प्रकार के गीत राजाओ के लिए मनोरजन के साथ ही उद्दीपन का कार्य भी करते थे। गीत के पश्चात् ही उसे पुरस्कार भी दिलाया जाता था। विशाख में गीतो की सख्या अधिक हो गई है। सम्भवत प्रसाद नवीनता के हामी होते हुए भी अपने समय से प्रभावित हो गये थे। साधु भी गीत गाते है। वे अपने उपदेश गीतो के द्वारा प्रतिपादित करते है। इस प्रकार अनेक प्रकार की भावनाओं का समावेश उनमे हुआ है। इसी के साथ प्रत्येक पात्र गाने लगता है। विशाख, चन्द्रलेखा, सखियाँ, नर्तकी, साधु, नरदेव, इरावती सभी गाते है। प्रणय, उपदेश, प्रार्थना सभी का माध्यम गीत बन गया है।

अजातशत्रु--

अजातशत्रु (१९२२ ई०) में भी गीतो की सख्या अधिक है। आरम्भ मे ही भिक्षुक गाते हुए प्रवेश करते है। उनके स्वर में जगत की नश्वरता के प्रति सकेत है। वे दुखियो के आँसू पोछने के लिए कहते है। मागन्धी प्रणय गीत गाती है। वह गान-प्रिय नारी है। राजभवन की मर्यादा के अनुसार नर्तकियो का गान भी होता है। मागन्धी मदिरा पान कराती और गाती है। पद्मावती एक सगीतिका के रूप में आती है। उसके गीत मे सगीत के सप्त स्वर गूज उठे है :

मीड़ मत खिंचे बीन के तार!

निर्दय उँगली! अरी ठहर जा

पल भर अनुकम्पा से भर जा

यह मूर्छित मूर्छना आह सी

निकलेगी निस्सार।

अजातशत्रु, पृष्ठ ५८

श्यामा भी गान के साथ नृत्य करती है। शैलेन्द्र के प्रति अपने प्रणय का प्रदर्शन भी इन गीतो के द्वारा ही कर देती है। गीत प्रणयी को ही सम्बोधित करके कहे गए है। मागन्धी अन्त मे निराशा का गीत गाती है। उसका मिथ्या गर्व समाप्त हो जाता है। वह सजग हो उठती है। विरुद्धक के गीत में उसके जीवन का इतिहास निहित है। अतीत की प्रणय पिपासा स्मृति मे चपला-सी जागृत हो उठती है। वह मल्लिका के प्रति अपनी भावनाओ को स्पष्ट कर देता है। अजातशत्रु के लगभग १५ गीतो मे पात्रो के व्यक्तित्व की छाया है। उनमें गीतो के प्रधान तत्व आत्माभिव्यजना का समावेश है। भाव, भाषा, शैली की दृष्टि से भी कवि ने प्रगति की है।

कामना—

कामना (१९२४ ई०) एक सुन्दर रूपक है, जिसका निर्माण मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ। प्रत्येक पात्र स्वयम् एक विशेष मनोविकार का प्रतीक है। फूलो के द्वीप में मानव की सामाजिक वृत्तियो का सूत्रपात होता है। कामना विदेशी विलास का स्वागत करती है। प्राचीन सस्कृति का स्थान नवीन सभ्यता गहण कर लेती है। कामना और सन्तोष के पुनर्मिलन से नाटक का अन्त होता है। कामना एक गानप्रिय नारी है। वह भावमय गीत के द्वारा अपना परिचय दे देती है। करुणा-जल से भरी उसकी मानस-तरी ऊपर नीचे होती है। वह यह भी बता देती है कि उसका निर्दय अभी तक लौटकर नही आया। आँखो के झरने भी उमड़ चले, पर हृदय शीतल न हो पाया। विलास सबको प्रेम का प्याला पीने की शिक्षा देता है। विनोद लीला का गीत सुनता है। विलास लालसा के सगीत की अमृतवर्षा से पागल हो उठता है। उस पर मदिरा की मादकता सी छा जाती है। वनलक्ष्मी अपने गीत के द्वारा मृदुल कुटुम्ब मे कोमल शृगार का परिचय देती है।[२] इस प्रकार इस साकेतिक रूपक में केवल आठ गीतो के द्वारा ही प्रसाद ने कथानक को सजीवता प्रदान की है। सभी पात्र कथोपकथन के द्वारा अपने विचारो की अभिव्यक्ति करते है। प्रत्यक्ष रीति से सम्बन्ध का आभास इन गीतो के द्वारा ही मिलता है। अन्त मे नाटक के लक्ष्य की पूर्ति पर सभी समवेत स्वर से गा उठते हैं।

खेल लो नाथ, विश्व का खेल

जनमेजय का नागयज्ञ—

जनमेजय का नागयज्ञ (१९२६ ई०) महाभारत का आधार लेकर निर्मित हुआ। प्रकृति और मानव मे एक सन्तुलन स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। दामिनी प्रथम अक में ही उत्तक की आज्ञा से गाती है। साकेतिक भाषा मे वह बता देती है कि उससे मीठी बात करके कोई बरजोरी रस छीन ले गया। नेपथ्य मे आता हुआ सगीत मानव को नवीन चेतना प्रदान करता है। जीवन का वास्तविक ज्ञान आस्तीक, मणिमाला को इसके द्वारा होता है। मानव स्वामी है, स्वच्छ और निर्मल है। नृत्य और गान के रूप में सुकोमल भावो को ही स्थान प्राप्त हुआ है। मधुर माधवी ऋतु की रजनी है, कोकिल की रसीली तान। सरमा भी गाती हुई ही प्रवेश करती है। वह कहती है—

---

२ कामना, पृष्ठ ८४

लौट न आया, निर्दय ऐसा, रूठ रहा कुछ बातों पर
था परिहास एक दो क्षण का, वह रोने का विषय हुआ।

जनमेजय का नागयज्ञ, पृष्ठ ६१

'कामायनी' मे श्रद्धा कहती है—'लौट न आया वह परदेसी, युग छिप गया प्रतीक्षा मे।' सरमा अपनी सकरुण भावनाओ का प्रकाशन आगे भी करती चली जाती है। निर्जन वन मे ही वह अप्रत्यक्ष मूर्ति के चरणो पर लोटने लगती है। जब वह एक बार किसी पर मरती है, तब उसी के पीछे मिटती भी है। वपुष्टमा भी कहता है—सचमुच कलिका, जब एक रोता है तभी तो दूसरे को हँसी आती है।[१] सम्पूर्ण गीत मे ससार की विषमता पर दृष्टिपात किया गया है। मनसा और उसकी दो सखियाँ राष्ट्रगीत गाती है। देशप्रेम में वे सोती हुई जनता को जागरण का सदेश देती हैं। नष्ट होते हुए जातीय मान की रक्षा करना आवश्यक है। इसी प्रकार आर्य सैनिक सम्मिलित गीत गाते हुए प्रवेश करते हैं। वे जनमेजय की विजय मनाते हैं। आर्य भूमि और आर्य जाति के लिए उनमे अभिमान है। प्रार्थना के अतिरिक्त अन्त मे दार्शनिक भावनाओ से प्रभावित एक गीत है। व्यास के द्वारा नाटककार ने विश्वात्मा का वन्दन कराया है। जिसने अपना विश्व रूप विस्तार किया, जो प्रेम नाम से सब में आकर्षण का प्रचार करता है, उसी की सब लोग जय मनाते है। वह अपनी लीला से जल, थल, नभ का कुहुक बन गया। 'अहमिति' से अपनी सत्ता का पूर्णानुभव कराता है। 'अह ब्रह्मास्मि' का हिन्दी रूपान्तर इसी अवसर पर प्रस्तुत हो गया—

पूर्णानुभव कराता है जो अहमिति से निज सत्ता का
तू मैं ही हूँ, इस चेतन का प्रणव मध्य गुंजार किया।

जनमेजय का नागयज्ञ, पृष्ठ १०७

'जयमेजय का नागयज्ञ' के गीतो ने चरित्र चित्रण के साथ ही कथानक में भी परोक्ष रीति से योग दिया है। सैनिक गीत से ही भावी विजय का आभास मिल जाता है। पहाड़ की तराई में मनसा और उसकी दो सखियो द्वारा गाया हुआ गीत भी अपना प्रभाव स्थापित करता है। इस उद्बोधन गीत द्वारा कवि ने अपने ही मन का प्रसार किया है। केवल राजसभा की शोभा और राजा के मनोरजन के लिये ही गीतो का समावेश अधिक नही किया गया। यदि कलिका गीत के द्वारा अपनी करुणा का प्रकाशन करती है तो अन्त में नेपथ्य का गीत दार्शनिक तथ्य का निरूपण करता है। इस प्रकार गीतो की कला मे पर्याप्त सुधार हो गया।

---

१. जनमेजय का नागयज्ञ, पृष्ठ ७८

स्कन्दगुप्त—

स्कन्दगुप्त (१९२८ ई०) प्रसाद की सर्वोत्तम नाट्य कृतियो में से है। इसमें पात्रो का विभाजन दो वर्गों में किया जा सकता है। आरम्भ मे ही कुमारगुप्त की सभा में नर्तकियाँ गाते हुए प्रवेश करती है। इस गीत में स्वयम् किसी प्रकार की मानसिक अभिव्यक्ति उनके द्वारा सम्भव नही। गायन उनकी जीविका है और राजा का मनोरजन करने के लिए वे शृगारी गीत गाती हैं। मातृगुप्त, देवसेना में प्रसाद ने अपनी भावुकता का प्रकाशन किया है। मातृगुप्त कालिदास का ही प्रतिरूप प्रतीत होता है। वह अपने प्रिय को याद करता है। अपनी भावना में तल्लीन कवि किसी को नही देखता। अत्यन्त सुन्दर भाषा में वह अपने उद्‌गार प्रकट करता है। मातृगुप्त के कवि रूप में प्रसाद ने समस्त भावुकता को निहित कर दिया है। उसके गीत के द्वारा कवि ने आत्म प्रकाशन-सा किया है। कवि का साथी है कविता, सगीत और इसी दृष्टि से प्रसाद ने मातृगुप्त का गीत रक्खा है। देवसेना सगीत को अपना प्राण सहचर मानती है। वह गाये विना रह ही नहीं सकती। युद्ध के समय भी वह गा लेना चाहती है क्या मालूम प्रिय गान फिर गाने को मिले या नही। जयमाला के लिये युद्ध भी गान है। देवसेना गाती है—

भरा नैनों में मन में रूप
किसी छलिया का अमल अनूप।

स्कन्दगुप्त, पृष्ठ ४५

इस अवसर पर रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ भी मिलती है। वह छलिया जल, थल, मारुत, व्योम सब ओर छाया हुआ है। उसी को खोज-खोजकर देवसेना पागल प्रेम विभोर हो गई है। विना गान के देवसेना कोई कार्य नही कर सकती। उसे विश्व के प्रत्येक कम्प में एक ताल दिखाई देती है। वागेश्वरी की करुण कोमल तान के द्वारा ही पुरुप को भी जीता जा सकता है। 'घने प्रेम तरु तले' में गायिका ने प्रेम की जीवन शक्ति का चित्र प्रस्तुत किया। वन्धुवर्मा भी अपनी वहिन के इस गाने के रोग पर हँस पडता है। विजया अपने परिवर्त्तनशील रूप में भी कभी-कभी गाने लगती है। उसके गान अधिक स्वाभाविक नही प्रतीत होते। वह स्वयम् देव-सेना की इस प्रवृत्ति पर व्यग्य कर चुकी है। वास्तव में स्कन्दगुप्त मे देवसेना ही गीतो का भार वहन करती है। वह अनायास ही गा उठती है, नैसर्गिक सगीत की भाति। युद्ध, श्मशान सभी स्थलो पर उसके प्राण मुखर हो उठते है। वह तो केवल अपनी स्वाभाविक वृत्तियो के अनुसार गाती है, किन्तु कवि ने गीतो मे जीवन दर्शन की स्थापना की है। नेपथ्य मे गान हो रहा है कि धूप-छाँह के खेल

सदृश सब जीवन बीता जाता है, प्रतिक्षण में समय भागता है। प्रेम की पुजारिन सगीत को ही अपना साथी बना लेती है। नौका-गीत के द्वारा उसे नवीन शक्ति मिलती है। माँझी जीवन की सरिता मे चला जा रहा है। सामने तूफान चुनौती दे रहा है। ऐसी ही स्थिति देवसेना की भी है। देवसेना प्राण देकर भी प्रेम की पवित्रता की रक्षा करती है। किसी मूल्य पर भी वह उसमे अशुचिता नही लाती। वह स्वयम् कहती है—इस बार-बार के गाये हुए गीतो में क्या आकर्षण है? क्या बल है जो खीचता है? केवल सुनने की नही, प्रत्युत जिसके साथ अनन्त काल तक कठ मिला रखने की इच्छा जग जाती है[8]। उसने स्कन्द को आजीवन प्रेम किया। उसके हृदय मे करुणा, वेदना की एक टीस सी उठकर रह जाती है। इसकी अभिव्यक्ति यह गीत के माध्यम से करती है। गीत उसके प्राणो से निकलते हैं तभी तो वह कहती है—

> शून्य गगन में खोजता जैसे चन्द्र निराश
> राका में रमणीय यह किसका मधुर प्रकाश।

प्रेम में सर्वस्व बलिदान कर देनेवाली नारी अभागे देश के लिए उद्बोधन गीत भी गाती है। वह देशवासियो को ललकारती है। अन्त में अपने जीवन की सचित वेदना गीत द्वारा प्रकट कर देती है। प्रलय जीत गया, अबला हार गई। वह स्पष्ट स्वीकार करती है कि भ्रमवश जीवन-संचित मधुकरियो की भीख उसने लुटा दी। 'आह वेदना मिली विदाई' मे उसकी घनीभूत वेदना छिपी हुई है। इस प्रकार देवसेना नाटक के गीतो की गायिका बन जाती है। इन गीतो में प्रसाद ने भावुक नारी के व्यक्तित्व प्रकाशन के साथ ही अपनी भावुकता को भी स्थान दिया है। प्रेमिका के माध्यम से स्वयम् कवि की ही भावनाएँ बोल उठी है। प्रणय गीतो के अतिरिक्त कवि का प्रसिद्ध देश गीत भी नाटक मे सगृहीत है। मातृगुप्त इस भारत-गीत के द्वारा सैनिको को उत्साहित करता है। खिंगिल की पराजय के लिए यह भूमिका आवश्यक है। रणक्षेत्र में देशप्रेम का गीत गाकर ही हूणो को परास्त किया गया। मातृगुप्त गाता है, भारत के अतीत वैभव का गीत। भारत ने ही विश्व में आलोक प्रसारित किया। मनु ने नाव पर प्रलय की शीत झेल लिया था। अस्थियुग का इतिहास पुरन्दर ने पवि से लिख दिया है। अन्त में वह आर्य-गौरव से अनुप्राणित होकर कह उठता है—

> जियें तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष
> निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष
>
> स्कन्दगुप्त, पृष्ठ १६३

---

४. स्कन्दगुप्त, पृष्ठ १४९

इस लम्बे गीत में कवि ने राष्ट्रीय भावना का प्रतिपादन किया है। देवसेना की गानप्रियता के कारण गीतो की सख्या अधिक हो गई। इसका प्रभाव इतना अधिक बढ जाता है कि स्कन्दगुप्त भी 'बजा दो वेणु मन मोहन' का गीत गा उठता है। आनन्दमय जीवन का वह वरदान मांगता है। विजया भी अपने विलास की कल्पना गीत द्वारा करती है। सुन्दर गीतो का स्वरूप नाटक में प्रस्तुत हुआ है—

न छेड़ना उस अतीत स्मृति से, खिचे हुए बीन तार कोकिल
करुण रागिनी तड़प उठेगी, सुना न ऐसी पुकार कोकिल।

एक घूंट—

एक घूट (१९३० ई०) केवल एक ही अक और दृश्य का लघु नाटक है। इसमें कवि ने आश्रम का एक स्वरूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। जीवन के विषय में अनेक विचार प्रकट किए गए है। आरम्भ में ही अरुणाचल आश्रम का वर्णन है। समीर के झोके चल रहे हैं। वसन्त के फूलो की भीनी भीनी सुगन्ध उस हरी भरी छाया में कलोल कर रही है। मौलश्री के नीचे वेदी पर बनलता बैठी नेपथ्य में होनेवाले गान को सुन रही है—

खोल तू अब भी आखें खोल

कोई शून्य के सगीत द्वारा अनन्त स्वर में मिल जाने के लिए कहता है। कोकिल की पचम पुकार मे भरी हुई टीस, कसक और प्यास से द्रवीभूत होकर एक घूट उसके गले में डाल देना चाहती है। प्रेमलता गान सुनाकर शुष्क तर्कों की ग्लानि दूर करती है। जीवन के प्रति उसका स्वस्थ और सरस दृष्टिकोण है। वन में सर्वत्र उजियाली है। गीत के अनुसार एक घूट का प्यासा जीवन सब को लोचन भरकर निरख रहा है। आगे चलकर वह दुख का भी एक गान गाती है—

घुमड रहो जीवन घाटी पर जलधर की माला

* * *

क्षणिक सुखों पर सतत झूमती शोकमयी ज्वाला

एक घूट, पृष्ठ २४

इस गीत की भावनाओ में रसालजी परिष्कार करने के लिए कहते है। केवल लक्ष्य तक जाने के लिए ही इसकी रचना हुई है। नाटक के अन्त मे जीवन दर्शन की स्थापना हो जाती है। अरुणाचल आश्रम एक आदर्श स्थान बनता है। उसका लक्ष्य जीवन का शृगार और प्रेम के स्वस्थ रूप का प्रचार बन जाता है। मस्तिष्क और हृदय का समन्वय भी स्थापित हो गया। इस लक्ष्यपूर्ति से सभी

को प्रसन्नता होती है। सभी मधुर मिलन कुंज का यशोगान करते हैं। छोटे से आन्यापदेशिक नाटक मे केवल तीन गीतो द्वारा ही नाटककार ने नाटक तथा गीत की भावनाओ मे साम्य रखा है। परिस्थिति और विषय के अनुकूल ही उनका निर्माण हुआ है। पात्र गान के द्वारा एक भावना का प्रतिपादन करते है। उसमें उनकी व्यक्तिगत अनुभूति कम होती है, नाटककार का विचार प्रतिपादन अधिक।

चन्द्रगुप्त—

चन्द्रगुप्त (१९३१) प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ नाट्यकृतियो मे से है। भारतीय इतिहास के इस यशस्वी महापुरुष पर इसके पूर्व भी नाट्य रचना हो चुकी थी। प्रसाद ने एक नवीन दृष्टिकोण को अपनाया। ऐतिहासिक पुरुष को भी उन्होने आधुनिकता प्रदान की। चार दृश्यो मे एक लम्बे इतिहास को बाँधने का प्रयास किया गया है। स्कन्दगुप्त की भाँति इस नाटक मे भावुक पात्र अधिक नही मिलते किन्तु गीतो का प्रयोग कथानक के विकास और समयानुकूलता के कारण हुआ है। केवल लगभग दस गीत सम्पूर्ण नाटक मे मिलते है, जो नाटक के आकार को दृष्टि मे रखते हुए अधिक नही है। सुन्दरियो की रानी सुवासिनी से सभी नागरिक एक सुन्दर आलाप, एक कोमल मूर्च्छना की इच्छा प्रकट करते है। सम्भवत यह सुन्दर गायिका थी, और जनता उसे सुनने के लिए लालायित थी। वह भाव सहित गान करती है—

तुम कनक किरण के अन्तराल में
लुक छिपकर चलते हो क्यो।

नत मस्तक गर्व वहन करते
यौवन के घन, रस कन ढरते

हे लाज भरे सौन्दर्य
बता दो मौन बने रहते हो क्यों ?

सौन्दर्य का अत्यन्त सूक्ष्म चित्र इस गीत मे मिलता है। सौन्दर्य स्वयम् मौन है। अधरो के मधुर कगारो और कल-कल ध्वनि की गुंजारो मे ही वह मधु सरिता-सी अपनी तरल हँसी पी जाता है। होठ पर मन्द मुसकान है, आँखो में यौवन की बेहोशी, मदिरा की ईषत् लाली है, यौवन घन मे बरसती कामनाओ की बूँदे है, किन्तु मौन, सलज्ज और भारावनत'[५]। प्रसाद के सर्वोत्तम गीतो मे इसकी गणना की जा सकती है। अपने सूक्ष्म रूप मे भी गीत का चित्र पूर्णतया स्पष्ट है। सगीत के संयोग मे वह अत्यन्त सरस हो उठा है। इसी के पश्चात् राक्षस सुवासिनी के

५ गीतिकाव्य, पृष्ठ ११०

सम्मुख मूक अभिनय सहित गाता है। गीत के अनुसार दुर्बल आह यदि वाहर निकलेगी तो उसे हँसी का शीत लगेगा। ससार करुणा का उपहास करता है। गीत की करुणा एक रहस्यात्मक अभिव्यक्ति लेकर प्रस्फुटित हुई है। सोये हुए सुकुमार की कल्पना साधारण नही। द्वितीय अक में कार्नेलिया सिन्धुतट की रमणीयता का गीत गाती है। वह केवल भारत के प्रकृति वैभव का ही चित्र नही बनाती, वरन् उसक सगीत को भली भाँति याद रखना चाहती है। यह अरुण देश मधुमय है। उषा सबेरे हेमकुम्भ भरकर उसके सुख ढुलकाती है। सर्वत्र प्राकृतिक सौन्दर्य छाया है। अलका एक ओर यदि राष्ट्रसेविका है, तो साथ ही वह सिंहरण को प्रेम भी करती है। वह केवल देश की स्वतन्त्रता के लिए पर्वतेश्वर की प्रणयिनी वनने का अभिनय करती है। उसने अपने प्रणयं के साथ अत्याचार किया। वह कहती है कि प्रथम यौवन मदिरा के उन्माद में ही प्रेम करने की चिन्ता आरम्भ हो गई। हृदय भी चला गया। अन्त में वह जीवन की साध सफल करने की इच्छा प्रकट करती है। केवल अलका की अन्तर्वृत्तियों के प्रकाशन के लिए गीत का प्रयोग कवि ने किया है। वह पर्वतेश्वर को अपने अभिनय द्वारा दास बना लेती है। वह स्वयम् गाने लगती है और पुरुष का पागलपन वढता जाता है। गीत में यौवन की मादकता और प्रणय की तरलता है—

> **प्रियतम के आगमन पथ में उड न रही है कोमल धूल**
> **कादम्बिनी उठी यह ढकने वाली दूर जलधि के कूल।**
> **समय विहग के कृष्णपक्ष में रजतचित्र सी अकित कौन**
> **तुम हो सुन्दर तरल तारिके ! वोलो कुछ, बैठो मत मौन।**

चन्द्रगुप्त, पृष्ठ ९३

सुवासिनी आरम्भ से ही यौवन, सौन्दर्य और मादकता मे पूर्णतया ओतप्रोत है। स्वयम् नन्द इसे स्वीकार करता है। वह वारम्वार उन्मादक गान सुनना चाहता है। सुवासिनी भी अपनी सम्पूर्ण मादकता से गा उठती है—'आज इस यौवन के माधवी कुज मे कोकिल वोल रहा है। वह मधु पीकर पागल हो गया, प्रेमालाप कर रहा है। हृदय अपने आप शिथिल होता जाता है, मानो लाज के वन्धन खोल रहा हो। चाँदनी विछल रही है। छवि से मतवाली रात कम्पित अधरो से वहकाने की वात कहती है। न जाने कौन अनायास ही मधु मदिरा घोल देता है।' मादकता मे भरे गीत का नन्द पर प्रभाव पड़ता है, वह कामुक की-सी चेष्टा करता है। सुवासिनी उसे 'एक वेतन पानेवाली का अभिनय' कहकर टाल देती है। कल्याणी, मालविका नाटक की भावुक नारियाँ है। दोनो ही चन्द्रगुप्त के महान व्यक्तित्व से आकर्पित है और अन्त में उन्हे विदा ले लेनी पड़ती है।

कल्याणी मधुर आलोक देनेवाले चन्द्र से सुधा-सीकर द्वारा पृथ्वी को नहलाने के लिए कहती है। अपनी भावुकता में वह विभोर हो उठती है। राक्षस नेपथ्य से गान सुनता है कि रूप की ज्वाला अत्यन्त कड़ी होती है। यह फूलो की माला लौह शृखला से भी कठोर है। चन्द्रगुप्त एक वीर सेनानी है। युद्ध और संघर्ष से ऊबकर वह भी एक क्षण सगीत के द्वारा अपना मनोरजन चाहता है। उसका मन आज भी भूखा और प्यासा है। उसके हृदय मे भी आशा निराशा का युद्ध चलता है। मालविका उसे मधुप की चचल प्रवृत्ति का गीत सुनाती है। चन्द्रगुप्त कह उठता है कि मन मधुप से भी चचल और पवन से भी प्रगतिशील है। चन्द्रगुप्त का मन नही भरता, वह मालविका के स्वर मे स्वर्गीय मधुरिमा प्राप्त करता है। मालविका 'बज रही बशी आठो याम' का सरस गीत गा उठती है और अन्त मे प्राणो का बलिदान करने के लिए तत्पर हो जाती है। उसके जीवन की साध पूर्ण न हो सकी। इसी कारण वह जीवन की स्मृति, अन्तर के आतुर अनुराग को सदा के लिए भुला देना चाहती है। अन्त मे गाती है -

कहां ले चले कोलाहल से मुखरित तट को छोड़ सुदूर
आह तुम्हारे निर्दय डांड़ों से होती हैं लहरें चूर।
देख नहीं सकते तुम दोनो थकित निराशा है भीमा
बहको मत क्या न है बता दो क्षितिज तुम्हारी नव सीमा।

चन्द्रगुप्त, पृष्ठ १६७

जीवन की प्रहेलिका को भावुक प्रणयिनी जान नही पाती। अपने जीवन के अन्तिम प्रहरो में वह प्रणय गीत नही गाती, प्रियतम को कोई सन्देश नही देती। केवल आन्तरिक भावो की एक छाया मात्र देकर रह जाती है। अन्त मे आते-आते गीत रहस्यात्मक भावना से भर जाता है। सुवासिनी अनन्तता-निधि के नाविक को पुकार बैठती है। इस प्रकार की रहस्यवादी भावनायें पूर्व के गीतो में भी प्राप्त होती हैं।

अलका का गीत प्रसाद का सर्वोत्कृष्ट राष्ट्रगीत है। सैनिको के लिए एक सुन्दर प्रयाण गीत के रूप मे उसकी रचना हुई है। वीरता और उत्साह से भरी हुई अलका गाती है।

हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयम प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती

अमर्त्य वीरपुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।
असख्य कीर्ति रश्मियां
विकीर्ण दिव्य दाह-सी
सपूत मातृभूमि के
रुको न शूर साहसी!
अराति सैन्य सिन्धु में, सुवाडवाग्नि से जलो,
प्रवीर हो, जयी बनो, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

गीत मे लय और गति भी प्रयाण के अनुकूल है। इस प्रकार प्रसाद केवल प्रणय गीतो की रचना में ही सफल नही हुए, उन्होने देशप्रेम की भावनाओ को भी स्थान दिया। सुवासिनी सदा यौवन और सौन्दर्य का गीत गाती रही है। कार्नेलिया को वह प्रेम का रहस्य समझाती है। इस अवसर पर वह अपनी भावुकता में आकर सम्पूर्ण सुकोमल भावनाओ से बोल उठती है। वह प्रेममयी रजनी का रहस्य खोलती चली जाती है। इस प्रकार नाटक में प्राय स्त्रियाँ ही गीत गाती हैं। केवल दो तीन गीतो को छोड़कर सभी में यौवन और प्रणय की भावनाओ का समावेश है। सुवासिनी गीत से नन्द का मनोरजन करती है, तो मालविका अपने प्रणयी के लिए गीत गाती है।

चन्द्रगुप्त के गीतो में प्रसाद ने विभिन्न प्रकार की भावनाओ का समावेश किया है यद्यपि प्रणयगीत अधिक है। सुवासिनी और राक्षस के गीतो मे प्रेम का तरल स्वरूप डोलता रहता है। उसमें प्रणय की समस्त मादकता, उष्णता और सरसता है। सौन्दर्य की सजीवता साकार हो उठती है। कल्याणी और मालविका अपनी स्वरलहरी में आन्तरिक करुणा का प्रकाशन करती है। प्रणय की करुणा उन्हें मुखरित करती है, गीतो में ही उनकी भावनाएँ निहित है। देशप्रेम के गीतो में प्रसाद ने देश-काल की मर्यादा रखी है। सगीत की दृष्टि से नाटक के गीतो मे सुन्दर प्रवाह है। एक ओर यदि गीतो ने पात्रो की विशेष मनोवृत्ति का परिचय दिया है, तो दूसरी ओर सगीत समन्वित पक्तियो ने नाटक को सरसता प्रदान की। इनके माध्यम से प्रसाद की कल्पना बोलती है। विशाख का नाटककार अब प्रत्येक दृष्टि से प्रौढ हो जाता है। व्यर्थ के गीतो का समावेश उसमे नही मिलता। इसके अतिरिक्त कथोपकथन के लिए पद्य का प्रयोग भी समाप्त हो जाता है। चन्द्र-गुप्त के गीतो मे भी किसी किसी स्थान पर अधिकता हो गई है। चतुर्थ अक में मालविका एक साथ तीन बार गा उठती है। शैली और भाव की दृष्टि मे नाटक के गीत अत्यन्त सुन्दर है। उनकी कला निखर उठी है।

ध्रुवस्वामिनी—

प्रसाद का अन्तिम नाटक ध्रुवस्वामिनी है (१९३४)। नाट्य कला की दृष्टि से यह नाटककार की सर्वोत्कृष्ट रचना है। पश्चिम का चरित्र चित्रण और भारतीय साहित्य का रस सिद्धान्त यहाँ सुन्दर समन्वित रूप में प्रस्तुत हो सका। केवल एक ही दृश्य के अन्तर्गत सम्पूर्ण कथानक को बाध दिया गया है। आरम्भिक गीत मन्दाकिनी का है। वह साम्राज्य के लिए चिन्तित है और केवल कर्त्तव्य करने के लिए हृदय कठोर बना लेती है। वह अपने हृदय को बारम्बार खोलकर देखती है। उसी को सम्बोधित करते हुए कहती है—'कसक आँसू सह ले'। वह ससार के प्रति एक उदार भावना रखकर बोलती है—'दुखिया वसुधा पर करुणा बनकर बिखरो'। इस प्रथम गीत मे ही मन्दा अपने आदर्श की ओर सकेत कर देती है। वह मालविका की भाँति अपने प्रेम को किसी के बन्धनो मे नही बाध देती। सन्तप्त वसुन्धरा पर शीतलता बिखेरती चलती है। मन्दाकिनी आगे चलकर इसी भावना पर दृढ रहती है। सामन्त कुमारो के आगे-आगे वह गम्भीर स्वर से गाते हुए प्रवेश करती है। जीवन का कोई भी झंझावात उसे रोक नही सकता। गिरिपथ का अथक पथिक कभी नही रुकता। वह सदा बाधा-विघ्नो मे सघर्ष करता हुआ आगे बढ जाता है·

> पृथ्वी की आँखों में बनकर, छाया का पुतला बढ़ता हो
> सूने तम में हो ज्योति बना, अपनी प्रतिमा को गढता हो।
> पीड़ा की धूल उड़ाता सा, बाधाओं को ठुकराता सा
> कष्टों पर कुछ मुसक्याता सा, ऊपर ऊँचे सब झेल चले।

ध्रुवस्वामिनी, पृष्ठ ३९

ताडव नर्तन में जब समस्त सृष्टि विलीन हो जाती है, साहस ही मानव की शक्ति है, उसकी निर्भरता ही सर्वस्व। सम्पूर्ण गीत मे जीवन के प्रति एक महान आस्था, विश्वास निहित है। उसमें शक्ति और साहस गूज रहा है। कवि की इस प्रगतिशील विचारधारा का समस्त जीवन दर्शन एक अनुभव पर आधारित है। कवि क्रमश. जीवन की उस सीमा पर जा रहा है, जहाँ वह आशा-निराशा, सुख-दुख को समान मानकर आगे बढता है। इस गीत में अन्तर और बाह्य दोनो ही सघर्षों का सामना करने की ओर सकेत है। मानव साहस लेकर बाधाओं को झेले, साथ ही अपनी ज्वाला को भी आप पीता रहे।

कोमा सुवासिनी की भाँति प्रेम के रहस्य को जानने का प्रयत्न करती है। कार्नेलिया ने एक सरल बालिका के रूप मे सुवासिनी ने यौवन और प्रेम की

परिभाषा पूछी थी। भावुक नारी ने स्त्री जीवन के सत्य का उद्घाटन किया। नन्द की रगशाला में अभिनय करने वाली युवती को यह रहस्य ज्ञात है कि अकस्मात जीवन कानन में एक राका रजनी की छाया मे छिपकर मधुर बसन्त घुस आता है। शरीर की सब क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती है[६]। कोमा भी मन ही मन जीवन की भूख और प्यास पर विचार करती है। वह पागलो की भाँति प्रेम करने को विकल है, जिसमें सब कुछ भूल जाय। वह यौवन की चचल छाया पर भी मुग्ध है और उसी का गीत गाती है। यौवन के साथ हृदय में अनेक अभिलाषाओ और आकाक्षाओ का उदय होता है। कोमा अपनी तन्मयता में जीवन के इस मधुमास से बोल उठती है कि, मेरे प्याले में मद बनकर, तू छली कब समा गया? वह केवल घूट भर पी लेना चाहती है। इतना ही नही, वह उसकी चचलता भी जानती है, इसी कारण भोलेपन में कह उठती है।

पल भर रुकनेवाले, कह तू पथिक, कहा से आया?

ध्रुवस्वामिनी, पृष्ठ ४२

अन्तिम गीत नर्त्तकियो का है। शकराज के सम्मुख वे नाचती हुई गाने लगती है। गीत में सध्या की कल्पना युवती की भाँति की गई है। घुघराली अलको के खुलते ही अन्धकार छा गया। प्रकृति मिलन में विभोर हो उठी। पहाड़ियो ने झीलो की रत्नमयी प्याली भर ली। वसुधा मदमाती हुई आकाश को झुकाने लगी। अन्तिम पक्ति में कवि एक रहस्यमय प्रश्न कर उठता है—

सब झूम रहे अपने सुख में तूने क्यों बाधा डाली है?

अपनी समस्त जिज्ञासा से इस प्रकार के प्रश्न कवि ने अनेक बार किए है। किसी अज्ञात के प्रति एक सकेत इनमें मिलता है। प्रसाद की रहस्योन्मुख प्रवृत्तियाँ अधिक स्पष्ट न हो सकी। इस प्रकार चारो गीत शृगार की भावना से परिपूरित है।

विकास—

काव्य विकास की दृष्टि से नाटको के गीत एक लम्बी अवधि के भीतर लिखे गए है। उनमे निरन्तर परिष्कार होता चला गया। सभी गीत विषय और स्थिति के अनुकूल नही मिलते, इस कारण उनके रचनाकाल को नाटको के साथ ही नही रक्खा जा सकता। कुछ गीतो की रचना स्वतन्त्र रूप से की गई है। नाटक के गीत पत्रिकाओ मे भी प्रकाशित हुए है। चन्द्रगुप्त का गीत 'पैरो

---

६. चन्द्रगुप्त, पृष्ठ १९२

के नीचे जलधर हो, बिजली से उनका खेल चले', जागरण साप्ताहिक, १९ अक्तूबर १९३२ ई० में प्रकाशित हुआ था। इस प्रकार कतिपय अन्य गीत भी मिलते है। आरम्भिक नाटको में गीतो की सख्या इतनी अधिक है कि उनका प्रयोग बाहर से प्रतीत होता है। धीरे-धीरे प्रसाद ने उन्हे स्वाभाविक गति प्रदान की। नाट्यगीतो में विकास के चिह्न दिखाई देते है और उन्ही का परिपाक अन्य रचनाओ मे हुआ। राज्यश्री के गीतो में प्रणय के वे ही उच्छ्वास मिलते है, जिनमे कवि प्रेरणा ग्रहण करता है। सुरमा के वेदन स्वर में करुणा है, जिससे उसका अतीत ज्ञात हो जाता है। इसी आन्तरिक झझावात के बीच सृष्टिकार का भी सगीत सुनाई देता है। राज्यश्री गाती है—

जय जयति करुणासिन्धु
जय दीन जन के बन्धु। (राज्यश्री, पृष्ठ ६५)

मानव त्रस्त होकर अपने चारों ओर निहारता है। अन्त में उसकी दृष्टि कृतिकार पर रुक जाती है। आरम्भ में कवि ने इसी रहस्य को अपनी समस्त जिज्ञासा से देखा था। धीरे-धीरे प्रकृति का स्थान मानव को मिल जाता है। जहाँ कहीं भावनाएँ अधिक सूक्ष्म हो उठी, एक रहस्यमय वातावरण निर्मित हो जाता है। इन रहस्यवादी प्रवृत्तियो के छाया सकेतो मे भी कुतूहल अधिक है। स्वयम् प्रणय का गीत गाने वाली सुरमा 'अलख रूप' को जान लेना चाहती है। लगभग इसी अवसर पर रचे गए आख्यानक काव्यो मे भी सक्रमण भावना के दर्शन होते है। प्रसाद ने इन्ही प्रयोगो के आधार पर अपने भावी दर्शन का निर्माण किया। नाटक के गीतो ने कवि को पर्याप्त अवसर दिया, कि वह 'कामायनी' तक जा सके। विशाख मे भी इसी प्रकार की अनिश्चित स्थिति है। चन्द्रलेखा अपनी सखी से सुख की परिभाषा जानना चाहती है। व्यक्ति और जगत के समन्वय का प्रयास नाटककार कर रहा था। इसी स्थिति के कारण कही-कही गीत भावहीन, नीरस हो जाते है। उसमे सरसता नही रह जाती। वे उपदेश की भाति प्रतीत होने लगते है।

महन्त अपनी ही मौज में गाता है:

जीवन भर आनन्द मनावे
खावे पीवे जो कुछ पावे। (विशाख, पृष्ठ ६)

अध्ययन के कारण जो दार्शनिक चिन्तन प्रसाद को मिल रहा था, उसका प्रयोग भी उन्होने आरम्भ से ही किया। यदि एक ओर 'विशाख' का कवि जग भर में मचे हुए अन्धेर और घोर भौतिकता पर विचार करता है, तो साथ ही खिले

हुए वसन्त, यौवन के मधुपान का भी सकेत करता है। आरम्भ से ही जिस समन्वय का प्रयत्न प्रसाद ने किया, वह उनके सम्पूर्ण काव्य का मूलाधार है। इस आरम्भिक नाटक 'विशाख' में गीतो की सख्या बहुत हो गई है, और कवि इन्ही के द्वारा विभिन्न प्रकार की जिज्ञासाओ को प्रस्तुत करता है। प्रणय और यौवन का व्यापार, सुख-दुख का रहस्य, आनन्द की प्राप्ति आदि को गीतो में स्थान प्राप्त हुआ है। व्यक्तिगत अनुभूतियाँ दर्शन की ओर बढती दिखाई दे रही है। एक ओर यदि प्रेमानन्द के मन में सन्देह है

मान लूं क्यो न उसे भगवान ?

तो दूसरी ओर घोर शृगारिकता से प्रभावित पक्तियाँ भी है। तरला गाती है—

मेरे मन को चुरा के कहा चले
मेरे प्यारे मुझे क्यों भुला चले। (विशाख, पृष्ठ ४३)

यह लौकिक प्रिय रहस्यमय होने लगता है। उसकी आभा एक झलक बनकर रह जाती है। कवि समाज के निकट जाता है। इरावती प्रार्थना करती है कि कोई दीन दुखी न रहे, सब लोग सुखी हो। साधु भी आनन्दरूप को खोजता फिरता है। इस प्रकार कवि एक व्यापक और बहुमुखी आधार को अपनाने लगता है। भावनाओ में काव्य की वह सरसता न आ सकी जो आगे चलकर विकसित हुई।

अजातशत्रु की दार्शनिक पृष्ठभूमि में बौद्ध विचार धाराएँ है और गीतों में भी इसकी छाया स्पष्ट है। गौतम के गीतो में करुणा का सगीत है। भिक्षुक भी दो दिन के सपने का परित्याग करने की शिक्षा देते है। बौद्ध दर्शन के इस करुणा प्रतिपादन में पूर्व की सी शुष्कता नही आने पाई है। दर्शन काव्य से समविष्ट हो गया है। वह उसी का एक अग बन जाता है। यद्यपि बौद्ध दर्शन से गीत प्रभावित है, किन्तु अब भी उनमें कवि की व्यक्तिगत प्रवृत्तियाँ पूर्णतया विलीन न हो सकी। समष्टि के साथ ही उनका व्यक्ति भी चलता रहता है। मागन्धी अब भी विचार करती है कि भला अली ने अवहेलना क्यो की ? वह सहसा पुकार उठती है।

आओ हिये में प्राणप्यारे।
नैन भए निर्मोही, नहीं अब देखे बिना रहते है तुम्हारे

पद-विन्यास की शिथिलता होते हुए भी इसमें भाव प्रवणता और प्रसादत्व अधिक है। एक ओर यदि गौतम के गीतो में विश्व-बन्धुत्व का स्वर गूज रहा है, तो साथ ही मागन्धी की आत्मा भी चीख उठती है। दोनो ही एक सत्य के दो रूप है। साधु जीवन के सत्य को जान लेने के लिए विकल है, प्रेमी अपनी प्रीति

का रहस्य । भक्त को अपने इष्ट पर जितना विश्वास होता है, उतना ही प्रेमी को अपने प्रिय पर। प्रसाद का व्यक्तिवाद आनन्दवाद तक जाने का एक प्रयास है। उनके प्रेम की ज्वाला विश्व भर में फैल जाती है। अजातशत्रु के गीतो मे व्यक्तिवादी, समाजवादी दोनो प्रकार की भावनाएँ अभिव्यक्त हुई है। एक ओर यदि कवि दार्शनिक स्थापना चाहता था, तो साथ ही वह पात्रो के व्यक्तित्व का विनाश करने को तत्पर नही। प्रसाद के पात्र सर्वथा सजीव और मासल रहते है। उनकी व्यक्तिगत भावनाएँ ही उन्हे एक ऊँचाई तक ले जाती है। श्यामा किसी पथिक की राह देखते-देखते शिथिल हो गई है, किन्तु फिर भी प्रकृति के वरसते फूल देख लेती है। जीवन के अन्तर और वाह्य दोनो ही पक्षो पर गीतो के माध्यम से विचार किया गया है। इसी दृष्टि से चरित्रो का भी निर्माण हुआ।

कामना के मनोवैज्ञानिक रूपक मे अन्तस्तल की सूक्ष्म अनुभूतियो का सगीत निहित है। सभी पात्र मनोविकार के अनुरूप ही चरित्र रखते है। उनके गीतो मे अपनी ही प्रतिध्वनि है। कामना कभी नही मरती। विलास सवको प्रेम का प्याला पिलाता है। विनोद अपनी ही मस्ती का गीत गाता है। उसे चारो ओर सौन्दर्य दिखाई देता है। लालसा 'नैनो के नुकीले तीर' को गीत में स्थान देती है। अन्त में कवि आनन्दवाद की स्थापना कर देता है। व्यक्ति समष्टि का समन्वय हो जाता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखे गए नाटक के गीतो मे भावों की सूक्ष्मता अधिक है। कामायनी की विशद कल्पना के वीज इन गीतो और विशेषकर मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियो मे निहित है। जनमेजय का नागयज्ञ की नियति भावना गीतो में स्पष्ट नही हुई। अव भी प्रणयगीत गाये जा रहे है, किन्तु राष्ट्रीय भावना को भी स्थान दिया गया। आर्य सैनिक गाते हुए प्रवेश करते है—

जय आर्य भूमि की, आर्य जाति की जय हो
अरिगण को भय हो, विजयी जनमेजय हो। (पृष्ठ ८३)

जिस सार्वभौमिकता का सकेत गौतम के द्वारा कराया गया था, वह बौद्ध दर्शन के वहुजनहिताय, वहुजन सुखाय मे समन्वित थी। आस्तीक, माणवक भी विश्व मे समता की घोषणा चाहते है, किन्तु दर्शन की अपेक्षा उसमे राजनैतिक प्रभाव अधिक है। कवि धीरे-धीरे व्यावहारिकता की ओर जाता दिखाई देता है। यही कारण है कि स्कन्दगुप्त मे प्रणय गीतो की भरमार होते हुए भी मातृगुप्त का भारत गीत है, जिसमे कवि ने एक लम्बे इतिहास को वाँधने का प्रयत्न किया। इस गीत के द्वारा वह अतीत के स्वर्णिम वैभव, जाति गौरव, नवीन चेतना, देश प्रेम आदि की ओर हमारा ध्यान आकर्षित कराना चाहता है। नाटको में फैली हुई विचारधारा इस गीत में आकर स्पष्ट हो उठी है। देश का इतिहास जाति

का पथ प्रदर्शन करता है, उसे नवीन शक्ति देता है। किन्तु प्रगतिशील होते हुए भी प्रसाद गुप्तजी की भाँति राष्ट्रीय कवि नहीं हैं। उनका मूल स्वर प्रेम और आनन्द का है। मातृगुप्त अपनी कल्पना में ही अतीत की स्मृतियो में उलझ जाता है। नर्तकी के गीतो मे भी शृगार के उच्छृखल, मादक रूप की अपेक्षा गाम्भीर्य अधिक ह। विजया अपनी चचलता में ही पागलो की भाँति गीत नही गा पाती। वह हृदय की अन्तरतम मुसकान देखती है। एक बौद्धिकता की छाया इन गीतो में दिखाई देती है। जीवन के सिद्धान्तो को कवि निर्धारित कर चुका है और इन्ही का प्रतिपादन उसने गीतो में किया। देवसेना प्रेमिका का सर्वोपरि आदर्श है। अपनी व्यक्तिगत आकाक्षाओ में उलझकर वह जीवन का सत्य नही भूल जाती। उसे नेपथ्य से गीत सुनाई देता है—

सब जीवन बीता जाता है
धूप छांह के खेल सदृश। (स्कन्दगुप्त, पृष्ठ ९४)

स्कन्दगुप्त तक आते-आते कवि प्रत्येक दृष्टि से अपने प्रयोगो के आधार पर आदर्श और सिद्धान्त वना चुका था। जीवन के अनुभव से भी उसने बहुत कुछ सीखा था। भावुकता और कल्पना का लोक अपने व्यक्तिगत रूप में भी किसी महान लक्ष्य तक जाना चाहता है। मानव जीवन की व्यावहारिकता से वह दूर नहीं है। नग्न सत्य सम्मुख प्रस्तुत है। ईश्वर और प्रिय सभी धीरे-धीरे विलीन होते दिखाई देते है। उसका स्थान किसी अज्ञात शक्ति और मानव को प्राप्त होता है। कवि अपनी व्यावहारिक प्रवृत्तियो के कारण पूर्ण रहस्यवादी भावनाओ का प्रतिपादन गीतो में न कर सका, किन्तु कही-कही रहस्यमय प्रवृत्ति झलक जाती है। देवसेना के गीत में इसी रहस्य की छाया है

भरा नैनों में मन में रूप
किसी छलिया का अमल अनूप। (स्कन्दगुप्त, पृष्ठ ४५)

व्यक्ति और समष्टि का सघर्ष समाप्त हो जाता है। प्रसादजी व्यावहारिक जीवन के सुख, शान्ति तथा चिरन्तन आनन्द की समस्या पर विचार करने लगते है। मानव की आन्तरिक तृप्ति के साथ ही उसका भौतिक जीवन भी सुखी रहे और अन्त में उसे वास्तविक आनन्द मिले। रणक्षेत्र में युद्ध करता हुआ वीर स्कन्द राष्ट्रसेवी होते हुए भी व्यापक दृष्टिकोण रखता है। उसकी प्रार्थना है—

वजा दो वेणु मनमोहन वजा दो
हमारे सुप्त जीवन को जगा दो। (स्कन्दगुप्त, पृष्ठ १३८)

कवि के गीतो में शाश्वत मानवीय भावनाओ का प्रवेश हो गया है, जो उसके

दर्शन का चरम विकास है। भावना की दृष्टि से स्कन्दगुप्त के गीतो की दार्शनिक नियोजना अत्यन्त प्रौढ है। उसमे केवल प्रणय अपनी भावुकता, कल्पना मे नही झूम उठता, वरन् मानवीय मूल्यो का समावेश भी करता है। एक स्वस्थ जीवन दर्शन की नियोजना मे कवि पूर्णतया सफल हुआ है। स्वाभाविक उत्थान-पतन में बधे हुए मानव को ऊपर उठने की सदा आकाक्षा रहती है। इसी की अभिव्यक्ति गीतो के द्वारा कवि ने की है।

'एकघूट' मे जीवन के चिरन्तन मूल्य पर अधिक विस्तार से विचार किया जा सका। उसमें कवि ने एक प्राकृतिक वातावरण का निर्माण किया। यहाँ राजनैतिक और सामाजिक सघर्ष अधिक नही रह जाते। कवि ने ऐतिहासिक कथानक का स्थान स्वतन्त्र कल्पना को दे दिया है, ताकि वह लक्ष्य मे सफल हो सके। इसी कारण आरम्भिक गीत मे ही अलौकिकता का आभास मिलता है। नेपथ्य मे सुनाई देता है :

इस अनन्त स्वर से मिल जा तू वाणो में मधु घोल।

विश्व चेतना पर विचार करता हुआ कवि सम्पूर्ण जीवन को एक इकाई के रूप मे गहण कर लेता है। ऐतिहासिक सत्य, राजनैतिक संघर्ष पीछे छूट जाते है। जीवन के सामूहिक लक्ष्य सौन्दर्य तक वह चला जाता है। कवि अधिक गहराई मे जा रहा है। किसी व्यक्ति की भूख और प्यास, किसी देश की विडम्बना अथवा किसी जाति की हीनता मे कवि अधिक नही उलझता। उसने मूल तन्तु को ही पकड लिया है। व्यक्ति की करुणा, नारी का प्रेम, कल्पना का उद्वेग सब पीछे रह जाते है। कवि अमर सत्य को जान लेने के लिए विकल है। प्रेमलता के गीत मे इसी भाव की प्रतिध्वनि है :

एक घूंट का प्यासा जीवन
निरख रहा सबको भर लोचन।
कौन छिपाए है उसका घन
कहा सजल वह हरियाली है। (एकघूंट, पृष्ठ २१)

काव्य के इन शाश्वत मूल्यो ने प्रसाद को उन कवियो की श्रेणी मे रख दिया, जिनका सगीत युगो तक गूजता रहता है। कवि 'एकघूट' मे राष्ट्रीयता, मानवतावाद सभी के ऊपर उठ गया है। एक दार्शनिक की भाति उसने जीवन पर विचार किया।

चन्द्रगुप्त की राष्ट्रीय तथा ऐतिहासिक कल्पना मे स्कन्दगुप्त की ही रूपरेखा दिखाई देती है। सर्वप्रथम पात्रो की व्यक्तिगत भावनाएँ गीतो मे मुखर हो उठती है। नर्तकी के रूप मे सुवासिनी के गीत शृगारिक भावनाओ से भरे है और

का पथ प्रदर्शन करता है, उसे नवीन शक्ति देता है। किन्तु प्रगतिशील होते हुए भी प्रसाद गुप्तजी की भाँति राष्ट्रीय कवि नही है। उनका मूल स्वर प्रेम और आनन्द का है। मातृगुप्त अपनी कल्पना में ही अतीत की स्मृतियो में उलझ जाता है। नर्तकी के गीतो में भी शृगार के उच्छृखल, मादक रूप की अपेक्षा गाम्भीर्य अधिक ह। विजया अपनी चचलता में ही पागलो की भाँति गीत नही गा पाती। वह हृदय की अन्तरतम मुसकान देखती है। एक बौद्धिकता की छाया इन गीतो में दिखाई देती है। जीवन के सिद्धान्तो को कवि निर्धारित कर चुका है और इन्ही का प्रतिपादन उसने गीतो में किया। देवसेना प्रेमिका का सर्वोपरि आदर्श है। अपनी व्यक्तिगत आकाक्षाओ में उलझकर वह जीवन का सत्य नही भूल जाती। उसे नेपथ्य से गीत सुनाई देता है—

> सब जीवन बीता जाता है
> धूप छांह के खेल सदृश। (स्कन्दगुप्त, पृष्ठ ९४)

स्कन्दगुप्त तक आते-आते कवि प्रत्येक दृष्टि से अपने प्रयोगो के आधार पर आदर्श और सिद्धान्त बना चुका था। जीवन के अनुभव से भी उसने बहुत कुछ सीखा था। भावुकता और कल्पना का लोक अपने व्यक्तिगत रूप में भी किसी महान लक्ष्य तक जाना चाहता है। मानव जीवन की व्यावहारिकता से वह दूर नहीं है। नग्न सत्य सम्मुख प्रस्तुत है। ईश्वर और प्रिय सभी धीरे-धीरे विलीन होते दिखाई देते हैं। उसका स्थान किसी अज्ञात शक्ति और मानव को प्राप्त होता है। कवि अपनी व्यावहारिक प्रवृत्तियो के कारण पूर्ण रहस्यवादी भावनाओ का प्रतिपादन गीतो में न कर सका, किन्तु कही-कही रहस्यमय प्रवृत्ति झलक जाती है। देवसेना के गीत में इसी रहस्य की छाया है

> भरा नैनों में मन में रूप
> किसी छलिया का अमल अनूप। (स्कन्दगुप्त, पृष्ठ ४५)

व्यक्ति और समष्टि का सघर्ष समाप्त हो जाता है। प्रसादजी व्यावहारिक जीवन के सुख, शान्ति तथा चिरन्तन आनन्द की समस्या पर विचार करने लगते है। मानव की आन्तरिक तृप्ति के साथ ही उसका भौतिक जीवन भी सुखी रहे और अन्त मे उसे वास्तविक आनन्द मिले। रणक्षेत्र में युद्ध करता हुआ वीर स्कन्द राष्ट्रसेवी होते हुए भी व्यापक दृष्टिकोण रखता है। उसकी प्रार्थना है—

> बजा दो वेणु मनमोहन बजा दो
> हमारे सुप्त जीवन को जगा दो। (स्कन्दगुप्त, पृष्ठ १३८)

कवि के गीतो मे शाश्वत मानवीय भावनाओ का प्रवेश हो गया है, जो उसके

दर्शन का चरम विकास है। भावना की दृष्टि से स्कन्दगुप्त के गीतो की दार्शनिक नियोजना अत्यन्त प्रौढ है। उसमे केवल प्रणय अपनी भावुकता, कल्पना मे नही झूम उठता, वरन् मानवीय मूल्यो का समावेश भी करता है। एक स्वस्थ जीवन दर्शन की नियोजना में कवि पूर्णतया सफल हुआ है। स्वाभाविक उत्थान-पतन मे बधे हुए मानव को ऊपर उठने की सदा आकाक्षा रहती है। इसी की अभिव्यक्ति गीतो के द्वारा कवि ने की है।

'एकघूट' मे जीवन के चिरन्तन मूल्य पर अधिक विस्तार से विचार किया जा सका। उसमे कवि ने एक प्राकृतिक वातावरण का निर्माण किया। यहाँ राजनैतिक और सामाजिक सघर्ष अधिक नही रह जाते। कवि ने ऐतिहासिक कथानक का स्थान स्वतन्त्र कल्पना को दे दिया है, ताकि वह लक्ष्य मे सफल हो सके। इसी कारण आरम्भिक गीत मे ही अलौकिकता का आभास मिलता है। नेपथ्य मे सुनाई देता है :

इस अनन्त स्वर से मिल जा तू वाणी में मधु घोल।

विश्व चेतना पर विचार करता हुआ कवि सम्पूर्ण जीवन को एक इकाई के रूप मे ग्रहण कर लेता है। ऐतिहासिक सत्य, राजनैतिक सघर्ष पीछे छूट जाते है। जीवन के सामूहिक लक्ष्य सौन्दर्य तक वह चला जाता है। कवि अधिक गहराई मे जा रहा है। किसी व्यक्ति की भूख और प्यास, किसी देश की विडम्वना अथवा किसी जाति की हीनता मे कवि अधिक नही उलझता। उसने मूल तन्तु को ही पकड लिया है। व्यक्ति की करुणा, नारी का प्रेम, कल्पना का उद्वेग सब पीछे रह जाते है। कवि अमर सत्य को जान लेने के लिए विकल है। प्रेमलता के गीत मे इसी भाव की प्रतिध्वनि है :

एक घूंट का प्यासा जीवन
निरख रहा सबको भर लोचन।
कौन छिपाए है उसका धन
कहां सजल वह हरियाली है। (एकघूंट, पृष्ठ २१)

काव्य के इन शाश्वत मूल्यो ने प्रसाद को उन कवियो की श्रेणी में रख दिया, जिनका सगीत युगो तक गूजता रहता है। कवि 'एकघूट' मे राष्ट्रीयता, मानवतावाद सभी के ऊपर उठ गया है। एक दार्शनिक की भाति उसने जीवन पर विचार किया।

चन्द्रगुप्त की राष्ट्रीय तथा ऐतिहासिक कल्पना मे स्कन्दगुप्त की ही रूपरेखा दिखाई देती है। सर्वप्रथम पात्रो की व्यक्तिगत भावनाएँ गीतो मे मुखर हो उठती है। नर्तकी के रूप मे सुवासिनी के गीत शृगारिक भावनाओ से भरे है और

वगला से होकर हिन्दी में आया। किन्तु बगला तथा हिन्दी के उच्चारण वैषम्य के कारण हिन्दी को वगला की भाति सुकोमल भावनाओ के सचार का अवसर न मिल सका। प्रसाद के गीत छन्द तथा सगीत के मात्रिक विधान मे अधिक समान है। उसमे एक ओर देशी प्रभाव है तो साथ ही शास्त्रीय सगीत को भी स्थान दिया गया है। चन्द्रगुप्त के कई गीतो को कजली, कहरवा की ताल मे बाँधा जा सकता है। सगीत की प्रकृति खडी बोली मे अधिकाधिक विस्तृत होती गई। निराला जी ने शुद्ध सगीत पर काव्य को स्थापित किया। छन्दो के विषय में आरम्भ से ही प्रसाद ने भावना के अनुरूप नवीन प्रयोग आरम्भ कर दिए थे, नाटच-गीतो मे यह विविधता स्पष्ट हो उठी। चन्द्रगुप्त का प्रसिद्ध गीत स्वरलिपि के अनुसार इस प्रकार है —

तुम कनक किरण के अन्तराल में
लुक छिपकर चलते हो क्यों ? (चन्द्रगुप्त, पृष्ठ ११)

खम्माच-तीन ताल, स्थायी

		•						०				३			
						रे	ग	स	रे	स	म	ग	ग	ग	—
						तु	म	क	न	क	कि	र	ण	के	ऽ
×				२											
य	—	प	प	—	प	म	ग	म	म	प	प	प	ध	स	स
अ	ऽ	न्त	रा	ऽ	ल	से	ऽ	लु	क	छि	प	क	र	च	ल
नि	ध	प	म	ग	—										
ते	ऽ	हो	ऽ	क्यो	ऽ										

अन्तरा

								०				३			
						ग	म	ध	—	ध	ध	ध	—	ध	ध
						न	त	म	ऽ	स्त	क	ग	ऽ	र्व	व
×				२											
ध	नि	ध	नि	प	—	ग	—	म	म	प	—	प	ध	स	म
ह	न	क	र	ते	ऽ	यौ	ऽ	व	न	के	ऽ	घ	न	र	स
फ	न	ढ	र	ते	ऽ										

स्वर के आगे पड़ी पाई—तथा अक्षर के आगे अवग्रह ऽ दीर्घ मात्राकाल का संकेत करते हैं। × सम का चिन्ह, अंक ताल का सूचक तथा ० शून्य का प्रतीक हैं। विभाजन का आधार खड़ी लम्बी रेखाएँ हैं।

नाट्यशास्त्र के अनुसार भी नृत्य और गान नाटक के आवश्यक अंग हैं[८]। प्रसाद के गीतों ने इसकी पूर्ति की। नाटकों के गीत पात्रों की आन्तरिक अभिव्यक्ति होने के कारण चरित्र-चित्रण में सहायक होते हैं। कथानक का विकास भी उनसे होता है। इस प्रकार उनकी नाटचोपयोगिता है। अधिकांश नाटकों में प्रहसन न होने के कारण गीत ही मनोरंजन का कार्य करते हैं। प्रहसन के द्वारा नाटकों की स्वाभाविक गति में एक व्यवधान प्रस्तुत हो जाता था। प्रसाद ने इसमें सुधार किया। प्राचीन काल में ही नृत्य अभिनय से सम्पूर्ण नाटक और गीतिनाट्य भारत में प्रचलित थे[९]। इसी का नवीन संस्करण उन्होंने किया। उनके माध्यम से ही उनका कवि-रूप भी मुखरित होता चला गया। वे आदि से अन्त तक कवि हैं। पात्रों की भावुक कल्पना, स्वगत भाषण, अधिक गीत सभी उनकी कल्पना के प्रसार में सहयोग प्रदान करते हैं।

नाटक के रूपों में गीतिकाव्य के अनेक रूप मिलते हैं। विभिन्न प्रकार की भावनाओं का उसमें समावेश है। प्रणय और सौन्दर्य के गीतों में कवि ने सुन्दर शब्द-चित्रों की रचना की। छायावादी कविता में प्रसाद के प्रणय गीतों का उच्च स्थान है। पन्त के आरम्भिक प्रणय गीत प्रकृति का अवलम्ब ग्रहण करते हुए आगे बढ़ते हैं। उनका प्रणय प्रसाद की भांति उन्मुक्त न हो सका। प्रकृति के नाना व्यापारों को भी साथ ले चलने के कारण उनमें प्रणय गीतों का प्रवाह मन्द पड़ गया है। निराला के गीत प्रसाद की भांति स्वच्छन्द अवश्य है, किन्तु उनमें वह ताप नहीं तो प्रणय गीतों को मांसलता प्रदान करता है। पन्त अपने प्रियतम से कहते हैं कि आज गृह काज न करो। निराला सखी से वसन्त की बातें करते हैं। महादेवी के प्रणय गीतों का रहस्यमय प्रियतम सूक्ष्म बन्धनों में बाँधा गया है। कवयित्री का समस्त प्रणय व्यापार छाया संकेतों की भांति है। प्रसाद के प्रणय गीतों में कीट्स के स्वच्छन्दतावादी गीतों का ताप है। इसके अतिरिक्त इन गीतों की प्रमुख विशेषता उनका सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। गीतों के द्वारा व्यक्ति की विशेष अन्तर्दशा का चित्रण किया गया है। मानव हृदय में उठने वाली

---

८ जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥ (नाट्यशास्त्र, १।१७)

९ काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ ६१

अनेक सूक्ष्म और उदात्त भावनाएँ उसमें निहित है। सुख-दुख, आशा-निराशा अन्त करण की प्रतिध्वनि बनकर आ गए ह। लोक-गीतो की सरसता की अपेक्षा साहित्यिक उत्कर्ष प्रसाद के प्रणय गीतो मे अधिक है। 'इस कवि मे जो मस्ती है, भावना एव अनुभूति की जो मृदुता है और मानव जीवन के उत्कर्ष का जो गौरव है, उसे देखते हुए उसकी प्रतिभा गीतिकाव्य की रचना के अत्यन्त उपयुक्त थी[१०]।'

प्रसाद के गीतो मे मूलत स्वानुभूति की अभिव्यक्ति है। उनमे कवि का व्यक्तित्व झलकता है। उसका भावुक मन नाटको मे इन्ही गीतो के माध्यम से फूट पडता है। इस विकलता के कारण नाटचोपयोगी होते हुए भी गीत कही कही कथानक का माथ नही देते। उनका स्वतन्त्र अस्तित्व स्पष्ट हो जाता है। गीतो मे प्रसाद का हृदय पक्ष ही प्रबल रहा है, किन्तु अध्ययन ने उनमे दार्शनिक तथ्यो का भी समावेश किया। जहाँ कही चिन्तन भावधारा में मिल जाता है, सगीत बोझिल होने लगता है। कवि सत्य के निरूपण मे सफल होता है किन्तु गीत का नैसर्गिक प्रवाह मन्थर हो जाता है। 'अजातशत्रु' में गौतम के गीत इसी प्रकार हैं—

> चचल चन्द्र, सूर्य है चचल
> चपल सभी ग्रहतारा है
> चंचल अनिल, अनल, जल, थल सब
> चचल जैसे पारा है। (अजातशत्रु, पृष्ठ ४८)

अँग्रेजी के गीतकार वर्ड्स्वर्थ और कोलरिज मे भी दार्शनिक निरूपण के कारण इसी प्रकार की उपदेशात्मकता यत्र-तत्र मिल जाती है। उनके गीतो का चिन्तन गाम्भीर्यपूर्ण है। प्रकृति के अन्तस्तल मे जाकर प्रेरणा लेने वाले वर्ड्स्वर्थ को उसके निकट जाकर ही देखा जा सकता है। प्रकृति के विशाल रगमच पर उसने अपनी गीत सृष्टि की। उसे प्रकृति मे शिक्षा प्राप्त हुई। वर्ड्स्वर्थ कहता है—वह धूमिल स्वप्न व्यतीत हो गया, मैं तेरा किनारा नही छोड दूगा। पुन वही करूँगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं अब भी तुझे अधिक-से-अधिक प्रेम करता जा रहा हूँ[११]। कोलरिज ने अतीत से प्रेरणा ग्रहण की। प्रसाद के गीतो मे केवल बाइरन

---

१० कवि प्रसाद की काव्य साधना, पृष्ठ १२७

११ Tis past, that meloncholy dream
Nor will I quit thy shore
A second time, for still I seem
To love thee more and more

——Wordsworth

का-सा विद्रोह नही है, उसमे चिन्तनशील कलाकार के सकेत है। वह अधिक-से-अधिक प्रकाश की ओर जा रहा है। प्रेम का आदर्श वह 'प्रेम पथिक' मे ही स्थापित कर चुके थे, उसी का विकास नाटक के गीतो मे हुआ। गीतो मे जिस अज्ञात रहस्य का प्रतिपादन किया गया है, उसमे एक विराट के प्रति सकेत है और इसी की पूर्ण परिणति 'कामायनी' के अन्त मे हुई।

नाटक के गीतो मे कवि की भावना अधिक स्पष्ट हो गई है। प्रणय के सम्बन्ध का परोक्ष दर्शन होने के कारण 'झरना' के गीतो मे रहस्यवादी भावनाओ को खोजने का प्रयत्न किया जाता है। नारी पुरुष पात्रो के माध्यम से नाटक के गीतो मे यह भावना स्पष्ट हो गई। सुवासिनी किसी अज्ञात मौन के लाज भरे सौन्दर्य का सकेत नही करती। वह अपने सूक्ष्म रूप मे भी इसी धरातल की व्यक्ति है। एक ओर कवि ने जडता को चेतनता प्रदान की, तो साथ ही स्थूल को सूक्ष्म कर दिया। सौन्दर्य का स्थान वेदनानुभूति ले लेती है। नारी का रूप, उसकी प्रवृत्तियाँ नाट्यगीतो मे अधिक मुखर हो उठी। इसके पूर्व छोटे-छोटे गीतो मे कवि अपने ही माध्यम से बोलता है। नाटको मे पात्रो के द्वारा वह अनेक सकेत कर सकता है। विजया चचला होकर भी स्कन्दगुप्त पर रीझ उठी। उसके गीत मे विलास की कल्पना है :

> अगरु धूम सी श्याम लहरिया, उलझी हो इन अलको से
> मादकता लाली के डोरे इधर फँसे हों पलको से।
> व्याकुल बिजली सी तुम मचलो आर्द्र हृदय घनमाला से
> आँसू बरुनी से उलझे हों, अधर प्रेम के प्याला से।
> इस उदास मन की अभिलाषा अटकी रहे प्रलोभन से
> व्याकुलता सौ-सौ बल खाकर उलझ रही हो जीवन से।

स्कन्दगुप्त, पृष्ठ १५५

वह अपना भरा हुआ यौवन और प्रेमी-हृदय विलास के उपकरणो के साथ प्रस्तुत करती है। नारी और पुरुष का सम्बन्ध नाट्य गीतो मे स्पष्ट हो गया है। जीवन के इस सत्य को जब कभी कवि प्रिय प्रियतम के रहस्यमय सकेतो मे बाधने लगता है चित्र अत्यन्त सूक्ष्म हो जाते है। इन सूक्ष्म चित्रो ने ही शृगार का परिष्कार किया। इसके लिए कवि ने प्रतीक विधान का अवलम्ब ग्रहण किया। नवीन प्रतीको के प्रयोग के कारण कही-कही चित्र अस्पष्ट हो जाते है। केवल अप्रस्तुत विधान तथा सूक्ष्मता के आधार पर प्रसाद मे रहस्यवाद की कल्पना नही की जा सकती। रहस्यवाद का आध्यात्मिक अश ही उसका प्राण है। प्रणय व्यापार अपने चरम विकास मे रहस्यवाद के समीप आ सकता है। प्रसाद का दार्शनिक

के रूप मे विचार और तर्क करते है, किन्तु रहस्यवादी रूप मे जीवित रहते और देखते है। प्रसाद का दार्शनिक निरूपण और जीवन सत्य उन्हे एक मात्र रहस्य भूमि मे रम जाने से रोक लेता है। देवसेना किसी छलिया के अमल अनूप रूप का जब गीत गाने लगती है, तब उसके सम्मुख अपने लौकिक प्रियतम का भी एक रहस्यमय स्वरूप प्रस्तुत होता है। आध्यात्मिक रहस्यवाद की रूप-रेखा कवि नही निर्धारित कर पाता, किन्तु उसका सकेत परोक्ष के प्रति भी है। वह अपनी सूक्ष्म कल्पना के द्वारा प्रेम को एक ऐसी भाव-भूमि पर ले गया है, जहाँ वह सर्वोपरि हो जाता है। इस प्रयास मे कवि को जिन छाया सकेतो का सहारा लेना पडा, उनमें छायावाद का उत्कृष्ट स्वरूप है। दार्शनिक, रहस्यवादी और छायावादी अपनी चरम सीमा मे एक दूसरे के निकट है। दार्शनिक तर्क-वितर्क के द्वारा जिस समस्या पर विचार करता है, रहस्यवादी आत्मा-परमात्मा की प्रहेलिका सुलझाता है। छायावादी भावानुभूति की चरम परिणति का प्रकाशन करता है। प्रसाद के नाट्य-गीतो मे आन्तरिक भावो का मार्मिक प्रकाशन है। जडता को चेतनता प्रदान करने का प्रयास 'चित्राधार' की प्रकृति रचनाओ मे स्थूल था। झरना, लहर मे भावो से उसका तादात्म्य हुआ और नाट्य गीतो में उसका पूर्ण परिपाक हो गया। अन्तर्मुखी गीतो मे स्वप्न, मिलन, स्मृति आदि की प्रेमानुभूतियाँ अपने सूक्ष्मतम रूप मे रहस्यमय बन जाती है।

प्रसाद के नाट्य गीतो मे विकास की रेखाएँ भावना की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। कवि लौकिक के सहारे उच्च भावभूमि तक जाने का प्रयत्न कर रहा है। किसी प्रणयिनी के प्रणय-निवेदन और वेदन स्वर मे जो सकेत मिलते है, उनमे परोक्ष की छाया है। प्रकृति उस परम सत्ता और मानव के बीच एक शृखला का कार्य करती है। प्रसाद ने प्रकृति की भूमिका मे ऐसे प्रेमवाद की अभिव्यक्ति की, जिनमें कही-कही परोक्ष प्रेम का सकेत है[१२]। इन्ही परिस्थितियो मे सूफी साधको ने काव्य-रचना की थी। जायसी ने जिस रूपक के द्वारा प्रेम के आदर्श की स्थापना की थी, वह भी साकेतिक ही है। हीरामन सुग्गा कहता है—

प्रीति बेलि जिन अरुझै कोई। अरुझे मुए न छूटै सोई।
प्रीति अकेलि बेलि चढि छावा। दूसर बेलि न सचरै पावा।

छायावाद रहस्यवाद के लक्ष्य मे आदर्श और आध्यात्म का जो भेद है, उसके दोनो रूप गीतो मे दिखाई देते है। लौकिक प्रेम मे भी कवि ने आदर्श का ही अकन किया है। अलका के सगीत मे यही स्वर है

---

१२ हिन्दी कविता में युगान्तर, पृष्ठ ३९४

समय विहंग के कृष्णपक्ष में रजत चित्र सी अंकित कौन
तुम हो सुन्दर तरल तारिके ! बोलो कुछ बैठो मत मौन।
मन्दाकिनी समीप भरी फिर प्यासी आँखें क्यों नादान
रूप निशा की ऊषा में फिर कौन सुनेगा तेरा गान।

चन्द्रगुप्त, पृष्ठ ९३

प्रतीक विधान मे कवि ने नवीन प्रयोग किए और काव्य मे मूर्तिमत्ता, लाक्षणिकता तथा चित्रांकन का सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत किया। प्रसाद के चित्र सजीव और सप्राण हैं। यौवन के माधवी कुंज में कोकिल की कुहू-कुहू से ही लज्जानत सौन्दर्य, यौवन का अंकन कवि कर देता है और सौन्दर्य साकार हो उठता है। प्रसाद ने नाट्यगीतों में एक सुदृढ़ तूलिका से कार्य किया। 'प्रलय की छाया' के चित्रों का विकास क्रमशः होता चला गया। प्रसाद के छायावाद में दार्शनिक संकेतों का बाहुल्य है इस चिन्तन और दार्शनिक पक्ष ने एक ओर गीतों को गाम्भीर्य प्रदान किया तो साथ ही निराला का-सा निर्भर संगीत उसमे स्थान न पा सका। निराला के गीतों में आवेश और गति बहुत है। यही कारण है कि मुक्त छन्दों का निर्माण उन्होंने केवल लय के आधार पर किया। प्रसाद की भावना गहराई में जाकर डूब जाती है। केवल भावुकता और आवेश के आधार पर उन्होंने गीतों का निर्माण नहीं किया, उसमें मानवीय मूल्यों को पकड़ने का प्रयत्न है। चिन्तन से प्राप्त विचारों ने इस नियोजना मे उनका साथ दिया।

गीति काव्य की आत्मा अनुभूति है। गीतों मे कवि अपने अन्तरतम का संगीत प्रस्तुत करता है। गीतकार अपने प्राणों का प्रकाशन करने के लिए आकुल हो उठता है। गीतों में लय, गति संगीत की प्रधानता का यही रहस्य है। सभी गीतकार किसी न किसी अंश में गायक होते हैं। गीतिकाव्य का सृजनकार इस संगीत गुण, गायन की अधिक मात्रा रखता है। वह स्वाभाविकतया व्यक्तिवादी होता है। वह अपने व्यक्तिगत संसार, विचार तथा भावनाओं में अधिक उलझा रहता है[13]। प्रसाद ने जिस संसार का निर्माण किया उसमें भावानुभूति की तीव्रता के साथ ही बौद्धिक चिन्तन है। नाटकों के गीतों मे उन्होंने अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन पात्रों के माध्यम से किया। पात्रों की भाषा में कभी-कभी झरना और लहर के प्रणयगीतों का कवि स्वयम् बोल उठता है। राक्षस गाता है .

---

13 All poets are singers, more or less, and the purely lyrical poet is the one possessed in the greatest degree of the quality and impulse of song He is the natural egoist, concerned entirely with the world of himself-his thoughts and emotions
–The Experience of Poetry, Vernon Knowles, Page 21

निकल मत बाहर दुर्बल आह !
लगेगा तुझे हँसी का शीत
शरद नीरद माला के बीच
तडप ले चपला सी भयभीत । (चन्द्रगुप्त, पृष्ठ १३)

आत्म-प्रकाशन के अतिरिक्त गीतो में सगीत तत्व की प्रधानता है। नाटकों के अन्त मे दी हुई स्वरलिपियाँ गीतो को सगीत मे बाँध देती है। लय के द्वारा ही गीतो की रचना करने का प्रयत्न जिन कवियो ने मुक्त छदो मे किया, उनसे प्रसाद का स्वर भिन्न है। सस्कृत के मुक्तक काव्य की सक्षिप्त भावधारा तथा पश्चिम की वैयक्तिक अनुभूति प्रसाद के गीतो में मिलती है। एक गीत किसी विशेष मनोदशा का ही कल्पना खड होता है। वह कवि की विशेष मनोवृत्ति का परिचायक है। इस प्रकार कुछ अत्यन्त सुन्दर गीत नाटको मे मिलते है—

हे लाज भरे सौन्दर्य बता दो
मौन बने रहते हो क्यों ? (चन्द्रगुप्त)

* * *

सब जीवन बीता जाता है
धूप-छाँह के खेल सदृश । (स्कन्दगुप्त)

* * *

आह वेदना मिली विदाई (स्कन्दगुप्त)

इन नाट्य गीतो मे कवि को अपने भावी निर्माण के आरम्भिक प्रयोगो का अवसर मिला। कामायनी मे जिन मानवीय भावनाओ, चित्रमय रूपको, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप प्रस्तुत हुआ, उसके बीज इन गीतो मे ही निहित हैं। कवि मानवीय मूल्यो को गहराई से पकड लेता है। जीवन के आधारभूत सत्य वह पा जाता है। सुख दुख का समन्वित रूप काव्य, दर्शन के साथ ही जीवन सत्य के रूप मे प्रस्तुत होता है। प्रत्येक महान कलाकार साहित्य के सकेतो से जीवन का शृगार करता है। प्रसाद का यह रूप महाकाव्य मे अधिक मुखर हो सका, किन्तु उसका सक्षिप्त स्वरूप गीतो मे मिल जाता है। बौद्ध दर्शन से प्रभावित लहर के गीतो मे केवल एक विशेष दर्शन का आग्रह है। नाट्य गीतो मे गौतम के भी उपदेश अजातशत्रु मे है। किन्तु इसके अतिरिक्त जीवन की अन्य बहुमुखी अनुभूतियो का निर्देश कवि ने अपने नाट्य गीतो मे किया। ये नाटको के गीत, भावना की विविधता, भाव की स्पष्टता और भाषा की सरल किन्तु मनोरम भगिमा मे झरना और लहर के गीतो मे कुछ कम आकर्षक और प्रभावशाली नही है।

———

कामायनी

१—ऐतिहासिक आधार और वस्तु-योजना

२—'कामायनी' का चिन्तन

३—'कामायनी' का काव्यत्व

'कामायनी' का ऐतिहासिक आधार और वस्तु-योजना

'कामायनी' का आरम्भ जलप्लावन से होता है—

हिम गिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पुरुष, भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह।

चारो ओर जल ही जल था, और 'तरुण तपस्वी' देवताओं की श्मशानभूमि में साधना कर रहा था। जल प्लावन धीरे-धीरे उतर रहा था। नौका महावट से बधी हुई थी। उस पुरुष के हृदय में चिन्ता का उदय होता है। परिभाषा के पश्चात् ही उसे देव-सृष्टि का स्मरण होता है। इस अवसर पर कवि ने देवताओं की अपूर्णता का दिग्दर्शन कराया है। देवता केवल वासना के उपासक थे। वह वास्तविक सुख नही, उसका एक सग्रह मात्र था। उनका वह समस्त भोग-विलास एक स्वप्न की भाति विलीन हो गया। उसे आज केवल इतना ही याद आता है कि उस दिन जब भीषण प्रलय आया, तो नौका ने उसका साथ दिया, जिसमें डाडे, पतवार न थे। सम्पूर्ण प्रकृति एक साथ विद्रोह कर उठी थी। कितने ही दिनो के पश्चात् महामत्स्य के चपेटे से नौका उत्तर गिरि के शिर से आ लगी। मनु जीवन की प्रहेलिका पर विचार करने लगते है। अभी-अभी उन्होंने भीषण सहार देखा, उसका स्मरण हो आया। जीवन की मरु-मरीचिका और मृत्यु का रहस्य भी वे सोचने लगे। धीरे-धीरे जल वाष्प बनकर उडा जा रहा था, प्रलय निशा बीतती जाती थी। आरम्भिक 'चिन्ता' सर्ग मे जलप्लावन, अमरत्व की अपूर्णता, जीवन और मृत्यु की समस्या पर विचार किया गया है।

जलप्लावन का वैज्ञानिक आधार—

जलप्लावन और मनु की कथा शतपथ ब्राह्मण, पुराण, महाभारत आदि अनेक ग्रन्थों में बिखरी हुई है। इसके अतिरिक्त प्राय. विश्व के अन्य समस्त धर्मों मे भी जलप्लावन घटना का प्रचार किसी न किसी रूप मे अवश्य है। बाइबिल, अवेस्ता, ग्रीक, बेबीलोनिया, चीन आदि के प्राचीन धार्मिक ग्रन्थो में इसका सकेत मिलता है। एन्ड्री ने मिस्र जापान आदि ऐसे भी देश बताये है,

जहा इसका वर्णन प्राप्त नही। अफरीका में भी इस घटना का प्रचलन नगण्य-सा है[१]। इस कारण सार्वभौमिक जलप्लावन को स्वीकार करना कठिन है। धार्मिक पृष्ठभूमि पर चित्रित होने के कारण जलप्लावन घटना को ईश्वरीय वस्तु स्वीकार किया गया। इसकी सूचना किसी प्रकार उस व्यक्ति को मिल जाती थी, जो प्रलय के पश्चात् भी जीवित रहता था। विज्ञान के अनुसार भी इस जल-प्लावन की पुष्टि हो जाती है। भू-गर्भशास्त्र के विद्वानो का अनुमान है कि "समय-समय पर पृथ्वी के विशेष खड समुद्र मे डूब जाते है। भूमि पर जल-ही-जल भर जाता है। इस प्रकार वहुत समय तक सागर रहते है। धीरे-धीरे पृथ्वी का ऊँचा भाग जल मे गलने लगता है, और सागर की तलहटी में तमाम तलछट जमा होती रहती है। तभी क्रमश स्थिति में परिवर्तन होता है। इस प्रकार पर्वत खडे हो जाते है, जहाँ युगो से भारी सागर थे[२]।" इस भाति पृथ्वी पर सागर और उसके अनन्तर पर्वत का उदय होता है। इस प्रक्रिया के विषय में यद्यपि भू-गर्भ-शास्त्र के विद्वानो के विभिन्न मत है किन्तु उसका अस्तित्व सभी स्वीकार करते है। होम्स, वेगनर आदि कई विद्वानो ने इस वैज्ञानिक सत्य पर अनुसन्धान किया है।

भारतीय जल-प्लावन के वैज्ञानिक आधार पर स्वयम् प्रसादजी ने भी विचार किया। डाक्टर ट्रिकलर, होर्मसा आदि का मत उन्होने प्रस्तुत किया। हिमालय से लौटे हुए डाक्टर ट्रिकलर की धारणा है कि वालुका में दबे हुए प्राचीन ध्वमावशेषो के चिह्न स्वयम् इसका प्रमाण है कि हिमालय और उसके प्रान्त में भी जलप्लावन अथवा ओघ अवश्य हुआ होगा[३]। वैज्ञानिक अनुसन्धानक डा० वाडिया का कथन है कि "परमियन काल से ही हिमालय और तिब्बत के निकट समुद्र का मल एकत्र हो रहा था। क्रमश वह ऊपर उठने से ऊँचा होने लगा। अन्त में सागर विलीन हो गया, और उसके स्थान पर ससार का महान हिमालय पर्वत

---

१ "There are many parts of the world where no deluge story has yet been discovered, such as Egypt and Japan There are others such as Africa, where they are very rare,"—R Andree Die Flutsagen—Encyclopedia of Religion and Ethics—'Flood' article

२ J Jolly—'Radio Activity and Surface History of Earth'

३ जयशकर प्रसाद ."प्राचीन आर्यावर्त और उसका प्रथम सम्राट" लेख कोशोत्सव स्मारक सग्रह. स० १९८५

दृष्टिगोचर होने लगा[४] ।" इस भूगर्भ क्रिया में पृथ्वी का समय जाइनर लगभग सात करोड़ वर्ष पूर्व मानते हैं[५] । मानवशास्त्र के विशेषज्ञ मानव का जन्म इसके पर्याप्त समय पश्चात् बताते हैं । मानव ने मौखिक कथाओं के रूप में इस कथा को जीवित रक्खा ।

इतिहास, गाथा और विज्ञान में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न समय-समय पर किया गया । भारतीय दर्शन की पौराणिक गाथाओं के अनेक खंड आलंकारिक विधि से चित्रित किये गये । जल में आदि सृष्टि की कथा के विषय में बृहदारण्यक उपनिषद में श्लोक है :

आप एवेदमग्र आसुस्ता आपः सत्यमसृजन्त सत्य ब्रह्म ।
ब्रह्म प्रजापति, प्रजापतिर्देवान्, ते देवाः सत्यमेवोपासते ॥ ५।५।१

आरम्भ में केवल जल ही जल था । जल से सत्य, सत्य से ब्रह्म, ब्रह्म से प्रजापति, और प्रजापति से देवता की उत्पत्ति हुई । ये देवता सत्य ही की उपासना करते हैं । इसी के लिये यूनानियों ने φ X 6 V S शब्द का प्रयोग किया । थेल्स आदि भी जल से संसारोत्पत्ति स्वीकार करते हैं[६] । विश्व उत्पत्ति के इन सिद्धान्त से भारतीय जलप्लावन का पौराणिक स्वरूप किंचित साम्य रखता है । विश्वकर्मा की कथा भी इसके निकट है । उन्होंने वृत्ति का विनाश कर एक नवीन जाति को जन्म दिया था । उनकी प्रतिष्ठा ज्वालामुखी के देवतारूप में है । इसी के पश्चात् उन्होंने कश्यप को धरणी दान दे दी थी । तिलकजी की कल्पना है कि इस कथा की प्रेरणा सभी ने एक ही स्थान से ग्रहण की[७] ।

---

४. The pile of marine sediments that was accumulating on the border of the Himalayas and in Tibet since the Permian Period began to be upheaved by a slow, secular rise of ocean bottom, from mid-Eocene to the end of the territory, this upheavel continued—till on the side of the mesozoic sea was reared the greatest and loftiest chains of the mountains of the earth.

—D.N Wadia—Geology of India (1940) Page 221.

५. Zeuner: Dating the Past, Page 334-344.

६. R D Ranade —A Constructive Survey of Upnishdic Philosophy (1926) Page 77.

७. B.G.Tilak: Arctic Home in Vedas (1925) Glacial Period.

जलप्लावन की कथाएं—

'जलप्लावन कथा सम्भवत अधिक समय तक धार्मिक ग्रन्थो में स्थान पाती रही। साथ ही परम्परागत मौखिक गाथा के रूप में भी उसका प्रचलन रहा। आगे चलकर काव्य में भी उसे स्थान प्राप्त हुआ। इसी कारण प्राचीन साहित्यो मे इसका उल्लेख है। होमर ने कहा है—"सूर्य सागर के प्रवाह की ओर भागा जा रहा है। सागर, निर्झर, सरोवर, सभी महासागर से निकले है, जो पृथ्वी को घेरे हुये है। सूर्य स्वर्ण नौका में पश्चिम से पूर्व की ओर जा रहा है।" इसका अर्थ डाक्टर वारेन ने यही निकाला कि ससार जलमय है[८]। सर्वप्रथम धार्मिक ग्रन्थो मे इस जलप्लावन घटना का उल्लेख किया गया और तदनन्तर काव्य मे भी उसे स्थान मिला। यूनानी जलप्लावन कथा के दो रूप है। Dgygian Deluge के अनुसार अटिका जलमय हो गया था। अन्य कथा Deukalion Flood की है। इसका वर्णन १४० ई० पू० (Appollodorus) अपालोडोरस ने अपनी पुस्तक Biliothecа, ११७१२ में किया है। Zeus ने अपने पिता की इच्छापूर्ति के लिये ताम्रयुग के व्यक्ति Deukalion का विनाश करना चाहा। अपनी रक्षा के लिये उसने एक कवच का निर्माण किया। उसी मे वह अपनी पत्नी Pyrrha के साथ बैठ गया। Zeus ने भीषण जल-वृष्टि से समस्त पृथ्वी को डुबा दिया। सभी कुछ विनष्ट हो गया। वे दोनों पति-पत्नी नौ दिन के पश्चात् पैरासस स्थान पर पहुँचे। उसी समय जलप्लावन कम हुआ। यहीं उन्होने देवताओ के लिये अपने अगरक्षक की बलि दे दी। प्रसन्न होकर Zeus ने उनकी इच्छा जानने का प्रयत्न किया। उन्होंने सन्तान की कामना प्रकट की। इस पर पत्थर फेके गये। जो Deukalion ने फेंके वे पुरुष और जो Pyrrha ने फेंके वे नारी हो गये[९]।

वाइविल मे नूह जल का देवता है। नूह को सूचना मिली कि जीवन के नाश के लिये पृथ्वी पर जलप्लावन होगा। प्रत्येक वस्तु विनष्ट हो जायगी (जेनेसिस ६।१७)। उसी के पश्चात् पृथ्वी पर अपार जलराशि छा गई। समस्त पर्वत आदि उसी मे विलीन हो गये (जेनेसिस ७।१९)। सभी चराचर विनष्ट हुये केवल नूह और उसके साथी नौका मे बच गये (जेनेसिस ७।२३)। वह नौका अराकान पर्वत पर टिक गई। धीरे-धीरे दसवें मास के प्रथम दिवस मे जल कम हुआ। पर्वत-श्रेणिया दिखाई देने लगी (जेनेसिस ८।५)। नूह से ही मानव-

---

८. Dr Warren Paradise Found (1893) Part V. Chapter V, Page 250

९. Appolodorus · Bibliotheca—I—VII—2.

ता का विकास हुआ[१०] । ईसाइयो की अन्य धार्मिक कथायें बाइबिल मे प्रभावित है । इनके वैज्ञानिक आधार पर भी विद्वानो ने विचार किया है[११] ।

बेबीलोनिया के साहित्य मे जलप्लावन की अनेक कथाये प्रचलित है । उन सबका सग्रह पर्सी हेन्काक ने किया है । प्रमुख कथा के अनुसार बेबीलोनिया मे लगभग तीन सौ ईसवी पूर्व बेरासस (Berossus) बेल का पुरोहित था । हस्तलिखित प्राचीन पुस्तको के आधार पर उसने जलप्लावन का वर्णन करते हुए लिखा—'Ardates की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र Xisuthros ने लगभग अठारह सर (१८×३६०० वर्ष) तक राज्य किया । उसी समय एक भीषण बाढ आई । राजा को पूर्व ही स्वप्न मे इसका आभास मिल गया था । समस्त भू-भाग के जलमय हो जाने पर भी वह अपनी नौका मे ही बना रहा । जल का वेग कम हो जाने पर उसने तीन बार पक्षी उडाये । अन्तिम बार पक्षी के न लौटने पर वह बाहर निकला । उसने देवताओ को बलि देकर पुन बेबीलोनिया का निर्माण किया ।' इसके अतिरिक्त गिलगमेश महाकाव्य मे भी जलप्लावन का सजीव चित्रण है[१२] । Shurippak नामक नगर Euphrates के किनारे स्थित है । वही भीषण जलप्लावन हुआ । सातवे दिन वातावरण के शान्त हो जाने पर मानवता का विकास आरम्भ हुआ[१३] । बेबीलोनिया और बाइबिल की कथाओ मे सामीप्य है । पहलवी ग्रन्थो के अनुसार सृजन के पूर्व एक वाद-विवाद हुआ । आकाश, जल, वायु आदि से दानवो का सघर्ष हुआ[१४] । फारसी धार्मिक ग्रन्थो मे देवताओ ने विचार-विमर्श के पश्चात् यह निर्णय किया कि अपार शीत के साथ ही हिमपात द्वारा एक भीषण बाढ ले आयी जाय । यीमा को सकेत कर दिया गया कि वह अपनी रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध कर ले[१५] । सुमे-

१० " .That they may breed abundantly in the earth and be fruitful and multiply upon the earth.. "—Robert O Bellon Bible of the World (1946) Page, 649

११. The Sunday Standard—17th February 1952, Page 13
Geological data reveals that the great flood did occur,

१२ The appointed time arrived
The ruler of Darkness at eventide sent a heavy rain

* * *

The wind blew, the flood, the tempest overwhelmed the land

१३ The Epic of Gilgamesh—Canto XI.

१४. The Bible of the World (1938) Page 628.

१५. Song Vendidad, given by Ushar Translated by Gelder, Page, 203

रियन ग्रन्थों मे भी स्वप्न मे जलप्लावन का सकेत Zi-U-Suddu को मिला। सात दिन वह रहा। उनके 'पीरनिपीश्तम्' जल देवता ही थे। चीन में भी शीह पूजा के अन्तर्गत यू की वुद्धिमत्ता का वर्णन है जिसमे राजा वच जाता है[१६]।

इस प्रकार विश्व की जलप्लावन कथा में अनेक पारस्परिक साम्य है। सभी मे जल के साथ ही झझा, हिमपात, अन्धकार आदि भी आता है। इस भीषण वेला की सूचना एक व्यक्ति को पूर्व ही किसी-न-किसी प्रकार मिल जाती है। धीरे-धीरे जलप्लावन कम होता है, वह पुरुष वच जाता है। इसी व्यक्ति से आगे चलकर मानवता का विकास होता है। भारतीय साहित्य में जलप्लावन की कथा शतपथ ब्राह्मण, पुराण, महाभारत आदि अनेक स्थलो पर बिखरी हुई मिलती है। महाभारत के वनपर्व में मत्स्योपाख्यान की कथा है। विवस्वान पुत्र मनु ने पर्वत पर दस सहस्र वर्ष तक तपस्या की। एक दिन चारिणी तट पर आकर मत्स्य ने जीवन रक्षा की प्रार्थना की। मनु ने उसे क्रमश जलपात्र, झील, महासरोवर आदि में रखकर अन्त में सागर में फेक दिया। उसी समय मत्स्य ने आगामी भयकर प्रलय की सूचना दे दी। वह बोला, "उस भीषण प्रलय में सभी कुछ नष्ट हो जायगा। तुम नौका मे सप्तऋषियो के साथ ही मेरी प्रतीक्षा करना।" जलप्लावन के समय धरणी जलमय हो गई। मत्स्य मनु की नौका को हिमालय पर्वत मे 'नौबन्धन' तक ले गया।' महाभारत के आगामी पर्वो में भी इसी का सविस्तार वर्णन किया गया। मत्स्यपुराण का प्रारम्भ ही आदि रचना से होता है। मनु की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हे वरदान दिया कि वे प्रलयकाल में सम्पूर्ण जगत की रक्षा मे सफल होगे। एक दिन जब मनु अर्घ्य दे रहे थे, कमडल के जल से एक शफरी गिरी। राजा ने उसे अनेक स्थलो पर रख दिया, पर उसका आकार वढता ही चला गया। राजा घवडाकर बोले कि तुम अवश्य कोई महाराक्षस हो, अथवा भगवान् विष्णु! तभी भगवान विष्णु का ही रूप रखनेवाले मत्स्य ने कहा कि शीघ्र ही समस्त पृथ्वी जल में डूब जायगी। उन्होने मनु को एक नौका दी। जलप्लावन के समय सीगवाले मत्स्य का रूप धारणकर विष्णु मनु के समीप आये। मनु ने योगवल द्वारा सभी जीवो को आकृष्ट कर नाव में ही स्थान दिया। यही मनु सृष्टि के आदि कारण है। इन्ही से मानवता का विकास हुआ।

इसके अतिरिक्त आग्नेय पुराण (प्रथम अध्याय), पद्मपुराण (३६ वा अध्याय), विष्णु पुराण (५।१०, ६।३), भागवत पुराण (८।२४, १२।९) स्कन्द पुराण (वैष्णव खड, पुरुषोत्तम माहात्म्य, खड दूसरा, पृष्ठ ५७), भविष्य-

---

१६ - Sacred Book of China—Texts of Confucianism—Part I

पुराण (प्रतिसर्ग पर्व, अध्याय ४), कालिका पुराण (अध्याय २५, ३४) वायुपुराण (अध्याय ६, सृष्टि-प्रकरण) आदि में जलप्लावन कथा का संकेत है। कल्पना के आधार पर धार्मिक चेतना ही इन कथाओं का लक्ष्य है। कतिपय भारतीय जलप्लावन कथाओं का संग्रह डा० सूर्यकान्त ने किया है[१०]।

कामायनी का जलप्लावन—

कामायनी की भूमिका में प्रसादजी ने कथा का निर्देश किया है। "जलप्लावन इतिहास में एक ऐसी ही घटना है, जिसने मनु को देवों से विलक्षण, मानवों की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया। वह इतिहास ही है। 'मनवे वै प्रात' इत्यादि से इस घटना का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण से होता है।" इससे स्पष्ट है कि जलप्लावन की मूल कथा शतपथ से ही प्रभावित है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, "प्रात काल मनु के पास जल लाया गया। उसी में एक मत्स्य भी था। वह बोला—मनु, मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। जलप्लावन में जब सब कुछ नष्ट हो जायगा, उस समय मैं तुम्हारे काम आऊँगा। मनु ने स्वयम् उसी से उसकी रक्षा का उपाय पूछा। उसने बताया कि छोटा होने के कारण बडे मत्स्य उसे खा जाते हैं। तुम पात्र, गडा, नदी आदि में रखकर अन्त में मुझे सागर में फेंक दो। जलप्लावन के समय मैं सहायता के लिये प्रस्तुत हो जाऊँगा। यथासमय जलप्लावन हुआ। मनु ने नौका को मत्स्य के सींग से बाधा, तदनन्तर उसे वृक्ष से अटका दिया। जलप्लावन के शान्त हो जाने पर वे 'मनोरवसर्पण' स्थान में उतरे।" शतपथ ब्राह्मण में कथा इस प्रकार है;

"मनवे ह वा उदकमाजह्रुः प्रातरवनेज्य यथेद पाणिभ्यामवनेजनाया हरन्ति तस्य हावनेनिजानस्य मत्स्य. पाणिमापेदे स ह्यस्मै वाचमुवादबिभृहि मा पारयितास्मि वै त्वेति। .... "

प्रसाद कामायनी को एक गाथा अथवा धार्मिक ग्रन्थ नहीं बनाना चाहते थे। मानवता का इतिहास प्रस्तुत करना ही उनका प्रतिपाद्य विषय था। यही कारण है कि ऐतिहासिक सामग्री के होते हुये भी उन्होंने नूतन उद्भावनाओं के द्वारा नवीनतम दृश्य उपस्थित किये हैं। 'कामायनी' का आरम्भ ही जलमय पृथ्वी से होता है। मत्स्य की कथा छोड दी गई। साथ ही मनु को पूर्व ही उनका संकेत आदि नहीं मिल जाता। उसके पूर्व की प्रासंगिक कथा का कवि ने त्याग कर दिया। आदि पुरुष के शरीर का वर्णन अत्यन्त सजीव है—

---

१०. डा० सूर्यकान्त : फ्लड लीजेन्ड इन संस्कृत लिटरेचर।

अवयव की दृढ मासपेशिया
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिरायें, स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें सचार।
चिन्ता-कातर वदन हो रहा
पौरुष जिसमें ओत प्रोत।
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्रोत।

हिमगिरि के उत्तुग शिखर का वर्णन आरम्भ में करते हुये, कवि उसे काव्य की पृष्ठभूमि बना लेता है। कालिदास के 'कुमारसम्भव' की भी वही पृष्ठभूमि है। भारतीय धार्मिक ग्रन्थो में वर्णित मनु की तपस्या का आभास 'तरुण तपस्वी' की साधना से मिल जाता है। पौराणिक कथाओ मे मनु की जिस दिव्य शक्ति, अलौकिकता पर जोर दिया गया, उसे कवि ने त्याग दिया। मनु मानवता के प्रतीक रूप मे 'कामायनी' मे चित्रित किये गये है। वे स्वाभाविक दुर्बलताओ से युद्ध करते हुये 'आनन्द' तक जाते है। वे पूर्ण मानव है। मानवता की इसी स्थापना के लिये प्रसाद ने आरम्भ मे ही मनु के मानसिक झझावात के द्वारा देवत्व की अपूर्णता का पर्याप्त चित्रण कर दिया है। यद्यपि आज भी उसे देवत्व की मधुर स्मृतिया याद आती है, किन्तु वह जान गया है कि—

देव सृष्टि की सुख विभावरी
ताराओ की कलना थी

जलप्लावन के उतरने पर 'एक पुरुष' की नौका महावट से बधी है। शतपथ ब्राह्मण मे मनु की नाव 'उत्तरगिरेर्मनोरवसर्पण' में एक वृक्ष से बधी, जिसका नाम नही दिया गया। प्रसाद ने उसे 'वट वृक्ष' कहा। प्रलय दशा की भीषणता पौराणिक कथा के समीप है किन्तु कवि ने स्वतन्त्र उपमाये की है। मनु की नौका में डाडे अथवा पतवार न थे। वह महामत्स्य के एक चपेटे से उत्तरगिरि के शिर मे टकराती है। यह उत्तर गिरि का स्थान हिमालय मे ही है। इस जलप्लावन स्थान और मनु के नौकावरोहण के विषय मे प्रसादजी का विचार है कि "मेरु और उसके पास ही उत्तर कुरु का वर्णन है। कई प्राचीन ग्रथो मे मेरु के समीप ही उत्तर कुरु का नाम आने से प्रतीत होता है कि ये दोनो देश और पर्वत आस-पास के है। वह उत्तर कुरु प्रदेश भारतीय उपाख्यानो मे पवित्र और पूर्वजो का देश कहा गया है। भीष्म पर्व मे इसका विशद वर्णन है। वहा के लोग शुक्ल वर्ण

(गौर) अभिजात सम्पन्न, नीरोग और दीर्घजीवी होते थे[१८]।" बृहत्संहिता में भी कहा है।

उत्तरतः कैलासो हिमवान वसुनान गिरिर्धनुष्मांश्च
क्रौंचोमेरुः कुरवो तथोत्तरा क्षुद्रमीनाश्च ॥१४।२४

इस विषय में अविनाशचन्द्र दास जी का भी मत है कि सप्तसिन्धु उत्तर पश्चिम की ओर गांधार प्रान्त के द्वारा पश्चिमी एशिया अथवा एशियामाइनर से मिला हुआ था[१९]।

जलप्लावन के समय चराचर का कोई भी चिह्न शेष नहीं रह गया था, इसे कामायनी में 'वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही हँसती-सी पहचानी-सी' के द्वारा चित्रित किया गया। परिस्थिति वर्णन के पश्चात् ही मनु के हृदय का झंझावात दिखाया गया है। यह मनोवैज्ञानिक आधार पर है। साथ ही भारतीय दर्शनों में मनु का मन अर्थ भी किया जाता है। इस स्थिति से प्रसाद जी ने देवत्व को 'अपूर्ण' कहकर मानव को सर्वोपरि ठहराया। गन्धर्वों का विलासी रूप पौराणिक ग्रन्थों में भी मिलता है[२०]। मन की चिन्ता के मूल में 'एकोऽहं बहुस्याम्' की भी भावना छिपी है, जिसका विकास आगे हुआ। 'कामायनी' के भीषण जलप्लावन दृश्य का समर्थन तद्विषयक सभी ग्रन्थों में मिल जायगा। बाइबिल में 'पृथ्वी पर सर्वत्र जल बिखर गया। सम्पूर्ण स्वर्ग के नीचे के ऊँचे पर्वत उससे भर गये। प्रत्येक जीवित वस्तु नष्ट हो गई, केवल नूह बच गया।' गिलगमेश महाकाव्य का भी यही चित्र है। मत्स्य पुराण, शतपथ ब्राह्मण में भी सम्पूर्ण पृथ्वी जलमय हो जाती है। इस प्रकार ऐतिहासिक, पौराणिक दृष्टि से 'कामायनी' का जलप्लावन वर्णन सार्थक है। कवि ने बाडव ज्वाला, जलधि, झंझावात का वर्णन किया है। वह पंचभूत का भैरव मिश्रण था। इसी अवसर पर मानवीय भावनायें आरोपित हैं। मनु के 'भीगे नयन' थे। भीषण रव से धरती कांप रही थी मानो आलिंगन के लिये नील व्योम उतरा हो। उदधि अखिल धरा को डुबाकर 'मर्यादाहीन' हो गया था। जिस नौका का वर्णन पौराणिक ग्रन्थों में हुआ वह अमानवीय थी, प्रसाद

---

१८. जयशंकर 'प्रसाद': प्राचीन आर्यावर्त और उसका प्रथम सम्राट्, लेख कोशोत्सव स्मारक संग्रह ग्रन्थ, संवत् १९८५
१९. अविनाश चन्द्र दास : ऋग्वेदिक इंडिया, पृष्ठ ५६०
२० योषित्कामा वै गन्धर्वाः, शतपथ ब्राह्मण : ३।२।४।३
स्त्रीकामा वै गन्धर्वा:, ऐतरेय ब्राह्मण : १।२७
रूपमिति गन्धर्वाः उपासते, शतपथ ब्राह्मण : १०।५।२।२०

की नौका में भी डाड़े अथवा पतवार न लगते थे, वह पगली बारम्बार उठ-उठ गिर-गिर पड़ती थी। मनु की इस नौका को महामत्स्य का एक 'चपेटा' उत्तरगिरि के शिर से टकरा देता है। प्राचीन आख्यान में वह मत्स्य के पक्ष से बधकर हिमवान प्रदेश में पहुँचती है[२१]। इसी के पश्चात् मनु जीवन की मरीचिका पर विचार करता है। प्रारम्भ का आन्तरिक झंझावात पुन आरम्भ हो जाता है। यही एक स्थान पर 'तिमिंगल' शब्द का प्रयोग हुआ है। यह वही बड़ा मत्स्य है, जो छोटों को खा जाता था। मनु से शफरी ने इसी से रक्षा करने की प्रार्थना की थी[२२]। 'चिन्ता' के अन्त में मनु जीवन और मृत्यु के विषय में विचार करता है। मृत्यु चिरनिद्रा होकर भी अमर है। युग-युगों से मानव मृत्यु पर विचार करता रहा है। कवि ने प्रथम पुरुष के अन्तर में भी उसके प्रति जिज्ञासा भर दी। मृत्यु सृष्टि के कण-कण में छिपकर भी रहस्यमय है। इस चिरन्तन सत्य के विषय में भारतीय दर्शन में भी अनेक प्रकार से विचार किया गया। बृहदारण्य उपनिषद् (३।९।२८) में याज्ञवल्क्य ने इसी प्रश्न को उठाया। वृक्ष कट जाने पर पुन पल्लवित और पुष्पित हो उठते है, किन्तु अभागा मानव काल के निष्ठुर प्रहार से आहत होकर पुन जीवन नही पाता। यदि एक बार वह विलीन हो जाता है, तो फिर उसे जीवन क्यो नही मिलता ? छान्दोग्योपनिषद् (५।३।१) में जीवल के पुत्र प्रवाहण ने आरुणिकुमार श्वेतकेतु से पाँच प्रश्नो मे मृत्यु का ही रहस्य पूछा था। कठोपनिषद् (१।१) में नचिकेता ने यमराज से तीसरे वरदान मे काल के रहस्य की याचना की थी—

येय प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयहि वराणामेव वरस्तृतीय ॥ (२०)

'मृत मनुष्य के विषय में अनेक सन्देह है। किसी का कथन है कि मृत्यु के पश्चात् आत्मा रहती है और कोई कहता है, नही रहती। आपके उपदेश से मैं इस विषय में भली भांति जानने का अभिलाषी हूँ। यही तीसरा वर है।' इस प्रकार 'कामायनी' के आरम्भिक सर्ग 'चिन्ता' में इतिहास के साथ ही प्रसाद की स्वतन्त्र कल्पना भी दिखाई देती है।

आशा—

धीरे-धीरे धरातल से हिम आच्छादन हटने लगा। सागर का आन्दोलन शान्त हो रहा था। वनस्पतियाँ फिर से हरी-भरी हो गई। क्रुद्ध प्रकृति की निद्रा

---

२१ तस्य नाव. पाशश्रृगे प्रतिमुमोच तेन हैतमुत्तर गिरिमभिदुद्राव
शतपथ ब्राह्मण, ८।१।३

२२ शतपथ, महाभारत वनपर्व, मत्स्यपुराण आदि।

मग हो गई, वह नवीन जागरण था। सिन्धु की शय्या पर पृथ्वी नववधू की भाँति शोभायमान थी। यही पुनरुत्थान प्राय सभी जलप्लावन की कथाओ मे मिलता है। प्रलय शान्त हो जाता है, और नवीन मानवता का विकास आरम्भ होता है। पौराणिक गाथाओ मे आदि पुरुष को ईश्वरीय शक्ति के रूप मे स्वीकार कर लिया गया है, इस कारण उसके हृदय में प्राय. उस प्रकार के विचार नही उठते। 'कामायनी' के आदि मानव मे इस प्रकार की जिज्ञासा स्वाभाविक है। चारो ओर मनु जीवन जीवन की पुकार सुनता है। वह भी अपने अस्तित्व को जीवित रखना चाहता है। विस्तृत गुहा मे मनु ने सुन्दर स्वस्थ स्थान बनाया। वे सागर के तीर अग्निहोत्र प्रज्ज्वलित करने लगे। शतपथ मे भी वर्णन मिलता है

'मनुर्हवा अग्रे यज्ञेनेजे, मदनुकृत्येमाः प्रजा यजन्ते'

इसी समय मनु के हृदय मे विचार आता है कि सम्भव है मेरी ही भाँति किसी और का भी जीवन बच गया हो। अपरिचित की तृप्ति के लिये वे 'अवशिष्ट अन्न' दूर पर रखने लगे। तपस्वी मनु का अन्तर सवेदन के हेतु विकल था। वे बोले—

कब तक और अकेले कह दो
हे मेरे जीवन बोलो।
किसे सुनाऊँ कथा कहो मत,
अपनी निधि न व्यर्थ खोलो।

यही 'एकोऽहं बहुस्याम्' की कामना है। मनु बारम्बार शून्य मे प्रश्न करता है, और केवल प्रतिध्वनि सुन पाता है। इस प्रकार 'आशा' मे प्रसाद ने मनु को हवन करनेवाले उस मानव के रूप मे चित्रित किया जो किसी का सहवास चाहता है। अपने हृदय की जिज्ञासा का समाधान भी उसे चाहिये। तपस्या और एकाकी जीवन लेकर वह अधिक समय तक नही चल सकता। प्राचीन आलेखो के अनुसार भी मनु ने प्रलय के पश्चात् यज्ञ आरम्भ किया था। उनका यह रूप पौराणिक साहित्य के अतिरिक्त वेदो के भी निकट है। ऋग्वेद मे भी मनु को इसी तपस्या से विभूषित किया गया है.

यस्मै होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभि.
त आदित्या अभय शर्म यच्छत सुगा न कर्त सुपथा स्वस्तये।
य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तव.
ते न· कृतादकृतादेन सस्पर्यद्या देवास पिपृता स्वस्तये।

(ऋग्वेद, १०।६३।७,८)

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार मनु ने सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से पाक यज्ञ आरम्भ किया था।

श्रद्धा—

'श्रद्धा' सर्ग के आरम्भ मे ही मनु को मधुकरी का मधुर गुजार सुनाई देता है। मनु ने उस अपरिचित के सौन्दर्य को देखा। कवि इसी स्थल पर नारी का अत्यन्त सजीव चित्र प्रस्तुत कर देता है। वह सभ्यता का प्रथम चरण था। नारी गाधार देश के नील रोमवाले मेषो का चर्म पहने हुए थी। वह 'विश्व की करुण कामना मूर्ति' की भाति प्रतीत हुई। मनु ने अपनी निराशापूर्ण कथा सुनाना आरम्भ कर दी। श्रद्धा भी अपना परिचय दे देती है। वह काम की बालिका यहा बलि का अन्न देखकर चली आई है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार मनु के यज्ञ के शेषान्न से इडा की उत्पत्ति हुई। यहाँ प्रसाद ने उस अलौकिक वस्तु को छोडकर श्रद्धा को प्रस्तुत कर दिया। वह अन्न को देखकर ही जान गई कि अभी यहाँ कोई जीवित अवश्य है। परिचय के पश्चात् ही वह मनु को जीवन का सदेश देना आरम्भ कर देती है। यही श्रद्धा का मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक निरूपण है, जिसके द्वारा प्रसाद ने मनु को नवीन कर्म मे नियोजित किया। श्रद्धा एक नवीन जीवन-दर्शन की स्थापना करती है। वह अपनी समस्त आन्तरिक भावना दया, माया, ममता, मधुरिमा ओर अगाध विश्वास के साथ आत्म-समर्पण कर देती है। श्रद्धा का अत्यन्त उदात्त चित्र प्रसाद ने अकित किया है। उसमे अनेक मानवीय गुणो का समावेश है। यह वर्णन वेद और पुराणो के अत्यधिक समीप है। प्राय समस्त ग्रन्थो मे श्रद्धा अत्यन्त उदार, शीलमयी नारी के रूप मे चित्रित है। स्वयम् कवि ने आमुख मे अनेक उद्धरण देकर मनु से उसके सम्बन्ध की स्थापना की। 'शतपथ' के अनुसार भी मनु श्रद्धादेव है[२३]। भागवत पुराण में मनु और श्रद्धा से दस पुत्रो का जन्म माना गया। वेदो और उपनिषदो में उसकी जो भावमूलक व्याख्या मिलती है, उसमे भी दोनो का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। 'श्रद्धा' सर्ग मे 'प्रसाद' श्रद्धा के जिस महान चरित्र का उद्घाटन करते है, वह भारतीय कथा से साम्य रखता है। श्रद्धा स्वय अपने विषय मे अधिक नहीं बताती किन्तु मनु को काम का सदेश देती हुई कहती है—

> काम मगल से मडित श्रेय
>
> सर्ग, इच्छा का है परिणाम
>
> तिरस्कृत कर उसको तुम भूल
>
> बनाते हो असफल भवधाम।

---

२३ श्रद्धादेवो वै मनु (का०, १, प्र० १)

सायणाचार्य का 'कामगोत्रजा श्रद्धानामर्षिका' सूक्त का परिचय भी इसकी पुष्टि कर देता है। इसी कारण श्रद्धा कामायनी भी है। प्रसादजी ने इस सर्ग में श्रद्धा का जो वर्णन किया उसका व्यापक प्रसार सम्पूर्ण काव्य में होता गया।

काम--

मनु के जीवन में श्रद्धा के प्रवेश के साथ ही काम का भी उदय होता है। 'काम' सर्ग में मनु के अन्तर में उठने हुए भावों के द्वारा ही कवि ने उसका चित्रण किया। काम ने मनु के जीवन को आनन्द और उल्लास में भर दिया। इसी मादकता के पश्चात् वे ससार के नील आवरण को उठाकर उसका रहस्य जानने के अभिलाषी हैं। उनके मन में एक विचित्र प्रकार का कौतुक हो रहा था। हृदय में मूर्तिमान काम स्वयम् अपनी परिस्थिति पर विचार करने लगा : 'अब भी तो मैं प्यासा हूँ, मेरी तृप्ति न हो सकी। देवताओं ने मेरी ही उपासना करते हुए स्वयम् को समाप्त कर दिया। रति अनादि वासना के रूप में आकर्षण बनकर हँसती थी। काम और रति का मिलन मादकता की छाया में हुआ। स्वयम् वसन्त ने भी पर्व मनाया[२४]। प्रकृति बावली हो उठी। वह जीवन में एक नवीन सर्ग था। उसी अवसर पर कवि रति और काम की एक सरस रूप-रेखा प्रस्तुत करता है। रति रागमयी और मधुमय है। उसकी सहेलियाँ हैं, सुर कन्यायें। काम तृष्णा का विकास है। आज देवताओं के विनाश के साथ ही सब कुछ बदल गया। काम अब भी अनग की भाति भटक रहा है। उसे जीवन में कर्म और शक्ति की आवश्यकता का अनुभव हुआ। काम स्वय ससृति की प्रगति बनने का व्रत ले लेता है। वास्तविक शक्ति केवल प्रेम है। श्रद्धा अत्यन्त निर्मल है, जो मानव को नव सदेश देगी। वह रति तथा काम का ही समन्वित रूप है। वह जीवन का वरदान है। और तभी स्वप्न समाप्त हो गया। मनु का प्रश्न कि उस ज्योतिमयी को प्राप्त करने का साधन क्या है, एक प्रश्न ही बन कर रह गया।

कवि ने मनु के मन में उठनेवाली भावनाओं से ही काम का चित्रण किया है। आरम्भ में मनु काम से प्रश्न करते हैं, और अन्त में स्वप्न के समय काम स्वयम् उन्हें एक सदेश दे जाता है। प्रसाद ने काम को अत्यन्त व्यापक रूप में ग्रहण किया है। काम ही मानव-जीवन को गतिमान करनेवाली चेतना शक्ति है। श्रद्धा कामगोत्रजा, कामायनी है, जो आदि मानव का पथप्रदर्शन करती है। 'कामगोत्रजा श्रद्धा नामर्षिका' से भी श्रद्धा और काम के सम्बन्ध की पुष्टि होती

---

२४. कामाद्रति' सुत हर्षं धर्मपत्नी समद्भवता। विष्णुपुराण, अंश १, अध्याय ७, श्लोक ३१

है। वेदो में श्रद्धा को कामायनी रूप में स्वीकार किया गया, किन्तु पुराणो में स्वयम् श्रद्धा से काम की उत्पत्ति मानी गई[२५]। वेदो में काम एक देवता रूप में प्रतिष्ठित है। धीरे-धीरे काम के इस व्यापक रूप में परिवर्तन होने लगा। पुराणो में कथा भाग अधिक होने के कारण ही काम को श्रद्धा का पुत्र बना दिया गया। सम्भवत 'काम' की विशिष्टता के ही कारण पूर्वज एवम् सन्तान दोनो को ही एक गोत्र में स्थान मिला। 'कामायनी' मे श्रद्धा के दोनो ही रूप मिल जाते है। वह कामायनी भी है, साथ ही मनु को काम में नियोजित भी करती है। इस प्रकार प्रसाद ने 'काम' के द्वारा भावी पथ को प्रशस्त किया। काम की ऐतिहासिक परम्परा से ज्ञात होता है कि क्रमश उसका रूप विकृत होता चला गया। वेदो का काम देवता पुराणो मे कथा की सामग्री बना। अथर्व वेद ९।२ के अनुसार काम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद मे भी उसका वही रूप है[२६]। पुराणो में भी आख्यानों के द्वारा इसी का समर्थन है। उपनिषदो में काम की दार्शनिक विवेचना हुई। काम का आध्यात्मिक और दार्शनिक रूप आगम शास्त्रों में परिवर्तित हो गया। वह सौन्दर्य और कला का विषय बना। धर्म, अर्थ और मोक्ष के साथ ही काम भी समन्वित हुआ और सस्कृत नाटको में प्रेम कला बनकर आया[२७]। उसका शृगार पक्ष बढता रहा और 'कामसूत्र' की रचना भी हुई। शिव जी ने इसी काम को भस्म किया। सभी ऋषियों, साधुओ ने अन्त मे काम से विलग रहने की शिक्षा दी। काम-भावना के प्रसार ने उसे एक उद्दीपन रूप मे प्रस्तुत किया। नायिकाओ और प्रेमियो को काम कष्ट देने लगा। वेदो का आध्यात्मिक काम इस अधोगति मे आकर सकुचित हो गया। प्रसाद जी ने काम के विषय में लिखा है, " काम का धर्म मे अथवा सृष्टि के उद्गम में बहुत बडा प्रभाव ऋग्वेद के समय में ही माना जा चुका है, 'कामस्तग्ने समवर्तताधि मनसोरेत प्रथम यदासीत्।' यह काम प्रेम का प्राचीन वैदिक रूप है। और प्रेम से वह शब्द अधिक व्यापक भी है। काम मे जिस व्यापक भावना का समावेश है, वह इन सब भावो को आवृत कर लेता है[२८]। 'कामायनी' के द्वारा प्रसाद ने पुन काम के वैदिक स्वरूप की स्थापना की। उन्होंने उसके प्रवृत्तिमूलक तत्व का ग्रहण किया।

---

२५ श्रद्धा कामविजशं वं दर्पो लक्ष्मीसुत स्मृत । वायुपुराण, १०।३४
श्रद्धा कामस्य मातर हविया वर्द्धयामसि, तैत्रीय ब्राह्मण, २।८।८

२६ ऋग्वेद, २,१०, १२९। डाक्टर गिफिय ने इसका अनुवाद किया है—
डिजायर—द प्राइमल सीड आव द जर्म आव स्पिरिट

२७ इण्डियन ऐस्थेटिक्स, पृ० ३४५

२८ काव्य और कला।

काम के ऐतिहासिक चित्रण की ओर अधिक न ध्यान देकर उन्होंने उसके मनोवैज्ञानिक पक्ष को ही लिया। श्रद्धा अपने प्रथम परिचय में ही 'काम' की व्याख्या करती है :

काम मंगल से मंडित श्रेय
सर्ग इच्छा का है परिणाम

इस प्रकार कामरूपा श्रद्धा मनु के जीवन का वरदान बनकर आती है। 'काम' सर्ग में कवि ने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण के द्वारा उसका उदात्त रूप प्रस्तुत किया। काम का एक सरस व्यापक रूप चित्रित करने के पश्चात् ही कवि उसी के द्वारा संकुचित स्वरूप पर भी विचार करता है। काम के इस संकुचित और सीमित अर्थ को ग्रहण करने के कारण देवताओं का विनाश हो गया। आदि-मानव को वह काम सचेत कर देता है। देवता केवल आकर्षण और मिलन की छाया में विचरण करते थे। उन्होंने काम के व्यापक रूप को नहीं ग्रहण किया और अन्त में उनकी वासना का अन्त हुआ। काम मानवता के आदि पुरुष को सावधान कर देता है, जिससे वह ऐसी भूल न करे। आरम्भ में काम की रूप-रेखा बनाते हुए मनु उसकी आकर्षक मधुर छवि को ही जानता है :

लतिका घूंघट से चितवन की
वह कुसुम दुग्ध-सी मधुधारा
प्लावित करती मन अजिर रही
था तुच्छ विश्व वैभव सारा।

किन्तु श्रद्धा ने काम का संदेश केवल मादकता में भूम जाने के लिये ही नहीं दिया था, उसने मानवता को विजयिनी बनाने के लिये कहा था। श्रद्धा ने मनु के जीवन में मधुरिमा भर दी। वे स्वयम् इससे तृप्त न हो सके। प्रसाद ने मनु के अन्तरतम में, काम को लेकर ही, एक मानसिक उथल-पुथल आरम्भ कर दी। स्वप्नों में काम का प्रवेश सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ। मनु के मन का काम स्वयम् अतीत पर विचार करने लगा। देवताओं की वह क्रीड़ा संकुचित काम के ही कारण थी। वे कामोपासना करते थे। काम ने भी अतिचार किया। रति और अनादि वासना भूम कर रह गई। आकांक्षा तृप्ति का अभिनय अधिक समय तक न चल सका। मनु के मन का काम स्वयम् अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का प्रयत्न करता है। काम का ही सर्वोत्तम स्वरूप श्रद्धा है। वही मूल शक्ति है जो वरदान रूप में मनु को प्राप्त हुई। उसी के द्वारा विश्व

कर्म की रगस्थली मे विजय प्राप्त हो सकती है। जीवन मे शुद्ध विकास के लिये काम का व्यापक ग्रहण अपेक्षित है[२९]। स्वयम् मनु का काम कहता है

'आरम्भिक वात्या उद्गम मे
अब प्रगति बन रहा ससृति का
मानव की शीतल छाया मे
ऋण शोध करूँगा निज कृति का।'

काम के व्यापक रूप की प्रतिष्ठा कवि ने सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण के द्वारा कर दी। यह वैदिक काम की साहित्य मे पुनर्जागृति ही है। अन्यथा प्रसाद के पूर्व कालिदास आदि सस्कृति कवियो ने भी काम को उद्दीपन बनाया। निर्गुण कबीर ने काम से दूर रहने का उपदेश दिया। 'कामना' नाटक के रूपक द्वारा भी प्रसादजी ने काम का उदात्तीकरण किया। काम का यह व्यापक, उदात्त रूप 'कामायनी' मे आदि से अन्त तक बिखरा हुआ मिलता है। कवि ने उसे आनन्द तक पहुँचा दिया।

वासना—

नारी पुरुष का सम्बन्ध 'वासना' सर्ग के अन्तर्गत काम के पश्चात् ही चित्रित किया गया। सूक्ष्म वर्णन तथा अप्रस्तुत विधान के द्वारा कवि ने उसके रूप को विकृत नही हो जाने दिया। निजन पथ पर जीवन का मधुर खेल चल रहा था, दोनो पथिक चले जा रहे थे। दोनो मे अभिन्नता की प्रतिष्ठा के लिये गृहपति अतिथि, सिन्धु लहर, प्रभात किरण, आकाश घनश्याम आदि उपमाएँ प्रस्तुत की गई है।

लज्जा—

वासना के पश्चात् श्रद्धा के मन मे 'लज्जा' का उदय होता है। नारी के अन्तर मे उठनेवाली इस सूक्ष्म भावना का अकन कवि ने केवल सौदर्याकन के लिये नही किया, वह मनोविश्लेपण के आधार पर चित्रित है। आरम्भ मे ही श्रद्धा अन्तरतम मे प्रवेश करती हुई इस भावना का वर्णन करती है। सुकुमार नव

२९. कामो जज्ञे प्रथम नैन देवा आपु पितरो न मर्त्या।
ततस्त्वमसि ज्यायान विश्वहा महास्ते काम नमः इति कृण्णोमि।
अथर्ववेद ९।२।१९

हे काम! तू सर्वप्रथम उत्पन्न होकर, देव, पितर और मर्त्य सभी को प्राप्त हुआ, तुझसे कोई भी न बच सका। तू इस विश्व में व्यापक और सर्वोपरि है। मै तुझे नमस्कार करता हूँ।

किया । एक दिन असुरो के पुरोहित किलात और आकुलि मन के पास आये । उन्होने यज्ञ करने की सम्मति दी । मनु नूतनता के लोभ में प्रसन्न हो उठे । यज्ञ की ज्वाला धधकने लगी । चारो ओर रुधिर के छीटें बिखरे थे । पशु की कातर वाणी अब भी वातावरण में गूज रही थी । सामने सोम पात्र भरा रखा था, और तभी श्रद्धा को न देखकर मनु की चेतना को चोट लगी, क्योकि उन्होने उसी के कुतूहल के लिये तो यज्ञ किया था । उन्हे चिन्ता हुई और वे सोम पान करने लगे । उधर श्रद्धा अपने शयन-गृह मे विश्राम कर रही थी । इधर मनु के प्राणो पर मादकता छा रही थी । उन्होंने श्रद्धा के सुप्त सौन्दर्य को देखा, और तभी वह जाग उठी । मनु ने अनुनयविनय करते हुए कहा कि मेरे कल्पित स्वर्ग को नष्ट न करो । उनके मन में आकर्षण से भरे विश्व को भोगने की इच्छा प्रबल हो रही थी । वे जीवन में वासना की धारा वहा देने के लिये आकुल थे । वे बोले

'देवों को अर्पित मधु मिश्रित
सोम अधर से छू लो
मादकता दोला पर प्रेयसि
आओ मिलकर झूलो ।'

श्रद्धा ने करुणा का सदेश दिया । देवताओ की भाति पशु वलि करना उचित नही । नव मानवता का निर्माण अन्य रीति से होगा । किन्तु मनु दो दिन के जीवन का मादक उपभोग करने के लिये विकल थे । श्रद्धा ने वताया कि भीषण स्वार्थ से विनाश ही होता है । स्वय हँसना और दूसरों को भी सुख देना जीवन की सार्थकता है[११] । मनु के इस कर्मकाडी रूप का वर्णन भारतीय वाङ्मय में भी मिलता है ।वेदो में तपस्वी तथा हिसक यजमान दोनो ही स्वरूपो में मनु का चित्रण हुआ । यद्यपि ऋग्वेद मे पशुवलि आदि का उल्लेख प्रत्यक्ष रीति से प्राप्त नही, किन्तु सोम, मधु आदि की चर्चा है । किलात, आकुलि को पुरोहित वनाकर पशु वलि और यज्ञ की कल्पना का आधार शतपथ ब्राह्मण है । ऋग्वेद में श्रद्धा का साकेतिक अर्थ लेने से उसे भी यज्ञ का सहायक माना जा सकता है ।

'श्रद्धया अग्नि समिध्यते श्रद्धया हूयते हवि'
१०।१५।१

किन्तु पशुवलि के लिये स्वय 'कामायनी' की श्रद्धा भी अपने मनु को रोक देती है । कालान्तर में आकर वैदिक यज्ञो की रूपरेखा वदल गई, और उसमें हिसक

पशुवलि का भी समावेश हुआ। ब्राह्मण और पुराणो मे अनेक प्रकार से इसका वर्णन मिलता है[१२]। मनु का सोमपान, मादक रूप, कर्मकाड, पशुवलि आदि इन्ही से प्रभावित है। श्रद्धा वैदिक 'कर्म' की स्थापना का प्रयत्न करती है। देवताओ की विकृति से वह मानवता की रक्षा करना चाहती है। 'किलात आकुलि' के ऐतिहासिक स्वरूप को ग्रहण कर कवि ने श्रद्धा के द्वारा अहिंसा की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला। कर्म के चित्रण मे किसी विशेष दार्शनिक चिन्तन का सहारा नही लिया गया। वह व्यावहारिक रूप मे वर्णित है। कर्मकाडी मनु को पशुवलि और हिसा मे सलग्न देखकर श्रद्धा उसे पुन एक वार सचेत करती है। आरम्भ मे आते ही उसने काम और कर्म का वास्तविक स्वरूप समझाकर तपस्वी की निवृत्तिमूलक निराशा भावनाओ को समाप्त किया था। देवताओ के भोग और असत् कर्म से वह मानवता के आदि पुरुष को ऊपर उठाना चाहती है। उसने कर्म के समष्टिगत स्वरूप को अपनाने का आग्रह किया। गीता का निष्काम कर्म भी व्यक्ति को कार्य मे भली भाति नियोजित करने के लिये ही है। कृष्ण ने कहा :

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मवन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ॥ ३।९

कर्म की आवश्यकता के साथ ही गीता मे कर्म का सुन्दर स्वरूप भी स्थापित कर दिया गया। कर्म और अकर्म को भली भाति न जाननेवाले अर्जुन ने कृष्ण से प्रश्न किया, और उन्होने उत्तर दिया ·

कर्मण्य कर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स वुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्त कृतस्नकर्मकृत् ॥ ४।१८

प्रसादजी ने 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्' की निष्काम कर्म भावना की अपेक्षा कर्म के व्यापकत्व पर अधिक ध्यान दिया। शैव दर्शन क्रिया-शक्ति के इसी व्यापक प्रसार को महत्व देता है। आण व व्यवधान वनकर क्रिया-शक्ति को क्षीण करता रहता है। इसी आण व माला से मुक्ति पाकर आत्मा समन्वय की ओर अग्रसर होती है। उपनिषदो की 'श्रद्धा' कर्म को सात्विक वनाती है। शैवागम की माया आत्मा को क्रियाशक्ति देती है, आणव से मुक्त करती है,

---

३२. किलताकुली इति हासुर ब्रह्मा वासुतः। तौ होचतुः श्रद्धादेवो वै मनु. आनुवेदावेति। तौ हागत्योचतुः मनो वाजयाम त्वेति...

और उसे एक व्यापक भूमि पर ले जाती है[३३]। प्रसाद का व्यावहारिक 'कर्म' भी 'हम तुम' के भेद को समाप्त कर मानवता का कल्याण चाहता है। श्रद्धा और मनु के संवादों मे उन्होंने 'कर्म' के उभय पक्ष पर विचार किया।

ईर्ष्या--

'ईर्ष्या' सर्ग 'कामायनी' के कथानक को अधिक गति प्रदान करता है। मनु की हिंसात्मक प्रवृत्तिया प्रबल हो गई थी, वे प्रत्येक समय मृगया मे व्यस्त रहते थे। अनेक वासनाये उनके मन मे उठ उठ कर रह जाती थी। एक दिन सध्या समय श्रद्धा अनमनी सी बैठी थी। 'केतकी गर्भ सा पीला मुह' से उसकी गर्भावस्था का सकेत कवि ने कर दिया। 'भावी जननी' के इस रूप को देखकर मृगया से लौटे मनु कुछ नही बोले, तभी श्रद्धा ने कहा कि दिन भर हिंसा के कारण ही तुम्हे भटकना पडा। न जाने किस अभाव मे तुम्हे दूसरो के द्वार जाना पडा? मनु बोल उठे कि कोई भली सी मधुर वस्तु पीडा देती है। और फिर चिरमुक्त पुरुष निरीह बनकर अवरुद्ध श्वास नही ले सकता। श्रद्धा के पीत वर्ण और तकली का कारण भी उन्होने पूछा। तभी श्रद्धा ने उन्हे करुणा और अहिंसा का सदेश दिया कि निरीह पशुओ को उपकारी बनकर जीने देना ही उचित है। वह बोली,

> वे द्रोह न करने के स्थल है
> जो पाले जा सकते सहेतु
> पशु से यदि हम कुछ ऊँचे है
> तो भव जलनिधि में बने सेतु

'पचवटी' में गुप्तजी ने इसी भावना को अधिक आदर्शवादिता से रग दिया[३४]। अब भी मनु के मन मे सकुचित विचार भरे हुये थे। वे सहज सुख को किसी मूल्य पर त्याग देने के लिये प्रस्तुत न थे। वास्तव में वे चाहते थे कि वह केवल

---

३३ सा जडा भेदरूपत्वात् कार्यं चास्या जड यत
व्यापिनी विश्वहेतुत्वात् सूक्ष्मा कार्यैककल्पनात्
शिवशक्त्यविनाभावात् नित्यैका मूलकारणम् ॥

तन्त्रालोक, ६।११७

३४ "करते हैं हम पतित जनों में, बहुधा पशुता का आरोप
करता है पशुवर्ग किन्तु क्या, निज निसर्ग नियमो का लोप।
मैं मनुष्यता को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूँ
किन्तु पतित को पशु कहना मैं कभी नहीं सह सकता हूँ। (पचवटी।)

उन्ही की चिन्ता करे। वे अपनी रानी के समस्त दुलार को पाने के लिये व्यग्र हो उठे। तभी श्रद्धा उन्हे नवीन कुटीर मे ले गई। गुफा के ही निकट पुआलो का छोटा सा छाजन बना था। इधर-उधर लतिकाये झूल रही थी। गृहलक्ष्मी के उस गृह-विधान को देखकर मनु के मन मे पुन: कुतूहल हुआ। और तभी नीरवता को भग करती हुई श्रद्धा बोली कि यही हमारा नीड़ है। उसने अपना तकली गीत सुनाया जो वह मनु के आखेट को चले जाने पर गाती रहती थी। इसी के साथ उसने भावी सन्तान का भी सकेत दिया, जो उसके जीवन में नवीन उल्लास ले आयेगा। पशु और पुत्र के प्रति अपनी प्रणयिनी के प्रेम को देखकर मनु ईर्ष्या से जल उठे। उन्हे ऐसा सशय हो गया कि वह सुखी होगी, और वे मृग की भाँति कस्तूरी के लिये वन-वन भटकते रहेगे। वे अपने 'ममत्व' को पाने के लिये व्यग्र हो उठे। उन्होने 'मायाविनि' कहकर मन की परवशता को महादुख बताया। अपना ज्वलनशील अन्तर लेकर वे चल दिये, और श्रद्धा 'रुक जा, सुन ले, ओ निर्मोही' कहती ही रह गई। इसी कल्पना के द्वारा कवि ने कथानक को गति प्रदान की। वैदिक साहित्य मे भी पशुबलि और हिसा की निन्दा है[२५]। ब्राह्मण काल मे इसके बढ़ते हुए प्रचार के विरुद्ध ऋषियो ने आन्दोलन किया। असुर ही हत्या, मास भक्षण, सुरापान आदि के पुजारी थे। देवासुर संग्राम का कारण भी यही विचार-भेद है। मनु का हिसक रूप असुर पुरोहित किलात और आकुलि के ससर्ग का परिणाम था। श्रद्धा अपनी दैवी प्रकृति से इस हिसात्मक प्रवृत्ति को रोकने का प्रयत्न करती है। हिसात्मक आसुरी प्रवृत्ति के कारण ही मनु की भावनाये सकुचित होकर ईर्ष्या में परिवर्तित हो जाती है, और वे श्रद्धा को छोड़कर चल देते है। एक क्षण के लिए दैवी श्रद्धा का देवत्व हार गया, असुरत्व की विजय हुई, जिसने मनु के मन को आच्छादित कर लिया था।

इडा——

'इड़ा' सर्ग के आरम्भ मे ही मनु के मानसिक झंझावात के कई चित्र है। मन को अधिक स्वच्छन्द रखने के हेतु वे श्रद्धा को छोड़कर चले आये, किन्तु उन्हे शान्ति न मिली। एक आन्तरिक द्वन्द्व उनके मस्तिष्क में चल रहा था। स्वतन्त्रता की कामना करनेवाले मनु स्वयम् पर ही खीझ उठे। जीवन के बीहड़ पथ पर वह एकाकी शिथिल हो चुका था। उन्हे चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देने लगा। प्रलयकालीन निराशा और जड़ता ने पुन. उन्हे घेर लिया। 'जीवन निशीथ का अन्धकार' मनु को और भी कष्ट देता था। उनके प्राणो का

२५. ऋग्वेद १।४१।८, ७।८६।६

उद्वेग बढ़ता जा रहा था। देवेन्द्र इन्द्र की विजय की स्मृतियाँ और भी दुख देने लगी। तभी उन्हे देवासुर संग्राम का स्मरण हो आया। दानव शरीरोपासना मे व्यस्त रहे और देवता 'अपूर्ण अहंता' मे ही उलझ गये। दोनो मे सदा संघर्ष चलता रहा। मनु इसी मानसिक तर्क-वितर्क में थे, कि काम बोल उठा :

मनु तुम श्रद्धा को गये भूल

* * *

तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की।

इसी स्थल पर कवि काम के शब्दो मे मानव-जीवन की समस्त विषमताओ का वर्णन करता है। स्वयम् मनु ने भी तो श्रद्धा को समझने मे भूल की। उनका मानव इसी कारण शाप ग्रस्त होगा। अनेक प्रकार की समस्याये अपना ही विनाश करेगी। काम का अभिशाप समाप्त होते ही मनु का आन्तरिक द्वन्द पुन प्रारम्भ हो गया। उधर सरस्वती मधुर शब्द करती वही जा रही थी। वह निरन्तर कर्म का प्रतीक और प्रसन्नता की धारा थी। अनायास ही प्रभात हो गया, आलोक-रश्मियाँ बिखर गई, कलरव जाग उठा। तभी मनु ने देखा कि तर्कजाल की भाँति अलके बिखरी थी। किसी का भाल उज्ज्वल शशिखड की भाँति चमक रहा था। पद्मपलाश से दोनो नेत्रो में अनुराग-विराग एक साथ झूम रहे थे। गुंजरित मधुप से मधुनत मुख मे गीत भरे थे। सम्पृति का सर्व विज्ञान ज्ञान उसके वक्ष-स्थल पर था। एक कर मे वसुधा के जीवन का सार कर्म कलश था, दूसरा विचारो के शून्य को आश्रय दे रहा था। त्रिवली, त्रिगुण तरंगमयी सुन्दर परिधान-युक्त थी, चरणो मे तालमय गति थी। उसने परिचय मे बताया कि वह सारस्वत प्रदेश की इडा है। मनु के स्वरो मे निराशा थी, वे अस्त-व्यस्त थे। इडा ने उन्हे बुद्धिवादी संदेश दिया। विज्ञान को सहज साधन उपाय मानकर मनु ने राज-काज का भार ग्रहण किया।

'इडा' सर्ग के साथ ही 'कामायनी' के कथानक की दिशा परिवर्तित हो जाती है। 'इडा' की प्रेरणा भी कवि को प्राचीन ग्रन्थो मे ही प्राप्त हुई। शतपथ के अनुसार इडा की उत्पत्ति मनु के पाक यज्ञ मे हुई। सन्तान की इच्छा से ही उन्होने यज्ञ आरम्भ किया। जल मे हव्य जाता रहा। एक वर्ष पश्चात् ही एक नारी का उदय हुआ। मित्र और वरुण ने मार्ग मे उससे भेट की। वह मनु के पास आई, और अपने को 'दुहिता बताया, क्योंकि आहुति से ही उसका निर्माण हुआ था। मनु ने उसके सौन्दर्य की प्रशंसा की। इडा ने उन्हे समझाया कि मैं मंगलकारिणी हूँ,

और बलि से मेरा प्रयोग करो। मुझसे सन्तान होगी। अन्त में इडा के साथ मनु ने जीवन का आरम्भ किया[१६]। प्रसाद इडा को सारस्वत प्रदेश की रानी स्वीकार करते है। वह जलप्लावन के पश्चात् ही मनु को नही मिल जाती। श्रद्धा को छोडकर चले जाने पर मनु की उससे भेंट होती है। कवि की कल्पना अधिक स्वाभाविक और नैतिक आधार पर है। 'इडामकृतवन्मनुपस्य शासनीम्' के अनुसार इडा मनुष्यो पर शासन करती है[१७]। प्रसाद के अनुसार लौकिक सस्कृत मे इडा शब्द पृथ्वी, बुद्धि, वाणी आदि का प्रतीक है[१८]। 'कामायनी' मे वह बुद्धि के प्रतिनिधि रूप में ही चित्रित है। उसके रूप-वर्णन मे बुद्धि का, प्रतिभा का सजीव चित्र प्रस्तुत हो जाता है। वह बुद्धिवाद के द्वारा मनु को सारस्वत प्रदेश पर शासन करने का सदेश देती है। इस प्रकार कवि ने कोश ग्रथो मे वर्णित इडा के विभिन्न रूपो का भी प्रयोग किया। सरस्वती अथवा वृत्रघ्नी के निकटस्थ सारस्वत प्रदेश का वर्णन इतिहास मे मिलता है। स्वय कवि का विचार है कि 'ऋक् काल में सरस्वती की घाटी मे भी रहनेवाले आर्यो मे सघर्ष चल ही रहा था। इसीलिये सरस्वती को वृत्रघ्नी कहा है। ऋक् मत्र १०।२७।१७ मे सामश्रमी ने आक्षस नदी का भी उल्लेख माना है। इसीलिये उक्त प्रमाणो से गगा से लेकर वर्तमान हेलमन्द की घाटी और वाल्हीक से लेकर दक्षिण के ऋक् कालिक राजपूताना के समुद्र तक हम आर्यो की एक घनी बस्ती मानते है, जिसके बीच मेरु स्थित है[१९]।' नमुचि असुर के वध मे भी सरस्वती का सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। इस प्रकार सरस्वती के निकट देवासुर सग्राम की ऐतिहासिक पुष्टि भी मिल जाती है। 'कामायनी' का मनु इसी सघर्ष की याद करता है। इडा भी स्वीकार करती है कि भौतिक हलचल से उसका देश किसी दिन चचल हो उठा था। कवि ने मनु को शासक रूप मे प्रतिष्ठित कर दिया। सारस्वत प्रदेश भी उनके अनुसार उत्तर भारत की विस्तृत भूमि का ही एक खड है।

स्वप्न—

मनु सारस्वत प्रदेश के प्रजापति है, और इड़ा रानी। 'स्वप्न' सर्ग के अन्त-

---

१६. सोऽर्चञ्छ्राम्यंश्चचार प्रजाकामस्तस्यापि तत्र हापि पाक यज्ञेनेजे घृत दधि मस्त्वा-
मिक्षामिति..............।

कांडवीय शतपथ ब्राह्मण, कांड १, अध्याय ८ ब्राह्मण १ मंत्र ५, ६, ७

१७. ऋग्वेद, १।१३।११

१८. कामायनी का आमुख।

१९. कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० १७४

र्गत आरम्भ में श्रद्धा की दशा का वर्णन कवि करता है। सन्ध्या समय कामायनी पृथ्वी पर पडी बीते दिनो की याद करती है। पास में बहती हुई मदाकिनी से सुख और दुख की सीमा जानने के हेतु व्यग्र है। विरहिणी के अन्तर में अनेक विचार आ-जा रहे है। शून्य पार्वत्य प्रदेश में श्रद्धा इसी प्रकार सोच रही थी कि अचानक कोई 'मा' कहकर बोल उठा। प्रथम बार कवि श्रद्धा के पुत्र को प्रस्तुत करता है। माता उसे 'पिता का प्रतिनिधि' कहकर पुकारती है। उसके हृदय में हर्ष विशाद एक साथ झूम उठे। बालक के सोते ही वह पुन उन्ही विचारो मे उलझ गई। थोडी ही देर में वह स्वप्न देखने लगी। इसी स्वप्न के द्वारा कवि सारस्वत प्रदेश में मनु और इडा के सम्बन्ध की चर्चा कर कथानक को आगे बढाता है। उधर इडा मनु का पथप्रदर्शन कर रही है। मनु की सुन्दर नगरी में प्रत्येक प्रकार की सम्पन्नता है। ज्ञान व्यवसाय की वृद्धि हो रही है। इडा उन्हें प्रजापति कहकर सान्त्वना देना चाहती है, किन्तु मनु पर मदिरा की मादकता छाती जा रही थी। उनकी पाशविकता सजग हो उठी। आलिगन के साथ ही धरणी कपित हो गई। अतिचारी से दुर्बल नारी परित्राण का प्रयत्न करने लगी। भयानक हलचल मच गयी, रुद्र हुकार उठे। आकाश की देवशक्तियाँ क्षुब्ध मन क्रोधित हो गई। प्रजापति के अत्याचार से पृथ्वी त्रस्त हो गई। चारो ओर भय और क्रान्ति का वातावरण था। इडा ने बाहर प्रजा के विद्रोही रूप को देखा। मनु भी उस आकस्मिक घटना से आश्चर्य चकित हो गये। वे शयन कक्ष मे चले गये। इधर श्रद्धा स्वप्न में ही काप उठी। इस प्रकार स्वप्न के द्वारा प्रसाद ने सारस्वत प्रदेश की स्थिति का वर्णन किया। मनु और इडा का सम्बन्ध अधिक स्पष्ट हो गया है। मनु इडा को रानी बनाना चाहते है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार भी प्रजापति को अपनी ही कन्या के प्रति काम इच्छा हुई। एक दिन 'क्या उसका आलिगन हो सकता है', सोचकर उन्होने आलिगन कर लिया। देवता अपनी बहिन के प्रति इस पाप को न देख सके। उन्होने पशुपति से इस अत्याचार को बन्द करने की प्रार्थना की, और उन्होने ऐसा ही किया[४०]। 'कामायनी' में इडा 'आत्मजा प्रजा' भी लगभग कन्या की ही भाति है। प्रजापति ने

---

४० प्रजापतिर्ह वै स्वा दुहितरमभिदध्यौ। दिवं वोषस वा मिथुन्येनयास्यमिति तां सं बभूव . .. ...। तद्वै देवानामागऽआस। यऽइत्थ स्वा दुहितरमस्माक स्वसार करोतीति।.......ते ह देवा ऊचु। योऽय देव पशूनामीष्टेऽतिसध वाऽअय चरति यऽइत्थ स्वा दुहितरमस्माक स्वसार करोति विध्येममिति त रुद्रो ऽभ्यायत्य विव्याध तस्य सामि रेत प्रचस्कंदतथन्नूनं तदास।. ७।४

उस पर अत्याचार किया, वह मना ही करती रही। मनु का प्रजापति रूप भी प्राचीन आधार पर है[41]। शिव कल्याणकर्ता और विध्वंसक दोनों ही रूपों में ऋग्वेद में प्रतिष्ठित हैं[42]। उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोलकर कामदेव को भस्म किया। शिव का यही रौद्र-रूप 'रुद्र' में निहित है[43]। 'कामायनी' में स्थिति का वर्णन है :

> आलिंगन! फिर भय का क्रन्दन! वसुधा जैसे कांप उठी
> वह अतिचारी दुर्बल नारी परित्राण पथ नाप उठी
> अन्तरिक्ष में हुआ रुद्र हुंकार भयानक हलचल थी
> अरे आत्मजा प्रजा! पाप की परिभाषा बन शाप उठी।

संघर्ष—

श्रद्धा को स्वप्न में दिखाई देने वाली स्थिति 'संघर्ष' में पूर्ण रूप से वर्णित है। स्वप्न सत्य हो जाता है। प्रजा में अत्यन्त क्षोभ था, और इडा भी त्रस्त थी। भौतिक विप्लव से प्रजा भयभीत हो उठी। वह राजशरण में रक्षा के लिये आई, किन्तु अपमानित हुई। इडा मनु को अनेक प्रकार से सान्त्वना देती और समझाती है। वे प्रजापति होने के कारण किसी भी नियम का पालन करने को तत्पर न थे। उनके हृदय में भीषण संघर्ष हो रहा था। उन्होंने इडा की बातों पर ध्यान न देकर अपनी मादकता में उसे बाहुपाशों में रोक लिया। मनु स्वयं पर नियंत्रण खोते जा रहे थे। उन्हें आश्चर्य था कि जिस जनता के लिये उन्होंने अनेक सुख-साधन एकत्र किये, वह विद्रोह कैसे कर उठी। उधर प्रजा यंत्र सभ्यता को कोस रही थी। मनु प्रकृति पुरुष के भीषण संघर्ष के लिये तत्पर हो गये। उन्होंने देखा, विद्रोहियों के नेता आकुलि और किलात थे। मनु ने उन्हें धराशायी कर दिया। इड़ा उस भीषण जन-संहार को रोकने का प्रयत्न करने लगी। 'जीने दे सबको फिर तू भी सुख से जी ले' कह कर उसने मनु से आतंक न करने की अनुनय की। किन्तु किसी ने नहीं सुना। तभी उसने देखा कि रक्त नदी की बाढ़ फैलती जाती है और मनु भी वहीं गिर पड़े हैं।

'स्वप्न' में केवल भीषण घटना का संकेत कवि ने किया। उसका वास्त-

---

४१. मनुस्मृति, महाभारत, शुक्रनीति आदि।

४२. ऋग्वेद, १।११४।१, ४।३।६ आदि

४३. एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपः।
श्वेताश्वतरोपनिषद् ३।२

विक स्वरूप 'संघर्ष' में आकर प्रस्तुत होता है। मनु, इडा, राजा, प्रजा, प्रकृति और उसके पुतलो का द्वन्द चलता है। मनु अथर्वा मन तथा इडा अथवा वाक के विवाद का वर्णन शतपथ ब्राह्मण मे भी है, जहा दोनो ही अपने महत्व की स्थापना का प्रयास करते है। ब्राह्मण के साकेतिक अर्थ का ही एक रूप कवि ने ग्रहण किया, जिसकी चर्चा उसने 'आमुख' में भी कर दी है[४४]। शतपथ के अनुसार देवताओ ने अपनी स्वसा पर अत्याचार होते देखकर रुद्र से प्रार्थना की, और तब संहार हुआ। वहा रुद्र का आधा वीज भूमि पर भी गिर पडा[४५]। इस कथा का समर्थन अन्य स्थलो पर मिलता है। ताण्ड्य ब्राह्मण मे भी प्रजापति अपनी दुहिता पर आकृष्ट हुये[४६]। वामन पुराण मे पिता कन्या के आधार पर एक कथा और भी मिलती है। काम का जन्म कृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न रूप में हुआ। नारद ने शम्बर से बताया कि प्रद्युम्न ही उसका काल होगा। राक्षस ने उसे चुरा कर सागर में फेंक दिया, जहा उसे एक मछली निगल गई। रति नारद के आदेश से ही शम्बर के यहा भोजन पकाती थी। एक दिन उसे मछली में प्रद्युम्न मिला। नारद ने उसे अदृश्य करने की शक्ति दी। रति ने प्रद्युम्न का पालन-पोषण किया। युवक होने पर दोनो मे प्रेम और अन्त में विवाह भी हो गया। प्रद्युम्न ने शम्बर का नाश किया। यह कथा इडा मानव सम्बन्ध मे अधिक साम्य रखती है। रूपक रूप मे यह कथा भी प्रचलित है कि काम ब्रह्मा का पुत्र है। उत्पन्न होते ही उसने एक पुष्पवाण अपने पिता को मारा और वे अपनी कन्या के ही प्रेम मे पड गये। डा० फतेह सिंह ने पुरूरवा उर्वशी को भी मन इडा सम्बन्ध के समीप प्रस्तुत किया है[४७]। इन कथाओ को रूपक रूप में ग्रहण कर आध्यात्मिक और साकेतिक अर्थ लेना ही अधिक उचित है। प्रसाद की इडा का सौन्दर्य उर्वशी से कम नही। शतपथ के वीजपात को भी कवि ने नही ग्रहण किया। 'कामायनी' मे देवताओ के स्थान पर समस्त प्रजा ही विद्रोह कर देती है, जिसका नेतृत्व असुर पुरोहित आकुलि और किलात करते है। प्रकृति और उसके पुतलो का संघर्ष एक शाश्वत सत्य है, जिसका संकेत कवि ने किया है। प्रकृति पुरुष, नारी मानव, हृदय बुद्धि, सुर असुर का द्वन्द चिरन्तन है। 'कामायनी' के आरम्भ मे भी कवि ने देवताओ का प्रकृति के साथ संघर्ष का

४४ आमुख

४५ शतपथ ब्राह्मण १।७।४

४६ प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायत् ... तस्य रेतः परापतत् . ..

खण्ड २, अध्याय ८, मंत्र १०

४७ कामायनी सौन्दर्य, पृ० १५९

वर्णन किया है। 'इड़ा' सर्ग में भी उसे इसका स्मरण हुआ, और अन्त में वह साकार रूप में सम्मुख आया। प्रसाद ने बुद्धिवाद के प्रतीक रूप में इड़ा को ग्रहण किया। मनु प्रजापति होकर अत्यधिक स्वच्छन्दता की कामना करने लगे। अन्त में राजा प्रजा का संघर्ष हुआ। जनता ने अत्याचारी के प्रति विद्रोह किया। रुद्र का भयंकर रूप 'आत्मजा प्रजा' के लिये है, जो शतपथ ब्राह्मण के अधिक समीप है, किन्तु प्रजा अपनी 'रानी' के लिये संघर्ष करती है। 'प्रसाद' ने अनेक स्थलों पर बिखरी हुई इस कथा में शतपथ से अधिक प्रेरणा ली। उन्होंने आध्यात्मिक की अपेक्षा उसे राजनैतिक स्वरूप प्रदान किया, जो कथानक को आगे बढ़ा देता है। उनका संघर्ष अधिक व्यावहारिक और स्वाभाविक है।

निर्वेद—

'निर्वेद' सर्ग के आरम्भ में ही सारस्वत नगर की क्षुब्ध, मलिन और मौन दशा का वर्णन है। सरस्वती वही चली जा रही थी, अभी तक आहतों का करुण स्वर सुनाई देता था। प्रकृति में भी उदासी छाई थी। सूने मंडप में इड़ा बैठी थी, निकट ही आहत मनु पड़े हुये थे। इड़ा ग्लानि से भरी बीती बातें सोच रही थी। इड़ा ने देखा राजपथ पर धुंधली-सी छाया, स्वर में करुण-वेदना भरे चली आ रही थी। दोनों दुखी बटोही मां बेटे मनु को ही तो खोज रहे थे। इड़ा ने द्रवित होकर व्यथा जानने का प्रयत्न किया। तभी श्रद्धा ने आहत मनु को देख लिया। उसे स्वप्न की याद आ गई। उसने मनु को अपने मधुर स्पर्श से कष्ट रहित कर दिया। मधुर संगीत के साथ ही अरुणोदय हुआ। मनु कृतज्ञता के भार से झुक गये। उन्होंने अपनी आन्तरिक भावनाओं को श्रद्धा के सम्मुख खोल कर रख देने का प्रयत्न किया। वे 'मंगल की माया', 'प्रभापूर्ण' आदि कहकर आभार प्रदर्शन करते हैं। बुद्धिवाद की भर्त्सना करते हुये उन्होंने अपने पुत्र कुमार को भी प्यार किया। श्रद्धा मनु के अन्तरतम में उठते मानसिक झंझावात को देख रही थी। रजनी के नीरव प्रहरों में मनु पुन सोचने लगे। उन्हें जीवन विषम प्रहेलिका की भांति प्रतीत हुआ। एक विचित्र प्रकार की ग्लानि का अनुभव वे कर रहे थे कि श्रद्धा को कलुषित मुख कैसे दिखाया जाय। इसी मानसिक द्वन्द में वे पुन कहीं चल दिये। श्रद्धा, इड़ा, कुमार ने प्रात जाग देखा तो मनु का पता न था। प्रसाद ने कल्पना के द्वारा 'निर्वेद' की कथा को गति दी है। श्रद्धा के उदात्त चरित्र का वर्णन ही उसकी प्रमुखता है। अभी तक श्रद्धा के मुख से सुन्दर सन्देशों के द्वारा ही कवि ने उसका रूप प्रस्तुत किया था। यहां जीवन की विभीषिका से त्रस्त मन श्रद्धा की भक्ति-भूमि प्रशंसा करता है। प्राचीन

आलेखो मे भी श्रद्धा का मगलकारी वर्णन मिलता है। ऐतिहासिक रूप में वह ऋषिका, कामायनी, और मानवी है। 'कामगोत्रजा श्रद्धा नामर्षिका' मे उसका व्यक्तित्व महान है। पुराणो मे वर्णित वशपरम्परा मे भी श्रद्धा का महत्वपूर्ण स्थान है[४८]। भावना रूप मे श्रद्धा का स्थान सर्वोपरि है। वह आस्तिक बुद्धि, आदरणीय है। निरुक्त के अनुसार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के प्रति अविपर्य्यपूर्वक बुद्धि उत्पन्न करनेवाली देवी श्रद्धा है[४९]। त्रिपुरारहस्य मे उसकी उपासना की गई[५०]। इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थो से श्रद्धा के गुण लेकर कवि ने उसे उदात्त, महान, सुन्दर काव्यात्मक स्वरूप प्रदान किया।

दर्शन--

'दर्शन' सर्ग का प्रारम्भ नीरव रजनी मे श्रद्धा और कुमार के वार्तालाप से होता है। मा की उदासी का कारण पूछता हुआ भोला बालक अपनी शका का समाधान चाहता है। श्रद्धा अनेक कटु अनुभवो के पश्चात इस सत्य पर पहुँच चुकी है कि परिवर्तनशील जगत मे सुख-दुख आते जाते ही रहते है। अभी सृष्टि की विविधता पर विचार कर ही रही थी कि विषाद से भरी इडा दिखाई दी। श्रद्धा बोल उठी कि मुझे तुमसे विरक्ति नही। तुमने तो मुझे अवलम्बन दिया। आशामयि, चिरआकर्षण आदि कहकर उसे मनु के मस्तक की चिर अतृप्ति बताती है। इडा क्षमा याचना करने लगी। भौतिकता और विज्ञानवाद से त्रस्त राज्य का वर्णन भी उसने किया। वह जनपद कल्याणी होकर भी अवनति का कारण बन गई। श्रद्धा ने अपनी सम्पूर्ण विनय से उसे सान्त्वना दी। अपने पुत्र मानव को वह 'तर्कमयी इडा' के पास छोडकर मनु को खोजने के लिये जाना चाहती है। दोनो को राष्ट्र नीति देखने तथा समरसता का प्रचार करने के लिये वहीं रखकर वह चल पडी। कुछ दूर जाकर श्रद्धा ने प्रकृति के सुन्दर वातावरण मे मनु को निर्जन तट पर पाया। सर्वमगला के सम्मुख उन्होने अपनी लघुता स्वीकार की। आज उन्हे अपनी भूल का ध्यान आया। 'प्रलय की

---

४८ श्रीमद्भागवत पुराण ४।१।४९, ४।१।५०

४९ धर्मार्थकाममोक्षेषु अविपर्ययेणैवमेतदिति या बुद्धिरुत्पद्यते, तदधि देवता भावा रमा : श्रद्धेत्मुच्यते ।९।३।३१

५० अध्याय १७, श्लोक १

छाया' की कमला ने भी अन्त मे पद्मिनी की वास्तविकता को जाना था[११]। श्रद्धा ने मनु को पुन जीवन के सत्य का बोध कराया। महाविष को कर्मोन्नति द्वारा समाप्त करने का उसने सदेश दिया। उस समय सर्वत्र प्रकाश छा गया। नटराज स्वयम् प्रसन्न होकर नृत्य कर उठे। उस आनन्दपूर्ण सुन्दर ताडव से समस्त ताप विलीन हो गया। मनु ने देखा, सम्मुख एक सुन्दर सृष्टि झूम रही थी। सर्व शाप पाप ध्वस हो चुका था। वे 'समरस अखड आनन्द वेश' को देखकर आश्चर्य-चकित रह गये। इस प्रकार कवि ने आदर्श स्थापना का प्रयत्न किया। श्रद्धा की उदात्त व्याख्या के साथ ही इडा का भी स्वरूप निर्धारित हो गया। उसका 'तर्कमयी' रूप बुद्धिवाद का ही प्रतीक है। श्रद्धा की 'मातृमूर्ति' रूप मे कल्पना उसे नारी के महानतम सर्वोच्च पद पर ले जाती है। मानवता की माता होने के अतिरिक्त भी प्राचीन ग्रन्थो मे उसका स्थान ऊँचा है। त्रिपुरारहस्य के ज्ञान खड मे कहा गया है

श्रद्धा माता प्रपन्नं स वत्सलेव सुतं सदा
रक्षति प्रौढ भीतिभ्यः सर्वथा नहि संशयः ॥

* * *

श्रद्धा हि जगता धात्री श्रद्धा सर्वस्वजीवनम्
अश्रद्धां मातृविषये वालो जीवेत कथं वद[१२]।

कवि ने श्रद्धा के दार्शनिक और आध्यात्मिक स्वरूप को स्पष्ट कर दिया। वह अपने ऋतिका रूप मे उपस्थित हुई। नारी की परणति माता मे कर के कवि ने अरविन्द की 'शक्तिरूप' को स्थान दिया। बौद्ध दर्शन मे भी नारी का सर्वोत्कृष्ट रूप माता है। प्रकृति के विशाल रगमच पर ही श्रद्धा के द्वारा प्रसाद ने आनन्द की स्थापना भी की। उपनिषदो की अद्वैत भावना तथा शैवदर्शन की समरसता का आभास कई पक्तियो मे मिल जाता है। श्रद्धा, इडा और कुमार एक

---

५१. पद्मिनी की वाह्य रूपरेखा चाहे तुच्छ थी,
मेरे इस सांचे से ढले हुये शरीर के
सम्मुख नगण्य थी।
किन्तु था हृदय कहां।
वैसा दिव्य
अपनी कमी थी इतरा चली हृदय की,
लघुता चली थी माप करने महत्व की।

५२. त्रिपुरा रहस्य (ज्ञान खंड) अध्याय १७, श्लोक १

क्षण के लिये विस्मृति की अवस्था में हो जाते हैं। वह 'हृदयो का अति मधुर मिलन' है। इडा और कुमार पुर को लौटते समय दो नही रहते। इस अभिन्नता से उपनिषद् भरे पड़े हैं। आत्मा परमात्मा को एक रूप मानने वाली वेदान्त विचार धारा की छाया कवि की कल्पना पर स्पष्ट प्रतीत होती है। ईशावास्योपनिषद् का प्रसिद्ध शान्ति पाठ जिस पूर्णता की चर्चा करता है, वही उपनिषद् दर्शन का मूल स्वर है[५३]। प्रसादजी ने अभिन्नता को समरसता तथा आनन्द से समन्वित कर दिया। नटराज के नृत्य से आनन्द की स्थापना शैवदर्शन के अनुसार है। निर्माण और विनाश दोनो ही नटराज के नृत्य से होते हैं। ताडव और लास्य में इसी कारण विभेद कर दिया गया। शैवागम मे 'क्रीडात्वेनखिलम् जगत्' की प्रतिष्ठा भी इसी आधार पर हुई[५४]। कामायनी में भी चर्चा है—

संहार सृजन से युगल पाद।

कवि ने विभिन्न दर्शनो का काव्यात्मक रूप प्रस्तुत किया।

रहस्य—

कथानक में दर्शन का प्रवेश बढता चला जाता है। 'रहस्य' सर्ग मे मनु और श्रद्धा हिम प्रदेश में आगे बढते है। प्रकृति का उन्मुक्त स्वरूप दिखाई देता है। मनु अधिक थक जाने के कारण रुक जाना चाहते हैं, पर श्रद्धा उन्हे बढाये लिये जा रही है। अन्त में वे समतल पर आ गये, जहा

ऊष्मा का अभिनव अनुभव था
ग्रह, तारा, नक्षत्र अस्त थे,
दिवा रात्रि के सधि काल में
ये सब कोई नहीं व्यस्त थे।

इसी अवसर पर श्रद्धा मनु को इच्छा, ज्ञान और कर्म के लोक दिखाती है। वही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की पुतलियाँ नृत्य कर रही है। इच्छा ही भावनाओ की जननी है। जीवन की मधुर लालसाओ का उसमे सम्बन्ध है। पाप-पुण्य इसी पर अवलम्बित है। इच्छा चिर वसत का उद्गम है। कर्म में नियति की भी प्रेरणा रहती है। यहाँ क्षण भर भी विश्राम नही। इसी के पीछे समस्त समाज भागा चला जा रहा है। ज्ञान के क्षेत्र में सुख दुख से उदासीनता

५३ ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

५४ त्रिपुरा रहस्य।

होती है। बुद्धि मरु में भटकाती है। त्रिपुर में इच्छा, ज्ञान, क्रिया तीनों ही विलग है, इसी कारण इच्छा पूर्ण नहीं होती। अन्त में कवि श्रद्धा की स्मित में इन तीन बिन्दुओं का मिलन स्थापित कर देता है। यहां शैवागमों का प्रभाव दिखाई देता है। 'त्रिपुरारहस्य' में भी इच्छा ज्ञान कर्म के समन्वय का वर्णन मिलता है :

'त्रिपुरानन्तशक्तैक्य रूपिणी सर्वसाक्षिणी'

इसके अतिरिक्त भगवान् शंकर ने भी त्रिपुर दाह किया था। प्रसादजी श्रद्धा की स्मित से ही इस कार्य को सम्पन्न करा देते हैं। तंत्रों में वर्णित पांच तन्मात्र शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का भी समावेश हुआ है। श्रद्धा का उदात्त स्वरूप, इच्छा, ज्ञान कर्म का समन्वय, रुद्र का ताडव आदि की कल्पना कवि ने शैव ग्रन्थों से प्राप्त की। मनोमय कोश तक विभिन्न प्रतीत होने वाले इच्छा, ज्ञान, क्रिया विज्ञानमय कोश में एकाकार होने की चेष्टा करते हैं और अन्त में आनन्दमय कोश में एक हो जाते हैं। कवि ने अपने आत्मवादी आनन्द की व्याख्या करते हुये स्वयम आगमों से अनेक उदाहरण दिये[१५]। इस 'रहस्य' सर्ग के द्वारा प्रसादजी एक महान उद्देश्य की स्थापना करते हैं, जिसका आधार श्रद्धा है। जीवन युद्ध के थके हुये मैनिक मनु का पथप्रदर्शन श्रद्धा करती चली जाती है। तीनों लोकों के वर्णन से कवि ने उनके स्वरूप को निर्धारित कर दिया। श्रद्धा आदि पुरुष को उस महान आदर्श और उच्च भावभूमि पर ले जाती है, जहां से वह भावी मानवता का सुन्दर निर्माण कर सके। उपनिषदों से दर्शन और तंत्रों से कथा की प्रेरणा लेकर कवि ने आदर्श की स्थापना की।

आनन्द—

अन्तिम सर्ग 'आनन्द' है। पर्वत प्रदेश में सरिता की घाटी में एक यात्री दल चला जा रहा था। धर्म के प्रतिनिधि वृषभ को मानव लिये हुये था, साथ ही इडा भी चली जा रही थी। बालक जिज्ञासा से गन्तव्य स्थान के विषय में प्रश्न करते हैं। इडा ने कहा कि किसी दिन एक मनस्वी संसार की ज्वाला से पीड़ित होकर शान्त तपोवन में आया। उसकी भयानक जलन सर्वत्र फैल गई। उसकी अर्धांगिनी इस दशा पर द्रवित हो उठी। उसके आंसू वरदान बनकर संसार का मंगल करने लगे। वन का समस्त ताप, शाप शान्त हो गया; हरीतिमा, सुख और शीतलता बिखर गई। गिरि, निर्झर में नवीन जीवन आया, सूखे तरु

१५. काव्य और कला, पृष्ठ २७

मुस्करा उठे, पल्लवो मे अरुणिमा फूटी। अब वे दोनो 'ससृति की सेवा' में निमग्न, सबको सुख, सन्तोष देते हैं। वहा कोई महा ह्रद नामक मानस है, जो मन की पिपासा अपने निर्मल जल से शान्त कर देता है। सारस्वत नगर के वासी इसी अमृत से नव जीवन की कामना करते है। थोडी ही देर मे समतल आ गया। सम्मुख ही विराट् पर्वत खडा था। प्रकृति का अत्यन्त मनोरम वातावरण था। कैलाश पर्वत पर ही मनु मानस के समीप ध्यानमग्न थे, और निकट ही श्रद्धा पुष्पाजलि लिये खडी थी। सभी ने उन दोनो को पहचान लिया। इडा जाकर श्रद्धा के चरणो पर मस्तक रखती हुई कहने लगी कि तुम्हारा ममत्व मुझे यहा खीच लाया, मेरा जीवन धन्य है। दिव्य तपोवन से जीवन को सफल करने की कामना है। तभी मनु कैलाश पर्वत की ओर सकेत करते हुये बोले

शापित न यहां है कोई
तापित पापी न यहां है
जीवन वसुधा समतल है
समरस है जो कि यहां है।

जीवन की समरसता, अद्वैत भावना, आनन्दवादी प्रकृति का दिग्दर्शन कराते हुये मनु ने चराचर विश्व को चिर सत्य, शिव, सुन्दर बताया। वह किसी विराट से सचालित है। श्रद्धा सृष्टि की मगल कामना प्रतीत होती थी। उसकी आभा मानस के तट पर बिखर रही थी। उस 'पूर्ण काम' की प्रतिमा से समस्त सृष्टि परिचालित हो रही थी। क्षण भर मे ही सर्वत्र आनन्दामृत छलक उठा। प्रकृति का वैभव अपने सर्वोत्कृष्ट स्वरूप मे दिखाई दिया, मानो स्वय वनलक्ष्मी ने शृगार किया हो। सम्पूर्ण वातावरण में उन्माद और कम्पन भर गया। वह सुख दुख का मधुर मिलन था। लास्य रास से आनन्द छा गया। इस प्रकार आनन्द और समरसता की स्थापना के अनन्तर कवि काव्य को समाप्त करता है। उसका लक्ष्य है, आनन्द का निरूपण। इडा और मानव का सारस्वत प्रदेश के निवासियो के साथ कैलाश पर्वत पर आना प्रसादजी की कल्पना है। इसके द्वारा वे मानवता का मगलमय रूप प्रतिष्ठित कर सके। भौतिक सघर्ष और व्यक्तिगत विषमता से ऊपर उठ कर आनन्द का वास्तविक स्वरूप उन्होने मनु के द्वारा प्रस्तुत किया। 'कामना' नाटक मे भी अनेक पात्र सघर्ष के पश्चात् अन्त मे 'ईश्वर और मनुष्य, राजा और प्रजा, शासित और शासको का भेद विलीन कर विराट विश्व, जाति और देश के वर्णो से स्वच्छ होकर एक मधुर मिलन की क्रीडा का अभिनय, की कामना करते है। स्मित, आनन्द, उषा और आशा का सम्मिलन

ही उनका लक्ष्य है[५६]।" भारतीय वाङ्मय मे कैलाश पर्वत शिव का साधना क्षेत्र है। यही से वे सृष्टि का निर्माण और विनाश करते है। 'मानस' भारत की प्रसिद्ध मानसरोवर झील ही प्रतीत होती है। महाकवि कालिदास ने 'कुमारसम्भव' के आरम्भ में हिमालय का भव्य रूप प्रस्तुत किया है। वह देवताओ की भाति पूजनीय है। प्रकृति के इस सुरम्य वातावरण में ही कवि ने शिव पार्वती को प्रतिष्ठित किया। प्रसाद का मनु भी उसी स्थिति पर पहुँच जाता है। उसी के 'शान्त तपोवन' तक सभी जाकर आनन्द प्राप्त करते है। धर्म का प्रतिनिधि वृषभ शिव जी का ही नन्दी है। इस नन्दी को शैव ग्रन्थो में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। शिव जी का यह वाहन शैवागम मे भवसागर पार करने का एक उपाय भी माना गया है। वह धर्म का शुद्ध सात्विक रूप है, जिसके द्वारा मानव का उद्धार सम्भव है। प्रसाद ने वृषभ को सोमवाही की सज्ञा दी है। देवताओ के पेय के अतिरिक्त उसका साकेतिक अर्थ भी लिया जा सकता है। समरसता को ही कवि ने आनन्द के रूप मे भी ग्रहण किया है। आनन्दवाद की प्रतिष्ठा 'पूर्ण काम' के द्वारा होती है। इसी अवसर पर 'लास रास' भी होता है। प्रकृति और पुरुष का सम्मिलन ही आनन्द का सृजन करता है। प्रसाद जी को आनन्दवाद की मूल प्रेरणा शैवागम से प्राप्त हुई। कवि ने स्वयम् इन्द्र को आत्मवाद का प्रतिनिधि मानकर शैव दर्शन के आनन्दवाद को अद्वैतवादी विचारधारा का ही एक रूप कहा है[५७]। प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार भी जीवन श्रद्धा के द्वारा आनन्द की उपलब्धि कर सकता है। शैव दर्शन का आनन्दवाद काम का ही पूर्ण विकसित रूप है। 'आनन्द' सर्ग में मनु इडा से कैलाश पर्वत की ओर सकेत करते हुये कहते है कि यहा पर कोई तापित और शापित नही है। शैवदर्शन भी आनन्दमय जगत मानता है :

यत्र यत्र मनो याति ज्ञेयं तत्रैव चिन्तयेत्
चलित्वा यास्यते कुत्र सर्वं शिव मयं यतः।

इस 'आनन्दवाद' में ही उपनिषदों की अद्वैतभावना का भी सयोग हो गया। शिव आनन्दरूप कल्याणकारी है, किन्तु उनमें 'द्वयता' का वास नही। 'एकोऽय द्वितीयो नास्ति' की वेदान्त भावना पर ही प्रत्यभिज्ञा दर्शन से अनुप्राणित प्रसाद की आनन्दवाद की कल्पना आश्रित है। शिव यदि आनन्दरूप है, तो ब्रह्म पूर्ण।

---

५६. कामना, पृष्ठ ९८, १००
५७. काव्य और कला—'रहस्यवाद' निबन्ध।

शिव शक्ति, आत्मा परमात्मा का मिलन ही चिरन्तन आनन्द की सृष्टि करता है। श्वेताश्वत्तरोपनिषद् मे रुद्र को ही लेकर अद्वैत भावना की प्रतिष्ठा की गई

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाल्लोकानीशत ईशनीभि : (३।२)

'आनन्द' सर्ग का जीवन दर्शन उच्च भाव भूमि पर प्रतिष्ठित है। उपनिषदो का अद्वैतवाद, शैवदर्शन की आनन्द कल्पना से समन्वित होकर उसमे प्रकट हुआ। श्रद्धा उसमे महत्वपर्ण स्थान प्राप्त करती है। इस 'ज्योतिष्मती' के सहयोग से ही मनु अपने महान आदर्श की स्थापना मे सफल हुये। त्रिपुरा रहस्य मे श्रद्धा की अत्यन्त प्रशसा मिलती है[५८]। इस प्रकार प्रसादजी का ज्ञान और दर्शन ही काव्य के अन्त मे एक महान जीवन दर्शन की प्रतिष्ठा करता है। 'कामायनी' का आनन्दवाद प्राचीन भारतीय दर्शन, विशेषतया शैवागमों से अनुप्राणित होकर भी अधिक व्यावहारिक है। मनु की भावी मानवता भौतिक और आध्यात्मिक दोनो ही दृष्टियो से सुखी रहने का प्रयत्न करती है। श्रद्धा और मनु कैलाश पर्वत पर केवल किसी तपस्वी की भाति साधना मे निमग्न ही नही है, वे 'ससृति की सेवा' करते है। 'कामायनी' के अन्त तक आता आता कवि भावी मानवता के सम्मुख उस महान आदर्श को प्रस्तुत कर देता है, जिस पथ का अनुसरण कर वह जीवन के सुख और आनन्द को प्राप्त कर सके।

कथा-योजना--

'कामायनी' की कथा का आधार पौराणिक एव ऐतिहासिक है। शतपथ ब्राह्मण की जलप्लावन घटना से लेकर पुराणो मे बिखरी हुई सामग्री तक का प्रयोग प्रसाद ने किया। कथा सत्र मे क्रम स्थापित करने के लिये कल्पना का भी आश्रय उन्होने लिया। काव्य की महानता के लिये ही उन्होने सुन्दर कथा की योजना की[५९]। कथा मे स्वाभाविकता और नवीनता रखने की दृष्टि से प्राचीन ग्रन्थो मे वर्णित लघु कथाओ को छोड दिया गया है। युगो पूर्व जन्म लेने वाली प्रथम मानवता मे आधुनिक समस्याओ का समावेश इसी कारण सम्भव हो सका। 'कामायनी' के अन्तिम भाग मे कवि ने कल्पना का अधिक प्रयोग अपने आदर्श स्थापन के हेतु किया। अधिकाश प्रबन्ध काव्यो का सृजन ऐतिहासिक आधार को लेकर इसी दृष्टि से होता है कि उस महान् अतीत पर ही कवि अपने नवीन आदर्श की प्रतिष्ठा कर सके। होमर के महान काव्यो मे प्रेम, वीरता की

---

५८ ज्ञानखड, छठा अध्याय।

५९ 'An Epic must be a good story'—The Epic—Page 49

भावना होते हुये भी देवी देवताओ।
मिला। दान्ते ने धार्मिक आधार के द्वारा सत्य ...व्यक्ति है[९]।' प्रसादजी ने जलप्लावन
पार्वती के प्रसिद्ध आख्यान के द्वारा कुमारसम्भव को रूप ...का अग्नि पुराण, मत्स्य पुराण
वैभव का भी चित्रण किया। इतिहास प्रसिद्ध कथा केवल एक सी ...की ही भाँति है।
...ती है[१०]। 'कामायनी' में नवीन जीवन दर्शन की प्रतिष्ठा के कारण प्र... दार्श-
...ा का अल्पांश ही प्रसाद ने ग्रहण किया। कथा महान होते हुये भी वृहत आकार
...ही है। जलप्लावन, मनु श्रद्धा का मिलन, वियोग, इडा का प्रवेश, जनसघर्ष
की सीमित घटनाओ से ही 'कामायनी' का निर्माण हुआ। कथा मे उत्कर्ष,
...ाने की दृष्टि से ही इडा मनु को बाद मे मिलती है, अन्यथा शतपथ
अनुसार वह पूर्व ही आ जाती है। सघर्ष को अधिक तीव्र कर देने को
...दो बार श्रद्धा को छोड देते है। कवि ने इडा और मानव के सम्बन्ध
स्पष्ट नही किया। प्राचीनता के आधार पर उसने नवीन निर्माण
ही माध्यम मे प्रसादजी ने दर्शन की स्थापना की है। श्रद्धा का
...तरिक द्वन्द आदि के द्वारा उन्होने सत्य का प्रतिपादन किया।
...ीय दर्शन है। समरसता और आनन्द की चर्चा मे शैवदर्शन का
...देता है। शिव के ताडव और लास्य दोनो ही निर्माण और
...यनी मे आये है। अद्वैत भावना की प्रेरणा उपनिषद् है।
...ानक सिद्धान्तो का वर्णन इतने सुन्दर काव्यात्मक स्वरूप मे हुआ
...सिद्धान्त और काव्य-दर्शन मे अधिक अन्तर नही रह जाता। कवि का कार्य
शिक्षक से भिन्न है। उपदेशक वाणी से जो कार्य करता है, वह कवि सकेत मात्र
मे कर डालता है[११]। इसी कारण 'कामायनी' मे प्रजातन्त्र, मनोविज्ञान आदि
नवीनतम वस्तुये भी वर्णित है। दर्शन का काव्यात्मक सस्करण होकर भी उस
पर कवि के जीवनानुभव तथा व्यक्तित्व की छाया है। वास्तव मे प्रसाद का मुख्य
उद्देश्य अपनी विचारधारा की अभिव्यक्ति ही था, जिसके लिये उन्होने अत्यन्त
प्राचीन कथा को लिया, जिसमे मानव का ही विकास है। 'कामायनी' के पूर्व
मनु तथा आदि मानव की कथा इतिहास, पुराण तथा धार्मिक ग्रन्थो मे बिखरी
मिलती है। विश्व के समस्त प्राचीन धर्म किसी-न-किसी रूप मे आदि मानव
की कथा सजोये हुये है। नूह, आदम, हौवा, आदि इसी आदि सृष्टि से सम्ब-
न्धित है। प्रसाद के पूर्व काव्य के रूप मे इस कथा का प्रयोग अधिक नही

---

१०. 'He takes some great story, which has been absorbed into the prevailing conciousness of his people '
The Epic, page 39

११. Judgement in Literature—Page 67

शिव शक्ति, आत्मा परमात्मा का मिलन ल्मी का ही उल्लेख मिल्टन के पैरा-
है। श्वेताश्वत्तरोपनिपद् मे रुद्र कथा शैली के प्रोमेथियस अनबाउन्ड मे हुआ।
एको हि रुद्रो न ... । एक आभास मात्र है। तेलेगू साहित्य में अलासनी
'वशामनु सम्भवम्' मे आदि पुरुष के रूप मे मनु को ही ग्रहण
'त्या। विजयनगरनरेश कृष्णदेव का वह दरबारी कवि था। उसका काव्य मारकण्डेयपुराण की कथा के अधिक समीप है, जिसमें चौदहवें मनु 'स्वरोचिश-मनु' का उल्लेख मिलता है। उसके अनुसार एक ब्रह्मचारी प्रवर सिद्ध के आदेशानुसार हिमालय पर्वत पर जाता है, वह भटकता फिरता है कि हिम पिघलना आरम्भ हो जाता है, और किसी प्रकार भी गृह लौटना सम्भव नही प्रतीत होता। उसी अवसर पर उसकी भेंट गन्धर्वों की अप्सरा वरुथिनि से होती है, जिसका उससे प्रेम हो गया[६२]। इस कथा में भी पौराणिक चित्रण ही अधिक है। सम्भव है अन्य कवियो का ध्यान भी इस विश्व प्रसिद्ध घटना की ओर गया हो, किन्तु किसी ने उसे आधुनिकतम रूप नही प्रदान किया। प्रसाद की 'कामायनी' इस दृष्टि से नवीन प्रयास है। कथा सामग्री के अतिरिक्त चरित्र भी उन्होने प्राचीन ग्रन्थो से ग्रहण किये। मनु, श्रद्धा, इडा का नाम अनेक प्राचीन ग्रन्थो मे मिलता है। 'कामायनी' के कवि ने केवल इनके ऐतिहासिक और पौराणिक रूप का ही ग्रहण नही किया, उसने इनमे नवीन प्राण प्रतिष्ठा की और उन्हें आधुनिक रूप प्रदान किया। मनु ऋषि के साथ ही साधारण उत्थान पतन से भरा मानव भी है। श्रद्धा मातृ रूप होकर भी नारी के सम्पूर्ण सौन्दर्य से पूर्ण है। कथानक विकास के साथ पात्रो का व्यक्तित्व भी कवि की कल्पना का परिणाम है। उनके चरित्र निर्माण में प्रसाद ने विशेष सफलता प्राप्त की।

'कामायनी' के पात्रो की सृष्टि जलप्लावन घटना के आधार पर हुई। जल-प्लावन कथा का वर्णन प्राचीनतम् भारतीय ग्रन्थो मे स्पष्ट रूप से प्राप्त नही। वेदो में इस घटना का उल्लेख कालान्तर में हुआ। प्राचीन ऋग्वेद में यमयमी सम्बन्ध को लेकर एक ऋचा है

'ओ चित्सखाय सख्यावृत्यां तिर पुरू चिदर्णव जगो'

(ऋग्वेद १०।१०।)

'अर्णव' शब्द के आधार पर ही जलप्रलय की कल्पना सम्भव नही। 'वास्तव मे ऋग्वेद का समय उस जल प्रलय के समय से पहिले का है। ऋग्वेद की ऋचाओ मे उसका वर्णन नही मिलता, जैसा पीछे के अथर्व मन्त्रो मे उसका उल्लेख है। यह घटना ऋग्वेद मे पीछे की है, अन्यथा उसमें भी जल प्रलय का प्रसग आता।

---

६२ तेलेगू लिटरेचर, (पी० टी० राजू०) पृ० ३२।

अथर्ववेद (२।३५) का 'अपन्नपात' जलव्यक्ति है[६३]।' प्रसादजी ने जलप्लावन की घटना शतपथ ब्राह्मण से ग्रहण की। यह कथा अग्नि पुराण, मत्स्य पुराण महाभारत आदि मे भी वर्णित है, किन्तु लगभग सभी शतपथ की ही भाँति है।

'कामायनी' का जलप्लावन ऐतिहासिक तथा पौराणिक स्वरूप के अतिरिक्त दार्शनिक दृष्टि से भी विचारणीय है। प्राचीन आलेखो मे जलप्लावन सृष्टि के विनाश रूप में ही आता है। भारतीय दर्शन के अनुसार प्रलय के दो भेद है, प्रलय तथा महाप्रलय। प्रलय के विषय में साख्य का मत है कि तीनो गुण सत्व, रजस, तमस समानावस्था मे आ जाते है। वैशेषिको की धारणा है कि प्रत्येक वस्तु अणु-परमाणु मे परिवर्तित हो जाती है। इस स्थिति मे व्यक्ति की आत्मा गम्भीर निद्रा में निमग्न रहती है, यद्यपि पूर्वजन्म के व्यक्तिगत कर्मो का बन्धन अब भी बना रहता है। तन्त्रालोक भी इसी स्थिति का समर्थन करता है। शैवदर्शन ने प्रलय पर अधिक विचार नही किया[६४]। शैवदर्शन महाप्रलय को शकर की ही इच्छा पर अवलम्बित मानता है। क्रमिक, अक्रमिक दोनो ही शक्तियाँ उसमे वास करती है। इस दशा मे प्रत्येक वस्तु परमशिव में विलीन हो जाती है[६५]। प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। 'कर्म' ही इस महाप्रलय का कारण है। 'तिरोधान' के पश्चात् शिव के 'अनुग्रह' से ही पुनः सृष्टि का निर्माण सम्भव है। वह 'महाप्रलयान्तर सृष्टि' होती है। शैवदर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शन इसी कारण केवल प्रलय की ही सत्ता स्वीकार करते है[६६]। तन्त्रो मे नियति और स्वातन्त्र्य शक्ति को ही महत्त्व दिया गया है। उनमें 'महाप्रलय' की स्थिति मे विलीन हो जाने वाली प्रत्येक वस्तु का उद्धार किसी प्रकार भी सम्भव नही। महेश्वर पुन नवनिर्माण करते है। 'कामायनी' के जलप्लावन अथवा प्रलय का कारण अज्ञान है। सम्भवत. वह देवताओ के अत्यधिक भोग-विलास से हुआ। प्रलय के पश्चात् मनु, श्रद्धा. इडा शेष रह जाते है। इसके अतिरिक्त भी सारस्वत प्रदेश के अनेक नागरिक है। साथ ही मनु स्वयम् 'विराट' और 'विश्वदेव' की स्तुति करते है। 'चिन्ता' सर्ग के अन्त मे ही प्रलय निशा का प्रात भी होने लगता है। इस दृष्टि से 'कामायनी' का प्रलय साधारण प्रलय है। शिव का ताडव नृत्य भी

६३. 'प्राचीन आर्यावर्त और उसका प्रथम सम्राट्', लेख (कोशोत्सव स्मारक सग्रह)।

६४. अभिनवगुप्त, पृ० २३०

६५. इंडियन फिलासफी २, पृ० ७२६

६६ वेदान्त सूत्र शाकरभाष्य, ४०७

कवि ने क्रोध प्रदर्शन के रूप में ही चित्रित किया जो शतपथ ब्राह्मण मे भी मिलता है[६७]। प्रत्यभिज्ञादर्शन से अनुप्राणित रुद्र का ताण्डव और लास्य कवि ने अवश्य ग्रहण किया, किन्तु 'कामायनी' का प्रलय साधारण श्रेणी के ही अन्तर्गत है। प्रलय की दशा मे सो जाने वाले कर्म को श्रद्धा जागरण देती है और सृष्टि का आरम्भ होता है। वह वेदान्त की सुषुप्ति की भाँति है। 'पचभूत का ताण्डव नर्तन' ही 'कामायनी' का प्रलय है। उसकी समाप्ति के पश्चात् आदि शक्ति नवनिर्माण नही करती। किन्तु हिमाच्छादन धरणी से धीरे-धीरे हटने लगता है, प्रकृति पुन· जागृत हो जाती है।

चरित्र—

जलप्लावन की मूल कथा ब्राह्मणो से लेकर प्रसादजी ने पात्रो की ऐतिहासिक रूप-रेखा भी वही से ग्रहण की। चरित्रो को अधिक उदात्त स्वरूप प्रदान करने के लिये उन्होने जलप्लावन से पूर्व के ग्रन्थो का भी अवलम्ब लिया। मनु के ऋषि रूप, श्रद्धा की मातृत्व कल्पना तथा इडा के बुद्धिवाद की प्रेरणा ऋग्वेद से ही ली गई है। चरित्रो का निर्माण अधिक व्यापक क्षेत्र पर हुआ है। कथा विकास में वे ऐतिहासिक पुरुष की भाँति प्रतीत होते हैं। प्रतीक रूप में वे विशेष मनोवृत्तियो का आभास देते हे। इसके अतिरिक्त साधारणतया उनका एक विशेष व्यक्तित्व है। इस प्रकार चरित्र-चित्रण मे प्राचीन सामग्री, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा काव्य कल्पना का सुन्दर समन्वय प्रतीत होता है। कवि ने कथा में जिस प्रकार कल्पना का उपयोग किया, उसी प्रकार चरित्रो के निर्माण मे नवीन दृष्टिकोण से काम लिया। 'कामायनी' के पात्र केवल ऐतिहासिक अथवा पौराणिक बनकर नही रह जाते, वे युगो पूर्व के होकर भी नवीनतम परिस्थितियो में चलते दिखाई देते है। इतिहास के अतीत में नवीनता का सृजन एक कुशल कलाकार ही कर सकता है। 'कामायनी' के पात्रो की सजीवता, और सप्राण योजना में पूर्व और पश्चिम का योग है। पाश्चात्य चरित्र-चित्रण तथा व्यक्ति वैचित्र्य से मन् अधिक प्रभावित है। भारतीय पद्धति रस को अधिक महत्व देती है[६८]। प्रसाद ने यथार्थ और आदर्श के समन्वय से ही चरित्र-चित्रण किया। अनेक स्थलो पर बिखरी हुई पात्रो की रूप-रेखा लिये प्रसादजी ने कल्पना का सहारा लिया।

---

६७ 'कामायनी', पृ० १८५, शतपथ ब्राह्मण, १।७।४।३

६८ 'भारतीय काव्य प्रणेता रस के लिये इन चरित्र और व्यक्ति वैचित्र्यों को साधन मानते रहे, साध्य नहीं। सब प्रकार से भाव एक दूसरे के पूरक बन कर, चरित्र और वैचित्र्य के आधार पर स्पष्ट बनकर रस की सृष्टि करते है। रसवाद की यही पूर्णता है। काव्य और कला—पृ० ५४-५५

'कामायनी' में मनु के अनेक रूप है। आरम्भ मे मनु एक 'तपस्वी' के रूप में चित्रित है। वे देवताओ के ही वशज प्रतीत होते है, किन्तु देवत्व का अधिक मोह नही करते। उसकी अपूर्णता जान लेने के कारण वे उस वैभव विलास मे अधिक आस्था नही रखते। जलप्लावन के पश्चात् वच रहनेवाला यह केवल 'आदिपुरुप' नही है। वह विशिष्ट मानव अवश्य है, जो प्रलय में भी जीवित रहता है। 'चिन्ता' का मनु 'आशा' मे यज्ञ करना आरम्भ कर देता है। वह अग्नि-होत्र का अवशिष्ट अन्न भी कही दूर पर रख आता था। तपस्या मे निमग्न मनु के हृदय मे ही अनेक आकाक्षाये भी उदित होती है। एक से अनेक होने की भावना का सचार भी उनके मन मे होता है। इसी के पश्चात् उनका श्रद्धा से मिलन होता है। मनु सौन्दर्य पर भी रीझ उठते है। 'काम' और 'वासना' मे उनके साधारण मानव स्वरूप के ही दर्शन होते है। वे नारी को प्राणो के निकट पाकर जीवन की मदिरा मे उन्मत्त हो उठते है। स्वयम् उन्हे महान आश्चर्य होता है उस मादक मधुमास पर ! स्पर्श, रूप, रस, गध से पूर्ण मधुपान उनकी चेतना को भी शिथिल कर देता है। जीवन का उपभोग करने की कामना बलवती होती चली जाती है। वासना मे तो प्राण प्राणो मे समा जाने तक के लिये आकुल है। स्नेह पर एकाधिकार के कारण मनु के हृदय मे साधारण-सी ईर्ष्या का भी उदय होता है। सौन्दर्य की उपासना मे मानव आत्मसमर्पण एक क्षण के लिये करता है। मान और मनुहार भी होता है। यौवन के ज्वार के साथ ही मनु हिंसक यज-मान भी हो जाते है। यह वैदिक कर्मकाडी का विकृत रूप है। वे पशुवलि और हिंसा करते है। प्रत्येक समय आखेट खेलने मे व्यस्त रहते है। किलात और आकुलि उनका पथ प्रदर्शन करते है। वे सोमपान मे मग्न है। आकर्षण से भरे विश्व को वे भोग्यमात्र मान लेते है। यही से मनु का पतन आरम्भ हो जाता है। 'ईर्ष्या', में वे हृदय का स्वाधिकार खो बैठते है। मृगया में व्यस्त मनु को श्रद्धा का सरल विनोद भी रुचिकर नही प्रतीत होता। वे व्यक्तिवादी होकर कहते है :

> यह जीवन का वरदान मुझे
> दे दो रानी अपना दुलार
> केवल मेरी ही चिन्ता का
> तव चित्त वहन कर रहे भार।

प्रेम के विस्तार को विभाजन समझनेवाले मनु ईर्ष्या से जल उठते है। वे सुख की खोज मे निकल पडते है। 'इडा' के आरम्भ मे पश्चात्ताप करते हुये मनु अन्त में बुद्धिवाद को अपना लेते है। यहीं इडा उन्हे सारस्वत प्रदेश का प्रजापति

वना देती है। इस रूप में मनु अधिक सफल नही होते। विज्ञानवाद और भौतिकता के आधार पर नव निर्माण तथा शासन व्यवस्था करने वाले मनु जनता को सन्तुष्ट नही कर पाते। वह सम्पन्न नगरी केवल भौतिकतया ही विकसित है, उसमें प्रजा आध्यात्मिकतया पुष्ट नही। अतिचारी प्रजापति के विरुद्ध वह विद्रोह करती है। मनु की वासना न भर सकी, उन्होने इडा का भी आलिंगन करना चाहा। 'स्वप्न' की यह स्थिति 'मघर्ष' मे अधिक स्पष्ट हो गई। मनु के भौतिकवाद से प्रजा त्रस्त हो उठी। उसने विद्रोह किया। प्रजापति मनु नियामक होकर भी नियम नही मानते। प्रजा से सघर्ष में वे पराजित हुये। 'निर्वेद' में वे पुन नारी पर रीझते है, पर इस बार रूप की अपेक्षा गुण की ओर अधिक आकर्षित हुए। जीवन से अभिशप्त मानव ने नारी के वास्तविक रूप को पहचान लिया, कृतज्ञता प्रकट की, पर शीघ्र ही स्वाभाविक दुर्बलता लेकर भाग गया। 'दर्शन' और 'रहस्य' के मनु उस महान जिज्ञासु की भाँति है, जो श्रद्धा की सहायता से जीवन का रहस्य जानने की आकाक्षा रखते है। अन्त में वे महान जीवन दर्शन की स्थापना में सफल होते है। 'आनन्द' में मनु लगभग एक ऋषि के रूप मे प्रतिष्ठित है। वे एक मनस्वी है, जिनके दर्शन मात्र से ही सब पाप दूर हो जाते है। उन्होंने सारस्वत नगरवासियो को ज्ञानोपदेश देकर जीवन का सत्य वताया। प्रलय के विक्षुब्ध तपस्वी मनु आनन्द के प्रतिष्ठापक हो गये।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार मनु जलप्लावन के पश्चात् वच रहने वाले व्यक्ति है, जिन्होने इडा के सयोग मे सृष्टि का निर्माण किया। वे 'मनोरवसर्पण' स्थान पर उतरे जहा उन्होने पाकयज्ञ आरम्भ किया, यही उन्हे इडा मिली[६९]। इस कथा का समर्थन कालान्तर में निर्मित पुराणो की कथायें भी करती है। शतपथ के 'श्रद्धादेवो वै मनु' पुराणो में 'विवस्वत स्सुतो विप्र श्रद्धादेवो महाद्युति' हो जाते है[७०]। देवी भागवत (१०।१०।१), श्रीमद्भागवत (९।१। ११)[७१] शिवपुराण (उमासहिता २५।४), हरिवशपुराण (९।८), ब्रह्मवैवर्त (प्रकृति खड ५४।६३), आदि सभी मे वे 'श्राद्धदेव', रूप में प्रतिष्ठित है। शतपथ के मनु का स्पष्ट रूप नही प्राप्त होता किन्तु पुराणो के मनु सप्तम

---

६९ शतपथ ब्राह्मण, १।८।१

७० विष्णु पुराण, ३।१।३०

७१ ततो मनु श्राद्धदेव सज्ञयामास भारत
श्रद्धाया जनयामास दशपुत्रान्स आत्मवान्। (९।१।११)

मन्वन्तर तथा सूर्यपुत्र है। वंश-परम्परा पर दृष्टि डालने मे मनु तथा श्रद्धा के अनेक पुत्रो की सूची प्राप्त होती है। श्रद्धादेव मनु के दस पुत्र इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूषय, नरिष्यत, पृवध्र, नाभाग, कवि आदि का जन्म श्रीमद्भागवत मे प्राप्त है। प्रसाद की दृष्टि सम्भवत केवल इक्ष्वाकु पर ही रही। भारत के प्रसिद्ध इक्ष्वाकुवंश से ही उसका सम्बन्ध है। इसी देश मे मानवता का विकास इसका आभास देता है। कवि की राष्ट्रीय भावना भी इसी का परिचायक है। 'कामायनी' का आरम्भिक रूप इन्ही पौराणिक गाथाओ से प्रभावित है। मनु को वेदो मे भी 'प्रथम अग्निहोत्र' करनेवाला कहा गया।

'येभ्यो होत्रा प्रथमामायेजे मनु समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभि'
त आदित्या अभय शर्म यच्छत सुगा न कर्त सुपथा स्वस्तये।
य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगत मन्तव
ते न' कृतदकृतादेनसस्पर्यतेया देवास पिपृता स्वस्तये[७२]।

ऋग्वेद १०।६३।७,८

इन्ही मनु के द्वारा अनेक अन्य यज्ञ भी हुये। वे ही जड चेतन सृष्टि के नियामक भी है[७३]। 'कामायनी' के मनु तप करने के साथ ही विश्वदेव, विराट सविता के प्रति एक जिज्ञासा भी रखते है। आस पास बिखरी हुई प्राकृतिक विभूति उनमे कुतूहल का सचार करती है। अनायास ही उनके मन मे उठने वाले प्रश्न मे देवत्व की अपूर्णता से प्राप्त एक नवीन ज्ञान है। वे अपनी समस्त चेतना, जिज्ञासा से पूछ उठते है—

विश्वदेव, सविता या पूषा
सोम, मरुत, चंचल पवमान,
वरुण आदि सब घूम रहे है
किसके शासन में अम्लान।

सम्भवत. किसी युग मे इन प्रकृति शक्तियो के नियामक का रहस्य बोध न होने के कारण इन्ही को देवता रूप में स्वीकार किया गया। समस्त प्रकृति ही उपासना का विषय बन गई। इन्द्र, वरुण, अग्नि, सूर्य आदि का पूजन होने लगा। मनु 'अनन्त रमणीय' को देखकर यह भी जान जाते है कि .

हे विराट! हे विश्वदेव! तुम
कुछ हो ऐसा होता भान!

७२. 'कामायनी' पृ० ३२
७३. ऋग्वेद १।४४।११, ३।३४।३ आदि

प्रसाद जी के इस विराट का जिज्ञासु मनु ऋग्वेद के उपासकों के अधिक समीप है। ऋग्वेद में प्रकृति की उपासना में अनेक ऋचायें प्राप्त है। एक स्थल पर कहा गया है .

> हिरण्यगर्भ सनवर्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत्
> सदाधार पृथ्वीं द्यामुतेमा कस्मै देवाय हविषा विधेम
>
> ऋग्वेद १०।१२१।१

आगे की पक्तियो में इसी 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' की पुनरावृत्ति मिलती है। अन्य वैदिक ऋचाओ में भी देवताओ की सामूहिक उपासना का स्वर प्राप्त होता है। 'मनु' की जिज्ञासा मिश्रित कल्पना वैदिक भावना के निकट है। 'कामायनी' का मनु वैदिक मनु की भाति ही यज्ञ करता है। ग्रिफिथ ने ऋग्वेद के अनुवाद मे भी उन्हे 'मानवता का पिता' स्वीकार किया है[७४]। श्रद्धा मनु के जीवन मे आकर उन्हें इस पद पर प्रतिष्ठित कर देती है। मनु के जीवन में श्रद्धा का अत्यधिक महत्व है। इसी के पश्चात् मनु का हिंसक स्वरूप सम्मुख आता है। शतपथ ब्राह्मण में मनु किलात और आकुलि के साथ हिंसात्मक प्रवृत्तियो में उन्मुख होते है[७५]। श्रद्धा ने मनु की आसुरी वृत्तियो को रोकने का प्रयास भी किया। इस प्रकार देव-दानव सघर्ष का एक सांकेतिक रूप मिल जाता है, जो भारतीय ग्रन्थो में अनेक रूपो में वर्णित है। मनु के उच्छृङ्खल स्वभाव के चित्रण में कवि ने कल्पना का अधिक अवलम्ब ग्रहण किया। मनु 'ईर्ष्या' सर्ग में श्रद्धा का परित्याग कर चल देते है। इडा उन्हे प्रजापति बना देती है। प्रजापति प्राचीन काल में प्रजा का नियमन करता था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार भी मनु प्रजापति है[७६]। पुराणो मे भी उन्हे प्रजापति कहा गया[७७]। मनुस्मृति मे आकर उनकी पूर्ण प्रतिष्ठा हुई। वे समाज मे शान्ति और व्यवस्था स्थापित कर देते है। उन्होने धर्म का प्रणयन भी किया। मनुस्मृति में पूर्ण राज-व्यवस्था का वर्णन मिलता है। विवस्वान मनु प्रजापति बनकर सब सचालन करते है[७८]। यद्यपि ऋग्वेद में भी प्रजापति का उल्लेख है, किन्तु प्रसाद की राजनैतिक रूपरेखा मनुस्मृति से प्रभावित है। 'कामायनी' मे भौतिक हलचल मे

---

७४ द हिम्स् आव ऋग्वेद, वाल्यूम १, पृ० ६१।

७५ किलाताकुली इतिहासुर ब्रह्मणो सुत।

७६ प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ। १।७।४।१

७७ वाजसनेयि संहिता, ११।६६

७८ मनुस्मृति ७।३

ग्रस्त देश मे मनु नवीन व्यवस्था स्थापित करते है। महाभारत के शान्ति पर्व में भी मनु को यही उत्तरदायित्व सौंपा गया था। मनु को प्रजापति रूप मे चित्रित कर कवि ने आधुनिक समस्याओ पर भी विचार कर लिया। इसी कारण मनु-स्मृति का 'सर्वतेजमयो नृप' राजभक्ति पाने में सफल होता है, पर सारस्वत प्रदेश का प्रजापति नही। कथा रूप में 'कामायनी' का प्रजापति शतपथ ब्राह्मण की भाँति है, किन्तु अपने गुणधर्म में वह मनुस्मृति के समीप होकर भी कवि की कल्पना से समन्वित है। प्रजापति यहा अतिचारी भी हो जाता है, जिसके विरुद्ध प्रजा ने विद्रोह किया। इडा बारम्बार प्रजापति को समझाती है, पर वे नही मानते। अन्त मे भौतिकवाद पर अवलम्बित मनु का प्रजातत्र ध्वस हो जाता है। प्रसादजी ने भौतिकवाद की कुरीतियो का दिग्दर्शन कराने के लिये यह कल्पना की। मनु का अन्तिम स्वरूप ऋषि के अधिक समीप है। आरम्भ का वैदिक स्वरूप पुन प्रतिष्ठित होता है। 'चिन्ता' के जिज्ञासु 'मनु' 'आनन्द' मे स्वयम् सारस्वत नगर निवासियो को जीवन दर्शन समझाते है। वे मुसकराकर 'अभेद सागर' की ओर सकेत करते है। वेद में मनु ऋषि रूप में प्रतिष्ठित है। वे आनन्द के मार्ग का पथ प्रदर्शन भी करते है। उनमे प्रार्थना की गई। ऋषि इसका उद्धरण देते है कि मनु पर विश्वदेवा ने कृपा की[७९]। यही नही, उन्होने मनु को अपना पिता भी स्वीकार किया, और उन्ही का अनुसरण करने की कामना प्रकट की[८०]। ऋषिवर्ग मनु को आदर्श रूप में ही स्वीकार करता है। वे ब्रह्म तक जाने का मार्ग भली भाँति जानते है। वेदो मे मनु का यह उदात्त स्वरूप पौराणिक गाथाओ मे भी प्राप्त हो जाता है। कथा के कारण वे यहा केवल ऋषि ही नही रह जाते, वरन् अन्य लौकिक गुणो से भी समन्वित रहते है। 'कामायनी' में मनु अपने अन्तिम रूप मे अद्वैत भावना तथा आनन्द-वाद के प्रतिष्ठापक ही दिखाई देते है। सारस्वत निवासी भावी मानवता के रूप मे उन्ही को आदर्श स्वीकार कर लेते है। इस प्रकार आनन्दवादी, आत्मवादी मनु वैदिक ऋषि की भाँति स्थान पाते है। मनु के विभिन्न स्वरूपो के निर्माण मे प्रसादजी ने यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री का उपयोग किया। वह साधारण मानव, प्रजापति, प्रेमी, हिंसक, ऋषि सभी कुछ है। अन्त मे उनका उदात्ती-करण कर दिया गया।

श्रद्धा—

श्रद्धा ही कामायनी है। आदि से अन्त तक वही मनु का पथ प्रदर्शन करती है।

---

७९. ऋग्वेद ८।२०

८०. ऋग्वेद ८।३०

विना उसके मन् का कोई अस्तित्व नही । वह शैवदर्शन की उस 'माया' की भाँति है, जो आत्मा को शक्ति प्रदान करती है। मनु और श्रद्धा का सम्बन्ध ऋग्वेद में पति-पत्नी रूप में मिल जाता है[८१]। 'कामगोत्रजा श्रद्धा नामर्पिका' के अनुसार श्रद्धा कामायनी भी है। वह काम के गोत्र की है। पुराणो मे श्रद्धा से काम की उत्पत्ति मानी गई। विष्णु, वायु, मार्कण्डेय आदि में इसका उल्लेख है। 'श्रद्धा या आत्मज कामो दर्पो लक्ष्मी सुत स्मृत' आदि से काम की उत्पत्ति श्रद्धा द्वारा हुई[८२]। इस विरोध से काम के व्यापक महत्व का आभास मिल जाता है। काम की परम्परा सभवत इतनी विस्तृत होगी कि उसमे इस प्रकार की स्थिति हो सकती है। श्रद्धा की वशपरम्परा में अनेक सतानो का उल्लेख प्राप्त होता है। प्रसाद ने श्रद्धा के 'कामायनी' रूप को ही ग्रहण किया। शतपथ ब्राह्मण के 'श्रद्धा-देवो वै मनु.' का ही स्वरूप भागवतपुराण में भी प्राप्त है। प्रसाद ने श्रद्धा के ऐतिहासिक स्वरूप की अपेक्षा उसके गुणो पर ही अधिक ध्यान दिया। वह काव्य का सर्वोत्तम चरित्र है। समस्त कल्पना उस पर ही आश्रित है। ऋग्वेद में श्रद्धा की भावमूलक व्याख्या है .

> प्रिय श्रद्धे ददत प्रिय श्रद्धे ददत प्रियं श्रद्धे दिवासत.
> प्रिय भोजेषु यज्वस्विद म उदित कृधि। (१०।१५२।२)

श्रद्धा की स्तुति अन्यत्र भी मिलती है। वह सूर्य की पुत्री रूप में ऋग्वेद में प्रतिष्ठित है[८३]। उपनिषदो का दर्शन श्रद्धा पर अवलम्बित है। छान्दोग्योपनिषद् 'आस्तिक बुद्धि' कहकर उसे जीवन के लिये आवश्यक मानता है। भारतीय दर्शन और विचारधारा मे श्रद्धा उस भावना के रूप में स्थान प्राप्त करती है, जिसके विना आनन्द की प्राप्ति सम्भव नही। कथा योजना में प्रसाद ने इसी आदर्श की पूर्ति के लिये उसके ऐतिहासिक स्वरूप की अपेक्षा भावात्मक पक्ष को प्रधानता दी। 'कामायनी' मे श्रद्धा अमृत धाम, सर्व मगले आदि महान उपाधियो से विभूषित है। कवि ने इस निर्माण में इतिहास की अपेक्षा दर्शन की अधिक सहायता ली। वेदो मे श्रद्धा 'ऋषिका' है। उपनिषद् उसे 'आस्तिक बुद्धि' की मानते है। शैव-दर्शन उसमे मातृत्व की कल्पना करता है। गीता ने उसके तीन विभाजन कर दिये। श्रद्धा के अभाव में ही मनु का जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। 'कामायनी' की श्रद्धा केवल दर्शन का रूपान्तर मात्र नही रह जाती। उसमे नारी-

---

८१ ऋग्वेद १०।११।१५१

८२. कूर्म पुराण ८, तैतरीय ब्राह्मण २।८।८।८

८३ ऋग्वेद ९।११३।३

सुलभ सौन्दर्य, मादकता और वात्सल्य भी है। वह एक सचेतन शक्ति सी बन गई है। उसमें श्रद्धा का तत्व अपने सर्वोत्तम स्वरूप मे निहित है। न्यू टेस्टामेन्ट मे भी स्वीकार किया गया है कि मनुष्य श्रद्धा, विश्वास से गतिमान होता है, दृष्टि से नही[८४]। कवीन्द्र रवीन्द्र ने श्रद्धा की कल्पना उस पक्षी की भाँति कर ली जो प्रकाश का आभास पाकर अन्धकारमय रजनी मे ही गाता रहता है। प्रसाद ने श्रद्धा अथवा कामायनी के रूप मे 'शक्तिरूपा' को प्रस्तुत किया। मनु श्रद्धा के द्वारा ही जीवन के आनन्दवाद तक जाता है। श्रद्धा के गुण का ही एक आभास ब्रह्मवादी के शब्दो मे प्राप्त होता है। वह मणिमाला से कहता है, "मा तुम शक्तिरूपा हो, अन्तर्निहित आनन्द की अग्नि प्रज्ज्वलित करो। सब मलिन कर्म उसमे भस्म हो जायगे। उस आनन्द के समीप पाप आने से डरेगा[८५]।" 'कामायनी' मे श्रद्धा ऋग्वेद की पवित्रता, गीता की कर्मठता, शैवागम की उच्चता आदि लेकर प्रस्तुत हुई। वह दर्शन के मथन का रत्न है। वह हृदय की प्रतिनिधि है।

इड़ा—

इडा सारस्वत प्रदेश की रानी है। वह मनु को प्रजापति बनाती है। शतपथ ब्राह्मण की कथा का आंशिक रूप ही प्रसाद ने ग्रहण किया। 'कामायनी' में वह मनु की 'दुहिता' नही है। उसका जन्म अवशिष्ट अन्न से भी नही हुआ। वह जलप्लावन के पश्चात् ही मनु को नही प्राप्त होती। कवि ने नैतिकता तथा स्वाभाविकता की दृष्टि से इस कथांश को त्याग दिया। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार मनु ने सन्तान की कामना मे पूजन तप आरम्भ किया। जल मे घृत, दधि, अभिक्षा आदि की आहुति होने लगी। एक वर्ष पश्चात् एक बाला की उत्पत्ति हुई। उसके चरणो में घृत था। मार्ग मे उससे मित्र वरुण की भेंट हुई। उसने स्वयम् को मनु की दुहिता कह कर उन दोनो के भाग को नही स्वीकार किया। मनु के निकट आकर उसने स्वयम् को पुत्री कहा। अनन्तर मनु इडा से सृष्टि का विकास हुआ[८६]। पुराणो मे इडा की उत्पत्ति भी उसी प्रकार हुई, किन्तु यहा मनु ने पुत्र की इच्छा से मित्रावरुण के अंश की आहुति यज्ञ मे दी। इडा ने मित्रावरुण की कन्या कह कर बुध से सम्बन्ध किया, उसी से पुरुरवा हुआ। वही सुद्युम्न बन गई। श्रीमद्-

---

८४ "We walk by Faith, not by sight"
New Testament, II Corinthians V—7.

८५ इरावती, पृष्ठ ५९

८६ शतपथ ब्राह्मण, १।८।१।७, ८, ९, १०

भागवत (९।१), हरिवंश (१०), शिव (उमासहिता, ३६), ब्रह्मपुराण (७) आदि में यह कथा प्राप्त है। 'कामायनी' में स्वाभाविक रीति से मनु मलयाचल की वाला के सौन्दर्य की ओर आकृष्ट हो जाते हैं। शतपथ ब्राह्मण में मनु अत्यधिक सुन्दरी पुत्री को देखकर आलिंगन करने लगे थे, तभी रुद्र ने तृतीय नेत्र खोला था। 'कामायनी' में भी 'आत्मजा प्रजा' के आलिंगन के ही कारण रुद्र हुकार उठे[८७]। 'स्वप्न' में रुद्र का ही क्रोध दिखाई देता है, किन्तु 'सघर्ष' में समस्त प्रजा अपनी रानी पर अत्याचार होते देखकर विद्रोह कर देती है। वह कहती है

आज बंदिनी मेरी रानी इडा यहा है
ओ यायावर! अब तेरा निस्तार कहा है।

शतपथ ब्राह्मण में केवल देवता ही रुष्ट हुये। 'कामायनी' की प्रजा के विद्रोह का राजनैतिक कारण भी है। मनु ने यत्रो से उनकी प्रकृत शक्ति छीनकर शोषण कर उनके जीवन को जर्जर कर दिया था। आगे चलकर प्रसाद ने इडा को करुणा से मडित कर दिया। वह श्रद्धा के समक्ष स्वय को ही अपराधी मान लेती है। इडा इस दृष्टि से शतपथ के निकट है। वहां इडा और श्रद्धा लगभग बहिन के ही समान हैं बुद्धि के प्रतिनिधि रूप मे उसका चित्रण करने की प्रेरणा प्रसाद को 'इडामकृण्वन्मनुष्यस्य शासनीम्' आदि ऋग्वेदिक मत्रो से प्राप्त हुई[८८]। 'इडा शब्द की व्युत्पत्ति से भी बुद्धि, वाणी आदि का आभास मिलता है। कोष ग्रन्थो में उसका सम्बन्ध विद्या, बुद्धि से स्थापित हो जाता है[८९]।' वश-परम्परा के अनुसार बुद्धि अथवा इडा पुराणो में श्रद्धा की भगिनी है। दपती स्वायभुव तथा शत-रूपा से चार सन्तान हुई। कन्या प्रसूति ने दक्ष से परिणय किया, उनसे चौवीस कन्याये हुई। श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, मेधा, पुष्टि, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और कीर्ति तेरह कन्यायो से धर्म ने विवाह किया। धर्म ने बुद्धि मे बोध नामक बालक को जन्म दिया। इस कथा का वर्णन विष्णु, वायु, कूर्म, मार्कण्डेय आदि पुराणो में मिल जाता है[९०]। सारस्वत प्रदेश की रानी रूप में इडा का परिचय प्राचीन ग्रन्थो में प्राप्त नही। वेदो मे इसका अन्य रूप मिलता है[९१]। यह 'प्रजायुक्त' एक स्थान पर कही गई है। सम्भवत वह कवि की

---

८७ 'कामायनी', पृष्ठ १८५

८८ कामायनी का आमुख, पृष्ठ ७

८९ गो भू वाचस्त्विडा इला। अमरकोष।
इला कलत्रे सौमम्य धारिण्या गवि, वाचि च। मेदिनी कोष।

९० विष्णु० १-७। वायु० १०। कूर्म० ८। मार्कण्डेय० ५०

९१ 'अस्य प्रजावती गृहे असचन्ती दिवे दिवे इडा धेनमती दुहे', ऋग्वेद ८।११।४

कल्पना है। बुद्धिवाद को अपनाकर मनु सारस्वत प्रदेश के प्रजापति हो गये। 'बुद्धि का विकास, राज्य स्थापना इत्यादि इडा के प्रभाव से मनु ने किया।' प्रसाद ने इडा के रूप की कल्पना इसी बुद्धिवाद के आधार पर की। 'बिखरी अलकें ज्यो तर्क जाल' उस बुद्धिमयी का चित्र प्रस्तुत कर देती है। उसके सौन्दर्य में बुद्धि का आभास मिल जाता है :

वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखड सदृश था स्पष्ट भाल

* * *

वक्षस्थल पर एकत्र धरे ससृति के सब विज्ञान ज्ञान।

मनु तथा इडा सघर्ष की प्रेरणा शतपथ मे वर्णित वाक् तथा मन के वाद-विवाद से प्राप्त हुई। वे दोनो ही अपने महत्व की स्थापना का प्रयत्न करते है[१२]। कवि ने इसी वाद विवाद को काव्यात्मक स्वरूप प्रदान किया। त्रिवली, त्रिगुण तरगमयी का स्पष्ट उल्लेख मूल ग्रथो में उपलब्ध नही। ऋग्वेद में सरस्वती, इडा, भारती का वर्णन एक साथ हुआ है। वे तीनो ही देविया है[१३]। कवि की इडा मे सभी का समन्वय प्राप्त हो जाता है। नारी के सौन्दर्य की चर्चा करते समय प्राचीन कवियो ने उसके शरीर मे 'तीन' 'वल' का भी वर्णन किया है। स्वय कृष्ण को भी 'त्रिभगीलाल' की सज्ञा दी गई। इस 'चचल मलयाचल की वाला' के प्रति मनु को आकर्षण था। 'इडा' के चरित्र-निर्माण मे प्रसाद को कल्पना का अधिक अवलम्ब ग्रहण करना पडा।

श्रद्धा मनु के सम्बन्ध का सामीप्य विद्वान् यमी यम कथा से भी स्थापित करते है। उनके अनुसार यम यमी का सम्बन्ध भी लगभग 'कामायनी' के मनु और श्रद्धा की भाँति है। अनेक प्राचीन ग्रथो मे बिखरी हुई कथा मे तारतम्य स्थापित करने के लिये प्रसाद ने यम यमी कथा से भी परोक्ष प्रेरणा प्राप्त की। मनु और यम दोनो ही विवस्वान पुत्र, ऋषि, प्रथम यज्ञकर्ता, मानव के पिता, प्रथम मनुष्य आदि रूपो मे प्रतिष्ठित है। उनमे दो-चार विभेद भी है। श्रद्धा और यमी दोनो सूर्य कुमारी है। घटना की दृष्टि से भी 'कामायनी' के कई वर्णन यम यमी कथा के निकट प्रतीत होते है[१४]। स्वयम् प्रसाद ने 'आमुख' में कोई सकेत नही किया, इस कारण दोनो कथाओ मे सामीप्य स्थापित करना तथा प्रभाव प्रदर्शन सम्भव नही। इसी प्रकार पुरुरवा उर्वशी की कथा को इडा मनु के

---

१२. शतपथ ब्राह्मण ४।५

१३. ऋग्वेद २।३।८

१४. कामायनी सौन्दर्य, पृष्ठ १७७

निकट रखना भी कठिन है। प्रसाद ने सम्बन्ध निर्वाह के लिये प्राचीन कथा का अवलम्ब अवश्य ग्रहण किया, किन्तु उसे अधिक-से-अधिक मानवीय बनाने का प्रयत्न किया। इसी कारण इडा और कुमार तथा इडा और श्रद्धा के सम्बन्ध अधिक स्पष्ट न हो सके। प्राचीन आलेखो में इडा और श्रद्धा भगिनी रूप में चित्रित है। 'कामायनी' मे वे एक दूसरे से विरोधी प्रकृति की है। 'दर्शन' सर्ग मे उनका पारस्परिक सद्भाव बढ जाता है, किन्तु कवि ने सम्बन्ध को स्पष्ट नही किया। कुमार अथवा मानव को भावी मानवता के प्रथम प्रसून रूप मे कवि ने स्थान दिया है। ऋग्वेद मे नाभानेदीष्ठ अथवा मानव ही मनु का पुत्र है[९५]। मनु की अनेक सन्तानो मे से 'कामायनी' मे केवल एक ही को ग्रहण किया गया। मनु का पुत्र मानव तथा अन्त मे मानवता का विकास एक रूपक रूप मे सार्थक है। इडा और कुमार का सम्बन्ध भी स्पष्ट न हो सका। ऐतिहासिक प्रमाण भी इस विषय में मौन है। कामायनीकार ने भी इस सम्बन्ध का सविस्तार उल्लेख नही किया।

'कामायनी' की कथा योजना का आधार भारतीय ग्रन्थो में बिखरी हुई सामग्री है। 'आमुख' में शतपथ ब्राह्मण, ऋग्वेद, छादोग्य उपनिषद् आदि का उल्लेख स्वयम् कवि ने किया। इसके अतिरिक्त अन्य प्राचीन ग्रन्थो में भी इसी कथा मे सम्बन्धित घटनायें प्राप्त होती है। कवि ने वास्तव में एक बिखरी हुई सामग्री का प्रयोग किया। पात्रो की ऐतिहासिकता को जीवित रखने के साथ ही उसे उनमे नवीनता तथा प्राण प्रतिष्ठा भी करनी थी। सजीवता की रक्षा के लिये प्रसाद ने उनमें भावो को सगृहीत कर दिया। उनकी व्यक्तिगत चारित्रिक विशेषतायें उन्हे प्रतिनिधित्व प्रदान करती है। 'कामायनी' एक सुन्दर रूपक के रूप में भी प्रस्तुत हो सकती है। मनु मन का प्रतीक है। श्रद्धा उसका हृदय और इडा बुद्धि पक्ष है। श्रद्धा का वास्तविक मूल्य न जानने वाला मन इधर उधर भटकता है। अन्त मे इसी के द्वारा उसे आनन्दप्राप्ति होती है। 'कामायनी' की कथा-योजना इतनी प्रौढ एवम् सुन्दर है कि उसको अनेक रूपो में प्रस्तुत किया जा सकता है। वह आदि मानवता का विकास है। एक मनोवैज्ञानिक रूपक की दृष्टि से उसमे मनोविकारो की क्रमिक व्यवस्था भी प्राप्त हो सकती है। मानवता के इतिहास मे इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। मनु का अन्तर्द्वन्द्व एक साधारण मानव का सघर्ष सा प्रतीत होता है। बुद्धि के द्वारा जीवन में आनेवाली अनेक विभीषिकाये भी काव्य मे चित्रित हुई है। 'कामायनी' कवि की अन्तिम और अन्यतम

---

९५ The Hymns of the Rigveda II—Page 167

साधना का परिणाम है। उसमे एक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक परम्परा को बाधने का प्रयत्न प्रसाद ने किया है। महान काव्यो की कथायोजना मे घटनाओ की प्रधानता मिलती है। 'कालिदास' का 'रघुवश' इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु से लेकर अग्निवर्ण तक की दीर्घ परम्परा का समावेश उन्होने किया। पाश्चात्य काव्यो मे भी वस्तु अथवा सामग्री अधिक रहती है। दान्ते की डिवाइन कामेडी वर्णन की दृष्टि से कवि की महान वर्णनात्मक शक्ति का परिचायक है। 'कामायनी' की घटना इतनी विस्तृत नही। वह इंगितो के द्वारा आगे बढती है। उसमे दीर्घता की अपेक्षा गाम्भीर्य अधिक है। 'रघुवश' यदि एक विस्तृत राजपथ है, तो कामायनी एक मनोरम वीथी। राजपथ के सौन्दर्य का परिचय दूर तक चले जाने मे प्राप्त हो जाता है, किन्तु वीथी की सुकुमार शोभा ठहर-ठहर कर देखनी पडती है, तब जी भरता है।

कामायनी का चिन्तन

काव्य और चिन्तन—

प्रसादजी मननशील कलाकार हैं। उनका गम्भीर अध्ययन काव्य में आभासित होता रहता है। प्राचीन भारतीय ग्रथो से उन्होने 'कामायनी' कथा की प्रेरणा प्राप्त की, इसके अतिरिक्त उसके दार्शनिक निरूपण में भी प्राचीन भारतीय दर्शन का योग है। काव्य में चिन्तन पक्ष ही जीवन की समस्याओ पर विचार करता है। आदि मानव के उत्थान पतन का चित्रण करते समय कवि ने उसी के द्वारा अपने चिन्तन को प्रस्फुटित किया। चिन्तन कवि के मनन का परिणाम होता है। वह उसके मस्तिष्क से अधिक सम्बन्ध रखता है। भावुकता और बौद्धिकता के दोनों पक्षो का समन्वय कर ही कवि काव्य रचना करता है। उसका हृदय भावुकता, कल्पना की ओर जाता है किन्तु बुद्धि की प्रवृत्ति अन्वेषण की ओर अधिक रहती है। प्रत्येक वस्तु, स्थिति पर विचार करने के पश्चात बुद्धि किसी निष्कर्ष पर पहुँचती है। कवि इसी निष्कर्ष को काव्य में स्थान देता है। अपनी इस क्रिया मे वह साधारण प्रचारक अथवा उपदेशक नही हो जाता। समस्त चिन्तन, भावना और कल्पना के आवरण से आवृत रहता है। इस आवरण को हटा देने से ही उस गम्भीर दार्शनिक तथ्य एवम् चिन्तन का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। भाव और चिन्तन पर विशेष जोर देते हुये कोलरिज ने कहा था, "कवि के हृदय और मस्तिष्क में निकटतम समन्वय तथा प्रकृति की विशाल विभूति से सामीप्य होना चाहिये [१]।" समन्वय के ही कारण काव्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। कवि एक साथ ही गायक, भावुक, शिक्षक होता है। उसकी सृष्टि का विस्तार अधिक रहता है। शैली ने इसी कारण कवियो को 'ससार के अस्वीकृत नियामक' का महत्त्वपूर्ण पद प्रदान किया है। उसके अनुसार कविता समस्त ज्ञान का केन्द्र तया प्रसार है[२]। काव्य की इन विस्तृत परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कवि कर्म में अनेक वस्तुओ का समा-

---

१ A poet's heart and intellect should be combined, intimately combined and unified with the great appearances of nature

२ "It is atonce the centre and circumference of knowledge"— Shelley

हार सम्भव है। कवि अपने अध्ययन के द्वारा इस दृष्टिकोण का व्यापक प्रसार करता है। यो तो प्रत्येक कवि का व्यक्तिगत दर्शन और चिन्तन होता है किन्तु अनुभवी तथा अध्ययनशील कलाकार चिन्तन के क्षेत्र मे आगे बढ जाता है।

काव्य में किसी ज्ञानराशि को समविष्ट कर देना किसी कुशल कलाकार का ही कार्य है। अन्य व्यक्तियो की भाति उसे सिद्धान्त प्रतिपादन, विचार प्रदर्शन का अवसर अधिक नही प्राप्त होता। वह परिव्राजक, उपदेशक नही बन सकता। उपन्यास के लम्बे वक्तव्यो तथा नाटक के कथोपकथनो का अवलम्ब उसे प्राप्त नही। उसे अत्यन्त सूक्ष्म और सांकेतिक शैली से कार्य करना पड़ता है। कल्पना के झीने आवरण मे चिन्तन को इस प्रकार रखना पडता है कि सूर्य का प्रकाश पाते ही पारद की भाँति प्रकाशित हो जाय। भावना के आधार पर सृजन करनेवाले कवि को काव्य में स्थायित्व तथा उपादेयता लाने के लिये चिन्तन की आवश्यकता होती है। कवि इस अवसर पर शिक्षक हो जाता है[3]। चिन्तन भावना का ही अधिक बौद्धिक रूप है। ध्यान रखने की बात यह है कि बौद्धिक प्रवृत्ति से पूर्ण चिन्तन कही मूल भावो पर आरोपित न हो जाय अन्यथा कवि उपदेशक हो जायगा। सांकेतिक एव सूक्ष्म शैली का प्रयोग करने के अतिरिक्त कवि को ध्वनि और लक्षणा का भी अवलम्ब ग्रहण करना पडता है। काव्य मे लक्षण ध्वनि और नाद सौन्दर्य का विशेष महत्त्व है। साधारण लेखक जिस आशय की अभिव्यक्ति अभिधा से करता है, कुशल कलाकार उसी के लिये लक्षणा और व्यजना का प्रयोग करता है[4]। जीवन और जगत से प्रेरणा ग्रहण करनेवाला कवि अपने चिन्तन के द्वारा एक प्रकार का प्रतिदान करता है। वह ससार के अणु-अणु से प्रेरणा प्राप्त करता है, अन्त मे काव्य के चिन्तन से उसे एक नवीन आदर्श लौटा देता है। कवि और जगत का यह विनिमय चिन्तन द्वारा होता है। "भाव को अपना बनाकर सर्वसाधारण का बना देना यही साहित्य है, यही ललित कला है[5]।" जिस कवि का चिन्तन जितना ही अधिक प्रौढ और विस्तृत होता है वह उतना ही अधिक दीर्घजीवी होता है। यदि भाव काव्य की प्रेरणा और रस आत्मा है तो चिन्तन उसका शरीर। स्वस्थ जीवन दर्शन, गम्भीर अध्ययन चिन्तन को चिरन्तनता प्रदान करते है।

---

३. 'The poet is a teacher.'—Wordsworth.

४. 'तत्र संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा' .... साहित्य दर्पण।

५. साहित्य, पृष्ठ १५—'सर्वसाधारण की वस्तु को विशेष रूप मे अपनी बनाकर फिर उसी प्रकार उसको सर्वसाधारण को बना देना साहित्य का कार्य है।'—रवीन्द्र।

प्रसाद जी अध्ययनशील व्यक्ति थे। 'कामायनी' का कथानक स्वयम् इस सत्य की पुष्टि करता है। उन्होंने इसकी कथायोजना में ही वेद, पुराण, ब्राह्मण आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थो की सहायता ली। अत्यन्त प्रसिद्ध कथा को नवीन रूप प्रदान करने मे उन्होने चिन्तन पक्ष को अत्यधिक प्रौढ बनाया है। 'कामायनी' का चिन्तन ही उसका प्राण है। जलप्लावन और मानवता के इतिहास को दृष्टि में रखकर जिन ग्रन्थो का निर्माण विश्वसाहित्य में हुआ, उनमें से प्राय सभी धर्म इतिहास आदि की कोटि मे आ जाते है। इस इतिहास प्रसिद्ध घटना का काव्यात्मक सस्करण 'कामायनी' ने प्रस्तुत किया। केवल ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत कर देना मात्र कवि का कर्म नही है, उसका पर्यवेक्षण तथा भावी मानवता के लिये सदेश दान भी प्रसाद का प्रयोजन है। मानव के ही आदि रूप को लेकर उसका 'मनोवैज्ञानिक इतिहास' प्रस्तुत करते हुये उन्होने अनेक समस्याओ को उठाया है, और स्वयम् उसका समाधान भी किया। इस चिन्तन में प्राचीन भारतीय दर्शन से लेकर आधुनिक मनोविज्ञान तक आ जाते है। कवि ने पात्रो को मासलता प्रदान करने का प्रयत्न किया। प्राचीनतम व्यक्तियो के द्वारा ही उसे अपने युग का दिग्दर्शन भी कराना था। उन्होने एक महान कलाकार की भाँति युगों की बिखरी हुई विभूति को एक सूत्र में बाँध दिया। कथा-योजना की इस क्षमता के साथ ही प्रसाद को चिन्तन का भी बल प्राप्त था। नाटको में इतिहास के भग्नावशेषो पर निर्मित एक नवीन चिन्तन देखा जा सकता है। 'कामायनी' मे भी इतिहास के द्वारा ही कवि ने चिन्तन पक्ष का निर्माण किया। स्वयम् अरस्तू ने अपने काव्य-शास्त्र में इतिहासकार और कवि का अन्तर स्पष्ट करते हुये कहा है कि, "काव्य इतिहास की अपेक्षा अधिक दार्शनिक तथा गम्भीर होता है। काव्य सार्वभौमिक वस्तु को ग्रहण करता है, इतिहास विशेषोन्मुख होता है।" प्रसाद भारतीय इतिहास मे दार्शनिक प्रवृत्तियों का ग्रहण ही अधिक करते है, क्योकि इतिहास की शुष्कता में दर्शन के द्वारा ही सरसता लाना सम्भव है। कामायनी का चिन्तन पक्ष प्रौढ एवम् व्यापक है।

देवत्व और दानवत्व—

कामायनी मानवता के रूपक का चित्रण करती है। उसकी प्रमुख समस्या मानव है। आरम्भ से अन्त तक मनु ही रगमच पर दिखाई देता है। स्वयम् कवि ने कहा है

चेतना का सुन्दर इतिहास
अखिल मानव भावो का सत्य

विश्व के हृदय पटल पर दिव्य
अक्षरों से अंकित हो नित्य

मानवता की प्रतिष्ठा कवि ने एक क्रमिक विकास द्वारा की है। आरम्भ में देव सृष्टि के विनाश का चित्र है। देवताओं की रूपरेखा प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में अनेक रूपों में प्राप्त है। सृष्टि का विभाजन ही देव-दानव के आधार पर किया गया। इन्द्र देवताओं के सम्राट् माने गये तथा समय समय पर अनेक असुरों ने अपने पक्ष का प्रतिनिधित्व किया। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर देवताओं का सर्वप्रथम स्वरूप ऋग्वेद में प्राप्त होता है। उनके अपार बल के सम्मुख दानव एक क्षण भी नहीं ठहर पाते, द्यावापृथ्वी भी उनसे परास्त है, पृथ्वी में कम्पन मच जाता है (ऋ० २।१२।१३)। यह समग्र विश्व देवेन्द्र के अधिकार में है (ऋ० ३।३०।५)। देवराज सुवर्ण आभूषण पहिनकर आकाश में नक्षत्र की भाँति प्रकाशित है (ऋ० २।३४।२)। देवताओं का यह शौर्य और पराक्रम अपनी सीमा का अतिक्रमण भी कर जाता है। स्वयम् वेदों में ही इस उच्छृङ्खलता के चिह्न प्राप्त होते हैं। देवतागण निर्दयतापूर्वक शत्रुओं का रक्तपात करते हैं (ऋ० १।५१।५)। वैदिक युग में ही देवताओं के महान आदर्श हिलते हुये दिखाई देते हैं। पुराणों में आकर देव-दानव संघर्ष ने प्रबल रूप धारण किया। यत्र-तत्र बिखरी हुई कहानियाँ इस बात को प्रमाणित करती हैं कि देव-दानव संघर्ष का कारण दोनों की अधिकार-लिप्सा थी। कदाचित् इस संघर्ष के मूल में दो संस्कृतियों, जीवनधाराओं या जीवन दृष्टियों का द्वन्द है। देवताओं की बढ़ती हुई भौतिक कामनाओं की भी चर्चा पुराणों में अनेक स्थलों पर बिखरी हुई है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी देवत्व का स्वरूप अधिक निष्कलंक नहीं कहा जा सकता। देवों के गन्धर्व वर्ग का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। उसके अन्तर्गत अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, आदित्य आदि भी आ जाते हैं (श० ब्रा० ९।४।१।७,८ आदि)। ये गन्धर्व आदित्य वरुण आदि की प्रजा हैं तथा अत्यन्त यौवनमय तथा सुन्दर हैं[६]। गन्धर्व लोक की कल्पना भी देवताओं के निवास स्थान के समीप ही की गई है। ये लोग रूप के उपासक हैं तथा अप्सरा भी उनके साथ रहती हैं[७]। देवताओं की विलासिता में उनके पेय सोम, मधु, मद आदि को प्रमुख स्थान प्राप्त है। वेदों में प्रयुक्त 'सधमादो', शब्द से भी उनके सामूहिक आमोद प्रमोद का आभास मिलता है। इन्द्र के उदर में तो

---

६. वरुण आदित्यो राजेत्याह तस्य गन्धर्वा विशस्त इम आसत इति युवान शोभना उपसमेता भवन्ति। श० ब्रा० १३।४।२।७

७. रूपमिति गन्धर्वा उपासते, श० ब्रा० १०।५।२।२०

सोम के हेतु एक सिन्धु के समान स्थान की कल्पना की गई (ऋ० १।३०।३) । देवताओ का स्वरूप क्रमश विकृत होता हुआ प्रतीत होता है । वेदो में देवताओं को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है और इसी कारण उनकी प्रशसा की गई । ब्राह्मण ग्रन्थो में हिंसा, सुरा आदि का उल्लेख मिलता है । वेदो में देवताओ के अनेक रूप प्राप्त है[८] ।

देवताओ की भाँति दानवो की भी चर्चा भारतीय ग्रन्थो में प्राप्त है । नमुचि सहार अथवा वृत्रवध के अतिरिक्त अन्य घटनायें वेदो, ब्राह्मणो, पुराणो में मिलती है । ऋग्वेद में यद्यपि देवताओ के भोग विलास के सकेत दिखाई देते हैं किन्तु सुरापान, क्रोध, पासा खेलना आदि पाप समझा जाता है (ऋ०७।८६।६)। ऋग्वेद का पाकयज्ञ भी अन्न से ही अधिक सम्बन्धित है । उसमें हिंसा का स्थान कम है । मनु ने 'कामायनी' के आरम्भ में यही पाकयज्ञ किया था, जो ऋषियो के अनुकूल है[९] । उसी का अवशिष्ट अन्न दूर वहकर जाया करता था । किलात, आकुलि के आने के साथ ही मनु ने पशु वलि भी आरम्भ की । इस समय देवताओ के वशज मनु असुरो के निकट सम्पर्क मे आने के कारण ही हिंसा की ओर प्रवृत्त होते है । ऋग्वेद में जिन वस्तुओ की निन्दा की गई है, उनमें सुरा का समर्थन उशिज् के पुत्र कक्षीवान् ऋषि करते है । उनकी वश-परम्परा में सभी व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में आसुरी वृत्तियो का वर्णन करते है । मेकडानल के अनुसार अश्विन देवता को सुरापान के कारण देवताओ ने उचित स्थान से वचित किया[१०] । दानवो की मुख्य प्रवृत्तियाँ हिंसा, पशुवलि तथा भौतिक सुख की कामना ही दिखाई देती है । देवो, दानवो का सघर्ष भी एक सास्कृतिक रूप में हुआ । अधिकाश विद्वानो का विचार है कि भारत में आर्यों और अनार्यो का युद्ध देवासुर सग्राम से सम्बन्ध रखता है । असुरो के सम्पर्क मे आने के कारण ही सम्भवत देवताओ की रूपरेखा में किंचित परिवर्तन हुये । अन्यथा उसके पूर्व ऋग्वेद मे उनका अत्यन्त पवित्र और उदात्त स्वरूप ही प्राप्त होता है । उशना, कक्षीवत्, वमुक्र आदि असुर पुरोहितो ने मास भक्षण, पशुवलि, सुरापान आदि की प्रशसा भी की । देवताओ में आसुरी वृत्तियो के आने से उनका नैतिक धरातल नीचा हो गया । उन्होने स्वयम् अपने परिष्कार का प्रयत्न किया । 'अन्न पशव' आदि से यह भी स्पष्ट है कि वैदिक युग के पाकयज्ञ में जो पशुवलि

---

८ इडियन फिलासफी, पृष्ठ ७२, ७३

९ पाक यज्ञ करना निश्चित कर लगे शालियो को चुनने, कामायनी, पृ० ३२

१० Vedic Mythology Page 52

होने लगी थी, उसी की पुनर्स्थापना का प्रयास हुआ। 'अशिव इव वाङ्एप भक्षो यत्सुरा ब्राह्मणस्य' में सुरापान की निन्दा की गई[११]। देवता दानव तथा उनके संघर्ष के विषय में प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में अत्यधिक सामग्री बिखरी हुई है। पुराणों में आकर इस विषय ने कथा का रूप ग्रहण कर लिया। किन्तु इस ऐतिहासिक विवेचन के अतिरिक्त देव-दानव विषय का दार्शनिक पक्ष भी है। उपनिषदों में इस संघर्ष पर विस्तार से विचार किया गया। इस प्रकार देवासुर विषय का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक स्वरूप दिखाई देता है।

'कामायनी' में देव और दानवों की समस्या आरम्भ से ही दिखाई देती है। देवताओं का उच्छृङ्खल और अपूर्ण रूप ही कवि ने चित्रित किया है। देव सृष्टि के विनाश का कारण मनु अत्यधिक भोग विलास बताते हैं। 'देव दम्भ' के कारण ही समस्त वैभव विलीन हो गया। देवता उन्मत्त विलास में मग्न थे। सुर बालाओं का शृंगार होता था। वासना की सरिता बही थी। मनु क्रमशः शान्त होने वाले प्रलय को देखकर उस देव सृष्टि का समस्त कल्पना चित्र प्रस्तुत करता है[१२]। उसकी स्मृति सजीव हो उठती है। 'चिन्ता' सर्ग में देवताओं का एक विकृत चित्र ही दिखाई देता है। वह एक प्रकार की अतृप्ति ही थी। मधु-मय चुम्बन और देवकामिनी के साथ ही पशु यज्ञ की भी चर्चा है। देवताओं का यह विलासी चित्र प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के उस रूप के अधिक समीप है जब कि देवताओं का सम्पर्क दानवों से हो गया था। धीरे धीरे उनमें भी आसुरी वृत्तियों का प्रवेश होने लगा। 'कामायनी' में भी किलात और आकुलि, मनु को पथभ्रष्ट कर देते हैं, जिसका वर्णन 'शतपथ ब्राह्मण' में है। मनु वास्तव में देवताओं के ही वंशज हैं किन्तु मानवता का विकास करते हैं। वे देवयोनि की समस्त दुर्बलताओं को याद करते ही सिहर उठते हैं। देवताओं की अपूर्णता के साथ ही दानवों की भौतिक लिप्सा की ओर भी 'कामायनी' में संकेत किया गया है। किलात आकुलि नामक असुर पुरोहित मनु को हिंसक कर्म में नियोजित करते हैं। मनु पाकयज्ञ के स्थान पर पशुयज्ञ आरम्भ कर देते हैं। सम्पूर्ण चित्र का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है

वेदी की निर्मम प्रसन्नता
पशु की कातर वाणी
मिलकर वातावरण बना था
कोई कुत्सित प्राणी

---

११. शतपथ, १२।८।१।६
१२. ये सब डूबे डूबा उनका विभव, बन गया पारावार
उमड़ रहा था देव सुखों पर, दुख जलधि का नाद अपार।

ये ही किलात और आकुलि मनु के विरुद्ध विद्रोह करनेवाली प्रजा का नेतृत्व भी करते है[१३]। मनु उसी अवसर पर यह भी कहते है कि इन दोनो को मैने अपना समझ कर अपनाया था और ये ही उत्पात मचा रहे है। वे असुर पुरोहितो को धराशायी भी कर देते है। श्रद्धा एक वैदिक ऋषि की भाति मनु के ऊपर होने वाले असुरो के सास्कृतिक प्रभुत्व को समाप्त करने का प्रयत्न करती है। मनु जब हिंसक यजमान हो जाते है, तो वह उन्हें पथभ्रष्ट होने से रोकती है। श्रद्धा कहती है कि अपने सुख को विस्तृत कर सभी को सुखी बनाओ। इस प्रकार पौराणिक देवासुर कथानक का एक लघु सस्करण 'कामायनी' में मिल जाता है। कवि ने देवताओ की अपूर्णता तथा दानवो की भौतिक लिप्सा के ऊपर मानव की प्रतिष्ठा की है। देव दानव दोनो अपूर्ण थे

> था एक पूजता देह दीन
> दूसरा अपूर्ण अहता में अपने को समझ रहा प्रवीन
> दोनों का हठ था दुर्निवार, दोनों ही थे विश्वासहीन'

'कामायनी' में देवदानव के दार्शनिक पक्ष का ही ग्रहण अधिक है। सास्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से कवि का लक्ष्य केवल यही है कि देव और दानव दोनो ही अपूर्ण हैं। इन दोनो से ऊपर उठी हुई मानवता का चित्रण ही 'कामायनी' का प्रतिपाद्य विपय है। स्वयम् आदि पुरुष मनु 'सुरश्मशान' में साधना करते है। वे वारवार उस उच्छृङ्खलता और भोग-विलास की याद करते है। कवि ने भावी मानवता के प्रतिष्ठापक रूप में ही मनु को चित्रित किया है। मानवता के कल्याण के लिये देवत्व के प्रति उतना आग्रह नही, जितना कि एक स्वस्थ जीवन दर्शन का। दार्शनिक दृष्टि से मनुष्य के अन्तरतम में सदा द्वन्द्व चलता रहता है। दैवी और आसुरी वृत्तिया निरन्तर सघर्ष करती रहती हैं। देव और असुर एक ही प्रजापति की सन्तान है[१४]। इसके लाक्षणिक अर्थ से भी मानव में दोनो वृत्तियो का समावेश है। गीता में अर्जुन ने यही प्रश्न कृष्ण से किया था

> अय केन प्रयुक्तोऽय पाप चरति पूरुष.
> अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय वलादिव नियोजित ॥ ३।३६

हे कृष्ण, फिर यह पुरुप क्यो किसी कारण विवश होकर, इच्छा न रखते हुये भी, पाप का आचरण करता है।

---

१३ 'मरण पर्व था, नेता आकुलि औ किलात थे', पृष्ठ २०१

१४. शतपथ ब्राह्मण ११।१।६।७-८

मन की कोई अचेतन शक्ति बरबस ही उसे नीचे की ओर ले जाती है। मानव के अन्तर्प्रदेश का यह संघर्ष सदा गतिमान रहता है। मनु मानव और मन के ही प्रतिरूप हैं। उनके हृदय में सदा मानसिक झंझावात चलता रहता है। देवताओं का पतन तथा असुर पुरोहित का आना तो केवल एक कथागत क्रम है, किन्तु विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि आदि पुरुष जीवन भर अपनी चेतना से ही युद्ध करता रहा। उसका जीवन मानसिक उथल-पुथल का एक केन्द्रीभूत स्वरूप है। मानव के छोटे से मन में उठनेवाली असंख्य भावनायें उसमें मिलती हैं। उसका रूप कभी कभी तो क्षण क्षण में परिवर्तित हो जाता है। केवल मनु ही नहीं, कवि प्रसाद के अधिकांश पात्र इसी झंझा-वात को लेकर चलते हैं। मानव का स्वाभाविक रूप ही कवि ने लिया है। मन का अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण उनके साहित्य का मूल स्वर है। केवल भौतिक धरातल पर ही नहीं, किन्तु उनकी दृष्टि जीवन की पूर्ण इकाई पर है। जीवन भर शत्रुओं से युद्ध करने वाला राष्ट्रसेवी स्कन्दगुप्त भी अपने प्रेम में पराजित हुआ। स्वयम् निर्मम चाणक्य ने सुवासिनी को प्रेम किया था। 'ध्रुवस्वामिनी' में कोमा कहती है कि मनुष्य के हृदय में देवता को हटाकर राक्षस कहाँ से घुस आता है। इस प्रकार मनुष्य जीवन की मनोवैज्ञानिक रूप-रेखा मनु के द्वारा प्रस्तुत की गई है। देव और दानव के मानसिक संघर्ष की प्रहेलिका भारतीय दर्शन की प्रमुख समस्या रही है। मानव स्वयं पाप नहीं करना चाहता। अनेक प्रकार के आकर्षण उसे अवनति की ओर ले जाते हैं। मानव की चेतना और ज्ञान सदा उनसे संघर्ष करते हैं। उपनिषदों में देवों, दानवों की वृत्तियों के विश्लेषण में लम्बे लम्बे वाद-विवाद मिलते हैं। आत्मा पर सविस्तार विचार करने वाले उपनिषद् उसका सूक्ष्मतम रूप प्रस्तुत करते हैं। मैत्री उपनिषद में उसे शारीरिक रथ का सारथी कहा गया है[१५]। आत्मा का निर्विकार और तटस्थ रूप उसे सर्वोपरि और सर्वव्यापी रूप प्रदान करता है। कठोपनिषद् के अनुसार इस सर्वशक्तिमयी आत्मा की शक्ति का आभास मात्र मिलते ही मानव का समस्त दुख विलीन हो जाता है[१६]। आत्मोपलब्धि या अपने आपको पहचानने के लिए मनु का समस्त प्रयत्न है। उपनिषद् आदि का दार्शनिक आधार ग्रहण करते हुए मनु के मन में चेतन और जड़ का संघर्ष प्रदर्शित किया गया है। आत्मा के अन्तर्गत दिति, अदिति, अन्धकार, प्रकाश आ जाते हैं। मनु का वास्तविक चेतन ही श्रद्धा है। माण्डूक्य उपनिषद् चेतना के चार चरण वैश्वानर तैजस, प्रज्ञा

१५. मैत्री उपनिषद्—२।३
१६. कठो० १।२।२१

और ओ३म् मानता है। प्रसादजी ने मानव का अकन करने के लिये स्वाभाविक रूपरेखा का अधिक ध्यान रक्खा है। उपनिषद् और प्लेटो दोनो ही आत्मा को एक सत्ता के रूप में देखते है जो शरीर पर अधिकार रखती है। इस दृष्टि से श्रद्धा के उदात्त चरित्र को ही यह स्थान प्राप्त हो सकता है। वह मन की चेतना है, जो मनु अथवा मन को सदा ऊपर उठाना चाहती है। वह देव-दानव सघर्ष से ऊपर उठकर एक नया सामजस्य स्थापित करने वाली है। सघर्ष तो कभी मरता ही नही —

'देवों की विजय दानवों की
हारों का होता युद्ध रहा
सघर्ष सदा उर अन्तर में
जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा।'

आधुनिक मनोविज्ञान व्यक्ति को इच्छा का केन्द्र मानता है। इच्छा के साथ ही भावना का उदय और अन्त हो जाता है। एक ओर मनु का चरित्र यदि मनोविज्ञान से प्रभावित है तो श्रद्धा आत्मा के अधिक समीप है। इस प्रकार प्रसादजी की दृष्टि देव, दानव से भिन्न मानव पर थी। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने देवत्व और दानवत्व दोनो की ही अपूर्णता दिखला दी है। मानव के मन मे ही देव-दानव सघर्ष चलता रहता है।

मानव की प्रतिष्ठा—

मानव की रूपरेखा निर्धारित करने में कवि ने कल्पना शक्ति का अधिक आश्रय ग्रहण किया। उसमें अनुभूति, जीवनानुभव और चिन्तन का विचित्र सम्मिलन हो गया है। सर्वप्रथम ध्वस्त देवत्व पर मानवता की प्रतिष्ठा है। भावी मानवता देवताओ के भोग विलास का परित्याग कर चुकी है। मनु आरम्भ में पाकयज्ञ करने का आयोजन करते हैं। उनकी यह क्रिया देवताओ से भिन्न है। पाकयज्ञ की कामना मे तप की भावना अधिक है

जलने लगा निरन्तर उनका, अग्निहोत्र सागर के तीर
मनु ने तप में जीवन अपना, किया समर्पण होकर धीर।

इस अवसर पर जो 'सुर सस्कृति' सजग होती है, उसमें कर्ममयी शीतल छाया भी है[१७]। मनु के अन्तर मे इस समय जिज्ञासा का उदय होता है कि 'जैसे हम बचे हुये है, क्या आश्चर्य कि कोई और भी अपनी जीवन लीला रचे हो।' इसी आशा से वे अग्निहोत्र का अवशिष्ट अन्न कही दूर पर रख आते थे

१७ कामायनी, पृष्ठ ३१

कि इससे कोई अपरिचित तृप्त होगा। मनु के मन मे एकान्त के कारण जिन मानसिक वृत्तियो का उदय होता है, उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेपण मन के रहस्यों का उद्घाटन करता चला जाता है। 'कामायनी' मानवता के उस विकास को लेती है, जिसमे उठती, गिरती मानवता निरन्तर गतिमान रहती है। मानव मन का अन्त विश्लेपण करते हुये प्रसादजी ने उसमे अनेक भावनाओ का आरोह-अवरोह भी चित्रित किया। निर्जन में मनु के मन में असख्य विचार आते जाते रहते हैं। तभी वह अनायास ही कह उठता है

कब तक और अकेले कह दो हे मेरे जीवन बोलो।
किसे सुनाऊ कथा कहो मत, अपनी निधि न व्यर्थ खोलो।

उपनिषद् की 'एकोऽह वहुस्याम' भावना ही अधिक मनोवैज्ञानिक रीति से इन पक्तियो मे प्रस्फुटित हुई है। श्रद्धा के आगमन के साथ ही मनु की प्रवृत्तियो मे परिवर्तन होता है। वह मनु की समस्त जडता समाप्त कर देती है। उन्हे दया, माया, ममता मधुरिमा और अगाध विश्वास से स्नेहप्लावित कर देती है। सहानुभूति और सवल पाकर मनु कर्म की ओर प्रवृत्त होते हैं। मानव के जीवन मे नारी का प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना है। श्रद्धा मनु मे एक नवीन भावना को जन्म देती है। उसकी इच्छा है, 'मानवता विजयिनी हो। प्रसादजी अन्त में मानवता की विजय ही घोपित करते है। पूर्ण मानव का चरित्राकन ही उनका प्रतिपाद्य विपय है। नारी के आगमन के पश्चात् ही मानव के मन मे काम, वासना का उदय होता है। भोग विलास की लिप्सा में वह एक वार पुन पथभ्रष्ट हो जाता है। आस पास बिखरी हुई प्रकृति की विभूति से सन्तुष्ट न रहने वाला प्राणी पशुओ की हत्या भी आरम्भ कर देता है। इसकी इस अतृप्ति को आसुरी वृत्तिया भौतिक आकर्पण और भी अधिक उद्दीप्त करते हैं। पशुओ का आखेट करने वाला मनु हिंसा के बाहुपाशो में बद्ध हो जाता है। श्रद्धा मानव मन की वह चेतना शक्ति है, जो सदा उसे पतन मे रोकने का प्रयत्न करती है। किन्तु "पाप पक मे लिप्त मनुष्य की मुक्ति कठिन है। मनुष्य जब एक बार पाप के नागपाश मे फँसता है, तब वह उसी मे और भी लिपटता जाता है। उसी के गाढे आलिगन, भयानक परिरभण मे सुखी होने लगता है। पापो की शृखला बन जाती है। उसी के नये नये रूपो पर आसक्त होना पडता है[१८]।" एक साधारण सी लिप्सा मनु के सुन्दर स्वरूप को विकृत कर देती है। यह स्थिति बिगडती ही चली जाती है। उनका दृष्टिकोण सकुचित हो जाता है। वे श्रद्धा अथवा अपनी चेतना का ही परित्याग कर देते

१८. जनमेजय का नागयज्ञ, पृष्ठ ५४

हैं। मनुष्य के मन में अनायास ही आ जाने वाली विकृति उसे कहाँ से कहाँ ले गई। मनु अपने बुद्धिवाद से जीवन की प्रहेलिका को सुलझाना चाहता है। आसपास अनेक भौतिक उपकरण तथा विलास की सामग्री जुटाकर वह हृदय पर बुद्धि का शासन स्थापित करता है।

मनु की परिवर्तित दिशा के चित्रण में प्रसादजी को आधुनिक बुद्धिवाद से अधिक प्रेरणा प्राप्त हुई। बुद्धिवाद का प्रतीक इडा समृद्धशाली राज्य की अधिष्ठात्री है। वह पश्चात्ताप से भरे हुये मनु को राज्य सचालन का भार सौंप देती है। भौतिक दृष्टि से मनु सम्पन्न हो जाता है। अनेक प्रकार के सुख-साधन एकत्र हो जाते हैं, किन्तु स्वयम् उसकी अतृप्ति तो आज भी वनी हुई है। इस सुप्त वासना का जागरण अत्यधिक भयावह है। मनु स्वयम् बुद्धि पर शासन करना चाहता है। बुद्धिवाद से निर्मित समस्त प्रजा ही इस अवसर पर विद्रोह करती है। पराजित होकर मनु की चेतना लौट आती है। श्रद्धा के आगमन के साथ ही मनु मे एक नवीन आशा का उदय होता है। पश्चात्ताप से क्षुब्ध वह पुन अपने मानसिक झझावात में भाग खडा होता है। उसका यह पलायनवाद भी स्वाभाविक है। जीवन से त्रस्त होनेवाला मानव ही तो आत्महत्या की कल्पना करने लगता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक तो आत्महत्या को स्पष्टतम अभिव्यक्ति स्वीकार करते है। मानव की समस्त निराशा, वेदना अन्तिम साँसों के साथ विखर जाती है। किन्तु चेतन श्रद्धा पुन उन्हें खोज लेती है। अन्त में यह चेतन शक्ति, आत्मा ही मनु को जीवन की पूर्णता से परिचित कराती है। मानव जीवन की सर्वसम्पन्नता ही 'कामायनी' का लक्ष्य है। अपने इस लक्ष्य तक जाने के लिये कवि किसी प्रवचन का अवलम्व नही ग्रहण करता। उसने जीवन के एक पथ का निर्माण किया, जिससे होता हुआ मानव अन्तिम उद्देश्य तक चला जाता है। प्रसादजी मानवता को सर्वोपरि मानते है। उन्होने मानव की वहुमुखी शक्तियो को सगृहीत और समन्वित करके ही उसे आनन्द दिया। मानवता के विकास मे एक लम्वे इतिहास के द्वारा कवि ने प्रेम, दया, करुणा, श्रद्धा से मानव को सर्वोपरि वनाया है। इस विपय मे उनका स्पष्ट मत है कि "पृथ्वी का गौरव स्वर्ग वन जाने मे नष्ट हो जायगा। इसकी स्वाभाविकता साधारण स्थिति में ही रह सकती है। पृथ्वी को केवल वसुन्धरा होकर मानव जाति के लिये जीने दो। अपनी आकाक्षा के कल्पित स्वर्ग के लिये, क्षुद्र स्वार्थ के लिये, इस महती को, इस धरती को, नरक न वनाओ, जिसमे देवता वनने के प्रलोभन में पडकर मनुष्य राक्षस न वन जाये[१०]।" मानवत्व की प्रतिष्ठा मे प्रसाद ने उसे

१० आकाशदीप, स्वर्ग के खडहर में

देवत्व से भी उच्च बना दिया । 'कामायनी' मे मानव के यथार्थ स्वरूप को आदर्श से समन्वित कर दिया गया है । वह भौतिक एव आन्तरिक दोनो ही दृष्टियों से सम्पन्न होगा । कवि ने जीवन की सम्पूर्ण इकाई को लेकर विचार किया । अन्तर और वाह्य ही पूर्ण जीवन है । मानव को पूर्ण बनाने के लिये ही तो स्वयम् श्रद्धा भी उसे बुद्धिवादी इडा के प.स कुछ समय के लिये छोड जाती है । किन्तु इस बुद्धि का अपनी सीमा का उल्लघन करना अनुचित है । श्रद्धा वह सतुलन शक्ति है जो मानव को पूर्ण बनाती है । मन, मनु और मानव की पूर्णता ही उन्हे आनन्द तक ले जाती है ।

मन और श्रद्धा--

मानव मन के दो पक्ष है, हृदय और बुद्धि । हृदय का प्रतीक श्रद्धा है, बुद्धि का प्रतिनिधित्व इडा करती है । आरम्भ मे श्रद्धा, तदनन्तर इडा का प्रवेश होता है । दर्शन के अनुसार पिडाड मे अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द ही पचकोश है[२०]।' इनके उपविभाग भी किये गये है । आनन्दमय कोश को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है, क्योकि यही पर शिव शक्ति, माया ब्रह्म, प्रकृति पुरुष की अद्वैतावस्था रहती है । विज्ञानमय कोश द्वैत का परिचायक है । इसमें शक्ति और शिव अथवा माया और ब्रह्म एक दूसरे से पृथक हो जाते है । मनोमय कोश से अन्नमय कोश तक मन मननशील रहता है । 'आनन्दमयकोश' तक मन अथवा मनु को श्रद्धा के अवलम्बन द्वारा पहुँचा देना ही प्रसाद का लक्ष्य है .

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो
इच्छा, ज्ञान, क्रिया मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे !

'चिन्ता' सर्ग के मनु की प्रतिष्ठा कवि ने 'एक तत्व की ही प्रधानता' के वातावरण मे की है । आसुरी वृत्तियो के उदय के साथ ही मनु, मै और तुम के पाश मे आ जाते है । इडा इस भेदक बुद्धि को और भी बढा देती है । इसका भयकर परिणाम सघर्ष होता है । अन्त मे श्रद्धा ही पुन. समन्वय प्रस्तुत करती है । श्रद्धा हृदय अथवा मन की सात्विकी प्रवृत्ति है, जो जीवन को कल्याण की ओर ले जाती है । बिना श्रद्धा और विश्वास के मानव पग पग पर सदेह करेगा । श्रद्धा के ऐतिहासिक और दार्शनिक विवेचन से भी स्पष्ट है कि जीवन में उसका अत्यधिक महत्व है । ऋग्वेद सहिता के दशम मडल के एकादश

---

२०. एतस्याद्विज्ञान मयात् अन्योऽन्तर आत्मा आनन्दमय तेनैष पूर्ण. ।

अनुवाक् का एक सौ इक्यावनवाँ सूक्त श्रद्धा को ऋषि रूप में प्रतिष्ठित करता है :

श्रद्धयाग्निः सार्मध्यते श्रद्धया हूयते हवि ।
श्रद्धा भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥१०।११।१५१

इस मत्र के 'श्रद्धा' शब्द का भाष्य सायणाचार्य ने 'पुरुषगतो अभिलाष विशेष श्रद्धा' (मानव की विशेष अभिलाषा) किया है। वेदो में श्रद्धा को उच्च स्थान प्राप्त है। ब्राह्मण ग्रन्थ भी इसी का समर्थन करते हैं। स्वयम् शतपथ ब्राह्मण में श्रद्धा सर्वगुणसम्पन्न है। कालान्तर के भागवत पुराण, विष्णु पुराण मत्स्य पुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि के आख्यानो में भी इसकी पुनरावृत्ति ही मिलती है। शैव ग्रन्थो में भी श्रद्धा की महिमा मिलती है। त्रिपुरा रहस्य तो यहा तक कहता है :

श्रद्धा हि जगतां धात्री श्रद्धा सर्वस्य जीवनम् ।
अश्रद्धो मातृविषये वालो जीवेत कथ वद् ।
(ज्ञान खड, अध्याय ७, श्लोक ७)

श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवे अध्याय के आरम्भ में ही अर्जुन कृष्ण से प्रश्न करते है

ये शास्त्र विधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विता
तेषा निष्ठातु का कृष्ण सत्वमोहो रजस्तम ॥

(हे कृष्ण, जो व्यक्ति श्रद्धा सहित, शास्त्र वर्णित विधि का परित्याग कर, यजन करते है, उनकी निष्ठा अथवा मन स्थिति किस प्रकार की है—सात्विक, राजस अथवा तामस ।

कृष्ण ने उत्तर दिया

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिना सा स्वभावजा
सात्विकी राजसी चैव तामसी चेति ताश्रृणु ।
सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्ध स एव स ।

(स्वभावत प्राणी की श्रद्धा सात्विक, राजस, तामस तीन प्रकार की होती है। सभी की श्रद्धा अपने सत्व तथा प्रकृति के अनुरूप हुआ करती है। पुरुष श्रद्धामय है। श्रद्धा के अनुसार ही वह निर्मित होता है)

'श्रद्धा' शब्द का विश्लेषण उसे गौरवान्वित स्वरूप प्रदान करता है। प्रसाद ने मन मे उसकी स्थिति का प्रवेश ऐसे अवसर पर कराया है जब वह

जड था। मन को श्रद्धा के कारण ही चेतना मिली थी। दया, माया, ममता, मधुरिमा और अगाध विश्वास भी उसमे वास करते है। मन का पथ प्रदर्शन करनेवाली यह सूक्ष्म वृत्ति स्वय अपने सात्विक रूप का उद्घाटन करती है। मन जब इस सात्विक रूप को नही पहिचान पाता तभी उसे कष्ट होता है। मनु का मन भी श्रद्धा के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ रहा, और स्थिति यह रही कि मनु ने स्वय विचार किया—

सौन्दर्य जलधि से भर लाए, केवल तुम अपना गरल पात्र

श्रद्धा वह चेतन शक्ति है जो मन को सदा अन्तर्मुखी करने का प्रयत्न करती है। मन की सुपुप्त शक्ति का जागरण भी उसका लक्ष्य है। मन हिंसक कर्मो मे प्रवृत्त होकर पशुवलि आदि से अपनी इन्द्रिय लिप्सा की पूर्ति करता है, श्रद्धा उसे रोकती है। मन अत्यन्त चचल है, वह पवन से भी अधिक वेगवान है। श्रद्धा को उस पर अपनी सम्पूर्ण सहृदयता से शासन करना पडता है। श्रद्धा के अभाव मे ही समस्त विभीपिकाये आरम्भ हो जाती है। विश्वास उठते ही मन की उच्छृङ्खलता वड जाती है, वह बहिर्मुखी हो जाता है। इन्द्रियाँ इधर-उधर भागने लगती है। पतन के साथ ही मन का सघर्ष होता है। वह परास्त होकर पुन श्रद्धा की ओर आता है। श्रद्धा ही उसे आनन्द का दान देती है। 'कामायनी' में मनु अथवा मन का आनन्दवादी पक्ष यही सात्विकी श्रद्धा है। मन सकल्प विकल्पात्मक है। वुद्धि का कार्य विश्लेपण तथा परीक्षण है। वह मन पर शासन और नियन्त्रण रखती है। किन्तु यदि मन स्वयम् उस पर अधिकार करना चाहता है, तो वह विद्रोह कर देती है। मनु ने स्वयम् वुद्धि की अधिष्ठात्री का नियामक होना चाहा, इसी कारण सघर्ष हुआ। वुद्धि मन के ऊपर है :

इद्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः पर मनः।
मनसस्तु परा वुद्धिर्यो वुद्धेः परतस्तु सः ॥

गीता, ३।४२

(इन्द्रियां वग्वान है। इनके ऊपर मन है। मन से भी परे वुद्धि है। जो वुद्धि से परे है, वही आत्मा है।)

ज्ञान बाह्य जगत के बोध का सुन्दर साधन है, किन्तु वह साध्य नहीं बन सकता। जब मस्तिष्क मन पर राज्य करने लगता है, तभी वुद्धि का अतिवाद आरम्भ हो जाता है। मनुष्य का विचार की सीमा तक विवेकी होना उचित है, किन्तु वुद्धिवादी होकर वह नास्तिक बन जाता है। आत्मा अथवा सत्य का बोध केवल वुद्धि से ही नहीं हो सकता। उसके लिये मस्तिष्क ही नही, हृदय

के भी नेत्र खोलने होगे। मन के बुद्धि पक्ष का सन्तुलन श्रद्धा द्वारा ही सम्भव है। गीता में भी कहा गया कि 'श्रद्धावाल्लमते ज्ञान' (४।३९)। ज्ञान का शुद्ध स्वरूप समझने के लिये श्रद्धा की अपेक्षा है। श्रद्धा को जीवन में शीर्ष एवं महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। किन्तु ज्ञान पक्ष कीपूर्णतया अवहेलना सम्भव नही। श्रद्धा यदि अन्तर्मुखी वृत्ति है तो इडा वहिर्मुखी। अन्तर तथा वाह्य मिलकर ही जीवन को पूर्ण वना सकते है। मन की स्वस्थता के लिये भी हृदय और मस्तिष्क दोनो का ही सहयोग अपेक्षित है। जव तक मानव मन की द्विधात्मक स्थिति रहती है, वह शान्ति नही पाता। मन के दोनो पक्षो में समन्वय आवश्यक है। श्रद्धा और भक्ति का अन्ध विश्वास मन को अन्धविश्वासी वना सकता है। इसी कारण सात्विकी श्रद्धा का ग्रहण ही मगलमय है। हृदय की दुर्वलता अनेक बुराइयो का सृजन करती है। मन प्रवृत्तियो का अनुचर हो जाता है। क्योकि

मन की परवशता महा दुःख। (कामायनी, पृष्ठ १५४)

हृदय आत्म प्रवचना और छल करने मे भी अत्यन्त कुशल है। मानव अपने मन को छला करता है। 'आकाशदीप' की चम्पा कहती है—जव मै अपने हृदय पर विश्वास नही कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तव मै कैसे कहूँ [२१] ?' श्रद्धा नामक शुद्ध आत्मवृत्ति ही मन को उचित मार्ग में नियोजित करती है। मन का बुद्धि पक्ष अहभावना का सृजन करता है। विकल्पात्मक बुद्धि तर्क वितर्क करती है। किन्तु इससे तो सत्य की प्राप्ति नही होती

'बुद्धि तर्क के छिद्र हुये थे,
हृदय हमारा भर न सका

अपने अहम् की तृप्ति के लिये ही मन वुद्धि का आश्रय ग्रहण करता है, किन्तु इससे व्यभिचार वढता है, और अन्त में सघर्ष होता है। मनु की भी यही स्थिति हुई थी। जव तक मन अहकार में डूवा रहता है, उसे शान्ति नही मिलती। वुद्धि, तर्क और विकल्प ज्ञान की उस सीमा तक ही मन की सहायता कर सकते है जव तक कि उस पर श्रद्धा अथवा हृदय नियत्रण करते रहें। तर्क से सत्य छुई-मुई हो जाता है। उसके स्पर्श मात्र से ही वह क्षण भर में मुरझा जाता है। तर्क तो अपना मत निश्चित कर लेता है। वुद्धि सिद्धान्त सर्वप्रथम ही वना लेती है, अनन्तर उसकी पुष्टि करती है।

सदा समर्थन करती उसकी
तर्कशास्त्र की पीढी

---

२१. आकाशदीप, पृष्ठ १२

ठीक यही है सत्य यही है
उन्नति सुख की सीढ़ी।

सत्य शब्द गहन होता चला जाता है। अकेली बुद्धि सत्य का उद्घाटन करने में असमर्थ रहती है। मानव मन अपनी ही महत्वाकांक्षाओं में पराजित होता है। जीवन के प्रति यह विकल्पात्मक, तार्किक, बुद्धिवादी दृष्टिकोण अनुचित है। मन की यह बुद्धि वृत्ति उसकी भौतिक समृद्धि में सहायक हो सकती है, किन्तु सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं। मनु को हिंसात्मक प्रवृत्ति के जागरण के पश्चात जो कष्ट हुये उसका कारण अतिशय बुद्धिवाद का अवलम्बन है।

मनोविज्ञान—

कामायनी में मन के विश्लेषण की प्रधानता है। मानव मन का प्रतीक मनु ही इस चिन्तन का आधार बनाया गया है। उसी के माध्यम से मन की समस्त स्थिति का उद्घाटन होता रहता है। वास्तव में मन ही वह केन्द्रस्थल है जहां से प्रत्येक वस्तु का आरम्भ होता है। सब कुछ मन की ही क्रीडा है। सुख-दुख, आशा-निराशा आदि की अनुभूति भी उसी पर निर्भर है। अनेक-रूपता के कारण मानव मन सदा से एक भीषण प्रहेलिका रहा है। बिम्बसार के अनुसार, "मानव हृदय में भी एक रहस्य है, एक पहेली है। जिस पर क्रोध से भैरव हुंकार करता है, उसी पर स्नेह का अभिषेक करने के लिये प्रस्तुत रहता है[२२]।" आत्मा की विस्तृत विवेचना करनेवाले उपनिषद उसे सर्वोच्च स्थान देते हैं। आत्मा निर्विकल्प, शुद्ध और महान है। आत्मा को एक उच्च धरातल पर ले जाने के पश्चात् मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार आदि की भी कल्पना की गई। उपनिषदों में मन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या भी प्रस्तुत की गई। छान्दोग्य उपनिषद् में मन अन्नमय, प्राण जलमय तथा वाक् तेजोमय है[२३]। मन को संकल्प, इच्छा आदि की शक्ति रहती है। पंच मकारों में उसे भी एक स्थान प्राप्त है। उसकी चंचल गति के कारण ही उस पर प्रतिबन्ध की आवश्यकता है। छान्दोग्योपनिषद् ने अत्यन्त काव्यात्मक रीति से इसका वर्णन है। "डोर में बंधा हुआ पक्षी दिशि दिशि में भटकता रहता है। अन्यत्र शरण न पाकर अन्त में अपने स्थान को लौट आता है। इसी भांति मन भी इधर उधर भटककर अन्त में प्राण का आश्रय ग्रहण करता है[२४]।" मन की उच्छृंखल और चपल प्रवृत्ति

---

२२. अजातशत्रु, पृष्ठ, १४४
२३. छान्दोग्य उपनिषद् ६।७
२४. वही ६।८

को रोकना आवश्यक है। यदि मन पर वश न रहा, तो साधना किस प्रकार होगी। मन को वश में करने के अनेक उपाय भिन्न-भिन्न दर्शनो में मिलते है। वैराग्य, योग, तप आदि सब मन पर नियन्त्रण रखने के विभिन्न प्रयास है। इद्रियो से सम्बन्ध रखनेवाले, मन पर अधिकार रखने के निवृत्ति मूलक मार्ग, योगी और वैरागी अपनाते है। मन की समस्त इच्छाओ को समाप्त कर देने से, वह पगु हो जायगा। प्रत्येक उठती हुई भावना को दवा देने से, फिर भावना इच्छा और तदनन्तर कर्म में प्रविष्ट ही न हो सकेगी। योग द्वारा मन अथवा चित्त की वृत्तियो को रोकने की शिक्षा पतजलि ने दी[२५]। इस चित्त में मन, बुद्धि और अहकार भी आ जाते है। विभिन्न यौगिक क्रियाओ द्वारा मन पर नियत्रण तथा एकाग्रता की प्राप्ति का उपदेश सभी योगो में वर्णित है। योग तथा समाधि की अत्यन्त कठिन और निर्जन साधना के अतिरिक्त अन्य निवृत्ति मार्ग भी है। स्वयम् वैदिक वर्णव्यवस्था एक स्थिति में आकर निवृत्ति को स्वीकार कर लेती है। वानप्रस्थ और सन्यास उसी के रूप है। अद्वैतवाद का समर्थन करनेवाले शकराचार्य भी माया से मन की रक्षा करने के लिये कहते है। वौद्ध और जैन दर्शन व्यावहारिक होते हुये भी पूर्ण प्रवृत्तिमूलक नही प्रतीत होते। मन और चित्त को प्रवृत्ति मार्ग में नियोजित करने वाले ग्रन्थ वेद, उपनिषद् और शैव तन्त्र हैं। गीता का कर्मवाद भी पूर्णतया व्यावहारिक और प्रवृत्ति मूलक है। कामायनी में मन को कार्य में नियोजित करने का प्रयत्न किया गया। प्रसाद की दृष्टि प्रवृत्तिमूलक है और वे शैवदर्शन के अधिक समीप है। महेश्वर मन की इच्छा से ही सृष्टि का सृजन करते है। सब कुछ मन पर ही निर्भर है। परमेश्वर की पाच शक्तियो में से चित् भी एक है। यह चित शक्ति प्रकाशवान है, जिसके द्वारा परमशिव स्वय प्रकाशित होते रहते है। शैव दर्शन शिव की आनन्द शक्ति में विश्वास करता है, तभी तो मन को स्वतन्त्रता देकर कहता है

यत्र यत्र मनो याति ज्ञेयं तत्रैव चिन्तयेत्
चलित्वा यास्यते कुत्र सर्वं शिवमयं यतः ॥

सर्वत्र आनन्दमय शिव का निवास है, फिर यह मन जायगा भी तो कहा? अन्त मे आनन्द मे ही व्याप्त होगा। शिव की आनन्दभावना में श्रद्धा रखने वाले आनन्दवर्द्धनाचार्य ने मन को अन्तर्मुखी करने की भी व्यवस्था की। मन का दमन उचित नही, किन्तु उसे विषयवासना से हटाकर आन्तरिक वृत्तियो की ओर प्रवृत्त करना होगा। जगत ही सत्य है। वह परमशिव का आभास है[२६]।

---

२५. योगश्चित्तवृत्तिनिरोध.।
२६ Abhinavagupta, by Dr K C Pande—Page 172

प्रसाद ने मन की स्वाभाविक वृत्तियों का चित्रण करते हुये उसे अन्तर्मुखी बनाया। श्रद्धा मनु की समस्त जडता समाप्त कर देती है। वह कहती है :

एक तुम यह विस्तृत भू खंड
प्रकृति वैभव से भरा अमंद
कर्म का भोग भोग का कर्म
यही जड का चेतन आनन्द।

श्रद्धा मन को अन्तर्मुखी करने वाली शुद्ध सात्विक वृत्ति है। बुद्धि मन को बाह्य विषय, भौतिक आकर्षण की ओर प्रेरित करती है। मन के दार्शनिक विवेचन का आधार मनोवैज्ञानिक भी हो सकता है। 'कामायनी' में मन का विश्लेषण इसी आधार पर हुआ।

उपनिषद का मनोविज्ञान चित्त और मन को अत्यन्त सूक्ष्म मानता है। प्रश्नोपनिषद में दस इन्द्रियों (पाँच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय) की विवेचना है। ये इंद्रियाँ मन के वश में है, और उसी की इच्छा के अनुसार कार्य करती है[२७]। मन इन्द्रियों का स्वामी है, वह उन पर शासन करता है। छान्दोग्योपनिषद् में चित्त की श्रेष्ठता संकल्प द्वारा स्वीकार की गई। मनुष्य चिन्तन के पश्चात किसी निष्कर्ष तथा संकल्प पर पहुँचता है। चित्त ही केन्द्रबिन्दु है, जिसके सहारे मानव आगे बढ़ता है। चिन्तन से मानव ब्रह्म को भी पा सकता है। उसमें कहा गया—'चित्त वाव संकल्पाद भूयो यदा वै चेतयतेऽथ संकल्पयते...चित्तं ह्येवैषामेकायन, चित्तमात्मा चित्त प्रतिष्ठा, चित्तमुपास्स्वेति (७।५।१)। मानसिक क्रिया व्यापारों का वर्गीकरण ऐतरेय उपनिषद् में मिलता है। संज्ञानम्, आज्ञानम्, विज्ञानम्, प्रज्ञानम्, मेधा, दृष्टि, धृति, मति, मनीषा, जूति, स्मृति, संकल्प, क्रतु, असु, काम, वश आदि सभी सत्ता का बोध कराने वाले लक्षण है[२८]। इसी मानसिक प्रक्रिया में ऐतरेयोपनिषद ने आध्यात्म का भी समन्वय कर दिया। मन ही मानव को सत्य तक ले जा सकता है, वह सत्य का अन्वेषक है। मन की चेतना का विभाजन माण्डूक्योपनिषद ने वैश्वानर, तेजस, प्रज्ञा, ओ३म् में किया[२९]। सर्वोपरि आत्मा की शुद्ध स्थिति तुरीय है और जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्ति उसकी विभिन्न अवस्थायें हैं। उपनिषद् का यह मनोविज्ञान सर्वत्र आध्यात्मिकता से समन्वित है। कामायनी में अधिक व्यावहारिक पक्ष का ग्रहण है।

---

२७. प्रश्नोपनिषद् ४।२
२८. ऐतरेयोपनिषद् ३।२
२९. मांडूक्योपनिषद् २।७

अन्तिम चरण दर्शन, रहस्य, और आनन्द तक मनु ओ३म् की उस स्थिति को पहुँच जाते है, जहाँ प्रत्येक वस्तु आनन्द रूप ही प्रतीत होती है।

कामायनी में आधुनिक मानव मनोविज्ञान का ग्रहण है। मनोवैज्ञानिक व्यक्ति और मन को ही समस्त क्रियाव्यापारो का केन्द्र मानता है। व्यक्ति के मन का अन्तर्विश्लेषण कर मनोविज्ञान अनेक बातों की खोज करता है। कवि का कार्य भी मन की व्याख्या है किन्तु वह इस कार्य को प्रतीको द्वारा करता है। मनोविज्ञान के विद्वान वैज्ञानिक रीति से मानसिक स्थिति का अध्ययन कर किसी निष्कर्ष पर पहुँचते है। इसके लिये वे समस्त परिस्थिति का ज्ञान भी चाहते है। मनोविज्ञान विश्लेषण प्रक्रिया है। इस विज्ञान के द्वारा मानव मन के अध्ययन में सहायता मिलती है[३०]। कवि का कार्य इससे अधिक होता है। मन के विश्लेषण और अध्ययन के अतिरिक्त उसे अनेक अन्य निर्देश भी करने पडते है। वह वैज्ञानिक नही हो सकता। क्रोचे ने स्वयम् इस प्रश्न को उठाया है। उसके अनुसार कलाकार के लिये मनोविज्ञान की ही भाँति *किसी व्यवस्था के निर्माण की आवश्यकता नही। वह सीधे ही प्रत्यक्ष रीति* से उस मानवीय यथार्थ को ग्रहण कर लेता है, जिसके खडो से मनोविज्ञान की व्यवस्था का सृजन हुआ है। प्रीति करने के पूर्व मनुष्य प्रीति के मनोविज्ञान से परामर्श नही करता। वह अनायास ही अपनी इच्छा से प्रीति करने लगता है। मनोविज्ञान की भाति कलाकार साधारण रूपरेखा से कृति को निर्मित नही करता, वह प्रेमियो को उनके विलीन व्यक्तित्व मे उपस्थित करता है। मनोविज्ञान किसी पुस्तक का सूचीपत्र है, तो कला उसका प्रकरण। सूची पुस्तक के अनुसार बनती है जिसका वह सदा उत्कृष्ट प्रतिनिधि होगी। पुस्तक सूची के अनुकूल नही बनाई जाती[३१]। कामायनी का मनोविज्ञान अत्यन्त काव्यात्मक स्वरूप में प्रस्तुत हुआ। प्रत्येक सर्ग का शीर्षक एक मानसिक वृत्ति है। इन मानसिक वृत्तियो का समावेश क्रमश मनु, श्रद्धा और इडा में दिखाया गया है। पुरुष और नारी के मन मे ही इन अनेक भावनाओ का उदय अस्त होता है। मानसिक वृत्तियो को लेकर मनो विश्लेषण करने की प्रणाली आधुनिक मनोविज्ञान की विशेषता है। कामायनी की चिन्ता, आशा आदि मानसिक वृत्तिया कई रूपो में सम्मुख आती है। विकास की दृष्टि से वे जन्मजात सस्कार अथवा अन्तर्निहित आरम्भिक भावनायें है। इन मूल प्रवृत्तियो में क्रमश विकास और परिवर्तन होता रहता है। मनोवैज्ञानिक ए० ई० मैन्डर ने मूल प्रवृत्ति को "सस्कारगत

---

३० Manual of Psychology—Stout, page 30

३१ Aesthetics—page 66

तया शरीर की अन्तर्जात प्रवृत्ति कहा है, जो किसी परिस्थिति मे विशेष प्रकार का व्यवहार करती है[३२]।" मनु के मन की भी मूल प्रवृत्तिया क्रमश: विकसित होती चली जाती है। चिन्ता भी आनन्द तक पहुँचती है। मानव मन में उठने वाली अनेक भावनायें उसकी मनोवृत्ति का परिचय देती है। मनुष्य सर्वप्रथम कोई विचार अपने मन में ले आता है। तदनन्तर उसे कार्य रूप में परिणत करता है। मन की स्थिति और उसमे उठनेवाली भावनाओ के विषय मे आधुनिक मनोविज्ञान मे कई रूप मिलते है। इनके विश्लेषण का आधार वैज्ञानिक है। किन्तु एक वर्ग केवल मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का आश्रय ग्रहण कर अपना कार्य करता है। फ्रायड इस वर्ग का सर्वश्रेष्ठ विचारक कहा जा सकता है। अन्य वर्ग मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ ही पूर्णतया भौतिक उपादानो का अवलम्ब नहीं ग्रहण करते। वृत्तियो और भावनाओ को लेकर इसी कारण मैगड्गल ने किञ्चित भिन्न मत की स्थापना की। स्वयम् फ्रायड के अनुयायी एडलर और जुग का उनसे थोडा सा मतभेद प्रतीत होता है।

भाव प्रक्रिया के विषय मे लगभग डेकार्ट (Descartes) के समय से ही विचार आरम्भ हो गया था। उसके अनन्तर विलियम जेम्स की विचारधारा का अधिक समर्थन हुआ। लेन्ज ने भी इसमें सहयोग दिया। इस कारण यह सिद्धान्त जेम्स लेन्जे (James Lange Theory) के नाम से प्रसिद्ध है। जेम्स के अनुसार भाव इन्द्रियजन्य होते है। शारीरिक कार्यकलाप मे भी उनका सम्बन्ध है। शरीर की क्रियायें भाव को अनुशासित करती है। 'भाव ऐहिक अभिव्यक्ति का परिणाम है, कारण नही[३३]।' जेम्स की इस विचारधारा मे मैकड्गल ने कुछ परिवर्तन किये। उसके अनुसार भाव प्राय आन्तरिक होते है। वस्तु और ऐन्द्रिय प्रभाव उसी प्रकार बने रहते है, किन्तु भावो की प्रतिक्रिया मे परिवर्तन होता है। उनका सम्बन्ध क्रियाशक्ति से भी रहता है। मैकडूगल ने भाव और नैसर्गिक प्रवृत्ति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध स्थापित किया। प्रत्येक नैसर्गिक प्रवृत्ति के साथ ही उनने एक भाव की कल्पना की। कालान्तर मे उनने अपनी विचारधारा में किञ्चित सुधार किया। उनके "हारमिक सिद्धान्त" (Hormic theory) मे भावो की एक लम्बी सूची दी हुई है[३४]। स्थूल रीति से प्रारम्भिक और साध्य-

३२. An instinct is an inherited, inborn tendency of the body to behave, in certain circumstances in a particular manner — A E Mander.

३३ "Emotion is a consequence, not the cause, of the bodily expression."

Principles of Psychology—WilliamJames Vol. II page 150.

३४ An Outline of Psychology, page 321.

मिक दो भेद भावो के किये। सामाजिक मनोविज्ञान' में उसने इन स्थायी भावो से ही सचारी भावो का भी विकास बताया। मानव मन का अध्ययन करने मे मैकडूगल ने नैतिकता का भी ध्यान रक्खा। मानव मन की समग्रता, कार्य शक्ति आदि के आधार पर होर्म सिद्धान्त को गीता के निकट रक्खा जा सकता है। गीता का 'निष्काम कर्म' उसके समीप है[१५]। भावो के काव्य मे ग्रहण के विषय में मैकडूगल की धारणा है कि 'कवि इन भावगत अनुभवो का मूर्त्तीकरण कर उन्हे व्यक्तिगत शक्ति से वाहक रूप में वर्णन करते है[१६]। भावो के विषय में फ्रायड की धारणा इससे भिन्न है। उसने मन के विश्लेषण का आधार 'मनोरजन सिद्धान्त' को बनाया। अचेतन मन की स्थिति को विशेष महत्व देने वाले फ्रायड का अन्तश्चेतनावाद अधिक व्यावहारिक अवश्य है। उसके अनुसार आदम मानस (id) का सम्बन्ध नैसर्गिक प्रवृत्ति मे अधिक है। उसने नैसर्गिक प्रवृत्ति को केवल दो भागो में विभाजित किया, योनिगत (eros) और मृत (sadism)। अहम् प्रवृत्ति में यथार्थ सदा मनोरजन को दबाता रहता है। वास्तव मे मनोरजन का अहम् केवल इच्छा कर सकता है, यथार्थ का अहम् रक्षा करता है। फ्रायड का निश्चित विचार है कि "मानसिक सतुलन के बिगडने का मूल कारण मानव की आन्तरिक आवश्यकताओ का आग्रह है[१७]।" भावो के उत्थान पतन के मूल मे भी यही रहस्य है। फ्रायड ने अपने मनोरजन सिद्धान्त से आगे बढने का प्रयत्न किया। इस प्रकार, मनोविज्ञान में मानव मन के विश्लेपण का प्रयास विभिन्न रीतियो से हुआ। भावो में एक क्रमिक विकास सभी ने स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त नैसर्गिक प्रवृत्ति, भावना, इच्छा आदि अन्य वृत्तियो से भावों का सम्बन्ध भी स्थापित किया गया। एक का प्रभाव अन्य पर किसी-न-किसी रूप में अवश्य पडता है। आधुनिक मनोविज्ञान ने मानव मन के विश्लेपण की अधिक व्यावहारिक पद्धति को अपनाया और इसके दो लाभ स्पष्टत सम्मुख है। मानव स्वयम् को समझ सकता है तथा अन्य की आवश्यकताओ का अध्ययन कर उसकी सहायता कर सकता है। यह मनोविज्ञान का नितान्त व्यावहारिक रूप है।

चिन्ता—

कामायनी मे मानव मन का विश्लेपण करने में किसी विशेप मनोवैज्ञानिक परम्परा अथवा सिद्धान्त का अनुसरण नही किया गया। जीवन के आरम्भ

---

१५ The Hormic Theory—P S Naidu

१६ An Outline of Psychology, Page 314

१७ Collected Papers, IV

से लेकर अन्त तक मन मे उठने वाले भावो, विचारो और अनुभूतियो का चित्रण करने में कवि ने कल्पना का अधिक प्रश्रय लिया। सर्गों का नामकरण वृत्तियों के आधार पर है, जिनमे एक तारतम्य देखा जा सकता है। कामायनी का आरम्भ चिन्ता से होता है। प्रलय के अनन्तर मनु के सम्मुख अनेक समस्यायें थी। बारम्बार उन्हे अतीत वैभव की याद आती थी। अब भी उनमें देवताओं के सस्कार जीवित थे। अतीत के चिन्तन के साथ ही मनु के मन मे भावी चिन्ता की एक क्षीण रेखा भी उठती है। विगत के प्रति एक पश्चात्ताप की भावना है, किन्तु मनु देवत्व के विध्वस पर ही नव निर्माण चाहता है। आवश्यकता ही अविष्कारो की जननी है। अतृप्ति और चिन्ता मानव को प्रगति देते है। समस्त ज्ञान विज्ञान के मूल मे चिन्ता है। मनुष्य अधिक-से-अधिक सुखी रहने की आकाक्षा रखता है। मन की समस्त चेतना चिन्ता करती है। चिन्ता ही सृष्टि का मूल रहस्य है। जिज्ञासा, कुतूहल भी उसकी सहायता करते है। मनु को एक ओर 'उस अतीत और सुख' की चिन्ता है, साथ ही वह एक क्षण के विस्मरण मे भविष्य की कल्पना भी करना चाहता है। भूत, भविष्य दोनो ही उसकी चिन्ता में निहित है। अभाव मे चिन्ता का उदय, मधुमय अभिशाप, हृदयाकाश का धूमकेतु आदि अनेक मनोवैज्ञानिक सत्यों को कवि ने प्रस्तुत किया है। अन्त मे उसके अनेक नाम लेता है:

बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिन्ता
तेरे हैं कितने नाम

इनमें से प्राय. सभी ऐतरेय उपनिषद् (३।२) मे भी प्राप्त हो जाते है।

आशा—

चिन्ता मे चेतनता होती है, किन्तु अधिक सम्बल अथवा शक्ति नही। वह विचारणा तक सीमित रहती है। मन अतीत की चिन्ता में पश्चात्ताप कर सकता है, उसे प्राप्त करने के लिये व्याकुल होकर अन्त मे दुखी हो सकता है। भविष्य की चिन्ता भी मन को आशकाओ से भर देती है, किन्तु चिन्ता स्वत निस्संबल है। चिन्ता को सबल प्रदान कर जीवन को गतिमान करनेवाली वृत्ति आशा है। आशा विकास और प्रगति का दान देती है[१८]। मानव मे आस्था का उदय होता है। प्रलय की भीषण स्थिति से भयभीत मनु के मन मे आशा का सचार ही

---

१८. "Hope springs eternal in the human breast
Man never is, but always to be blest"
Pope—Essay on Man

सृष्टि क्रम को आगे बढाता है। आशा के आगमन के साथ ही प्राची में उषा स्वर्णिम प्रभा बिखेरती आ जाती है। मनु के हृदय की समस्त जिज्ञासा समीप ही बिखरी हुई प्रकृति की विभूति देखने लगती है। आशा के ही कारण मन मे एक साथ अनेक प्रश्न उठते है। समस्त सृजन को चिरन्तन गति प्रदान करनेवाली यह वृत्ति मनु के मन में जीवन के प्रति अनुराग उत्पन्न कर देती है। यवनिका हट जाती है, प्रकाश दिखाई देने लगता है। मनु पाकयज्ञ करना आरम्भ कर देते है। आशा बलवती होती है और वही आदि पुरुष को गतिमय करती है। वह उनके हृदय में मधुर स्वप्न सी झिलमिल होकर आई है। वह प्राणो का समीर है। इस मधुर जागरण के कारण ही प्रकृति का विकृत रूप मानस पटल से विलीन हो जाता है। उसका स्थान नित्ययौवना प्रकृति ले लेती है, जिसमें हिमालय भी हँस-हँस पडता है। आशा के ही कारण सुर सस्कृति सजग हो सकी। मन में आने वाली आशा की भावना ने क्षुब्ध मनु को साहस दिया, शक्ति प्रदान की। वे सोचने लगे

मै हूँ, यह वरदान सदृश क्यों
लगा गूजने कानों में
मै भी कहने लगा मै रहूँ
शाश्वत नभ के गानों में

श्रद्धा--

चिन्ता और आशा इच्छा के ही प्रतिरूप है, किन्तु मन को भली भाँति क्रियाशील बनानेवाली वास्तविक वृत्ति श्रद्धा है। श्रद्धा और विश्वास के अभाव में जीवन क्षण भर भी नही टिक सकता। वह इतनी प्रमुख वृत्ति है कि मन में सदा उसका रहना आवश्यक है। श्रद्धा मनु अथवा मानव का एक पक्ष बन कर आई है। श्रद्धा जीवन की समस्त जडता और निष्क्रियता समाप्त कर देती है। वह अपने साथ ही दया, माया, ममता, मधुरिमा आदि अनेक कोमल भावनायें ले आती है। वास्तव में वह एक प्रवृत्तिमूलक आस्थामय वृत्ति है जो निवृत्ति का अन्त कर देती है। श्रद्धा एक आस्तिक सद्वृत्ति है जो चेतन शक्ति का उदात्त रूप है। मन में उसके प्रविष्ट होते ही इद्रिया भी कार्य रत हो जाती है। प्राणो की समस्त क्रियाशक्ति जागृत हो उठती है। मन को उसके प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। केवल विचार और चिन्तन मे ही उलझा रहने वाला प्राणी कार्य में प्रवृत्त होता है। विस्तृत भूखड का उपभोग करने की कामना से वह कर्म करता है। श्रद्धा मन की महान और उदात्त शक्ति है, जो उसे कार्य मे नियोजित कर सहयोग देती है। मन शक्तिशाली होकर विजयी बनने की इच्छा करता है। श्रद्धा मे चेतना,

क्रियाशक्ति केन्द्रित है। वह सामूहिक चेतना एव कार्य का प्रतीक है। श्रद्धा अथवा विश्वास के सहारे पछी नभ मे पख पसार कर उड सकता है[३९]। मनु के मन की इच्छा को श्रद्धा ने कार्यान्वित किया वे सृष्टि के निर्माण में नियोजित हुये। श्रद्धा केवल मनु के मन को ही नही, किन्तु समस्त मानवता के कल्याण की आधार-शिला है। प्रसाद ने इस उदात्त भाव की कल्पना सामाजिक मनोविज्ञान के आधार पर की। श्रद्धा के द्वारा मानव शक्ति सग्रह कर मार्ग में अग्रसर होता है। चचल मन की स्थिति मे स्थायित्व आ जाता है। वह एकाग्रचित्त एव तल्लीन होकर अपने उद्देश्य प्राप्ति मे प्रयत्नशील रहता है। श्रद्धा महान तप है[४०]। श्रद्धा सम्पूर्ण काव्य मे एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करती है। मनु अथवा मन को आनन्द तक वही ले जाती है। श्रद्धा से ही मन को बोध हुआ।

कोमल वृत्ति के कारण ही कवि ने श्रद्धा को नारी रूप मे अकित किया। नारी के बिना पुरुष अपूर्ण है। मन भी श्रद्धा के अभाव में व्यर्थ। नारी, पुरुष ही जीवन की पूर्णता है। श्रद्धा से सचालित मन ही आनन्दमय है।

काम--

श्रद्धा के साथ ही काम का उदय होता है। यह प्रवृत्तिमूलक भावना कामना का सृजन करती है, उसके भोग के साधन जुटाती है। काम समस्त कामनाओं, इच्छाओं का घनीभूत रूप है। उसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और विस्तृत है। मन की आशा विचार के अधिक समीप है, किन्तु काम एक व्यापक धरातल को पकडकर कार्य मे अग्रसर होता है। कामायनी मे काम का उदात्त और विस्तृत रूप ही ग्रहण किया गया। स्वयम् श्रद्धा कामगोत्रजा कामायनी है। काम की कल्पना मे मनोवैज्ञानिक दार्शनिक सम्मिश्रण है, जो वैदिक मनोविज्ञान और दर्शन के अधिक समीप है। 'कामना' नाटक मे काम का अधिक उदात्त रूप ही प्रसाद ने ग्रहण किया। मनोवैज्ञानिक प्रतीको का आधार लेकर ही उन्होंने उसकी रचना की थी। कामायनी उसी का काव्यात्मक रूप है। कामना स्वय अपनी परिभाषा कर देती है, "मैं क्या चाहती हूँ। जो कुछ प्राप्त है, इससे भी महान। वह चाहे कोई वस्तु हो। हृदय को कोई करो रहा है। कुछ आकाक्षा है, पर क्या है। इसका किसी को विवरण नहीं देना चाहती। केवल वह पूर्ण हो, और वहाँ तक जहा तक कि

---

३९ "The reason why birds can fly and we can't is simply that they have perfect faith"
I. M. Barrie—The Little White Bird

४०. श्रद्धा तप. छान्दोग्योपनिषद् ५।१०

उसकी सीमा हो, बस[४१] ।" काम के कालान्तर में विकृत हो जाने वाले रूप का ग्रहण कवि ने मन को उच्च भाव भूमि पर ले जाने के लिये नही किया। काम के अन्तर्गत प्रेम, कामना, इच्छा आदि भाव आ जाते है। काम आनन्द की प्रतिध्वनि है। अथर्ववेद (९।२) में काम की बडी प्रशसा की गई। धर्म, अर्थ और मोक्ष के साथ ही काम को भी स्थान प्राप्त है। 'सो कामयत्, एकोऽहं वहुस्याम् प्रजायेय' से भी काम का महत्व स्पष्ट है। वह ईश्वर के निष्काम मन में वास करता है। वैदिक काम ही शैवो के आगमशास्त्र में आनन्दोपासना का प्रतीक वना। प्रसादजी उसके उदात्त रूप की प्रतिष्ठा कामायनी द्वारा करने में प्रयत्नशील है। उनका इस विषय में आधुनिक मनोवैज्ञानिको तथा पौराणिक गाथाओ से मतभेद है[४२]। फ्रायड काम अथवा इच्छा का सम्वन्ध योनि से स्थापित करता है। इच्छायें ही दमित होकर कुठायें बन जाती है और तदनन्तर उनकी अभिव्यक्ति होती है। इस अतृप्त वासना का उदात्तीकरण कवि कर लेता है। इसी प्रकार मैकड्गल भी इच्छा से पश्चात्ताप, दुख, निराशा आदि का ग्रहण करता है। कामायनी का काम वैदिक मनोविज्ञान से प्रभावित है, जो मन को आनन्दमय करता है। मनु अथवा मन में काम के प्रवेश के साथ ही मधुमय वसन्त छा गया, उसे ज्ञात हो गया कि

> यह नीड मनोहर कृतियो का
> यह विश्व कर्म रगस्थल है
> है परम्परा लग रही यहा
> ठहरा जिसमें जितना वल है

वासना—

'काम' सर्ग में ही मनु के मन का काम अपने विकृत रूप पर विचार करने लगता है। देवताओ का सहचर वनकर भी वह केवल विनोद का साधन वना रहा। इसी कारण काम अनादि वासना मे परिणत हो गया। काम मानव की प्रगति वनने की कामना करता है। उसकी मूल शक्ति ही प्रेम कला है। मनु अपने काम के वास्तविक रूप को भूल जाते है। मन का काम पथभ्रष्ट हो जाता है। इस समय काम की वही अवस्था हो जाती है, जो वैदिक युग के पश्चात हुई थी। इसी कारण शकर ने स्वयम् कामदेव को भस्म कर दिया था। गीता मे भी

---

४१. कामना, पृष्ठ ५

४२ काव्य और कला, पृष्ठ २०

काम की निन्दा की गई[४३]। 'कामसूत्र' की रचना भी योनि आधार पर हुई। साधुसन्तों ने काम से बचने की शिक्षा दी। मनु ने काम के वास्तविक रूप को नही समझा। उन्होंने उसके सकुचित अर्थ को ग्रहण किया। इसी सकुचित दृष्टि के कारण मन में वासना का उदय हुआ। वासना इन्द्रिय की भोग लिप्सा तथा विषय-तृप्ति की कामना करती है। मनु का मन स्वयम् कामी हो जाता है। अपनी सकुचित दृष्टि के कारण ही वे पशु और पुत्र से भी द्वेष करने लगते हैं। वासना मन को विकृत कर देती है। मनु के मन मे ग्लानि भी उठती है इस स्थिति का वर्णन कवि ने साकेतिक प्रणाली से ही किया है .

छूटती चिनगारियां उत्तेजना उद्भ्रान्त
धधकती ज्वाला मधुर था वक्ष विकल अशान्त।
वात चक्र समान कुछ था बाधता आवेश
धैर्य का कुछ भी न मनु के हृदय में था लेश।

नारी पुरुष दोनो ही वासना के वातचक्र में फस जाते हैं। दोनो का ससर्ग ही वासना का सृजन करता है।

लज्जा—

वासना के कारण नारी लज्जा से गड जाती है। लज्जा एक अत्यन्त सूक्ष्म वृत्ति है, जो केवल सकेत और छाया बनकर रह जाती है। पश्चात्ताप और लज्जा भाव एक दूसरे के पर्याप्त निकट है। किसी कुकर्म के पश्चात्ताप चेतना विचित्र ग्लानि और पश्चात्ताप से भर जाती है। मन को दुख होता है। पर लज्जा में सकोच का अश अधिक है,वह स्वच्छन्दता पर एक झीना प्रतिबन्ध लगा देती है। यह सूक्ष्म भावना मन में अनायास ही प्रविष्ट होकर प्रत्यक्ष को भी स्वप्न करने लगती है। वह हृदय की परवशता बनकर सारी स्वतन्त्रता छीन लेती है। छाया प्रतिमा की भाँति वह धूमिल वर्णों से निर्मित है। लज्जा सौन्दर्य की रक्षा करती है। वह नारी का आभूषण है। नारी और उनके अन्तर में उठने वाली लज्जा की सूक्ष्म भावना के पारस्परिक वार्तालाप द्वारा कवि ने नारी पुरुष की समस्या पर भी विचार किया। अपनी सहृदयता से ही नारी पुरुष को वशीभूत कर सकती है। लज्जा श्रद्धा के मन में उदित होकर उसे गौरव सिखाती है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार वास्तव में लज्जा की भावना का उदय हीनता के कारण होता है। श्रद्धा में इस समय आत्मसमर्पण की भावना

---

४३ गीता ५।२६

अधिक है, जो मैकडूगल के अनुसार केवल हीनता का ही प्रतिरूप नही है। उसमें नम्रता, सामीप्य, स्नेह आदि की भावना भी आ जाती है[४४]। लज्जा के सूक्ष्म भावो का चित्रण कवि ने आरम्भ में ही किया है। यह आन्तरिक वृत्ति नारी के मन का पथ प्रशस्त करती है। स्वयम् अपना सुन्दर परिचय वह दे देती है :

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ
मैं शालीनता सिखाती हूँ
मतवाली सुन्दरता पग में
नूपुर सी लिपट मनाती हूँ।

कर्म—

वासना नारी मे लज्जा और पुरुष मे कर्म की विचित्र प्रवृत्ति का सृजन करती है। काम के सकुचित रूप का ग्रहण करने के कारण मनु वासना में लिप्त हो जाता है। इसी दृष्टि भेद के कारण कर्म का भी वास्तविक रूप उसके सम्मुख नही आता। वासना अतृप्ति का ही एक अन्य स्वरूप है क्योकि सदा उसकी तृप्ति सम्भव नही। इसी कारण मनु का मन हिंसात्मक कर्म में सलग्न होता है। किलात आकुलि नामक दो अन्य पतनोन्मुख वृत्तियाँ उसे और भी नीचे ले जाती हैं। मनु की रक्त पिपासा जागृत हो जाती है। वासना का कोई अन्त नही, उसकी सदा वृद्धि होती रहती है। मनु पशु बलि से अपनी इद्रिय तृप्ति करना चाहते है, किन्तु सोम अतृप्त वासना को बढ़ाता रहता है। जीवन के प्रत्येक सुख को तृप्त करने की कामना से कर्म करने वाला व्यक्ति दुर्वृत्तियो के पाश में फस जाता है। मनु भी सोम के द्वारा प्राण के रिक्त अश को मादकता से भर लेना चाहते हैं। वे कर्म का भी सकुचित अर्थ ग्रहण करते है। मनु के मन की चेतना-श्रद्धा उनकी पुण्यवृत्तियो को देखकर उन्हे कर्म का व्यापक रूप समझाती है। सुख को सीमित कर लेना ही दुख है। कवि का आग्रह कर्म के व्यापक स्वरूप तथा उसके आनन्दमय रूप के प्रति अधिक है। कर्म में प्रवृत्ति अनिवार्य है किन्तु उसका क्षेत्र व्यापक और उदात्त होना चाहिये। मन सकुचित वृत्ति के कारण उसके सुन्दर स्वरूप का ग्रहण नही कर पाता। कर्म अन्तर्मुखी और विस्तृत होना चाहिये जिसमे व्यक्तित्व का उचित विकास हो सके। उसमें व्यष्टि के स्थान पर समष्टि का आग्रह हो। कर्म पर सभी कुछ अवलम्बित है। मनु के व्यक्तित्व का विकास सकुचित दृष्टि के कारण उचित रीति से नही हो पाता। कर्म का

---

४४. Outline of Psychology—Page 324

हिंसात्मक रूप उनके सम्मुख आता है। यह भौतिक वृत्ति उन्हे और भी पतन की ओर ले जाती है। उनकी चेतना उन्हे अब भी सुपथ पर ले आने मे यत्नशील है।

ईर्ष्या—

काम, वासना, कर्म का अन्तिम विकृत रूप ईर्ष्या मे घनीभूत होकर प्रस्तुत होता है। ईर्ष्या की उत्पत्ति अभाव और हीनता के कारण होती है। सकीर्ण मनोवृत्ति उसका सृजन करती है। प्रतियोगिता मे स्वयम् को अशक्त समझने वाला व्यक्ति अपनी हीन भावना से क्षुब्ध, निराश होकर ईर्ष्यालु बन जाता है। उसका अह पूर्ण जागृत होकर आत्मकेन्द्रित बनता है। उसकी सीमाये और रेखायें निश्चित हो जाती है। दूसरो के प्रति व्यक्ति असहिष्णु और अनुदार हो जाता है। मार्ग मे जाता हुआ अभावग्रस्त, अशक्त व्यक्ति आगे बढने वाले पथिक के साथ नही चल पाता। अपनी हीनता से विवश होकर वह पथिक को हानि पहुँचाने का प्रयत्न करता है। ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि भाव अन्य को सुखी नही देख सकते। मनुष्य मन पर से नियत्रण और अधिकार भी खो बैठता है। ईर्ष्या के कारण ही मनु को श्रद्धा चेतन शक्ति के होते हुये भी अभाव प्रतीत होता है। चेतना के नियत्रण और प्रदर्शन को ही वे बन्धन समझने लगे। जीवन-सघर्ष की उनकी भावना भी सकीर्ण मनोवृत्ति का परिचायक है। अभी मनु के सस्कार पूर्णतया नही विलीन हो सके। अह के साथ ही उनका आदिम मानस भी जागरूक है। देवत्व सुख का विनाश याद आने के कारण भी वे जीवन मे भोग-विलास की तृप्ति की कामना करने लगते है। ईर्ष्या के वशीभूत होकर स्वयम् अपने जीवन और शरीर के ही एक अश, भावी सन्तान के प्रति वे द्वेष करने लगते है। प्रेम की व्यापकता को वे विभाजन समझ बैठे। उनका अन्तर्मन ईर्ष्या से जल उठता है। वे 'ज्वलनशील अन्तर' लेकर श्रद्धा को छोडकर चल देते है। कवि ने सकीर्ण दृष्टि की परिणति ही प्रस्तुत कर दी है। मन की समस्त ईर्ष्या से मनु कहते है:

> यह जलन नहीं सह सकता मैं
> चाहिये मुझे मेरा ममत्व
> इस पंचभूत की रचना में
> मैं रमण करूँ बन एक तत्व

इड़ा—

मानव मन अपने अतृप्ति, अभाव, असन्तोष का परितोष बुद्धि से करना चाहता है। तर्क अथवा बुद्धि विश्लेषण के द्वारा हृदय की कोमल भावनाओ पर

शासन करते हैं। अग्नि पर भस्म की भाँति छाकर मन को केवल क्षणिक भुलावा दे देते हैं। मनु का मन बुद्धि के द्वारा अपनी तृप्ति का प्रयत्न करता है। जब बुद्धि मन का सचालन आरम्भ कर देती है तब मन की भावनाये स्वतन्त्र नहीं रह सकती। यही मन और बुद्धि में द्वन्द्व भी होने की सभावना रहती है। विज्ञान से सम्बन्धित आधुनिक बुद्धिवादी विकास की एक साधारण रूपरेखा प्रसादजी ने प्रस्तुत कर दी। सारस्वत प्रदेश बौद्धिक विकास, भौतिक उत्कर्ष का प्रतीक है, किन्तु अब भी उसमें अभाव है। बुद्धि की प्रतिनिधि इडा के रूपवर्णन से ही कवि ने बुद्धि के गुणो का अकन भी किया। एक विचित्र अतृप्ति और क्षोभ की स्थिति में ही मन बुद्धि के अतिरजित अनुशासन को स्वीकार करता है। अतृप्त मनु ने इडा से पूछा .

'हे देवि वता दो जीवन का क्या सहज मोल'

इडा उन्हे बुद्धिवाद अपनाने के लिये कहती है। बुद्धि का अनुशासन स्वीकार करने के पूर्व पश्चात्ताप के कारण मनु का मन श्रद्धा की चेतनशक्ति का मूल्य आक रहा था। वे स्वय पर क्षुब्ध हो रहे थे। उनके अन्तर का काम जाग्रत होकर चेतना के वास्तविक स्वरूप का वोध कराता है। भावी आशकाओ से उनका मन वोझिल हो जाता है। मानसिक द्वन्द्व पर बुद्धि आवरण डाल देती है। चिरन्तन सत्य तर्क जाल में विलीन हो जाता है, किन्तु उसका अन्त नही होता, हृदय की भावनायें मरती नही, दवकर रह जाती हैं। मनु के मन की डावाडोल स्थिति अव भी सभल न सकी। समस्त वासनायें अव भी भस्मावृत चिनगारी की भाति मन में हैं। प्रसाद के वुद्धिवाद की कल्पना आधुनिक भौतिक विज्ञान के प्रति प्रतिक्रिया है।

स्वप्न—

स्वप्न की कल्पना कथानक को गति देने के लिये की गई। इसके निर्माण मे दर्शन और मनोविज्ञान का सम्मिश्रण प्रस्तुत हो गया है। शारीरिक विज्ञान के अनुसार निद्रा अयवा स्वप्न केवल अधिक परिश्रम के कारण आते है। वृह-दारण्यक उपनिपद् का कयन है कि आकाश में श्वेन, सुपर्ण सव ओर उडकर अन्त मे शिथिल हो जाता है। तभी वह पख फैलाकर नीड को जाता है, जहा सो जाने पर वह किसी भोग की कामना नही करता[८५]। इसी प्रकार प्रसाद की भी कल्पना है

---

८५ वृहदारण्यक उपनिषद्, ४।३।१९

नील गगन में उड़ती उड़ती विहग बालिका सी किरनें
स्वप्न लोक को चलीं थकी सी नींद सेज पर जा गिरने

निद्रा और स्वप्न के दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक विवेचन में उपनिषद् आध्यात्मिकता और रहस्य भावना का भी आरोप करते है। स्वप्न वास्तव मे पूर्ण चेतन और अचेतन के मध्य की सी स्थिति है। मानव मन कल्पना, सत्य दोनो का आनन्द ले लेता है। कामायनी का स्वप्न जागृत स्वप्न की भाँति है। श्रद्धा एक प्रकार का दिवास्वप्न ही देखना आरम्भ करती है, जिसमें उसके अन्तर की जिज्ञासा उदित होकर अनेक प्रश्न करती है। एकाकिनी विरहिणि सध्या की धूमिल छाया में एक विचित्र विस्मरण की अवस्था मे सम्पूर्ण कथा पर विचार करती है। वह स्वयम् अपने अन्तर्मन मे बातें करती जाती है। सन्ध्या वेला मे ही नारी नटखट बालक को लोरियो से सुला देती है। रजनी के आगमन के साथ ही उसका जागृत दिवास्वप्न सुषुप्ति अथवा निद्रा की अवस्था मे चला जाता है। तभी वह मनु और इडा के क्रिया व्यापार को देखती है। मनु और प्रजा का द्वन्द्व भी उमे दिखाई देता है। उसके स्वप्न का अन्त हो जाता है:

श्रद्धा काँप उठी सपने में, सहसा उसकी आँख खुली
यह क्या देखा मैंने, कैसे वह इतना हो गया छली।
स्वजन स्नेह में भय की कितनी आशंकायें उठ आतीं
अब क्या होगा, इसी सोच में व्याकुल रजनी बीत चली।

इस प्रकार स्वप्न का जागृत और सुषुप्त रूप सम्मुख आता है। फ्रायड के स्वप्न मनोविज्ञान को कवि की जागृत कल्पना ने सम्बन्धित किया। फ्रायड के अनुसार प्रत्यक्ष वस्तु (manifest content) के मूल में कोई एक प्रच्छन्न वस्तु (latent content) रहती है जो स्वप्न की वास्तविक वस्तु है। प्रच्छन्न वस्तु में कोई कुंठा होती है, जिसका निर्माण अचेतन मन द्वारा होता है। यह कुंठा ही वास्तविक अथवा प्रत्यक्ष रूप मे प्रकाशित होकर इच्छा पूर्ति (wish-fulfilment) करती है। स्वप्न के अनेक कारण बनाकर उसने दिवास्वप्न, कवि की कल्पना आदि को मानसिक क्रिया कलाप के अन्तर्गत स्थान दिया। कुंठाओ का उदात्तीकरण (sublimation) ही कला में प्रस्फुटित होना है। फ्रायड बालक और कवि की कल्पना की तुलना भी करता है[४६]। प्रसाद की स्वप्न कल्पना अतृप्त इच्छा अथवा कुंठा नही है, वह

---

४६. The Relation of the Poet to Day Dreaming.—
Collected Papers IV Vol Page 174

कथानक को आगे ले जाने का ही एक क्रम है। दार्शनिक विवेचन से मनु के मन की चेतन शक्ति श्रद्धा सदा जागरूक रहती है। उसे सम्पूर्ण परिस्थिति का ज्ञान होता रहता है। अचेतन मन मे होने वाले समस्त क्रिया व्यापार चेतन शक्ति के सम्मुख स्पष्ट होते है। अपनी सकुचित दृष्टि के कारण मनु के मन ने अपनी ही चेतन शक्ति को भुला दिया है, किन्तु वह आज भी जागरूक होकर प्रत्येक वस्तु का निरीक्षण कर रही है। जागृत स्वप्न, कल्पना और निद्रा से ही कवि ने उसका निर्माण किया, जिसमें किसी विशेष सिद्धान्त की अपेक्षा उसकी स्वच्छन्द कल्पना का योग अधिक है।

संघर्ष—

काम, वासना, कर्म, ईर्ष्या, अनुचित ग्रहण तथा बुद्धि का अतिवाद ही सघर्ष का सृजन करता है। सघर्ष विरोधी शक्तियो में होता है। प्रकृति पुरुष, देव दानव, हृदय बुद्धि के पारस्परिक द्वन्द्व के मूल में यही भावना सन्निहित है। प्रकृति के साथ सघर्ष करके स्वयम् देवता पराजित हो चुके थे। प्रकृति दुर्जेय है, उस पर विजय सम्भव नही[४७]। मनु के मन का व्यभिचार बढता ही जा रहा है। आरम्भ में उन्होने काम के सकीर्ण अर्थ का ग्रहण किया। उनकी भोग-लिप्सा जागृत हो गई। वासना और इच्छा की कोई सीमा नही, कोई अन्त नही। वासना की वृद्धि होती चली जाती है। मन शारीरिक सुख में लीन हो जाता है। हिंसा और मिथ्याचार मे उसकी प्रवृत्ति होती है। सकीर्णता के कारण ही वह ईर्ष्यालु भी बनता है। उसकी अहमन्यता तीव्र हो जाती है। अतृप्ति और असन्तोप को मन बुद्धि के आवरण मे रखने का प्रयत्न करता है, किन्तु निष्फल सघर्प समस्त विप का कार्यान्वित्त स्वरूप है। मन मे सग्रहीत होती रहने वाली दुष्प्रवृत्तियाँ अनायास ही विस्फोट रूप में प्रकट होती है। मनु के मन की अतृप्ति ही सघर्प का कारण है। नियामक और प्रजा का यह सघर्प भौतिक विप्लव है। मनु का मन स्वयम् आत्मजा मे ही द्वन्द्व करता है। यह उसके मानसिक, आन्तरिक सघर्प का ही प्रतीक है। उनके मन में द्वयता का उदय ही विभीपिका का सृजन कर चुका है। कामायनी के सघर्प में मन बुद्धि, प्रकृति पुरुष, राजा प्रजा का सघर्म होता है। मनु स्वयम् कहता है

> आज शक्ति का खेल खेलने में आतुर नर
> प्रकृति सग संघर्ष निरन्तर अव कैसा डर

मनु के मन का सम्पूर्ण व्यभिचार भी इसी अवसर पर जागृत होकर बुद्धि,

---

४७. कामायनी, पृष्ठ ७

प्रकृति पर अबाध अधिकार चाहता है। कल्पना तक तो वह उचित था, किन्तु कार्यान्वित करने के प्रयास मे ही संघर्ष होता है। प्रजा के रूप मे समस्त बिखरी हुई शक्ति विद्रोह कर देती है। मनु का मन पराजित होता है। किलात आकुलि की आसुरी वृत्तियाँ भी इसी अवसर पर उपस्थित होती है।

निर्वेद——

झंझावात समाप्त हो जाने पर शान्ति आती है। मनु के अन्तर की समस्त दुष्प्रवृत्ति भी संघर्ष के पश्चात् शिथिल हो जाती है। उनके मन मे निर्वेद भर आता है। निर्वेद मे खेद, दुख, वैराग्य और पश्चात्ताप की भावना का विचित्र सम्मिश्रण रहता है। इसकी उत्पत्ति आशा और विश्वास के समाप्त होने पर होती है। मन खिन्नता से भर जाता है। पश्चात्ताप के द्वारा मन अपनी दुर्बलताओ को स्वयम् जान जाता है। उसे बडी ग्लानि होती है। परास्त होकर मनु के मन की भी यही स्थिति थी। आज पतन का समस्त चित्र उनके सम्मुख था। वे अपनी भूल जान गये थे। आरम्भ मे ही इड़ा 'अपराधी' की ओर इंगित करती है[४८]। पश्चाताप से मनुष्य अपनी गई हुई चेतना को लौटा ला सकता है। असफलता ही सफलता का रहस्य है। ग्लानि से भरा मन खोये हुये वैभव को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। मनु को भी उसकी श्रद्धा चेतना पुन. मिल जाती है। वह स्वयम् अपना परिचय दे देती है। चेतना की इस काव्यात्मक परिभाषा मे कवि ने दार्शनिक निर्देश भी किये है। चेतना सरल, सजल, मधुर और विकसित है। श्रद्धा चेतना ने मनु के जीवन की समस्त जडता हर ली थी, आज पुन —

> उधर प्रभात हुआ प्राची में
> मनु के मुद्रित नयन खुले।

मनु का मन गद्‌गद् हो उठता है। वे अपनी समस्त पराजय चेतना से कह डालते है। चेतना के प्रति वे कृतज्ञता प्रदर्शित करते है। उनके वरदान को उनके मन ने स्वीकार किया। चेतना की 'मंगलमयी मधुर स्मृति' ने ही उन्हे जीवन का दान दिया था। चेतना की उदात्त परिभाषा करते हुये कवि ने कहा है:

> हृदय बन रहा था सीपी सा
> तुम स्वाती की बूंद बनी
> मानस शतदल झूम उठा था
> तुम उसमें मकरन्द बनी

४८. कामायनी, पृ० २१०

मानव मन की चेतना ही उसका प्राण है। वह साक्षात् 'अमृत' है। चेतना को अन्तर्मुखी बनाना भी आवश्यक है, अन्यथा मानव की शक्ति क्षीण होती रहती है। किन्तु अभी मनु के मन का झझावात पूर्णतया शान्त न हो सका था। पश्चाताप और ग्लानि निराशा का सचार कर रहे थे। रजनी के प्रहरों में चेतना सुषुप्ति की अवस्था में चली जाती है। तभी मनु का अचेतन मन मानसिक झझावात में लीन हो गया। वे जीवन के इन्द्रजाल से घबडा उठे। उन्हे सभी कृतघ्न दिखाई दिये, और वे पुन भाग खडे हुये।

दर्शन—

पश्चाताप और ग्लानि अन्त में मनुष्य को उसकी चेतना से समन्वित कर देते है। दार्शनिक शब्दो में वह आत्मा का मूल रहस्य जान जाता है। उसके समक्ष शक्ति साकार हो उठती है। उसे आत्मदर्शन हो जाता है। 'दर्शन' के आरम्भ में ही श्रद्धा जीवन के रहस्य का उद्‌घाटन अपने पुत्र से करती है। चेतना को प्रत्येक वस्तु का बोध रहता है। वह ससृति की समस्या सुलझाती है। उसके सम्मुख बुद्धि भी तुच्छ है। चेतना का स्थान सर्वोपरि है। मानव को जीवन की वास्तविकता का दर्शन कराने के पश्चात श्रद्धा चेतना इडा की बुद्धि को भी समझाती है। इडा अपनी भूल स्वीकार कर लेती है। वह अपनी अकिंचनता लेकर चेतना के गौरव के सम्मुख विनत हो जाती है। चेतना बुद्धि को उसकी भी वास्तविक रूपरेखा बताती है। बुद्धि पूर्णतया त्याज्य नही, वह ज्ञान है, किन्तु उसका अतिवाद अनुचित है। चेतना ही उसका महत्व स्थापित कर मानव को उसके हाथो सौंप देती है। 'समरसता' का सन्देश देकर पुन अपने मनु के कल्याण के लिये चल पडती है। चेतना का कार्य है, मन का पथ प्रदर्शन। श्रद्धा भी मनु को पा लेती है। एकान्त मे मनु श्रद्धा चेतना का वास्तविक रूप जान जाते है। वह 'मातृ मूर्ति विश्वमित्र' है। श्रद्धा अपनी सम्पूर्ण चेतना से मनु के मन में जीवन का सत्य दर्शन भर देती है। एक युग के पश्चात मनु को उनकी खोई हुई चेतना मिली और उन्होने उसके वास्तविक महत्व को जाना। मन जब तक अपनी चेतना और शक्ति को नही पहचानता, मृगमरीचिका में भटकता रहता है। चेतना प्रत्येक वस्तु का दर्शन मानव मन को करा देती है। वास्तविक तत्व स्पष्ट हो जाता है। जगत, जीवन से लेकर सत्य तक उसके क्षेत्र में आ जाते है। चेतना के कारण मन शान्ति का अनुभव करता है। सर्वत्र प्रकाश छा जाता है। मनु के समक्ष भी ज्योत्सना की सरिता ही प्रवाहित होने लगी। समस्त अन्धकार विलीन हो गया। नटराज स्वयम् प्रसन्नता से नृत्य कर उठे। इन सुन्दर चित्रों का दर्शन मन चेतना, विश्वास और श्रद्धा के ही द्वारा कर

सकता है। चेतना के द्वारा वास्तविक तत्व का दर्शन करने से मन को सुखमय स्थिति प्राप्त होती है।

रहस्य--

दर्शन के साथ ही प्रत्येक रहस्य को मन जान जाता है। रहस्य दर्शन का ही स्थायी स्वरूप है। चेतना के सहयोग से मन आत्मदर्शन कर लेता है। उसकी भ्रान्ति समाप्त हो जाती है। अपने वास्तविक रूप में वस्तुये आ जाती है। मन की चचलता समाप्त हो जाती है। वह सुन्दर और शाश्वत का ही ग्रहण करता है। उसका लक्ष्य क्षणिक तृप्ति के स्थान पर चिरन्तन सत्य की प्राप्ति हो जाता है। रहस्य की अभिव्यजना में मन को केवल भौतिक परितोष ही नही होता, वरन् अन्तरतम भी प्रसन्न हो उठता है। चेतना ही में जीवन में सामजस्य लाने की अद्भुत क्षमता होती है। रहस्यवाद और मनोविज्ञान के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करते हुये अन्डरहिल ने लिखा है कि ..."रहस्यवादी को यह भली भाँति ज्ञात होता है कि सामान्य मानव मे आध्यात्मिक भावना उसकी चेतनता के आवरण मे निहित रहती है। इस दृष्टि से वह मनोवैज्ञानिक से भी अधिक वैज्ञानिक है[४९]।" प्रसाद की कल्पना भी मनोविज्ञान के धरातल से ऊपर उठ गई है। 'रहस्य' के अन्तर्गत उन्होंने श्रद्धा के द्वारा जीवन की पूर्णता, उसके शाश्वत मूल्यो के रहस्य का उद्घाटन कराया है। चेतना मन को दुर्बलता से लडने की शिक्षा देती है। उसी के सहारे मन निरन्तर उच्च भावना की ओर बढता चला जाता है। भविष्य की आशा उसे निरन्तर गतिमान करती है। मन को श्रद्धा इच्छा, ज्ञान, क्रिया का स्वरूप समझाती है। ज्ञान और ज्योति से समन्वित चेतना में ही इसकी शक्ति होती है। इच्छा ही पाप पुण्य की जननी है। इच्छा का उदात्तीकरण भाव की सर्वोत्कृष्टता है। वसन्त पतझर, अमृत हलाहल सभी उसमे निहित है। इच्छा का सर्वोत्तम रूप ही वैदिक काम है। कर्म अत्यन्त भीषण जगत है। ज्ञान वास्तव मे सामजस्य हेतु है, किन्तु विषमता का प्रसार करता है। अन्त में श्रद्धा ही उन्हे समन्वित कर देती है।

आनन्द--

अन्तिम भाव आनन्द है। मन वास्तव मे किसी-न-किसी रूप में तृप्ति

---

४९. Mysticism, page 53

और परितोष के लिये ही प्रयत्नशील रहता है। इन सभी का समीकरण आनन्द में हो जाता है। आनन्द अधिक व्यापक और आध्यात्मिक शब्द है। उसका क्षेत्र मनोवैज्ञानिको के 'मनोरजन सिद्धान्त' से अधिक विस्तृत है। आनन्द की उपलब्धि में प्रयत्नशील मानव अनेक अनुभवों और सघर्षों के मध्य गुजरता है, किन्तु अन्त में चेतना की सहायता से उसे उसकी प्राप्ति होती है। आनन्द चिरन्तन सुख '(bliss)' है। ससार का समस्त ज्ञान आनन्द के लिये ही प्रयत्नशील है। वह मानव मन की अनवरत साधना है। मानव मन का प्रतीक मनु अन्त मे जीवन के चरम लक्ष्य को पा जाता है। आनन्दप्राप्ति के साथ ही समस्त द्वयता और मनोवैज्ञानिक समस्यायें समाप्त हो जाती है। मन की समस्त पिपासा शान्त हो जाती है। मन की शक्तियाँ केन्द्रित होकर कार्य करती है। जीवन की सम्पूर्णता और उसके शाश्वत मूल्यो से ही यह आनन्द-वाद निर्मित होता है। आनन्द के निर्माण में प्रसादजी ने शैव दर्शन का अधिक आश्रय लिया। शैव ग्रन्थो के अनुसार शिव आनन्दरूप है। इसका मनोवैज्ञा-निक आधार, ससार मे अपने व्यक्तित्व का अधिकाधिक प्रसार है। आनन्द की प्राप्ति भावनाओ के सम्मिश्रण से ही होती है। अनेक मानसिक क्रिया व्यापार सम्मिलित रूप से उसका सृजन करते है। उसकी प्रक्रिया एकाकी नही, सम्मिलित है। आनन्द प्राप्ति के इसी कारण नाना उपाय मनु इडा और सारस्वत नगर निवासियो को बताते है। भेद-भाव का विस्मरण, ससृति की सेवा, पूर्ण काम आदि मिलकर ही मन को आनन्द देते है। अन्त में मनु के मन मे शुद्ध, शाश्वत चेतना व्याप्त हो जाती है। केवल मनु ही नही, समस्त मानवता का मन आनन्द से भर गया।

मानव मन का मनोवैज्ञानिक विश्लेपण, उसकी प्रकृतियो का सूक्ष्म निरीक्षण करने मे कवि ने आधुनिक मनोविज्ञान और भारतीय दर्शन से निकटता स्थापित की। मानवीय भावो के साथ ही आध्यात्मिक निरूपण भी उनका लक्ष्य था। कामायनी में मन में उठने वाले भावो में एक तारतम्य स्पष्ट प्रतीत होता है। आधुनिक मनोविज्ञान भी इससे सहमत है। उसके अनुसार मानसिक क्रिया क्रमिक रीति से होती है। एक भाव का सम्बन्ध अन्य से रहता है। मानव मन के मानसिक झझावात की एक रूप-रेखा ही कवि ने प्रस्तुत कर दी है। जीवन पथ पर वह भावो के उत्थान पतन मे ही भागता है। इन भावो और प्रवृत्तियो को निकाल देने पर मानव कुछ भी शेष नही रह जाता। मनु तथा श्रद्धा साधारण पुरुष नारी की भाति प्रतीत होते है। किन्तु दार्शनिक समन्वय के कारण श्रद्धा अधिक आदर्शमय हो गई। उसमें भारतीय आत्मा तथा

पाश्चात्य चेतना का समन्वय है। स्वीडनवर्ग के अनुसार चेतना मानव में ईश्वर की उपस्थिति है[५०]। अपने नारी रूप मे भी श्रद्धा कोमल भावनाओ का प्रतीक है। वह मनु पर अत्यधिक ममता रखती है। सदा उसके हित की कामना करती है। मैकडूगल भी इसे स्वीकार करता है कि कोमल हृदय की नारिया शीघ्र सहानुभूति और दया प्रदर्शित करने लगती है[५१]। भावनाओ के चित्रण मे मूलभावना के साथ ही कवि ने उससे सम्बन्धित अन्य भावनाओ को भी ले लिया है। चिन्ता के साथ ही विस्मरण, जडता आदि का वर्णन है। आशा में जिज्ञासा, कुतूहल, अनुराग, आकाक्षा का भी समावेश है। श्रद्धा के गुण दया, माया, ममता, समर्पण, विश्वास आदि आ गये है। काम, कर्म के व्यापक और सकुचित दोनो रूप चित्रित है। ईर्ष्या मे हीनता की भावना, द्वेष और प्रपीडन की भी चर्चा है। लज्जा की अत्यन्त सूक्ष्म भावना मे सकोच, सकेत को स्थान मिला। स्वप्न, निर्वेद की धूमिल भावनाये छाया खडो की भाति अकित है। उच्चतर भाव दर्शन, रहस्य, आनन्द शाश्वत उपादानो से निर्मित है। मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास-सा प्रस्तुत हो जाता है।

मन का विश्लेषण करने के अतिरिक्त प्रसाद ने उसमे सामाजिक मनोविज्ञान का भी समावेश किया है। सारस्वत प्रदेश की स्थिति उसी से प्रभावित है। समस्त प्रजा एक साथ मनु के विरुद्ध विद्रोह कर देती है। वह एक क्षण के लिये अपने नियामक का भी ध्यान नही रखती (mob-psychology)। उसका कारण स्वयम् राजा का एकागी शासन है। सारस्वत प्रदेश केवल भौतिक दृष्टि से ही सम्पन्न है, उसे नीति की शिक्षा नही दी गई, अन्यथा राजा के प्रति विप्लव कैसे करती। अन्त में भी समस्त नगर निवासी सामूहिक मनोविज्ञान से प्रभावित है। मनु का व्यक्तित्व और उपदेश उन्हे आश्चर्यचकित कर देता है। मानवता का विकास होने के कारण कामायनी मे मानव विज्ञान के चिह्न वर्तमान है। ग्राम मे रहनेवाला मनु अन्त में नगर मे आकर विशाल भवनो का निर्माण करता है। उसके साधन निरन्तर बढते ही चले जाते है। इधर-उधर बिखरे रहने वाले समुदाय अन्त मे समाज का निर्माण करते है। वे अपना राजा भी निर्वाचित कर लेते है। उनकी शक्ति भी प्रजातान्त्रिक है, जो विद्रोह करती है। 'सघर्ष' सर्ग का भौतिक विकास वर्तमान सभ्यता का ही चित्रण है। यज्ञ तथा आखेट करने आदि की स्थिति से मनु नागरिक सभ्यता तक

५० "Conscience is God's presence in man"—Swedenberg.

५१ An Outline of Psychology—Page 335.

पहुँचते है। अन्त मे ज्ञान की वृद्धि दर्शन, अध्यात्म का भी निर्माण करती है श्रद्धा कोई नील परिधान ही धारण किये थी, किन्तु इडा के चरणो में नूपुर थे वह आलोक वसन पहने थी। क्रमिक विकास मे मानव विज्ञान के केवल सकेत मात्र प्राप्त होते है। सभ्यता का क्रमिक विकास ही होता है[५२]। 'कामायनी भी इस ओर इगित करती है। श्रद्धा अपने भावी पुत्र के लिये वेतसी लता क झूला डालती है। उसने 'कुटीर' का निर्माण किया। 'कामायनी' में आदि से अन्त तक मानवता के विकास की रेखायें स्पष्ट है। मातृ-सत्ता युग के अनन्त पितृ सत्ता युग भी आता है। मनु का आरम्भिक व्यक्तिवाद अन्त में सार्वभौमिक भावना में परिणत हो जाता है। भावो की दृष्टि से प्रारम्भ की भावनाय आदिम मानव में भी विद्यमान थी, किन्तु अन्तिम भाग की उच्चतर भावनायें सभ्यता के विकास के साथ ही उसने सीखी। वन में रहने वाले आदिम मानव को भी अपनी चिन्ता रहती ही थी, किन्तु जीवन में सामजस्य का प्रयास आधुनिक ज्ञान विज्ञान की देन है। वर्वरता और सभ्यता के मध्य एक विभे दक रेखा खीच देना सम्भव नही, किन्तु क्रमिक विकास द्वारा उनमें परिवर्तन और अन्तर देखा जा सकता है। सर आर्थर कीथ ने निरन्तर गतिमान सभ्यता को एक सम्मिश्रण की स्थिति मे स्वीकार किया है[५३]। कामायनी मानव विज्ञान की दृष्टि से इन विकास की रेखाओ का प्रतिपादन करती है।

समन्वय और समरसता--

दार्शनिक दृष्टि से कामायनी एक प्रौढ कृति है। इसके पूर्व गीतो का आश्रय लेने के कारण प्रसाद अपने दार्शनिक मत का प्रतिपादन बिखरे हुये रूप मे ही कर सके। यहा उन्हे काव्य में सर्वप्रथम बार पर्याप्त अवसर मिला। एक व्यापक आधार के कारण वे दार्शनिक सत्य का भी निरूपण कर सके। दर्शन काव्य की ध्वनि है। वह उसका गीतभार है। 'कामायनी' के कवि ने सर्वत्र सामजस्य पर दृष्टि रक्खी है। यह सामजस्य अथवा मिलन प्रत्यभिज्ञा दर्शन का समरसता सिद्धान्त है। विरोधी शक्तियो को केन्द्रित कर उनमे सम्मिलन स्थापित करना ही उसका लक्ष्य है। उपनिषद् शैव दर्शन की इसी समरसता को अद्वैत भावना में प्रस्फुटित करते है। अध्यात्म के क्षेत्र का प्रमुख सघर्ष प्रकृति और पुरुष का है। इसी कारण देवत्व का विध्वस हुआ था। मनु इसी से अपनी रक्षा करना चाहते है किन्तु अन्त में भौतिक उन्नति के लिये वे

---

५२ Anthropology—Vol I Taylor, page 15

५३ Essays on Human Evolution—Sir Arthur Keith, page 69

क्षण भर के लिये प्रकृति पर शासन कर लेते है। वैज्ञानिक यन्त्रो से प्रकृति पर अनुशासन करते है। साख्य दर्शन मे प्रकृति पुरुष की समस्या पर विशेष प्रकाश डाला गया। साख्यकारिका १०, ११ के अनुसार सत्व, तम, रज गुणो मे साम्यावस्थारूप प्रकृति कारणरहित, नित्य, व्यापक, निष्क्रिय, एकाकी, निराश्रित, निरवयव, स्वतन्त्र, विवेकरहित, सामान्य, अचेतन और प्रसवधर्मिणी है। इसके विपरीत पुरुष त्रिगुणातीत, विवेकी, विशेष, चेतन, अविकारी तथा नित्य है। प्रकृति और पुरुष के सयोग से ही सृष्टि का सृजन होता है[५४]। विरोधी शक्तिया मिलकर एक दूसरे की पूर्ति कर देती है। साख्यदर्शन (गौडपाद) अन्धे और लगडे का उदाहरण प्रस्तुत करता है। जिसमे वे मिलकर कार्य कर लेते है। 'कामायनी' मे प्रकृति पुरुष का सघर्ष अन्त में समाप्त हो जाता है, जब कि प्रकृति के विशाल रगमच पर ही पुरुष अपने को आसीन करते है। प्रकृति का अणु अणु समस्त नागरिको को आह्लादित कर देता है। कैलाश तथा मानसरोवर आनन्द के भडार बन गये।

समन्वय के अधिक व्यावहारिक पक्ष मे नारी पुरुष आते है। श्रद्धा और इडा दोनो ही नारियां मनु को अपनी सहानुभूति देती है। श्रद्धा ने उन्हे हृदय दान दे दिया था। उनकी समस्त जडता उसने हर ली। प्रलयकालीन क्षुब्ध मनु को सृष्टि मे नियोजित करने का श्रेय श्रद्धा को ही है। सम्पूर्ण कथानक में उसका महत्वपूर्ण और सर्वोपरि स्थान है। वह अपने प्रणय से मनु का शृगार करती है। जीवन मे आनन्द लाने का सम्पूर्ण श्रेय भी उसे है। वास्तव मे श्रद्धा के अभाव मे मनु का जीवन शून्य सा रह जाता है। उसका समर्पण त्यागमय है। इडा भी कम त्याग नही करती। जब मनु को कही शरण न थी, तब उसने उन्हे आश्रय दिया। क्षुब्ध मनु को राज्य का नियामक बना दिया। किन्तु मनु नारी के वास्तविक मूल्य और स्नेह को नहीं समझ पाते।

'तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की
समरसता ही सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।

कोमल भावनाओ की नारी पुरुष के कठोर हृदय पर केवल अपनी सहृदयता से ही शासन कर सकती है। अलाउद्दीन ने कमला से यही अनुनय की थी[५५]। कौमार्य प्रतिमा नारी 'कामायनी' में पुरुष को समर्पण करती दिखाई

---

५४. Indian Philosophy, II, page 287

५५. 'शासन करोगी इन मेरी क्रूरताओं पर
निज कोमलता से मानस को माधुरी से—'

प्रलय की छाया, लहर, पृष्ठ ७१

देती है। श्रद्धा स्वयम् बारम्बार अपने मनु को 'सरिता, मरु, नग, कुज, गली' में खोज लेने के लिये विकल है। किन्तु मनु भी उसे एक बार पाकर भयावने अन्धकार मे खो नही देना चाहते। वे अन्त मे अपनी समस्त भावनाये उसे समर्पित कर देते है। नारी पुरुष की समस्या का समाधान कवि ने दोनो के स्नेहपूर्ण मिलन मे कराया है। श्रद्धा मनु मिलकर आनन्द तक जा सकते है। वास्तव मे नारी पुरुष एक दूसरे के पूरक है। 'वासना' सर्ग के आरम्भ मे ही उन्हे गृहपति अतिथि, प्रश्न उत्तर, सिन्धु लहर, प्रभात किरण, आकाश घनश्याम के सुन्दर प्रतीको मे चित्रित किया गया है। नारी पुरुष अपने प्रेमिका और प्रेमी रूप मे भी एक स्नेह-पाश मे बद्ध होकर ही सुखी रह सकते है। नारी पुरुष की चिरन्तन समस्या को प्रसादजी ने अत्यन्त आदर्शवादी रीति से सुलझाया है। स्वयम् मनु नारी को अनेक विशेषणो से समन्वित करते है। अपने त्याग, बलिदान से ही नारी माया, ममता का बल तथा शान्तिमयी शीतल छाया होती है। कवि की दृष्टि मे नारी पुरुष का सगम ही जीवन का सुख है। इसी प्रकार की पहेली राजा प्रजा, अधिकारी अधिकृत, शासक शासित, व्यक्ति समाज की भी है। मनु का अपनी ही आत्मजा प्रजा से सघर्ष हुआ। स्वय जनता ही उनके विरुद्ध विद्रोह कर उठी। इसके मूल मे सहयोगिता का अभाव है। मनु ने प्रजा के लिये नियम बनाये थे किन्तु नियामक होकर वे स्वयम् उनका पालन करने को तत्पर न थे। वे अत्याचारी और व्यभिचारी हो गये। मनु वास्तविक राजा भी न थे। राष्ट्रस्वामिनी तो इडा थी। वे केवल एक मत्री की भाँति थे। रानी पर अधिकार करने के अतिरिक्त उन्होने प्रजा की भी चिन्ता न की। प्रजा ने विद्रोह किया। सघर्ष मे मनु आहत हुये। इडा के द्वारा ही कवि ने शासक शासित के सुन्दर सम्बन्ध की व्याख्या की है

लोक सुखी हो आश्रय ले यदि उस छाया में
प्राण सदृश तो रमो राष्ट्र की इस काया में।

मन में बुद्धि हृदय की भाति सुख-दुख, आशा निराशा का भी अनवरत सघर्ष चला करता है। व्यक्ति थोडे मे दुख मे ही निराश हो उठता है। साधारण सा क्षणिक सुख उसे उन्मत्त कर देता है। सुख-दुख तो एक ही जीवन के दो अग है। बिना दुख के सुख का कोई महत्व नही और दुख के अनन्तर ही तो सुख आता है। मानव-जीवन की सफलता दोनो का ही भार वहन करने मे है। सुख-दुख मे लडता भिडता मनु अन्त मे आनन्द तक पहुच ही गया। श्रद्धा ने अपने प्रथम परिचय मे निराश आदिपुरुष को सुख-दुख का रहस्य समझाया था, 'दुख की रात्रि के अन्तिम प्रहर में ही सुख का नवल प्रभात विकसित हो जाता

है। अभिशाप के आवरण मे ही वरदान छिपे रहते है। दुख और सुख से ही विकास होता है।' अपने सुखो की तृप्ति मे ही मग्न रहनेवाले मनु की कामना बढती जाती है और अन्त मे उसे कष्ट होता है। श्रद्धा अधिक तटस्थ रहती है। सुख-दुख जीवन का शृगार करते है। इसी प्रकार कर्म और भोग का समन्वय भी आवश्यक है। केवल भोग की कामना करने वाला व्यक्ति प्रगति नही कर सकता। इच्छा पूर्ति के लिये कर्म की अपेक्षा होती है। भोग, कर्म और जड़, चेतन को एक ही साथ प्रसाद जी ने ले लिया है।

कामायनी का लक्ष्य जीवन मे सामजस्य का प्रयास है। विरोधी शक्तियो के सगम से ही सुख की प्राप्ति सम्भव है। जब समस्त विरोध एक ही केन्द्र बिन्दु पर आकर किसी कार्य मे नियोजित होते है तभी वास्तविक सुख शान्ति का सृजन होता है। अन्यथा विरोधी शक्तियाँ एक दूसरे से सघर्ष कर अपनी शक्ति क्षीण किया करती है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सामजस्य (synthesis) तथा सतुलन (balance) की अपेक्षा है। मानव का प्रतीक मनु इस समन्वय दृष्टि से वचित होने के कारण ही अनेक कष्ट भोगता है। उसके बुद्धि हृदय आपस मे सघर्ष करते रहते है। यह द्वन्द्व तब तक चलता रहता है जब तक श्रद्धा जीवन मे समन्वय नही ला देती। काम के अभिशाप में यही विरोध की भावना है

मस्तिष्क हृदय के हो विरुद्ध दोनो में हो सद्भाव नहीं
वह चलने को जब कहे कहीं, तब हृदय विकल चल जाय कहीं।

भारतीय दर्शन आरम्भ से ही समन्वयवादी रहा है। उपनिषदो की अद्वैत भावना द्वयता को समाप्त कर देती है। आत्मा केवल परमात्मा की छाया है। आत्मा परमात्मा का मिलन ही आनन्द है। 'आत्मानन्द' के द्वारा उपनिषद् आत्मा और आनन्द मे कोई भेद स्वीकार नही करते। बृहदारण्यक एक दृष्टान्त के द्वारा अद्वैत से प्राप्त सुख की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। उसका कथन है कि प्रिया से आलिंगन कर पुरुष किसी भी बाह्य अथवा आन्तरिक वस्तु को नही जानता। परमात्मा से मिलन होने पर जीव की भी यही स्थिति हो जाती है[१८]। उपनिषदो के अनन्तर ब्रह्मसूत्रो का वेदान्त दर्शन भी अद्वैत का ही प्रतिपादन करता है। शकर माया को मिथ्या मानकर भी अद्वैत का समर्थन करते है। सत् और चित्, ब्रह्म तथा जीव का समन्वय आवश्यक है। सच्चिदानन्द मे ही सत्, चित् आनन्द का लय हो जाता है। शकर की अद्वैत कल्पना एक

---

१८. बृहदारण्यकोपनिषद्, ४।३।२१

अधिक व्यवहारिक पक्ष पर हुई। आत्मा की सत्ता में विश्वास न करने वाला बौद्ध दर्शन भी मध्यम प्रतिपदा मार्ग का अनुसरण करता है। भोग विराग की अन्तिम सीमायें ही अकल्याणकारिणी है। अन्तो के मध्य में रहना ही सम्यक्ता है। दो पारस्परिक भिक्षुओ का सवाद इस मत की स्थापना करता है। 'ससार का परित्याग कर निवृत्ति मार्ग पर चलने वाले प्रव्रजित के लिए दोनो सीमाओ का सेवन ही अधिक श्रेयस्कर है। मानव के उद्धार का मार्ग दो अन्तो का त्याग कर मध्य मार्ग है।' बुद्ध ने इसी का प्रतिपादन किया। यह चित्त को शान्ति, सम्यक ज्ञान प्रदान करता है। इसी में निर्वाण निहित है[५७]। इस प्रकार तार्किक बौद्ध दर्शन भी जीवन में 'सौमनस्य' का पक्षपाती है। नागार्जुन के दर्शन को डा० राधाकृष्णन उपनिषदो की अद्वैत भावना के सन्निकट रखते है[५८]। साख्य दर्शन सत्व, तम, रज में समन्वय स्थापित करता है। सामजस्य की भावना समस्त भारतीय दर्शन के मूल में प्रतीत होती है। आधुनिक दार्शनिक एव मनोवैज्ञानिक भी जीवन में सामजस्य को महत्व देते है। सामजस्य की इस भावना में समस्त विरोध को समाप्त कर नवनिर्माण की कल्पना है। ससार में बढते हुये सघर्ष को रोकने का उपाय यही सन्तुलन और सामजस्य है। आइन्साटइन और रसेल के मानवीय सिद्धान्तो का मूल आधार सामजस्य की भावना ही है। दर्शन से लेकर जीवन की भौतिक समस्याओ तक इसकी अपेक्षा रहती है। वैज्ञानिक रीति में भी सकारात्मक नकारात्मक के सयोग से विद्युत-शक्ति का सचार होता है।[५९]

शैव दर्शन के समरसता सिद्धान्त ने सामजस्य पर विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की। शैव चिन्तक समग्र सृष्टि को शिव का ही प्रसाद मानते है। शिव को सर्वोपरि सत्ता स्वीकार करनेवाला भक्त उसी से सामजस्य की कामना करता है। शिव की शक्ति से ही विश्व का निर्माण होता है। ससार शक्ति का ही उन्मेष है। शक्ति और शिव सदा एक दूसरे में निहित रहते है। शक्ति अन्तर्मुखी होकर शिव बन जाती है। शिव बहिर्मुख होकर शक्ति बन जाता है। शिव और शक्ति में क्रमश एक की प्रधानता और अन्य की न्यूनता रहती है।

---

५८ अता पव्वज्जितेन न सेवित ब्बा। उभे अन्ते अनुपगम्य मज्झिमा पच्चिपय तथागतेन अभिसंबुद्धा चक्खुरणीजायकरणी उपसमाय अभिज्जाय सबोधाय निब्बाणं सवत्तति।

५९ Indian Philosophy, Vol I, page 641

६० Theory of Electricity

शिव शक्ति के सामरस्य की दशा 'परमशिव' है। शैव दर्शन की विभिन्न शाखाओं ने इसी को अनेक रूपों में ग्रहण किया। प्रत्यभिज्ञादर्शन का शिव-शक्ति तत्व त्रिपुरामत मे कामेश्वर-कामेश्वरी का स्वरूप प्राप्त करता है जो 'त्रिपुरा-सुन्दरी' के सामजस्य मे परिवर्तित हो जाता है। शैव दर्शन मे ज्ञान और भक्ति का सुन्दर सम्मिश्रण है। शुष्क ज्ञान मार्ग और सरस भक्ति दोनो का ही समन्वय यहा प्रस्तुत हुआ। बोधसार मे नरहरि ने कहा

> द्वैत मोहाय बोधात् प्राक् प्राप्ते बोधे मनीषया
> भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।
> जाते समरसानन्दे द्वैतमप्यमृतोपमम्
> मित्रयोरिव दम्पत्योर्जीवात्म परमात्मनोः।

ज्ञान के पूर्व द्वयता का मोह उत्पन्न होता है। ज्ञान के प्रकाश मे द्वैत की कल्पना भक्त बुद्धि द्वारा करता है। यह कल्पित द्वैत अद्वैत से भी सुन्दर है। समरसता के आने पर द्वयता ही अमृत के समान आनन्ददायिनी हो जाती है। जीव-परमात्मा का मधुर मिलन दम्पति-सयोग की भाति सुखकर होता है। समरसता उसी का अलौकिक रूप है। प्रत्यभिज्ञा के अनुसार विश्व निर्माण की इच्छा से परमेश्वर अपने शिव और शक्ति दो रूप बना लेता है। शिव ज्योति है, शक्ति विमर्श। शिव के अह तथा शक्ति के इद का मिलन ही सामरस्य है। समरसता की स्थिति मे समस्त द्वयता समाप्त हो जाती है। अस्ति नास्ति का भेद विलीन हो जाता है। समरसता के अभाव में ही विनाश और प्रलय होता है। शैवदर्शन शिव-भक्ति के समन्वय में ही सुख मानता है। शिव चित् रूप होकर भी जड है। शक्ति के अभाव मे उसे प्रकाश का बोध नही होता। उसमे चेतना भरने का कार्य शक्ति करती है। आगमशास्त्रों में इसकी चर्चा है:

> न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः
> नान योरन्तर किंचित् चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ॥

उपनिषद् का अद्वैतवाद शैवदर्शन मे आकर अधिक सरस हो गया। उसकी समरसता में भक्ति-भावना का भी समन्वय हुआ। दक्षिण तथा काश्मीर मे प्रचलित होने वाली शैवों की दो विभिन्न शाखाये क्रमश ज्ञान और भक्ति का अधिक आग्रह करती है। आणव एक विभेदक वस्तु है, और उससे मुक्ति पाना शैवागम के अनुसार नितान्त अनिवार्य है। आणव से ही मानव दुष्कर्म में प्रवृत्त होता है, अनेक भेद हो जाते है। उससे मुक्ति मिलते ही सर्वत्र एक-रूपता समरसता दिखाई देने लगती है। समरसता का प्रतिपादन करनेवाला

शैव दर्शन सुख-दुख, पाप पुण्य मे कोई मौलिक अन्तर नही स्वीकार करता। सुख-दुख केवल अनुकूलवेदनीय तथा प्रतिकूलवेदनीय है। भेदक दृष्टि न रख कर सामजस्य मे विश्वास करने के कारण ही शिव अमृत, विष दोनो को एक ही साथ धारण करते है। वाम पाश मे सदा विद्यमान होकर भी, पार्वती शिव की निर्विकल्पता नही समाप्त कर पाती। शैव-दर्शन की समरसता मे अद्वैत भावना का ही सरस प्रतिपादन हुआ। समरसता से लोक कल्याण भी सम्भव है। इस समरसता का प्रतीक ही शिव का नाट्य है। वे नटराज है।

शैव दर्शन से प्रभावित होते हुये भी कामायनी की समरसता अधिक व्यावहारिक है। उसमे केवल धार्मिक, दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक पक्ष का ही ग्रहण नही, वह जीवन की अधिकाश समस्याओ का ममाहार कर लेती है। अन्त मे समस्त विरोधी शक्तिया समन्वित होकर कार्य मे नियोजित हो जाती है। सघर्ष का अन्त हो जाता है, भेद भाव समाप्त हो जाते है। प्रसाद की समरसता-कल्पना पर्याप्त व्यापक है। उसमे व्यक्ति के अन्तर्तम से लेकर विश्व तक के सघर्ष को समाप्त करने का प्रयास है। कवि ने जीवन को सम्पूर्ण इकाई के रूप मे ग्रहण किया है। अन्तर और वाह्य दोनो उसी के रूप है। कामायनी के आरम्भ का मनु अपनी आन्तरिक, मानसिक विषमताओ से पीडित है। उसने देवता रहकर जीवन के समस्त सुख और विलास को भोगा था। आज भी उसे उसी की स्मृतिया आ रही है। अतीत वैभव को भूल जाना सम्भव नही। अनायास ही प्रलय आया और वह वैभव, ऐश्वर्य विलीन हो गया, तभी मनु को उसकी क्षणभगुरता और अपूर्णता का आभास मिला। किन्तु मनुष्य को अतीत के प्रति एक विचित्र अनुराग होता है। वह वारम्वार अतीत की ओर भागता है। अतीत का सुख और वर्तमान का दुख मिल कर मनु के मन मे आन्तरिक द्वन्द का सृजन करते है। उनमे विचित्र जडता आ जाती है। सुख के विलीन हो जाने पर वे दुख को ही चिरन्तन मान लेते है। श्रद्धा इसी अवसर पर जीवन मे सामजस्य लाने के लिये कहती है। दुख के अनन्तर ही सुख आता है, अन्धकार के पश्चात् प्रकाश होता है। अभिशाप स्वय वरदान हो जाते है। विरोधो मे समन्वय करती हुई वह कहती है

नित्य समरसता का अधिकार
उमडता कारण जलधि समान
व्यथा से नीली लहरो बीच
बिखरते सुख मणि गण द्युतिमान।

वह शक्ति के बिखरे हुये विगुणतत्वों मे समन्वय करने का सदेश देती है।

इस सामरस्य का ग्रहण न करने के कारण ही मनु का मन पथभ्रष्ट हो जाता है । 'वासना' मे नारी पुरुष का मिलन केवल भौतिक एवम् वाह्य था । वह समरसता का अत्यन्त निम्न रूप है । उन दोनो का सामजस्य स्थापित करने के लिये ही प्रसाद ने 'लज्जा' सर्ग मे 'सन्धिपत्र' की कल्पना की है । समरसता का सर्वोत्कृष्ट रूप कवि ने इच्छा, ज्ञान, क्रिया के समन्वय द्वारा प्रस्तुत किया है । ये तीनो ही विरोधी शक्तिया समरस होकर कल्याणकारिणी बन जाती है । मन की द्वयता समाप्त हो जाती है । जब तक मानव ससार और स्वयम् मे भेद रखता है, उसे कष्ट होते है । ससार मे स्वयम् और स्वयम् मे ससार की कल्पना ही श्रेयस्कर है । मनु के अन्तर का काम स्वयम् समरसता की आवश्यकता स्वीकार करता है—

'समरसता ही सम्बन्ध बनी, अधिकार और अधिकारी की'

अन्तर्जगत मे हृदय बुद्धि का समन्वय अपेक्षित है । सुख दुख के प्रति एक तटस्थ दृष्टिकोण की आवश्यकता है । समरसता का प्रतीक शिव है जो सदा निर्विकल्प रहते है । प्रसाद की धारणा है कि मन मे समरसता, सामजस्य और सन्तुलन स्थापित करने से वाह्य जगत मे भी सम्मिलन स्थापित हो जायगा । मन सर्वोपरि है । वही प्रत्येक वस्तु का ग्रहण करता है । मन में सन्तुलन ले आने से वाह्य वस्तुयें स्वयम् समरस हो जायेंगी । इसी कारण कवि ने मनोवैज्ञानिक आधार पर मन मे सामजस्य स्थापित कराने का प्रयत्न किया । वाह्य जगत मे आकर प्रसाद समरसता के विषय मे अधिक आधुनिक और व्यावहारिक हो गये है । उन्होंने जीवन की भौतिक समस्याओ को भी लिया । शासक शासित, पुरुष नारी, व्यक्ति समाज मे भी सामजस्य आवश्यक है । सारस्वत प्रदेश की भौतिक उन्नति का वास्तविक कारण 'सहयोग भावना' थी । आर्थिक और राजनैतिक विषमताओं का भी अन्त आवश्यक है । वैज्ञानिक तथा प्राकृतिक शक्ति का समन्वय ही मानव को अधिक सुखी बना सकेगा । बुद्धि की प्रतिनिधि इडा भी 'शीतल सौमनस्य' बिखराती थी । समरसता के अभाव मे ही राजा और प्रजा का सघर्ष होता है । दैनिक कार्य से लेकर सार्वभौमिक जगत तक सामजस्य की आवश्यकता है । प्राणी एक क्षण भी उसके बिना नही चल सकता । श्रद्धा ससार मे तल्लीन पूर्ण राग की छाया पा जाती है । इडा के समीप अपने पुत्र को छोडते हुये भी वह समरसता के प्रसार की शिक्षा देती है । यह उसका सार्वभौमिक और सार्वकालिक स्वरूप है । आध्यात्मिक जगत मे समरसता की कल्पना कामायनी मे शैव दर्शन से अधिक निकट है । इस समरसता का मूलाधार श्रद्धा तथा शिव का स्वरूप है । मानसिक ज्ञान की समस्त चिन्-

मता को समाप्त करनेवाली यह सात्विक वृत्ति मन को उच्चतम भावभूमि पर ले जाती है। 'समतल' पर ही वह समरसता की स्थापना करती है। इच्छा, ज्ञान, क्रिया तीनो की शक्ति सामजस्य के अभाव में क्षीण होती रहती है। इच्छा मन, ज्ञान मस्तिष्क तथा क्रिया इन्द्रिय के व्यापार है। इन तीनो में सामजस्य ही जीवन की पूर्णता है। इनके अभाव में वह एकागी हो जायगा। श्रद्धा इच्छा, ज्ञान, कर्म का जब अलग-अलग वर्णन करती है, तो वे विचित्र प्रतीत होते है। इच्छा से ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का सम्बन्ध है। ज्ञान की वृद्धि अनेक भेदो का कारण बनती है। कर्म में सतत सघर्ष है। यह समरसता के अभाव के ही कारण है

ज्ञान दूर कुछ, क्रिय भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।

इन तीनो के मिलते ही दिव्य प्रकाश छा जाता है। शैवदर्शन के अनुसार शकर जी ने त्रिपुर दाह किया था। प्रसाद की इच्छा, ज्ञान, क्रिया के समन्वय की कल्पना इसी के निकट है। चेतन, कल्याणमयी श्रद्धा अपनी स्मित से ही उनमे समन्वय स्थापित करती है। इसी के पश्चात मनु स्वयम् समरसता का प्रचार करने लगते है। उनका समस्त विरोध, सघर्ष समाप्त हो जाता है। सारस्वत प्रदेश के निवासियो को उपदेश देते समय वे द्वयता को ही विस्मृति बताते है। इस अवसर पर प्रसाद की समरसता के सभी रूप प्रस्तुत हो जाते है। मनु आन्तरिक, सामाजिक, आध्यात्मिक सब क्षेत्रो में समन्वय कर लेते है। कामायनी की समरसता एक व्यापक भूमि पर प्रतिष्ठित है। उसमें शैवदर्शन की समरसता, मनोवैज्ञानिको के सन्तुलन तथा अन्य दार्शनिको के सामजस्य का सम्मिलन सा प्रस्तुत हुआ है। कामायनी सर्वत्र समरसता का प्रचार करती दिखाई देती है। एक ओर यदि वह आध्यात्मिक जगत मे मानव को ले जाना चाहती है, तो साथ ही वर्त्तमान विषमता को समाप्त करने का प्रयास भी करती है। अन्तिम तीन सर्ग दर्शन, रहस्य, आनन्द समरसता से ही परिपूर्ण है। प्रसाद की समरसता की आधारशिला श्रद्धा है। श्रद्धा समस्त कोमल भावनाओ का प्रतीक होने के कारण समन्वय की अद्भुत क्षमता से समन्वित है। अपने नाटक 'एक घूट' मे भी समरसता तथा समन्वय पर उन्होने विचार किया। आनन्द जीवन में इसी सामजस्य का पक्षपाती है[६०]। समरसता प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्य

६० "एक घूट", पृष्ठ ६३

का मूल स्वर है। कामायनी का अन्त भी इसी समरसता की प्रतिष्ठा से ही होता है :

समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था।

आनन्द का रूप—

समरसता से ही आनन्द की सृष्टि होती है। जब समस्त द्वयता, संघर्ष, विषमता समाप्त हो जाते हैं, तब सुख, शान्ति में संदेह कैसा। जीवन का लक्ष्य ही आनन्द है। संसार के सभी ज्ञान विज्ञान उसी की खोज में लगे हुये हैं। साहित्य और दर्शन का यह प्रयास एक दूसरे के अधिक समीप दिखाई देता है। साहित्य का रस दर्शन का ही आनन्द है। साहित्यिक रसनिष्पत्ति के द्वारा वही कार्य करता है जो दार्शनिक आनन्दसृजन से। आनन्द तक जाने के विभिन्न मार्ग दार्शनिकों ने बताये हैं। किन्तु 'आनन्द' शब्द का प्रयोग शैव-दर्शन में बहुलता से प्राप्त होता है। इसके पूर्व भी वेदान्तवादियों ने सत्, चित्, आनन्द की कल्पना की थी। रजस, तमस के स्थान पर जब सत्व गुण की प्रधानता हो जाती है, तभी आनन्द का आविर्भाव होता है। इस आनन्द की उपलब्धि व्यक्तिवाद के विनाश द्वारा ही सम्भव है। अद्वैत अथवा समरसता के आधार पर ही आगमों ने अपने आनन्दवाद की स्थापना की। स्पन्दशास्त्र के अनुसार जगत में सर्वत्र, प्रत्येक काल में आनन्द व्याप्त रहता है। यह आनन्द-परमशिव का ही एक रूप है। जब शिव सार्वकालिक, सर्वत्र विद्यमान है, तो फिर आनन्द का अस्तित्व भी होगा ही। तैतरीय उपनिषद् का 'अयमात्मा पर-मानन्द' इन आगमों में आकर पूर्ण विकसित हुआ। इसमें उन्होंने काम, प्रेम और सौन्दर्य भावना का भी समन्वय कर लिया। इसी कारण शैवागम की आनन्द कल्पना जीवन के किंचित निकट आकर व्यावहारिक हो गई। मन पर किसी प्रकार का नियंत्रण रखने की आवश्यकता न रह गई, क्योंकि सर्वत्र आनन्द-राशि ही बिखरी हुई है। संसार से किसी प्रकार के वैराग्य की आवश्यकता नहीं। जीवन स्वयम् शिव का प्रसाद होने के कारण आनन्दरूप है। परमेश्वर की पांच शक्तियों में आनन्द भी एक है। वह स्वयम् अत्यधिक प्रेम और आनन्द के कारण ही सृष्टि का निर्माण करता है। और शैवमत के अनुसार जगत सत्य है। संसार की भांति वे उसे मिथ्या नहीं मानते। 'सच्चिदानन्द परमशिव' ही सर्वोपरि है। सौन्दर्यलहरी का कथन है

त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दकारं शिव युवति भावेन विभृषे। (३५)

शैव और शाक्त शैवदर्शन की दोनो ही प्रमुख शाखायें आनन्द की प्रतिष्ठा करती हैं। शैव आत्मा को और शाक्त जगत को प्रधानता देकर शिव में लीन होने का उपदेश देते है। शैवदर्शन की आनन्द कल्पना मे अन्य सरस भावनाओ का भी समन्वय होने के कारण, उसे साहित्य में स्थान मिला। अभिनवगुप्त, आनन्दवर्द्धनाचार्य, नारोपा, कण्हपा आदि साहित्यकारो ने आनन्द से ही रस का भी सम्बन्ध स्थापित किया। धर्म और दर्शन का आनन्दवाद साहित्य में रस रूप मे आकर जीवन के अत्यन्त निकट हो गया। आचार्य अभिनवगुप्त ने इस समन्वय का विशेष प्रयास किया। उनकी सौन्दर्य सम्बन्धी धारणा आनन्द और रस के सुन्दर समन्वय पर आश्रित है[६१]। आनन्द के प्रतिपादन में समन्वय दृष्टि रक्खी गई। समरसता ही आनन्द है। इस प्रकार आनन्दवाद मे एक साथ अनेक समस्याओ का समाहार प्रस्तुत किया गया। आन्तरिक जीवन में यदि उससे आत्मतोष मिला, तो बाह्य जगत में समता आई। आनन्दवाद की दृष्टि विशुद्ध भावमूलक है। उसमें अन्य तार्किक और बौद्धिक दर्शनो का अधिक आग्रह नही। उसकी प्राप्ति अन्तर तथा शिव के अनुग्रह से ही होती है, अन्य सभी उपाय व्यर्थ है। आनन्द प्राप्ति की साधन प्रणाली में आनन्दमय कार्यो का ही समावेश है। आनन्दवाद की यह शैव विचारधारा भारतीय दर्शन और साहित्यक्षेत्र में अपनी समन्वय दृष्टि के कारण ही एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करती है। अनेक दर्शनो के विभिन्न मतो के पश्चात् आनन्द की इस सरस तथा विशुद्ध धारा ने सम्पूर्ण जीवन को एक पूर्ण रूप मे ग्रहण कर समाधान प्रस्तुत किया।

कामायनी अन्त मे आनन्द की प्रतिष्ठा करती है। काव्य और दर्शन दोनो का यही प्रयोजन है। आनन्द की कल्पना में प्रसाद का व्यक्तिगत चिन्तन भी निहित है। उपनिषद की अद्वैत भावना से लेकर आधुनिक भौतिक सुख तक की आनन्द कल्पना का इतिहास उनके सम्मुख था। समाज की बदलती हुई परम्परा के प्रकाश में उन्होने उसका उपयोग किया। आध्यात्मिकता की ओर जाने वाला ऋषि तथा पडित वर्ग जीवन की सामयिक समस्याओ पर विचार न कर सका। उसने अन्तरपक्ष का विशेष अध्ययन किया। बीसवी शताब्दी के प्रसाद के सामने अन्य विषमतायें और समस्याये थी। इतनी अधिक परिस्थितियो पर उन्होने एक साथ विचार किया। इन सभी का उत्तर समरसता तथा आनन्द से देने के कारण उसमें अनेक तत्वो का समावेश हो गया। इस विषय मे कवि ने स्वयम् स्वीकार किया है, "शैवो का अद्वैतवाद और उनका सामरस्य वाला रहस्य

---

६१ Indian Aesthetics—Page 101

सम्प्रदाय, वैष्णवो का माधुर्य भाव और उनके प्रेम का रहस्य तथा काम कला की सौन्दर्य उपासना आदि का उद्गम वेदो और उपनिषदो की वे भावना प्रणालियाँ है, जिनका उन्होंने समय समय पर अपने सघो मे प्रचार किया। प्राचीन आर्य लोग सदैव से अपने क्रियाकलाप मे आनन्द, उल्लास और प्रमोद के उपासक रहे, और आज के भी अन्यदेशीय तरुण आर्य सघ आनन्द के मूल सस्कार से सस्कृत और दीक्षित है। आनन्द भावना, प्रिय कल्पना और प्रमोद हमारी व्यवहार्य वस्तु थी[१२]।" कामायनी म उन्होंने इसी भूली हुई परम्परा का प्रतिपादन किया। उसकी रूपरेखा का निर्माण उन्होंने इतनी कुशलता से किया कि बदलती हुई परिस्थिति मे भी उसका सयोग हो गया। आनन्द के प्रतिपादन मे श्रद्धा को सबसे अधिक महत्व दिया गया। समस्त कोमल भावनाओ से भरी हुई यह चेतन शक्तिरूपा नारी आदि पुरुष को आनन्द तक ले जाती है। यह आनन्द मन से लेकर विश्व तक प्रसारित किया गया। आध्यात्मिक दृष्टि से कामायनी की परिसमाप्ति कैलाश पर्वत की मनोहर उपत्यका म होती है, जहा आनन्द स्रोत ही बहता रहता है। वहा कोई भी शापित अथवा तापित नही रहता। वास्तव मे उस स्थल पर मनु एक ऋषि रूप म प्रतिष्ठित हो जाते है। समस्त सारस्वत प्रदेश की प्रजा उनके दर्शन मात्र से ही उल्लसित हो उठती है। यह एक प्रकार का चामत्कारिक प्रभाव है। मनोवैज्ञानिक क्षेत्र मे भी चेतना शक्ति श्रद्धा ही मनु के मन मे समन्वय स्थापित कर उसे अनेक विषमताओ से बचा लेती है। मानसिक उलझनें समाप्त होने पर ही शान्ति प्राप्ति हो सकती है। आन्तरिक तृप्ति के लिये सद्वृत्तियो का उदय आवश्यक है। आधुनिक युग की कृति होने के कारण भौतिक समस्याओं का भी परित्याग नही किया गया। व्यक्ति, परिवार, समाज, देश, ससार सभी को आनन्द का दान देना ही श्रद्धा का उद्देश्य है। मनु के व्यक्तिगत पाश मे बध कर वह आनन्द को सीमित नही कर देती। उसकी आनन्द कल्पना असीम, अनन्त है। कामायनी का आनन्द ऋषि, साधक अथवा वैरागी की सम्पत्ति नही है। कर्म से ही मानव उसकी प्राप्ति कर सकता है, वन मे जाने की आवश्यकता नही। कवि निवृत्ति मार्ग का पक्षपाती नही है। जीवन के प्रति अडिग आस्था, घोर कर्म, सत्काम, सत्य का ग्रहण स्वयम् आनन्द प्राप्ति के लिये पर्याप्त है। प्रेम स्वयम् आनन्द है। प्रेम का व्यापक और उदात्त रूप ही श्रद्धा है। वह सभी से प्रेम करती है, सभी को शिक्षा देती है। स्वयम् अपनी चेतना से लेकर सर्व ससार तक का प्रेम उसका लक्ष्य है। आनन्द को व्याप-

---

१२. काव्य और कला, पृष्ठ २१, २२

कत्व प्रदान करने के लिये कामायनी के कवि ने कर्म, काम का विशद निरूपण किया। श्रद्धा के कर्म में पशुपक्षी, मानव के प्रेम से लेकर जन सेवा तक आ जाती है। 'प्रेमपथिक' का ही विकसित रूप वह श्रद्धामय, प्रेममूलक आनन्दवाद है। व्यावहारिकता को प्रमुखता देने के कारण कामायनी के आनन्दवाद में आशा और जागृति का सन्देश है। कवि जीवन से युद्ध करने का सदेश देता है

यह नीड मनोहर कृतियों का
यह विश्व कर्म रगस्थल है
है परम्परा लग रही यहा
ठहरा जिसमें जितना बल है।

व्यावहारिक जगत में जहा कामायनी का आनन्द मनु के निकट समस्त सारस्वत नगर निवासियो का आगमन है, वही आध्यात्मिक क्षेत्र में शिव का नृत्य उसका आभास देता है। इसी अवसर पर मनु, मन, समाज को पूर्ण परितोष हो जाता है। उच्च भावभूमि पर जाने के कारण अपने अन्तिम रूप में वह रहस्यमय बन जाता है। रहस्यवादी इसे तन्मयता अथवा अभेद की स्थिति कहते है। उस समय एक विचित्र अवस्था होती है, जिसका वर्णन सम्भव नही, केवल अनुभव हो सकता है। रहस्यवादी इसी चिरन्तन आनन्द के लिये आजीवन प्रयत्नशील रहते है। शिव का नृत्य इसी स्थिति का प्रतीक है। वास्तविक जगत में मानव चतुर्दिक तृप्ति की कामना करता है। अन्तर्मन की भूख और प्यास से लेकर पेट की ज्वाला तक वह शान्त करना चाहता है। आधुनिक युग मे कवि का यही समन्वय प्रयास है। भौतिक तृप्ति, आध्यात्मिक उन्नति सभी आनन्द की इस रूपरेखा मे समाविष्ट हो जाते है। कामायनी के सभी पात्र अपने सुख और परितोप के लिए इधर-उधर भटकते दिखाई देते है। वे आन्तरिक तृप्ति चाहते है। जो आनन्द पथ श्रद्धा सभी को दिखाती है, उस पर वह स्वयम् निरन्तर चलती रहती है। आनन्द की उपलब्धि कर्म द्वारा ही होती है, केवल ज्ञान अथवा चिन्तन से नही। ये उसी के सहयोगी है। इसी कारण ज्ञान, इच्छा, कर्म का समन्वय ही आनन्द का स्रष्टा है। कवि की आनन्द कल्पना सार्वभौमिक स्नेह तथा विश्वबन्धुत्व पर अवलम्बित है। केवल अपने लिये मोक्ष की कामना करके आनन्द-प्राप्ति कर लेने की प्रणाली से उनका व्यावहारिक आनन्दवाद बहुत आगे है। यहा मानव और मानवता ही सर्वोपरि है। मानव से वे 'भूमा' को अपनाने के लिये कहते है। सुख दो प्रकार के होते है, अल्प तथा बहुल। अल्प सकुचित और सकीर्ण होता है, इस कारण उसका ग्रहण कष्टकर होता है। भूमा ही वास्तविक सुख है। व्यक्ति का समष्टि में पर्यवसान

होना आवश्यक है। छान्दोग्य में भूमा के विषय में कहा गया "भूमा ही सुख है। अल्प में सुख नहीं। भूमा ही अमृत है। अल्प मर्त्य है। भूमा आत्मा की भांति सर्वत्र व्याप्त है[६३]।" सनतकुमार ने 'भूमा' की इस परिभाषा को नारद से कहा। 'भूमा' संसार को एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में देखने का ही प्रयत्न है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इसके समीप है। 'चन्द्रगुप्त' का दाण्डयायन आत्मदर्शन के कारण ही किसी बलवान की इच्छा का क्रीडा-कन्दुक नहीं बन सकता। उसे भूमा के सुख और महत्ता का आभास प्राप्त हो चुका है। 'भूमा' को कवि ने आनन्द का ही एक चरण माना है। भूमा के अन्तर्गत आत्मतृप्ति, परतृप्ति दोनों ही आ जाते हैं। मन को किसी भी कार्य के लिये शक्ति की आवश्यकता होती है। इस आन्तरिक शक्ति के कारण अहं का प्राधान्य न हो जाये, इसी हेतु व्यापक दृष्टि, सर्वग्रहण भी अपेक्षित है। श्रद्धा भूमा के विषय में कहती है :

विषमता की पीड़ा से व्यस्त
हो रहा स्पन्दित विश्व महान
यही दुख सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।

नियति—

चिन्तन के दार्शनिक क्षेत्र में कामायनी में नियति को भी स्थान प्राप्त है। 'आंसू' की अभिशापमय नियति यहां आकर अधिक व्यापक हो जाती है। इसके पूर्व वह निर्मोही तथा निष्ठुर थी। विप्रलम्भ काव्य के अनुरूप ही कवि ने उसका चित्रण किया था। जीवन के आरम्भ में ही प्राप्त होने वाले अनेक उत्थान-पतन के दृश्यों में क्रमशः तटस्थता आती गई। दार्शनिक मनन ने उसमें किंचित परिवर्तन कर दिया। नियति के विषय में उनकी व्यक्तिगत अनुभूति दर्शन में मिलकर एक अन्य रूप में प्रस्तुत हुई। कामायनी में जलप्लावन के समाप्त होते ही कवि नियति की सूचना देता है :

उस एकांत नियति शासन में
चले विवश धीरे धीरे
एक शान्त स्पन्दन लहरों का
होता ज्यों सागर तीरे।

नियति मनु को कार्य में नियोजित करती है। इस प्रकार वह एक सत्ता है,

---

६३. छांदोग्योपनिषद् ७।२३, २४,२५

जो शासन करती है। इसके पूर्व देव सृष्टि का विनाश भी नियति की प्रेरणा से हुआ था। नियति शब्द का प्रयोग शैवदर्शन में हुआ। कला, विद्या, राग, काल, नियति पाच कचुक है, जो जीव को आवृत कर लेते है। नियति प्रत्येक वस्तु का नियमन करती है[६४]। व्यक्ति के कार्यो पर वह एक प्रकार का प्रतिबन्ध लगा देती है। आगम की नियति शक्तिशालिनी है। कामायनी मे इसका ग्रहण उस चेतन शक्ति के रूप मे किया गया, जिसके सम्मुख मानव विवश हो जाता है। मानव केवल अपने कर्म पर विश्वास कर सकता है, उसके परिणाम पर नही। साधारण भाग्य, कर्म अथवा प्रारब्ध एक विचित्र प्रकार की जडता ला देते है, किन्तु सुख-दुख दोनो का ही दान देने वाली, कामायनी की नियति जीवन को गतिमान करती है। वह मनुष्य की उच्छृखलता पर एक प्रकार का अनुशासन और प्रतिबन्ध है। उसका सम्बन्ध प्रकृति से है। प्रकृति की सचेतन अभिव्यक्ति इसी रूप मे होती है। ससार का समस्त क्रिया व्यापार नियति के द्वारा ही चलता है। वह व्यक्तिगत नही, समष्टिगत है। नियति केवल मनु का जीवन ही परिचालित नही करती वरन् समग्र ससार उसी से नियन्त्रित है

'नियति चलाती कर्मचक्र यह (कामायनी पृष्ठ २६७)

अपना जीवन नियति को सौप कर, मनुष्य का निष्क्रिय हो जाना अनुचित है। किन्तु नियति से सघर्ष करना भी उचित नही। वह गतिशील चेतना की भाति स्वयम् अपना कार्य करती रहती है। मनु के समस्त उत्थान पतन के पीछे उसकी शक्ति है। मनु और श्रद्धा का मिलन उसी पर अवलम्बित है[६५]। चिन्ता के भीषण वातावरण से लेकर आनन्द के चरम लक्ष्य तक इस नियति का कार्य कलाप चलता रहता है। साधारण भाग्यवादी स्वयम् को अदृश्य शक्ति के हाथों सौंप देता है, किन्तु नियतिवादी कार्यरत रहकर उसके परिणाम की व्यर्थ कामना नही करता। वह पूर्व जन्म के कर्मो का फल स्वीकार कर निराश नही होता और न भाग्य से भिक्षा ही मागता है। कामायनी की नियति समरसता और आनन्द मे सहयोग प्रदान करने वाली वस्तु है। उसके दान को स्वीकार करना ही होगा। ऋषि जगत्कारु का कथन है कि, "कर्मफल तो स्वयम् समीप आते है, उनसे भाग कर कोई बच नही सकता[६६]।" प्रसाद की नियति और कर्म मे सामीप्य

---

६४ नियतिर्नियोजनां धत्ते विशिष्टे कार्यमण्डले। तन्त्रालोक ६।१६०

६५ चल रहा था विजन पथ पर मधुर जीवन खेल
दो अपरिचित मे नियति अब चाहती थी मेल। (कामायनी, पृष्ठ ८१)

६६. जनमेजय का नागयज्ञ।

है। देवताओ की उच्छृंखलता को नियति ने प्रलय का दान दिया। मनु और श्रद्धा का मिलन मानवता के विकास के लिये अनिवार्य था। नियति ने मनु की संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण उसे संघर्ष का अभिशाप दिया। अन्त में नियति ही सामरस्य ले आई। इस प्रकार प्रकृति का क्रिया व्यापार नियति के द्वारा चलता रहता है। कामायनी की यह कल्पना मानव कल्याण के लिये है।

सामयिक समस्यायें—

जीवन की सामयिक समस्याओ को भी कामायनी मे स्थान प्राप्त है। दार्शनिक क्षेत्र में कवि मानव मन को आध्यात्मिकता तक ले जाने का प्रयत्न करता है। किन्तु उसकी भौतिक आवश्यकताओं का भी उसने बहिष्कार नही किया। जीवन के यथार्थ को तिलाजलि नही दी जा सकती। मानवता के विकास के साथ ही साथ उसकी समस्यायें बढ़ती जाती है। एकाकी मनु यज्ञ से ही निश्चिन्त थे। परोपकार की भावना से 'अवशिष्ट अन्न' भी रख देते थे। श्रद्धा के प्रवेश ने नारी पुरुष के संयोग से होने वाली समस्याओ का सृजन किया। श्रद्धा के कुतूहल का ध्यान कर मनु ने यज्ञ आरम्भ किया। इसी के अनन्तर आने वाले शिशु के लिये कामायनी काले ऊन की पट्टिया तथा छोटा सा कुटीर बना लेती है। तकली भी चलने लगती है। ये बढ़ी हुई आवश्यकतायें उस समय समस्या हो जाती है जब कामायनी की मानव-सभ्यता नगर मे पहुँचती है। सारस्वत प्रदेश आधुनिक राज्य कल्पना का चित्र है। बुद्धिवाद की प्रतिनिधि इडा को उसके निर्माण का श्रेय प्राप्त है। मनु केवल एक मन्त्री के रूप मे स्थान पाते है। नगर का वर्णन करते हुये कवि ने वैज्ञानिक उत्कर्ष को ही उसका श्रेय दिया है। 'स्वप्न' में श्रद्धा देखती है, 'मनु के नगर में दृढ़ प्राचीर और मन्दिर है। वर्षा, धूप, शिशिर, छाया सभी से मानव अपनी रक्षा कर सकता है। धातु गलाकर नये आभरण बनते है। ज्ञान व्यवसाय की वृद्धि हो रही है।' इसी अवसर पर प्रजा प्रजापति के विरुद्ध विद्रोह कर देती है। 'संघर्ष' में यह विप्लव भयानक रूप धारण कर लेता है। राजनैतिक समस्याओं के प्रतिपादन मे प्रसाद ने आदर्श और यथार्थ का समन्वय किया। विज्ञान और बुद्धि के अतिवाद का भीषण परिणाम दिखाकर उन्होंने एक सांस्कृतिक विचार की स्थापना की। सारस्वत नगर की प्रजा भौतिक दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न थी, किन्तु राजा ने स्वयम् अपने कर्तव्य और अधिकार का बोध न कराया था। उसे एक सांस्कृतिक चेतना की अपेक्षा थी। प्रजा का विद्रोह इसी के अभाव में हुआ। वह कहती है:

प्रकृत शक्ति तुमने यन्त्रों से सबकी छीनी
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी ।

राजनैतिक समस्याओ का निराकरण करने के लिये कामायनी मे एक आदर्श प्रजातन्त्र की कल्पना की गई है । 'इडा' सर्ग के अन्तर्गत काम ने मनु के प्रजा-तन्त्र को शाप दिया था कि उसमें कोलाहल, कलह हो । उसके कथन द्वारा ही कवि ने आधुनिक विभीषिका का चित्र प्रस्तुत किया । 'स्वप्न' और 'सघर्ष' में वही साकार हो उठा । कामायनी के अनुसार देवताओ की वैभवपूर्ण अमरावती सुखी न थी । भौतिक सुख से सम्पन्न सारस्वत प्रदेश मे भी शान्ति न थी । एक ओर यदि भोग विलास की प्रधानता थी, तो अन्य वर्ग यान्त्रिक जीवन व्यतीत कर रहा था ।

कामायनी की प्रजातन्त्र कल्पना सम्पूर्ण मानवता को लेकर की गई । उसका धरातल सार्वभौमिक है । कवि ने सघर्ष केवल सारस्वत प्रदेश में ही दिखाया, किन्तु आदर्श राज्य की स्थापना में समग्र मानवता को ले लिया । राज्य मे सर्व-प्रथम समस्या व्यक्ति और समाज की है । व्यक्ति समाज का ही एक अग है । वह सामाजिक प्राणी होने के कारण उससे विलग नही रह सकता । स्थूल दष्टि से समाज अत्यन्त विशाल होता है किन्तु व्यक्ति भी नगण्य नही कहा जा सकता, क्योकि उमी से समाज का अस्तित्व है । मनु समाज का ही एक प्राणी है, जो अपने वुद्धि वल से नियामक वन गया । वह समस्त समाज की अवहेलना कर इडा के साय व्यभिचार करना चाहता है । समाज इमे कदापि नही सहन कर सकता । सम्पूर्ण समाज ने एक व्यक्ति को अपनी सेवा और निष्ठा दी थी । व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह समाज का ध्यान रक्खे । अधिकार और कर्त्तव्य को साथ ही साय चलना चाहिये । अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये मम्पूर्ण समाज का अहित उचित नही । उमी प्रकार ममाज भी व्यक्ति को नगण्य समझकर समाप्त नही कर मकता । कामायनी मे व्यक्ति और ममाज एक दूसरे के पूरक है । व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक उन्नति के माय ही ममाज का भी हित करता रहे, यही उमका स्वर है । मनु अन्त मे आध्यात्मिक दृष्टि मे ऋषित्व प्राप्त करते है, माथ ही मामाजिक कल्याण के लिये भावी मानवता को सन्देश देते है । श्रद्धा सदा व्यक्ति और ममाज दोनो को माथ लेकर चलती है । मनु को खोजने के लिये जाते हुये भी वह इडा और मानव दोनो को राष्ट्रहित तथा समरमता प्रचार का सदेश दे जाती है । व्यक्ति और समाज मे वह समन्वय स्थापित करती है । शासक और शासित की समस्या भी राजनैतिक है । मनु नियामक होकर भी नियम नहीं मानना चाहते थे । स्वयम् को 'चिरस्वतन्त्र' कहते थे । उनका

शासन निरंकुश होता जा रहा था। इसी कारण विप्लव हुआ। इडा राष्ट्र की काया मे प्राण की भाति रम जाने के लिये कहती है। श्रद्धा मानव इडा को जनसेवा की ही शिक्षा देती है :

तुम दोनो देखो राष्ट्र नीति
शासक बन फैलाओ न भीति।

अन्त मे मनु के निकट स्वयम् प्रजा पहुँचती है मानो अयोध्यानिवासी राम के पास वन मे गये हो। राजनैतिक रूप मे मनु प्रजापति है। प्रसाद की प्रेरणा मनुस्मृति प्रतीत होती है। वहा मनु नियामक तथा नीति के विधायक है। राजनीति के क्षेत्र मे मनुस्मृति तथा कौटिल्य का अर्थशास्त्र दो प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कामायनी की प्रजातन्त्र तथा राजनैतिक धारणा मनुस्मृति के मनु को प्रमुख पात्र बनाकर भी नवीनतम समस्याओ को लेती है। समग्र मानवता को अपना विषय बनाने के कारण कवि की कल्पना अन्तर्राष्ट्रीयता, सार्वभौमिकता को ग्रहण करती है। मनु स्वयम् अपनी भूल स्वीकार करता है कि सम्पूर्ण देश बसाकर भी मेरा मानस प्रदेश सूना है। ससार के सतत सघर्ष के समाधान मे कवि आदर्शवादी हो गया है। वह गाधीवाद से प्रभावित है। गाधी का अहिंसा, सत्य का प्रयोग राजनैतिक के साथ ही आध्यात्मिक था। वह वास्तव मे पूर्ण मानवीय था। सम्पूर्ण वादो मे उठकर उन्होंने समग्र मानवता को लिया था। वे तो उस समय की भी कल्पना करते है, जब ईश्वर का ही नियम होगा, मानवता को किसी शासन की आवश्यकता न होगी[१]।

जीवन का कोमल तंतु बढे
तेरी ही मंजुलता समान
चिर नग्न प्राण उन में लिपटे
सुन्दरता का कुछ बढे मान।
किरणों सी तू बुन दे उज्ज्वल
मेरे मधु जीवन का प्रभात
जिसमें निर्वसना प्रकृति सरल
ढंक ले प्रकाश से नवल गात।

---

१. Gandhi—"No doubt some day the law of God will be so written on the hearts and minds of men that they will become individually the expression of it, and will need no human law or government ;—

Nonviolence in Peace and War, page 225

श्रद्धा के इस तकली-गीत में गाधीवाद का स्वर है। इसके पूर्व ही उसने मनु को अहिंसा का सदेश दिया था। वह पशु, पक्षी को भी कष्ट देना नही चाहती। कामायनी का समाजवाद मानवता के कल्याण की कामना करता है। श्रद्धा की तकली और उसी के साथ बुनी जानेवाली ऊन की पट्टिया, सर्वोदय के प्रतीक है। सारस्वत नगर निवासियो ने सहयोगिता से देश को वैभवशाली बनाया था। वर्ग और वर्ण भेद के कारण मनु के नगर मे वैषम्य बढा। कामायनी वर्गसघर्ष का समर्थन नही करती। प्रसाद का राजनैतिक चिन्तन मानवता को सम्पूर्ण इकाई के रूप में लेकर हुआ है। स्वयम् कामायनी की आधारभूमि किसी देश, काल की नही है, उसमें मानव को ही विषय बनाया गया है। कवि मानवीय है और उसकी राजनीति मानव के लिये है। इस क्षेत्र में कामायनी युग के सर्वोत्कृष्ट व्यक्तित्व गाधी के अहिंसा, स्वावलम्ब से प्रभावित है, साथ ही उसमे कवि के व्यक्तिगत चिन्तन और मनन का भी योग है। उसका मूल स्वर यही है .

शक्ति के विद्युतकण, जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय ।

कामायनी मे मानवता-सम्बन्धी विषयो को प्राय ले लिया गया है। आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, व्यक्तिगत सभी पक्षो पर उसमे विचार है। उसमे जीवन के विकास की आवश्यक वस्तुओ का ग्रहण है। व्यक्तिगत क्षेत्र में मानव की अनुभूतियो का चित्रण कवि ने किया। इनका सम्बन्ध मन से है। इसीलिए मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को प्रमुखता प्राप्त हुई और सुख-दुख, घृणा प्रेम सभी भावो पर विचार हुआ। मन का अधिकाधिक प्रसार, व्यक्तित्व का उचित विकास ही मानव के लिये उचित है। सामाजिक क्षेत्र मे स्त्री पुरुष की समस्या ली गई। उनके प्रेम की रूपरेखा भी कवि ने निर्धारित कर दी। उनका स्नेहिल सगम ही जीवन की सफलता है। नारी का उचित प्रयोग भी अपेक्षित है। वास्तव मे वह एक शक्ति है, जो पुरुष को प्राप्त होती है। इडा ने अपनी बुद्धि और श्रद्धा ने हृदय दिया था, किन्तु मनु कुछ समय तक 'पुरुषत्व मोह' मे उनका उचित उपयोग न कर सके। समाज की अविकास आवश्यकताओ पर कामायनी ने विचार किया और राजनैतिक पक्ष को भी ग्रहण किया। राजनीति में प्रचलित अनेक वादो का परित्याग कर कवि ने एक व्यापक दृष्टि रक्खी है। वह मानवीय चिन्तक है। आध्यात्मिक दृष्टि से कामायनी का

चिन्तन पक्ष पर्याप्त उदात्त और प्रौढ है। उसमे दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक विषयो का समाहार है। श्रद्धा, काम, कर्म की सुन्दर परिभाषा की गई। प्राचीन भारतीय ग्रन्थो मे इन शब्दो का ग्रहण अवश्य है, किन्तु आधुनिक परिस्थितियो को विचार मे रखकर कामायनी मे उनका नवीन स्वरूप निर्धारित किया गया। शंकराचार्य ने अद्वैतदर्शन की परिभाषा से जो कार्य किया था, कामायनीकार का वही लक्ष्य प्रतीत होता है। जीवन में मूल वस्तु श्रद्धा है। संसार की समस्त विषमता के मूल मे श्रद्धा का अभाव है। मनुष्य मनुष्य पर विश्वास नही करता; स्वार्थ और विषमता की वृद्धि होती जा रही है। श्रद्धा मे प्रेम और सहानुभूति का उदय होता है। जीवन को सुखी बनाने के लिये कर्म की नितान्त आवश्यकता है। युग की समस्याओ के ही कारण तिलक ने गीता के 'निष्काम कर्म' को प्रधानता दी। 'कामायनी' मे उसी तथ्य का समर्थन है। कर्म के अभाव में जडता, निराशा का सचार होता है, जो जीवन को जर्जर और पगु बना देता है। काम की व्यापक परिधि मे समग्र जीवन का समावेश हो जाता है। इधर बीच मे इस शब्द को सकुचित कर दिया गया था। कामायनी मे पुन उसका नवजागरण प्रस्तुत हुआ। समरसता, सौमनस्य, सन्तुलन की जीवन मे नितान्त आवश्यकता है। विरोधी शक्तियों का मिलन ही कल्याणकारी हो सकता है। साधारण व्यक्तिगत विषय से लेकर वृहत समस्या तक मे इसकी आवश्यकता है। समरसता से आनन्द की उत्पत्ति होती है, जिस प्रकार काव्य मे स्थायी भाव, सचारी भाव, विभाव, अनुभाव के सयोग से रसनिष्पत्ति। उच्च भावभूमि पर मानव को ले जाने के लिये अद्वैत, रहस्य का भी समावेश है। शिव के नृत्य से समस्त विषमता की शान्ति हो जाती है। आजीवन युद्ध करता हुआ मानव अन्त मे विश्वनियन्ता की प्राप्ति चाहता है। आध्यात्मिक क्षेत्र मे किसी न किसी रूप मे मुक्ति की प्राप्ति मानव की अमर पिपासा रही है। कामायनी मे उसे व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया गया। मनु अन्त मे जिस आनन्द को पा जाते है, उसी का रहस्य वे सारस्वत मानवता को बताते है। मानवता को आनन्द देना ही उनका उद्देश्य है। आनन्द के पश्चात मानव की कोई आकाक्षा नही रह जाती।

दार्शनिक शब्द—

कामायनी मे जयशंकर प्रसाद ने अनेक दार्शनिक तथा प्राचीन शब्दो का प्रयोग किया। उनकी व्याख्या मे उन्होने आवश्यक परिवर्तन कर उन्हे व्यावहारिक बना दिया। इसी कारण प्राचीनतम पौराणिक आख्यान में भी नवीन विषयो का प्रतिपादन किया जा सका। समरसता, आनन्द आदि शैव दर्शन में

प्रयुक्त होने वाले शब्दो की उन्होने धार्मिकता से रक्षा की। उनकी समरसता आध्यात्मिकता की परिधि से निकलकर व्यक्ति, समाज, राजनीति तक आ गई। आनन्द भी केवल आध्यात्मिक जगत, रहस्यमय प्रदेश तक सीमित न रहा। दर्शन में प्रयुक्त शब्दो की रूढिवादिता उन्होने समाप्त कर दी। देवदानव सघर्ष की पौराणिक गाथाओ से उन्होने मानस जगत के सघर्ष की कल्पना की। देवत्व को भी अपूर्ण कहकर 'कामायनी' ने मानवता को प्रतिष्ठित किया। मानव ही सर्वोपरि है। 'भूमा' शब्द भी प्राचीन ग्रन्थो से ही ग्रहण किया गया। 'कामायनी' मे 'माया' का प्रयोग भी कई स्थानो पर हुआ है। साख्यदर्शन के अनुसार माया सर्व विभीपिकाओ का मूल है। वह मानव के उत्कर्ष मे वाधक है। वह सदा पुरुप को, प्रकृति बनकर अपने पाश में बाधती रहती है। शकर का भी मत इसी के निकट है। इसके विपरीत शैव माया को उस शक्ति के रूप में स्वीकार करता है, जो आणव से आत्मा को मुक्त कर उसे शक्ति प्रदान करती है। वह शाश्वत है तथा इन्द्रिय और ज्ञान द्वारा आत्मा को आणव से युद्ध करने में सहायता देती है। वह चिरन्तन 'परानिशा' है[६८]। 'कामायनी' में श्रद्धा आत्मसमर्पण के समय 'माया' का भी दया, ममता आदि के साथ ही दान देती है। इस स्थल पर शक्ति रूप मे ही वह गृहीत है। श्रद्धा इच्छा लोक दिखाकर कहती है -

'यहां मनोमय विश्व कर रहा
रागारुण चेतन उपासना
माया राज्य यही परिपाटी
पाश बिछाकर जीव फासना'

छलना के रूप मे माया का ग्रहण करने के कारण ही मनु ने इडा को 'मायाविनि' कहा था। इस मिथ्या रूप को कवि ने स्वीकार नही किया। 'कामायनी' मे माया का प्रयोग विभिन्न अर्थो में हुआ, किन्तु कवि स्वय उसे एक शक्ति रूप मानता है।

नारी माया ममता का बल
वह शक्तिमयी छाया शीतल

'माया' की भाति ही 'नियति' की कल्पना भी उदात्त भावना की ओर अधिक है। वास्तव में कवि का दृष्टिकोण प्राय सृजनात्मक ही रहा है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की चर्चा भी शैवग्रन्थो मे प्राप्त है। ये पच विषय 'तन्मात्र'

---

६८ तन्त्रालोक . ६।११७, ८,४

कहलाते हैं जो मायाजन्य तामस वस्तुये हैं। मनु इन्ही से ग्रसित रहता है[६९]। 'मधु', 'मधुमय' आदि शब्दो का प्रयोग कामायनी मे किसी विशेष सीमित अर्थ मे नही है। ऋग्वेद मे मधु का प्रयोग हुआ है। उसके अनुसार 'वायु मधु वितरित करती है, सरिताओं मे मधु प्रवाहित है, समस्त अन्न मधुमय हो। रजनी, प्रात, धरणी, धूलि, आकाश सभी मधुमय हो[७०]।' कामायनी मे मधु का ग्रहण अत्यधिक सरसता, तरलता, प्रिय वस्तु के रूप मे है। मनु के जीवन में काम का प्रवेश मधुमय वसन्त बनकर आता है। मधु की इसी सरस कल्पना मे कवि ने मधुमय, मधुरिम, मधुमास मधुऋतु, माधुरी आदि शब्दो का निर्माण किया। इसके अतिरिक्त अन्य प्राचीन दार्शनिक ग्रन्थो में प्रयुक्त महा-चिति, संवेदन आदि अन्य शब्द कामायनी मे आये है, जिन पर कवि की कल्पना की छाया है तथा उन्हे इस प्रकार व्यावहारिक बनाने का प्रयास है।

कामायनी का चिन्तन कवि के गम्भीर, विशद अध्ययन का परिचायक है। एक ही साथ उसमे अनेक दार्शनिक तथ्यो का समावेश सुन्दर काव्यात्मक रीति से प्राप्त हो जाता है। उपनिषदो का अद्वैत, शैव दर्शन की समरसता आनन्द, बौद्धो की करुणा सभी की छाया उसमे मिलती है। चिन्तन का क्षेत्र इतना व्यापक है कि जीवन की समस्या पर मौलिक विचार और स्वतन्त्र धारणाय सहज सुलभ है। समस्त चिन्तन-मनन काव्य से एकाकार हो गया है। काव्य मे दर्शन और दर्शन में काव्य है। कामायनी का कवि एक ही साथ सफल कवि तथा चिन्तक है किन्तु उसमे तारतम्य का अभाव भी स्वीकार करना होगा।

---

६९. कामायनी, पृष्ठ ६९, २६२

७०. ऋग्वेद—१।९०

कामायनी का काव्यत्व

काव्य—

काव्य के विषय मे अत्यन्त प्राचीन समय से विचार होता रहा है। अरस्तू के काव्यशास्त्र से लेकर आधुनिक मनोवैज्ञानिको तक ने उसकी रूपरेखा निर्धारित करने का प्रयत्न किया। युग और स्थिति के अनुसार विचारधारा में परिवर्तन होता रहा। किन्तु काव्य के उपादानो में अधिकाश ने किसी न किसी रूप में भाव का महत्व अवश्य स्वीकार किया। सस्कृत के आचार्यो ने भाव से ही स्थायी भाव, सचारी भाव, विभाव, अनुभाव आदि का निर्माण किया। साहित्यदर्पणकार ने इन्ही के सयोग को रस की सज्ञा दी[1]। मनोविज्ञान के अनुसार भी भाव प्रधान है। सृष्टि की वस्तुओ का हमारे अन्त करण पर प्रभाव पडता है (impression)। भाव, विचार किंचित गुम्फित होने के कारण उसी रूप में बाहर नही आ पाते, उनका दमन होता है (suppression)। इसी के पश्चात अभिव्यक्ति का स्थान है (expression)। अन्तिम रूप सकेत, सदेश का है (suggestion)। भाव ही साहित्य के मूल मे विद्यमान है। काव्य प्रक्रिया मे सर्वप्रथम मन मे कोई भाव अथवा विचार आता है। 'कल्पना के प्रश्रय द्वारा' उसे और भी शक्ति मिलती है। अन्त में भाषा के द्वारा वह प्रकाशित हो जाता है। अलफ्रेड एडवर्ड हाउसमैन भावना को ही काव्य, और काव्य को ही भाव कहता है[2]। भावना को ही कल्पना से काव्य का विषय बनाया जा सकता है। कवि कल्पनाशील व्यक्ति होता है। किसी वस्तु को सहज ही ग्रहण कर लेने की उसमे अद्भुत क्षमता रहती है। भाव और कल्पना का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। भाव यदि अनुभव के अधिक समीप है, तो कल्पना कृतित्व के। शेक्सपियर ने पागल, प्रेमी, कल्पना को एक ही आवरण में रख दिया[3]। कल्पना के द्वारा

---

१ विभावेनानुभावेन व्यक्त सचारिणी तथा
रसतामेतिरत्यादि स्थायी भाव सचेतसाम्। (साहित्यदर्पण)

२ 'Feeling is poetry, and poetry feeling' Edward Housman, The Name and Nature of Poetry

३ 'The lunatic, the lover and the poet are of imagination all compact'—A Mid-Summer Night's Dream

कवि भावों का उदात्तीकरण कर उन्हें आदर्श रूप में प्रस्तुत करता है। यह उदात्तीकरण की प्रतिभा ही कवि को अन्य साधारण कल्पनाकारों से अधिक उच्च स्थान देती है। भाव का कल्पना द्वारा प्रकाशन करने के लिये भाषा के माध्यम की आवश्यकता होती है। उदात्त भावना के प्रतिपादन हेतु भाषा में भी परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक है। काव्य की भाषा लाक्षणिक होती है। उसमें किसी वस्तु का चित्र प्रस्तुत कर देने की क्षमता होती है, साथ ही उससे अर्थ-व्यंजना भी होती है। भारतीय साहित्यशास्त्र की अभिधा, लक्षणा, व्यंजना शक्तियों में लक्षणा, व्यंजना का ही ग्रहण काव्य में अधिक होता है। सम्पूर्ण अभिव्यक्ति एक विशिष्ट शैली द्वारा की जाती है। छन्द आदि का विधान इसी के अन्तर्गत आ जाता है। काव्य की सृजन प्रक्रिया में भाव को महत्वपूर्ण स्थान है। भाव को कल्पना भाषा और शैली द्वारा काव्य में परिणत कर देती है।

काव्य के मूल्यांकन की प्रणालियां भी युग और स्थिति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। संस्कृत में वक्रोक्ति, अलंकार, ध्वनि, रीति आदि के अनेक सम्प्रदायों ने अपने मत की स्थापना की। भरतमुनि ने रस को प्रधानता दी। 'वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्' के अनन्तर भामह ने 'काव्यालंकार' में शब्द अर्थ का समन्वय कर अलंकार को भी स्थान दिया। दंडी का 'काव्यादर्श' स्फोट का समर्थक है। वामन के अनुसार 'रीतिरात्मा काव्यस्य' ही उचित है। उद्भट अलंकारवादी हैं। आनन्दवर्द्धनाचार्य का 'ध्वन्यालोक' ध्वनि को ही सर्वस्व मानकर चलता है। कुन्तक ने वक्रोक्ति को प्रधानता दी। इस प्रकार भारतीय साहित्यशास्त्र में काव्य मूल्यांकन की अनेक प्रणालियां बिखरी हुई मिलती हैं। किन्तु किसी न किसी रूप में काव्य की भावात्मक अथवा रसात्मक सत्ता अवश्य स्वीकार की गई है। काव्य का लक्ष्य आनन्द है। पश्चिम में अरस्तू का काव्यशास्त्र पर्याप्त समय तक काव्य-मूल्यांकन का प्रतिनिधि ग्रन्थ रहा। दुःखान्त नाटक को साहित्य का सर्वोत्कृष्ट रूप कहकर उसने होमर का उदाहरण सम्मुख रखा। अंग्रेजी में शेक्सपियर के युग तक अरस्तू के आधार पर ही काव्य का मूल्यांकन होता रहा। 'कला कला के लिये और कला जीवन के लिये' का द्वन्द्व आरम्भ होते ही सिद्धान्तों में परिवर्तन हुआ। प्राचीनता के समर्थक अब भी ग्रीक को आदर्श मानकर चलते थे। स्वच्छन्दतावादी कवि ने स्वयम् अपने काव्य की व्यापक परिभाषा की[१]। काव्य को समस्त ज्ञान का भाण्डार मानकर कवि को [illegible] की सत्ता शैली ने दे डाली। कॉलरिज ने मनोवैज्ञानिक आधार पर काव्य में हृदय और बुद्धि का समन्वय आवश्यक माना। बदलती हुई सामाजिक,

---

१ Poets Defence—J. Bronowski.

आर्थिक, राजनैतिक समस्याओ के साथ ही कविता और जीवन का सम्बन्ध नितान्त निकट आता गया। राजनैतिक वादो की छाया काव्य पर भी पडी। जीवन की आड में प्रचार भी उसका कार्य हुआ। इस प्रकार काव्य की कसौटियां भिन्न-भिन्न समय में परिवर्तित होती रही। हिन्दी के छोटे से इतिहास में बहुत समय तक सस्कृत के ही सिद्धान्त ग्रहण किये गये। द्विवेदी युग में खडी बोली के प्रवेश के साथ जीवन-दर्शन और नैतिक आदर्शो की ओर अधिक अभि-रुचि हुई। छायावाद ने सूक्ष्म मानवीय भावनाओ का ग्रहण किया। रामचन्द्र शुक्ल के 'काव्य में लोक मगल की साधना' के स्थान पर छायावाद ने रवीन्द्र के 'सत्य, शिव, सुन्दरम्' को अधिक अपनाया। स्वयम् प्रसाद ने अपना आदर्श आनन्दवादी रक्खा। काव्य को 'आत्मा की सकल्पात्मक मूल अनुभूति' मानकर उन्होने अनुभूति को प्रधानता दी। उसमें श्रेय प्रेय, आदर्श यथार्थ का समन्वय ही उचित है। उन्होने रस और आनन्द मे सामीप्य स्थापित किया। जीवन का समावेश साधारणीकरण द्वारा होता है। काव्य को व्यापक भूमि पर प्रतिष्ठित कर वे आनन्द ही उसका उद्देश्य मानते है[१]। काव्य की उत्कृष्टता के विषय में परिवर्तित विचारो के साथ भी कवि की आनन्द भावना का सामजस्य हो जाता है। किसी न किसी रूप में काव्य की उपादेयता सभी स्वीकार करते है। अनु-भूति के विषय परिवर्तित हो सकते है, किन्तु उसका सत्य काव्य की उत्कृ-ष्टता का सदा परिचायक रहेगा।

भाव-निरूपण—

कामायनी का भाव तथा कल्पना पक्ष कवि के व्यक्तित्व से अनुप्राणित है। कथा को मनोनुकूल निर्मित करने के अतिरिक्त कवि ने विभिन्न भावो का निरूपण तथा वस्तु वर्णन भी स्वतन्त्र रूप से किया है। कामायनी मे प्रत्येक सर्ग का शीर्षक ही एक भाव है। उसके वर्णन मे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के अतिरिक्त रूप चित्रण तथा गुण प्रकाशन भी हुआ है। मानसिक वृत्तियो को साकार रूप देने का प्रयत्न प्रतीत होता है। भावनिरूपण में मूर्तिमत्ता आ जाती है। भाव साकारता के साथ ही उसकी प्रभावान्विति भी होती है। सम्पूर्ण वातावरण उसमें सहयोग प्रदान करता है। प्रलय की दशा में एकाकी पुरुष का चिन्ता-निमग्न होना स्वाभा-विक ही है। मनु उसे सम्बोधित करते हुये अपनी जिज्ञासा मे प्रश्न करता है। अन्तर मे उठने वाला यह सूक्ष्म भाव कवि के शब्दो मे मूर्तिमान हो गया है। चिन्ता के समस्त गुणो को लेकर ही कवि ने कहा है

---

१ काव्य और कला, पृष्ठ ४५

हे अभाव की चपल बालिके
　　　　री ललाट की खल लेखा
हरी भरी सी दौड़ धूप, ओ
　　　　जल माया की चल रेखा।

अभाव मे ही चिन्ता का उदय होता है। उस समय ललाट पर अनेक रेखाये आ जाती हैं। कवि ने उसे वहरी कहकर सम्बोधित किया है। चिन्ता का चित्रण करने के पश्चात वह मानसिक जगत मे उसके प्रभाव का वर्णन करने लगता है। विभिन्न प्रकार के भावो के प्रतिपादन का प्रयत्न 'कामायनी' द्वारा किया गया। चिन्ता, वासना, कर्म, ईर्ष्या, इडा, सघर्ष आदि उत्तेजनामय भावो के निरूपण मे उसी के अनुरूप प्रखर चित्रो का प्रयोग हुआ। वासना का चित्रण करने में कवि अधिक सयत प्रतीत होता है। आरम्भ में ही वह अनेक उपमाओ द्वारा पुरुष नारी के ससर्ग की सूचना दे देता है। 'रागरजित चन्द्रिका' सहयोग प्रदान करती है। वासना की परिणति का भी वर्णन अत्यन्त साकेतिक रीति से कर दिया गया.

छूटतीं चिनगारियाँ उत्तेजना उद्भ्रान्त
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशान्त।

कर्म के अन्तर्गत पशुबलि, हिंसा आदि की चर्चा है। वेदी की निर्मम प्रसन्नता, पशु की कातर वाणी, धधकती ज्वाला, रुधिर के छींटे कर्मकांड का परिचय देते हैं। 'ईर्ष्या' में मनु का ज्वलनशील अन्तर पूर्ण आवेशमय, उत्तेजनामय हो जाता है। वे केवल एक ही सांस मे अपनी ईर्ष्या की अभिव्यक्ति करते चले जाते हैं, कोई विराम नहीं। इस अवसर पर भावो मे एक प्रवाहमयता आ गई है। इसी आवेग मे मनु चल देते हैं। उनके भाव प्रकाशन मे इस समय कोई तारतम्य नहीं। केवल उत्तेजनावश वे कहते रहते हैं। तभी वे नारी के प्रेम की व्यापकता को विभाजन करते हैं। स्वयम् अपने पुत्र से उन्हे ईर्ष्या होती है। बुद्धिवाद के निरूपण मे झोंका, विद्युत, तर्कजाल आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है। सघर्ष की भयानक अवस्था के प्रतिपादन में कवि ने अत्यन्त उत्तेजक सम्भाषणो की सहायता ली। कोमल एव सूक्ष्म भावो के चित्राकन मे कवि के मधुर भाव जागृत हो जाते हैं। आशा के साथ ही उषा का उदय, आलोक-रश्मियो की प्रभा विकीर्ण करना नैसर्गिक है। इस जागृत भाव के साथ ही सु-सस्कृति सजग हो जाती है। जिज्ञासा, कुतूहल अनेक प्रश्न करने लगते हैं। श्रद्धा के निरूपण में कामायनीकार ने उदात्त कल्पनाओं का अवलम्ब

लिया। सम्पूर्ण काव्य की पृष्ठभूमि होने के कारण उसे विशेष महत्व भी प्राप्त है। श्रद्धा का रूप वर्णन ही उसके गुणो की व्यजना करता है। उसके शब्दो में मधु गुजार है। सौन्दर्य के साथ ही वृत्ति भी चित्रित हो जाती है—

नित्य यौवन छवि से ही दीप्त
विश्व की करुण कामना मूर्ति
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड में स्फूर्ति

काम का सरस भाव निरूपण मनोहर कल्पनाओ द्वारा कामायनी में प्रतिपादित किया गया है। मनु के अन्तरतम मे उठता हुआ काम का भाव जीवन में मादकता घोल देता है। रजनी के अन्तिम प्रहर मे मादकता अधिक तीव्र हो जाती है। वसन्त की समस्त मधुरता लेकर काम ने प्रवेश किया। मन की कोकिला कुहू कुहू कर उठी, कलिकाये भी उन्मुक्त हो गई। मनु का केवल एक प्रश्न समस्त भाव को मूर्तिमान कर देता है

जब लीला से तुम सीख रहे
कोरक कोने में लुक रहना
तब शिथिल सुरभि से धरणी में
बिछलन न हुई थी ? सच कहना

काम की भाति लज्जा भी अत्यन्त सूक्ष्म भाव है। काम की क्रियाये कभी-कभी स्पष्ट भी हो जाती है किन्तु लज्जा की चेष्टा पर सदा एक आवरण रहता है। अन्तर प्रदेश में अनायास ही उदित होकर वह अनजान मे ही समाप्त हो जाती है। उसकी अनुभूति मे भी कठिनता होती है। कोमल किसलय के अचल मे छिपी हुई नन्ही कलिका की भाति वह अन्तरतम मे प्रविष्ट होती है। गोधूलि वेला मे किसी ग्राम बालिका के अचल मे जलता हुआ स्नेह दीपक भी झिलमिलाता रहता है। उसका पूर्ण प्रकाश घर लौटता हुआ पथी नही पाता। स्वप्न में सत्य और कल्पना दोनो का ही समन्वय होता है। लहरो पर बुद्‌बुद् फूट-फूट कर फिर बन जाते है। लज्जा के समस्त प्रभाव का वर्णन नारी कर जाती है। स्वयम् अपने गुण का वर्णन करती हुई लज्जा की सूक्ष्म भावना कहती है

मैं देवसृष्टि की रति रानी—
निज पचवाण से वचित हो
बन आवर्जना मूर्ति दीना
अपनी अतृप्ति सी सचित हो।

सौन्दर्य की धात्री लज्जा कपोलो पर लाली वनकर खेल जाती है। कामायनी के अन्तिम तीन सर्गों में दार्शनिक भावो का निरूपण है। इच्छा, ज्ञान, कर्म का एक साकार रूप प्रस्तुत किया गया है। इन शीर्षकगत भावो के निरूपण में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के अतिरिक्त उनकी रूपरेखा भी निर्धारित की गई है। प्रत्येक भाव के रूप, गुण का प्रतिपादन हुआ है। साथ ही भाव-प्रक्रिया का भी सकेत कर दिया गया है। अनुभूति से समन्वित होने के कारण भाव काव्य मे मूर्तिमान हो गये है। केवल भाव प्रतिपादन काव्य की रसात्मक अनुभूति में अधिक सहयोग नही प्रदान करता। मानसिक तथ्यो की साकारता केवल उनका व्यजित रूप है, कामायनी में उनका निरूपण अनुभूति के आधार पर ही है। इन स्थायी भावो मे सम्बन्धित अन्य संचारी भावों का उल्लेख भी किया गया है। चिन्ता अपने साथ शोक, विषाद, करुणा को लेकर चलती है। आशा जागृति, जिज्ञासा, मोह का सृजन करती है। श्रद्धा के समस्त उदात्त गुण उसमें निहित है। काम की सरसता और मादकता भी बोल रही है। वासना में अतृप्ति, उच्छृखलता, मूर्च्छना है। लज्जा का सकोच स्पष्ट ही है। कर्म लालसा को लेकर चलता है। ईर्ष्या का सकुचित रूप भी आभासित हो जाता है। इडा की बुद्धिवादी प्रवृत्तिया उसके साथ है। स्वप्न की मूर्च्छना स्वाभाविक है। सघर्ष का भयानक रूप चित्रित है। निर्वेद की उदासी, जडता भी प्रकट है। अन्तिम तीनो उदात्त भावो के सचारी उसके अनुरूप है। इस प्रकार अन्य सभी भावो का समावेश इन्ही भावो के अन्तर्गत हो गया है। इन सचारी भावो के सहयोग से ही रसनिष्पत्ति हो जाती है। कामायनी मे अनेक भावो का एक साथ समावेश काव्य मे एकाकार होकर आया है। सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और दार्शनिक निरूपण काव्य का ही अग हो गया है।

कल्पना—

भाव के आधार पर ही कल्पना काव्य निर्माण में तत्पर होती है। वह अनुभूति को चिरन्तनता प्रदान कर स्थायी रूप मे अंगीकार कर लेती है। आई० ए० रिचर्ड्स कल्पना के अनेक रूपो की चर्चा करते हैं। काव्य कल्पना जीवन के अनेक अनुभवों का उदात्तीकरण कर उन्हें आनन्दमय बना लेती है[१]। कोलरिज के विचार भी इन्हीं के निकट है। यह कल्पना ही कवि की कारयित्री प्रतिभा

---

१. Principles of Literary Criticism, page 245.

होती है । 'प्रज्ञानवनवोन्मेपशालिनी प्रतिभा मता' के द्वारा कवि अपने निर्माण तथा सृजन मे सफल होता है । कल्पना का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और विस्तृत होता है । कथानक योजना से लेकर सूक्ष्म चित्राकन तक की प्रक्रिया में उसका सहयोग रहता है । उदात्त कल्पना काव्य को स्वयम् महानता प्रदान करती है । इसी कारण आरम्भिक युग के कलाकार इतिहासप्रसिद्ध पौराणिक कथा को ही काव्य विषय बनाते थे । कल्पना में सत्य का समावेश उसमें सवेदनशीलता ला देता है और पाठक का उसके साथ तादात्म्य अथवा साधारणीकरण हो जाता है । अनुभूति का सत्य काव्य का नैसर्गिक गुण है । मानवीय भावो का ग्रहण और अकन, दोनो ही क्रियाये कवि को करनी पडती है । वह समाज से प्रेरणा लेकर कल्पना से उसे भव्य बनाकर पुन लौटा देता है । कामायनी में कल्पना और सत्य का सामजस्य है । कथानक की रूपरेखा का निर्माण अनेक प्राचीन ग्रन्थो के आधार पर हुआ है । यत्र-तत्र बिखरी हुई कथा को कल्पना के द्वारा ही कवि ने एक सूत्र मे बाध दिया। ऐतिहासिक कथानक मे नवीन विपयो का समावेश भी उसने अपनी मौलिक उद्‌भावनाओ द्वारा किया। मनु के प्राचीनतम आख्यान की पौराणिकता पर उदात्त कल्पना एक आधुनिक कलेवर चढा देती है। स्वप्न देखकर श्रद्धा मनु के पास पहुँच जाती है। मनु निर्वेद के कारण पुन पलायन करते है । कैलाश आश्रम पर अन्त में सभी का पुनर्मिलन होता है। इन सभी मौलिक कल्पनाओ से कामायनी का कथानक सज्जित है । एक ओर यदि इतिहास की रक्षा हुई, तो साथ ही उसे नवीनतम स्वरूप भी प्रदान किया गया । इतिहास का नवीन रूप कामायनी में स्पष्ट है । पात्रो की नियोजना मे भी कल्पना का पूर्ण सहयोग है । मनु, श्रद्धा, इडा आदि सभी पात्र अपना एक सहज स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखते है । शतपथ ब्राह्मण की कथा के अतिरिक्त ऋग्वेद, पुराण, उपनिपद् आदि मे उनकी व्याख्या है । है । इतिहास के रूप, दर्शन, गुण को लेकर प्रसाद ने अपनी अनुभूति और कल्पना के द्वारा उनका नव-निर्माण किया । युगो पूर्व के पात्रो मे नवीनता आ गई है । मनु का ऋपित्व, श्रद्धा का देवी रूप, सभी मानवीय धरातल पर हुआ । कवि ने उन्हे मानवीय गुणो मे सज्जित कर दिया । मानव होकर ही वे समस्त मानवीय सवेदना प्राप्त कर सकते है । वैदिक पात्रो के मानवीकरण मे कवि की महान कल्पना शक्ति का परिचय प्राप्त होता है । जीवन के स्वाभाविक उत्थान पतन मे गिरता पडता मनु अन्त मे स्वयम् चरम आदर्श तक चला जाता है । आदि से अन्त तक वह मानव है । श्रद्धा नारी की समस्त विभूतियो से विभूपित है । इडा नारी का ही एक अन्य स्वरूप है । काव्य को प्रतिपादित करने मे भी कल्पना का मनोरम रूप दिखाई देता है । कालिदास की उपमा विश्वविख्यात है । प्रसाद

के चित्रों की सजीवता भी उसी प्रकार की है। श्रद्धा का रूप कल्पना के कारण अत्यन्त सूक्ष्म रूप मे अंकित हुआ है

> आह वह मुख ! पश्चिम के व्योम
>
> बीच जब घिरते हों घनश्याम
>
> अरुण रवि मंडल उनको भेद
>
> दिखाई देता हो छविधाम

वस्तु-वर्णन—

भाव, कल्पना से ही वस्तु चित्रण का भी सम्बन्ध है। मानसिक वृत्तियो के निरूपण मे कामायनी अधिक सफल हुई है। कवि आरम्भ से ही अन्यान्य परिस्थितियों को भी उसी ओर उन्मुख कर लेता है। वस्तु वर्णन मे भाव का स्वरूप प्रस्तुत करने के साथ ही विविध मनोदशायें और मानसिक भावनाएँ चित्रित की गई है। सूक्ष्मतम भावो का चित्रांकन करने मे भी कवि को सफलता प्राप्त हुई है। स्थूल वस्तु चित्रण मे कामायनीकार की तूलिका अधिक नही रमती। इसीलिये विभाव पक्ष का सर्वांगीण अंकन नही दिखाई देता। लज्जा, काम को साकार रूप प्रदान करने मे वस्तु वर्णन की सर्वोत्कृष्ट कला का प्रयोग किया गया। सूक्ष्मतम प्रभाव को भी कवि ने ग्रहण किया है। किन्तु 'संघर्ष' का रेखांकन उसी कौशल से न हो सका। सम्भवत. सौन्दर्यवादी कलाकार को प्रखर भावो की अनुभूति भली भांति नही हो पाई। भाव के साथ ही अनेक दार्शनिक तथ्यो का भी वर्णन काव्य मे आया है। अन्तिम तीन दर्शन-प्रधान सर्गों में उसी का स्वरूप मिलता है। 'दर्शन' मे श्रद्धा मनु का मिलन एक सर्वांग ज्योति का सृजन करता है। सर्वत्र प्रभा पुंज विकीर्ण होने लगा। सम्पूर्ण वातावरण ही प्रकाशमय हो उठता है :

> आनन्दपूर्ण ताडव सुन्दर
>
> झरते थे उज्ज्वल श्रम सीकर
>
> बनते तारा, हिमकर, दिनकर
>
> उड़ रहे धूलि कण से भूधर

इच्छा, ज्ञान, कर्म का वर्णन भावमय होकर भी वस्तुसमन्वित है। भाव रूप मे प्रवृत्तियों के प्रभाव का ही वर्णन कवि ने ग्रहण किया। इच्छा आलिंगन की भांति मधुर प्रेरणा बनकर स्पर्श कर लेती है। वह जीवन की मध्यभूमि है, जो रस धारा से सिंचित होती रहती है। मधुर लालसाओं का संचार होता रहता है। विविध व्यापारों के द्वारा ही कवि उनका चित्र प्रस्तुत कर देता है। कर्मलोक की

अभिव्यक्ति कोलाहल, पीडा, विकलता आदि के द्वारा हुई है। आकाक्षा और तीव्र पिपासा उसी के अनुरूप है। ज्ञान अपना परिमित पात्र लेकर बूद बूद वाले निर्झरों से जीवन का रस मागता है। त्रिपुर अपने पृथक रूप में अत्यन्त अभिशापमय है। उनका मिलन ही आनन्द का रूप प्रस्तुत कर देता है। अनायास ही स्थिति परिवर्तित हो जाती है, एक स्वर्णिम ज्वाला स्वप्न, स्वाप सभी को भस्म कर आनन्द का प्रकाश विकीर्ण कर देती है। भाव तथा दार्शनिक वस्तु वर्णन सूक्ष्म चित्राकन के आधार पर हुआ है।

कामायनी का रूप वर्णन मानसिक वृत्तियो के प्रकाशन के साथ ही चलता रहता है। मनु के पौरुषमय स्वरूप को प्रस्तुत करते हुये कवि ने आदिपुरुष के महान व्यक्तित्व को अपना आदर्श बनाया। स्थूल शरीर वर्णन के साथ ही उनके गुण का भी समावेश हो जाता है.

अवयव की दृढ़ मास पेशिया
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिरायें स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार।

अन्तर वाह्य के समन्वय से ही सम्पूर्ण चित्र निर्मित हुआ है। आदिपुरुष की इस भव्य रूपरेखा में उसका शरीर और मन, दोनो ही पक्ष आभासित हो जाते हैं। क्षण क्षण में उठने वाली मन की अनेक भावनाओ के साथ ही किसी शारीरिक परिवर्तन का क्रम प्रसाद ने नही स्वीकार किया। केवल विशेषण अथवा उपमा द्वारा ही उसे अकित कर दिया गया है। जलप्लावन समाप्त होने पर आशा के उदय के साथ स्वस्थ मनु भी उठे, ज्यो क्षितिज के बीच से कान्त अरुणोदय। श्रद्धा उपमान के द्वारा मनु को सम्बोधित करती है। साधारण सकेत से ही परिवर्तन का बोध हो जाता है। काम ने मनु की चेतना को शिथिल कर दिया। 'वासना' में 'छूटती चिनगारिया' ही स्थिति का अकन करती है। मृगया से लौटे मनु का चित्र 'शिथिलत शरीर' मे प्रस्तुत कर दिया गया है। नवर्ष की अवस्था मे भी शारीरिक परिवर्तन अधिक नही होता। अन्तिम रूप मे मनु पुन अपना वास्तविक गुण प्राप्त कर लेते हैं। लज्जा के रूप वर्णन मे प्रसाद की कला अधिक मुखर हुई है। काव्य मे चली आती नायिका की नखशिख वर्णन परम्परा का आभास 'आसू' में था, किन्तु यहा आकर उनका भी परित्याग कर दिया गया। नारी के समस्त सौन्दर्य को कवि ने मुख में ही पा लिया। रूप वर्णन के साथ ही उसके गुण का भी आभास दे देना प्रसाद की कला है। श्रद्धा के प्रथम सौन्दर्याकन में सूक्ष्म कल्पनाओ की योजना

मिलती है। उपमान और उपमेय मे पूर्ण साम्य प्रतीत होता है। आरम्भ मे ही घनीभूत भावना है

> किये मुख नीचा कमल समान
> प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छन्द

भारतीय नारी की सम्पूर्ण लज्जा लेकर श्रद्धा सम्भवत: अपरिचित मनु से नतशिर ही प्रश्न करती है। उसकी वाणी का माधुर्य उसे 'मधुकरी' बना देता है। स्वयम् उसके स्वर सदेश मे मधुरता, स्निग्धता थी। कमल झुककर भी अपना अपरिमेय परिमल नहीं खो देता। श्रद्धा के मुख से सौरभ बरबस ही विकीर्ण हो उठा था। आदिकवि के प्रथम छन्द की प्रेरणा करुणा थी। 'मा निषाद, प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा' की नैसर्गिक अभिव्यक्ति क्रौंच वध से अनुप्राणित थी। कवि का कंठ करुणा ने खोला था। श्रद्धा भी निर्जन के उस तपस्वी पर द्रवीभूत हो उठी। उसकी दया ने ही एक अपरिचित के सम्मुख उसका मधुर स्वर खोल दिया। श्रद्धा के प्रथम छन्द की करुणा किसी प्रकार आदिकवि की आदिकविता से कम न थी। प्रथम उपमान की ही सार्थकता सुन्दर है। उस नैसर्गिक रूपराशि पर मनु लुट जाता है। उसे वह सब 'इन्द्रजाल' की भाति प्रतीत होता है। घनखंडो से आती हुई चन्द्रिका तथा लता से आलिंगित कुसुम में भी रूप की अपेक्षा माधुर्य का आग्रह अधिक है। श्रद्धा का अन्तर-बाह्य पक्ष कवि ने समन्वित कर दिया है। उसके रूप वर्णन से ही गुणो का आभास दे देने का प्रयास स्पष्ट हो जाता है। 'शिशु साल' से श्रद्धा के कौमार्य की अभिव्यंजना हो जाती है। नील परिधान के बीच खुले हुए उसके मृदुल सुकुमार अंग की नैसर्गिकता का परिचय देने के लिये अलौकिक उपमान का प्रयोग किया गया है:

> खिला हो ज्यों बिजली का फूल
> मेघ-वन-बीच गुलाबी रंग

गुलाबी रंग का कान्तिमय शरीर विद्युत की सी छटा प्रकीर्ण कर रहा था। मेघ वन नीले परिधान के लिये प्रयुक्त हुआ है। मनु के नयनों का इन्द्रजाल सम्भवत इसी अपार सौन्दर्य के कारण था। कवि मनु के सौन्दर्यपान में लीन हो जाता है। श्रद्धा का मुख पश्चिम के व्योम में बिखरी हुई घनमाला से झांकते हुए स्वर्णिम अंशुमाली की भांति था। मुख की कान्ति के लिए ज्वालामुखी की कल्पना की गई है। पास ही दिखने वाले केश छोटे-छोटे नील मेघ-शावकों की भांति चन्द्रमा से अमृत भर लेना चाहते थे। सम्पूर्ण रूप वर्णन को चित्र रूप में प्रस्तुत कर कवि उसे सर्वांगीण बना देता है.

कुसुम कानन अचल में मन्द
पवन प्रेरित सौरभ साकार
रचित परमाणु पराग शरीर
खडा हो ले मधु का आधार।

नवीन उपमानो का प्रयोग कवि ने किया है। वाह्य चित्रण की अपेक्षा उसने आन्तरिक प्रकाशन पर अधिक ध्यान रक्खा। श्रद्धा का अन्य रूप वासना के अन्तर्गत प्राप्त होता है। केवल सकेतो के द्वारा ही समस्त स्थिति का अकन कर दिया गया है

गिर रहीं पलकें, झुकी थी नासिका की नोक
भ्रूलता भी कान तक चढ़ती रही बेरोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल
खिला पुलक कदम्ब सा था भरा गदगद बोल।

लज्जा के कारण श्रद्धा का सौन्दर्य छाया की भाति सूक्ष्म हो जाता है। आन्तरिक वृत्ति के उदय होते ही प्राणो में एक मादक शिथिलता सी आने लगती है। मन बरवस ही किसी के चरणो में झुक जाता है। अन्तर कदम्ब की माला की भाति पुलकित हो उठता है। तरल हँसी स्मित बनकर रह जाती है, केवल नेत्रो में ही वक्रता देखी जा सकती है। रूपवर्णन मे लज्जा के साथ ही होने वाली वास्तविक मनोदशा का अकन कवि ने कर दिया। सौन्दर्य का सर्वथा उन्मुक्त रूप छाया की भाति झिलमिल हो गया है। श्रद्धा स्वयम् अपनी स्थिति स्पष्ट कर देती है

छूने में हिचक, देखने में
पलकें आखो पर झुकती है
कलरव परिहास भरी गूंजें
अधरों तक सहसा रुकती हैं।

मनु की हिंसात्मक प्रवृत्ति श्रद्धा के मन मे विरक्ति का भाव भर देती है। उसकी सुप्तावस्था का वर्णन है

जागृत था सौन्दर्य यदपि वह
सोती थी सकुमारी
रूप चन्द्रिका में उज्ज्वल थी
आज निशा सी नारी

श्रद्धा के भावी मातृत्व का रूप वर्णन करने मे कामायनी के कवि ने नैतिकता

और आदर्श की भी रक्षा कर ली। कालिदास ने रघुवश के तृतीय सर्ग में रानी सुदक्षिणा का वर्णन किया है।

शरीर सादादसमग्र भूषणा मुखेन सा लक्ष्यत लोध्र पांडुना
तनु प्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी।
तदानन मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययो
करीव सिक्तं पृषतैः पयोमुचाशुचिव्यपाये वनराजि पल्लवम्।

(गर्भिणी रानी कृशगात हो गई थी। उन्होंने अपने अनेक आभूषण निकाल डाले। उनका मुख लोध प्रसून की भाति पीत हो गया। उनका रूप रजनी के अन्तिम प्रहर की भाति था, जब केवल दो चार तारिकाये ही शेष रह जाती है, और चन्द्रमा भी पीत पड जाता है। ग्रीष्मान्त मे प्रथम वर्षा होने से वन के लघु सरो की भूमि सोंधी हो जाती है और गयद उसे बारम्बार सूघा करते है। मिट्टी खाने से रानी सुदक्षिणा का मुख भी सुवासित था। राजा दिलीप एकात मे उसे बार बार सूघ कर भी तृप्त नही होते थे।)

कालिदास के वर्णन की सूक्ष्म ऐन्द्रियता का आभास भी कामायनी मे सरस कल्पना द्वारा छिपा दिया गया। काव्य में गर्भिणी नारी का चित्रण एक विचित्र जुगुप्सा की भावना से समन्वित होने के कारण अधिक नही प्राप्त होता। प्रसाद ने उसका उदात्तीकरण करने के पश्चात चित्र प्रस्तुत किया :

केतकी गर्भ सा पीला मुंह
आखो में आलस भरा स्नेह
कुछ कृशता नई लजीली सी
कम्पित लतिका सी लिये देह।

कालिदास ने सुदक्षिणा के स्तनो का भी वर्णन किया है। 'कामायनी' में 'मातृत्व बोझ से झुके हुये' मात्र कहकर कवि ने सकेत कर दिया। सोने की सिकता मे उसांस भरकर बहती हुई कालिन्दी अथवा स्वर्गगा मे इदीवर की पंक्ति का हास की उपमाये भी रूप वर्णन को मर्यादित ही रखती है। अन्त में श्रद्धा को नारी के महान मातृत्व रूप मे विभूषित कर दिया गया·

दुर्भर थी गर्भ मधुर पीड़ा
झेलती जिसे जननी सलील

इसी के पश्चात विरहिणी श्रद्धा का चित्र प्राप्त होता है। वियोग की स्थिति में नारी का रूप वर्णन साहित्य मे पर्याप्त हुआ है। हिन्दी का रीतिकालीन काव्य उसमें विशेष रूप मे कार्य कर चुका है। विरहिणी नायिका के वर्णन मे बिहारी ने

पेंडुलम की भाति आगे पीछे होना बताया है। कामायनी की विरहिणी इन स्थूल तथा आलकारिक रेखाओ में नही बाधी गई। 'आसू' की सार्वभौमिक वेदना का चित्रकार नारी में करुण विप्रलम्भ को साकार कर देता है। श्रद्धा वेदना की प्रत्यक्ष मूर्ति है। सन्ध्या के धूमिल वातावरण की भाति उसका जीवन है। कुसुम-वसुधा पर पडी कामायनी में अब मकरन्द नही, केवल दो चार रेखायें ही शेष है। प्रकृति के सम्पूर्ण धूमिल चित्रो को कवि विरह व्यजना के लिये प्रयुक्त कर लेता है। प्रभात का शशि, उदास सध्या, मुकुलित शतदल, जलधर की सी ही दशा थी, उसकी। प्रकृति का धूमिल वातावरण अपने चित्र से नारी के वियोग को प्रतिध्वनित कर देता है। उसकी अन्तर्दशा स्पष्ट हो उठती है :

एक मौन वेदना विजन की, झिल्ली की झनकार नहीं
जगती की अस्पष्ट उपेक्षा, एक कसक साकार रही
हरित कुज की छाया भर थी वसुधा आलिगन करती
वह छोटी सी विरह नदी थी जिसका है अब पार नहीं

इडा को श्रद्धा विरहिणी की 'धुधली छाया' सी दिखाई पडती है, जिसकी वाणी में करुण वेदना थी। उसका शिथिल शरीर, विशृखल वसन, खुली कवरी ही वियोग का आभास दे देते है। वह छिन्न पत्र, मकरन्द लुटी, मुरझाई हुई कली की भाति थी। अन्तिम रूप में श्रद्धा के अधरो की स्मिति भी नैसर्गिक हो जाती है।

इडा का सौन्दर्याकन अधिक प्रखर रेखाओ से हुआ। बिखरी अलकें तर्कजाल का आभास दे देती है। शशि खड सा स्पष्ट भाल बौद्धिकता का प्रतीक है। अनुराग और विराग से भरे नेत्र थे, उसके। वह प्रभात की भाति प्रभा विकीर्ण करती हुई आई। वक्षस्थल पर समस्त ज्ञान विज्ञान एकत्र था। सम्पूर्ण छवि-चित्र बुद्धि का स्वरूप प्रस्तुत कर देता है। मलयाचल की बाला सारस्वत प्रदेश की रानी थी। आसव ढालते समय वह परिवर्तित नही हो जाती। श्रद्धा और मनु के मिलन के अनन्तर वह 'मन की दबी हुई उमग लिये' पडी रहती है। पश्चात्ताप और क्षोभ के कारण उसका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है

* * *

वह इडा मलिन छवि की रेखा
ज्यों राहु ग्रस्त सी शशि लेखा
जिस पर विषाद की विष रेखा

मनु और श्रद्धा के निकट जाते हुये भी उसकी वेदना और करुणा का अन्त

नही हुआ था। वह गैरिकवसना सन्ध्या की भाति थी, जिसके सब कलरव शान्त हो चुके थे। अन्तिम वर्णन मानव का है। बालक के स्वाभाविक चापल्य को सीधी सादी रेखाओ मे ही व्यक्त कर दिया गया, किसी भाव-अकन का अधिक आग्रह उसमे नही है। दुष्यन्त के भरत की भाति ही मानवता का प्रतिरूप मानव था। उसके मुख पर अपरिमित तेज था, और आगे चलकर—

केहरि किशोर से अभिनव
अवयव प्रस्फुटित हुये थे
यौवन गम्भीर हुआ था
जिसमें कुछ भाव नये थे

'कामायनी' के रूपवर्णन का आधार मनोवैज्ञानिक है। सम्पूर्ण रूप-गुण को प्रस्तुत करने मे भावना और कल्पना का समन्वय हो गया है। श्रद्धा का उदात्त तथा इडा का बौद्धिक रूप भी कथानक के अनुकूल है। साधारण नारी पुरुष के चित्रण के स्थान पर व्यक्तियो के व्यापक रूप और व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया गया है। क्षण क्षण मे परिवर्तित होने वाले मनोभावो के अनुकूल ही रूप के चित्र खींचे गये है। आरम्भ की सौन्दर्यमयी श्रद्धा विरह मे धूमिल हो जाती है। लज्जा उसकी छवि को छायामय कर देती है। अन्त मे उसका नैसर्गिक रूप आ जाता है। रूपवर्णन मे सर्वत्र प्रकृति की गुणसम्पन्न उपमाओ को अभिव्यक्ति का साधन बनाया गया है। छवि-प्रकाशन के साथ आन्तरिक अभिव्यक्ति भी होती जाती है। रूप गुण को भी साथ लेकर चलना है। बाह्य के स्थान पर आन्तरिक सौन्दर्य प्रकाशन का आग्रह अधिक है।

प्रकृति वर्णन—

कामायनी की प्रकृति प्राय एक पृष्ठभूमि का कार्य करती है। वातावरण के अनुसार ही उसका प्रयोग किया गया है। आरम्भ मे जलप्लावन और हिमगिरि का वर्णन है। इसी पीठिका पर मनु को प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति को आधार बनाकर कथा को आरम्भ करने की परिपाटी संस्कृत मे अत्यधिक प्रचलित है। कामायनी इसी परम्परा मे योग देती है। प्रसाद प्रकृति और मानव मे एक तादात्म्य स्थापित कर देते है, इसी कारण उनका प्रकृति-चित्रण सश्लिष्ट योजना मे पूर्ण रहता है। प्रस्तुत, स्वाभाविक, स्वतन्त्र रूप में कामायनी प्रकृति का वर्णन अधिक नहीं करती। आशा सर्ग मे हिमालय का वर्णन पृष्ठभूमि के ही रूप मे हुआ है। रहस्य और आनन्द सर्ग मे प्रकृति का स्वतन्त्र स्वरूप अवश्य

निखर उठा है। प्रकृति वहा अधिष्ठात्री बन गई है। मानव उसी की गोद में विराम लेता है। प्रकृति और मानव के क्रिया व्यापारो को 'कामायनी' प्राय एक साथ लेकर चलती है। पात्रो की स्थिति का विश्लेषण प्रकृति के द्वारा हो जाता है। वह मानव की चिर-सहचरी बन जाती है। कामायनी का कवि प्रकृति-प्रेमियो की भाति उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर नैसर्गिक रूप का वर्णन नही करने लगता, वह प्रकृति के गुण और मानवीय क्रिया व्यापार में एक समन्वय स्थापित करता है। यह समन्वय चित्र को सजीवता प्रदान कर उसे रस-मय बना देता है। 'कामायनी' के आरम्भ में ही प्रकृति का चित्र मनु के व्यक्तित्व को साथ लेकर चला है। दूर दूर तक विस्तृत हिम की स्तब्धता मनु के हृदय की भाति थी। इधर उधर खडे हुये दो चार देवदारु वृक्ष तपस्वी की भाति लम्बे थे। प्रकृति उसकी मर्मवेदना और करुणा विकल कहानी को सुन रही थी। प्रकृति की जडता में चेतनता का ही नही, वरन् मानवीयता का आरोप भी प्रसाद ने किया। वर्डस्वर्थ अपनी प्रकृति से वार्तालाप करता है, किन्तु कामायनी की प्रकृति मानव की सहचरी बनकर उसके प्रश्नो का उत्तर भी अपनी मौन भाषा में दे जाती है। कवि का कोकिल बोल उठता है[७]। आलम्बन बनकर आई हुई प्रकृति काव्य को मासलता प्रदान करती है। वह वस्तु वर्णन का ही एक उपादान बन जाती है, जो रस निष्पत्ति मे सहायता प्रदान करती है। कामायनी मे प्रकृति का प्रयोग वातावरण के रूप मे भी किया गया है। मनु में उठती हुई वासना के अवसर पर प्रकृति भी मादकता से भर जाती है। विधु किरण मधु बरसाती हुई काप जाती है। पवन मधुभार से पुलकित हो मथर गति से चला जा रहा है। 'प्रकृति का वह स्वप्न शासन' जीवन की मादकता को और भी बढा देता है। प्रकृति के इस रूप का कारण केवल मनु की मादकता ही नही है। स्वयम् प्रकृति का मादक स्वरूप उन्हे विभोर कर देता है। स्थिति के अनुकूल प्रकृति का प्रयोग कामायनी की विशेषता है। शिशिर की निशा भी अलसाई पडी थी। कौमुदी की मधुमय छटा मनु के मन प्राणो मे मादकता घोलती जा रही थी। प्रकृति के ये वर्णन उद्दीपन विभाव के रूप में ही आते हैं

मनु निरखने लगे ज्यों ज्यो यामिनी का रूप,
वह अनन्त प्रगाढ़ छाया फैलती अपरूप,

---

७ अरुण ने अपने अश्व को मौन रहने का सकेत किया, उस सुषमा को देखने के लिए परन्तु कोकिल बोल उठा। जैसे उसने अरुण से प्रश्न किया छि, कुमारी के सोये हुये सौन्दर्य पर दृष्टिपात करने वाले धृष्ट, तुम कौन ? ('आधी', पुरस्कार, कहानी, पृष्ठ ११५)

बरसता था मदिर कण सा स्वच्छ सतत अनन्त
मिलन का संगीत होने लगा था श्रीमन्त ।

कामायनी की प्रकृति काव्य की सहयोगिनी है। मानव की जिज्ञासा, सुन्दरता, मनोभावना सभी का आभास उसी के द्वारा प्राप्त होता है। प्रकृति और मानव में कला की दृष्टि में एक साम्य है। मनु की अन्तर्निहित जिज्ञासा की अभिव्यक्ति आस-पास बिखरी हुई प्रकृति की विभूति से हो जाती है। विश्वदेव, सविता, सोम, मरुत किसके शासन में परिचालित हैं? इस अनन्त, रमणीय, विराट विश्वदेव के प्रति आदिपुरुष की जिज्ञासा जागृत हो जाती है। हिमालय की पृष्ठभूमि 'कुमारसम्भव' की समकक्षता में प्रस्तुत की जा सकती है। कालिदास ने भारत के इस मुकुट का अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया है। देवता के समान पूजनीय भारत के उत्तर में स्थित हिमालय प्रदेश में अनेक क्रिया व्यापार चलते रहते हैं। प्रकृति की सम्पूर्ण शोभा से कालिदास ने उसे विभूषित कर दिया है। कामायनी का आरम्भ और अन्त दोनों ही हिमालय की उपत्यका में होते हैं। प्रलय शान्त होने के पश्चात हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर यज्ञ आरम्भ कर देने वाले मनु अन्त में कैलाश पर्वत पर ही समस्त मानवता को आनन्द का सन्देश देते हैं। जीवन की समग्रता, महानता का प्रतीक हिमालय भारतीय काव्य में युगों से वन्दनीय रहा है। कामायनी इसी परम्परा का पालन करती है। कालिदास ने तो हिमालय का मानवीकरण कर मैना से उसका परिचय भी करा दिया[८]। कामायनी का हिमालय आनन्द की पृष्ठभूमि बन कर आया है। प्रसाद को प्रकृति से उस सीमा तक अनुराग नहीं, जो प्रकृति के कवियों में प्राप्त होता है। उन्होंने उसका प्रयोग काव्य और कला के उदात्तीकरण में किया। भावनाओं की वाहक, अभिव्यंजक होने के अतिरिक्त अप्रस्तुत अलंकारों के रूप में उसका प्रयोग किया गया। प्रकृति के प्रतीक, रूपक और उपमा अपनी सम्पूर्ण सजीवता, सरसता की अभिव्यक्ति करते हैं। श्रद्धा के सौन्दर्य निरूपण को सजीवता प्रदान करने में प्रकृति के उपादानों ने अत्यधिक सहायता की। व्योम में घिरते हुये घनश्याम नारी के कुन्तल बनकर आये हैं। हिमालय की अरुणिमा हास का परिचायक है। श्रद्धा की समस्त शोभा प्रकृति के रूपकों में साकार हो उठी है:

उषा की पहिली लेखा कान्त
माधुरी से भीगी भर मोद

---

८. कुमारसम्भव : प्रथम सर्ग

मदभरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक द्युति की गोद
(कामायनी, पृष्ठ ४७)

कामायनी के सम्पूर्ण भावमय स्थल प्रकृति के उपादानो से विभूषित है। कवि ने उससे कला का परिष्कार और शृगार किया। आदिकवि वाल्मीकि की भाति कामायनी मे प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन अधिक नही। रीतिकालीन कवियो की भाति षट्ऋतु परम्परा का पालन भी उसमें नही किया गया। कामायनी का प्रकृति-वर्णन काव्य और कला में सहायता प्रदान करता है। प्रकृति स्वतन्त्र रूप मे रस सचार का प्रयत्न नही करती, मानवीय कार्यकलापो के मिलन से ही इसमे सफल होती है। उसके विभिन्न रूपो का ग्रहण भावो को मासलता प्रदान करने के लिये किया गया है। वस्तु वर्णन को सरस बनाने का श्रेय प्रकृति के इन उपादानो को ही है। कही-कही कामायनी की प्रकृति अपने रहस्यमय रूप को भी प्रस्तुत करती है। सम्पूर्ण चित्रो के द्वारा बिम्बग्रहण का कार्य कामायनी मे प्रकृति ने ही किया है। लज्जा का सूक्ष्म रूप भी साकार हो उठता है

हो चकित निकल आई सहसा
जो अपने प्राची के घर से
उस नवल चन्द्रिका से बिछले
जो मानस की लहरों पर से

वस्तु-विन्यास—

'कामायनी' की कथा सरल रेखाओ से निर्मित हुई है। उसके वस्तुविन्यास मे किसी दीर्घ वश परम्परा, विस्तृत घटनाक्रम और पात्रो की बहुलता नही मिलती। 'रघुवश' की भाति उसमे अनेक चरित्रो के चित्रण का प्रयत्न नही है। आदिपुरुष के द्वारा मानवता का विकास उसका उद्देश्य है। कामायनीकार का लक्ष्य वर्णनात्मक न होकर, सूक्ष्म विश्लेषण की ओर अधिक था। उसने वस्तु विन्यास का प्रयोग केवल प्रबन्धात्मकता लाने के लिये किया। कथा-वस्तु को आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम मे विभाजित करने की भारतीय प्रणाली है। अरस्तू कथानक की एकता मे समय, स्थान और काल का समन्वय मानता है। दुखान्त नाटको के लिये उसने जिन सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया, उनमे इसका विशेष महत्व है। उसकी धारणा है कि कथानक की उस एकता का सम्बन्ध नायक के क्रियाव्यापारो की एकता से नही स्थापित किया जा सकता। कथानक का वर्गीकरण सरल तथा जटिल दो भागो मे उसने किया। कामायनी का कथानक सरल है, उसमे अधिक

जटिलता नही। अरस्तू के काव्यशास्त्र के अनुसार प्रबन्धकाव्य का कथानक दुखान्त नाटक से अधिक विस्तृत हो सकता है। प्रबन्ध काव्य मे एक सम्पूर्ण क्रिया व्यापार का आदि, मध्य, अन्त मे विभाजित होना आवश्यक है। 'कामायनी' के वस्तुविन्यास मे भारतीय कथावस्तु तथा पाश्चात्य दुखान्त नाटक का समन्वय है। कथानक का चरमोत्कर्ष दुखान्त की स्थिति तक चला जाता है। मनु का श्रद्धा से विलग होना ही इसकी सूचना दे देता है। श्रद्धा का उन्हे एक एक बार पाकर पुन खो देना इसकी पुष्टि करता है। किन्तु कामायनी की परिसमाप्ति भारतीय रसनिष्पत्ति के अनुकूल हुई है। सस्कृत काव्य मे अभिशाप कथा की धारा मे परिवर्तन करते दिखाई देते है। यूनानी काव्यो मे परिस्थितियो की योजना किसी अदृश्य शक्ति पर अवलम्बित है। कामायनी का कथानक स्वाभाविक गति से चलता है। ईर्ष्या के कारण अनायास ही मनु का श्रद्धा को त्यागकर चल देना मनोवैज्ञानिक है। 'स्वप्न' सर्ग कवि की कल्पना है। इडा का अनायास मनु को मिल जाना कथानक को गतिमान कर देता है। लघु कथानक मे इने गिने पात्रो के द्वारा अधिक आरोह अवरोह की आशा नही की जा सकती। चिन्ता, आशा की सुन्दर पृष्ठभूमि पर कामायनी प्रतिष्ठित है। श्रद्धा का आगमन तथा काम, वासना, लज्जा कथानक को गतिमान करते है। 'कर्म' मे आनेवाली विडम्बना का साधारण आभास प्राप्त हो जाता है। अन्त मे 'ईर्ष्या' मे मनु का भाग जाना उसे स्पष्ट कर देता है। कथानक के इस पट परिवर्तन के साथ ही वातावरण धूमिल पडने लगता है। इडा का प्रवेश केवल क्षण भर के लिये एक आशा-रेखा सा चमक कर विलीन हो जाता है। 'स्वप्न' और 'सघर्ष' मे पुन विषमता आ जाती है। श्रद्धा का आगमन एक दीर्घ अवकाश के पश्चात वातावरण को नवीन आलोक से भर देता है। किन्तु मनु का निर्वेद के कारण पलायन, एक बार कथानक को पुन विशृ-खल कर देता है। श्रद्धा, इडा, मनु के साथ होने के कारण परिस्थिति पूर्व की भाति अधिक गम्भीर नही होती। श्रद्धा का मनु को रहस्य समझाना कथानक मे तटस्थता ले आता है। अन्त मे आनन्द की रसनिष्पत्ति अत्यन्त सुन्दर रीति से हुई है। कामायनी का वस्तुविन्यास अपनी नाटकीयता लेकर प्रस्तुत हुआ। कथोपकथन और सवादो के द्वारा घटनाक्रम आगे बढता रहता है। सूक्ष्म मनोभावो का निरूपण भी सवाद शैली मे हुआ है। कामायनी मे नाटकीयत्व का समावेश प्रचुर मात्रा मे है। नाटक और काव्य के समन्वय से प्रसाद ने वस्तुविन्यास का निर्माण किया। नाटक की भाति कामायनी मे भी केन्द्रीकरण का प्रयास ही अधिक है। सम्पूर्ण वस्तु मनु के चारो ओर घिरी सी दिखाई देती है। आरम्भ से अन्त तक वह केन्द्रबिन्दु बना रहता है।

कामायनी का वस्तु विन्यास अधिक विस्तृत न होकर भावमय और केन्द्रित है। मनोवैज्ञानिक रीति से कवि ने उसे स्वाभाविक गति प्रदान की। उसमें युग की चेतना है तथा आनन्द सृजन, रससचार की शक्ति भी।

चरित्रचित्रण—

चरित्र चित्रण को पाश्चात्य समीक्षको ने अधिक महत्व दिया। पात्रो की विशेषताओ के उद्घाटन द्वारा एक उत्कठा जागृत कर दी जाती है। किसी भी निर्माण में पात्रो को पृथक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है। उनके प्रति सहानुभूति जगाई जाती है। पात्र अपने व्यक्तित्व द्वारा स्वयम् आकर्षण का केन्द्र बन जाते है। शेक्सपियर के पात्रो में उनकी विशेषतायें निकाल लेने पर अधिक शेष न रहेगा। हेमलेट का मानसिक अन्तर्द्वन्द, शाइलाक की निष्ठुरता, रोमियो-जूलियट का प्रेम सभी अद्वितीय है। चरित्र चित्रण द्वारा नाटककार ने उनमें प्राण प्रतिष्ठा कर दी है। पश्चिम में प्रचलित चरित्र चित्रण की प्रणाली को व्यापक प्रसार प्राप्त हुआ। होमर के हेलेन का सौन्दर्य आज भी प्रसिद्ध है। भारत में चरित्र-सृष्टि रस सिद्धान्त के ही अन्तर्गत आ जाती है। सत् और असत् दोनो प्रकार के पात्र आनन्द-सृजन में सहायक होते है। एक आदर्श बनकर आता है, तो अन्य से चेतना मिलती है। राम का अनुकरण और रावण का त्याग एक ही उद्देश्य तक ले जाते है। साहित्य के लक्ष्य को रस अथवा आनन्द मान लेने से भारतीय साहित्यशास्त्रियो ने एक व्यापक क्षेत्र को चुना। रस के साधारणीकरण में पात्रो की व्यक्तिगत विशेषताओ को स्थान नही प्राप्त हो सकता। वे केवल प्रतिनिधित्व कर सकते है। पश्चिम के व्यक्तिवाद से प्रभावित चरित्र चित्रण तथा भारतीय रस सिद्धान्त पर स्वयम् प्रसाद ने विचार किया। उनके अनुसार चरित्र चित्रण की प्रधानता का रस से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही प्रतीत होता। 'भारतीय दृष्टिकोण रस के लिये इन चरित्र और व्यक्ति वैचित्र्यो को रस का साधन मानता है, साध्य नही। रस मे चमत्कार ले आने के लिये इनको बीच का माध्यम सा ही मानता आया[१]।' प्रसाद की दृष्टि कामायनी मे रस पर ही रही है यद्यपि उसमे चरित्र-चित्रण भी सफल है। उसके पात्रो की ऐतहासिकता को विलीन न करते हुये भी कवि ने उन्हे केवल व्यक्तिगत विशेषताओ से समन्वित करने का प्रयास नही किया। उसके पात्र प्रतिनिधि बनकर आये है। उनमें चिन्तन का एक विशेष रूप निहित है। वे मानवीय इकाइया है, जिनमे किसी दर्शन का समाहार हुआ। कवि उनके माध्यम

---

१. काव्य और कला · पृष्ठ ५४

से किसी लक्ष्य तक जाना चाहता है। उनमे प्राण-प्रतिष्ठा केवल व्यक्तिगत विशेषताओ के रूप मे नही की गई, वरन् उनसे प्रतीक का काम भी लिया गया। मनु और श्रद्धा यदि एक ओर साधारण पुरुष स्त्री रूप मे आते है, तो साथ ही वे मन, हृदय के भी प्रतिरूप है। समस्त पात्रो मे इसी कारण एक सार्वभौमिक शाश्वत चेतना निहित है जो उन्हे देश काल के बन्धनो से ऊपर उठा ले जाती है। वे दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित है। उनकी व्यक्तिगत विशेषतायें सार्वजनिक का आभास देती है। केवल थोड़े से पात्रो के द्वारा समग्र जीवन की अभिव्यक्ति कराने के लिये उनकी मानसिक स्थिति का विश्लेषण कवि करता चला जाता है। कामायनी नाटकीय शैली के द्वारा पात्रो का अन्तरमंन खोलती चलती है। श्रद्धा और लज्जा, मनु तथा काम का मानसिक उद्घाटन चरित्र चित्रण की अपेक्षा लक्ष्यपूर्ति मे अधिक सहयोग प्रदान करता है। परिस्थिति, वातावरण के अनुसार पात्रो के मन मे उठने वाले भाव केवल उनकी व्यक्तिगत मन स्थिति का ही प्रकाशन नही करते, उसी से समस्त मानवता का आभास मिलता है। कामायनी के चरित्र चित्रण मे इतिहास, दर्शन और मनोविज्ञान का अवलम्ब कवि ने ग्रहण किया, तथा चरित्रो को एक व्यापक धरातल पर रखकर उनमे चिन्तन को निहित कर दिया। चरित्र किसी आदर्श तक जाने मे केवल एक माध्यम का कार्य करते है।

'कामायनी' में समस्त कथा मनु के चारो ओर घूमती दिखाई देती है। वे केन्द्रबिन्दु से प्रतीत होते है। काव्य का आरम्भ और अन्त उन्ही के द्वारा होता है। मनु की चरित्र सृष्टि मे प्रसाद ने यथार्थ का अधिक ग्रहण किया। मनु एक साधारण मानव है, जो जीवन के समस्त सघर्षो को झेलता हुआ अन्त मे आनन्द तक पहुँच जाता है। वह वासना, ईर्ष्या की स्वाभाविक दुर्बलताओ से ग्रसित रहता है, किन्तु आगे बढने की आकाक्षा नही मरती। काव्य मे नायक के चरित्र-चित्रण की चली आती हुई परम्परा मे प्राय आदर्श और महान का ही ग्रहण अधिक हुआ है। सस्कृत के आचार्यो ने नायक को विशेष महत्व दिया है। दडी का 'काव्यादर्श' नायक को चतुर और उदात्त के रूप मे रखता है[१०]। विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' मे नायक के लिये किसी सुर, कुलीन क्षत्रिय का होना अनिवार्य माना, जिसमे धीरोदात्त के समस्त गुण हो। इसके लिये उसे अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, स्थिर, अहकारहीन होना चाहिये। एक ही वश के अनेक कुलीन राजाओ के होने पर अधिक नायक भी हो सकते है[११]।

१०. काव्यादर्श—'चतुरोदात्तनायकम्'

११. साहित्यदर्पण—'धीरोदात्तगुणान्वित'

रीतिकालीन युग ने अपने प्रबन्धकाव्यो में सस्कृत के लक्षण ग्रन्थो का अधिक ध्यान रक्खा। द्विवेदी युग तक में गुप्त जी के 'साकेत' ने परम्परा का पूर्णतया बहिष्कार नही किया। नायक को अधिकाधिक आदर्श और महान रूप में चित्रित करने की प्रणाली को 'कामायनी' में नही स्वीकार किया गया। पश्चिम में नायक को शक्तिशाली स्वरूप देने की परम्परा अधिक समय तक न चलसकी। प्रबन्ध काव्य को सार्वभौमिकता प्रदान करने के साथ ही नायक की रूपरेखा में भी परिवर्तन हुआ। होमर के नायक में एक साथ प्रेम और युद्ध की भावना निहित है। दान्ते स्वयम् अपने काव्य का नायक बनकर प्रस्तुत होता है। बियेट्रिस और वर्जिल को भी उसमें प्रमुख स्थान मिला। प्रबन्ध काव्यों की भाति नाटको के नायकत्व मे भी नवीन दृष्टिकोण से कार्य आरम्भ हुआ। भारत को भाति पश्चिम में भी महान काव्य और महान नाटक के लक्ष्य में अन्तर नही रक्खा जाता[१२]। सोलहवी शताब्दी में ही शेक्सपियर ने हैमलेट, रोमियो आदि नायको की कल्पना कर ली थी। गेटे ने अपने फाउस्ट को नायक का पद प्रदान किया। अपनी समस्त दुर्बलताओ को लेकर फाउस्ट आगे बढता है। जीवन की स्वाभाविक आकाक्षाओ को नाटककार ने उसमें घनीभूत कर दिया है। शापेनहार के 'आदर्श मानव' की अपेक्षा वह 'यथार्थ मानव' है, पर उसकी भी महानता है। वह मेफिस्टाफेलस से कहता है 'मेरा जीवन इसी पृथ्वी से आनन्द का दान लेता है। मेरे शोक पर ही सूरज प्रकाशित होता है[१३]।' कामायनी का मनु साहित्य मे बढती हुई मानवीय भावना से अनुप्राणित है। इस मानवीयता का ग्रहण योरोपीय साहित्य में प्रचुरता से हुआ। केवल आदर्श और महान ही नही, किन्तु यथार्थ का चित्रण करना भी आवश्यक समझा गया। समग्र जीवन पर दृष्टि रखने वाले कलाकारो ने सुख-दुख, आशा-निराशा, उत्थान-पतन को नायक में समन्वित कर दिया, क्योकि सभी भावनायें जीवन का कठोर सत्य है। जीवन के यथार्थ चित्रण के परिणामस्वरूप स्पेन्सर की फेयरी क्वीन, और गेटे के फाउस्ट के नायक मिल्टन की भाति ईश्वरीय, आदर्शवादी न होकर मानवीय और यथार्थ है। हिन्दी मे छायावाद ने मानवीयता की इस परम्परा को अपनाया। ऐतिहासिक और धार्मिक नायको का आदर्शवादी स्वरूप श्रद्धा और

---

१२ The ultimate significance of great drama is the same as that of epic — The Epic, Page 91

१३ 'Tis from this world my life its joys doth borrow,
This sun it is that shines upon my sorrow,
Faust Page 49

विश्वास की दृष्टि से उचित हो सकता है किन्तु उनके साथ सघर्षशील मानव का तादात्म्य सभव नही। राम का आदर्श लोकरजनकारी रूप भक्त को आह्लादित कर सकता है किन्तु सामान्य व्यक्ति, जो जीवन की कठोरताओ से युद्ध कर रहा हो, सम्भवत उसमें अपनी भावनाओ को न खोज पायेगा। छायावाद ने पृथ्वी और मानव के स्वाभाविक रूप को काव्य मे स्थान दिया, जिसमे अच्छी, बुरी सभी भावनाओ का समावेश है। जीवन के सम्पूर्ण सत्य का ग्रहण उसने किया, जो बदलते हुए युग के अनुरूप है, और जिसमे स्वाभाविक उत्थान-पतन समाविष्ट है।

मानवता का प्रतीक मनु आधुनिक सघर्षशील व्यक्ति का प्रतीक है। अपनी आन्तरिक भावनाओ से लेकर जीवन की भौतिक समस्याओ तक वह युद्ध करता है। प्रत्येक प्रश्न उसके सम्मुख आता है। एक ओर यदि मन में काम, वासना और ईर्ष्या के भाव उठते है, तो साथ ही वह जीवन की प्रहेलिका को भी सुलझाने में प्रयत्नशील है। मानव की सम्पूर्ण जिज्ञासा से वह रहस्यमय ससार को देखता है। आन्तरिक दुर्बलताओं को लेकर भी वह ऊपर उठना चाहता है। मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रित मनु का मानसिक द्वन्द जीवन का शाश्वत सत्य है। इस दृष्टि से मनु अपने ऐतिहासिक कलेवर में भी नितान्त आधुनिक और नवीन है। उसका चित्राकन पश्चिम की यथार्थ-वादी परम्परा से प्रभावित है। एक दृष्टि से मनु को काव्य का नितान्त उच्छृखल नायक कहा जा सकता है, किन्तु प्रसाद ने मानवीयकरण के साथ ही उसका उदात्तीकरण भी कर लिया है। सस्कृत के प्रबन्धकाव्यो मे बाह्य जगत मे देव दानव सघर्ष का चित्रण किया जाता था। देवो की विजय और दानवो की पराजय दिखाकर आदर्श की स्थापना सभी काव्यों मे की गई है। सस्कृत का यह बाह्य स्वरूप 'कामायनी' के कवि ने अन्तर्मुखी कर दिया है। देव दानव सघर्ष स्वयम् मनु के अन्तरप्रदेश में चल रहा है। गेटे का फाउस्ट भी कहता है—"मेरे ही वक्षस्थल मे दो आत्मायें निवास करती है। एक पलायिनी, किन्तु दूसरी सदा जलती रहती है[१४]।" मनु के मन मे एक द्वन्द चलता रहता है और अन्त में श्रद्धा के द्वारा उनका समन्वय ही आनन्द का सृजन करता है। मानव का पूर्ण प्रतिरूप होने के कारण उसमे एक सामान्य व्यक्ति की समस्त प्रवृत्तियां निहित है। "चिन्ता" के निराश मनु से लेकर

१४. Two souls, alas within my breast abide,
The one to quit, the other ever burning.

Faust, Page 33

आनन्द के अन्तिम उद्देश्य तक पहुँचने वाले मनु का क्रियाव्यापार मानव के अनुरूप है। नायक में अतिरजना और अतीन्द्रियता भरने का व्यर्थ प्रयास नही किया गया। जीवन के प्रथम चरण में प्रलय को देखकर नायक मनु को भारी निराशा होती है। वे अतीत की स्मृतियो में उलझते है। धीरे धीरे जीवन की कामना प्रबल होती है। नारी का प्रवेश काम वासना का उदय करता है। ईर्ष्या, सघर्ष आदि की भावनाये भी स्वाभाविक है। अन्त में वह मानव के चरम लक्ष्य आनन्द को पाता है। मानव-मन मे पल पल पर उठने वाले भावो और विचारो का अकन मनु की चरित्र सृष्टि द्वारा प्रसाद ने किया है। अपने प्रेमी रूप मे वह सौन्दर्यवादी है। श्रद्धा की रूपराशि पर वह प्रथम बार ही लुट सा गया था। उसने उसी क्षण अपना हृदय खोल कर रख दिया। निराश व्यक्ति को साधारण स्नेह सम्बल मिलते ही नवजीवन प्राप्त होता है। केवल वासना और तृप्ति तक सीमित रह जाने वाला मनु सुख और शान्ति की खोज में भागता है। किन्तु वास्तविक शान्ति पलायन मे नही, सघर्ष मे है। इडा के रूप पर भी आकृष्ट हो जाने वाला सौन्दर्यवादी मनु अपनी तृप्ति चाहता है। पराजय ही उसे वास्तविकता का बोध कराती है। फिर वह श्रद्धा का अनन्य उपासक बन जाता है। अपनी दुर्बलता का ज्ञान भी उसे रहता है। यह आत्मबोध और पश्चात्ताप ही उसे उच्च भाव भूमि पर ले जाने मे सहायक होते है। इडा से वह कहता है

नहीं अभी मै रिक्त रहा
देश बसाया पर उजडा है सूना मानस देश यहा

नियामक रूप मे मनु एक क्षण के लिये अपना उत्तरदायित्व भूल जाते है। उनकी उच्छृखलता और भौतिक प्रवृत्ति के फलस्वरूप सघर्प होता है। पौरुष के मद और अहकार मे ही वे पराजित होते है। आरम्भ से ही उनकी आकाक्षाये ऊपर उठने की प्रतीत होती है, किन्तु परिस्थितिया मार्ग में व्यवधान बनकर आती है। गुप्त जी का नहुप अपने कर्मो के कारण स्वर्ग प्राप्त कर लेता है। वहा भी वह पृथ्वी के वैभव को नही भूल जाता। अन्त मे उच्छृखलता के कारण ही उसे भू पर गिरा दिया जाता है। नीचे गिरकर भी उसकी ऊपर उठने की कामना नहीं मरती। उत्थान पतन मे भी उसकी आकाक्षा महान है[१५]। कामायनी का मनु स्वर्ग की कामना नही करता, वह

---

१५ फिर भी उठूगा, और बढ के रहूँगा मै
नर हूँ, पुरुप हूँ, मै, चढ के रहूँगा मै. (नहुप, पृष्ठ ३९)

पृथ्वी पर ही समरसता और आनन्द को प्राप्त करता है। देवत्व की अपूर्णता को जान लेने वाला व्यक्ति अब उस भोगविलास की कामना नहीं करता। उसके हृदय मे जीवन के प्रति आरम्भ से ही जिज्ञासा की भावना थी। उसका मन चिन्ता मे भर गया था। मृत्यु की चिर-निद्रा पर उसे आश्चर्य था। चारो ओर बिखरी हुई प्रकृति की विभूति ने उसे असमंजस मे डाल दिया। श्रद्धा से प्रथम मिलन के समय वह अत्यधिक निराश था, क्योंकि उसे अपने प्रश्नों का उत्तर न मिला था। उसकी जडता के मूल मे प्रहेलिकाये थी। 'जीवन' ही उसके सम्मुख प्रश्न था

किन्तु जीवन कितना निरुपाय
लिया है देख नहीं सन्देह
निराशा है जिसका परिणाम
सफलता का यह कल्पित गेह।

श्रद्धा से जीवन का सत्य जानकर मनु कर्म मे प्रवृत्त हुये। ईर्ष्या के कारण उन्होंने उसका परित्याग किया। इस अवसर पर भी 'सुख नभ' में विचरने की उनकी कामना बनी हुई थी। इडा से भी उन्होंने 'जीवन का मोल' पूछा था। जीवन की प्रहेलिका को सुलझाने में वे सदा प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। अपने इस प्रयास में उन्हे अनेक कष्ट हुये और अन्त मे उन्होंने समरसता का महामन्त्र भावी मानवता को बताया। प्राणो मे रहने वाली अतृप्ति ही मनु को बडी दूर तक ले गई। जीवन के जिस महान सत्य को उन्होंने अत्यन्त कठिन साधना के पश्चात प्राप्त किया, उसे मानवता के कल्याण मे नियोजित कर दिया। नायक की महानता इसी मे निहित है कि अन्त मे सम्पूर्ण सारस्वत प्रदेश उनके दर्शनार्थ कैलाश की घाटी में पहुँचता है, और केवल दर्शन मात्र से ही आनन्दित हो उठता है। उनका अन्तिम स्वरूप भारतीय ऋषि तथा धीरोदात्त नायक की भांति है। सम्पूर्ण काव्य का पर्यवसान मनु मे ही हो जाता है।

मनु की चरित्र सृष्टि में उनके ऐतिहासिक और पौराणिक स्वरूप का भी ध्यान रक्खा गया। वेद-पुराण के मनु ऋषि, यज्ञकर्त्ता, प्रथम मानव के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वे देवता तुल्य मान गये हैं। वैदिक परम्परा से आगे चलकर 'मनुस्मृति' में वे एक स्पष्ट नियामक रूप में दिखाई देते हैं। वे प्रजापति बनकर, समाज में शान्ति व्यवस्था स्थापित करते हैं। इसके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण में मनु का हिंसा तथा उच्छृंखल रूप भी प्राप्त हो जाता है। किलात, आकुलि की प्रेरणा से उन्होंने पशु की हिंसा की। अपनी पूर्व दशा पर ही वे

आकृष्ट हो उठे। 'कामायनी' में मनु के ऐतिहासिक स्वरूप की भी रक्षा हुई है। किंचित कल्पना के अतिरिक्त कवि ने उनके समस्त रूप को ग्रहण कर लिया। मनु के मन का विश्लेषण तथा उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियो का निरूपण प्रसाद की कल्पना है, जिससे उनका रूप अधिक मानवीय हो गया। 'कामायनी' के मनु आदर्श की अपेक्षा उदात्त अधिक है। तुलसी ने राम के नायकत्व को 'मर्यादा पुरुषोत्तम' की सज्ञा दी किन्तु उन्हें अलौकिक रूप मे चित्रित किया। जीवन के आरम्भ में ही उन्होने अनेक दैत्यो को समाप्त कर दिया। वे पुरुष होकर भी दैवी शक्ति से सम्पन्न है। उनके ईश्वरीय गुणो के कारण व्यक्ति बरबस ही श्रद्धानत हो जाता है। उसके मन में भक्ति भावना का सचार स्वाभाविक ही है। कालिदास ने दैवी पात्रो में भी मानवीय भावनाओं का आरोप किया। 'कुमारसम्भव' में भी शिव-पार्वती का अतीन्द्रिय रूप पूर्णतया समाप्त नही हो जाता। कामायनी के मनु का नायकत्व मानवीय है। उनके अन्तरतम की भावना, कामना और वासना प्रत्येक मानव में उठती है। उनका अन्तिम लक्ष्य आनन्द भी अधिकाश का उद्देश्य होता है। प्रसाद ने मनु का उदात्तीकरण किया है। श्रेय, प्रेय, आदर्श, यथार्थ के समन्वय से उनकी चरित्र सृष्टि हुई। अरस्तू के नायक की भाति मनु में भी क्रिया-शक्ति है जो उन्हे गतिमान करती रहती है। यह शक्ति कभी कभी अनुचित कार्य में भी लग जाती है, किन्तु अन्त मे समीकरण उचित दिशा मे होता है। उनकी इधर-उधर बिखरी हुई शक्तियाँ आनन्द मे नियोजित हो जाती हैं। मनु के चरित्र निर्माण मे प्रसाद की दृष्टि बहुमुखी थी। शेक्सपियर के रोमियो की भाति वह केवल प्रेमी अथवा रोमाटिक नायक नही है और न वह कालिदास का दुष्यन्त ही है। उसके रूप का अकन करने में प्रसाद की दृष्टि व्यापक रही है। भारतीय परम्परा में प्रकृतिरूपा नारी पुरुष के पीछे भागती है। किन्तु 'कामायनी' का मनु भी एक सच्चे मानव की भाति श्रद्धा के प्रति अपनी सम्पूर्ण कृतज्ञता प्रकट करता है। देवि, मगलमयि आदि अनेक सम्बोधन उसके लिये प्रयुक्त करता है और एक बार उसे पाकर पुन भयावने अन्धकार में खो नही देना चाहता। मनु के चरित्र मे प्रसाद ने जितने स्वरूपो को समन्वित कर दिया, उतने प्राय अन्यत्र नही प्राप्त होते। भावुक, जिज्ञासु, अहेरी, यज्ञकर्ता, प्रणयी, विलासी, ईर्ष्यालु, नियामक, योद्धा आदि अनेक रूपो में वे आते है। सम्पूर्ण मानव का चित्रण उनके द्वारा करना 'कामायनी' का लक्ष्य है। मनु की आरम्भिक कामनाओ से ही स्वाभाविकता का आभास मिलने लगता है। चारो ओर बिखरी हुई जलराशि देखकर उसका मन चिन्ता और शोक से भर जाता है। अभी अभी वह देवत्व का विनाश देख चुका है, उसकी

भी याद आ जाती है। जीवन के प्रति मोह होते ही किसी साथी की इच्छा जागृत हो जाती है .

कब तक और अकेले ? कह दो
हे मेरे जीवन बोलो ?
किसे सुनाऊँ कथा ? कहो मत,
अपनी निधि न व्यर्थ खोलो ।

मनु की समस्याओं मे आधुनिकता है। अनेक सामयिक प्रश्नों का समाहार उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया। अपने एकाकी जीवन से लेकर पत्नी, कुटुम्ब, गृहस्थी, राज्य, सृष्टि तक के रूप मनु के सम्मुख क्रमश आते जाते है। एक नेता की भाति वे सार्वभौमिकता का सन्देश अन्त में समस्त सारस्वत निवासियो को देते है। स्वाभाविक दुर्बलताओ के साथ ही प्रसाद ने उनमे पौरुष और शक्ति को सन्निहित कर दिया, जिससे वे आकर्षण केन्द्र बन जाते हैं। श्रद्धा ने प्रथम परिचय के समय उन्हे 'तरगो मे फेकी मणि' कहकर सम्बोधित किया था, जो अपनी प्रभा की धारा से निर्जन का अभिषेक कर रहे थे। वह आजीवन उन्हे निकट रखने का प्रयत्न करती रही। इडा अपनी बुद्धिवादी प्रवृत्तियो के होते हुये भी मनु पर स्नेह रखती है। आकर्षक व्यक्तित्व के अतिरिक्त मनु की महानता का परिचायक है, उनका पश्चात्ताप। वे अपनी दुर्बलताओ को जान कर शोक करते है। यह पश्चात्ताप ही उन्हे सतत उत्कर्ष की ओर ले जाने मे सहायक हुआ। 'कामायनी' के पृष्ठ मनु के चरित्र को पग पग पर खोलते रहते है। सर्वत्र उन्ही की छाया डोलती रहती है। मनु के व्यक्तित्व का निर्माण करने में प्रसाद ने एक व्यापक आधार को ग्रहण किया। उसका चित्राकन अनेक रेखाओ मे हुआ है। उसके व्यक्तित्व में समष्टि, सामान्य का निरूपण किया गया। मनु मानव जीवन की सम्पूर्ण इकाई बनकर 'कामायनी' मे प्रस्तुत हुआ है। शक्ति-समन्वित होने के कारण ही जब वह अपने मत का प्रतिपादन करने लगता है, तब उसके सत्य की अवहेलना करना कठिन हो जाता है। ईर्ष्या के उदय होने पर वह श्रद्धा से कहता है :

देखा क्या तुमने कभी नहीं
स्वर्गीय सुखों पर प्रलय नृत्य ?
फिर नाश और चिरनिद्रा है
तब इतना क्यों विश्वास सत्य ?

[illegible]

सीढियो पर चढकर वह आगे बढता है। 'कामायनी' का मनु आधुनिक मानव है।

श्रद्धा—

श्रद्धा की चरित्र-सृष्टि नारी के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप में की गई है। ऐतिहासिक एव पौराणिक दृष्टि से भारतीय ग्रन्थो में उसका अत्यन्त भव्य और मगलमय रूप प्राप्त होता है। वह ऋषिका भी है। भावमूलक व्याख्या में वह सात्विकी वृत्ति के रूप मे आती है। काम की पुत्री होने के कारण वह कामायनी नाम से अभिहित है। उसने मनु को जो अपना परिचय दिया, उसी से ज्ञात होता है कि वह गन्धर्व देश की निवासिनी है और उसे ललित कलाओ से रुचि है। इसी अवसर पर 'हृदय सत्ता के सुन्दर, सत्य' को खोजने का उसका कुतूहल भी प्रकट हो जाता है। कामायनी को प्रसाद ने समस्त आन्तरिक गुणो से विभूपित कर दिया। वह उनकी सर्वोपम नारी कल्पना है। तितली का साहस, देवसेना का त्याग, अलका की शक्ति, मधूलिका का प्रेम, सालवती का सौन्दर्य एक साथ श्रद्धा में घनीभूत हो उठे है। वह आत्मसमर्पण के समय कहती है

दया, माया, ममता लो आज
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिये खुला है पास।

एक साथ इतने अधिक मानवीय गुणो से समन्वित नारी आदि से अन्त तक मनु का पथ प्रदर्शन करती है। दया और ममता के ही कारण वास्तव में दुखी मनु को उसने आत्मसमर्पण भी किया था। इस समर्पण में व्यक्तिगत प्रेम की अपेक्षा एक लोकमगल, सार्वभौमिक कल्याण की भावना थी। सृष्टि के विकास की भावना से प्रेरित होकर कामायनी ने मनु को वरण किया। मानवता के प्रतीक मनु की समस्त जडता और निराशा वह हर लेती है। जीवन के जिस जागृत आशावाद और कर्म का सन्देश उसने उन्हे दिया वह गीता के कर्मवाद की भाति प्रतीत होता है। कृष्ण ने ज्ञान, कर्म आदि स्वरूप दिखाकर अर्जुन को युद्ध के लिये तत्पर किया। श्रद्धा अपना सर्वस्व समर्पित कर मनु से कहती है

और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मगल वरदान

शक्तिशाली हो विजयी बनो
विश्व में गूंज रहा जय गान ।

सृष्टि और जीवन का रहस्योद्घाटन करते हुये उसने कहा : "केवल तप ही जीवन का सत्य नहीं, वह तो एक करुण, क्षीण, दीन अवसाद मात्र है। नूतनता में ही आनन्द है। प्रकृति के वैभव से परिपूर्ण समस्त भूखंड भोग के लिये है।" उसने जीवन का चिरन्तन सन्देश दिया।

'कामायनी' की श्रद्धा एक महान चेतना तथा शक्ति के रूप में प्रस्तुत हुई है। सम्पूर्ण कथानक को वही गतिमान करती है, तथा समस्त सुख और आनन्द का सृजन उसी के द्वारा हुआ। आरम्भ में वह मनु को कर्म में नियोजित करके काम, के अवसर पर उनकी हिंसात्मक प्रवृत्तियों को रोकने का भरसक प्रयत्न करती है। मानवता के आदि पुरुष को सदा उच्च आदर्श की ओर ले जाना ही उसका लक्ष्य है। अन्त में अपनी पवित्रता और निष्ठा के कारण वह विजय भी प्राप्त करती है। उस सफलता के मूल में निष्काम कर्म तथा त्याग की भावना निहित है। केवल अपने सुख और तृप्ति के लिये नहीं, वरन् दया और करुणा से प्रेरित होकर वह कार्य करती है। वह संसृति की वेलि को विकसित, पल्लवित और पुष्पित करने की कामना रखती है। उसके प्रेम में व्यापकत्व अधिक है। पशु पक्षी तक को वह किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहती। मनु के मन में इसी कारण ईर्ष्या का उदय होता है कि कामायनी के प्रेम पर उनका एकाधिपत्य नहीं रहा। श्रद्धा सदा अपने व्यक्तित्व का विकास करती चली जाती है। अन्त में सम्पूर्ण सारस्वत नगर के निवासी उसके अपने ही हो जाते हैं। इड़ा से किसी प्रकार की ईर्ष्या उसे नहीं होती। यही नहीं, वह स्वयम् अपने पुत्र मानव को उसके संरक्षण में छोड़ जाती है।

श्रद्धा के अभाव में मनु का जीवन केवल शून्य रह जाता है। कर्म मार्ग में मानवता के विकास के लिये नियोजित कर, किलात आकुलि से उन्हें बचाने का प्रयत्न करती है। ईर्ष्यावश जब मनु उसे छोड़कर चले जाते हैं, तब वह निराश नहीं हो जाती। एक बार उन्हें पुन खोजने का प्रयास करती है। सारस्वत प्रदेश में मुमूर्षु मनु को पाकर उसे अत्यधिक आह्लाद होता है। मनु जब पुन. अपने मानसिक आघात में उसे छोड़कर चल देते हैं, तब भी वह प्रेयस् पर विश्वास नहीं खो देती। तितली की भांति उसे अपने प्रेम में अत्यधिक आस्था है। मधुवन के चले जाने पर तितली ने शैला से कहा था "संसार भर उनको चोर, हत्यारा और डाकू कहे, किन्तु मैं जानती हूँ कि वे ऐसे नहीं हो सकते। इसलिये

मैं कभी उनसे घृणा नहीं कर सकती। मेरे जीवन का एक एक कोना उनके लिये, उस स्नेह के लिये सन्तुष्ट है[१६]। शेक्सपियर के 'ओथेलो' की डेस्डीमोना अन्तिम क्षण तक अपने शराबी और उच्छृंखल पति को प्रेम करती है। कामायनी भी इडा से कहती है

> मैं अपने मनु को खोज चली
> सरिता मरु नग या कुंज गली
> वह भोला इतना नहीं छली
> मिल जायेगा, हूँ प्रेम पली।

श्रद्धा की दृष्टि अत्यन्त व्यापक है। वह 'सर्वमगला' है। मनु के व्यक्तिगत प्रेम मे पागल हो जाने पर उसका प्रेम साधारण रोमान्टिक कोटि का हो जाता, किन्तु उसका स्नेह आदर्श रूप मे अंकित है। मिलन के क्षणो मे केवल भोगविलास की कामना और वियोग मे रीतिकालीन नायिका की सी दशा उसकी नही होती। वियोग-वेला मे भी वह अपनी पराजय मानने को तैयार नही। उसका चरित्र सर्वत्र एक सन्तुलन से परिव्याप्त है, जो उसे दुख मे क्रन्दन से नही भर देता। व्यावहारिक जगत मे वह एक कुशल गृहिणी के रूप मे चित्रित है। आने वाले भावी मानव के लिये वह बेतसी लता का झूला डाल देती है। एक सुन्दर कुटीर का उसने निर्माण किया और तकली कातकर ऊनी पट्टिया भी बनाई। 'गृहलक्ष्मी' के इस गृहविधान पर स्वयम् मनु आश्चर्यचकित रह जाते है। भारतीय नारी जीवन की पूर्णता मातृत्व मे है जब कि वह गृहलक्ष्मी पद को सार्थक करती है। अरविन्द माता को नारी का सर्वोत्तम स्वरूप स्वीकार करते है। प्रसाद 'कामायनी' की श्रद्धा को अन्त मे इसी उदात्त स्वरूप से समन्वित कर देते है। भावी मानवता का विकास करने वाला मानव उसी की स्नेहछाया मे विकसित होता है। उसका मातृत्व ही उसकी पूर्णता है। मनु स्वयम् कहते है

> तुम देवि ! आह कितनी उदार
> यह मातृ मूर्ति है निर्विकार

अपनी वात्सल्य भावना को श्रद्धा पशु पछी तक प्रसारित कर देती है। एक क्षण के लिये भी उसकी मनोवृत्ति सकुचित नही होती। इडा, मनु सभी उसके कष्ट का कारण होकर भी स्नेह की वस्तु को बने रहते है। वह इडा के वास्तविक मूल्य को जानकर ही उससे राष्ट्रनीति का सचालन करने के लिये कहती

१६ तितली, पृष्ठ २६७

है। राजनीति के क्षेत्र में भी वह शासक बनकर किसी को कष्ट न देने के लिये कह जाती है। सम्पूर्ण मानवता के प्रति उसकी ममतामयी, समान दृष्टि बनी रहती है। साधारण कुटुम्ब से लेकर राज्य और समग्र सृष्टि तक उसका प्रसार देखा जा सकता है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया की रूपरेखा समझाकर अन्त में उनका समन्वय कर कामायनी अपने जीवन दर्शन के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप को प्रकट कर देती है। जीवन के चरम उद्देश्य आनन्द का सृजन वही करती है।

आन्तरिक गुणों से विभूषित होने के साथ ही कामायनी अपने शारीरिक सौन्दर्य में भी अद्वितीय है। उसकी रूपराशि मनु को इन्द्रजाल की भांति प्रतीत हुई। उसके स्वरों में भ्रमरी का मधुर गुंजन है। वह नित्य नवयौवना है। उसके मुख पर प्रतीची के अस्तगामी अंशुमाली का सा प्रकाश है। प्रसाद ने कामायनी में सौन्दर्य को साकार कर दिया है। उसकी इस छवि के प्रथम दर्शन में ही मनु भक्त बन गया। वासना के अवसर पर इसी 'छविभार' से दबकर वह बरबस ही समर्पण कर देता है। 'विश्वरानी', सुन्दरी नारी, जगत की मान, कामायनी उसे सुकुमारता की रम्य मूर्ति प्रतीत होने लगती है। श्रद्धा का रूप-यौवन लज्जा के अवसर पर समस्त मृदुता, कौमार्य और सूक्ष्मता को लेकर प्रस्तुत होता है। भारतीय सौन्दर्यांकन में लज्जा का विशेष महत्व है। लज्जा नारी के सौन्दर्य का आभूषण है। श्रद्धा के लज्जागत सौन्दर्यांकन में प्रसाद ने कल्पना का सहारा लिया। प्रथम परिचय के समय उसके अधरों पर हास की एक क्षीण रेखा आकर रह जाती है। वासना में पलकें गिर जाती हैं, नासिका की नोक झुक जाती है, मधुर व्रीडा से उसका मन भर जाता है। लज्जा से कर्ण, कपोल भी रक्तिम हो उठते हैं। इस के अवसर पर स्वयम् अपनी मनो-दशा का चित्रण करती हुई कामायनी कहती है, कि मेरा अंग-प्रत्यंग रोमांचित हो उठता है। मेरा मन अनायास ही ढीला हो जाता है। मेरी आंखों में स्नेह की बूंदें छलक आती हैं। मैं बरबस ही किसी के बाहुपाशों में उलझ जाती हूँ।' लज्जा सौन्दर्य की रक्षा करती है। हेलेन के अपार सौन्दर्य से विभूषित होकर भी कामायनी किसी संघर्ष का कारण नहीं बन जाती। वह साधारण नारी से किंचित भिन्न रूप में प्रस्तुत की गई है। उसके चरित्र चित्रण में प्रसाद का दृष्टिकोण अधिक उदात्त रहा है। लज्जावती नारी की सुन्दरता लेकर भी वह केवल नायिका बनकर नहीं रह गई। कामायनी के शारीरिक सौन्दर्य का चित्रण करते हुये प्रसाद ने सदा अत्यन्त उदात्त उपमाओं का प्रयोग किया, जिससे उसका आन्तरिक वैभव भी प्रकट हो जाता है। उसका रूप कल्याणकारी है :

' नित्य यौवन छवि से ही दीप्त
विश्व की करुण कामना मूर्ति
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड में स्फूर्ति ।

समस्त सौन्दर्यांकन आलम्बन रूप मे प्रस्तुत हुआ है, केवल मनु की वासना के अवसर पर ही वह उद्दीपन हो जाता है। कामायनी जीवन की सम्पूर्ण शोभा से समन्वित है। उसके पास अपार 'सौन्दर्य जलधि' है। इसमें से केवल अपना गरलपात्र भरने के ही कारण मनु को अनेक कष्ट हुये। आन्तरिक और वाह्य दोनो ही दृष्टि से श्रद्धा अत्यन्त सुन्दर है। उसके दया, क्षमा, शील आदि गुण ही उसे काव्य के सर्वोत्कृष्ट चरित्र रूप मे प्रस्तुत करते है। मनु अन्तिम समय मे श्रद्धा की सहायता से ही उच्च भाव भूमि पर पहुच जाते है। वह समस्त कथानक की व्याख्या भी करती चलती है।

कामायनी की चरित्र-सृष्टि मे प्रसाद ने समरसता और आनन्द की रूपरेखा का ध्यान रक्खा है। वास्तव मे श्रद्धा समरसता और आनन्द का ही उदात्त स्वरूप है। जीवन मे सदा वह समन्वय और सन्तुलन दृष्टि को लेकर आगे बढती है। एक ओर यदि वह मनु को कर्म का सदेश देती है, तो साथ ही हिंसात्मक कर्मो के लिये रोकती भी है। कर्म के विषय मे उसकी धारणा नितान्त व्यापक है। प्राणिमात्र के सुख के लिये कार्य करना ही श्रेयस्कर है। व्यक्तिगत सुख के लिये अन्य को कष्ट देना उचित नही। वह 'वहुजन हिताय, वहुजनसुखाय' का सिद्धान्त मानती है

औरों को हंसते देखो मनु
हसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सबको सुखी बनाओ

जिस त्याग और दया का सदेश वह सभी को देती चलती है, उसी का पालन भी जीवन मे उसने किया। आजीवन वह त्याग ही करती रही। वह बलिदान मे ही दूसरो का हित करती है। सुख, दुख, आशा, निराशा; जय, पराजय मे सर्वत्र उसकी सन्तुलित दृष्टि रहती है। समरसता ही उसका मूल मन्त्र है। आनन्दवाद की अधिष्ठात्री रूप मे वह वेदो की "श्रद्धानाम ऋषिका" के समीप आ जाती है। मानव के पूरक रूप मे वह आधुनिक नारी की भाति प्रतीत होती है। प्रसाद ने कामायनी का चरित्र चित्रण अत्यन्त उदात्त और आदर्श

स्वरूप में प्रस्तुत किया। मनु के मुख से कवि ने इसकी अभिव्यक्ति कराई है। श्रद्धा 'पूर्ण आत्मविश्वासमयी' है। निर्वेद के अवसर पर मनु कृतज्ञता से भर जाते हैं। वे श्रद्धा से कहते है "तुमने अपनी मगलमयी मधुर स्मिति से ही जीवन में नवरस का सचार किया। तुम्ही ने मुझे स्नेह सिखाया", और—

हृदय बन रहा था सीपी सा
तुम स्वाती की बूंद बनी
मानस शतदल झूम उठा जब
तुम उसमें मकरन्द बनीं।

जीवन के सूखे पतझर मे हरियाली भी श्रद्धा ने भर दी थी। उस भगवति की 'पावन मधुधारा' पर अमृत को भी लोभ हो सकता है। उस रम्य सौन्दर्य में जीवन धुल जाता है। श्रद्धा के सगीत में जग-मगल का स्वर है। वह आशा के आलोक किरण की भाति है। वह जलद सी रिमझिम बरसकर मन की वनस्थली को हरा भरा कर देती है। मनु ने उसी मे हँस-हँस कर विश्व का खेल खेलना सीखा। प्रसाद ने मानवता के प्रतीक के समस्त पौरुष को कामायनी के चरणों पर विनत कर दिया है। मनु कहता है

कितना है उपकार तुम्हारा
आश्रित मेरा प्रणय हुआ
कितना आभारी हूँ इतना
संवेदनमय हृदय हुआ

अपार मधु से भरी श्रद्धा के सम्मुख मनु झुक जाते हैं। काव्य का नायक नायिका के आश्रय मे पलता चलता है। जब कामायनी मनु को दूसरी बार खोजने के लिये चलती है, तब भी उसके हृदय मे अमर विश्वास है। इस बार श्रद्धा को पाकर मनु उसे 'निर्विकार', मातृमूर्ति', और 'सर्वमगले' मे सम्बोधित करते हैं। मनु की भाति इडा भी उसके महत्व को स्वीकार कर लेती है। वह क्षमा याचना तक करने लगती है। काव्य मे श्रद्धा का व्यक्तित्व सभी के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। वह दान्ते की 'डिवाइन कामेडी' की बियेट्रिस की भाति अपने नैसर्गिक रूप को लेकर प्रस्तुत हुई। श्रद्धा 'कल्याण-रश्मि', 'अमृतधाम' है।

अपने उदात्त रूप के ही आधार पर श्रद्धा 'कामायनी' की प्रमुख नायिका रूप में आई है, जो नायक को भी अपनी महानता मे कुछ दबा सा देती है। उसके व्यक्तित्व के सम्मुख नायक मनु कुछ धूमिल पड़ जाते है। ऐसा

प्रतीत होता है कि श्रद्धा के अभाव मे नायक अधिक समय नही चल पायेगा। उसके जीवन की समस्त सुख शान्ति का मूलाधार ही नायिका बन गई है। कथानक, नायक सभी पर उसके महान व्यक्तित्व की छाया है। हिन्दी की साहित्यिक परम्परा मे कामायनी का यह उदात्त, महान चित्राकन एक नवीन प्रयोग है। नायक की सहचरी वनकर आने वाली नायिका से श्रद्धा का स्वरूप भिन्न है। वह नायक के उदात्त रूप को स्वयम् पा गई है। प्रसाद ने श्रद्धा की चरित्र सृष्टि मे भारतीय मातृत्व कल्पना तथा बौद्ध दर्शन की करुणामयी नारी से भी प्रेरणा ग्रहण की। उसे अत्यधिक सम्मान और आदर कवि ने दिया, और काव्य का नामकरण भी उसी के नाम पर किया। हृदय की समस्त उदार वृत्तिया उसमे सगृहीत है। व्यक्ति-समाज, अह्-इद, जड-चेतन का वह समन्वय करती चलती है। स्वयम् कामगोत्रजा होने के कारण काम का वास्तविक स्वरूप भी वही प्रस्तुत कर सकती है। काम मानव को जीवन पथ पर अग्रसर करता है। श्रद्धा काम को केवल एक साधारण कामना बनकर नही रह जाने देती। जीवन के व्यापकत्व का भोग और कर्म का व्यापक स्वरूप काम है। प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्य मे श्रद्धा सर्वोत्कृष्ट रूप मे चित्रित हुई है।

इडा——

इडा का चरित्राकन वुद्धिवादिनि के रूप मे हुआ है। आरम्भ मे जो चित्र 'कामायनी' मे प्रस्तुत किया गया, उससे उसके वुद्धिवादी स्वरूप का आभास मिलता है। तकजाल की भाति विखरी अलके, शशिखड सा स्पष्ट भाल प्रखर वुद्धि का परिचायक है। प्रथम परिचय के समय ही वह मन मे कह देती है कि वुद्धि के वात न मानकर मनुष्य और किसकी शरण जायेगा। सम्पूर्ण ऐश्वर्य मे भरी प्रकृति के रहस्यो को खोलकर उसका उपभोग करना ही श्रेयस्कर है। विज्ञान मे जडता मे चेतनता भरी जा सकती है। उसकी वुद्धिजीवी प्रवृत्तिया 'चलने की झोक' मे रहती है, उन पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नही। उसकी वुद्धि कल्पना पाइथागोरस के गणित अक की भाति सत्य को ग्रहण करती है। वह सुन्दर आलोक किरण की भाति जिधर भी देखती है, तम मे वन्द पथ खुल जाते है। मनु के सम्पूर्ण नियमन के पीछे उसकी वुद्धि कार्य करती है। सारस्वत प्रदेश की भौतिक समृद्धि उसी के मस्तिष्क की उपज है। चारो ओर ज्ञान विज्ञान का विकास हो रहा है। धातु गलाकर नये आभूषण और अस्त्र बनाये जाते है। नवीन साधनो से नगर सम्पन्न होता जाता है। व्यवसाय की वृद्धि हो रही है। सारस्वत प्रदेश वैज्ञानिक सभ्यता का प्रतीक बन गया है। वह स्वयम् स्वीकार करती है

प्रकृति संग संघर्ष सिखाया तुमको मैंने

वास्तव में अतृप्त और विलासी मनु अपने प्रजापति रूप में इडा के अनुगामी मात्र हैं। समस्त संचालन वह स्वयम् ही करती है। इस भौतिकता की अतिशयता, विज्ञान के बाहुल्य से ही संघर्ष होता है। इडा का बुद्धिवाद स्वयम् अपनी अपूर्णता का परिणाम देख लेता है। इसके पूर्व भी परिचय के समय उसने मनु के सामने स्वीकार किया था कि 'भौतिक हलचल' से ही ही मेरा प्रदेश चंचल हो उठा था। वह मनु को राष्ट्रनीति समझाती है। उसकी बुद्धि परिस्थिति के अनुकूल कार्य करना जानती है। प्रजा भी 'मेरी रानी' कह कर चीत्कार मचाती है। वह उस पर किये गये अत्याचार को कदापि सहन नहीं कर सकती। बुद्धिवाद से इडा प्रत्येक कार्य सम्पन्न नहीं कर पाती। वह भौतक मरा में तो सारस्वत प्रदेश को भर देती है, किन्तु विद्रोह और संघर्ष को रोक देना, उसकी सामर्थ्य के बाहर है। विज्ञान एक सुन्दर सेवक है, किन्तु एक अनाचारी, निरंकुश स्वामी। उसकी बुद्धिवाद की अपूर्णता पर ही मनु कह उठते हैं

देश बसाया पर उजड़ा है, सूना मानस देश यहाँ

इडा सम्पूर्ण सारस्वत प्रदेश की रानी होकर भी मनु के हृदय पर शासन न कर सकी। वह अपने प्रेम से उन पर विजय न प्राप्त कर पाई, केवल अपने नगर का संचालक बना सकी। हृदय की भूख और प्यास को शान्त कर देने की शक्ति उसमें नहीं। उसमें बुद्धि पक्ष का प्राबल्य है। वह आसव ढालती चली जाती है, पर प्यास नहीं बुझती। मनु के जीवन की अतृप्ति अन्त में प्रजा से संघर्ष करती है। इडा अपने अभाव को नम्रतापूर्वक श्रद्धा के सम्मुख स्वीकार कर लेती है। उसे अपनी अपूर्णता, अज्ञानता का बोध हो जाता है। संघर्ष के पश्चात वह ग्लानि तथा पश्चात्ताप से भर जाती है। उसे अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो जाता है। वह अपनी दुर्बलतायें मान लेती है। अपने अनुशासन और भय की उपासना पर उसे स्वयम् क्षोभ होता है। इडा अपनी एकांगी बौद्धिक प्रवृत्तियों के होते हुये भी मानवीय गुणों से सम्पन्न है। निराश और उद्विग्न मनु को उसने आश्रय दिया। जीवन की अतृप्ति लेकर भटकने वाले प्राणी को नगर का स्वामी बना दिया। अन्तिम समय तक वह उन्हें समझाती रही। प्रजापति के समस्त कर्त्तव्य उन्हें बताती है। मनु के प्रति वह सदय रहती है। वह कहती है

आह न समझोगे क्या मेरी अच्छी बातें
तुम उत्तेजित होकर अपना प्राप्य न पाते।

* * *

इडा स्वयम् को 'शुभाकाक्षिणी' कहकर मनु को समझाने लगती है। वह विश्वास करने की प्रार्थना करती है। भीषण रण के समय भी वह जन सहार रोक देने के लिये अनुनय विनय करती है। बुद्धिजीविनी होते हुये भी वह किसी रौद्र रूप मे 'कामायनी' में नही प्रस्तुत की गई। सघर्ष के समाप्त होने पर निर्वेद के कारण इडा की मानसिक स्थिति सजल हो उठती है। उसे एक-एक कर सभी बातें याद आती जाती है कि कैसे उस दिन एक दुखी परदेशी आया था। इसी अवसर पर वह श्रद्धा, मानव को देखकर द्रवीभत हो उठती है। अत्यधिक स्नेह और ममत्व मे वह श्रद्धा को रोककर उसका दुख पूछने लगती है। उसे आशा, साहस देती है कि जीवन की लम्बी यात्रा मे खोये भी मिल जाते है। जीवन मे कभी न कभी मिलन अवश्य होता है, और दुख की रातें भी कट जाती है। श्रद्धा, मनु के मिलन-अवसर पर वह केवल सकोच और ग्लानि से गड जाती है। मनु के पुन भाग जाने पर तो वह मलिन छवि की रेखा सी लगती है, जैसे शशि को राहु ने ग्रस्त कर लिया हो। अत्यधिक विषाद में भरकर वह अपनी पराजय श्रद्धा के सम्मुख स्वीकार कर लेती है। जनपदकल्याणी और सारस्वत प्रदेश की रानी होकर भी वह अपूर्ण है। स्वयम् को अवनति का कारण बताते हुये वह कहती है

> मेरे सुविभाजन हुये विषम
> टूटते, नित्य बन रहे नियम,
> नाना केन्द्रो में जलधर सम
> घिर हट, बरसे ये उपलोपम।

वह बारम्बार क्षमा याचना करती है, क्योकि उसने सुहाग छीनने की भूल की। वह अपनी अकिंचनता लेकर नतमस्तक हो जाती है।

इडा अपनी बौद्धिकता में भी 'कामायनी' का उच्छृंखल पात्र नही है। सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था मे वह निपुण है। राजनैतिक नियामक के रूप मे वह प्रजापति मनु से अधिक सफल हुई। सम्पूर्ण सारस्वत प्रदेश की जनता उसे 'रानी' कहकर पुकारती है, उस पर स्नेह करती है, और उस पर किंचित अत्याचार देखकर विद्रोह कर उठती है। भौतिक उत्कर्ष के साथ ही वह मनु से 'राष्ट्र की काया मे प्राण सदृश' रमने के लिये कहती है, ताकि समस्त प्रजा स्नेह छाया में विश्राम कर सके। वह यह भी बता देती है कि नियामक यदि स्वयम् नियम न मानेगा, तो विनाश हो जायगा। विवादी स्वरो मे समस्त सुर शान्ति विलीन हो जाती है। राजनीति के क्षेत्र में इडा की

सफलता को देखकर ही श्रद्धा अपने मानव को उसकी छाया में छोड जाती है। 'तर्कमयी' के पास राष्ट्र का भावी नियामक राज्यनीति की शिक्षा प्राप्त करता है। वास्तव मे श्रद्धा इडा का वास्तविक मूल्याकन करती है। उसे 'तर्कमयी' के 'शुचि दुलार' पर अत्यधिक विश्वास है, जो उसके पुत्र का समस्त व्यथा भार हर लेगा। अन्तिम रूप में इडा सारस्वत प्रदेश के निवासियो का नेतृत्व करती दिखाई देती है। गैरिकवसना सध्या सी नीरव, कोलाहलविहीन इडा 'पथ प्रदर्शिका' बनकर सभी की जिज्ञासा शान्त करती चलती है। वह कहती है कि 'जगती की ज्वाला से विकल एक मनस्वी किसी दिन आया। उसकी अर्द्धांगिनी उसे खोजती हुई आई और उसी की करुणा ने जगती के ताप को शान्त कर दिया। अब वे दोनो मनु श्रद्धा संसृति की सेवा करते है। वहा मन की प्यास बुझ जाती है।' इस प्रकार अपने अन्तिम स्वरूप मे इडा की बुद्धि मे श्रद्धा का भी समावेश हो जाता है। वह जीवन की सुख और शान्ति के लिये मनु, श्रद्धा के पथ का अनुसरण करती है। वह व्यर्थ रिक्त जीवन घट को पीयूप-सलिल मे भर लेना चाहती है। श्रद्धा, मनु के निकट पहुँचकर वह स्वयम् को धन्य समझती है। उन दोनो को देखकर मन ही मन अपने नेत्रो को, सौभाग्य को सराहती है। दिव्य तपोवन मे वह अपना समस्त अश्रु छुटा लेना चाहती है। इस प्रकार इडा का अन्तिम स्वरूप विनम्र हो गया है। वास्तव मे बुद्धि का अवलम्ब ग्रहण करते हुये भी वह अमानवीय, असहिष्णु तथा निर्मम नही है। बुद्धि रूप मे वह एक शक्ति है, जिसका उचित प्रयोग मनु न कर सके। नारी के रूप मे वह करुण, विनम्र तथा क्षमामयी है। वेदो तथा ब्राह्मण ग्रन्थो मे वर्णित उसके स्वरूप से चरित्राकन का सामीप्य हो जाता है।

मानव—

'कामायनी' का अन्तिम चरित्र मानव है। उसके चारित्रिक विकास का पूर्ण अवसर काव्य मे नही मिला। केवल भावी मानवता के नियामक रूप मे ही वह आया है। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के भरत सा वह भी एक उत्तराधिकारी है। कालिदास भावी चक्रवर्ती के बल और पौरुष का उद्घाटन सिह-क्रीडा से कर देते है। इस अवसर पर कवि की राष्ट्रीय भावना भी जागृत हो उठती है। प्रसाद ने भी 'भरत' के चित्राकन मे 'शाकुन्तल' का ही अनुसरण किया। उनका भारत का भावी शासक भी सिह के मुख मे बारम्बार हाथ डालकर उसके दांत गिनता है[१७]। मानव सम्पूर्ण मानवता का विधायक बनकर आया है। मनु

---

१७. चित्राधार, पृष्ठ १०४

मानवता के जन्मदाता हैं और मानव उत्तराधिकारी रूप मे ससार का नियमन, सचालन करेगा। आरम्भ मे वह एक चचल शिशु के रूप में प्रस्तुत होता है। उसकी खुली अलकें, रजधूसर बाहे है। वह मा कहकर श्रद्धा से लिपट जाता है। श्रद्धा उसे 'पिता का प्रतिनिधि' कहकर पुकारती है। वह चचल वनचर मृग की भाति चौकडी भरता फिरता है। सरल बाल्य स्वभाव के अनुसार कहता है कि माँ मै रूठू और तू मनाये। पिता को पाकर वह अपनी बुद्धि के अनुसार उन्हे जल पिलाने के लिये कहता है, क्योकि वे प्यासे होगे। मनु भी उसे अपने जीवन का 'उच्च अश', 'कल्याणकला' मानते है। बढता हुआ बालक प्रतिभासम्पन्न प्रतीत होता है। सन्ध्या के समय वह मा से कहता है कि 'इस निर्जन मे क्या सौन्दर्य है ? साझ हो गई, अब घर चल।' श्रद्धा की उदासी उसे अच्छी नही लगती। वह कहता है—मा मै तेरे पास हू, फिर भी तू दुखी क्यो है ? अपनी मा की वेदना मे उसे दुख होता है, भोला बालक अपनी जिज्ञासा की शान्ति चाहता है। मा के विदा लेने पर वह आदर्श पुत्र की भाति कहता है

तेरी आज्ञा का कर पालन
वह स्नेह सदा करता लालन
मै मरूँ जिऊँ पर छूटे न प्रण
वरदान बने मेरा जीवन।

मानव के चरित्र-निरूपण के दो चार स्थल ही उसके महान व्यक्तित्व का परिचय दे देते है। बालक की चपलता, सारल्य के साथ ही उसमे आज्ञाकारिता और ममत्व की भी भावना है। वह मर जीकर भी अपनी मा की आज्ञा का पालन करने की बाते करता है। 'आनन्द' तक पहुँचते-पहुँचते मानव यौवन को प्राप्त कर लेता है। इस अवसर पर उसका पौरुष मनु की भाति प्रतीत होता है। उसके मुख पर 'अपरिमित तेज' था। कवि ने उसके भावी उत्कर्ष की ओर सकेत कर दिया है[१८]।

'कामायनी' मे थोडे मे पात्रो के द्वारा ही कथावस्तु का विस्तार कर लिया गया है। चरित्र चित्रण के लिये उनमे व्यक्तिगत विशेषताओ को रखकर रस-निष्पत्ति मे विशेष सहायता नही ली गई। समस्त पात्र अपनी व्यक्तिगत भावनाओ का परित्याग कर अन्त मे एक ही केन्द्र-बिन्दु पर पहुँचते है। यह समीकरण, सामजस्य ही रस अथवा आनन्द का सृजन करता है। कोई चरित्र अन्त मे प्रधानता पाकर सम्पूर्ण कथानक का समाहार नही करता। सभी चरित्र एक

---

१८ कामायनी—पृष्ठ २७७

स्थल पर एकत्र होकर आनन्दलाभ करते है। बुद्धिजीविनी इडा भी अपने बुद्धिवाद का परित्याग कर देती है। श्रद्धा इच्छा, ज्ञान, कर्म के समन्वय के पश्चात मनु को सूत्रधार बना देती है। स्वयम् मनु भी अपनी व्यक्तिगत सुख-दुख की भावनाओ का परित्याग कर देते है। उनका मानसिक झझावात समाप्त हो जाता है। समस्त सारस्वत प्रदेश के नगर निवासी उन्हे 'आत्मवत्' प्रतीत होने लगते है। इस प्रकार 'कामायनी' का चरित्र-चित्रण काव्य मे रस और जीवन मे आनन्द तक पहुँचने के लिये ही कवि ने किया है। अन्तिम स्वरूप मे सभी चरित्रो का कुछ न कुछ सहयोग इसमे अवश्य रहता है। यदि श्रद्धा का स्थान सर्वोपरि है, तो इडा की भी पूर्णतया अवहेलना नही की जा सकती। वह भावी नियामक को राष्ट्रनीति की शिक्षा देकर अन्त मे सारस्वत नगर निवासियो की पथ-प्रदर्शिका बन मानसरोवर पहुँचती है। वह सामूहिक आनन्द का कारण बनती है। उत्थान पतन मे भरा मनु भी अन्त मे एक आदर्श रूप मे प्रस्तुत होता है। वह सार्वभौमिकता, विश्वबन्धुत्व का सन्देश देने लगता है। इस प्रकार कामायनी के सभी चरित्र अपने स्थान पर महत्वपूर्ण है, तथा काव्य की रस-निष्पत्ति, जीवन के आनन्द मे सहायक है। 'कामायनी' के चरित्र चित्रण की प्रणाली कवि की अपनी है। प्राचीन सस्कृत ग्रन्थो मे प्राय सम्पूर्ण चरित्रो का विभाजन दो वर्गो मे कर दिया जाता है। असुर वर्ग देवताओ को अत्यधिक कष्ट देता है। अन्त मे देवताओ की विजय होती है। देवत्व की इस विजय तथा दानवत्व के पराभव से आनन्द, रस, आदर्श, सत्य की प्रतिष्ठा हो जाती है। रामायण, महाभारत मे देवासुर-सग्राम के मूल मे यही भावना निहित है। मिल्टन के 'पैराडाइज लास्ट' में भी यही प्रवृत्ति मिलती है। 'कामायनी' मे देव दानव सघर्ष अन्तर्मुखी हो गया है। वह मनु के मन मे निरन्तर चलता रहता है। उसमें समन्वय स्थापित हो जाते ही आनन्द का सृजन होता है। बाह्य रूप में जब मनु और सारस्वत प्रदेश की प्रजा मे सघर्ष होता है, तब अवश्य ही वह प्राचीन देवासुर सग्राम का एक आभास दे देता है, क्योंकि उसका नेतृत्व इतिहासप्रसिद्ध किलात और आकुलि असुर कर रहे थे। प्रसाद ने कामायनी के चरित्रांकन मे एक समन्वय दृष्टि रखी है। आदर्श यथार्थ के मिलन द्वारा ही वे रसनिष्पत्ति को ले आते है। वर्णन के स्थान पर व्यजना का ही ग्रहण उन्होंने अधिक किया। पात्रो की विशेषताओं का उल्लेख अधिक नही होता। कार्य स्वयम् उद्घाटन करते चले जाते है। अनेक स्थलो पर कवि ने केवल सकेत मे ही काम लिया है। नीचे गिरकर भी मनु की सदा ऊँचे उठने की भावना उनकी महानता का परिचायक है। इडा के पश्चाताप, अपराध की क्षमा याचना मे उनका शील निहित है। चरित्रो के मार्मिक अश को ही अधिक ग्रहण किया

गया है। मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रित 'कामायनी' का चरित्र चित्रण नवीन परम्परा पर निर्मित है। ऐतिहासिकता का पालन करते हुये भी वह प्राणवान और आधुनिक है तथा काव्य के मूल उद्देश्य रसनिष्पत्ति में सहायक होता है।

रसनिष्पत्ति--

काव्य का लक्ष्य आनन्द है। भारतीय विचारको ने इसी में 'ब्रह्मानन्द सहोदर' की कल्पना की। रस ही काव्य की आत्मा है, और रस निष्पत्ति ही उसका मूल्याकन करती है। 'रसायन' की भूमिका के अनुसार, 'रस अलौकिक चमत्कारकारी उस आनन्द विशेष का बोधक है जिसकी अनुभूति सहृदय के हृदय को द्रुत, मन को तन्मय, हृदय व्यापारो को एकतान, नेत्रो को जलाप्लुत, शरीर को पुलकित और वचन रचना को गदगद् रखने की क्षमता रखती है। यही आनन्द काव्य का उपादेय है और इसी की जागृति वागमय के अन्य प्रकारो से विलक्षण काव्य नामक पदार्थ की प्राण प्रतिष्ठा करती है[१९]। रस अथवा काव्यगत आनन्द का साधारणीकरण तथा सामाजीकरण होता है। वह सर्वत्र अपना प्रभाव स्थापित करता है। उस पर देश काल का बन्धन नही रहता, सदा रस झरता रहना है। रसनिष्पत्ति का कारण विभाव, अनुभाव, स्थायी भाव, सचारी भाव का सयोग होता है। काव्य के समस्त उपादान सम्मिलित रूप मे रस का सृजन करते है। रसनिष्पत्ति के लिये सभी अगो का पुष्ट होना अनिवाय है। विभाव के अन्तर्गत आलम्बन, आश्रय, उद्दीपन, अनुभाव आदि का समावेश होता है। भाव पक्ष स्थायी, सचारी को लेकर चलता है। भारतीय रसदृष्टि समस्त काव्यगत उपादानो को साथ ही लेकर चलती है। प्रसाद ने काव्य के रस और दर्शन के आनन्द को एक दूसरे के समीप ही प्रस्तुत किया। काव्य को 'आत्मा की सकल्पात्मक मूल अनुभूति' तथा 'श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा' कहकर वे भारतीय दर्शन और साहित्य का समन्वय रस में मानते है। यह साहित्यिक रस दार्शनिक आनन्दवाद से अनुप्राणित है[२०]। काव्य का अस्पष्ट व्यापार रस आनन्द दोनो का ही सृजन करता है। पाश्चात्य विचारधारा की भावना और सौन्दर्य भारतीय अनुभूति मे अधिक भिन्न नही, दोनो ही मन अन्त मे आनन्द की स्थिति में पहुँचते है। सत्य, शिव, सुन्दर के समन्वय को ही सर्वोत्तम साहित्य स्वीकार करनेवाले रवीन्द्र की धारणा है कि "सत्य के आनन्द और अमृत रूप को देखकर उसी आनन्द को अभिव्यक्त करना

---

१९. काव्यदर्पण के आधार पर, पृष्ठ ५३

२० काव्य और कला, पृष्ठ ४९

ही काव्य साहित्य, का लक्ष्य है। जब हम सत्य को एकमात्र आंखों से देखते है, बुद्धि द्वारा प्राप्त करते हैं, तब हम उसे साहित्य में अभिव्यक्त नहीं कर सकते परन्तु जब हम उसे हृदय के द्वारा प्राप्त कर लेते है तभी हम उसे साहित्य में अभिव्यक्त कर सकते है[२१]।' रस विधान एव आनन्द सृजन ही महान काव्य के निर्णायक है। जीवन के शाश्वत मूल्यो के आधार पर निर्मित काव्य जब अपने व्यापकत्व मे प्रस्तुत होता है, तभी उसे महान काव्य की सज्ञा दी जाती है। सच्ची अनुभूति, उसका व्यापक प्रसार, सरस अभिव्यजना, स्वस्थ जीवन दर्शन, कलात्मक अभिव्यक्ति ही श्रेष्ठ काव्य के उपादान बनकर आते है। साहित्य मे प्रचलित अनेक वादो मे उसे बाधा नही जा सकता। उसका स्वर चिरन्तन और शाश्वत होकर प्रवाहित होता रहता है। मानवीय भावनाओ से उसका आरम्भ होता है और अन्त मे मानव की परितृप्ति, विकास ही उसका लक्ष्य रहता है। काव्य की प्रचलित अनेक प्रणालियाँ अन्त मे रस पर ही पहुँचती है। भारतीय रस परम्परा मे स्थायी भावो के आधार पर शृगार, करुण, वीर, हास्य, अद्भुत, भयानक, रौद्र, वीभत्स आदि रसो को स्वीकार किया गया। श्रव्य-काव्य मे निर्वेद स्थायी भाव के आधार पर शान्त रस का भी समावेश हुआ। इसके अतिरिक्त वात्सल्य, सख्य आदि रसो की भी कल्पना की गई। काव्य में प्रमुख रस अन्य गौण रसो को लेकर आनन्द की सृष्टि मे प्रयत्नशील रहता है। मानव जीवन की बहुमुखी समस्याओ को लेकर चलने वाला काव्य अन्त में सभी का केन्द्रीकरण कर लेता है। सम्पूर्ण क्रिया-व्यापार, चरित्र, रस के विशाल रग-मच पर आकर मिल जाते है।

कामायनी का रस-सचार, आनन्द-सृजन केवल विभाव-अनुभाव के साधारण समन्वय पर आधारित नही है। लक्षण ग्रन्थो के आधार पर उसका निर्माण नही हुआ। जीवन के व्यापक धरातल को लेकर अनेक समस्याओ का समाहार करते हुये कामायनी कलात्मक रूप में सम्मुख आती है। उसका भाव-निरूपण, वस्तु-वर्णन, चरित्र-चित्रण रसनिष्पत्ति में सहायक हुआ है। इसी के अन्तर्गत रसो का विधान स्वाभाविक रीति से प्रस्तुत हो गया। केवल गणना के लिये ही रस कामायनी मे नही प्रयुक्त हुये, वे क्रमश नैसर्गिक रीति से आते गये। आरम्भ मे ही 'चिन्ता' सर्ग मे करुणा का स्वर दिखाई देता है। देव-सृष्टि के विनाश को याद करते हुये मनु शोकाकुल एकाकी बैठे है। समस्त वैभव का अन्त हो गया, केवल जलराशि ही फैली हुई है। मनु का शोक, दुख,

---

२१ साहित्य, पृष्ठ ५४

कष्ट सभी करुणा का सचार कर देने के लिये पर्याप्त है । उनकी वेदनामयी अभिव्यक्ति और विवशता उसे और भी जागृत कर देती है । मनु भविष्य की चिन्ता से विभोर हो उठता है । स्थायी भाव शोक विस्मृति, निराशा आदि सचारियो को लेकर करुणा का सृजन करता है । करुणा मे काव्य का आरभ वाल्मीकि के 'मा निषाद' के समीप प्रस्तुत किया जा सकता है । आरम्भ की यह करुणा पर्याप्त समय तक कथानक के साथ दौडती दिखाई देती है । श्रद्धा का परित्याग कर इडा को पाने के पूर्व तक मनु का हृदय एक विचित्र ग्लानि और पश्चात्ताप मे भरा रहता है । उनकी इस दशा पर इडा को दया आजाती है । वियोग की अवस्था में श्रद्धा भी करुणा की मूर्ति बन जाती है । करुणा का अन्त आनन्द के आरम्भ के साथ होता है । भवभूति के इस प्रमुख रस की क्षीण रेखा कामायनी मे अन्त सलिला सी बनकर दौडती रहती है । शृगार के अन्तर्गत प्रेम, रति, सौन्दर्य आदि सभी वस्तुये आ जाती है । उसके व्यापक स्वरूप के कारण ही उसे रसराज की सज्ञा दी गई । श्रद्धा के प्रवेश के साथ ही सयोग शृगार का आरम्भ हो जाता है । आते ही वह मनु के जीवन मे तरलता-सरसता भर देती है । उसके सौन्दर्य मे शृगार और माधुर्य छलका पडता है । नित्ययौवना कामायनी पुरुष के जीवन में मधुमास भर देती है । मधु से निर्मित उसका यौवन आकर्षण का केन्द्र बन जाता है । मनु के जीवन में काम के प्रवेश के साथ ही शृगार की भावना प्रबल होती जाती है । जीवन-वन का मधु-मय वसन्त प्राणो मे मादकता घोल देता है । कोकिल, कलिका, प्रसून, सुरभि, उद्दीपन बनकर आते है । मनु-श्रद्धा का मिलन सभोग शृगार की सीमा तक चला जाता है । वासना के जागरण मे रति प्रबल हो उठती है । दोनो एक दूसरे के पूरक बन जाते है । समर्पण, सम्मिलन की कामना बढती जाती है । प्रकृति का मादक रूप उद्दीपन का कार्य करता है । रागरजित चन्द्रिका, शिशिर की रजनी, झुरमुट की छाया मादकता को और भी मादक कर देते है । कापती सी विधु-किरण भी मधु बरसाती है, पवन मधु-भार से पुलकित मथर गति से जा रहा है । मनु के प्राण अधीर हो उठते है[२२] । सयोग शृगार की ही पराकाष्ठा बनकर परिणय आता है । मधुर मिलन के साथ ही पुलक, स्पर्श, लज्जा आदि अनुभाव भी प्रस्तुत हुये है । काम सर्ग मे भी शृगार की रेखायें दिखाई देती है, किन्तु स्वयम् नायिका की करुणा के कारण उसका पूर्ण आवेग नही आने पाता । यही स्थिति मनु और इडा मिलन के अवसर पर भी होती है । लज्जा का भाव निरूपण भी शृगार रस का सकेत करता है । सयोग के साथ ही विप्र-

२२ कामायनी, पृष्ठ ९१

लम्भ शृगार भी 'कामायनी' में प्रस्तुत हुआ। मनु की हिंसात्मक प्रवृत्तियो से निराश होकर श्रद्धा एक विचित्र मान मे भर जाती है और मनु मनुहार करते है। श्रद्धा के मन मे एक तीव्र उन्माद और मन मथने वाली पीडा थी। मनु के भाग जाने के माथ ही वियोग का आरम्भ हो जाता है। मनु केवल एक क्षण के लिये पश्चात्ताप करके रह जाते है, किन्तु श्रद्धा के लिये वियोग की घडिया दु सह हो उठती है। विरहिणी के जीवन में एक घडी भी विश्राम नही। स्मृति के साथ ही अश्रु गिरने लगते है। सारा जीवन निशा की भाति अन्धकारमय और धूमिल हो गया। 'कामायनी' मे श्रद्धा के रूप को सन्ध्या की उदासी के वातावरण मे प्रस्तुत किया गया।

कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरन्द रहा
एक चित्र बस रेखाओ का, अब उसमें है रग कहा
वह प्रभात का हीन कलाशशि, किरन कहा चादनी रही
वह सन्ध्या थी, रवि शशि तारा ये सब कोई नहीं जहा।

वियोग के क्षणो मे कामायनी विजन की मौन वेदना, जगती की अस्पष्ट उपेक्षा, साकार कसक, विरह नदी बनकर रह जाती है। प्रकृति का धूमिल, उदास वातावरण वियोग का साथ देता है। स्वप्न मे आने वाले भाव स्मृति, अवसाद अभिलाषा वियोग को और भी बढा देते है। इसी अवसर पर बालक मानव की किलकारी भी मनु की याद दिला देती है। मानभरी मधुऋतु रातो की याद करते ही श्रद्धा विभोर हो उठती है। मनु को पाकर जब कामायनी उन्हे पुन खो देती है, तब वियोग की साधारण सी रेखाये उठकर रह जाती है। वियोग वर्णन मे प्रसाद ने सचारी भावो के द्वारा ही अभिव्यक्ति की, अत्यधिक उद्दीपन का अवलम्ब ग्रहण नही किया। केवल विप्रलम्भ के लिये रीतिकालीन बारहमासा अथवा षड्ऋतु वर्णन को नही अपनाया गया। वर्णन-विदग्धता मे पूर्ण कालिदास के कुमारसम्भव मे अपनी व्यथा खोलती हुई पार्वती कुछ कुछ श्रद्धा की भाति प्रतीत होती है। श्रद्धा प्रिय की निष्ठुर विजय कहकर भी अपनी हार नही मानती। पार्वती कहती है—

क्व नु मां त्वदधीनजीवितां विनिकीर्य क्षणभिन्न सौहृद.
नलिनी क्षण सेतुबन्धनो जलसघात इवासि विद्रुत.।

—कुमारसम्भव, चतुर्थ सर्ग।

"जल का प्रवाह बन्धन तोड़कर कमलिनी को वही पर छोड़कर निकल जाता है। तुम भी, प्राणो को तुम्हे ही समर्पित कर देने वाली, मुझ अभागिनी से सम्बन्ध तोड़कर न जाने कहा अनायास ही रुष्ट होकर चल दिये"।

'कामायनी' मे अन्य रस भी अगी रस को सहयोग प्रदान करते है। निर्वेद भाव मे शान्त रस की उत्पत्ति होती है। शास्त्रकारो ने इसकी स्थिति श्रव्य काव्य मे स्वीकार की है, नाटक आदि मे नही। प्राचीन सस्कृत काव्यो में अन्तिम रूप रेखा निर्वेद भाव से अनुप्राणित प्रतीत होती है। नाटको के उल्लास-पूर्ण आनन्द और उसके शान्त रस मे अधिक अन्तर नही रह जाता। दोनो ही जीवन की अखण्डता का प्रतीक वनकर आते है, दोनो ही मे सुख है। वाल्मीकि के राम अन्त मे सरयू नदी मे विलीन हो जाते है। महाभारत में भी पाण्डव हिमालय मे खो जाते है। कालिदास के रघुवश के अन्त मे भी राजा सुदर्शन वृद्धावस्था मे अपने तेजस्वी पुत्र अग्निवर्ण को राजा वनाकर स्वयम् नैमिषारण्य मे निवास करने लगते है। सुशिक्षित जनता के लिये लिखे जाने वाले श्रव्य काव्यो के अन्त मे जीवन की दार्शनिक परिणति के रूप में शान्त रस की व्यवस्था प्राप्त होती है। सामान्य व्यक्तियो के आनन्द का नाटक सुखान्त को लेकर चला। चतुर्वर्ग प्राप्ति की दृष्टि से भी अन्तिम रूप मोक्ष है। 'कामायनी' के मनु में निर्वेद की भावना श्रद्धा के आ जाने पर जागृत होती है, किन्तु वह केवल एक भाव वनकर ही रह जाती है, यदि रस दशा को प्राप्त होती तो मनु का पलायन सम्भव न था, कथानक की गति न वढ़ पाती। निर्वेद का परिपाक दर्शन, रहस्य आदि मे आरम्भ हो जाता है। अन्त मे आनन्द की स्थिति मे वह रस रूप मे प्रस्तुत होता है। कैलाश पर्वत की नीरवता मे शान्ति का सृजन होता है। सम्पूर्ण सारस्वत नगर निवासी तृप्ति का अनुभव करने लगते है। 'कामायनी' के शान्त रस और आनन्द का एक सुन्दर समन्वय काव्य के अन्त मे प्रस्तुत हुआ, जहाँ दोनो मे कोई अन्तर नही रह जाता। काव्य और नाटक दोनो के उद्देश्य एक साथ ही मिल जाते है। देव-दानव सघर्ष के रूपक का अनुसरण न होने के कारण 'कामायनी' मे वीर, भयानक, रौद्र, वीभत्स आदि रसो का अधिक समावेश न हो सका। अनेक सचारी भाव किसी विशेष स्थायी भाव के साथ उपस्थित होकर रस दशा का सचार नही करते। 'स्वप्न' तथा 'सघर्ष' में इन प्रखर भावो का अकन हुआ है। कथानक को गतिमान करने तथा परिणाम निरूपण का ही उद्देश्य इसमे निहित है। उनमे व्यापक प्रसार की योजना न होने के कारण रस के स्थान पर भाव रूप में ही उनका ग्रहण अधिक है। 'चिन्ता' के प्रलय वर्णन मे भयानकता का आभास मिलता है। आंधियां, विजलियां तथा दूर-दूर तक प्रसारित जलराशि इसी ओर सकेत करती है। 'कर्म' के हिंसात्मक कार्यो मे भयानकता, रौद्रता, वीभत्सता दिखाई देती है। स्वयम् श्रद्धा को इससे जुगुप्सा होती है। दारुण दृश्य, रुधिर के छींटे भयानकता भरते है। रौद्र रूप में स्वयम् रुद्र ही ताण्डव नृत्य कर उठते

है, समस्त सृष्टि ही काप जाती है। रणक्षेत्र मे भी प्रखर भाव दृष्टिगोचर होते है। सर्वत्र भयानकता ही भयानकता छाई रहती है। युद्ध के अवसर पर मनु की वीरता का भी साधारण आभास प्राप्त हो जाता है। अद्भुत रस कुतूहल और जिज्ञासा के भावो मे ही निहित रह गया। इच्छा, ज्ञान, कर्म का रहस्यमय लोक अद्भत रस का आभास सा देता है। हास्य को 'कामायनी' की गम्भीर मर्यादा सम्भवत स्थान न दे सकी। वात्सल्य रस बालक मानव के स्वाभाविक अकन मे प्राप्त हो जाता है। उसकी किलकरी ही उसका आभास दे देती है। मनु श्रद्धा दोनो का ममत्व, वात्सल्य उस पर रीझता है। इस प्रकार 'कामायनी' में करुणा, शृंगार, के सहायक रूप में अन्य रस प्रतीत होते है। रस और भाव दोनो ही रसनिष्पत्ति, आनन्द सृजन में योग देते है। प्रसाद ने प्राणवान आलम्बन, सजीव चित्रण, व्यापक विस्तार के द्वारा रसो का सामाजीकरण भी किया। वे साधारणीकरण की स्थिति तक जाकर, सामूहिक रसोद्वेग मे सहायक होते है। उसमे भाव तथा रस का पूर्ण विस्तार मिलता है।

अलंकार आदि--

रस के साथ ही काव्य मे अलकार भी उसके सौन्दर्य की वृद्धि करते है। वास्तविक वस्तु तथा आत्मा रस होते हुये भी अलकार-विधान काव्य को और भी उत्कृष्टता प्रदान करता है। 'कामायनी' का कवि आनन्दवर्द्धन, कालिदास की भांति रसवादी तथा आनन्दवादी है। वह रस को ही काव्य का प्राण स्वीकार करता है। 'कामायनी' मे सहज रीति से अलकारो का समावेश हो गया। अप्रस्तुत योजना के अन्तर्गत सुन्दर उपमान प्राप्त हो जाते है। भाव निरूपण के लिए सजीव उपमानो, प्रतीको और रूपको का ग्रहण किया गया। इसी कारण भाव स्वयम् मूर्तिमान हो उठे। उपमालकार मे मूर्त, अमूर्त सभी के उदाहरण प्राप्त हो जाते है। श्रद्धा का रूपवर्णन सक्ष्म अमूर्त उपमानो से सम्पन्न है—

रचित परमाणु पराग शरीर
खड़ा हो ले मधु का आधार

'कामायनी' के अलकार रस की आत्मा बनकर आये है। वे स्वयम् रसमय होकर रस निष्पत्ति में सहायक होते है, उनका समावेश काव्य के बाह्य सवर्द्धन के लिये नहीं किया गया।

अलकारो से विभिन्न प्रकार के प्रयोजन भी सिद्ध होते है। उससे रचना में अनेक चमत्कार आ जाते है। शाब्दिक चमत्कार बुद्धि को और भावगत

चमत्कार हृदय को प्रभावित करते है। प्रसाद मे अनुभूति की मात्रा अधिक होने के कारण भावगत अलकारो की ही प्रधानता है। 'कामायनी' मे अर्थालकारो का अभाव नही है। साम्य से वैषम्य पक्ष का अधिक प्रयोग हुआ। उपमा और उत्प्रेक्षा की भरमार भी दिखाई देती है। उपमाओ मे कवि की मौलिक उद्भावनाओ को देखा जा सकता है। सम्पूर्ण लज्जा वर्णन मे नवीन उपमाये मिलती है। 'इडा' सर्ग के मनोरम साग रूपको मे भी नई उत्प्रेक्षाये है—

यह उजडा सूना नगर प्रान्त
जिसमें सुख दुख की परिभाषा विध्वस्त शिल्प सी हो नितात
निज विकृत वक्र रेखाओं से, प्राणी का भाग्य बना अशात।

उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक के द्वारा 'कामायनी' मे सुन्दर चित्रो की योजना की गई। सौन्दर्य वर्णन के अतिरिक्त वस्तु निरूपण मे भी कवि ने इनका अवलम्बन ग्रहण किया। चिन्ता आदि अनेक भावो का अकन प्रसाद की नवीन अलकार योजना द्वारा ही सम्भव हो सका। नूतन कल्पना की ओर प्रवृत्ति होने के कारण असम्भावित चित्र अधिक आ गये है, किन्तु इसी प्रयास मे कवि स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाता दिखाई देता है। कामायनी के आलकारिक चित्रो मे कालिदास की सी आभिजात्य भावना है। प्रसाद दृश्यो मे भी हृदय तत्व की खोज कर लेते है। इसी कारण इनके अलकार परिश्रमसाध्य न होकर स्वाभाविक है।

शाब्दिक अलकार कामायनी मे अपेक्षाकृत कम मिलते है। कही कही नाद सौन्दर्य मे अनुप्रासो को खोजा जा सकता है, किन्तु उन्होने केवल नाद के लिये छन्द निर्माण नही किया। वह पद्माकर की भाति बलात्कृत नादोत्पत्ति नही है, उसका स्वरूप स्वाभाविक है। तुलसी के 'ककण किंकिण नूपुर धुनि सुनि' की भाति ही 'कामायनी' मे अनुप्रास आया है

ककण क्वणित रणित नूपुर थे
हिलते थे छाती पर हार।

इसी प्रकार "है भीड लग रही दर्शन की" के दर्शन शब्द मे श्लेष भी मिल जाता है। शब्द सौन्दर्य की अपेक्षा भाव प्रकाशन और अर्थ अभिव्यजना की ओर उन्मुख रहने के कारण कामायनी मे अलकार भी रस के सहायक होकर आये है। कही-कही इसी कारण दो अलकारो का मिश्रण भी हो गया। 'नीरव निशीथ मे लतिका सी तुम कौन आ रही हो बढती' मे रूपक और उत्प्रेक्षा का अद्भुत मिश्रण है।

कामायनी मे शास्त्रवर्णित अलकारो को ठूस-ठूस कर रखने का प्रयत्न नही किया गया। भाव, अनुभूति और रस के ही सहकारी होकर अलकार आ गये है। कामायनी के प्रिय अलकार उत्प्रेक्षा और रूपक है, जिनके द्वारा काव्य मे मार्मिकता आ गई है।

भाषा और शैली—

कामायनी की भाषा उसे काव्य की सर्वोत्कृष्ट सीमा तक ले जाती है। वास्तव मे भाषा ही भावो का भार वहन करती है। भावना उसी के माध्यम से प्रकट होती है। कामायनी मे भावो के अनुसार ही भाषा का स्वरूप प्राप्त होता है। शृगार और करुणा मे भरा काव्य प्राजल, सरस भाषा को लेकर चला है। प्रसाद का शब्द-चयन उनकी महान कला-कुशलता का परिचायक है। प्रत्येक भाव का अकन करने के लिये वे उसी के अनुकूल शब्दो को चुनते है। भावो के वहन, उनकी अभिव्यजना मे भाषा सफल होती है। चिन्ता के शोक की अभिव्यक्ति अन्धकार, कालिमा, उल्का, भीषण रव, गर्जन आदि से हो जाती है। भयानक परिस्थिति के चित्र नीरस शब्दो द्वारा कवि ने प्रस्तुत किये। सघर्ष, कर्म आदि के अवसर पर प्रखर शब्दो का ही उपयोग हुआ। तुमुलरणनाद, ज्वाला, तीक्ष्ण जनसहार, उत्पात आदि अनेक शब्द स्थिति की भीषणता का आभास दे देते है। काम, लज्जा के सरस वर्णन मे कामायनी की भाषा वेगवती सलिला की भाति प्रवाहित दिखाई देती है, जो अपने कूल-कछारों को चूमती, रसमय करती चलती है। काम, लज्जा का सूक्ष्म अकन कवि के भाषा-कौशल के कारण ही सरस रूप मे प्रस्तुत हुआ। वासना का आभास साकेतिक शब्दो द्वारा कर दिया गया। भाषा, भाव 'कामायनी' मे एक दूसरे के पूरक बनकर आये है। भाषा भावो का आवरण नही बन जाती और न वह उनके पीछे ही रह जाती है। अपने सहज ओज, माधुर्य गुण से भरकर वह भावो को ले चलती है। कामायनी की शब्दशक्ति मे लक्षणा, व्यजना का ग्रहण अधिक है। श्रेष्ठ काव्य सकेत, व्यजना, ध्वनि आदि का अधिक अवलम्ब लेते है। महान कवि केवल सकेत से ही अपने भाव का प्रकाशन कर देते है। भारतीय साहित्यशास्त्र मे ध्वनि का महत्वपूर्ण स्थान है। आनन्दवर्द्धनाचार्य ने शब्द, अर्थ का समन्वय प्रस्तुत करते हुये ध्वनि की प्रतिष्ठा की। 'काव्यास्यात्मा ध्वनि' से उसे प्राधान्य मिला। 'ध्वन्यालोक' मे ध्वनि पर विशेष रूप से विचार किया गया। वह वाच्य से अधिक उत्कर्ष, चारुत्वप्रतिपादक तथा व्यग्यमय होती है[२३]। स्वयम् प्रसाद

---

२३. चारुत्वोत्कर्षनिबन्धना ही वाच्यव्यंगमयशोः प्राधान्यविवक्षा—ध्वन्यालोक।

ध्वनि के अन्तर्गत रस और अलकार का अन्तर्भाव स्वीकार करते हैं[२४]। ध्वनि द्वारा ही काव्य-रस व्यक्त होता है। रस के अभाव में ध्वनि का अस्तित्व और सौन्दर्य स्वीकार नही किया जा सकता। कामायनी में अलकार, वस्तु, भाव, रस आदि ध्वनियो के उदाहरण सहज ही प्राप्त हो जाते हैं।

अलकार ध्वनि—

इस ग्रह कक्षा की हलचल री तरल गरल की लघु लहरी
जरा अमर जीवन की ओर न कुछ सुनने वाली वहरी।
(रूपकाश्रित अलकार ध्वनि)

वस्तु ध्वनि—

आसू से भीगे अचल पर मन का सब कुछ रखना होगा।
तुमको अपनी स्मित रेखा से यह सन्धि-पत्र लिखना होगा।
(नारी-स्वरूप और कर्त्तव्य की ध्वनि)

रस ध्वनि—

अव न कपोलों पर छाया सी पडती मुख की सुरभित भाप
भुज मूलों से शिथिल वसन की व्यस्त न होती है अव माप।
(विप्रलम्भ श्रृगार की ध्वनि)

भाषा की व्यजना शक्ति तथा ध्वन्यात्मकता के साथ ही उसमे चित्र-मयता तथा मूर्तिमयता का भी समावेश अनिवार्य है। कविता और चित्रकला में साम्य होता है[२५]। साधारण शब्दो की रेखाओ द्वारा जिन भावो को प्रस्तुत करना सम्भव नही, उन्हे चित्र से प्रकट किया जाता है। सफल कवि सुन्दर शब्द-शिल्पी भी होता है। वह शब्दो के द्वारा चित्र वना लेता है। किसी भी भाव अथवा वस्तु को मूर्तिमान कर देता है। भावो की साकारता भाषा की चित्रमयता पर निर्भर है। 'कामायनी' में चित्रो की प्रधानता है। समस्त मनो-वृत्तियो को साकार रूप में चित्रित किया गया। चिन्ता, काम सभी सजीव, प्राणमय, मूर्तिमान हो उठे हैं। जडता मे चेतनता का आरोप कर कवि ने उनका मानवीकरण भी कर लिया। सम्पूर्ण चित्र भाव को केन्द्रित रूप मे प्रस्तुत कर देता है। कामायनी की समस्त मनोवृत्तिया भाव-चित्र वनकर ही आई हैं।

---

२४ काव्य और कला, पृष्ठ ४४

२५ 'Po try and picture are arts of a like nature'—Johnson

भाषा की विलक्षण चित्रमयता उन्हें प्रतिष्ठित करने में सफल हुई। लज्जा का सूक्ष्म भाव भी इसी कारण चित्रित हो सका—

कोमल किसलय के अंचल में
नन्हीं कलिका ज्यो छिपती सी
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती सी।
मंजुल स्वप्नो की विस्मृति में
मन का उन्माद निखरता ज्यो
सुरभित लहरो की छाया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यो।
वैसे ही माया में लिपटी
अधरो पर उँगली धरे हुये
माधव के सरस कुतूहल का
आखो में पानी भरे हुये।

काम का भी मानवीकरण कर प्रसाद ने अत्यन्त सजीव स्वरूप खीचा है। वास्तव मे प्रसाद की भाषा की चित्रमयता अत्यन्त शक्तिसम्पन्न है। किसी प्रकार का भी चित्र वे अपनी तूलिका मे प्रस्तुत कर सकते है। हिन्दी का यह शब्द-शिल्पी इस दृष्टि से विश्व के विशिष्ट कवियो के समकक्ष है। भाव के साथ ही वस्तु और रूप के भी सजीव चित्र कामायनी में मिल जाते है। समस्त भाव वर्णन ही वस्तु रूप में भी रेखाकित हो उठता है। भाव ही वस्तु बन जाते है। पात्रो के सौन्दर्याकन मे भी चित्रशैली का सहारा लिया गया। आदि से अन्त तक कामायनी जीवन के विविधि सुन्दर चित्रो से सज्जित है, जो उसका काव्य-वैभव है। कालिदास यदि उपमा मे सर्वोपरि है, तो प्रसाद चित्राकन मे। कामायनी की भाषा सगीतमयता से भी ओतप्रोत है। संगीत भाव को प्रवाहित कर उसे गति प्रदान करता है। भाषा का माधुर्य सगीत, लय तत्व से मिलकर और भी बढ़ जाता है। सरस, मधुर शब्दो से सगीतमयता लाने के साथ ही प्रसाद ने छन्द, क्रम से भी सहायता ली। शृगार, रूपमाला, सार आदि पिंगलशास्त्र के छन्दो का प्रयोग करने के अतिरिक्त कवि ने सोलह तथा चौदह मात्राओ के विराम से बनने वाला तीस मात्रा का ताटंक छन्द भी लिया है। 'चिन्ता', 'आशा', 'स्वप्न', 'निर्वेद' आदि मे इनका प्रयोग हुआ। श्रद्धा के प्रत्येक चरण मे सोलह मात्रा का शृगार छन्द है। क्रम में ऽ। के स्थान पर ।ऽ भी मिल जाता है। 'काम' 'लज्जा' सर्ग का छन्द सोलह मात्राओ का पदापाद कुलक है जिसके अन्त

म ऽ है । वासना में अत्यन्त प्रसिद्ध छन्द रूपमाला अथवा मदन है। चौदह और दस के विराम से चौबीस मात्राएँ तथा अन्त मे ऽ। का समावेश इसमें होता है । 'कर्म' मे मार छन्द है । 'सघर्ष' में ग्यारह-तेरह के विराम की चौबीस मात्राओ का रोला प्रयुक्त हुआ। 'इडा में गीतो का समावेश है। 'रहस्य', 'ईर्ष्या, और 'दर्शन' के छन्द मे कवि ने मौलिक प्रयोग किया, दो छन्दो को समन्वित कर दिया गया। 'आनन्द' में 'आसू' का ही प्रिय छन्द आया है। प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द प्राय प्राप्त होता है, किन्तु भाव प्रवाह के लिये कवि ने उसमें परिवर्तन भी किया। 'निर्वेद' मेंही श्रद्धा का गीत अन्य से भिन्न है। भाषा की दृष्टि से कामायनी सगीतात्मकता, लाक्षणिकता, चित्रमयता, माधुर्य से सम्पन्न है, जो काव्य की सौन्दर्य वृद्धि मे सहायक होते है। सस्कृत शब्दो के होते हुये भी भाषा अपने माधुर्य को वनाये रखती है ।

कलाकार अपनी अभिव्यक्ति के लिये किसी प्रणाली को ग्रहण करता है। रस सचार मे कवि किसी पद्धति अथवा शैली की सहायता लेता है। प्रतीको के सहारे भाव-प्रकाशन की प्रणाली किसी दार्शनिक प्रतिपादन में अपनाई जाती है। कवि किसी दर्शन अथवा सिद्धान्त को प्रतीको के माध्यम से व्यक्त कर देता है। अनेक धार्मिक तथा उपदेशक कवि इन्ही के द्वारा सत्य का निरूपण करते है। साम्प्रदायिक काव्य की रचना प्रतीको के आधार पर होती है। कवीर ने आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध की व्याख्या वहुरिया-दुलहा तथा अन्य प्रतीको द्वारा प्रस्तुत की। सिद्धान्त प्रतिपादन मे रसानुभूति मे वाधा पडती है, पूर्ण रसोद्रेक नही हो पाता। प्रतीक की भाति रूपक समास, अन्योक्ति आदि की शैली भी काव्य के रूप पर एक प्रकार का आवरण डाल देती है। डिक्सन अन्योक्ति को महाकाव्य के अनुरूप नही मानता[२९]। काव्य-वैभव अपने नैसर्गिक स्वरूप में प्रस्तुत नही हो पाता। उसका सौन्दर्य अचल मे छिपकर रह जाता है। भावो पर आरोपित बौद्धिकता उसके रस-सचार को मन्थर कर देती है। कविता का सुन्दर सरस रूप स्वाभाविक, सहज शैली में ही देखने को मिलता है। एक वेगवती धारा की भाति उछलती-कूदती कविता कूल-कछारो को रसमय करती चलती है, अन्त में सागर का-सा औदात्य, गाम्भीर्य उसमे आ जाता है। महान कवि अपने काव्य को सहज और स्वाभाविक शैली के माध्यम मे प्रस्तुत करते है[३०]। कालिदास के रघुवश की महान कल्पना, मेघदूत की घनीभूत भावना ही काव्य को उच्चतम भावभूमि पर ले जाती है। प्रसाद की कामायनी भी महान काव्य

२९ English Epic and Heroic Poetry-W M Dixon-P 312

३० Principles of Literary Criticism, page 130

की भाति भावभूमि की सहज शैली से निर्मित है। काव्य अपनी सरसता को लेकर प्रवाहित होता रहता है, दर्शन और चिन्ता अन्त सलिला की भाति उसी के साथ चलते है। भाव, विचार सभी एकरस होकर रस-सचार तथा आनन्द सृष्टि मे सहायक होते है। 'सारस्वत कवि' की वाणी मे निर्झर का सा नैसर्गिक वेग होता है। पाश्चात्य विद्वानो की भी धारणा है कि कवि स्वयम् शैली की रचना कर लेता है, शैली उसका निर्माण नही करती। कामायनी की शैली किसी परम्परागत पद्धति का अनुसरण नही करती। प्रसाद ने अपनी उदात्त कल्पना, प्राजल अभिव्यक्ति से उसकी सम्पूर्ण योजना का निर्वाह किया। काव्य मे गीतिमयता का ग्रहण 'कामायनी' मे अधिक मिलता है। गीति और सगीत तत्व का उसमे समावेश है। माधुर्य गुण सम्पन्न भाषा भावो की लहर पर लहर उठाती चलती है। उसमे नाटकीय शैली का भी पर्याप्त अवलम्ब ग्रहण किया गया। मनु और श्रद्धा के मन मे उठनेवाली भावनाये और विचार मूर्तिमान होकर सवाद रूप मे प्रस्तुत हुये। इसके अतिरिक्त पात्रो के पारस्परिक कथोपकथन कथानक को गतिमान करते है। श्रव्यकाव्य होकर भी 'कामायनी' की नाटकीयता उसके सौन्दर्य सवर्द्धन मे सहायक हुई। महान कलाकारो की सी स्वच्छदता कामायनी मे दिखाई देती है। कवि की कल्पना और कारयित्री प्रतिभा अपनी सहज और स्वतन्त्र गति मे चल पडती है। कथावस्तु से लेकर भावाभिव्यक्ति तक प्रसाद की कामायनी अपने इस काव्याधिकार का प्रयोग करती है। उसमे कवि के व्यक्तित्व की छाया है। मनु का स्वाभाविक रूप, श्रद्धा की उदात्त कल्पना, काम, कर्म आदि की व्यावहारिक परिभाषा उनकी स्वतन्त्र कल्पना का परिणाम है। अभिव्यक्ति के क्षेत्र मे सुन्दर उपमानो का बाहुल्य दिखाई देता है। भाव, भाषा, शैली सभी मे 'कामायनी' एक मौलिकता से अनुप्राणित है। उसकी काव्यात्मक शैली मे छायावाद की समस्त विभूतियो को कवि ने एक महान कलाकार की भाति सगृहीत कर दिया। वह इस युग का प्रतीक बन गई, जो कला और जीवन के सामजस्य मे प्रयत्नशील रहा। युग की चेतना 'कामायनी के कलेवर मे प्रस्तुत हुई।

महाकाव्यत्व—

महाकाव्य विशेष काव्य-रूप तथा शैली का बोधक है। पश्चिम मे महाकाव्य का स्वरूप सर्वप्रथम सकलनात्मक प्रणाली पर आरम्भ हुआ। परम्परा से बिखरी हुई सामग्री का उपयोग कलाकार महाकाव्य मे कर लेता था। युग की समस्त वस्तु का समाहार उसमे हो जाता था। यूनान मे होमर के इलियड और ओडिसी महाकाव्यो मे राष्ट्रीय जीवन को एक सूत्र मे बाधा गया। दो जातियो

और सस्कृतियो के सघर्ष को उसमे प्रधानता मिली। वीरगाथा युग से दोनों ही महाकाव्य अनुप्राणित हैं। ट्राजन युद्ध की परम्परागत कथा का प्रयोग होमर ने किया। इलियड से आडिसी में अनेक परिवर्तन दिखाई देते है। प्रथम दुखान्त नाटक के अधिक समीप है, तो द्वितीय वर्णनात्मक उपन्यास की भाति है। होमर के महाकाव्य आरम्भिक रूप में सर्वोत्कृष्ट है। इलियड, आडसी के रूप में महाकाव्य का प्राचीनतम वैभव सुरक्षित है। होमर का ससार आज भी अपनी व्यक्तिगत विशेषताओ से समन्वित है। आगे आनेवाली महाकाव्य परम्परा को उसने प्रभावित किया। यूनान की भाति लैटिन में भी महाकाव्य राष्ट्रीय गीत के रूप में स्वीकृत हुआ[२८]। वर्जिल का महाकाव्य 'इनीड' सुन्दर महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया। दान्ते अपनी 'डिवाइना कामेडिया' में इसी को अपना गुरु स्वीकार करता है। कामेडिया की विशद-योजना, वर्णन विदग्धता ही उसका प्राण है। यमपुरी, वैतरणी और स्वर्ग के अन्तर्गत अनेक वस्तुओ का वर्णन तथा कार्य परिणाम दिखाया गया। मनुष्यात्मा की स्वर्ग यात्रा ही उसका उद्देश्य है। सभ्यता के विकास के साथ ही महाकाव्य के स्वरूप मे भी परिवर्तन होता गया। होमर के सकलनात्मक तथा जातीय महाकाव्यो के स्थान पर वर्जिल का 'इनीड' ही आगे आने वाले कवियो का आदर्श वन गया। अँग्रेजी साहित्य मे 'व्यूवुल्फ' वीर-युग मे प्रभावित महाकाव्य प्राप्त होता है। जर्मनी में 'नेवुलनगेनलीड', स्कैन्डीनेविया मे 'वाल्सगा मागा' स्पेन में 'सिड' आदि अनेक महाकाव्य वीर युग मे प्रभावित है।

यूरोप के इतिहास में सभ्यता के केन्द्रो मे परिवर्तन देखा जाता है। यूनान, रोम से होती हुई सस्कृति इगलैण्ड पहुँची। वहा के केल्ट्स ने रोमन सभ्यता लगभग अगीकार कर ली। कुछ समय तक आयरलैण्ड मे एक ही कथा-वस्तु को लेकर अनेक कहानिया चलती रहीं। अँग्रेजी मे 'व्यूवुल्फ' की वीरता के स्थान पर एक परिवर्तित धार्मिक दृष्टिकोण कैडमन की रचनाओ मे प्राप्त हुआ। 'जेनेसिस', 'डेनियल' आदि उसकी रचनाओ मे धार्मिक प्रवृत्तिया कार्य करती है। देवदूतो का पतन आदि भी उसमे वर्णित हुआ। जर्मनो के प्रवेश के साथ ही इगलैण्ड पर फ्रान्स का भी प्रभाव पडा। रोमास की प्रवृत्तियो का समावेश काव्य में होने लगा। वर्णनात्मक प्रणाली की प्रधानता का स्थान भाव-प्रदर्शन को प्राप्त हुआ। नारी प्रेम काव्य के नवीन विषय रूप मे गृहीत होने लगा। धर्म, वीरता के साथ ही नारी को भी स्थान मिला[२९]। यशस्वी सम्राट् आर्थर

---

२८ Narrative Verse-Introduction page 8

२९ A Critical History of English Poetry by Grierson, page 8

के व्यक्तित्व ने कवियो को अनुप्राणित किया। फ्रान्स की रचनाये अंग्रेजी में भी अनूदित होकर आई। 'रिचर्ड कर दि लिआन' (सिंह हृदय-रिचर्ड) आदि का निर्माण हुआ। सभ्यता के विकास के साथ साहित्य की सीमायें भी व्यापक होती गई। यूनानी और लैटिन प्राचीन महाकाव्यो के अनुवाद प्रकाशित हुये। विद्वानो को होमर की 'आडिसी' मे भी रोमास की प्रवृत्तिया दिखाई दी। यूनानी महाकाव्य के वैभव ने कवियो को नवीन प्रेरणा दी। 'इनीड' और 'डिवाइन कामेडी' का अलौकिक तत्व रहस्यमय उद्भावनाओ मे सहायक हुआ। अंग्रेजी की आने वाली महाकाव्य परम्परा एक ओर यदि होमर, वर्जिल, दान्ते तथा रोमास से अनुप्राणित हुई, तो साथ ही उसने नवीन जीवन दर्शन को भी स्थान दिया। चौदहवीं शताब्दी में कवि पिता चासर ने साहित्य मे नवीन उपकरणो के साथ प्रवेश किया। 'कैन्टरबरी टेल्स' महाकाव्य की नवीनतम प्रवृत्तियों का परिचायक था। मध्ययुगीन वातावरण और परिस्थिति का अकन करते हुये कवि ने उसमें कलात्मक सौष्ठव को भी प्रतिष्ठित किया। प्रत्येक चरित्र मे उसने युग की नई चेतना निहित कर दी। भाषा की दृष्टि से उसने अंग्रेजी को सम्पन्न बनाया। यूनान, इटली और फ्रान्स के प्रभावो के होते हुये भी चासर ने अंग्रेजी काव्य को प्रथम बार मौलिकता से सम्पन्न किया और उसका 'कैन्टरबरी टेल्स' महाकाव्य स्वतन्त्र पद्धति पर निर्मित हुआ। इसी के पश्चात स्पेन्सर सोलहवीं शताब्दी के प्रमुख कवियो में आता है। उसकी अपूर्ण कृति 'फेयरी क्वीन' महाकाव्य की रूपरेखा के अधिक समीप है। इटैलियन कवि ऐरिआस्टो, टैसो मे भी भी उसने प्रेरणा ली। रोमाण्टिक महाकाव्य के रूप में 'फेयरी क्वीन' कला की अपेक्षा भाव तथा विचार का प्रतिपादन अधिक करती है। कवि उसके द्वारा एक उदात्त भावना का प्रसार चाहता था। स्पेन्सर ने 'भूमिका' मे ही अपने लक्ष्य का सकेत कर दिया। उसकी सश्लिष्ट योजना में पात्र ऐतिहासिक तथा आध्यात्मिक अर्थ से समन्वित है। सम्पूर्ण रूपक विधान के मूल मे विचार प्रकाशन की भावना है[१०]। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य मे मिल्टन का 'पैराडाइज लास्ट' महाकाव्य का एक उदात्त स्वरूप सम्मुख प्रस्तुत करता है। यूनान की प्राचीन परम्परा मे यह महाकाव्य कतिपय अशो तक प्रभावित है। वर्जिल की 'अलौकिक शक्ति' को मिल्टन ने भी ग्रहण किया। उसके प्रमुख पुरुष और नारी पात्र अपने सम्पूर्ण शक्ति तथा सौन्दर्य मे अकित हुये[११]। आदम-ईव मे उसने मानवीय

---

१०. A History of English Literature by Legouis, Cazamian, page 280

११ English Critical Essays-CCXL P 283.

भावनाओ को चित्रित करने का प्रयत्न किया। एक 'सर्वशक्तिमान' ही उन दोनो का पथ प्रदर्शन करता रहता है। शैतान बीच में व्यवधान प्रस्तुत करता है। 'पैराडाइज लास्ट' क्लासिक परम्परा की अन्तिम कृतियो में है। इसके पूर्व ही शेक्सपियर ने अपने मनोवैज्ञानिक विश्लेपण तथा मानवतावाद से सम्पूर्ण साहित्य को प्रभावित कर दिया था। महाकाव्य की परम्परा पर उसका पर्याप्त प्रभाव पडा। जर्मनी में गेटे के फाउस्ट ने नाटक के द्वारा ही एक नवीन आदर्श को प्रस्तुत किया। पैराडाइज लास्ट के पश्चात महाकाव्यो का एक अधिक स्वतन्त्र, भावात्मक स्वरूप अँग्रेजी साहित्य में आया। उसमें वर्णन की अपेक्षा भाव-प्रकाशन का अधिक आग्रह था। व्यापकत्व की अपेक्षा घनीभूत विचारणा पर जोर दिया गया। महाकाव्य की रूपरेखा के समीप होने वाली इन प्रबन्ध कविताओ में जीवन के तत्व अधिक मात्रा मे आते गये। कीट्स की 'एन्डिमियन', शैली की 'प्रोमेथियस अन्वाउड', कालरिज की 'दि ऐनशियेन्ट मैरिनर' आदि कवितायें महाकाव्य के नये रूप मे प्रस्तुत हुई।

पश्चिम मे काव्यशास्त्र के प्रमुख विचारक अरस्तू ने दुखान्त नाटक तथा महाकाव्य को एक दूसरे के समीप प्रस्तुत किया। उसने होमर को अपना आदर्श बनाया[३२]। उसके अनुसार महाकाव्य मे क्रिया-व्यापार की एकता आवश्यक है। उसमे आदि, मध्य और अन्त की अपेक्षा है। महाकाव्य की महानता के विषय मे अरस्तू का विचार है कि कवि को स्वयम् अधिक न बोलना चाहिये। उसमें अलौकिक तत्व का समावेश भी सम्भावित रूप मे ही किया जाये। किसी महान सत्य का उद्घाटन ही महाकाव्य का विषय हो सकता है। अपने काव्यशास्त्र के अन्त में दुखान्त नाटक और महाकाव्य का समन्वय करते हुये उसने दोनो को ही काव्य का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप निर्धारित किया। दोनो ही अनुकरण पर आश्रित है। दुखान्त नाटक का क्षेत्र जनसामान्य के मनोरंजन की दृष्टि से अधिक विस्तीर्ण है। महाकाव्य का आनन्द केवल सुशिक्षित वर्ग ही उठा सकता है। यदि महाकाव्य अधिक परिष्कृत सृष्टि है, तो दुखान्त नाटक मे महाकाव्य के समस्त तत्व विद्यमान रहते है[३३]। अरस्तू महाकाव्य को महान, उदात्त, व्यापक

---

३२ Aristotle's Poetics, page 93

३३ "Epic poetry is addressed to a cultivated audiance do not need gesture, tragedy to an inferior public It has all the epic elements "
Aristole's Poetics, page 109

व्यापार मानता है, जिसमें गाम्भीर्य, वर्णनात्मकता, सरस, सजीव शैली, एक छन्द, सम्पूर्ण कार्य, आदि, मध्य, अन्त, गौरवान्वित चरित्र, सम्भाव्य कथा तथा जीवन की व्यापक अभिव्यंजना हो। अरस्तू के पश्चात लाजीनियस, केवल रमणीयता के निकट ही आकर रह गया। लैटिन में सिसरो ने अलंकार पर ध्यान दिया। होरेस ने कार्य को महत्व प्रदान किया। स्वयम् कवि दान्ते अभिव्यक्ति का पक्षपाती था। आगे आने वाले काव्यशास्त्र के विचारकों ने महाकाव्य पर विशेष दृष्टिपात नहीं किया। क्रोचे, हीगेल, कालरिज, स्पेन्सर, शेली, टालस्टाय आदि काव्य के आन्तरिक स्वरूप पर ही विचार करते रहे। आधुनिक युग में अँग्रेजी के प्रसिद्ध विचारक एबरक्राम्बी ने महाकाव्य की विवेचना प्रस्तुत की। उसके अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु बिखरी हुई होती है जिसका प्रत्येक अंश सौन्दर्यमय होता है। महाकाव्य इन सभी का संग्रह बड़ी कुशलता से करता है। होमर की ट्राय घटनायें इसका प्रमाण है। महाकाव्य युग की सामाजिक स्थिति की अवहेलना नहीं कर सकता। महाकाव्य के रचयिता के लिये शक्तिशाली किन्तु सन्तुलित, नियन्त्रित कल्पना, कृतत्व शक्ति, वस्तुओं के महत्व की अन्तर्दृष्टि का होना अपेक्षित है। शब्दों पर उसका अधिकार होना चाहिये[३४]। एबरक्राम्बी की धारणा है कि प्रत्येक युग में महाकाव्य की धारा लगभग समान ही रही, यद्यपि उसमें विकास होता गया। जीवन के सार्वभौमिक चिरन्तन सत्य का ग्रहण महाकाव्य की प्रमुख विशेषता है। महाकाव्य का रचयिता किसी भी विषय को लेकर उसमें जीवन की समस्याओं को प्रतिपादित कर लेता है। उसने महान नाटक तथा महाकाव्य के उद्देश्य में अधिक अन्तर नहीं माना। दोनों जीवन के विस्तृत रंगमंच पर ही अपना निर्माण करते हैं। नाटक की घनीभूत भावना तथा महाकाव्य का व्यापकत्व एक ही लक्ष्य तक जाते हैं। साहित्यिक और प्रामाणिक दो विभाजन भी उसने किये। संसार के सभी महान महाकाव्य अपने समय की चेतना से सम्बद्ध होते हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति, समस्या का विश्लेषण उनमें रहता है[३५]। एबरक्राम्बी के मत में विषय की वास्तविकता, कथा की एकता, अनुभूति का केन्द्रीकरण, व्यापक दृष्टि, उदात्त चरित्र, परिष्कृत शैली, सार्वभौमिक उद्देश्य ही

---

३४ "Vigorous but controlled imagination, formative power, insight into the significance of things, these are the qualities which a poet must eminently possess ---The real difference of the Poet is his command over the secret magic of words."
—The Epic, page 35.

३५ The Epic page 88

महाकाव्य के प्रधान गुण होते है। डब्ल्यू० एम० डिक्सन ने महाकाव्यो का स्वरूप सर्वत्र एक ही समान माना। मानवीय भावनाओ की एक रूपता के कारण ससार के सभी विशिष्ट महाकाव्य वर्णनात्मक, प्रौढ, होते है। उनमें महान कार्य, उदात्त चरित्र, सुन्दर शैली, होती है[१६]। पश्चिम में महाकाव्य के रचयिता और महाकवि को एक दूसरे के समीप प्रस्तुत किया गया। किसी भी महान काव्य की विशेषतायें महाकाव्य में प्राप्त हो जायेंगी। सच्चा महाकाव्य ही महान काव्य का परिचायक है।

भारतीय महाकाव्य--

वेदो को समस्त भारतीय ज्ञान के उद्गम रूप म स्वीकार किया जा सकता है। इस विशाल पर्वत श्रेणी से सभी ज्ञान धारायें फूटती दिखाई देती हैं। महाकाव्य का आभाम भी वेद, पुराण आदि के वर्णनात्मक, सवादपूर्ण, सरस आख्यानो में प्राप्त होता है। विशेपतया पुराणो मे सृष्टि का विनाश-निर्माण, मनु का कथानक आदि महाकाव्य की रूपरेखा के अधिक समीप हैं[१७]। महाकाव्य का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप सस्कृत के रामायण और महाभारत में प्रस्तुत हुआ। आदिकवि वाल्मीकि की नैसर्गिक भाव धारा द्रवीभूत होकर फूट पडी थी। करुणा की धारा अन्तरतम में प्रवाहित होती रहती है, और उसका अन्त भी निर्वेद, शान्ति में ही होता है। देवासुर सग्राम के रूप में राम-रावण का युद्ध प्रस्तुत किया गया। जीवन में देवी और आसुरी वृत्तियो का यह द्वन्द्व निरन्तर चलता रहता है। कवि अन्त में देवी प्रवृत्तियो की विजय घोपित करता है। यहा पर सत्य, करुणा, धर्म, न्याय सभी जीत जाते है। रामराज्य की स्थापना भी होती है। इहलोक में अपना कर्त्तव्य कर राम परलोक को प्रस्थान करते हैं। सात सर्गो की कथा लगभग चौवीस हज़ार श्लोको में सुसम्बद्ध रूप में प्रस्तुत हुई। कवि का प्रकृति निरूपण तो अत्यन्त ही सजीव हुआ। रामायण एक ऋपि के जीवन मन्थन की सरस अभिव्यक्ति है। इसी के पश्चात महाभारत अधिक व्यावहारिक रूप का प्रतिपादन करता है। भौतिक समस्यायें प्रवल हो उठती है, भाई-भाई ही सघर्ष करते है। कथा का रूप ऐतिहासिक तथा पौराणिक अधिक हो गया। आरम्भ में ही पात्रो का परिचय प्राप्त हो जाता है। अठारह

---

१६ English Epic and Heroic Poetry-W M Dixon, p. 24

२० 'These songs in praise of men probably soon developed into Epic poems of considerable length'

A History of Indian Literature Vol I, Winternitz, page 314.

पर्व अनेक अध्यायों में विभाजित हैं। अपने विशाल आकार में महाभारत ने सम्पूर्ण इतिहास को एकसूत्र में बांधने का प्रयत्न किया। वर्णनात्मक शैली के साथ स्वर्गारोहण पर्व' के द्वारा महाकाव्य की समाप्ति मुक्ति-स्थापना के अनुरूप हुई। महाभारत में उज्ज्वल चरित्रों का समावेश भी है। होमर की सी वर्ण-विदग्धता व्यास में है लौकिक संस्कृत में अश्वघोष का बुद्धचरित आता है। कालिदास में महाकाव्य का कलात्मक विकास अपनी सर्वोत्कृष्टता को पहुँच गया। पूर्व कवियों का सा जीवन के प्रति केवल दार्शनिक अथवा धार्मिक दृष्टिकोण उनमें न था। भारत के स्वर्णयुग के इस कलाकार में युग का समस्त वैभव, प्रतिभासित होता है। शृंगार और प्रेम से भरा काव्य सौन्दर्योन्मुख प्रतीत होता है। जीवन के आदर्श की अपेक्षा सौन्दर्यवादी कालिदास आनन्द का अधिक निरूपण करते हैं। 'रघुवंश' के उन्नीस सर्गों की कथायोजना, 'मेघदूत' की आन्तरिक अभिव्यंजना, 'कुमारसम्भव' के देवत्व का मानवीय प्रतिपादन अपनी सम्पूर्ण गरिमा, कला-कौशल और अलंकरण में प्रस्तुत हुए। कालिदास के देवता भी मानव की भांति प्रेम और यौवन के निकट आ गये। यदि वाल्मीकि में काव्य के आदर्श का चरमोत्कर्ष था, तो महाभारत में कथायोजना का; तथा कालिदास में कला का। देश का परिवर्तित नागरिक जीवन, कला के इसी रूप को अंगीकार कर रहा था। भारवि का 'किरातार्जुनीय', माघ का 'शिशुपालवध', श्रीहर्ष का 'नैषधीय-चरित' आदि अनेक महाकाव्य लौकिक संस्कृत की नवीन रूपरेखा के समीप हैं। कालिदास की परम्परा ने आगे आने वाले महाकवियों को प्रभावित किया। श्री कृष्णमाचार्य ने अनेक महाकाव्यों की सूची प्रस्तुत की है[१८]। क्रमश. देश में धार्मिक पुनरुत्थान के साथ ही महाकाव्यों का निर्माण चरित्र-प्रतिपादन के लिये होने लगा। जैन कवियों ने इसमें प्रमुख योग दिया। इसी के समानान्तर ऐतिहासिक महाकाव्यों की भी धारा चलती रही। इस प्रकार आदि महाकाव्य के अनन्तर ही महाकाव्य की रूपरेखा में पर्याप्त परिवर्तन होता रहा। देवासुर-संग्राम, अलौकिकता, वर्णनात्मकता, विशाल कलेवर के स्थान पर चरित्र-निरूपण, कलात्मक सौष्ठव, सौन्दर्याभिव्यंजना को प्रमुखता मिलने लगी।

संस्कृत काव्यशास्त्र में महाकाव्य प्रबन्ध श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। पर्याप्त काल तक संस्कृत में नाटक की ही दृष्टि से विचार किया गया। भामह ने काव्य के पांच भेदों में 'सर्गबन्ध' को महाकाव्य कहा। उसमें धर्म, अर्थ, काम,

---

१८. History of Classical Sanskrit Literature Chapter III

मोक्ष चतुर्वर्ग प्राप्ति का विधान होता है। नाटक की समस्त सधियां भी उसमे रहती है। महान चरित्र, अलकार, रस आदि उसके कलेवर को सौन्दर्यमय करते है। वर्णन मे आक्रमण, युद्ध, प्रकृति, राजदरबार आदि आ जाते है। लोक-स्वभाव को लेकर महाकाव्य नायक की विजय भी प्रदर्शित करता है[३९]। भामह की महाकाव्य की परिभाषा कुछ समय तक प्रचलित रही। स्वयम् छठी शताब्दी में दडी ने अपने 'काव्यादर्श' मे अधिक परिवर्तन नही किये। सर्गबन्धता, चतुर्वर्ग प्राप्ति, चतुर उदात्त नायक, नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय का प्रकृति वर्णन, उसने भी स्वीकार किया। उसने काव्य के आरम्भ में आशीर्वाद, देवनमस्कार, कथा-वस्तु-सूचक पद्यो का भी समावेश किया। पर्याप्त आकार अलकार, रस, भाव के साथ ही भामह ने 'लोकरजन' महाकाव्य का प्रधान गुण बताते हुए उसे कल्पान्तरस्थायी कहा—

सर्वत्रभिन्नवृत्तान्तै रूपेत लोकरजकम्।
काव्य कल्पान्तरस्थायि जायेत सदलकृति[४०] ॥

रुद्रट का 'काव्यालकार' (१६।७) हेमचन्द्र का 'काव्यानुशासन', तथा 'अग्नि-पुराण', 'सरस्वती कण्ठाभरण' आदि में लगभग इन्ही लक्षणो की पुनरावृत्ति प्राप्त होती है। पन्द्रहवी शताब्दी में आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण मे महाकाव्य पर विस्तार से विचार किया। उनके अनुसार सर्गबन्ध महाकाव्य में नायक कोई देवता, उच्चकुलीन क्षत्रिय, धीरोदात्त गुणसम्पन्न हो। वश का कुलीन राजा हो तो नायक अधिक भी हो सकते है। शृगार, वीर अथवा शान्त का अगी रस होकर आना अनिवार्य है, अन्य रस सहायक होकर आयें। उसमें नाटक की सन्धियो का भी विधान रहे। कथानक ऐतिहासिक हो अथवा सज्जन का चरित हो। चतुर्वर्ग फल ही उसका लक्ष्य हो। आरम्भ में ही नमस्कार, ईश्वर-प्रार्थना, आशीर्वाद तथा कथावस्तु का निर्देश भी हो जाय। कही खल-निन्दा तथा साधु का गुण कीर्तन भी किया जा सकता है। एक वृत्त में एक ही पद्य का प्रयोग उचित है। न अत्यन्त अल्प, न अति दीर्घ कम से कम आठ सर्ग रहे, जिनके अन्त में ही छन्द का परिवर्तन किया जाय। वही पर आगामी कथा, तथा भावी सर्ग की सूचना भी दे देनी चाहिये। सन्ध्या, सूर्य, इन्दु, रजनी, प्रदोष, अन्धकार, दिवस, प्रात, मध्यान्ह, मृगया, शैल, वन, सागर, सभोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग पुर, यज्ञ, रण, प्रयाण, विवाह, मत्रणा, पुत्र जन्म आदि का वर्णन सागोपाग

---

३९ काव्यालकार, भामह—१।१८-२३

४० काव्यादर्श, दडी—१।१४-१९

हो। अन्त में महाकाव्य का नामकरण कवि, कथानक, नायक अथवा किसी अन्य पात्र के नाम पर रहे, किन्तु सर्ग का नामकरण वर्णित वस्तु के आधार पर ही हो[४१]। इस प्रकार महाकाव्य के प्रमुख लक्षणो के विषय में अधिकाश लक्षणकार एकमत है। संस्कृत काव्यशास्त्रियों के आधार पर सर्गबन्धता, उदात्त नायक, प्रसिद्ध कथा, रस निष्पत्ति, सरस शैली, महान् उद्देश्य, सजीव वर्णन, तथा अलंकार आदि को महाकाव्य का लक्षण स्वीकार किया जा सकता है।

हिन्दी के महाकाव्य का प्रथम स्वरूप 'पृथ्वीराजरासो' में प्राप्त होता है। विश्व महाकाव्य के प्राचीनतम रूप की भांति वह भी संकलनात्मक है। 'रासो' की सम्पूर्ण काव्य परम्परा मे 'पृथ्वीराजरासो' प्रबन्धात्मकता तथा महाकाव्यत्व के सबसे अधिक समीप है। सम्पूर्ण कथा प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुष पृथ्वीराज को केन्द्र मानकर चलती है। नायक अपने प्रतिद्वन्दी की हत्या भी कर देता है। कवि इतिहास और काव्य का निर्वाह साथ ही करना चाहता है। उसके विशाल कलेवर में वर्णनो का बाहुल्य है। चन्द ने नायक को वीरता मे भर दिया। छन्दो के अनेक रूप भी उसमें मिलते है। आरम्भ में वन्दनायें भी हुईं। क्षेपक का प्रयोग 'रासो' की विशेषता है। भाषा मे भी सम्मिलित स्वरूप है। वीर-काव्य की परम्परा का पालन करते हुये चन्दबरदाई ने पृथ्वीराजरासो में पृथ्वीराज का गुणगान ही अधिक किया। उनका प्रतिपाद्य विषय महिमा-वर्णन था, काव्य नही। इसके पश्चात जायसी के 'पद्मावत' में काव्य के अधिक तत्वो का समावेश हुआ। सूफी मसनवी पद्धति पर लिये गये इस प्रबन्ध मे चरित्र-चित्रण के साथ ही सिद्धान्त निरूपण भी कवि का लक्ष्य रहा। वह साम्प्रदायिक दर्शन से पर्याप्त मात्रा मे प्रभावित था। कवि ने प्रचलित प्रेमाख्यान को काव्य का विषय बनाया। प्राचीन प्रणाली पर प्रासाद, उद्यान, सागर, युद्ध, संयोग, वियोग, बारहमासा आदि का भी समावेश हुआ। प्रकृति में आध्यात्मिक संकेत भी मिलते है। कथा को अत्यधिक मोड देकर उसके शरीर की वृद्धि की गई। वर्णन की दृष्टि से कवि का निरीक्षण अत्यन्त सूक्ष्म दिखाई देता है। भारतीय और विदेशी शैली के समन्वय रूप में ही 'पद्मावत' आया। भारतीय परम्परा का अनुसरण करते हुये भी जायसी ने सूफियो की प्रेम पद्धति का निरूपण किया। नायक रतनसेन तथा नायिका पद्मावती ही प्रमुख रूप में आते है। नागमती, अलाउद्दीन, राघव, हीरामन सुग्गा आदि उन्ही के चरित्र-विकास में सहायक सिद्ध होते है। प्रतीकों का प्रयोग कवि की विशेषता है। प्रबन्ध काव्य के अन्त मे सम्पूर्ण घटना को अलौकिक रूप जायसी ने प्रदान किया। कथानक के समस्त पात्र

---

४१ साहित्यदर्पण—विश्वनाथ ६।३१५-३२४

आत्मा-परमात्मा आदि के प्रतीक रूप ही रह जाते हैं। 'पद्मावत' हिन्दी साहित्य की प्रबन्ध काव्य परम्परा के अधिक समीप होकर आया। मध्ययुग में 'रामचरितमानस' के रूप में हिन्दी को महाकाव्य का आदर्श रूप प्राप्त हुआ। प्रत्येक दृष्टि से वह महाकवि का प्रतिनिधि है। कवि का समस्त आदर्श, तन्मयता, मर्यादा, आत्मसमर्पण उसमें प्राप्त होता है। कवि ने वाल्मीकि से अधिक प्रेरणा ग्रहण की। राम के 'लोक-मंगलकारी' चरित्र का ही उन्होंने अंकन किया। उन्हें 'मर्यादा पुरुषोत्तम' रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। कथा की योजना अत्यन्त सुसम्बद्ध रीति से हुई। काण्ड के आरम्भ में संस्कृत का छन्द भी प्रयुक्त किया गया। काव्य के प्रारम्भ में देवी, देवता, गुरु, ब्राह्मण आदि अनेक महान व्यक्तियों की वन्दना है। 'मानस' जीवन की व्यापक और उच्च भाव भूमि को लेकर प्रस्तुत हुआ। संस्कृत से अधिक प्रभावित होने के कारण भाषा की पूर्ण मंजुलता उसमें आ गई। अवधी की सम्पूर्ण सरसता उसमें विद्यमान है। अधिकांशतया दोहा का प्रयोग करते हुये भी सोरठा, सवैया आदि भी बीच में आये। शैली की दृष्टि से सुन्दर उपमाओं, स्वाभाविक अलंकारों की भी उसमें योजना है। चरित्र निरूपण और रस निष्पत्ति तो मानस का प्राण है। जीवन की अनेक परिस्थितियों में उठने वाले मानवीय भावनाओं को तुलसी ने चित्रित किया। राम का आदर्श भरत का भ्रातृत्व, सीता का सतीत्व, सभी उसमें निहित हुये। संस्कृत का देवासुर संग्राम भी अपनी छाया लेकर आया। तुलसी ने स्वयम् इसे विचित्र प्रबन्ध कहा[४२]। महान आदर्श, सार्वभौमिक सत्य, सुन्दर अभिव्यंजना, उदात्त चरित्र, भक्ति भाव सभी को लेकर मानस ने राम के आलम्बन में भक्ति का नवीन आदर्श प्रस्तुत कर दिया। हिन्दी महाकाव्य का आदर्श रूप उस में सम्मुख आया। रीतिकालीन युग में केशव की 'रामचन्द्रिका' अपने अलंकारों को लेकर आई। अपने आचार्यत्व का प्रकाशन उन्होंने काव्य में किया। काव्यशास्त्र की परम्परा और लक्षण का अनुसरण करने का प्रयत्न उसमें देखा जा सकता है। राम के अत्यन्त प्राचीन आख्यान को आधार बनाकर भी उन्होंने राजनैतिक पुट दिया। समस्त उन्तालीस प्रकाश छन्द और अलंकार की विदग्धता से परिपूर्ण है। कवि रीतिकालीन नख-शिखवर्णन, षड्ऋतु अंकन में अधिक उलझ गया। रीतिकाल में राजाश्रय में पल्लवित होने वाली काव्यधारा जीवन के विस्तृत रंगमंच पर निर्मित महाकाव्य की ओर अधिक ध्यान न दे सकी। उसके पश्चात सम्पूर्ण साहित्य में ही एक क्षणिक अवरोध आया। इसी की समाप्ति पर आधुनिक हिन्दी काव्य

---

४२ सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबन्ध विचित्र बनाई। बालकांड।

का युग आरम्भ हो जाता है। हिन्दी ने भाव, भाषा, शैली सभी के क्षेत्र मे एक परिवर्तन देखा। बदलती हुई सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियो ने साहित्य को प्रभावित किया। 'प्रियप्रवास' के रूप मे आधुनिक महाकाव्य सम्मुख आया। नवीन युग की मानवीय भावनाए उसमे लक्षित हुई। हरिऔध ने कृष्ण-राधा के अधिक लौकिक स्वरूप का चित्रण किया। यशोदा की पुत्र विह्वलता, कृष्ण की लोकरक्षण भावना, राधा का त्याग सभी अपने युग की सामाजिक स्थिति से प्रभावित है। सस्कृत की कोमलकान्त पदावली को काव्य मे अपनाया गया। कथावस्तु वियोग के समीप घूमते रहने पर भी काव्य का क्षेत्र किंचित व्यापक हो सका। प्रियप्रवास मे खडी बोली की प्रबन्ध काव्य परम्परा की आरम्भिक रेखाये ही मिलती है। मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' आधुनिकता के अधिक समीप था। राम के प्रख्यात नायकत्व के स्थान पर काव्य की उपेक्षिता उर्मिला और भ्रातृत्व के आदर्श भरत का चित्राकन अधिक हुआ। 'नवम सर्ग' मे तो उर्मिला ही उर्मिला दिखाई देती है। परिवर्तित परिस्थिति 'साकेत' मे अधिक स्पष्ट होने लगती है। पात्रो को सामान्य रूप में प्रस्तुत कर 'साकेत' अहिंसा आदि का समावेश भी कर लेता है। रामकाव्य की प्रचलित परपरा ने गुप्त जी की कल्पना नव-उद्भावना की दृष्टि से भिन्न है। एक भावपूर्ण आदर्शवादिता का आभास समस्त काव्य के मूल मे दिखाई पडता है, जो कवि के द्विवेदीयुगीन व्यक्तित्व का परिचायक है। विषय के अतिरिक्त शैली मे भी साकेत किंचित गीतात्मकता लिये हुये है, सस्कृत की समासबहुल भाषा उसमें अधिक नही आने पाई। परम्परापालन के रूप में प्रत्येक सर्ग का आरम्भ राम काव्य के प्रमुख कवि वाल्मीकि, भवभूति, तुलसी आदि की वन्दना से ही होता है। इसी भाति ऋतुवर्णन, प्रकृति निरूपण का भी उसमें समावेश है। युग-चेतना से प्रभावित 'साकेत' हिन्दी का मौलिक महाकाव्य है, जिसमे आधुनिकता का अधिक आभास प्राप्त हो जाता है। द्विवेदी युग में रामचरित चिन्तामणि, सिद्धार्थ आदि कुछ अन्य प्रबन्ध भी लिखे गये, पर उनमें अधिक व्यापक दृष्टि न थी।

हिन्दी में पर्याप्त समय तक सस्कृत के लक्षण ग्रन्थो का अनुकरण हुआ। 'मानस', 'रामचन्द्रिका' आदि महाकाव्य ने किसी न किसी रूप मे सस्कृत लक्षणो प्रभावित है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्य परम्परा पर स्वतन्त्र रीति से अधिक विचार नही किया गया। साहित्य विभिन्न दिशाओ मे प्रवाहित होने लगा, और उसके अनेक मानदण्ड बन गये। तुलसी को आदर्श प्रबन्धकार रूप मे चित्रित करते हुये आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जीवन के नाना व्यापारो की अभिव्यक्ति को

उनकी महानता माना। जायसी के पद्मावत प्रबन्ध काव्य को महाकाव्य रूप में स्वीकार कर 'जीवन के पूर्ण रहस्य को ही उसकी कसौटी माना[४३]। शुक्ल जी की धारणा वहुत कुछ प्राचीन प्रबन्धो पर ही निर्भर है, इसी कारण वे 'कामायनी' मे कोई 'समन्वित प्रभाव' नही पाते। भक्तकवि तुलसी का आदर्श ही उन के सम्मुख था, और जीवन की सघर्षकालीन परिस्थितियो को वे न ले सके। बाबू श्यामसुन्दरदास विषयप्रधान अथवा विषयात्मक कविता के अन्तर्गत महाकाव्य को रखते है। उनके अनुसार उसकी रचना 'आत्मा के किसी उदात्त आशय, सभ्यता या सस्कृति के किसी युगप्रवर्तक सघर्ष अथवा समाज की किसी उद्वेगजनक स्थिति को लेकर होती है। रामायण, महाभारत, रामचरितमानस आदि की कोटि के सच्चे महाकाव्य शताब्दियो मे दो एक लिखे जाते है[४४]।' यह परिभाषा पश्चिम की उस धारणा के अनुकूल है जब वीरयुग मे बिखरी हुई सामग्री को एकत्र कर महाकाव्य की रचना की जाती थी। आधुनिक युग मे आचार्य नन्द-दुलारे वाजपेयी ने 'साकेत' की आलोचना करते समय प्रबन्धात्मकता अथवा सर्ग-बन्धता, गम्भीर शैली तथा वर्णित विषय की व्यापकता और महत्व को ही महा-काव्य के प्रमुख उपादान स्वीकार किया। उनकी धारणा है कि इन्ही के अन्त-र्गत अन्य तत्व भी समाविष्ट हो जाते है। उन्होने महाकाव्य मे जीवन के अनेक स्वरूपो की स्थिति, चरित्र के विभिन्न आदर्श, विविध वस्तु-चित्रण तथा प्रौढ शैली को अनिवार्य विषय माना। उनकी धारणा नवीन जीवन दर्शन, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा परिवर्तित परिस्थितियो के अधिक अनुरूप है। वे आधुनिकतम प्रवृत्तियो को लेकर महाकाव्य की व्याख्या करते है[४५]। प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने महाकाव्य को 'सर्वांगीण प्रभावान्विति' से युक्त बताया और सानुबन्ध कथा, वस्तुवर्णन, भावव्यजना, सवाद को उसके प्रमुख तत्व रूप मे स्वीकार किया। प्राचीन प्रणाली को स्वीकार करते हुये भी वे उसके अक्षरश अनुकरण को आव-श्यक नही मानते। उन्होने आधुनिक प्रबन्धकाव्य—साकेत, कामायनी आदि को 'एकार्यकाव्य' के अन्तर्गत रक्खा, जिसमे जीवन वृत्त का अत्यधिक विस्तार नही है[४६]। उनकी शास्त्रीय व्याख्या में प्रतिबन्ध अधिक है, और साधारण प्रतिभा का कलाकार महाकाव्य के निर्माण में सफल नही हो सकता। वे उसकी अत्य-

---

४३. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृष्ठ ८४

४४ साहित्यालोचन, पृष्ठ ११५

४५ आधुनिक साहित्य, पृष्ठ ५३

४६ वाङ्मय विमर्श, पृष्ठ ३७, ३९

धिक उच्च गरिमा के पोषक है। इस विषय मे स्वयम् रवीन्द्र ने अपनी कविता 'क्षणिका' मे लिखा—

आमिनाव्व महाकाव्य	।	महाकाव्य गेइ अभाव्य
मरचने	।	दुर्घटनाय
छिल मने,—	।	पायेर काछे छडिये आछे
ठेकल कखन तोमार काकना	।	कणाय कणाय
किंकिणीते	।	आमिनव्व महाकाव्य
कल्पनाटि गेल फटि	।	सरचने
हाजार गीते	।	छिले मने ।

'मेरे मन मे नव महाकाव्य रचना की इच्छा थी । अनायास ही तुम्हारे ककण किंकिणि से टकराकर कल्पना सहस्र गीतो मे फूट पडी। इस दुर्घटना से महाकाव्य कण कण होकर तुम्हारे चरणो मे विखर पडा है। महाकाव्य रचना की इच्छा मन मे ही रह गई।'

महाकाव्य की परम्परा मे क्रमश परिवर्तन होते गये। होमर के वीर युग की वर्णनात्मक प्रणाली से आधुनिक आन्तरिक भाव प्रकाशन तक महाकाव्य अनेक स्वरूप ग्रहण कर चुका है। समाज की बदलती हुई परिस्थितियो ने उस पर प्रभाव डाला। वास्तविक रूप मे महाकाव्य एक उदात्त और गम्भीर काव्य रूप की सज्ञा है। सच्चे और सुन्दर महाकाव्य की रचना कोई महाकवि ही कर सकता है, किन्तु केवल किसी भी महाकाव्य की रचना कर महाकवि हो जाना सम्भव नही। सफल महाकाव्य के निर्माण मे महाकवि ही सफल होते है। महाकाव्य की प्रमुख आवश्यकता एक विशाल रगमंच है। कथा के रूप में किसी अनिवार्य समस्या का प्रतिपादन अपेक्षित है। आवश्यक नही कि यह घटना पौराणिक अथवा ऐतिहासिक ही हो, किन्तु उसका सम्बन्ध जीवन के व्यापकत्व से होना अनिवार्य है। चरित्र सृष्टि भी जीवन के व्यापक दृष्टिकोण को लेकर ही होनी चाहिये। पात्रो मे मानवता का ही स्वर रहे। उनमे कवि को प्राण-प्रतिष्ठा करनी पडेगी। आदर्श और उदात्त दोनो ही रूपो मे इसका अकन हो सकता है। कथा तथा चरित्र-समन्वय मे स्वाभाविकता भी अपेक्षित है, जिससे साधारणीकरण सहज ही हो सके। शैली की प्रौढता के अभाव में महाकाव्य की अभिव्यजना सुन्दर नही हो सकती। महान कल्पना, व्यापक दृष्टिकोण के साथ ही मार्मिक अभिव्यजना, सरस प्रकाशन भी आवश्यक है। महाकाव्य का लक्ष्य जीवन की समस्या का समाधान तथा आनन्द सृजन ही हो सकता है। सम्पूर्ण महान साहित्य के उच्चादर्शो से महाकाव्य की रूपरेखा निर्मित होती है। ससार

के महाकाव्यो का सकलन करते हुये सकलनकार ने कहा है—'महाकाव्य मे सुख दुख,सयोग वियोग, गीति तत्व और कथातत्व आदि श्रेष्ठ काव्य के समस्त गुणों का हृदयहारी चित्रण, स्वाभाविक जीवन के मनोरम चित्र तथा आन्तरिक द्वन्द्व हो जिसमे प्रकृति समन्वय उस कुशलता से किया गया हो कि कृति सदा के लिये अमर हो जाय[४०] ।'

कामायनी—

कामायनी हिन्दी महाकाव्य का नवीनतम स्वरूप है। प्रसाद ने उसमे केवल एक विखरी हुई कथा को ही एक सूत्र में नही बाधा, वरन् उन्होने समस्त प्राप्त सामग्री का भी उपयोग किया। कथानक के रूप में 'कामायनी' सम्पूर्ण जीवन को ही लेकर चलती है। मनु मानवता के प्रतीक बनकर आये है, श्रद्धा नारीत्व का प्रतिनिधित्व करती है। प्राचीन आख्यान किसी देश अथवा जाति का चित्र ही प्रस्तुत करते थे। होमर मे यूनान, दान्ते में इटली, मिल्टन में इगलैण्ड के दर्शन हो सकते है। 'कामायनी' देश, काल और जाति की सीमा लाघ गई। वह मानव और उसकी मानवता को ही अपना विषय बना लेती है, यद्यपि उसका रगमच हिमालय और सारस्वत प्रदेश ही है। इस कथानक को कवि ने कल्पना के द्वारा आधुनिकतम रूप प्रदान किया। इतिहास, पुराण मे विखरी हुई कथावस्तु कल्पना से ही नवीन समस्याओ का भी ग्रहण कर लेती है। कामायनी का रगमच अनेक घटनाओ का समन्वय नही है, उसमे कवि केन्द्रीकरण की ओर उन्मुख है। 'रघुवश' की सी वश परम्परा उसमे नही मिलती, किन्तु मानव के शाश्वत उपादानो को उसने दृढता से पकड रक्खा है। 'कामायनी' की कथावस्तु मे ही जीवन का वह व्यापकत्व निहित है, जिसका प्रतिपादन सम्पूर्ण काव्य में किया गया। प्रसाद ने कथा के उस अश को ही ग्रहण किया, जो उद्देश्य-पूर्ति मे सहायक हो। चरित्र-सृष्टि के रूप मे कामायनी अन्य प्राचीन महाकाव्यो की भाति किसी ऐसे प्रसिद्ध पात्र को ग्रहण नही करती, जो वीर हो, वह मनु के रूप मे मानव को ही ले लेती है। उसका नायक मनु अपनी वीरता, शौर्य, ऋषित्व मे आदर्श नायक नही बन जाता। वह जीवन के स्वाभाविक उत्थान पतन मे बढी मानव है, जो सदा अपने लक्ष्य तक जाने के लिये व्यग्र है। प्रसाद ने युगो से चलनेवाले देवासुर सग्राम तथा अलौकिक तत्व को नही ग्रहण किया। देवासुर का बाह्य रूप मनु मे आन्तरिक स्वरूप धारण कर लेता है। मनु की आसुरी वृत्तियो पर दैवी वृत्तियो की विजय नही होती, दोनो मे समन्वय स्थापित

---

४०. The Book of Epic—Preface

हो जाता है। "महाकाव्य का रचयिता मानव के हेतु ही अपने संगीत का प्रकाशन करता है, वह देवताओं के लिये नहीं होता[४८]।" कामायनी का आदि अन्त मानवता में ही आबद्ध है। मानवता उसका रंगमंच है, मानव उसका पात्र, और मानवीय भावनाओं का ही उसमें निरूपण है। श्रद्धा नारी की समस्त कोमलता, सुकुमारता, सहृदयता को लेकर प्रस्तुत हुई। पात्रों के चरित्र-चित्रण द्वारा कवि मानव की स्वाभाविक मनोवृत्तियों का ही अंकन करता है। उसने उन्हें व्यक्तिगत गुणों से अलंकृत नहीं किया। 'कामायनी' के पात्र अपना व्यक्तित्व कवि के उद्देश्य में विलीन करते दिखाई देते हैं। इससे महाकाव्य के पात्रों में एक समानता आ जाती है। वे सार्वभौमिक हो जाते हैं। यही नहीं, मानवता के परिवर्तित रूपों में भी वे चिरन्तन बने रहते हैं। 'कामायनी' के पात्रों की मानसिक अभिव्यक्ति, आन्तरिक प्रकाशन उसे सर्वाधिक व्यापकत्व प्रदान करते हैं। प्राचीन काल में वस्तु वर्णन महाकाव्य का आवश्यक अंग था। वर्णनात्मक शैली पर महाकाव्य चलते थे। प्रसाद ने वाह्य वस्तु वर्णन को अन्तर्मुखी कर दिया। मानवीय भावों के प्रकाशन में ही उन्होंने सम्पूर्ण शक्ति लगा दी। सुख-दुख, आशा-निराशा के अतिरिक्त मन में उठने वाले सभी विचारों का प्रकाशन हुआ। 'कामायनी' अपने मनोवैज्ञानिक निरूपण के कारण ही अधिक भावात्मक तथा अन्तर्मुखी हो गई, उसका वाह्य पक्ष अपेक्षाकृत कम वर्णित हुआ। वाह्य संघर्ष का केवल सांकेतिक रूप में ही कवि ने निर्देश कर दिया किन्तु आन्तरिक प्रकाशन में सुन्दर व्याख्या की। मानवीय मनोभाव अधिक मुखर हो उठे हैं। जीवन की भौतिक समस्याएं भी आभासित हैं, पर उनकी विस्तृत विवेचना न हो सकी। अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों के कारण ही 'कामा-यनी' की शैली भी वर्णनात्मक नहीं है। भावाभिव्यंजना का सरल माध्यम गीति-काव्य है। 'कामायनी' में भी गीतितत्व प्रमुखता पा जाता है। वर्णन प्रधान महाकाव्य में इसका अभाव देखा जाता है। प्रसाद ने अपने भावों के अनुरूप ही इस शैली को अपनाया। गीतात्मक शैली द्वारा महाकाव्य का निर्माण कवि का मौलिक प्रयास है। वर्णनात्मकता की दृष्टि से अपर्याप्त होकर भी 'कामायनी' कलात्मक सौन्दर्य में बहुत आगे बढ़ जाती है। अरस्तू काव्यशास्त्र में महाकाव्य के जिस परिष्कृत रूप की चर्चा करता है, वह इसमें प्राप्त है[४९]। आन्तरिक

---

४८ It is of man, and men's purpose alone in the world, that the Epic Poet has to sing, not of the purpose of Gods.
The Epic, page 55

४९. Aristotle's Poetics, page 109

सूक्ष्म भावो को वहन करने के लिये प्राजल, चित्रमय भाषा की आवश्यकता होती है। 'कामायनी' का शब्द चयन अपनी सम्पूर्ण सुन्दरता में प्रस्तुत हुआ। सौन्दर्याकन के समय वह सजीव हो उठती है, प्रतीको को ले आती है। उसमे शिथिलता नही दिखाई देती, जो महाकाव्य की मर्यादा के अनुकूल न हो। किन्तु वह अलकरण से भरी हुई भी नही है कि भाव प्रवाह मे किसी प्रकार का व्यवधान प्रस्तुत करे। प्रसाद ने एक सफल शब्दशिल्पी की भाति 'कामायनी' मे चित्र प्रस्तुत किये। भारतीय साहित्यशास्त्र महाकाव्य मे कतिपय नाटकीय तत्वो के भी समावेश की आवश्यकता स्वीकार करता है। विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' मे नाटकीय सन्धियो की भी चर्चा की। 'कामायनी' मे कथा विकास की दृष्टि से मनु की मुमूर्ष अवस्था ही काव्य का अन्त हो सकती थी। ऐसी दशा मे वह दुखान्त होती। प्रसाद ने अपने दार्शनिक प्रतिपादन तथा आनन्द निरूपण के लिये अन्तिम सर्गो की उद्भावना की। श्रद्धा का भी महत्व बढ जाता है। 'कामायनी' की वह कल्पना 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के अधिक समीप है। कालिदास भी दुखान्त का चरम विकास दिखाकर अन्त में मिलन से ही नाटक की परिसमाप्ति करते हैं। कामायनी मे नाटक की सवाद शैली का पर्याप्त समावेश है। महाकाव्य मे सत्य का आग्रह अधिक होता है[१०]। वास्तविकता के द्वारा उसे रस-सचार मे भी सहायता प्राप्त होती है। प्राचीन महाकाव्यो में इसी कारण इतिहास अथवा पुराण की किसी प्रसिद्ध घटना को ही काव्य का विषय बनाया जाता था। पूर्वपरिचित कथानक के प्रति एक पूर्वानुराग भी बना रहता है। 'कामायनी' की ऐतिहासिक, पौराणिक कथा वेद, पुराण, ब्राह्मण आदि अनेक ग्रन्थो मे बिखरी हुई मिलती है।

महाकाव्य की परम्परा स्वयम् प्रमाणित करती है कि इस व्यापक माध्यम मे कवि अपने समस्त चिन्तन और अनुभव का प्रकाशन चाहता है। छोटे छोटे गीत खडो मे एक ही भावोच्छ्वास गूजता रहता है। खडकाव्य जीवन के किसी अश का चित्रण करता है, किन्तु महाकाव्य की व्यापक सीमा में समग्र जीवन को लिया जा सकता है। जीवन की प्रत्येक प्रहेलिका का उत्तर साधारण हिन्दी पाठक तुलसी के 'मानस' मे खोजता है। महाकाव्य की यह सामाजिक उपादेयता उसके विस्तृत प्रचार मे सहायक होती है। वह जन-जन का काव्य हो जाता है। महाकाव्य का अन्य रूप कलात्मक दृष्टि से अधिक परिष्कृत महाकवि निर्मित करते है। मिल्टन, कालिदास, वाल्मीकि, प्रसाद की कला इतनी महान है

---

१० The Prime material of the Epic Poet must be real
The Epic, page 44

कि साधारण धरातल पर उसका प्रचार सम्भव नहीं। योरप में दान्ते की 'डिवाइन कामेडी' की विलक्षण कथाओ का आनन्द सामान्य जनता भी उठा लेती है, किन्तु 'मिल्टन' सुशिक्षित वर्ग का कवि है। महाकाव्य के अधिक कलात्मक रूप का निर्माण युग के अनुकूल होता है। प्रसार की दृष्टि से महाकाव्य के इन दो स्वरूपो में अन्तर हो सकता है किन्तु दडी का कथन है कि सभी महाकाव्य के रचयिता लोक रजन करते हुये कल्पान्तरस्थायी होते है[51]। इस दृष्टि से वाल्मीकि, तुलसी दोनो ही अमर है। 'कामायनी' वाल्मीकि, कालिदास, मिल्टन की परम्परा के अधिक निकट है। भावाभिव्यजना के आधार पर योरप मे महाकाव्य के समीप आने वाले अनेक काव्यो की रचना हुई। सस्कृत के 'शिशुपाल वध' आदि सकीर्ण वातावरण मे निर्मित होने वाले ऐतिहासिक प्रवन्धो की भाति इनका रूप न था। इनमे कवि की कल्पना का स्वच्छन्द प्रवाह अधिक प्राप्त होता है। शेली के 'प्रोमेथियस अनवाउन्ड' का नायक प्रोमेथियस नैतिक, बौद्धिक उच्चता का प्रतीक है। कवि ने मानवीय भावनाओ के प्रकाशन का ही प्रयास किया है। प्रोमेथियस स्वयम् ससार में सुख और शान्ति के राज्य की स्थापना की कामना करता है। वह पृथ्वी से अनुनय करता है—'मुझे इसमे अत्यधिक पश्चात्ताप होता है। शब्द शीघ्रता मे निकलकर व्यर्थ हो जाते है। शोक एक क्षण के लिये अन्धा हो जाता है, और वही दशा मेरी भी हुई। मेरी कामना है कि किसी भी जीवित वस्तु को कष्ट न हो[52]।' महान उद्देश्य के होते हुये भी उनमें घटना, पात्र का व्यापार प्रसार नही प्राप्त होता। वास्तव मे प्रोमेथियस अनवाउन्ड में मनुष्य नही, केवल प्रकृति का अमर स्वरूप, अप्सरायें, किन्नरिया तथा आत्मायें है। किन्तु सभी मानवीय इच्छा के सेवक है। पृथ्वी, सागर, चन्द्रमा, काल आदि का भी निर्माण कवि ने किया। आनन्द और सुख का प्रतिपादन करते हुये भी काव्य छोटी सी सीमा मे कार्य करता है। सुन्दर उपमायें, सरस अभिव्यजना के होते हुये भी वह विस्तृत विवेचना मे असमर्थ है। उनमें महाकाव्य का केवल उद्देश्य मात्र है, सम्पूर्ण स्वरूप नही। रिवोल्ट आफ इस्लाम, एन्डिमियन, दि एनशियेन्ट मैरिनर आदि काव्य भी महाकाव्य का आभास मात्र देकर रह जाते है। उनमें कलात्मक सौष्ठव, महान आदर्श अवश्य है किन्तु जीवन के विविध रूपो का चित्रण नही मिलता। 'कामायनी' अपने

---

५१ काव्यादर्श, १।२९

५२ It doth repent me. words are quick and vain
Grief for a while is blind, and so was mine,
I wish no living thing to suffer pain—Shelley

कलात्मक सौष्ठव में इन स्वच्छन्द प्रबन्धो के निकट होकर भी व्यापार भूमि के कारण महाकाव्य की सीमा छू लेती है।

महाकाव्य का उद्देश्य आदर्श तथा सुख शान्ति की स्थापना होता है। चरित्रो का अकन आदर्श, तथा कथानक का विन्यास उद्देश्य-प्रतिपादन में सहायता करता है। महाकवि अपनी रचना के द्वारा ससार को कुछ देना चाहता है। उसके मूल मे जीवन दर्शन की भावना निहित रहती है। 'महाकाव्य के रचयिता के सम्मुख एक निश्चित कार्य रहता है। वह अपनी प्रतिभा से अपने युग की समस्त परिस्थितियो का समावेश कर लेता है। 'कामायनी' अपने अत्यन्त प्राचीन कथानक में भी युग की समस्याओ का समाधान करती चलती है। बौद्धिकता, भौतिकवाद का दुष्परिणाम दिखाकर कवि ने समन्वय से समरसता का प्रतिपादन किया किहो। गाधी युग की यह कृति सत्य, अहिंसा को भी न भूल सकी। मनु सघर्षो के मध्य जाता हुआ आधुनिक मानव ही है। सारस्वतप्रदेश नगर का वैभवशाली वर्णन है, जिसमें विज्ञानवादी प्रगति हो रही है। भावात्मक प्रकाशन के कारण युग की परिस्थिति पर विस्तारपूर्वक विवेचना करने का अवसर कवि को न मिल सका, किन्तु उसने अपने युग की चेतना को उसमे स्थान दिया। महाकवि युग और काल का स्वर न भूल सका। सभी पर किसी न किसी रूप मे उसने सकेत कर दिया। यदि इलियड मे यूनानी सभ्यता का सम्पूर्ण चित्र मिल जाता है, तो कामायनी भी आधुनिक युग का प्रतिनिधि महाकाव्य है। उसके माध्यम से युग अत्यन्त कलात्मक रूप मे अभिव्यजित हो उठा। समय के साथ चलनेवाली यह कृति समस्याओ का समाधान भी प्रस्तुत करती रहती है। व्यापक दृष्टिकोण के साथ ही महाकाव्य के आदर्श मे भी महानता होती है। समस्त क्रिया व्यापार के द्वारा अन्त में किसी उद्देश्य की प्रतिष्ठा ही कवि का प्रयोजन रहता है। सस्कृत के देवासुर सग्राम मे देवताओ की विजय तथा दानवो की पराजय -भावना थी। अन्त में साधुता ही जीत जाती थी और अलौकिक शक्तिया भी समय समय पर उसकी सहायता करती थी। इसी कारण प्राय दुखात महाकाव्यो की रचना नही की जाती थी। सुख, शान्ति और आनन्द का प्रतिपादन ही उसका लक्ष्य है। समस्त योजना इसी के लिये की जाती है। अपने महान उद्देश्य के ही कारण महाकाव्य का रचयिता एक दुर्लभ कलाकार होता है[१३]। 'कामायनी' का कवि जीवन के मूल और अन्तिम उद्देश्य आनन्द की ही प्रतिष्ठा

---

१३ 'The Epic Poet is the rarest kind of artist'
—The Epic-page 41.

करता है। सम्पूर्ण संघर्ष के पश्चात मानवता का प्रतीक मनु जीवन में समरसता स्थापित कर आनन्द प्राप्त कर लेता है। यह श्रद्धाजन्य आनन्दवाद ही प्रसाद के महाकाव्य का लक्ष्य है। ससार के समस्त ज्ञान विज्ञान जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाने का ही प्रयत्न कर रहे है। साहित्य का भी वही मुख्य प्रयोजन है। 'कामायनी' का आनन्दवाद मोक्ष अयवा विराग की भाति नही है। वह कर्म, काम से प्राप्त जीवन के उपभोग का आनन्द है। जीवन से भागकर मनु कहा सुखी रहता है? सम्पूर्ण जीवन की सुन्दर अभिव्यक्ति 'कामायनी' मे हुई है। काव्य वैभव, चिन्तन पक्ष की प्रौढता, स्वस्थ जीवन दर्शन, मानवीय भावनाओ का विश्लेषण कामायनी को महाकाव्य का रूप देने के लिये पर्याप्त है। युग की परिवर्तित परिस्थितियो के अनुसार महाकाव्य की रूपरेखा भी नवीन रूप धारण करती रही है। वीर युग का शौर्य निरूपण दान्ते मे आकर धार्मिक स्वरूप बन गया। सभ्यता के विकास के साथ ही वर्णनात्मकता के स्थान पर कलात्मकता को प्राधान्य मिला। कालिदास के महाकाव्यो का काव्य सौन्दर्य स्वर्णिम युग से अनुप्राणित है। आज की सघर्षकालीन परिस्थिति मे जीवन की समस्याओ का समावेश आवश्यक हो गया। 'कामायनी' प्रसाद के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है। उसमे कलाकार अपनी समस्त साधना को लेकर प्रस्तुत हुआ। वह उसके जीवन मन्थन का परिणाम है। लक्षण ग्रन्थो का अनुसरण न करती हुई भी कामायनी अपने जीवनदर्शन, काव्य सौष्ठव, मानवीय व्यापार के आधार पर महाकाव्य का पद प्राप्त करती है। 'कामायनी' महाकाव्य महाकवि प्रसाद की सर्वोत्तम कृति रूप में हिन्दी में आई, और एक निधि बनकर रहेगी।
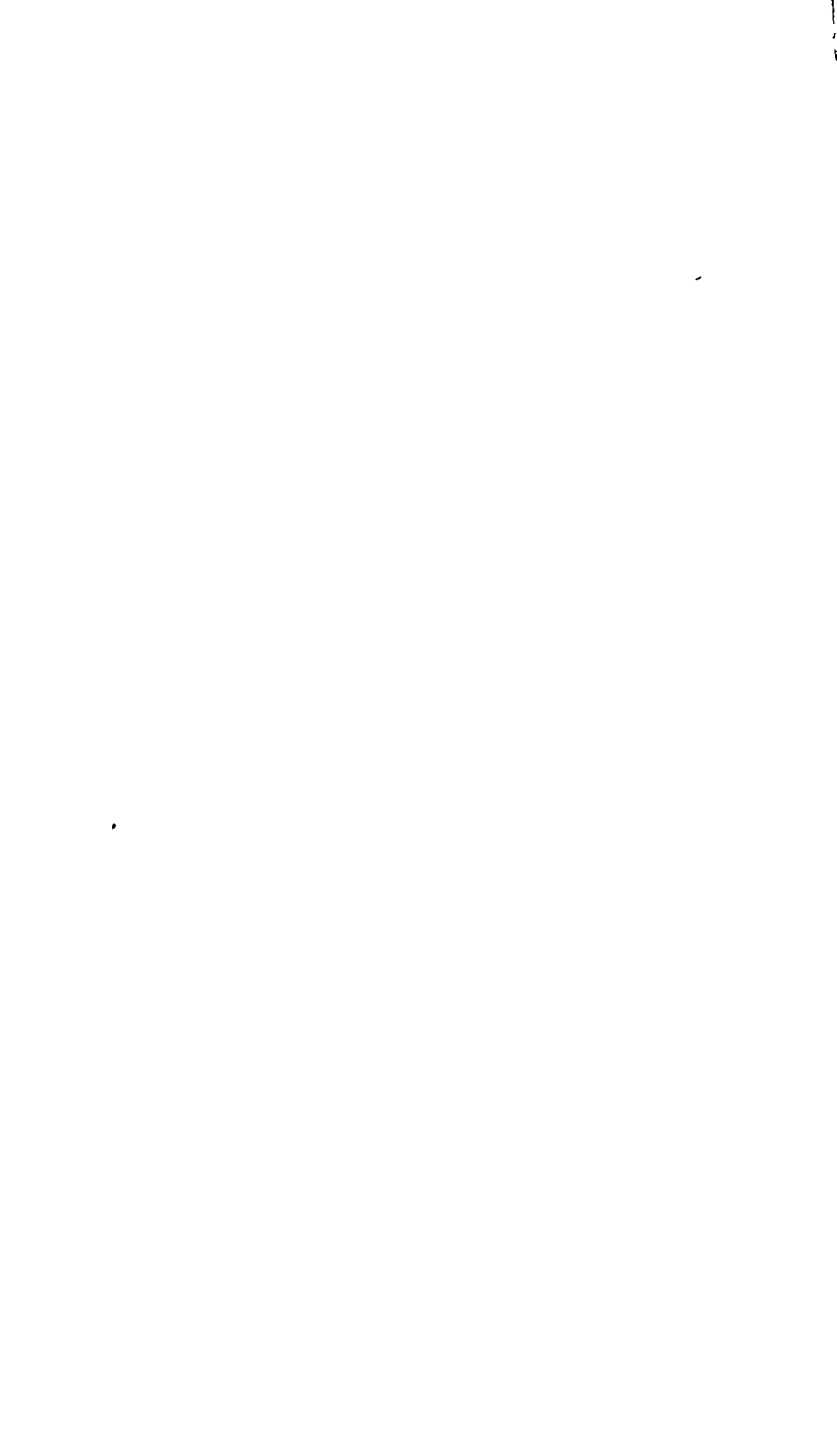
मूल्यांकन—

१–भारतीय काव्य और प्रसाद

२–पाश्चात्य काव्य और प्रसाद

भारतीय काव्य और प्रसाद

भारतीय काव्य परम्परा का आरम्भ वैदिक युग से ही हो जाता है। वेदो में बिखरी हुई विभूति ही संस्कृत काव्य का प्रारम्भिक रूप है। उषा, ऋतु आदि का प्रकृतिवर्णन, सामवेद की संगीतमयता, अनेक कथाये, सभी काव्य के उपादान बनकर आये है। वैदिक काव्य का धार्मिक दृष्टिकोण उसे आगे आने वाली काव्य परम्परा से पृथक् स्थान देता है। ब्राह्मण, उपनिषद आदि मे भी धर्म, दर्शन, नीति का ही अधिक समावेश है। काव्य के स्वतन्त्र स्वरूप का विकास लौकिक संस्कृत के अन्तर्गत भली भाति हुआ। जीवन के अधिक व्यापक धरातल और व्यावहारिक पक्ष को लेकर इस काव्य का निर्माण किया गया। वैदिक साहित्य की संकलनात्मक पद्धति का भी अन्त हो जाता है और कवि स्वतन्त्र, मौलिक निर्माण मे तत्पर होता है। संस्कृत को पाणिनि ने नियमो मे बाधकर विशुद्ध रूप दिया और काव्य सृजन मे उसका अत्यन्त परिष्कृत रूप प्रस्तुत हुआ। भाव, रस, अलकार सभी पर संस्कृत के कवि ने विशेष ध्यान दिया। वह जीवन को अधिक निकट से देखने का प्रयास करता है और मानव की विभिन्न मनोदशाओ को लेकर चलता है। केवल प्रकृति, ऋषि, यज्ञ और स्वर्ग का निरूपण करनेवाले वैदिक साहित्य मे संस्कृत के कवि ने पर्याप्त सामग्री ग्रहण की। वेदो के चित्रण, सामवेद के संगीत और पुराणो की कथावस्तु ने उसके काव्य को प्रेरणा प्रदान की। स्वयम् भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में नाटक को समस्त वेदो के समन्वित रूप मे स्वीकार किया गया। जीवन में बढती हुई समस्याओ का समावेश काव्य मे होने लगा। काव्य अपने स्वाभाविक, धरातल पर आ गया।

रामायण--

वाल्मीकि को भारतीय काव्य का आदिकवि स्वीकार किया जाता है। विश्व के अधिकांश विद्वान इससे सहमत है कि 'रामायण' सर्वप्रथम भारतीय महाकाव्य है, जिसमे जीवन के विभिन्न पक्षो का समावेश हुआ। इस 'चतुर्विंशति साहस्री' मे वाल्मीकि ने राम के आदर्श चरित्र का निरूपण किया। राम कथा के अन्तर्गत जीवन के अनेक क्रिया व्यापारो को लिया गया। राजा प्रजा, पिता पुत्र आदि अनेक सम्बन्ध इसमे आ जाते है। गार्हस्थ्य जीवन के साथ ही इहलोक परलोक की समस्या को भी महाकाव्य मे स्थान मिला। देव-दानव संघर्ष के रूप में

जीवन में निरन्तर चलते रहने वाला आन्तरिक सघर्ष चित्रित हुआ है। वाल्मीकि मानव और प्रकृति के अत्यन्त सजग कलाकार रूप में भारतीय काव्य में आते है। एक ओर यदि रामायण ने राम के व्यक्तित्व की स्थापना की तो साथ ही उसका काव्य-सौन्दर्य आगे आने वाली काव्य परम्परा का पथप्रदर्शक बना[1]। राम के 'नर चरित्र' को लेकर रामायण ने जीवन के विविध पक्षो की विवेचना काव्यात्मक सौन्दर्य के साथ की। एक आदर्श प्रस्तुत कर देना आदिकवि का लक्ष्य प्रतीत होता है। सम्पर्ण सघर्ष के पश्चात जीवन में सुख और शान्ति के लिये राम का विराग एक भारी सकेत छोड जाता है। जीवन का सुख तृप्ति में नही, त्याग मे है, उपभोग मे नही, सेवा मे है। राम पुरुषोत्तम है, तो सीता आदर्श नारी, हनुमान सच्चा भक्त, भरत प्रिय सहोदय। भावना के क्षेत्र में रामायण का आदर्श रूप महाकाव्यो की प्रेरणा बना। रामायण का आरम्भ करुणा से होता है। क्रौंचवध से अनायास ही द्रवित हो उठने वाली आदिकवि की आत्मा करुण रस की धारा आदि से अन्त तक बहाती रहती है। राम-वन-गमन के समय करुणा घनीभूत हो गई है। वियोग के क्षणो मे शोक सागर ही लहर उठता है

यस्मिन् वल निमग्नोऽह कौशल्ये राघव विना
दुस्तरो जीवता देवियथाय शोक सागर.

—अयोध्याकाड, ५९

क्रौंच वध की करुण कथा से आरम्भ होने वाले रामायण की परिसमाप्ति भी पुरुषोत्तम राम के त्याग से ही होती है। रामायण का सदेश आध्यात्मिकता मे परिपूरित है, जिसमे मोक्ष की कामना सन्निहित है। शैली की दृष्टि से वह एक उत्कृष्ट महाकाव्य है और विश्व काव्य में उसका उच्चा स्थान है। प्रकृति वर्णन मे महाकवि को अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई। वह एक चित्र सा प्रस्तुत कर देता है, जिसमें सूक्ष्मतम अकन मिल जाता है। प्रत्येक व्यापार सजीव हो उठता है। कवि का प्रकृति रागात्मक सम्बन्ध है। वाल्मीकि प्रकृति के कलाकार है और रामायण की सम्पूर्ण कथा प्रकृति के विशाल चित्रपट पर रजित है। पचवटी मे लक्ष्मण हेमन्त की शोभा का वर्णन करते है

अवश्यायनि पातेन किंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला
वनाना शोभते भूमिर्निविष्टतरुणातया

---

१ History of Classical Sanskrit Literature, page 59

स्पृशस्तु विपुलं शीतमुदक द्विरद सुखम्
अत्यन्त तृषितो वन्य· प्रति संहरते करम् ।

समस्त वनस्थली की हरीतिमा तुषारपात से आर्द्र हो गई और धूप के पड़ने से शोभित हो रही है। अत्यधिक पिपासित गजेन्द्र शीतल जल के स्पर्श मात्र से अपनी सूड हटा लेता है

वाल्मीकि प्रकृति की विशाल गोद म ही पले हुये कवि थे, और उन्होंने उसे अत्यन्त निकट से देखा था। अनुष्टुपों के द्वारा उन्होंने सुन्दर उपमाओं, अलकारो की योजना की। उसकी पक्ति पक्ति की सजीवता, सरस अभिव्यजना ने ही आगे आनेवाली काव्य परम्परा को प्रभावित किया।

प्रसाद मे प्राचीन और नवीन का एक समन्वित रूप दिखाई देता है। भाषा के क्षेत्र मे यदि अत्यन्त शिष्ट और परिष्कृत भाषा का प्रयोग उन्होंने किया, तो भावना की दृष्टि से वे युग की नवीन वस्तुओं को लेकर चलते है। वाल्मीकि की रामायण का देव दानव सघर्ष 'कामायनी' मे अन्तर्मुखी होकर आया। मनु के अन्तरप्रदेश मे सतत् द्वन्द्व चलता रहता है। हृदय बुद्धि, मन मस्तिष्क सभी एक दूसरे के विरुद्ध चले जाते है। 'रामायण' दानवत्व पर देवत्व की विजय स्थापित कर देती है, किन्तु 'कामायनी' समरसता के द्वारा समस्त विरोधी शक्तियो मे समन्वय स्थापित करती है। युग से अनुप्राणित प्रसाद जीवन के अधिक व्यावहारिक पक्ष को लेकर चलते है। वाल्मीकि की करुण अनुभूति प्रसाद के काव्य मे एक अन्तःसलिला की भाति बहती रहती है। आरम्भिक व्यक्तिगत और आन्तरिक वेदना एक करुणा दर्शन मे परिवर्तित हो जाती है। आदिकवि की करुण भावना रसनिष्पत्ति मे सहायक है, किन्तु प्रसाद ने उसे एक जीवन दर्शन के रूप मे स्वीकार किया, जो अधिक व्यापक बनकर मानवता के कल्याण मे नियोजित होती है। 'आँसू' के अन्त मे ही इस करुणा दर्शन का प्रतिपादन हुआ है, और 'कामायनी' मे करुणामयी श्रद्धा इसी के सहारे आनन्दवाद को प्रतिष्ठित करती है। वाल्मीकि के सूक्ष्म प्रकृतिवर्णन को कवि प्रसाद अधिक विस्तृत रूप मे न अंकित कर सके। उनकी प्रकृति मानव की चिरसहचरी बनकर आई। इसके अतिरिक्त कला पक्ष के अनेक सुन्दर प्रतीक, रूपक और चित्र कवि ने इसी के द्वारा प्रस्तुत किये। चरित्रो का आदर्श रूप वाल्मीकि की विशेषता है, किन्तु आधुनिक युग का कवि संघर्षशील परिस्थितियो मे पल रहा है, इस कारण वह यथार्थ चिन्तन का परित्याग नही कर सकता। वाल्मीकि और प्रसाद जीवन के एक ही महान सत्य पर पहुँचते है, किन्तु दोनो अपने युग की चेतना से प्रेरित रहते है। 'रामायण' की सीता और 'कामायनी' की

श्रद्धा अपने उदात्त रूप में एक दूसरे के समीप है। कवि प्रसाद के पीछे वाल्मीकि की बिखरी हुई भव्य काव्य परम्परा थी, और सम्भव है परोक्ष रूप में उन्होंने उससे प्रेरणा प्राप्त की हो। वाल्मीकि का अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र यद्यपि प्रसाद अपने काव्य में सन्निहित न कर सके, किन्तु उनका 'आनन्दवाद' भी 'रामराज्य' की भाति एक उच्च भाव भूमि पर प्रतिष्ठित है। दोनो ही सास्कृतिक, कलाकार हैं।

महाभारत--

रामायण के साहित्यिक महाकाव्य के अनन्तर वेदव्यास का सकलनात्मक महाकाव्य महाभारत आया। उसमे एक बिखरी हुई कथा को कवि ने सन्निहित कर दिया। युग की परिवर्तित परिस्थितिया उसमें स्पष्ट प्रतिबिम्बित होती है और देश काल का एक नवीन चित्र उसमे प्रस्तुत हुआ। भारत के दो प्रसिद्ध पक्ष कौरव और पाण्डव एक ही व्यक्ति की सन्तान होकर भी परस्पर युद्ध करते है। महाभारत का क्षेत्र अत्यधिक विशाल है और उससे भगवद्गीता, अनुगीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, गजेन्द्रमोक्ष आदि ग्रन्थो की शाखाये फूट निकली है। वह देश और जाति को लेकर चलता है तथा इतिहास पक्ष में अत्यन्त प्रौढ है। लगभग एक लाख श्लोको मे इस 'शतसाहस्री सहिता' ने अठारह पर्वो मे अनेक समस्याओ को ले लिया। उसका आकार अत्यन्त विशाल है और अनेक कवियो ने इसमे कथा की प्रेरणा ली। वीर रस प्रधान इस काव्य का अन्त भी आदर्शात्मक प्रणाली से होता है। महाकाव्य की परिसमाप्ति स्वर्गारोहण मे की जाती है जब कि एक भीषण रक्तपात के पश्चात स्वयम् विजयी पाडव हिमालय की उपत्यका मे खो जाते है। यह अन्त भी रामायण की भाति शान्ति की ही स्थापना कर देता है। व्यास का कथन है

> ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष, न च कश्चित शृणोति मे
> धर्मादर्थश्च कामश्च, स किमर्थं न सेव्यते।

धर्म की प्रतिष्ठा करने वाला 'महाभारत' अधिक व्यावहारिक जगत को लेकर चलता हुआ दिखाई देता है। भारतीय सभ्यता और समाज का चित्र उसमें प्रस्तुत हुआ और शताब्दियो की बिखरी हुई परम्परा को व्यास ने लिपिबद्ध किया। रामायण की भाति उसमे आदर्श को लेकर पात्रो का चरित्र चित्रण नही किया जा सका, किन्तु दोनो का लक्ष्य महान है। आख्यानक काव्य के रूप मे महाभारत अधिक विस्तृत है, किन्तु रामायण मे गहनता है। महाभारत की इतिवृत्तात्मक शैली ने आगे आने वाले कवियो को अनेक स्वतन्त्र प्रबन्ध काव्य

लिखने के लिये प्रेरित किया, और उन्होंने उससे कथावस्तु ग्रहण की। भारतीय सभ्यता और समाज का निरूपण उसमें यूनान के इलियड आदि महाकाव्यो के समान ही हुआ। आर्य जाति का जातीय महाकाव्य ही महाभारत है, और उसमे एक परम्परा का परिचय प्राप्त होता है[२]। प्रसाद का साहित्यिक महाकाव्य 'कामायनी' सकलनात्मक महाकाव्य की परम्परा से अधिक अनुप्राणित नही है। प्रसाद ने अपनी आरम्भिक कविताओ की कथावस्तु अवश्य महाभारत मे ग्रहण की। बभ्रुवाहन, कुरुक्षेत्र, श्रीकृष्ण जयन्ती आदि कविताओ के आख्यान महाभारत मे ही ग्रहण किये गये है। इतिवृत्तात्मक तथा वर्णनात्मक प्रणाली को अधिक ग्रहण न करने के कारण प्रसाद महाकवि व्यास के निकट नही आते।

कालिदास--

रामायण, महाभारत के दो महाकाव्यो के अनन्तर भारतीय काव्यधारा पुन धर्म की ओर चल देती है। किन्तु वैदिक साहित्य का प्रभाव धीरे-धीरे मन्द पडने लगा और लौकिक सस्कृत की अधिक उन्नति हुई। पुराण काल मे कथा साहित्य का निर्माण हुआ, और काव्य के विकास की गति मन्थर पड गई। लौकिक सस्कृत को प्रधानता प्राप्त होते ही काव्यशास्त्र का भी निर्माण होने लगा। काव्य की परिभाषा, विवेचना, व्याख्या हुई। ईसवी सन् के आरम्भ होने से पूर्व ही भारतीय काव्य की धारा अनवरत गति से पुन वह निकलती है। कालिदास के रूप मे सस्कृत काव्य को एक अद्वितीय, अनुपम कवि प्राप्त हुआ। जीवन काल के विषय में विद्वानो मे परस्पर मतभेद होते हुये भी उनके काव्य की महत्ता को सभी स्वीकार करते है। कालिदास के काव्य मे भारतीय इतिहास के स्वर्णिम युग की छाया है। उसमे देश का वैभव और ऐश्वर्य प्रतिभासित होता है। वाल्मीकि की भाति वे आदर्शवादी ऋषि कवि नही है, किन्तु उनमे मानवीय भावनाओ का ही अधिकाधिक समावेश है। यदि महाभारत मे एक महान देश की विराट् सभ्यता और सस्कृति की अभिव्यक्ति हुई, तो कालिदास में उसका सम्पूर्ण वैभव प्रतिफलित हुआ। भावना के क्षेत्र मे कालिदास मानव-अन्तरतम के अधिक निकट जाने मे सफल हुये, और उन्होने सूक्ष्मतम अकन को प्रस्तुत किया। मानव के मन में उठने वाली भावनाओ का उन्होंने निरूपण किया। वास्तव में अपनी इस सार्वभौमिकता के कारण ही कालिदास का काव्य विश्व के कोने कोने में प्रसारित हुआ। शृगार मे भरी रसमय कविता प्राणो के मर्म को छूने की शक्ति रखती है। कालिदास के ईश्वरीय पात्र भी प्रेम और

२. Indian Philosophy, Vol 1st Page 479

सौन्दर्य की भावनाओं से ओतप्रोत हैं, और उनमें मानवीय विचारणायें बहती हैं। 'कुमारसम्भव' के शिव और पार्वती को एक प्रेम पाश में ही बांध दिया गया। कवि प्रेम को तपस्या से उदात्त और आदर्श बना देता है और अन्त में समस्त चित्र एक उच्च भाव भूमि पर अंकित होता है। कालिदास के काव्य की मूल भावना सौन्दर्य और शृंगार है, जिसके द्वारा वे जीवन की विविध मनोदशाओं को लेकर चलते हैं। वे सौन्दर्यवादी आनन्दवादी कलाकार हैं, और सरस अभिव्यंजना में निस्सन्देह अद्वितीय हैं। 'मेघदूत' में प्रेम की करुणा, वियोग आकर सन्निहित हुये हैं। प्रेमी की वाणी में इतना सत्य, ताप और शोक है कि प्रकृति की विभूति भी द्रवित हो उठती है। यक्ष का मेघ से पागलों की भांति वार्तालाप, वियोग की चरम सीमा का प्रतीक है, जिसमें वह सब कुछ भूल जाता है। यक्ष मेघ से अनुनय, विनय करता है

> एतत्कृत्वा प्रियमनुचितं प्रार्थनावर्तिनो मे
> सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्धया
> इष्टान्देशांजलद विचर प्रावृषा संभृतश्री
> र्मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥
>
> उत्तरमेघ, ५८

मेरे मेघ! मैंने तुमसे जो कार्य कहा है, वह तुम्ही से कराना भारी धृष्टता होगी किन्तु मित्र होने के कारण, अथवा विरही पर द्रवित होकर, तुम सर्वप्रथम मेरा प्रिय कार्य कर देना और तदनन्तर अपना यह वर्षामय स्वरूप लेकर मनचाहे बरसते रहना। मैं तो यही कामना करता रहता हूँ कि प्रियतमा दामिनी से तुम्हारा एक पल के लिये भी वियोग न हो क्योंकि मैं स्वयम् त्रस्त हूँ।

'मेघदूत' का कवि एक ही विप्रलम्भ भावना के अन्तर्गत जड़ और चेतन का संगम करा देता है। करुण भावना का यह व्यापकत्व ही उसे शाश्वत मूल्यों में निहित कर देता है। आदि से अन्त तक यक्ष अपने प्राणों की पीड़ा उँडेलता रहता है, और एक द्रवीभूत भावना से काव्य का वातावरण भर जाता है। प्रेम के समस्त ताप का ग्रहण करते हुये भी कवि ने उसका उदात्तीकरण किया। पार्वती अपने रूप-दर्प का परित्याग कर अन्त में कैलाश के शिखर पर शिव से मिलती हैं। शकुन्तला और दुष्यन्त का मिलन एक अलौकिक आनन्द से समन्वित है। कालिदास की शृंगारिक भावनायें, सरस कल्पना, सूक्ष्म चित्रण उनके काव्य की विभूति हैं। मानवीय भावनाओं में यद्यपि शृंगार और सौन्दर्य की भावना उनके काव्य में प्रमुख और प्रबल है, किन्तु अन्य स्थितियों को भी उन्होंने ग्रहण किया। शकुन्तला को विदा देते समय महर्षि कण्व का भी हृदय द्रवीभूत हो उठता है और उसी समय वे कहते हैं

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कंठया
कंठः स्तम्भित बाष्पवृत्ति कलुषश्चिन्ताजड दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकस.
पीडयन्त गृहिण. कथं नु तनया विश्लेष दुःखैर्नवै. ॥

'आज शकुन्तला की विदा की याद करते ही मेरा मन बैठा जा रहा है। अश्रुधार रोकने मे कंठ अवरुद्ध हो गया, मुख मे स्वर भी नही निकल पाता, चिन्ता के कारण नेत्र भी धूमिल पड गये। आज स्नेहवश मुझ वनवासी को इतनी पीडा हो रही है, तब उन गृहस्थो को कितनी व्यथा होती होगी, जो प्रथम बार अपनी कन्या को विदा करते होगे।'

मानव जीवन की अनेक परिस्थितिया उनके काव्य मे प्रतिबिम्बित हुई। वे मानवीय भावो का विश्लेषण करते चलते है। कालिदास का प्रकृति-चित्रण वाल्मीकि की भाति केवल सूक्ष्म वस्तु वर्णन न होकर, मानव की मनोदशा के अधिक समीप है। शकुन्तला प्रकृति की समस्त सुषमा लेकर नाटक मे आई। वन का कण कण उसका आत्मीय बन जाता है। विदा के समय हिरणी की आखे भर आती है और वन वेलिया भी सिहर उठती है। 'कुमारसम्भव' का हिमगिरि महाकाव्य के लिये एक विशाल पृष्ठभूमि का कार्य करता है। वह हिमालय की उपत्यका मे आरम्भ होकर उसी के उच्चशिखरो पर समाप्त होता है। कालिदास के प्रकृति और मानव एक दूसरे के अधिक निकट है और अनेक स्थलो पर कवि ने उनमे आत्मीयता भर दी। जड प्रकृति भी चेतन हो उठती है। तपोवनवासिनी शकुन्तला अपूर्व सौन्दर्य-वती है और उसमे समस्त वन वैभव साकार हो उठा है। 'रघुवंश' मे समुद्र, तपोवन आदि का वर्णन भी हुआ, किन्तु 'ऋतुसहार' मे आकर प्रकृति अपने उन्मुक्त रूप मे प्रस्तुत हो जाती है। कवि प्रकृति का वर्णन स्वतन्त्र रूप से करता है और वाल्मीकि की सूक्ष्म चित्रण परम्परा पुन सजीव हो उठती है। कालिदास की वह प्रकृति भी अपने साथ सौन्दर्य और व्यापक प्रभाव को लेकर चलती है। प्रकृति जगत और जीवन पर अपना प्रभाव डालती जाती है और उसका प्रत्येक रूप एक नवीन सौन्दर्य मे सम्पन्न रहता है। कालिदास ने 'नव-यौवना' प्रकृति से ही अनेक सुन्दर उपमा और अलकार भी ग्रहण किये तथा काव्य सौन्दर्य मे उसका सहयोग प्राप्त किया है। 'ऋतुसहार' के अन्त मे वसन्त का वर्णन है

वापीजलानां मणिमेखलानां शशाङ्कभासां प्रमदाजनानाम् ।
चूतद्रुमाणां कुसुमान्वितानां ददाति सौभाग्यमयं वसन्तः ॥

'वसन्त के आगमन से ही वापी का जल, मणिमेखला, चन्द्रमा, कामिनिया, आम्रमजरी से सुशोभित वृक्ष की शाखायें सभी अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होने लगे है ।'

कालिदास अपनी उपमाओ के लिये प्रसिद्ध है । प्रकृति के अनेक स्वरूपो और उपादानो का प्रयोग उन्होने उपमाओ के रूप में अधिक किया । रूप अकन, वस्तु वर्णन को सुन्दर उपमा के द्वारा अत्यन्त सजीव कर दिया गया । कालिदास की काव्यकला का पूर्ण विकास इसी अवसर पर दिखाई देता है जब कि वे प्रकृति के विस्तृत अचल से अनेक उपमाओ को ग्रहण करते है । यह क्षेत्र इतना व्यापक है कि विभिन्न चित्र, परिस्थिति और मनोदशा का अकन उन्होने समान सफलता से किया । सौन्दर्य और शृगारिक भावो का निरूपण करने के लिये यदि सरस कल्पना है तो रौद्र रूप को प्रखर उपमाये सम्मुख ले आती है । यक्ष मेघ से अपनी प्रियतमा का रूप वर्णन करते हुये कहता है

तन्वी श्यामा शिखरदशना पक्वविम्वाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभि
श्रोणी भारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्या
या तत्र स्याद्यवतिविषये सृष्टिराद्येव धातु ॥

उत्तरमेघ, २२

'कृशगात, छोटे छोटे दात, पक्के विम्वाफल के से अरुण अधर, क्षीण कटि, भयभीत हरिणी के से नेत्र, गहन नाभि, नितम्व भार से मन्थर गति, स्तन के वोझ मे आगे की ओर झुकी हुई युवती ही मेरी पत्नी है । उसके सौन्दर्य मे यही प्रतीत होगा कि ब्रह्मा की सर्वोत्कृष्ट कला कृति यही है ।'

अनेक पृथक भावो का सफल निरूपण कवि की उपमायें ही कर देती है । इस विषय मे कवि का क्षेत्र व्यापक है । प्रकृति के अतिरिक्त प्राचीन आख्यानो से भी कालिदास ने उपमाओ को ग्रहण किया । उपमायें कालिदास का काव्य वैभव है, और उस विषय मे कोई भी कलाकार उनकी समानता नही कर सकता । उपमा के साथ ही अलकार भी स्वाभाविक रीति से काव्य मे आ जाते है, जिससे रस निष्पत्ति मे सहायता प्राप्त होती है और वर्णन मे मार्मिकता आ जाती है । शैली के अन्य अवयवो मे कवि का शब्द-चयन अत्यन्त प्रौढ है । भाषा को उन्होने अत्यन्त शिष्ट और परिष्कृत कर दिया । कालिदास के काव्य की भाषा स्वर्णकालीन भारत के सभ्य और सुशिक्षित वर्ग का माध्यम थी । सौन्दर्य, रति आदि की स्पष्ट अभिव्यक्ति करता हुआ भी कवि कही कही केवल सकेत मात्र से ही काम ले लेता है । नारी के कठ मे पडी मौक्तिक माल के कपन से ही हृदय के स्पन्दन का आभास मिल जाता है । वन लताओ मे शकुन्तला

अपने अन्तर्मन का रहस्य खोल देती है। एक महान कलाकार की भांति कालिदास कही तूलिका से किसी विस्तृत पट पर कार्य करते है, तो कही केवल एक दो साधारण रेखाओ से ही चित्र बना देते है। एक भारी चित्रफलक पर व सफलता के साथ चित्राकन करते है। कालिदास स्वर्ण युग के कलाकार थे और उनके साहित्य मे सौन्दर्य और आनन्द का आग्रह अधिक है। उनका काव्य तत्कालीन भारत का प्रतिबिम्ब सा प्रतीत होता है, जिसमे उस युग की सभ्यता का आभास मिल जाता है। अपनी छोटी-छोटी सूक्तियों के द्वारा उन्होने अनेक सुन्दर सदेश दिये, जो आदर्श वाक्य की भांति है। पात्रो मे शकुन्तला का प्रेम, दिलीप का त्याग, कण्व का ऋषित्व, पुरुरवा का पराक्रम आदर्श रूप में अकित है। उनके काव्य का मूल सदेश जीवन की सरस, और आनन्दमयी व्याख्या है। समस्त कृतिया अन्त मे एक नैसर्गिक मिलन का ही प्रतिपादन करती है। शकुन्तला दुष्यन्त, पार्वती शिव सभी का समन्वय आनन्द को प्रतिष्ठित करता है। जीवन के चिरन्तन मूल्यो को लेकर चलने वाले कालिदास मानव मन की स्वाभाविक वृत्तियो का ग्रहण करते है, और अनुभूति के सत्य को मार्मिक अभिव्यक्ति से व्यक्ति तक पहुँचा देते है। अभिव्यजना मे वे एक अत्यन्त परिष्कृत कलाकार है इसी कारण आगे आने वाले कवियो के लिये प्रेरणा की वस्तु बने रहे।

कालिदास और प्रसाद—

प्रसाद की आरम्भिक रचनाओ की कथावस्तु कालिदास से प्राप्त की गई। 'चित्राधार' के व्रजभाषा प्रयोगो मे 'अयोध्या का उद्धार', 'वन मिलन' आदि रचनायें रघुवश तथा शाकुन्तल से अनुप्राणित है। 'कानन कुसुम' मे भी 'भरत' की प्रेरणा 'शाकुन्तल' ही प्रतीत होता है। कालिदास का काव्य वैभव, व्यापक दृष्टिकोण, सरस अभिव्यजना किसी भी कलाकार को प्रभावित करने की शक्ति रखते है। आरम्भिक प्रयासो में प्रसाद ने भी उनसे प्रेरणा ग्रहण की। दोनो ही सौन्दर्यजीवी, आनन्दवादी कलाकार शिव की समष्टि मे विश्वास रखते है। अपनी अधिकाश कृतियो के आरम्भ मे कालिदास शिव की वन्दना करते है। प्रसाद ने शैवागम के दार्शनिक चिन्तन का अधिक ग्रहण किया। शिव के प्रति आस्था इन दोनो ही कवियो को एक दूसरे के समीप ले आती है। कालिदास सौन्दर्य का अकन करते हुये भी शिव के प्रति अडिग भक्ति रखते हुये देखे जाते है, किन्तु प्रसाद की शिव भक्ति समग्र व्यापक होती चली जाती है और अन्त में समग्र विश्व ही शिवरूप होकर आनन्दमय बन जाता है। भावना के क्षेत्र मे दोनो ही कवि सौन्दर्यवादी है। उनकी वृत्तिया किसी भी सुन्दर वस्तु मे रम जाती है

और उसके चित्रण में वे अपनी समस्त कुशलता लगा देते हैं। उर्वशी के सौन्दर्य को अपरिमेय मानकर ही पुरुरवा कह उठता है

आभरणस्याभरण प्रसाधनविधे प्रसाधन विशेष
उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमान वपुस्तस्या ।

विक्रमोर्वशी, द्वितीय अक, ३

उसका शरीर आभूपणो का भी आभूपण है, शृगार के प्रसाधनो का भी विशेष प्रसाधन है, और उपमानो की भी उससे उपमा प्रस्तुत की जा सकती है।

'कामायनी' की श्रद्धा का सौन्दर्य प्रसाद ने अधिक आदर्श वर्णो से अकित किया। नारी की समस्त सुन्दरता और छवि के साथ ही उसमे गरिमा और गुण भी है। कालिदास के स्वर्णिम युग की नारी की अपेक्षा प्रसाद की नारी अधिक सघर्षमयी है। इसी कारण उसके सौन्दर्याकन मे किंचित अन्तर पड जाता है,। 'प्रसाद' का बाह्य निरूपण पर उतना अधिक आग्रह नही, जितना कि आन्तरिक प्रकाशन पर। कालिदास के नायक नायिका के कटाक्षों और प्रेम-व्यापारो में शृगार रति की भावना छलकती है, किन्तु प्रसाद का सौन्दर्य गुणो को अधिक प्रकाश मे ले आता है। 'आसू' मे रूप पर रीझ उठने वाला प्रणयी अन्त मे हृदय के व्यापार को ही महत्व देता है। सौन्दर्याकन तथा प्रणय की किंचित विभिन्न प्रणालियो का प्रयोग करते हुये भी दोनो कलाकार अन्त में सौन्दर्य का उदात्तीकरण कर लेते है। उसकी ऐन्द्रियता विलीन हो जाती है और वह निर्मल बन जाता है। सौन्दर्य के प्रति अनासक्त प्रीति को लेकर चलने वाले इन सरस कवियो ने इसी के द्वारा आनन्द की प्रतिष्ठा की। सौन्दर्य के चित्रण में प्रसाद की शैली अधिक साकेतिक है। कालिदास युग के अनुरूप शृगार का विशद विश्लेषण करते है, किन्तु आधुनिक कवि केवल छाया सकेतो मे ही काम लेता है।

वर्णन की विदग्धता मे कालिदास बहुत आगे चले जाते है। असख्य क्रिया व्यापार और अनेक लम्बे चित्र उनके काव्य मे मिलते है। हिमालय के वर्णन मे कवि छन्दो की रचना करता चला जाता है। उसके एक एक कण का वह अकन कर देता है। उसकी बुद्धि सूक्ष्मतम अकन मे तत्पर होती है। वर्णन की अद्भुत क्षमता कालिदास मे है और अलकारो से उनमे वह सरसता और चमत्कार उत्पन्न कर देते है। वे केवल वर्णन ही नही करते, अपितु उसी के साथ अनेक सकेत करते चलते है। प्रसाद के चित्र विस्तृत न होकर गहन होते है। वे केवल एक भावना को किसी चित्र मे घनीभूत कर देना चाहते है। श्रद्धा को 'मधु के आधार' पर स्थापित कर उन्होंने उसमे सम्पूर्ण नैसर्गिक सौन्दर्य

को भर दिया, नखशिख वर्णन की आवश्यकता नही पडी। कालिदास की भाति प्रसाद भी प्रकृति मे अनेक प्रतीको, रूपको और उपमाओ को ग्रहण करते है। गहनता का अधिक आग्रह रखने वाले कवि प्रसाद प्रकृति का वर्णन वाल्मीकि, कालिदास अथवा वर्ड्स्वर्थ की भाति नही करते. वे प्रकृति को मानव के लिये नियोजित कर अपनी शैली, और भावना का शृगार उससे कर लेते है। कालिदास की उपमाये विस्तार का अधिक आग्रह करती है, तो प्रसाद की घनत्व का। इस दृष्टि से प्रसाद का पक्ष मनोवैज्ञानिक आधार को लेकर चलता है। वस्तु अकन अथवा सौन्दर्य निरूपण के द्वारा वे मानसिक वृत्तियो का भी प्रकाशन करना चाहते है। कालिदास एक शिल्पी की भाति उपमाओ का प्रासाद खडा करते चले जाते है। प्रसाद की शैली अधिक सकेतमय और ध्वन्यात्मक है। 'रघुवश' की विशद योजना ससार के किसी भी महाकाव्य की कथावस्तु को पराजित करने का सामर्थ्य रखती है। कवि की दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु पर ठहर जाती है। भारत के एक प्रमुख राजवश की दीर्घ परम्परा को कवि ने एक सूत्र मे बाध दिया। प्रसाद की दृष्टि सदा लक्ष्य और रसनिष्पत्ति पर रहती है और वे उन्ही वस्तुओ का अकन अधिक करते है जो उनकी उद्देश्य-पूर्ति मे सहायक हो।

भावना के क्षेत्र मे दोनो ही कवि मानव के अन्तरतम को छू लेते है। उनकी व्यक्तिगत अनुभूति की प्रेरणा को 'मेघदूत' और 'आसू' मे देखा जा सकता है। स्वयम् यक्ष बन कर अपनी करुणा का प्रकाशन करनेवाला कवि हृदय खोलकर रख देता है। उसके प्राणो की समस्त पीडा घनीभूत हो उठती है। मेघदूत मे आत्मीयता स्थापित करने के साथ ही वेदना के धरातल पर जड चेतन का सगम हो जाता है। अपने वियोग मे यक्ष अनुनय विनय करता चला जाता है। कवि आन्तरिक प्रकाशन के साथ अपनी वर्णन विदग्धता का भी परिचय दे देता है। एक एक नगर का विशद वर्णन वह करता है, यद्यपि मेघ को मार्ग बता देने के मूल मे उसकी प्रेम भावना ही कार्य करती है। सभवत विरही को भय है कि कही मेघ पथ न भूल जाय, किसी अन्य से उसका सदेश न कह दे। कालिदास ने जिस अद्भुत क्षमता से समस्त वस्तु निरूपण कर दिया, उससे मेघ अवश्य ही यक्ष की प्रियतमा को पा लेगा। एक ओर यदि यह वस्तु वर्णन प्रेम के तार मे एक क्षणिक व्यवधान बन जाता है, तो साथ ही वह कवि की वर्णन शक्ति का भी आभास देता है। कालिदास सर्वत्र एक सजग कलाकार की भाति तल्लीन होते है, जो अपने चारो ओर बिखरी प्रत्येक वस्तु का चित्र खीच देना चाहते है। 'मेघदूत' की करुणा शोक और सन्ताप का एक वातावरण ही प्रस्तुत कर देते है। 'आसू' की प्रणयाभिव्यजना अधिक प्रत्यक्ष है। बिना किसी कथा

अथवा शाप का सहारा लिये हुये ही कवि अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को सम्मुख रख देता है। उसकी अभिव्यजना में एक स्वच्छदतावादी कवि का सा भाव प्रकाशन है। फारसी कवियो की ऊहात्मक प्रणाली का भी आभास उसमें मिलता है। 'आसू' के अन्त में प्रतिपादित करुणा-दर्शन प्रसाद के जीवन-दर्शन का ही एक अग है। इस दृष्टि से कलाकार रस सचार के साथ ही मानवता को अपनी वेदना से ऊपर उठने का भी सकेत करता है। मेघदूत यदि विरही यक्ष का करुण-निवेदन है, तो 'आसू' एक प्रेमी के व्यक्तित्व का क्रमिक प्रसार। प्रसाद के काव्य मे निरन्तर बहती हुई करुणा धारा बौद्ध दर्शन की भाति सार्वभौमिकता की ओर जाती दिखाई देती है। मेघदूत और आसू अपने युग के अनुकूल सर्वोत्कृष्ट विरह काव्य है।

प्रसाद का प्रकृति वर्णन कालिदास की भाति व्यापक नही है। हिमालय अथवा तपोवन के विस्तृत वर्णन उनके काव्य में नहीं प्राप्त होते। प्रकृति और मानव का जो तादात्म्य कालिदास मे मिलता है, उसी का एक लघु सस्करण प्रसाद के काव्य मे व्यजित हुआ। कालिदास की प्रकृति सजीव और चेतन होकर मानव के विभिन्न क्रियाव्यापारो का साथ देती है। प्रसाद की प्रकृति एक पृष्ठभूमि का कार्य करती है, और कला पक्ष का शृगार भी उन्होने उसी की सहायता से किया। कालिदास तथा प्रसाद अलकारो का ग्रहण उसी से करते है। प्रसाद के चित्राकन में प्रकृति के उपादान वर्णो का कार्य करते है और उन्ही मे एक सश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत हो जाता है। वाल्मीकि का सा स्वतन्त्र वर्णन दोनो ही कलाकारो में नही प्राप्त होता। प्रकृति वर्णन के अतिरिक्त भाषा के क्षेत्र में भी 'प्रसाद' का शब्दचयन कविगुरु के अधिक निकट है। वे चित्रमय, शिष्ट भाषा का प्रयोग करते है, जो भावो को भली भाति वहन करती है। इस दृष्टि से दोनो ही परम्परा-वादी कलाकार है, जिनकी भाषा अपनी होती है, और सामान्य जनभाषा से उसका स्वरूप भिन्न रहता है। परम्परावादी कवि के अनेक शब्द उसके अपने होते है, और उनकी व्यजना तथा अर्थ मे विशेषता होती है। शब्द लेने के लिये परम्परावादी कवि प्राय अपनी प्राचीन परम्परा की ओर भी जाते है। प्रसाद के शब्द चयन में सस्कृत का भी पर्याप्त योग है। कालिदास की उपमाओ की सश्लिष्ट योजना के समान ही प्रसाद का चित्राकन है। एक विशाल चित्रपट पर अकित शकुन्तला के रूप गुण को श्रद्धा के 'मातृरूप' मे ही सन्निहित कर दिया गया है। आलकारिक शैली में कालिदास विश्व के अनेक कलाकारो से आगे निकल जाते है। उनका आदर्शवाद सौन्दर्य और यौवन को नही छोडता। प्रसाद का पक्ष आदर्शवादी की अपेक्षा मानवीय अधिक है। वे मानवीय भावनाओ का

अधिक ग्रहण और निरूपण करते है, तथा समस्त परिस्थिति योजना उसी प्रयास मे सहायता करती है। कालिदास के सदेश मे एक सौन्दर्यवादी तथा आनन्दजीवी का समस्त आदर्शवाद निहित है। यौवन और भोग-विलास का अन्त में आदर्शीकरण हो जाता है। रघुवश के अन्तिम सर्ग मे विलासी राजा की भर्त्सना की गई। सौन्दर्य, काम और यौवन की नवीन, निर्मल और उदात्त परिभाषा कालिदास के काव्य में मिल जाती है। आधुनिक युग मे प्रसाद मे इसी परम्परा का पुनर्जागरण हुआ। सौन्दर्य की परिभाषा करते हुये कामायनी मे कवि ने कहा है

उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौन्दर्य जिसे सब कहते है
जिसमें अनन्त अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते है।

कामायनी, पृष्ठ १०२

सौन्दर्य तथा शृगार भावनाओ मे कही कही ऐन्द्रियता का साधारण आभास होते हुये भी दोनो ही कलाकारो ने उनका उदात्तीकरण कर लिया। स्वय प्रसाद को यह प्रेरणा सम्भवत उस महान कवि से प्राप्त हुई। उनकी प्रेममूलक कल्पना मे दर्शन का योग आगे चलकर अधिक हो गया और वे एक सौन्दर्यवादी के साथ ही दार्शनिक कलाकार भी हो गये। अपने काव्य वैभव, सूक्तियो और उपमाओ मे कालिदास अमर है, उनका कला पक्ष अत्यन्त प्रौढ है। प्रसाद का चिन्तन क्षेत्र अधिक सबल है। यद्यपि आरम्भ मे ही आदर्श के बीज निहित थे, किन्तु क्रमश: इनका विकास हुआ और प्रौढता आती गई। कालिदास सर्वत्र अपने सुन्दर स्वरूप मे ही दिखाई देते है। कविता, नाटक सभी मे उनकी महान कला का आभास मिल जाता है। इन दोनो ही कलाकारो में उनका युग प्रतिबिम्बित हुआ और देश काल से प्रेरणा लेकर उन्होने समस्त बिखरी हुई सामग्री का उपयोग किया। कालिदास मे भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग का सम्पूर्ण वैभव प्रतिभासित हुआ। प्रसाद मे बीसवी शताब्दी की सघर्षकालीन परिस्थितिया सन्निहित हुई। अपने देश काल का चित्रण करते हुये भी उनके काव्य के मूल मे मानव के शाश्वत उपादान निहित है, जो उसे चिरन्तन बना देते है। परम्परावादी महान कलाकार की विवेचना करते हुये टी० एस० इलियट ने कहा कि उनकी कृति एक प्रौढ मस्तिष्क की वस्तु होती है। सभ्यता और भाषा तथा कवि की शक्ति ही काव्य को सार्वभौमिकता प्रदान करती है[1]। भावना के व्यापकत्व मे दोनो ही

---

1. What is a Classic—T. S. Eliot, page 10.

कलाकार अपने युग के प्रतिनिधि होकर चिरन्तनता प्राप्त करते हैं। प्रसाद के रूप में हिन्दी मे कालिदास ही आकर प्रस्तुत हो गये, जिन्होने सौन्दर्य, काम को उसके उदात्त स्वरूप मे अकित किया।

अश्वघोष, भारवि, माघ आदि—

कालिदास के अनन्तर सस्कृत की काव्य परम्परा महाकवि से प्रभावित होकर ही आगे बढती है। सभी कवि किसी न किसी रूप में उनका ऋण स्वीकार करते है। रगमच की दृष्टि से उस समय नाटको की ही अधिक रचना हुई और भास का 'स्वप्नवासवदत्ता', विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस', शूद्रक का 'मृच्छकटिक' आदि कृतिया मिलती है। नाटको में काव्य और कला का विकास हुआ और परम्परा आगे चलती रही। अश्वघोष ने कालिदास के पश्चात ही 'वुद्धिचरित' महाकाव्य की रचना की। बौद्धधर्म से प्रभावित उनकी इस रचना में गौतमबुद्ध की जीवन घटनाओ का विस्तृत उल्लेख है। धर्म प्रतिपादन का अधिक ध्यान रखने के कारण उन्होने स्वाभाविक शैली को ग्रहण किया। बौद्ध धर्म का सिद्धान्त और दर्शन उन्होने अत्यन्त काव्यात्मक रीति से प्रस्तुत किया। काव्य में दार्शनिक नियोजना की दृष्टि से वे कवि प्रसाद के अधिक समीप आ जाते है। अश्वघोष के बौद्ध होने की भाति प्रसाद भी दर्शन से प्रभावित थे और अपने काव्य मे उन्होने चिन्तन और दर्शन पक्ष को अकित किया। गीतों के अतिरिक्त 'कामायनी' के अन्त मे प्रत्यभिज्ञा दर्शन का निरूपण हुआ। दोनो ही कवि दार्शनिक और सैद्धान्तिक प्रतिपादन करते हुये भी उपदेशात्मक अथवा नीरस शैली नही ग्रहण करते। काव्य म दर्शन सन्निहित हो जाता है। अश्वघोष के अनुसार, 'निर्वाण दीपक की भाति है, जो अन्तिम समय तक आलोक विकीर्ण करता है।' इसी के साथ अश्वघोष ने प्रेम, विरह, आकर्षण आदि की अन्य सहज मानवीय भावनाओ को भी काव्य में स्थान दिया और बौद्ध दर्शन की करुणा के प्रतिपादन मे अधिक सफल हुये। प्रसाद के काव्य मे भी विभिन्न दर्शनों की छाया है।

सस्कृत मे महाकाव्य और नाटक की धारायें साथ ही साथ चलीं और कवियो ने दोनो ही क्षेत्रो में कार्य किया। काव्य की व्यापक रूपरेखा मे ही नाटक, महाकाव्य आदि सभी का समावेश था। नाटक मे गद्य पद्य का मिश्रण भी मिलता है और उस क्षेत्र में कालिदास का प्रभाव है। महाकाव्य की वाल्मीकि से चली आती हुई परम्परा कालिदास मे एक अन्य स्वरूप धारण कर लेती है। इतिहास और पुराण के कथानको को लेकर महाकाव्य निर्माण की परिपाटी ही चल पड़ी और अनेक ऐतिहासिक प्रवन्धकाव्य सम्मुख आये। अश्वघोष के अन्तर भारवि का 'किरातार्जुनीय' एक प्रसिद्ध महाकाव्य है। शैव भारवि का 'अर्थगौरव' प्रसिद्ध

है और वे चमत्कारी कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। एक ही शब्द में अनेक अर्थों की व्यंजना हो जाती है। अलंकारों में काव्य आच्छादित रहता है। लगभग सातवीं शताब्दी में माघ का प्रवेश हुआ। वैष्णव होने के कारण उनके काव्य में विष्णु की अभ्यर्थना भी प्रचुर मात्रा में है। उपमा, अर्थ-सौन्दर्य और लालित्य तीनों ही गुणों से संस्कृत के आचार्यों ने उन्हें विभूषित किया है। माघ में दर्शन, काव्य, कला का सुन्दर समन्वय हुआ और 'शिशुपालवध' में उसका पूर्ण विकास दिखाई देता है। दृश्य वर्णन में माघ को अत्यन्त सफलता प्राप्त हुई। कालिदास की भांति वे विस्तृत वर्णन नहीं करते किन्तु अलंकृत शैली के द्वारा एक चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। उनका प्रभातवर्णन बड़ा सजीव है

प्रहरकमपनीय स्व निदिद्रासतोच्चैः
प्रतिपदमुपहूत. केनचिज्जागृहीति ।
मुहुर विशदवर्णो निद्रया शून्यशून्यां
दददपि गिरमन्तर्बुध्यते नो मनुष्य ॥

शिशुपालवध, ११।४९

पर्वत, सन्ध्या, चन्द्रोदय, तथा ऋतु के सजीव वर्णन उन्होंने किये[4]। वास्तव में माघ अलंकारी कवि हैं किन्तु उसी के साथ उनमें पाण्डित्य और काव्य-प्रतिभा भी पर्याप्त है। माघ एक महान पंडित थे। उनका ज्ञान हिन्दू दर्शन, बौद्ध दर्शन, नाट्यशास्त्र, अलंकार शास्त्र, व्याकरण, संगीत आदि शास्त्रों में बड़ा उत्कृष्ट था। माघ ने अपना सम्पूर्ण ज्ञान कविता कामिनी को अर्पण कर दिया है। उन्होंने कविता की बांकी छटा दिखलाने के लिये समस्त संस्कृत साहित्य का उपयोग करने में कुछ भी उठा नहीं रखा है[5]। महाकाव्य में आने वाले सन्ध्या, प्रभात आदि वर्णन स्वयम् में एक परिपूर्ण चित्र प्रतीत होते हैं।

---

४. अपण जलजराजी मुग्धहस्ताग्रपादा बहुलमधुपमाला कज्जलेन्दीवराक्षी ।
अनुपतति विरावैं पत्रिणा व्याहरन्ती रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव ॥

शिशुपालवध—११।४०

रजनी के अन्तिम पहर में ही पूर्वसन्ध्या उषा आ रही है। कमल के समान अगदती [illegible] आंखों में सुन्दर [illegible] लगाकर अपनी चपल, तोतली भाषा में मां के पीछे भागती है। [illegible] रजनी के पीछे दौड़ी चली आती है।

५. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ११५

कथा की धारा को आगे न बढाते हुये भी वे एक स्वतन्त्र अस्तित्व रखते है। 'कामायनी' का प्रत्येक सर्ग अपनी पृथक सत्ता रखता हुआ स्वयम् में पूर्ण दिखाई देता है। सर्ग तथा वर्णन की इस भावात्मक, कलात्मक प्रणाली मे माघ और प्रसाद के महाकाव्यो में समानता है। 'शिशुपाल वध' मे प्राप्त होने वाले चित्र प्रकृति के उपादानो को लेकर चलते है। 'कामायनी' का मनोवैज्ञानिक निरूपण भी कवि ने बडे विस्तार से प्रस्तुत किया। मनु और श्रद्धा की आन्तरिक भावनाये पर्याप्त समय तक चलती रहती है। उस अवसर पर कथा की गति मन्थर पड जाती है किन्तु कवि की तूलिका अपनी सम्पूर्ण कुशलता से कार्य करती है। स्वतन्त्र वर्णन की इस स्वतन्त्र प्रणाली को दोनो ही कवियो मे देखा जा सकता है और इस दृष्टि से वे एक दूसरे के अधिक समीप प्रतीत होते है।

भवभूति--

मस्कृत काव्य मे अनेक कवियो ने कार्य किया और उनमे से कुछ ने तो महाकाव्यो की रचना भी की, किन्तु कला की दृष्टि से उनका अधिक महत्वपूर्ण स्थान नही। लगभग आठवी शताब्दी मे भवभूति ने अपनी करुण धारा मे काव्य को परिप्लावित किया। वे करुण रस को मुख्य स्वीकार करते है

एको रस करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तवुद्वुद्तरगमयान विकारा
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समग्रम्॥
उत्तररामचरित, ३।४७

'एक ही जल कभी भवर, कभी वुद्वुद् तथा कभी तरग के रूप मे आता है, किन्तु वास्तव मे वह जल ही है। करुण रस भी इसी प्रकार विभिन्न स्वरूप धारण कर लेता है।'

अपने नाटको मे भवभूति ने करुण भावनाओ का अधिक निरूपण किया और उसमे वे मस्कृत के अनेक कवियो मे आगे है। 'उत्तररामचरित' की सीता मे तो करुणा ही आकर घनीभूत हो गई। राम के वियोग मे सीता 'करुणा की मूर्ति' मात्र प्रतीत होती है। कपोल पाडु और दुर्बल हो गये है। सम्पूर्ण तृतीय अक मे करुणा ही करुणा दिखाई देती है। करुण अनुभूति मे भवभूति अद्वितीय है[६]। 'महावीर चरित' मे वीर रस की प्रधानता है। 'मालती माधव' में प्रेम का सुन्दर चित्रण हुआ। भवभूति पर कालिदास की स्पष्ट छाया है

६ हिस्ट्री आव क्लासिकल सस्कृत लिट्रेचर, पृष्ठ ६२३

और शैली मे पारस्परिक साम्य भी मिलता है। महाकाव्य के निर्माण मे कालिदास ने सश्लिष्ट रूपको की योजना की और नाटको मे पात्रो के सवाद को उसका माध्यम बनाया। भवभूति ने नाटको मे शब्द योजना पर विशेष ध्यान दिया। शब्द मे ही एक विशिष्ट अर्थ की व्यजना हो जाती है। भवभूति वेदान्त, साख्य आदि के भी विद्वान थे और यद्यपि माघ की भाति उनके काव्य का चिन्तन तथा दार्शनिक पक्ष अत्यन्त प्रौढ नही, तथापि कही कही उसका आभास प्राप्त हो जाता है। भवभूति करुणा के द्वारा रस सचार का प्रयत्न करते है किन्तु प्रसाद मे करुणा का ग्रहण एक जीवन दर्शन के रूप मे ही अधिक हुआ। 'कामायनी' मे विरहिणी श्रद्धा का रूप अवश्य 'उत्तर-रामचरित' की सीता की भाति प्रतीत होता है। साधारण नायिकाओ की सी ऊहात्मक अवस्था उनकी नही हो जाती, वरन् वियोग की घड़ियो मे भी वे अपनी गरिमा को जीवित रखती है। भवभूति की करुणा का स्वरूप सार्वभौमिक रहा करता है। नाटक के पात्रो मे उसकी प्रतिष्ठा करने के कारण नाटककार तटस्थ रहता है। प्रसाद की करुणा मे व्यक्तिगत पक्ष अधिक है। 'आसू' के विप्रलम्भ काव्य के अतिरिक्त गीतो मे अनुभूत अश है, इसी कारण कवि भावना का उदात्तीकरण कर अपने व्यक्तित्व के प्रसार मे उसे व्यापक बनाता है। भवभूति की करुणा से रसनिष्पत्ति हो जाती है, किन्तु प्रसाद उसे जीवन दर्शन बना लेते है।

जयदेव——

सस्कृत काव्य मे गीतो की परम्परा भी महाकाव्यो, नाटको आदि के साथ ही चलती रही। कालिदास के 'मेघदूत' मे गीतितत्व की प्रमुखता है। यक्ष की वैयक्तिकता, आन्तरिक अभिव्यजना मुक्तक अथवा लघुकाव्य को गीतिमयता से भर देती है। इस सन्देश काव्य का गीतिकाव्य की परम्परा मे प्रमुख स्थान है और इससे अनेक गीतकारो ने प्रेरणा प्राप्त की। प्राय शृगार रस की ही प्रधानता सस्कृत के आरम्भिक गीतो मे दिखाई देती है और अनुभूति की तीव्रता की अपेक्षा कल्पना का प्रवाह अधिक मिलता है। भर्तृहरि ने अपने तीन शतको मे नीति, शृगार और वैराग्य को ग्रहण किया। अमरुक के मुक्तको मे विलासी का सा उर्म लावण्य है। छोटे छोटे पद्यो मे अर्थ भर दिया गया और इनमे लालित्य भी है। गीतिकाव्य की परम्परा मे शीर्ष स्थान जयदेव का है। राधा कृष्ण के माधुर्य सम्बन्ध को लेकर उन्होने सरस और कोमल भावनाओ का अकन किया। तन्मयता की मात्रा गीतो मे इतनी अधिक बढ जाती

है कि भाषा मे गति, ताल और लय आ जाते है । 'एक पतिभाशाली तथा असाधारण कलाकार के रूप में उनका लक्ष्य काव्य का गीतिमय, चित्रमय, आलकारिक, मुन्दर नथा सरस स्वरूप प्रस्तुत करना था । उनकी प्रवृत्तिया सौन्दर्योन्मुख अधिक है[७] ।' भावना का प्रवाह, भाषा की गतिशीलता और अभिव्यक्ति मे कोमलकान्त पदावली का प्रयोग लेकर गीतो का सर्वथा एक नया स्वरूप सस्कृत मे सर्वप्रथम बार 'गीतगोविन्द' में प्रस्तुत हुआ । भावना के क्षेत्र मे यदि शृगार के आधार पर कृष्ण राधा को नायक नायिका रूप मे स्वीकार किया जा सकता है, तो वैष्णव जन उसमें भक्ति का भी आभास पाते है । कवि स्वयम् तन्मय और रसमय होकर, काव्य निर्माण मे सलग्न दिखाई देता है । भावो की गति के साथ ही भाषा का अलकरण भी मिलता है, जिसमे कल्पना का उन्मुक्त रूप प्राप्त होता है । कथा केवल एक गौण वस्तु मी रह जाती है, और भावनायें घनीभूत होकर आती है । 'गीत-गोविन्द' के बारह मर्गो मे वर्णन का अधिक आग्रह नही, किन्तु भावो का प्रकाशन सर्वत्र मिल जाता है । जयदेव के गीतो मे ग्राम अथवा लोकगीतो का ही स्वरूप अधिक साहित्यिक होकर आया । शैली अधिक परिष्कृत और अभिव्यजना अवश्य अधिक कलात्मक हो गई, किन्तु भावना और अनुभूति की सच्चाई तथा तीव्रता दोनो मे एक ही प्रकार थी । अपने आसपास विखरी हुई सामग्री को देखकर ग्रामीण अनायास ही मुक्तकठ से गा उठता है, उसे उसमें आन्तरिक तृप्ति मिलती है । कवि ने अपने आन्तरिक प्रकाशन के लिये राधा कृष्ण के शृगारिक, मधुर रूपक को लिया । भक्ति की अपेक्षा कवि की सौन्दर्य भावना ही अधिक प्रबल प्रतीत होती है । उनका अत्यन्त प्रसिद्ध गीत है

'ललितलवगलता परिशीलन कोमल मलयसमीरे'

भाव, कला की दृष्टि से जयदेव विश्व के महानतम कलाकारो में से है । भावावेश के साथ ही दर्शन का भी योग कही कही गीतो मे मिल जाता है । सम्पूर्ण गीत परम्परा को जयदेव के गीतगोविन्द ने प्रभावित किया[८] । गीतकार प्रसाद के गीतो का वैयक्तिक पक्ष क्रमश कम होता चला जाता है । 'झरना' के

---

[७] 'As a poet of undoubted gifts his chief object must have been to create a beautiful and finished work of great lyrical, pictorial and [illegible]rbal splendour His emotional temperament pr[illegible] [illegible]rotic-theme' Early History of the Vaisnava Fa[illegible]h and Mo[illegible]ment in Bengal by S K Dev, Page 7.

[८] Hi[illegible] of Classical Sans[illegible]rit Literature, Page 341

गीतो में आन्तरिक प्रकाशन की भावना अधिक है । 'लहर' मे कवि वाह्य निरूपण भी करने लगता है । प्रसाद के प्रणय और विरह गीतो मे भावो की तीव्रता और अनुभूति का गाम्भीर्य अवश्य है, किन्तु प्रवाह की दृष्टि से वे जयदेव के समीप नही रक्खे जा सकते । 'प्रसाद' के गीतो मे दार्शनिक समावेश की प्रवृत्ति बढती ही गई, और 'कामायनी' मे गीति तत्व की प्रधानता होते हुये भी गीतो का प्रवाह मन्द है । गीत चिन्तन के भार से मन्थर गति से चलते है और उनमे निर्झर का सा प्रवाह नही मिलता । वैयक्तिक अनुभूति का सहज प्रकाशन करने वाले गीतो मे 'प्रसाद' ने अलकरण का प्रयास नही किया । वे केवल भावो की ही अभिव्यक्ति करते है, उनमे अलकारो का समावेश अधिक नही हुआ । राधा कृष्ण को ही आधार मानकर चलनेवाले जयदेव अपनी भाव तन्मयता मे गाते दिखाई देते है । उनके गीतो का प्रवाह नैसर्गिक है किन्तु प्रसाद एक सजग और जागरूक दार्शनिक कलाकार की भाति उनमें भाव अथवा दर्शन का प्रतिपादन करते है । यद्यपि दोनो ही कलाकारो में उत्प्रेक्षा और रूपक का बाहुल्य है, किन्तु निस्सन्देह जयदेव के गीतो की गति 'प्रसाद' में नही प्राप्त होती । वर्डस्वर्थ का 'अनवरत प्रवाह' जयदेव मे ही मिल सकता है । शैली और छन्द के अनेक प्रकार प्रसाद के गीतो में प्राप्त होते है । गीतिनाट्य, गीतिरूपक, तथा गीतो की रचना उन्होने की । गीति काव्य के विभिन्न स्वरूपो को 'प्रसाद' ने अपनाया, और कई प्रकार की भावनायें उनमे प्रतिबिम्बित हुई । उनके गीत साहित्यिक, अलकृत शैली के है, जबकि जयदेव मे जन-जीवन की भावना भी प्रतिबिम्बित हुई ।

संस्कृत की विस्तृत काव्य परम्परा मे कला के विभिन्न स्वरूप प्राप्त होते है । प्रबन्ध और मुक्तक दोनो ही शैलिया साथ ही साथ चलती रही और नाटको मे भी गद्य पद्य का समावेश हुआ । प्रसाद के पूर्व भारतीय काव्य मे संस्कृत काव्य के प्रति एक आस्था होने लगी थी । कालिदास का सार्वभौमिक महत्व स्वीकृत हो चुका था । प्रसाद अपने युग की चेतना को लेकर चलना चाहते थे, और साथ ही जीवन के शाश्वत उपादानो का चित्रण भी उनका उद्देश्य था । शैली की दृष्टि से उनमे संस्कृत के कवियो का सा परिष्कार और अलंकरण है । कालिदास की सुन्दर शब्द योजना की भाति उन्होने अपने भावो की अभिव्यंजना के लिये लाक्षणिक प्रणाली का अवलम्ब ग्रहण किया । अपने देश और काल की समस्याओ को साथ लेकर चलने के कारण उनमे भावना के अनेक स्वरूप दिखाई देते है । सौन्दर्य और आनन्द की भावना प्रमुख होते हुये भी राष्ट्रीयता का समावेश है । प्रसाद एक सांस्कृतिक कलाकार है । काव्य-

निर्माण के लिये उन्होने किसी कवि विशेष का अवलम्ब नही ग्रहण किया, किन्तु उनके सम्मुख महान् आदर्श अवश्य थे। रस और आनन्द की विवेचना करते समय उन्होने इन दोनो मे एक समन्वय स्थापित किया[१]। उनका दृष्टिकोण भारतीय है और सस्कृत के कवियो के वे अधिक निकट प्रतीत होते है। आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त की आनन्द कल्पना जीवन के अधिक समीप है। प्रसाद ने अपने काव्य मे रस निष्पत्ति के साथ ही जीवन के आनन्द को भी सन्निहित कर दिया। अपने निबन्धो मे काव्य के विभिन्न स्वरूपो की व्याख्या करते हुये उन्होने सस्कृत काव्य परम्परा की विवेचना प्रस्तुत की। 'काव्य को आत्मा की सकल्पात्मक मूल अनुभूति' मानने में भी भारतीय भावना ही कार्य करती है। वे श्रेय प्रेय, रस अलकार का समन्वय करना चाहते थे, और उनका समस्त काव्य इसी का प्रयास है। सस्कृत काव्य ने प्रसाद को भाव के उदात्तीकरण तथा शैली के परिष्कार की प्रेरणा दी। दर्शन का काव्य में समावेश भी उसी आधार पर हुआ। इस प्राचीन परम्परा को अपना आदर्श मानकर भी प्रसाद ने उसका अधिक अनुसरण नही किया। उनका स्वर मौलिक था। उन्होने नवीन सामग्री का उपयोग किया। यदि एक ओर उनमे कालिदास की कल्पना, भवभूति की करुणा, अभिनवगुप्त का दर्शन है, तो साथ ही आधुनिक मनोविज्ञान तथा युग की सघर्षशील परिस्थितिया भी उनमे समाविष्ट हुई। इसमें सन्देह नही कि प्रसाद का अतीत के प्रति अनुराग है और प्रत्येक क्षेत्र मे यह दिखाई देता है। 'प्रतिध्वनि' कहानी में भी उन्होने कहा है कि 'अतीत और करुणा का जो अश साहित्य मे हो, वह मेरे हृदय को आकर्पित करता है।' प्रसाद का काव्य भारतीय काव्य परम्परा का नवीन चरण है।

विद्यापति—

सस्कृत के अन्तर अपभ्रश युग मे काव्य का निर्माण साम्प्रदायिक आधार पर अधिक होने लगा। जैन कवियो ने सिद्धान्त प्रतिपादन के लिये रचनायें की और उनकी प्रवृत्ति धार्मिक है। नाथपथियो ने भी इसी ओर अधिक ध्यान दिया। इस धार्मिक आधार के अतिरिक्त वीर और शृगार की भावना भी काव्य में क्रमश प्रविष्ट हो रही थी, तथा 'रासो' की परम्परा में इन्ही भावनाओ का समन्वय हुआ। इस प्रणाली को लेकर कई प्रबन्धकाव्यो की रचना 'रासो' के अन्तर्गत की गई, जिसमें वीरता और शृगार की सम्मिलित भावनायें निहित थी। कुछ आगे चलकर विद्यापति ने अधिक स्वतन्त्र पथ का अवलम्ब ग्रहण

---

१. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध

किया और उनकी रचनाओ मे शृगार अपने उन्मुक्त रूप मे आया। जयदेव ने राधाकृष्ण के रूपक द्वारा मधुर भावो का प्रकाशन किया था। विद्यापति के पदो मे भी वही सरसता और भावविह्वलता है। वे शैव थे, किन्तु भाव प्रकाशन के लिये उन्होने वैष्णवो के प्रसिद्ध रूपक का सहारा लिया। राधा कृष्ण को आधार मानकर विद्यापति ने जो काव्य निर्माण किया, उससे पर्याप्त समय तक उन्हे बगाल का वैष्णव कवि कहा गया। बगाल मे आगे चलने वाली चैतन्य आदि की वैष्णव परम्परा को 'पदावली' ने प्रभावित किया। राधा कृष्ण के सौन्दर्य और शृगार का अकन करते हुये 'मैथिल कोकिल' ने भावना और पाडित्य दोनो मे काम लिया। पदो मे एक ओर यदि कवि का भावावेश दिखाई देता है, तो साथ ही उसमे अलकारो का भी समावेश है। सौन्दर्य और रूप का सहज स्वरूप प्रकट होता है। भावना की तीव्रता राधा कृष्ण के मिलन और विरह प्रसगो में देखी जा सकती है। उसमे अनुभूति का अधिक योग है। विरहिणी राधा के चित्रण मे वियोगिनी नायिका का रूप विद्यापति ने प्रस्तुत किया। वियोग की घडियो मे वह सोचती है

मोहि तजि पिया गेल विषम विदेस
नैन वरिसि गेल मेघ असरेस ॥

अनुभूति पक्ष मे विद्यापति एक भावुक सौन्दर्यवादी के रूप मे आते है। मान, मिलन के अवसरो पर अधिक उन्मुक्त हो जानेवाली शृगार भावना क्रमश ऊपर की ओर उठती है, और कही कही एक रहस्यात्मकता भी व्यजित हो जाती है। कवि की जिज्ञासा का उदय होता है, वह शिव के विषय मे उत्कठित हो जाता है:

कौन वन वसथि महेस
केओ नहि कहथि उदेस।

शिव जी का निवास स्थान किसी को ज्ञात नही। जहा कही भी कवि शृगारिक भावनाओ से विमुख हो जाता है, उस रहस्यभावना का समावेश होता है। शृगार के साथ ही भक्ति और रहस्य की भावनायें भी समन्वित हुई। भावो की तन्मयता के ही कारण विद्यापति के पदो मे लोकगीतो का समस्त माधुर्य है। अलकार और पाडित्य उनके साहित्यिक पक्ष को प्रौढता प्रदान करते है। भावना के क्षेत्र मे कवि का प्रेमदर्शन लौकिक से अलौकिक और आदर्श तक चला जाता है। अलकार योजना मे उन्होने किसी प्रणाली का अन्ध अनुसरण नही किया। नायिका के विभिन्न रूपो का अकन उन्होने स्वतन्त्र रीति से ही किया। उनका नखशिख वर्णन अनुभूति और अलकार के द्वारा हुआ। सौन्दर्य का चित्र है,

कवरी भय चामर गिरि कन्दर, मुख भय चाद अकास
हरिनि नयन भय, स्वर भय कोकिल, गति भय गज वनवास
सुन्दरि काहे मोहि सम्भाषि न वासी।

काली सुन्दर वेणी के भय से ही मृग कदराओ में भाग गया। मुख के डर से चन्द्रमा आकाश में छिप गया। नेत्रो से पराजित होकर हरिण, स्वर से हार कर कोकिल और गति से मात खाकर हाथी वन मे भाग गये। हे सुन्दरी! तू अब भी मुझ से सम्भाषण नही करती।

अनुप्रास का प्रयोग करते हुये कवि ने भावना और अलकार का सुन्दर समन्वय किया

कमल मिलल दल मधुप चलल घर विहग गइल निज ठामे
अरे रे पथिक उन थिर रे करिअ मन वढ पातर दुर गामे।

'कमल के दल बन्द हो गये, मधुप घर चल दिये, विहग भी अपने स्थान जा रहे हैं। अरे पथिक, अपने मन को तो स्थिर कर लो! विस्तृत भूमि है, और गाव वडी दूर।'

पदो में अलकार स्वाभाविक गति से आ जाते है और कही कही कवि पाडित्य के द्वारा भी उनका समावेश करता है। हृदय और मस्तिष्क दोनो से ही उन्होने काव्य सृजन में सहायता ली। विद्यापति की वहुमुखी प्रतिभा का विकास मुक्तक के क्षेत्र में ही हुआ। राधाकृष्ण के विभिन्न स्वरूपो का अकन उन्होने छोटे छोटे पदो मे किया। कल्पना के द्वारा उन्होने नवीन उद्भावनायें की, जिससे आगे आनेवाली कृष्ण काव्य परम्परा ने प्रेरणा ली। विद्यापति एक भक्त, शृगारी तथा पडित के समन्वित कवि रूप में प्रतीत होते है। भावना का आवेश जहा प्रवल हो जाता है, उक्ति सहज स्वाभाविक रहती है। रूप वर्णन आदि मे कवि अपने पाडित्य का प्रदर्शन करता है, और अलकार योजना उसकी विद्त्ता का परिणाम है।

विद्यापति के व्यक्तित्व को प्रसाद के निकट रखने पर प्रतीत होता है कि दोनो मे किंचित समानता है। शैव होते हुये भी प्रसाद भक्ति की अपेक्षा दर्शन की ओर अधिक उन्मुख हुये। शिव के कल्याणकारी रूप-वर्णन का अधिक आग्रह न करते हुये उन्होने शैव दर्शन के समरसता और आनन्द को अपनाया। दोनो ही कवि शृगारी, सौन्दर्यवादी होते हुये भी आदर्श की ओर जाते दिखाई देते है किन्तु विद्यापति भक्ति की ओर और प्रसाद दर्शन की ओर मुड जाते है। सौन्दर्य-निरूपण तथा भावाभिव्यक्ति मे इन कवियो ने

किसी सम्प्रदाय अथवा परम्परा का अनुसरण नही किया । विद्यापति जयदेव से अधिक प्रभावित थे और प्रसाद ने भी बिसरी हुई परम्परा का लाभ उठाया । विद्यापति का पाडित्य प्रदर्शन अलकार योजना मे दिखाई देता है, किन्तु प्रसाद ने उसका उपयोग चिन्तन पक्ष को दृढ बनाने तथा दार्शनिक निरूपण मे किया, साथ ही उन्होने उसी मे भाषा का परिष्कार तथा भावो का उदात्तीकरण भी कर लिया । प्रसाद का पक्ष इसी कारण विद्यापति से अधिक साहित्यिक हो गया, और उनका महाकाव्य उसी का प्रतीक है । सौन्दर्यानुभति मे यद्यपि विद्यापति के पदो मे अलकरण का आग्रह भी है, किन्तु दोनो कवियो मे परस्पर समानता है । उपमाये भावाभिव्यजना मे सहायक है । विद्यापति श्रमकणयुक्त मुख की उपमा तारिकाओ से मडित चन्द्रमा से देते है[10] । प्रसाद मे भी भाव सादृश्य का यही स्वरूप मिलता है । नारी की अलको को वे घनशावक मानते है, जो विधु के पास सुधा भरने जा रही है[11] । दोनो ही कवियो के सौन्दर्य निरूपण मे सजीवता है और इसी कारण उपमाओ की नियोजना स्थूल नही है । प्रसाद के 'सुधामय मुख' की भाति ही 'पदावली' का पद है

चाद सार लगे मुख रचना करि लोचन चकित चकोर
अमिय धोय आचर जनि पोछल दह दिस भेल उजोर
कमिनि कोने गढ़लि ।

'चन्द्रमा के सार से मुख की रचना हुई, आखे चकित चकोर की सी है । जल मे मानो अमृत से मुख धोकर, अचल से पोछते ही दसो दिशाओ में उजियारा छा गया ।'

मुक्तक रचना मे विद्यापति और प्रसाद का क्षेत्र एक दूसरे से किंचित दूर हो जाता है । मैथिलकोकिल की 'देसिल बअना' मे स्थानीय प्रभाव है । बगाल मे अभिनव जयदेव का जो प्रभाव पडा, उसका एक कारण यह भी था कि उनकी भाषा वहा के लिये कुछ परिचित सी थी । प्रसाद एक सास्कृतिक

---

१०. तनु परसल विन्दु रे
नेउछि नहाउल मुनखल इन्दु रे ।

११ घिर रहे ये घुंघराले बाल
अंस अवलम्बित मुख के पास
नील घन शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास । ...

कामायनी...'श्रद्धा' सर्ग ।

और साहित्यिक कलाकार है। उनका दृष्टिकोण भाषा तथा शैली के क्षेत्र मे कालिदास की भाति है। वे अधिक साहित्यिक और परिष्कृत रूप में आते है। जीवन दर्शन के क्षेत्र मे विद्यापति क्रमश शृगार से होते हुये भक्ति और रहस्य की ओर भी जाते है। सौन्दर्य और प्रेम के साथ ही प्रसाद जीवन-सघर्ष को ग्रहण करते है। केवल एक मुक्तक रचयिता के रूप में विद्यापति के पदों मे अधिक सरसता और मधुरता है। चिन्तन की प्रौढता मे प्रसाद वहुत आगे है। उनका क्षेत्र भी विस्तृत है और उसमे मानव की अनेक जीवन दशाओ का समावेश हुआ। इन दोनो ही कवियो मे समन्वित स्वरूप प्राप्त होता है। वे भावुक, पडित, कलाकार रूप मे सम्मुख आते है।

निर्गुण काव्य—

भारत की वदलती हुई सामाजिक परिस्थितियो के साथ ही काव्य की धारा मे भी परिवर्तन होते रहे। हिन्दू मुसलमानों के पारस्परिक सम्पर्क से एक नवीन सम्यता का विकास हुआ। कई महापुरुषो ने उन दोनो के सम्वन्धो को अच्छा वनाने का प्रयास किया और वोलचाल की सीधी सादी भाषा को काव्य का माध्यम वनाया। नामदेव ने महाराष्ट्र मे इसी का प्रयत्न किया। उनके नाथ पथ तथा निर्गुण धारा के ही प्रमुख कवि कवीर है, जिन्होंने ज्ञान और व्रह्म का उपदेश दिया। उनका लक्ष्य काव्य के द्वारा सामाजिक सुधार ही अधिक था, इस कारण उन्होने जनता की भाषा को अपनाया। 'राम रहीम' की अभिन्नता वताते हुये, उन्होंने 'निर्गुण व्रह्म' को प्रतिष्ठित किया। रूपको और अन्योक्तियो के द्वारा कवीर ने अपने मत का प्रतिपादन किया जिसमे रहस्य का भी आभास मिलता है। आत्मा परमात्मा को विभिन्न रूपको के द्वारा वे समझाने का प्रयत्न करते है। उलटवासियो के मूल मे यही रहस्य की भावना है। उनका रहस्यवाद एक निर्गुण भक्त का है, जिसमे ज्ञान का आग्रह है।

सूफी कवि—

अपभ्रंश कवियो के अनन्तर भारतीय काव्य मे प्रेममार्गी सूफी कवियो की विचारधारा ने प्रसाद को प्रेरणा दी। ईरान और फारस मे प्रचलित सूफियो की प्रेम कल्पना मे भारतीय सूफियो का स्वरूप किंचित भिन्न हो गया। उसमें भारतीय परम्परा का भी योग हुआ और उसने देश की काव्य धारा को आगे वढाया। सूफी कवियो में भारतीय दर्शन से निकटता दिखाई देती है। लौकिक से अलौकिक तक जाने का उनका प्रयास प्रेम को अधिक महत्व देना है। प्रेम के अभाव में सूफी एक क्षण भी आगे नहीं वढ सकता। वह अल्लाह के 'जमाल' पर

जान देता है और उसी के सहारे आगे की ओर चलता है।' अपनी हस्ती को फना कर देने मे उसे मजा आता है। वह दिमाग की जगह दिल से काम लेता है। सूफी कवि मदिरा, ज्योति तथा सौन्दर्य अनेक प्रतीको द्वारा अपने नैसर्गिक प्रेम की अभिव्यक्ति करते हैं। प्रेम के प्रतिपादन मे उनका पूर्ण भावावेश और हर्षोन्माद दिखाई देता है। प्रणय के विषय मे फरीदुद्दीन अतार का कथन है:

जर्रये इश्क अज हमा आफाक बेह
जर्रये दर्द अज़ हमा उश्शाक़ बेह।

'प्रेम का एक कण भी समस्त ससार मे बढकर है, और थोडी सी पीडा भी समग्र ससार के प्रेमियो से बडी है।

प्रेम को लेकर ही सूफी लौकिक से अलौकिक को प्राप्त करता है। क्रमश वह रहस्य भावना की ओर जाता दिखाई देता है। भारतीय अद्वैत भावना की भाति सूफी दर्शन भी अल्लाह को एक मानकर उसे अत्यन्त महत्व देता है। ईश्वर के विषय मे सनाई ने कहा.

हमेशा बूद पश अज या हमेशा बाशद ऊ बेशक।
बकाला रवना मीगो व मीदा वस्फे ऊ बेचू॥

'उसका न आदि है और न अन्त। उसकी उपमा केवल उसी मे दी जा सकती है।

सूफी कवियो ने अपने प्रेम दर्शन की अभिव्यजना सरस प्रतीको के द्वारा की। बुलबुल, बासुरी, साकी, प्याला, आदि प्रतीको ने रहस्यभावना का उद्घाटन किया। सूफी मसनवियो मे स्त्री पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध का आलम्बन परमात्मा एव आश्रय जीवात्मा है।

भारत मे सूफियो के आने के पूर्व ही कबीर की निर्गुण धारा प्रवाहित थी। उनमे ज्ञान, प्रेम और रहस्य की समन्वित भावना थी और ज्ञान प्रसार के उद्देश्य से सरल भाषा मे काव्य सृजन हो रहा था। सूफियो ने धार्मिक झगडो मे भाग न लेकर 'प्रेम की पीर' को ही अपना साधन बनाया। उनके सम्मुख भारतीय वेदान्त की अद्वैत भावना भी उपस्थित थी, जिसने उनकी प्रेम कल्पना मेल खाती थी। उन्होने प्रेम गाथाओ को लेकर काव्य रचना आरम्भ की, और उसमे शुष्क ज्ञानोपदेश की अपेक्षा सरस प्रणय का अधिक आग्रह किया। कहानियो की कल्पना मे भारतीय वातावरण और प्रणाली को भी उन्होने अपनाया, पर उनके प्रतीक और अभिव्यजना की पद्धति अब भी सूफी थी। अपने प्रेम मे उन्होने जड चेतन को एक कर लिया और मानवीकरण की विशेषता उनमे पाई

जाती है। लगभग कुतबन की 'मृगावती' से आरम्भ होनेवाली भारतीय प्रेम-मार्गी सूफी कविता देश की काव्यधारा का एक अग बन गई और उसने भारतीय काव्य को प्रभावित किया। कुतबन, मझन, आदि सूफी कवियो की अपेक्षा जायसी ने हिन्दी काव्य को अधिक समृद्ध बनाया। पद्मावत को हिन्दी की साहित्यिक प्रवन्ध काव्य परम्परा की प्रथम प्रौढ कृति स्वीकार करना पडता है। काव्य और कला की दृष्टि से इस प्रवन्धकाव्य की कल्पना उदात्त है। रतनसेन ओर पद्मावती की प्रेमगाथा के द्वारा कवि ने प्रेम दर्शन का प्रतिपादन किया। प्रकृति, ऋतु आदि का वर्णन भी उसमे हुआ। जीवन की विभिन्न दशाये उसमे समाविष्ट हुई और एक व्यापक दृष्टिकोण सम्मुख आया। नागमती के वियोग वर्णन मे विप्रलम्व शृगार की सुन्दर व्यजना हुई। अन्त मे कवि सम्पूर्ण काव्य को आत्मा परमात्मा के रहस्यात्मक सम्बन्ध मे परिवर्तित कर देता है

तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरू सुआ जइ पथ दिखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥

सूफी कवियो ने हिन्दी काव्य को प्रेम की सम्पूर्ण भावुकता प्रदान की। उनकी कविता मे प्रेम का भावावेश है, जो उसे रसमय कर देता है। उनके प्रतीक इतने सरस और मधुर थे कि आगे आने वाले कवियो ने उन्हे अपनाया। सूफी काव्य ने मानवीय प्रेम-अभिव्यजना की सरस प्रणाली दी जिसमे अलौकिक, आध्यात्मिक स्तर तक भी कवि जा सकता है।

प्रसाद मूलत प्रेम, सौन्दर्य तथा यौवन के कवि है, और उन्होने इन्ही भावनाओ का अधिक प्रकाशन किया। लौकिक भावनाओ का उन्होने उदात्तीकरण किया और उनके आदर्श रूप को अपनाया। 'झरना' के गीतो मे उर्दू कवियो की प्रत्यक्ष अभिव्यजना शैली दिखाई देती है, जिसमे प्रेमी अपने प्रिय से पराजित होकर निराशा प्रकट करता है। वह कहता है

किसी पर मरना, यही तो दुख है।
उपेक्षा करना, मुझे भी सुख है॥ झरना, पृष्ठ ७२।

प्रसाद को उनके काव्य मे प्रेम की इस साधारण अभिव्यजना मे निरन्तर आगे की ओर बढते हुये देखा जा सकता है। 'आसू' मे प्रेम और विरह की तन्मयता आकर प्रस्तुत हुई। प्रेम का समस्त ताप और वेदना की सम्पूर्ण पीडा कवि के गीतिकाव्य मे प्राप्त होती है। सूफी कवि जहा प्रेम के लौकिक धरातल से ऊपर उठकर, अलौकिक और असाधारण तक जाता है, वहा 'आसू' अपने प्रेम को व्यापक बना देता है। अपनी प्रतीक और अन्योक्ति प्रणाली के

द्वारा जायसी ने पद्मावत को आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध से मिला दिया। प्रसाद अपने प्रेम को समग्र मानवता के कल्याण में नियोजित करते है। 'आसू' में प्रेम की व्यापकता है, जो 'कामायनी' मे जाकर आध्यात्मिक और रहस्यात्मक भी हो जाती है। वहा प्रेम कल्पना को आध्यात्मिक बनाने के लिये भी कवि ने किसी प्रतीक योजना का सहारा नही लिया। 'पद्मावत' की भाति कामायनी रूपक को आरोपित नही करती किन्तु उसका आधार दार्शनिक है। दर्शन प्रेम को उदात्त और आध्यात्मिक बना देता है। 'आसू' का प्रेम लौकिक होकर भी उदात्त है। उसकी प्रेम अभिव्यजना मे सूफियो की सी भावतन्मयता मिलती है। वहा प्रिय का रूप वर्णन करने मे प्रसाद ने सूफी कवियो की प्रतीक प्रणाली से प्रेरणा ली। केवल उपमानो से ही सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर दिया जाता है। सूफी कवि लौकिक से अलौकिक का आभास देते है, किन्तु प्रसाद रूपको से सौन्दर्यांकन करते है। इस दृष्टि से वे सूर के अधिक निकट है :

विद्रुम सीपी सम्पुट में
मोती के दाने कैसे
है हंस न, शुक यह, फिर क्यों
चुगने को मुक्ता ऐसे।

'आसू' का रूप वर्णन प्रतीको के द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म हो गया है, और उसमे अधिक ऐन्द्रियता भी नही आने पाई है। रूप वर्णन तथा प्रेम निरूपण में सूफियो की सी जो पद्धति आसू मे दिखाई देती है वह कई एक स्थलो पर स्पष्ट हो गई है। 'घायल हृदय, छालो का फूटना आदि कल्पनाये फारसी तथा सूफी काव्य में बहुलता से प्राप्त होती है। सम्भवत प्रसाद की इन अभिव्यजनाओं की प्रेरणा उर्दू काव्य ही है। प्रेम के आवेग में फारसी तथा उर्दू के कवि अपने प्रिय के रूपको भी भूल जाते है। उनके हृदय मे केवल प्रेम का ताप ही शेष रह जाता है, जिसके सहारे वे अन्त तक चले जाते है। लिंग-विपर्यय तथा मानवीकरण की यह पद्धति उनमें अधिक मात्रा में प्राप्त होती है। उनका माशूक स्त्री पुरुष दोनो ही रूपों में आता है। 'आंसू' मे भी कवि कभी कभी अपने प्रिय को पुरुष रूप में अंकित कर देता है। सम्पूर्ण रूप वर्णन नारी का है, किन्तु कहीं कहीं भावावेश मे कवि लिंग-विपर्यय कर जाता है :

मादकता से आये तुम
संज्ञा से चले गये थे।

'प्रसाद' मे मानवीकरण भी पाया जाता है। जडता मे चेतनता के आरोप की प्रणाली भारतीय काव्य मे भी प्राप्त होती है। स्वयम् वाल्मीकि के राम ने प्रकृति से अपनी सीता का पता पूछा था। सूफी अपने मानवीकरण के द्वारा प्रेम की विह्वलता का परिचय देते है, किन्तु सस्कृत काव्य मे उससे रसनिष्पत्ति में सहायकता ली गई। कालिदास की प्रकृति सजीव रूप मे प्रस्तुत हुई। प्रसाद की मानवीकरण प्रणाली भी उसी के समीप है। सूफी काव्य मे प्रतीको का बाहुल्य है। प्रतीको के अभाव मे उनकी कविता आगे नही बढ पाती, वे काव्य के प्राण है। प्रसाद ने रूपवर्णन को सूक्ष्मतम करने के लिये प्रतीको का अवलम्ब अवश्य लिया किन्तु उनके प्रतीक स्वनिर्मित है। उसमे कवि की मौलिकता निहित है। प्रलय घटाये, झझा, जलनिधि, पतझड, विधु आदि अनेक प्रतीक उनके अपने हैं और वे एक विशेष भावना का परिचय देते है। प्रसाद के आरम्भिक काव्य में सूफी और फारसी कवियो की जो छाया दिखाई देती है, वह क्रमश दूर होती गई। कवि ने भारतीय दर्शन के योग से उसे एक नवीन रूप दे दिया। उसकी प्रेम कल्पना अन्त मे एक आध्यात्मिक धरातल पर आकर प्रस्तुत हुई। इस आध्यात्मिकता मे धार्मिकता के स्थान पर जीवन के उच्चादर्शो का ही अधिक आग्रह है।

सूर, तुलसी---

ज्ञान के शुष्क वातावरण से तृप्ति न होते देखकर कतिपय भक्तो ने सगुणोपासना पर जोर दिया। इस सगुण धारा मे कृष्ण और राम की दो धाराये चली। श्री वल्लभाचार्य के वैष्णव आन्दोलन ने कृष्ण भक्ति की प्रतिष्ठा करते हुये सृष्टि को कृष्ण की लीला माना। वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख कवि सूरदास है। एक स्वच्छन्द कवि के रूप मे सूर ने कृष्ण की समस्त लीला को चित्रित किया। वे पूर्व कवियो की भाति केवल साम्प्रदायिक मत का प्रतिपादन ही नहीं चाहते थे, वरन् उन्होंने भक्ति और काव्य का सुन्दर समन्वय किया। सूर ने रूपको के द्वारा सौन्दर्य वर्णन की जिस परम्परा को जन्म दिया, उसी का स्वरूप प्रसाद मे भी मिलता है। सूर के भावना क्षेत्र की व्यापकता की चर्चा करते हुये प्रसाद ने लिखा है कि 'कृष्ण मे प्रेम, विरह और समर्पण वाले सिद्धान्त का प्रचार कर के भागवत के अनुयायी वल्लभस्वामी चैतन्य ने उत्तरी भारत में उसी कारण अधिक सफलता प्राप्त की कि उनकी धार्मिकता मे मानवीय वासनाओ का उल्लेख उपास्य के आधार पर होने लगा था। साहित्य दृष्टि मे कृष्णचरित को ही प्रधानता दी[१]।' सूर

---

१. काव्य और कला, पृष्ठ ८३

में विवेक और आनन्द का जो समन्वय प्रस्तुत हुआ, वह प्रसाद के लिये सम्भवत एक प्रेरणा बना[१३]। वे एक ऐसे समय में कार्य कर रहे थे जब कि यथार्थ और आदर्श का द्वन्द चल रह था, और इस अवसर पर उन्हे रसवादी कवियो ने प्रभावित किया। भक्त सूर की भाति ही तुलसी ने राम को अपना आदर्श माना। उनका लक्ष्य भी कबीर की तरह सामाजिक था, किन्तु काव्य पक्ष की प्रौढता भी उनमे आई। वे हिन्दी काव्य के आदर्श रूप अवश्य स्वीकार किये जाते है, किन्तु उनकी परम्परा संघर्षशील युग में अधिक आगे न जा सकी। राम कथा को आधार मानकर चलनेवाले मैथिलीशरण को भी उसकी रूपरेखा में परिवर्तन करना पडा। प्रबन्धकाव्य के रूप मे इसी कारण रामचरितमानस और कामायनी में अन्तर है। तुलसी मे सर्वत्र एक नैतिकता का आग्रह रहता है, जो भक्त कवियो के लिये आवश्यक है। बीसवी शताब्दी के प्रसाद अपने युग की चेतना से प्रभावित होकर यथार्थ का भी निरूपण करते है, यद्यपि उनका मूल स्वर एक आदर्शवादी कवि का ही है। अभिव्यंजना की शैली मे प्रसाद तुलसी की भाति कविता की प्रकृत शैली को लेकर चलते है, जिसे अधिकाश महाकवियों ने अपनाया। तुलसी और प्रसाद की प्रणाली मे अन्तर अवश्य है, किन्तु दोनो ही एक लक्ष्य पर पहुँचते है। यदि एक वाल्मीकि की परम्परा के निकट है तो दूसरा कालिदास के, परन्तु उनका लक्ष्य आदर्श का निरूपण तथा आनन्द की प्राप्ति ही है। सूर, तुलसी के साथ ही प्रसाद हिन्दी के प्रमुख कवि है।

शृंगार काल--

मध्ययुग के उत्तर भाग मे भक्ति के स्थान पर अपभ्रंशकाल की शृंगार परम्परा पुन प्रवाहित हुई। कविता नायक नायिका में उलझ गई और जीवन के व्यापक क्षेत्र से उनका सम्बन्ध छूट गया। पाण्डित्य प्रदर्शन तथा शृंगारी पदावली मे राजाओं का मनोरंजन करने में कवियो प्रतिभा अधिक व्यय हुई। कुछ कवि चारण की स्थिति तक पहुँच गये, और उन्होने अपने राजाओ का यशोगान किया। शृंगार तथा नखशिख वर्णन में बिहारी ने गागर मे सागर भरा, तो केशव अपने चमत्कार से कवि बन गये। उधर भूषण ने शिवाजी का गुणगान किया। शृंगारी कविता में शैली की दृष्टि से अनेक कलात्मक प्रयोग हुए। छोटी छोटी मुक्तक रचनाओं में किसी एक ही भावना को घनीभूत करने का प्रयास किया गया। लक्षण ग्रन्थो के निर्माण में

१३. 'ऐसो ब्रह्म लेइ का करि है।' ...चित्राधार, पृष्ठ १८६

कवियो की दृष्टि सूक्ष्म अकन और अर्थ-गाम्भीर्य की ओर उन्मुख हुई। अल-कारसमन्वित होती हुई भी विहारी की रचनायें अपने उक्ति चमत्कार में सुन्दर हैं। उनकी सरस, मार्मिक अभिव्यजना सस्कृत कवि अमरुक की भाति है।

शृगार युग में परम्परा से अलग चलनेवाला स्वच्छन्द कवियो का भी वर्ग है। घनानन्द, द्विजदेव, ठाकुर, आदि शृगार को ही काव्य मे प्रमुखता देते हुए भी परम्परा का अधिक अनुसरण नही करते। चली आती हुई परिपाटी को त्याग कर उन्होंने नवीन मार्ग ग्रहण किया। उनमें अनुभूति का अश अधिक है और लक्षण ग्रन्थो को देखकर काव्य निर्माण की प्रवृत्ति उनमें कम मिलती है। भावना का अधिक आग्रह इन कवियो मे प्राप्त होता है। शृगार के इन स्वच्छन्दवादी कवियो ने आन्तरिक प्रकाशन, लाक्षणिक व्यजना, अर्थ गाम्भीर्य पर ज्यादा जोर दिया, जिससे काव्य में रसात्मकता आई। प्राय प्रेम को ही काव्य का विषय बनाया गया, और उसी के अन्तर्गत विभिन्न अन्तर्दशाएँ प्रदर्शित की गई। प्रेम के पूर्ण परिपाक के लिये ही सयोग की अपेक्षा वियोग पक्ष को प्रमुखता प्राप्त हुई। कवित्त, सवैया के मुक्तको में घनानन्द ने अपनी 'नेह की पीर' को प्रकाशित किया। उनकी लाक्षणिकता, चित्रमयता और विरोधात्मकता की शक्ति असाधारण है[१८]। भाषा और भावना के सामजस्य ने उनकी कविता को और भी अधिक परिपुष्ट किया। सर्वत्र एक स्वाभाविकता सी दिखाई देती है। कोकिल आदि में अपने भावो का आरोप करते हुये वे कहते हैं

कारी, क्रूर, कोयल कहा को वैर काढ़ति री
कूकि कूकि अबहीं करेजो किन कोरि लै।
पैंड परे पापी कलापी निसि द्यौस ज्यों ही
चातक रे घातक ह्वै तूह कान फोरि लै।

अनुभूति की सच्चाई, भाव की तीव्रता, अभिव्यजना की लाक्षणिकता, भाषा की वक्रता मे घनानन्द का महत्वपूर्ण स्थान है। द्विजदेव ने प्रकृति के विभिन्न रूपो का चित्रण करने मे अपनी स्वतन्त्र कल्पना का परिचय दिया। ठाकुर की भावसम्पन्न कविता मे लोकोक्ति का भी समावेश हुआ। शृगार के स्वतन्त्र पथ का अनुसरण करनेवाले इन कवियो ने काव्य के आन्तरिक पक्ष पर अधिक ध्यान दिया। भावना का उसमे अधिक आग्रह है और अधिकाश रूप मे प्रेम को ही काव्य का विषय बनाया गया। मार्मिक अभिव्यजना के लिये वियोग पक्ष का ग्रहण अधिक किया गया, और उसी के

१८. घनानन्द कवित्त . . भूमिका।

द्वारा भाव के विभिन्न रूपों का प्रदर्शन हुआ। मन की अनेक अन्तर्दशायें उसमें प्राप्त हो जाती है। कविता का नैसर्गिक स्वरूप ही इन कवियों ने अपनाया। प्रसाद की ब्रजभाषा की रचनायें घनानन्द आदि स्वच्छन्द शृंगारी कवियों के अधिक समीप है। स्वयम् भारतेन्दु ने भी उन्ही से प्रेरणा प्राप्त की थी। घनानन्द और प्रसाद की रचनाओं को एक दूसरे के निकट प्रस्तुत किया जा सकता है। दोनो कवियो में व्यक्तिगत अनुभूति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। घनानन्द में वह अन्त तक बनी रहती है, किन्तु प्रसाद में उसका उदात्तीकरण हो जाता है, और वे दर्शन की ओर चले जाते है। प्रेम का संगीत गाने वाले इन कलाकारो ने उसे सम्पूर्ण भावावेश से भर दिया, और उन पर सूफी प्रेम कल्पना की भी छाया प्रतीत होती है। अपने प्रिय से बाते करते हुये घनानन्द अपनी एकनिष्ठता का परिचय दे देते है. -

'घनआनन्द प्यारे सुजान सुनो, इहा एक ते दूसरो आक नहीं।'

प्रसाद की प्रेम भावना त्याग को अधिक महत्व देती है; उसमे ऐंद्रियता कम है। प्रेम के आवेश मे जडता मे चेतनता का आरोप भी हो जाता है, जो काव्य मे मार्मिकता ले आता है। मन की जिन अन्तर्दशाओ को घनानन्द ने अंकित किया, वे प्रसाद काव्य का मनोवैज्ञानिक आधार बन गई है। इन रस-वादी कवियो मे प्रेम का ही पवित्र रूप प्राप्त होता है।

भारतेन्दु—

शृंगार का भारतेन्दु ने और भी अधिक परिष्कार किया। भावना के क्षेत्र मे उनकी दो प्रवृत्तियां स्पष्ट दिखाई देती है। एक ओर यदि वे भक्ति, शृंगार की रसमय कविता के निर्माण मे प्रयत्नशील है, तो साथ ही उनमें देश प्रेम की भावना भी प्रबल है। अपने समय की सामाजिक परिस्थिति का चित्रण करने के लिये यद्यपि उन्होने गद्य को ही अपना माध्यम चुना तथापि कविता में भी कही कही वही भावना झलक जाती है। इस प्रकार की रच-नाये सीधी, सादी, साधारण भाषा मे है, और उनमे कवि की विशेष प्रतिभा नहीं मिलती। 'हाय भारत' मे वे कहते है .

हाय! वहै भारत भुव भारी। सब ही विधि सो भई दुखारी॥
हाय पंचनद, हा पानीपत। अजहुँ रहे तुम धरनि विराजत॥

देशप्रेम तथा सामाजिक सुधार के लिये लिखी गई कविताओं का लक्ष्य लोकहित है। भारतेन्दु के कवि हृदय का सच्चा स्वरूप उनकी प्रेमविषयक कविताओं मे दिखाई देता है। वैष्णव कवियो की भाँति लौकिक पक्ष तथा

भक्ति का अद्‌भुत समन्वय यहा हो गया है। शृंगारकालीन स्वच्छन्दतावादी कवियो की परम्परा का विकास भारतेन्दु की शृगारी रचनाओ द्वारा हुआ। इनके विषय में शुक्ल जी का मत है कि, "भारतेन्दु जी के शृगार रस के कवित्त, सवैये बडे ही सरस और मर्मस्पर्शी होते थे। 'प्रिय प्यारे तिहारे निहारे विना, दुखिया अखिया नहि मानति हैं', 'मरे हूँ पै आखें ये खुली ही रहि जायगी' आदि उक्तियो का रसिक समाज में बडा आदर रहा[१५]।" भारतेन्दु साहित्य का मूल स्वर यद्यपि राष्ट्रीय भावना, समाज सुधार है, किन्तु वास्तव मे वे एक रसवादी कलाकार हैं, जो अनभूति और भावना को ही काव्य का प्राण स्वीकार करते हैं। नाटको के बीच में आने वाली कविताओ मे भी उनका हृदय पक्ष ही प्रवल है। 'चन्द्रावली' नाटिका में भी प्रेम का गीत गाया गया है। 'प्रेममालिका', 'प्रेम माधुरी', 'प्रेमप्रलाप' आदि मे शृगार, भक्ति, प्रेम की अनेक कवितायें हैं। उनमे कवि कृष्ण की भक्ति से अनुप्राणित तो है ही, किन्तु स्वयम् उसकी व्यक्तिगत अनभूति भी प्रकाशित हुई। अनुभूति का यह सहज स्वरूप भावो मे मार्मिकता ले आता है। ब्रजभाषा के प्रचलित शब्दो का ही व्यवहार करके भारतेन्दु ने अभिव्यजना को सरसता प्रदान की। उनका स्वर घनानन्द आदि हृदयवादी कलाकारो की भाति ही प्रतीत होता है। विदा गान गाते हुये वे कहते हैं.

> आजु लौं जौ न मिले तो कहा
> हमतो तुम्हरे सब भाति कहावैं।
> मेरो उराहनो है कछु नाहि
> सबै फल आपने भाग के पावैं।
> जो 'हरिचन्द' भई सो भई
> अब प्राण चलो चहैं तासों सुनावैं।
> प्यारे जू! है जग की यह रीति
> विदा के समय सब कठ लगावैं।

'भारतेन्दु' के वहुमुखी व्यक्तित्व, असाधारण प्रतिभा ने अपने युग का भली भाति पथप्रदर्शन किया, और आगे आने वाली परम्परा को भी उनसे गति प्राप्त हुई। प्रसाद के पूर्व यही परम्परा थी, और वे सहज ही इससे प्रभावित हुये। अपने कवि जीवन के आरम्भ में ही उन्होने 'भारतेन्दु प्रकाश' कविता

१५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ५०४

लिखी थी, जिसमें उन्होंने भारतेन्दु की प्रशंसा की[१६]। इस प्रकार भारतेन्दु से प्रसाद को बड़ी प्रेरणा प्राप्त हुई और ब्रजभाषा की कविताओं में उसकी छाया देखी जा सकती है। प्रसाद में भारतेन्दु की भांति काव्य की सामाजिक और व्यक्तिगत दो विचारधाराएं पृथक होकर नहीं चलती। प्रसाद क्रमश विकास की ओर अग्रसर होते गये, और अन्त में उनकी व्यक्तिगत अनुभूतियां समष्टि तक पहुँच गईं। प्रसाद एक सांस्कृतिक कलाकार हैं, किन्तु भारतेन्दु की कृतियों का सामाजिक मूल्य अधिक है। अपनी आरम्भिक प्रेममूलक शृंगारी रचनाओं में प्रसाद रीतिकाल की स्वच्छन्द काव्य परम्परा को भारतेन्दु की भांति आगे बढ़ाते हैं। भारतेन्दु की प्रेमविषयक कविताओं में आत्मसमर्पण, त्याग और पवित्र प्रेम की भावना सन्निहित है। उसकी अभिव्यक्ति में अनुभूति का सत्य प्रतिफलित हुआ। स्वयम् प्रसाद भारतेन्दु को रसानुभूति के महत्व का प्रतिष्ठापक स्वीकार करते हैं, 'जिन्होंने साहित्य की भावधारा को वेदना तथा आनन्द में नए ढंग मे प्रयुक्त किया। उन्हीं के द्वारा यथार्थवाद भी पल्लवित होता रहा[१७]। इसमें सन्देह नहीं कि प्रसाद का काव्य क्रमश दर्शन की ओर अग्रसर होता गया, किन्तु उसके मूल में प्रेम और आनन्द की भावना सदा विद्यमान रही। चिन्तनशील कलाकार ने अत्यन्त कुशलता से भावनाओं का उदात्तीकरण कर लिया। जीवन की अभिव्यक्ति, सरस शब्दावली, शृंगार के परिष्कार की प्रेरणा आरम्भ में प्रसाद को भारतेन्दु से प्राप्त हुई। उनका स्वर भारतेन्दु के अत्यधिक समीप है.

'हिय हरखाओ प्रेम रस बरसाओ आओ
वेगि प्रानप्यारे नेक कंठ सो लगाओ तो।'
(चित्राधार, पृष्ठ १७४)

भाषा के क्षेत्र में भी प्रसाद ने भारतेन्दु की भांति ब्रज के प्रचलित शब्दों का अधिक प्रयोग किया। इसी कारण उनकी रचनायें अधिक सरल और बोधगम्य हैं। ब्रजभाषा से खड़ी बोली में आने पर भी प्रसाद का मूल स्वर प्रेम-प्रधान बना रहा और उन्होंने सदा रस पर दृष्टि रक्खी। इस दृष्टि से ये दोनों ही कलाकार एक दूसरे के समीप हैं।

बंगाल-काव्य—

भारतेन्दु के समय में ही हिन्दी पर बंगला का प्रभाव आरम्भ हो गया था।

---

१६. चित्राधार, पृष्ठ १६४
१७. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ ८५

देश में बाहर से आने वाली नवीन प्रवृत्तियो का सूत्रपात सर्वप्रथम बगाल से हुआ। इन प्रवृत्तियो ने क्रमश अन्य भाषाओ को भी प्रभावित किया। अत्यन्त प्राचीन काल मे उत्तरी भारत साहित्य और सस्कृति का केन्द्र था। हिमालय की पर्वत श्रेणिया अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती थी, और बाहर की विदेशी जातियो ने उसी मार्ग मे भारत में प्रवेश किया। धीरे धीरे समुद्र यात्रा के प्रचलन से स्थिति मे परिवर्तन होता गया, और जब अग्रेजो ने सागर के मार्ग से देश मे पदार्पण किया तो बगाल को सबसे अधिक उत्थान पतन देखने पड़े। बगला काव्य की परम्परा मे इसी कारण अनेक परिवर्तन होते रहे है।

बगला काव्य का प्रौढ स्वरूप वैष्णव कवियो में प्राप्त होता है। चौदहवी शताब्दी मे चडीदास ने अपनी मधुर वाणी से बगाल को रसमय कर दिया। भक्ति, प्रेम का सगीत गाते हुये उन्होने अत्यन्त तन्मय होकर काव्य सृजन किया और इस दृष्टि से वे जयदेव, विद्यापति, सूर और मीरा की परम्परा मे आ जाते है। चडीदास मे भावना का एक सरस और उन्मुक्त रूप मिलता है, जब बिना किसी अलकरण और कृत्रिमता के कवि के गीत मुखरित होते है, और मर्म को छू लेने की असाधारण शक्ति उनमे होती है। "अपने सारल्य, माधुर्य तथा करुणा मे चडीदास अपूर्व है। उनके गीत सीधे हृदय तक चले जाते है[१८]।" उन्होने 'पिरीति' को धरम, करम मानकर उसी के लिये प्राण दे देने को कहा। साथ ही 'मानुष सत्य' को वे सर्वोपरि स्वीकार करते है। सुन्दर उपमानो से स्वाभाविक भावो का प्रकाशन करते हुये एक स्थल पर वे कहते है।

रातें प्रेयसीर रूप धरि, तुम एसेछो प्राणेश्वरी
प्राते करवन देवीर वेशे तुमि समुखे उदितो हेसे
आमि सम्भ्रम भरे रयेछि दांडाये दूर अवनत शिरे
आजि निर्मल वाय शान्त ऊषाय निर्जन नदी तीरे।

"प्राणेश्वरी रात्रि के प्रहर में ही तुम मेरे पास आ गई। प्रभात के समय ही निर्मल समीर चलता है, निर्जन नदी के तट पर शान्त ऊषा आ गई है। और तुम उसी क्षण अपने मधुर हास के साथ मेरे सम्मुख देवी सी प्रकट हुई। मैं सम्भ्रम और श्रद्धा से दूर नतमस्तक हूं।"

चडीदास के गीत बगाल की जनता के कठ से आज भी बरबस ही फूट पड़ते है। आगे आने वाली परम्परा को उन्होने बहुत प्रभावित किया। केवल वैष्णव कवि ही नहीं, स्वयम् चैतन्य महाप्रभु ने भी उनसे प्रेरणा प्राप्त

१८ बंगाली लिटरेचर, पृ० १४

की। भारतचन्द्र, माइकेल, बंकिम तक इस ऋण को स्वीकार करते हैं। स्वयम् रवीन्द्र में चंडीदास की वैष्णव-परम्परा का एक नवीन स्वरूप आकर प्रस्तुत हुआ।

रवीन्द्र—

रवीन्द्र को विश्व साहित्य में प्रमुख स्थान प्राप्त है। उनमें पूर्व पश्चिम, प्राचीन नवीन, व्यक्ति समाज का एक समन्वित रूप प्राप्त होता है। अपने समय की समस्त बिखरी हुई चेतना को उन्होंने साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया और उनकी प्रेरणा देश की संस्कृति एवम् सभ्यता है। अपने विचारों को प्रकाशित करने के लिये उन्होंने एक भारी रंगमंच पर कार्य किया, और विभिन्न प्रकार के साधनों को अपनाया। रवीन्द्र यदि एक ओर अपनी परम्परा से प्रभावित थे, तो साथ ही जीवन के शाश्वत मूल्यों को लेकर वे एक सशक्त विचारधारा और दर्शन के प्रतिपादन के लिये समस्त नवीन सामग्री का उपयोग भी करते हुये दिखाई देते हैं। अपनी बहुमुखी प्रतिभा और महान व्यक्तित्व से उन्होंने देश की विचार-धारा को प्रभावित किया और हिन्दी पर भी उनका प्रभाव पड़ा। स्वयम् छायावाद को आरम्भिक प्रेरणा उनसे प्राप्त हुई और उसके दार्शनिक निरूपण, रहस्यात्मक संकेत, सूक्ष्म अंकन में रवीन्द्र की छाया दिखाई देती है[१९]। क्रमशः यह प्रभाव दूर होता गया, और प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी का स्वतन्त्र व्यक्तित्व सम्मुख आया।

प्रसाद की आरम्भिक रचनाओं की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने से उन पर परम्परा का प्रभाव ज्ञात हो जाता है। विकास के साथ ही साथ कवि को इन बन्धनों से मुक्ति का प्रयास करते हुये भी देखा जा सकता है। कालिदास, तुलसी, घनानन्द, नूर आदि से प्रेरणा प्राप्त करने वाला 'चित्राधार' का कवि अन्त में अपने समय की चेतना को ग्रहण कर लेता है। इस अवसर पर भारतीय साहित्य में रवीन्द्र का व्यक्तित्व सर्वोत्कृष्ट रूप में था और प्रसाद पर उनका प्रभाव देखा जा सकता है। वास्तव में प्रसाद महाकवियों के आदर्श के सहारे ऊँचाई पर चढ़ने का प्रयास कर रहे थे और अपने आरम्भिक प्रयासों में उन्होंने उनसे शक्ति और प्रेरणा प्राप्त की। धीरे धीरे कवि का स्वतन्त्र व्यक्तित्व

१९. 'विशाल भारत', जनवरी १९४२, रवीन्द्र अंक
डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का लेख ... 'रवीन्द्रनाथ और आधुनिक हिन्दी साहित्य'।

प्रकाश में आ गया, और वह स्वयम् उस उच्च भाव भूमि पर जा पहुँचा, जो उसका आदर्श था।

रवीन्द्र और पसाद के कृतित्व की प्रेरणाओ मे पर्याप्त साम्य है। भारत के समन्वय काल मे इन दो कलाकारो ने अपने कार्य को आरम्भ किया और उनमे एक समन्वित रूप का दर्शन होता है। रवीन्द्र में पूर्व और पश्चिम का सगम है, तो प्रसाद में प्राचीन और नवीन का। रवीन्द्र पश्चिम की विचार-धाराओ से परिचित थे और पाश्चात्य साहित्यिक तथा दार्शनिक प्रवृत्तियो का उन पर प्रभाव था। उनकी रहस्यवादी कल्पना में भारतीय दर्शन के साथ ही पाश्चात्य भावना की अतिरजकता का भी योग है। एक ओर यदि वे कवीर और चडीदास से प्रेरणा ग्रहण करते है, तो साथ ही वर्ड्स्वर्थ का प्रकृति की जडता मे चेतनता के आरोप का प्रयत्न उन्हे प्रभावित करता है। इन वाह्य प्रभावो के होते हुये भी रवीन्द्र की मूल प्रेरणा प्रसाद की भाति भारतीय दर्शन तथा सस्कृत साहित्य है। चदडीदास और उनके अनुयायियो की वैष्णव पर-म्परा वगाल में अपना जो प्रभुत्व स्थापित किये हुये थी, उसकी भावुक तन्मयता को रवीन्द्र ने भी अपनाया[२०]। दर्शन के क्षेत्र में वैष्णव परम्परा के अतिरिक्त शाक्तमत से भी उन्हे प्रेरणा प्राप्त हुई और उन्होने नारी के सर्वोत्कृष्ट रूप की कल्पना 'माता' रूप मे की। प्रसाद का दार्शनिक प्रतिपादन कही कही रवीन्द्र की अपेक्षा अधिक कठिन ओर सैद्धान्तिक हो जाता है। 'कामायनी' में इच्छा, ज्ञान, कर्म की रूपरेखा को प्रस्तुत करते हुए कवि पूर्ण दार्शनिक वन जाता है। रवीन्द्र व्यावहारिक जगत का सदा व्यान रखते है और उनका दर्शन जीवन के धरातल को साथ लेकर चलता है। सस्कृत के कवि कुलगुरु कालिदास इन दोनो ही को आदर्शरूप प्रतीत हुये और अपने भाषा-परिष्कार तथा अलकार-योजना में उन्होने उनका अवलम्ब ग्रहण किया। रवीन्द्र ने उर्वशी और शकुन्तला का सौन्दर्य वर्णन करते हुये सूक्ष्म उपमानो का प्रयोग किया है। अलकृत भाषा, नरम भाव सम्पूर्ण ऐन्द्रियता पर एक प्रकार का आवरण सा डाल देते है। प्रसाद की कई प्रारम्भिक कृतियो का कथानक कालिदास से लिया गया है। उनके रूप वर्णन का सूक्ष्म प्रतीक-विधान शृगार का परिष्कार कर लेता है। इस दृष्टि से दोनो ही कवि साधारण स्वच्छन्दतावादी कवियो की ऐन्द्रियता से क्रमश दूर होते जाते है। वे क्रमश आदर्श का निर्माण स्वयम् कर लेते है और उनका व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाता है।

---

२० Rabindranath Tagore, page 27

रवीन्द्र और प्रसाद आनन्दवादी, रसवादी कलाकार के रूप में साहित्य में प्रतिष्ठित है। वे जीवन और जगत के कण कण मे आनन्द खोजते है और उसके प्रति उनकी पूर्ण आस्था है। जीवन के प्रति एक विचित्र निराशा की छाया प्रसाद के काव्य मे दिखाई पड़ती है, किन्तु वह कवि की प्रेम-मूलक भावना का परिणाम है। प्रेम का पूर्ण परिपाक वियोग में प्रदर्शित करने के लिये ही उन्होने उसकी नियोजना की, अन्यथा वे निवृत्तिमूलक वैराग्य का समर्थन नही करते। श्रद्धा ने मनु से कहा था

कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड का चेतन आनन्द

रवीन्द्र को भी जीवन मे अपार प्रेम है। वे कहते है

मरिते चाहि ना आमि सुन्दर भुवने
मानवेर माझे उनमि बांचिबारे चाह।'

"इन अत्यन्त सुन्दर भुवन मे मै मरना नही चाहता, मनुष्यो के बीच जीवित रहना चाहता हूँ।"

जीवन की इस लालसा मे उपभोग और विलास की कामना उमरखैय्याम की भांति नही है, वरन् इसका मूल कारण मानवता के प्रति असीम अनुराग है, अपार प्रीति। इन दोनो मानवीय भावनाओ के कलाकारो मे दो पृथक् चरम सीमाओ को देखा जा सकता है। यदि प्रसाद जीवन को आध्यात्मिकता की उच्च भावभूमि पर ले जाकर श्रद्धाजन्य आनन्दवाद की कल्पना करते है, तो रवीन्द्र उस स्थान पर ईश्वर को खोजते है जहा, कृषक पसीने मे लिप्त हल चला रहा है[२१]। रवीन्द्र का व्यक्तित्व निस्सन्देह इस अवसर पर प्रसाद की अपेक्षा अधिक सामाजिक और व्यावहारिक धरातल पर चला आता है। मानव मे आस्था के कारण इन कवियो ने जीवन की अधिकाश समस्यायो को ग्रहण किया और उनके चिरन्तन मूल्यो को पहिचाना। उनकी दृष्टि अन्तर्मुखी रहती है और वे किसी भी वस्तु के मूल में जाने का प्रयत्न करते है। स्त्री-पुरुष, व्यक्ति-समाज की प्रहेलिकाओ को सुलझाने मे इन जागरूक कलाकारो ने शास्वत सत्य को प्रतिपादित किया। वे मानवता की भावनाओ के व्याख्याकार है। रवीन्द्र एक स्थल पर कहते है

सर्व मानुषेर माझे
एक चिर मानवेर आनन्दकिरण
चित्ते मोर होय विकीरित।

---

२१. गीताजलि, ११

प्रकाश में आ गया, और वह स्वयम् उस उच्च भाव भूमि पर जा पहुँचा, जो उसका आदर्श था।

रवीन्द्र और पसाद के कृतित्व की प्रेरणाओं में पर्याप्त साम्य है। भारत के समन्वय काल मे इन दो कलाकारो ने अपने कार्य को आरम्भ किया और उनमे एक समन्वित रूप का दर्शन होता है। रवीन्द्र में पूर्व और पश्चिम का सगम है, तो प्रसाद मे प्राचीन और नवीन का। रवीन्द्र पश्चिम की विचार-धाराओ मे परिचित थे और पाश्चात्य साहित्यिक तथा दार्शनिक प्रवृत्तियो का उन पर प्रभाव था। उनकी रहस्यवादी कल्पना में भारतीय दर्शन के साथ ही पाश्चात्य भावना की अतिरजकता का भी योग है। एक और यदि वे कबीर और चडीदास से प्रेरणा ग्रहण करते है, तो साथ ही वर्डस्वर्थ का प्रकृति की जडता में चेतनता के आरोप का प्रयत्न उन्हे प्रभावित करता है। इन वाह्य प्रभावो के होते हुये भी रवीन्द्र की मूल प्रेरणा प्रसाद की भाति भारतीय दर्शन तथा सस्कृत साहित्य है। चदडीदास और उनके अनुयायियो की वैष्णव पर-म्परा बगाल में अपना जो प्रभुत्व स्थापित किये हुये थी, उसकी भावुक तन्मयता को रवीन्द्र ने भी अपनाया[२०]। दर्शन के क्षेत्र में वैष्णव परम्परा के अतिरिक्त शाक्तमत से भी उन्हें प्रेरणा प्राप्त हुई और उन्होने नारी के सर्वोत्कृष्ट रूप की कल्पना 'माता' रूप मे की। प्रसाद का दार्शनिक प्रतिपादन कही कही रवीन्द्र की अपेक्षा अधिक कठिन और सैद्धान्तिक हो जाता है। 'कामायनी' में इच्छा, ज्ञान, कर्म की रूपरेखा को प्रस्तुत करते हुए कवि पूर्ण दार्शनिक वन जाता है। रवीन्द्र व्यावहारिक जगत का सदा ध्यान रखते है और उनका दर्शन जीवन के धरातल को साथ लेकर चलता है। सस्कृत के कवि कुलगुरु कालिदास इन दोनो ही को आदर्शरूप प्रतीत हुये और अपने भाषा-परिष्कार तथा अलकार-योजना मे उन्होने उनका अवलम्ब ग्रहण किया। रवीन्द्र ने उर्वशी और शकुन्तला का सौन्दर्य वर्णन करते हुये सूक्ष्म उपमानो का प्रयोग किया है। अलकृत भाषा, नरम भाव सम्पूर्ण ऐन्द्रियता पर एक प्रकार का आवरण सा डाल देते है। प्रसाद की कई प्रारम्भिक कृतियो का कथानक कालिदास से लिया गया है। उनके रूप वर्णन का सूक्ष्म प्रतीक-विधान शृगार का परिष्कार कर लेता है। इस दृष्टि से दोनो ही कवि साधारण स्वच्छन्दतावादी कवियो की ऐन्द्रियता से क्रमश दूर होते जाते है। वे क्रमश आदर्श का निर्माण स्वयम् कर लेते है और उनका व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाता है।

---

२०. Rabindranath Tagore, page 27.

रवीन्द्र और प्रसाद आनन्दवादी, रसवादी कलाकार के रूप में साहित्य में प्रतिष्ठित हैं। वे जीवन और जगत के कण कण मे आनन्द खोजते है और उसके प्रति उनकी पूर्ण आस्था है। जीवन के प्रति एक विचित्र निराशा की छाया प्रसाद के काव्य मे दिखाई पडती है, किन्तु वह कवि की प्रेम-मूलक भावना का परिणाम है। प्रेम का पूर्ण परिपाक वियोग में प्रदर्शित करने के लिये ही उन्होंने उसकी नियोजना की ; अन्यथा वे निवृत्तिमूलक वैराग्य का समर्थन नही करते। श्रद्धा ने मनु से कहा था -

कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड का चेतन आनन्द

रवीन्द्र को भी जीवन से अपार प्रेम है। वे कहते हैं

मरिते चाहि ना आमि सुन्दर भुवने
मानवेर माझे उनमि वाचिवारे चाह।'

"इस अत्यन्त सुन्दर भुवन मे मैं मरना नही चाहता, मनुष्यो के बीच जीवित रहना चाहता हूँ।"

जीवन की इस लालसा मे उपभोग और विलास की कामना उमरखैय्याम की भाति नही है, वरन् इसका मूल कारण मानवता के प्रति असीम अनुराग है, अपार प्रीति। इन दोनो मानवीय भावनाओ के कलाकारो में दो पृथक् चरम सीमाओ को देखा जा सकता है। यदि प्रसाद जीवन को आध्यात्मिकता की उच्च भावभूमि पर ले जाकर श्रद्धाजन्य आनन्दवाद की कल्पना करते है, तो रवीन्द्र उस स्थान पर ईश्वर को खोजते है जहा, कृषक पसीने मे लिप्त हल चला रहा है[२१]। रवीन्द्र का व्यक्तित्व निस्सन्देह इस अवसर पर प्रसाद की अपेक्षा अधिक सामाजिक और व्यावहारिक धरातल पर चला आता है। मानव मे आस्था के कारण इन कवियो ने जीवन की अधिकांश समस्यायो को ग्रहण किया और उनके चिरन्तन मूल्यो को पहिचाना। उनकी दृष्टि अन्तर्मुखी रहती है और वे किसी भी वस्तु के मूल मे जाने का प्रयत्न करते है। स्त्री-पुरुष, व्यक्ति-समाज की प्रहेलिकाओ को सुलझाने मे इन जागरूक कलाकारो ने शाश्वत सत्य को प्रतिपादित किया। वे मानवता की भावनाओ के व्याख्याकार है। रवीन्द्र एक स्थल पर कहते हैं

सर्व मानुषेर माझे
एक चिर मानवेर आनन्दकिरण
चित्ते मोर होक विकीरित।

---

२१. गीतांजलि, ११

प्रकाश में आ गया, और वह स्वयम् उस उच्च भाव भूमि पर जा पहुँचा, ज
उसका आदर्श था।

रवीन्द्र और पसाद के कृतित्व की प्रेरणाओ मे पर्याप्त साम्य है। भार
के समन्वय काल में इन दो कलाकारो ने अपने कार्य को आरम्भ किया औ
उनमे एक समन्वित रूप का दर्शन होता है। रवीन्द्र में पूर्व और पश्चिम व
सगम है, तो प्रसाद मे प्राचीन और नवीन का। रवीन्द्र पश्चिम की विचा
धाराओ मे परिचित थे और पाश्चात्य साहित्यिक तथा दार्शनिक प्रवृत्ति
का उन पर प्रभाव था। उनकी रहस्यवादी कल्पना में भारतीय दर्शन के सा
ही पाश्चात्य भावना की अतिरजकता का भी योग है। एक ओर यदि
कबीर और चडीदास से प्रेरणा ग्रहण करते है, तो साथ ही वर्डस्वर्थ का प्रकृ
की जडता में चेतनता के आरोप का प्रयत्न उन्हे प्रभावित करता है। इन वाह
प्रभावो के होते हुये भी रवीन्द्र की मूल प्रेरणा प्रसाद की भाति भारतीय दर्श
तथा सस्कृत साहित्य है। चदडीदास और उनके अनुयायियो की वैष्णव प
म्परा बगाल में अपना जो प्रभुत्व स्थापित किये हुये थी, उसकी भावुक तन्मय
को रवीन्द्र ने भी अपनाया[२०]। दर्शन के क्षेत्र मे वैष्णव परम्परा के अतिरि
शाक्तमत से भी उन्हे प्रेरणा प्राप्त हुई और उन्होने नारी के सर्वोत्कृष्ट रूप क
कल्पना 'माता' रूप मे की। प्रसाद का दार्शनिक प्रतिपादन कही कही रवी
की अपेक्षा अधिक कठिन और सैद्धान्तिक हो जाता है। 'कामायनी' में इच्छ
ज्ञान, कर्म की रूपरेखा को प्रस्तुत करते हुए कवि पूर्ण दार्शनिक बन जाता है
रवीन्द्र व्यावहारिक जगत का सदा ध्यान रखते है और उनका दर्शन जीवन
धरातल को साथ लेकर चलता है। सस्कृत के कवि कुलगुरु कालिदास इन दो
ही को आदर्शरूप प्रतीत हुये और अपने भाषा-परिष्कार तथा अलका
योजना मे उन्होंने उनका अवलम्ब ग्रहण किया। रवीन्द्र ने उर्वशी और शकुन्त
का सौन्दर्य वर्णन करते हुये सूक्ष्म उपमानो का प्रयोग किया है। अलकृ
भाषा, सरस भाव सम्पूर्ण ऐन्द्रियता पर एक प्रकार का आवरण सा डाल देते है
प्रसाद की कई प्रारम्भिक कृतियो का कथानक कालिदास से लिया गया है
उनके रूप वर्णन का सूक्ष्म प्रतीक-विधान शृगार का परिष्कार कर लेता है
इस दृष्टि मे दोनो ही कवि साधारण स्वच्छन्दतावादी कवियो की ऐन्द्रियता
क्रमश दूर होते जाते है। वे क्रमश आदर्श का निर्माण स्वयम् कर लेते
और उनका व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाता है।

---

२० Rabindranath Tagore, page 27.

रवीन्द्र और प्रसाद आनन्दवादी, रसवादी कलाकार के रूप में साहित्य में प्रतिष्ठित हैं। वे जीवन और जगत के कण कण में आनन्द खोजते हैं और उसके प्रति उनकी पूर्ण आस्था है। जीवन के प्रति एक विचित्र निराशा की छाया प्रसाद के काव्य में दिखाई पड़ती है, किन्तु वह कवि की प्रेम-मूलक भावना का परिणाम है। प्रेम का पूर्ण परिपाक वियोग में प्रदर्शित करने के लिये ही उन्होंने उसकी नियोजना की, अन्यथा वे निवृत्तिमूलक वैराग्य का समर्थन नहीं करते। श्रद्धा ने मनु से कहा था :

कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड़ का चेतन आनन्द

रवीन्द्र को भी जीवन से अपार प्रेम है। वे कहते हैं

मरिते चाहि ना आमि सुन्दर भुवने
मानवेर माझे उनमि बाँचिबारे चाइ।'

"इस अत्यन्त सुन्दर भुवन में मैं मरना नहीं चाहता, मनुष्यों के बीच जीवित रहना चाहता हूँ।"

जीवन की इस लालसा में उपभोग और विलास की कामना उमरखैय्याम की भाँति नहीं है, वरन् इसका मूल कारण मानवता के प्रति असीम अनुराग है, अपार प्रीति। इन दोनों मानवीय भावनाओं के कलाकारों में दो पृथक् चरम सीमाओं को देखा जा सकता है। यदि प्रसाद जीवन को आध्यात्मिकता की उच्च भावभूमि पर ले जाकर श्रद्धाजन्य आनन्दवाद की कल्पना करते हैं, तो रवीन्द्र उस स्थान पर ईश्वर को खोजते हैं जहाँ, कृषक पसीने में लिप्त हल चला रहा है[२१]। रवीन्द्र का व्यक्तित्व निस्सन्देह इस अवसर पर प्रसाद की अपेक्षा अधिक सामाजिक और व्यावहारिक धरातल पर चला आता है। मानव में आस्था के कारण इन कवियों ने जीवन की अधिकांश समस्याओं को ग्रहण किया और उनके चिरन्तन मूल्यों को पहिचाना। उनकी दृष्टि अन्तर्मुखी रहती है और वे किसी भी वस्तु के मूल में जाने का प्रयत्न करते हैं। स्त्री-पुरुष, व्यक्ति-समाज की प्रहेलिकाओं को सुलझाने में इन जागरूक कलाकारों ने शाश्वत सत्य को प्रतिपादित किया। वे मानवता की भावनाओं के व्याख्याकार हैं। रवीन्द्र एक स्थल पर कहते हैं

सर्व मानुषेर माझे
एक चिर मानवेर आनन्दकिरण
चित्ते मोर होक विकीरित।

२१. गीताञ्जलि, ११

'सर्व मनुष्यो के भीतर की एक चिर मानव की आनन्द किरा
चित्त मे विकीर्ण हो जाय ।'

कलात्मक सौष्ठव के क्षेत्र मे रवीन्द्र और प्रसाद एक दूसरे के
समीप हैं । भाषा और कल्पना के द्वारा उन्होने अभिव्यक्ति का अधिक
परिष्कार किया । उदात्तीकरण और परिमार्जन के प्रयास में प्रसाद की
अधिक प्राजल और शिष्ट हो गई । रवीन्द्र के गीतो के मूल में ग्रामगीत
परम्परा भी दिखाई देती है, जो उन्हे जन जीवन के अत्यन्त निकट
देती है । रवीन्द्र के गीतो का बगाल मे पर्याप्त प्रचार है । किसी किसी स्था
रवीन्द्र और प्रसाद के गीतो के भाव एक दूसरे से बिलकुल मिल जा
रवीन्द्र के नन्दिनी नाटक का एक गीत है .

मम स्वप्न तरी खेनेवाली, तू कौन अरी बाले चचल
पालों में मादक पवन लगी, गायनरत प्राण चले पागल ।
तू सुध बुध मुझे भुलाती चल
डगमग निज नाव डुलाती चल
निज दूर घाट पर तू ले चल[२२] ।

प्रसाद का गीत 'ले चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे धीरे' का
इसके अत्यन्त निकट है। दोनो कलाकारो का कलात्मक सृजन एक
विकास के रूप मे हुआ। वे क्रमश ऊँचाई की ओर बढते गये।
व्यक्तित्व का विस्तार होता गया । यदि रवीन्द्र की परणति 'गीताजलि
दिखाई देती है, तो प्रसाद की 'कामायनी' उनके सम्पूर्ण चिन्तन का प
है । 'सोनार तरी, 'चित्रा', 'जीवन देवता', 'मानसी', 'उर्वशी' आदि रवी
सर्वश्रेष्ठ कृतिया अपने कलात्मक सौष्ठव और भाव विन्यास में प्रसाद के
से अधिक उत्कृष्ट हैं, किन्तु 'कामायनी' का महाकाव्यत्व प्रसाद के व्य
को काव्य के क्षेत्र मे आगे बढा ले जाता है ।

रवीन्द्र और प्रसाद की साहित्यिक मान्यतायें रस तथा आनन्द के ही
होने हुये भी किंचित भिन्न हैं । रवीन्द्र का सामाजिक दृष्टिकोण उन्हे
कभी अत्यन्त व्यावहारिक बना देता है। उन्होने इसके लिये नाटक, उप
कहानी आदि का माध्यम अपनाया । प्रसाद का पक्ष दार्शनिक और शास्त्र
है तथा वे मानव जीवन की अधिक गहराई मे जाते हैं। काव्य को 'आत्मा

---

२२. रवीन्द्र साहित्य, ग्यारहवा भाग .. 'नन्दिनी' नाटक का पद्यानुवाद
श्याम सुन्दर शर्मा, पृष्ठ ७९

सकल्पात्मक मूल अनुभूति' स्वीकार कर ये दर्शन और मनोविज्ञान को समन्वित कर देते है। रवीन्द्र के लिये 'कला का कार्य मनुष्य के सच्चे समाज की सृष्टि तथा सत्य, सौन्दर्य के जीवित विश्व का निर्माण है[२१]।' मानव के कवि होते हुये भी रवीन्द्र व्यावहारिक अधिक है और प्रसाद दार्शनिक।

अपने सम्पूर्ण साहित्यिक कृतित्व मे रवीन्द्र प्रसाद से अधिक व्यापक क्षेत्र मे कार्य करते प्रतीत होते है। उनका रगमच अत्यन्त विशाल है। शिशु साहित्य और ग्रामगीतो से लेकर सास्कृतिक रचनाये तक उन्होने प्रस्तुत की। उनके इन प्रयास मे उनका सामाजिक, राजनैतिक लक्ष्य भी निहित है। उन्हे प्रकृति को निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ था और इस कारण उनकी कृतियों मे वह बडे उन्मुक्त रूप मे आई है। अनेक बार देश विदेश पर्यटन करने के कारण उन्हे अनेक सभ्यताओ और सस्कृतियो को देखने का अवसर प्राप्त हुआ तथा यथावसर उन्होने अपने अनुभवो का उपयोग किया। प्रसाद एक एकान्त-सेवी सास्कृतिक कलाकार के रूप में सम्मुख आते है, जिन्होंने अपने अल्प जीवन काल मे ही विशद अध्ययन और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को काव्य में प्रतिष्ठित किया। प्रसाद ने हिन्दी मे वही कार्य किया, जो बगला मे रवीन्द्र कर रहे थे। उनके द्वारा भारतीय साहित्य की वास्तविक परम्परा की पुनर्स्थापना हुई। रवीन्द्र और प्रसाद आधुनिक साहित्य के दो कलाकार है, जिन्होने कालिदास की परम्परा को आगे बढाया। उन्होने नाटक, उपन्यास, कविता, कहानी, निबन्ध आदि के द्वारा देश की सास्कृतिक चेतना को अभिव्यक्ति दी। यदि रवीन्द्र अपने विस्तृत कृतित्व के कारण आगे बढ जाते है, तो प्रसाद भी महाकाव्य के स्रष्टा रूप मे प्रतिष्ठित है। सौन्दर्यवादी रवीन्द्र और दार्शनिक कवि प्रसाद विश्वकाव्य की नैसर्गिक धारा में योग देते है।

नवीन हिन्दी काव्य—

रवीन्द्र के साथ ही नवीन हिन्दी काव्य का आविर्भाव हो जाता है। उसकी एक रूपरेखा सम्मुख आती है, जिससे आगे आने वाली परम्परा का आभास प्राप्त होता है। नवीन काव्यधारा एक परिवर्तित दिशा की सूचक थी। नये युग की चेतना जगत और जीवन पर इतना व्यापक प्रभाव डाल रही थी, कि समकालीन कलाकार के लिये उसकी उपेक्षा करना सम्भव न था। द्विवेदी युग का कवि एक सक्रान्तिकालीन अवस्था से पार हो रहा था, जिसमे राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता दोनो को ही साथ लेकर चलने की उसे कामना थी।

---

२१ Personality, page 31

भीतर बहुत सकोच हो गया । समन्वित विशाल भावनाओ को लेकर चलने की ओर ध्यान न रहा[२१] ।" वास्तव मे छायावाद के विषयो में नवीनता अधिक थी और उसने अपनी कल्पना के प्रसार के लिये अत्यन्त मार्मिक और जीवन के निकट की वस्तुओ को ग्रहण किया । राम और सीता के पौराणिक स्वरूप में उसे आधुनिक सघर्षशील मानव की परिस्थितिया प्राप्त न हो सकी और इसी कारण उसनें नारी पुरुष समस्या को प्रत्यक्ष रीति से ग्रहण किया । छायावाद का भाव लोक मानव के अन्तर्जगत को लेकर चला और स्थूल का स्थान सूक्ष्म को प्राप्त हुआ । सर्वत्र फैलनेवाली जीवन के प्रति घोर निराशा और करुणा ने तत्कालीन कवि को शाश्वत मूल्यो की ओर उन्मुख कर दिया । छायावाद का कवि तटस्थ दर्शक की भाति किसी चित्र का निर्माण नही कर सकता था, उसे स्वयम् अपने हृदय को उसमें तल्लीन कर देना पडा । कविता के साथ ही उसका व्यक्तित्व भी समन्वित हो गया । भावना के क्षेत्र में छायावाद ने जड चेतन, दृश्य अदृश्य सभी को स्वीकार किया, किन्तु उसकी दृष्टि वाह्य, स्थूल, भौतिक की अपेक्षा आन्तरिक, सूक्ष्म, आध्यात्मिक अधिक दिखाई देती है और इसी कारण शुक्ल जी को उसका क्षेत्र सकुचित प्रतीत होता है । यद्यपि उसकी अनुभूति व्यापक और सच्ची थी ।

छायावाद की प्रवृत्तिया योरोपीय साहित्य के सम्पर्क के कारण बगाल में पूर्व ही आरम्भ हुई, और स्वयम् रवीन्द्र ने इसका नेतृत्व किया । हिन्दी की नई प्रवृत्तियो को अनुकरण मात्र कह देना उचित नही । छायावाद को अपनी सास्कृतिक चेतना और काव्य की विशुद्ध परम्परा से पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त हुई और उसने नवीन के साथ ही प्राचीन को भी स्वीकार किया । वास्तव मे वह एक नव निर्माण मे प्रयत्नशील दिखाई देता है, जिसमे विद्रोह की अपेक्षा कृतित्व की भावना अधिक है । भावना के क्षेत्र में सबसे अधिक प्रेरणा भारतीय दर्शन

पडी, किन्तु छायावाद के कवि ने सभी को जीवन का कलेवर पहिना दिया। काव्य, जीवन और दर्शन में समन्वय उसकी प्रमुख विशेषता है।

नई भावना की अभिव्यक्ति के लिये कवियों को भाषा, शैली, छन्द मे भी किंचित परिवर्तन करना अनिवार्य हो गया। किसी भावखड को प्रकाशित करने के लिये अनुकूल भाषा का प्रयोग आवश्यक है। जीवन के अनेक रूपो की अभिव्यक्ति मे खडी बोली का नीरस स्वरूप किंचित असमर्थ था। छायावाद के कवि ने भाषा मे सरलता और माधुर्य को जन्म दिया, जिसमे वह आन्तरिक प्रकाशन में सफल हो सका। भाषा के द्वारा ही उसने अभिव्यक्ति को प्रौढ किया जिसमे नूतन कल्पनाये अपने उदात्त रूप मे प्रस्तुत हो सकी। छायावाद की भाषा एक शिष्ट और सुशिक्षित समाज की भाषा है। भाषा के नवीन रूप को गढने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल हो गई कि पन्त ने व्याकरण के बन्धन को भी स्वीकार नही किया। उन्होंने कहा कि "शब्द और अर्थ रस की धारा में तल्लीन होकर अपना पृथक् अस्तित्व ही खो बैठते है[२०]।" निराला का व्यक्तित्व सबसे अधिक विद्रोही है, और उन्होने 'छन्द बन्ध' की कारा को ही समाप्त कर दिया। प्रत्येक दृष्टि मे छायावाद का कलाकार नई जमीन तोडता हुआ दिखाई देता है। सुदृढ भूमि पर खड़े होने के लिये उसने युग की सास्कृतिक चेतना का अवलम्ब ग्रहण किया।

छायावाद का प्रमुख माध्यम प्रगीत है। छोटे छोटे भावखडो को इनमें घनीभूत किया जा सकता है। यहां कवि को अपने भावनिरूपण तथा आन्तरिक प्रकाशन के लिये अधिक स्वतन्त्रता रहती है और उसका व्यक्तित्व स्पष्ट हो उठता है। निरभ्र आकाश मे अनायास ही छा जाने वाले घन-खडो की भांति इनका सौन्दर्य भी स्वयम् में पूर्ण रहता है। छायावाद के प्रगीतो ने जयदेव और विद्यापति की परम्परा की ओर देखा, किन्तु उन्हे इतने से ही सन्तोष न था। उन्होंने राधा कृष्ण के रूपको का परित्याग कर दिया और कल्पना तथा अनुभूति के सहारे स्वतन्त्र नियोजना की। इनमें व्यक्तिगत अनुभूति का अंश अधिक था। कवि ने प्रत्येक वस्तु को अपने समीप लाकर, उस पर विचार किया और अन्त में चिन्तन के माध्यम से उसकी पुन. अभिव्यक्ति कर दी। छायावाद की प्रगीत परम्परा ने योरप के स्वच्छन्दतावाद से जो प्रेरणा प्राप्त की है, वह वास्तव मे बहुत पूर्व ही पाश्चात्य-सम्पर्क से बगाल के कवियों को प्राप्त हो चुकी थी। अठारहवी शताब्दी के मध्य भाग मे भारत-

---

२७ 'पल्लव' की भूमिका, पृष्ठ २०

भीतर बहुत सकोच हो गया। समन्वित विशाल भावनाओ को लेकर चलने की ओर ध्यान न रहा[२६]।" वास्तव में छायावाद के विषयो में नवीनता अधिक थी और उसने अपनी कल्पना के प्रसार के लिये अत्यन्त मार्मिक और जीवन के निकट की वस्तुओ को ग्रहण किया। राम और सीता के पौराणिक स्वरूप में उसे आधुनिक सघर्षशील मानव की परिस्थितिया प्राप्त न हो सकी और इसी कारण उसने नारी पुरुष समस्या को प्रत्यक्ष रीति से ग्रहण किया। छायावाद का भाव लोक मानव के अन्तर्जगत को लेकर चला और स्थूल का स्थान सूक्ष्म को प्राप्त हुआ। सर्वत्र फैलनेवाली जीवन के प्रति घोर निराशा और करुणा ने तत्कालीन कवि को शाश्वत मूल्यो की ओर उन्मुख कर दिया। छायावाद का कवि तटस्थ दर्शक की भाति किसी चित्र का निर्माण नही कर सकता था, उसे स्वयम् अपने हृदय को उसमे तल्लीन कर देना पडा। कविता के साथ ही उसका व्यक्तित्व भी समन्वित हो गया। भावना के क्षेत्र में छायावाद ने जड चेतन, दृश्य अदृश्य सभी को स्वीकार किया, किन्तु उसकी दृष्टि बाह्य, स्थूल, भौतिक की अपेक्षा आन्तरिक, सूक्ष्म, आध्यात्मिक अधिक दिखाई देती है और इसी कारण शुक्ल जी को उसका क्षेत्र सकुचित प्रतीत होता है। यद्यपि उसकी अनुभूति व्यापक और सच्ची थी।

छायावाद की प्रवृत्तिया योरोपीय साहित्य के सम्पर्क के कारण बगाल में पूर्व ही आरम्भ हुई, और स्वयम् रवीन्द्र ने इसका नेतृत्व किया। हिन्दी की नई प्रवृत्तियो को अनुकरण मात्र कह देना उचित नही। छायावाद को अपनी सास्कृतिक चेतना और काव्य की विशुद्ध परम्परा से पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त हुई और उसने नवीन के साथ ही प्राचीन को भी स्वीकार किया। वास्तव मे वह एक नव निर्माण मे प्रयत्नशील दिखाई देता है, जिसमे विद्रोह की अपेक्षा कृतित्व की भावना अधिक है। भावना के क्षेत्र में सबसे अधिक प्रेरणा भारतीय दर्शन से प्राप्त हुई। अब तक होने वाली साम्प्रदायिक कविता मे किसी सिद्धान्त विशेष को लेकर काव्य निर्माण की प्रणाली थी, किन्तु छायावाद ने दर्शन पक्ष को अगीकार किया, जिसमें जीवन की सम्पूर्ण इकाई को लेकर चलने की भावना थी। कबीर की भाति कवियो ने योग का शुष्क, नीरस प्रतिपादन नही किया, उसका प्रयास दर्शन को अधिकाधिक व्यावहारिक बनाकर जीवन की धारा के साथ ही मिला देना था। उपनिषदो का अद्वैतवाद विशेष प्रेरणा बनकर आया। दार्शनिक दृष्टि के कारण ही सूफियो के प्रेम दर्शन की छाया भी

---

२६ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ट ५६३

पड़ी, किन्तु छायावाद के कवि ने सभी को जीवन का कलेवर पहिना दिया। काव्य, जीवन और दर्शन में समन्वय उसकी प्रमुख विशेषता है।

नई भावना की अभिव्यक्ति के लिये कवियो को भाषा, शैली, छन्द मे भी किंचित परिवर्तन करना अनिवार्य हो गया। किसी भावखड को प्रकाशित करने के लिये अनुकूल भाषा का प्रयोग आवश्यक है। जीवन के अनेक रूपो की अभिव्यक्ति मे खडी बोली का नीरस स्वरूप किंचित असमर्थ था। छायावाद के कवि ने भाषा में सरसता और माधुर्य को जन्म दिया, जिससे वह आन्तरिक प्रकाशन मे सफल हो सका। भाषा के द्वारा ही उसने अभिव्यक्ति को प्रौढ किया जिससे नूतन कल्पनाये अपने उदात्त रूप मे प्रस्तुत हो सकी। छायावाद की भाषा एक शिष्ट और सुशिक्षित समाज की भाषा है। भाषा के नवीन रूप को गढने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल हो गई कि पन्त ने व्याकरण के बन्धन को भी स्वीकार नही किया। उन्होने कहा कि "शब्द और अर्थ रस की धारा में तल्लीन होकर अपना पृथक् अस्तित्व ही खो बैठते है[२७]।" निराला का व्यक्तित्व सबसे अधिक विद्रोही है, और उन्होने 'छन्द बन्ध' की कारा को ही समाप्त कर दिया। प्रत्येक दृष्टि से छायावाद का कलाकार नई जमीन तोडता हुआ दिखाई देता है। सुदृढ भूमि पर खडे होने के लिये उसने युग की सास्कृतिक चेतना का अवलम्ब ग्रहण किया।

छायावाद का प्रमुख माध्यम प्रगीत है। छोटे छोटे भावखडो को इनमें घनीभूत किया जा सकता है। यहाँ कवि को अपने भावनिरूपण तथा आन्तरिक प्रकाशन के लिये अधिक स्वतन्त्रता रहती है और उसका व्यक्तित्व स्पष्ट हो उठता है। निरभ्र आकाश मे अनायास ही छा जाने वाले घन-खडो की भाति उनका सौन्दर्य भी स्वयम् मे पूर्ण रहता है। छायावाद के प्रगीतो ने जयदेव और विद्यापति की परम्परा की ओर देखा, किन्तु उन्हे इतने मे ही सन्तोष न था। उन्होंने राधा कृष्ण के रूपको का परित्याग कर दिया और कल्पना तथा अनुभूति के सहारे स्वतन्त्र नियोजना की। इसमे व्यक्तिगत अनुभूति का अश अधिक था। कवि ने प्रत्येक वस्तु को अपने समीप लाकर, उन पर विचार किया और अन्त मे चिन्तन के माध्यम से उनकी पुन अभिव्यक्ति कर दी। छायावाद की प्रगीत परम्परा ने योरप के स्वच्छन्दतावाद से जो प्रेरणा प्राप्त की है, वह वास्तव मे बहुत पूर्व ही पाश्चात्य-सम्पर्क से बगाल के कवियो को प्राप्त हो चुकी थी। अठारहवी शताब्दी के मध्य भाग मे भारत-

२७ 'पल्लव' की भूमिका, पृष्ठ २०

चन्द्र को प्राचीन परम्परा के अन्तिम कलाकार रूप में स्वीकार करना पड़ता है और उनका 'विद्यासुन्दर' प्राचीन बग साहित्य की अन्तिम कृतिकही जा सकती है। सौ वर्ष के अनन्तर माइकेल मधुसूदन दत्त के रूप में नवीन प्रवृत्तियो की रचनाए सम्मुख आई और तब से निरन्तर काव्यधारा नयी दिशा की ओर प्रवाहित होती रही। छायावाद ने अपने निर्माण में निस्सन्देह बगला से प्रेरणा ली, किन्तु क्रमश उस पर पड़नेवाले विदेशी प्रभाव दूर होते गये और वह राष्ट्रीय चेतना का भी प्रतीक बना। इसी चेतना को लेकर छायावाद का प्रगीत अपने नव निर्माण मे सलग्न हुआ। उसमें पश्चिम की रूपसम्पत्ति, कल्पना, तन्मयता के साथ ही अपनी मगीतमयता, चित्रमयता और दार्शनिकता भी है। अग्रेजी प्रगीतो की चर्चा करते हुये एन्टविसिल ने उसे घनीभूत भावना का प्रकाशन बताया है। एक गीत में एक ही भावना गूजती रहती है। उसमे हृदय अपने अन्तरतम को उडेल देता है[२८]। छायावाद के प्रगीतो में भावना का आवेश और उसका ताप कम था, अनुभूति प्रकाशन, दार्शनिक अभिव्यक्ति अधिक। उसके आध्यात्मिक निरूपण ने ही रहस्यवाद को जन्म दिया।

छायावाद काव्य की प्रकृत परम्परा का ही एक चरण है। उसने जीवन के चिरन्तन मूल्यो को लेकर भाव-प्रकाशन किया। पन्त का प्रकृति प्रेम, निराला का सौन्दर्यानुराग, प्रसाद का आनन्दवाद तथा महादेवी की रहस्य कल्पना के मूल मे जीवन की शाश्वत सवेदनाये है, जो उनकी आन्तरिक अनुभूति को व्यक्तिगत तथा ऐकान्तिक नही हो जाने देती। अपने कलापक्ष में उत्कृष्ट और प्रौढ होने के कारण छायावाद स्वच्छन्द मार्ग पर जाता हुआ भी परम्परावादी कलाकार के निर्माण की भाति शिक्षित समाज की वस्तु हो गया। कवियो ने भाव, भाषा, छन्द सभी क्षेत्रो में परिष्कार किया और उन्होने अपनी एक परम्परा को जन्म दिया, जिसमें प्रकृति और मानव के ही विभिन्न रूप कलात्मक रीति से व्यजित है। इस विषय मे महादेवीजी ने भी कहा है कि "छायावाद अपने सम्पूर्ण प्राणवेग से प्रकृति और जीवन के सूक्ष्म सौन्दर्य को असम्य रूपरगो मे अपनी भावना द्वारा उपस्थित करता है। उसने बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव मे चलने वाले हृदय और प्रकृति मे प्राण डाल दिये है।" छायावाद के प्रमुख कलाकार प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी ने यद्यपि विभिन्न रूपको के माध्यम मे काय किया, किन्तु उनकी मूल चेतना मानव मे ही अनुप्राणित है। उन्होने दर्शन, ज्ञान, विज्ञान को व्यावहारिक दृष्टि मे देखा, किन्तु जागरूक होकर। सर्वत्र एक समन्वय की भावना इन कवियो मे प्राप्त होती

---

२८ The Study of Poetry — A R Entwistle, page 41

है, जो उन्हे महान कविता की परम्परा मे ले जाती है जिसका लक्ष्य जीवन का सर्वांगीण निरूपण रहता है। प्रसाद का व्यक्तित्व छायावाद के इन कलाकारो के समक्ष रखने पर स्पष्ट हो जाता है।

निराला—

छायावाद के कवियो मे 'निराला' का व्यक्तित्व सबसे अधिक विद्रोही और क्रान्तिकारी है। वे एक उन्मुक्त कलाकार है, जो किसी प्रकार के बन्धनो मे रहना नही जानता, किन्तु एक सजग कवि के समस्त उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है। छन्दों का बन्धन तोडते हुये उन्होने उसे संगीत और लय के माध्यम से नव रूप प्रदान किया। मुक्त छन्दो मे उनका शब्द चयन और भावना प्रवाह सुन्दर है। एक निर्झर की भांति वे स्वच्छन्द गति से प्रवाहित होते रहते है। इसी के साथ कवि सरस चित्रो की भी योजना करता चलता है। उनके गीत केवल भावना के जोर पर नही चलते, वरन् उनमे रूप और रग भी है। सौन्दर्याकर्षण के साथ ही अकन भी कवि करता चलता है। 'पचवटी' मे शूर्पणखा का रूप वर्णन है,

देख यह कपोत कंठ
बाहु वल्ली, कर सरोज
उन्नत उरोज, पीन
क्षीण कटि
नितम्ब भार
चरण सुकुमार
गति मन्द मन्द
छूट जाता धैर्य ऋषि मुनियों का
देवों भोगियों की तो बात ही निराली है।.....

भावना का प्रवाह निराला जी के काव्य का प्रमुख लक्षण है और यही उनके व्यक्तित्व को छायावाद युग के अन्य कवियो से भिन्नता प्रदान करता है। स्वयम् प्रसाद जी एक सजग कलाकार है। वे प्रत्येक वस्तु के निरूपण मे तत्परता और सावधानी से काम लेते है। उनकी तूलिका केवल रेखा-चित्रो मे तो 'निराला' की भाति कार्य नही करती, वरन् धीरे-धीरे सजग होकर कार्य करती है। प्रसाद का बुद्धिपक्ष उनकी भावनाओ का उदात्तीकरण अवश्य कर लेता है, किन्तु प्रगीतो के स्वच्छन्द प्रवाह को मन्थर कर देता है। दार्शनिक निरूपण से उनकी गति मन्द पड जाती है। 'निराला' अपनी सम्पूर्ण

तन्मयता में गीतो का निर्माण कर सकते है। शब्द, लय पर उनका अबाध अधिकार है, किन्तु प्रसाद चिन्तनशील कवि की भाति आगे बढते है।

निरालाजी की कविता का क्षेत्र पर्याप्त व्यापक है। 'परिमल', 'गीतिका' के गीतों से लेकर 'तुलसीदास' आदि भावात्मक आख्यानो तक पर उन्होने कार्य किया। इसके अतिरिक्त 'कुकरमुत्ता' आदि प्रयोग की रचनायें भी प्राप्त होती है। अपनी प्रवृत्तियो से भी अधिक विशाल निराला जी का व्यक्तित्व प्रसाद की भाति अनेक दिशाओ में कार्य करता है, किन्तु सभी में उनके हृदय पक्ष का योग रहता है। अनेक शब्द चित्रो का निर्माण करने में वे सफल हुये है। 'जुही की कली' के शृगारी चित्रण के साथ इलाहाबाद के फुटपाथ पर पत्थर तोडती हुई बाला का भी अकन उन्होंने किया। उनकी सौन्दर्य भावना निस्सन्देह अधिक विस्तृत है। प्रसाद नारी और पुरुष, यौवन और करुणा के कलाकार है और अपनी 'प्रेम कल्पना' के अन्तर्गत सभी का समाहार कर लेते है। उनके सभी स्वर प्राय एक रूप, रग में ढल जाते है, किन्तु निराला जी अपनी रेखाओ का कई प्रकार से प्रयोग करते है। उनके प्रगीतो मे वैयक्तिक अश सबसे कम मिलता है और वे छायावादी कवियो में सर्वाधिक निर्वैयक्तिक कलाकार हैं। वे काव्य के माध्यम से अपने व्यक्तित्व का अधिक प्रकाशन नही करते, वरन् अपनी अनुभूति को स्वयम् जगत के बीच ले जाकर उसका उपयोग करते हैं। उनका व्यक्तिगत अश भावना की अपेक्षा शैली मे अधिक स्पष्ट है। एक सगीतज्ञ के रूप में उन्होंने केवल लय के आधार पर छन्दो का निर्माण किया। इसी प्रकार भाषा में भी बहुल रूप प्राप्त होते है। निरालाजी प्रसाद की बौद्धिकता, दार्शनिकता को अपनी स्वच्छन्दता, प्रवाहमयता से सतुलित कर देते है। उनकी भावनायें आरम्भ से ही इतनी उदात्त रही है कि उन्हे किसी भाषा और प्रतीक के आवरण मे नही रखना पडता और न उन पर दर्शन को आरोपित करने की ही आवश्यकता हुई, वे अबाध गति से बहती है। प्रसाद को शृगार का परिष्कार तथा भावना का उदात्तीकरण करना पडा, किन्तु निराला शूर्पणखा को भी सौन्दर्य सज्जा मे भर देते है। उनकी 'जुही की कली' को पवन का नायक रजनी में झकझोर जाता है। स्वच्छन्दता के साथ ही स्वच्छता उनकी असाधारण विशेषता है। प्रसाद यदि चिन्तनशील कवि है, तो निराला उन्मुक्त कलाकार।

पन्त—

पन्त अपने आरम्भिक रूप में प्रकृतिप्रेमी और सौन्दर्यवादी है। 'ग्रन्थि' के 'असफल प्रेम' में कवि की वैयक्तिक अनुभूति को ही प्रमुखता प्राप्त हुई।

'पल्लव' में पन्तजी कल्पना के उस सुदृढ़ वातावरण में दिखाई देते हैं, जहाँ प्रकृति और मानव के सौन्दर्य का रहस्य उन्हें मिल जाता है। कवि स्वयम् अपनी भावना का उद्घाटन करते हुये कहता है,

घूलि की ढेरी में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमय गान

प्रकृति के साथ भावनामय तादात्म्य छायावाद के कवियों में सबसे अधिक पन्त जी की ही रचनाओं में प्राप्त होता है। चन्द्रमा, बादल आदि के चित्र प्रस्तुत करते हुये वे कल्पना के द्वारा उनके सूक्ष्मतम अवयवों को भी सम्मुख ले आते हैं। बादल का रूप है :

फिर परियों के बच्चे से हम सुभग सीप के पंख पसार।
समुद पैरते शुचि ज्योत्सना में पकड़ इन्दु के कर सुकुमार॥

कवि की कल्पनायें अत्यन्त सरस और सजीव हैं। वास्तव में आरम्भ के पन्त कोमल भावनाओं के कलाकार हैं। उनकी कल्पना में शिशु का सा कौमार्य और निर्माल्य है। प्रकृति के मनोरम स्थलों में रीझता हुआ कवि उनसे अनेक प्रेरणायें भी प्राप्त करता है। प्रकृति की रचनाओं में दर्शन का यह योग जहाँ एक ओर स्वतन्त्र प्रकृतिवर्णन को किंचित बोझिल कर देता है, वहीं कवि जीवन के लिये एक मूल्यवान तथ्य भी पा जाता है। सौन्दर्यवादी पन्त 'गुंजन' में अपने विचारों की अभिव्यक्ति आरम्भ कर देते हैं। अब भी प्रकृति की सुषमा उनके सम्मुख है, पर अब मानव भी निकट आ गया है; इसी कारण कवि दोनों को साथ लेकर चलता हुआ दिखाई देता है। वह संसार के 'परिवर्तन' को चित्रित करने लगता है और समस्त जीवन में सत्य, शिव, सुन्दर का आमन्त्रण करता है। 'नौकाविहार' करते हुये उसे जीवन की 'शाश्वत चेतना' का ज्ञान हो जाता है। अब वह आकांक्षा करता है कि 'सुख-दुःख के मधुर मिलन से जीवन परिपूर्ण हो जाय, जैसे शशि और घन का खेल।' प्रकृतिप्रेमी पन्त का मानवतावादी रूप क्रमशः यथार्थ जीवन की ओर अग्रसर होता जाता है।

'युगान्त' का कवि उस ठोस भूमि पर खड़ा दिखाई देता है, जहाँ से वह सम्पूर्ण त्रस्त मानवता को देख सकता है। 'अस्थिशेष बापू' का व्यक्तित्व उसके सम्मुख है और उसी के साथ देश की विडम्बना को भी उसने जान लिया है। सौन्दर्य का यह व्यापक प्रसार मंगल की कामना करने लगता है। अब भी कवि 'शुक' और 'सन्ध्या' का अंकन करता है किन्तु उनका मूल स्वर मानव की पीड़ा से अनुप्राणित है। पन्त स्पष्ट देख लेते हैं :

य नाप रहे निज घर का मग
कुछ श्रमजीवी घर डगमग डग
भारी है जीवन भारी पग ।

भावना के परिवर्तन के कारण ही वे ताजमहल की कला को मृत्यु का अमर, अपार्थिव पूजन मानते है। इस प्रकार 'युगान्तर' और 'युगवाणी' का कवि वर्तमान स्थिति पर विचार करता है। यथार्थ के निरूपण में यद्यपि पन्त जी को अधिक सफलता नही प्राप्त हुई किन्तु मानवता के प्रति उनकी कल्याण कामना शक्तिशालिनी होती गई। शैली के क्षेत्र में अब भी उनकी रचनाओ में लाक्षणिकता और मूर्तिमत्ता का गुण पाया जाता है, यद्यपि विषय के अनुकूल शब्द चयन में किंचित परिवर्तन हो गया है। वर्तमान से प्रीति और भविष्य के प्रति आस्था रखते हुये कवि आगे बढता है।

'युगान्त' और 'युगवाणी' का कलाकार काव्य के रसमय क्षेत्र से किंचित दूर चला जाता है। अपने जीवन दर्शन को वह काव्य की आत्मा से एकाकार नही कर पाता, जिसमें प्रसाद को अधिक सफलता प्राप्त हुई। अपने मत का प्रतिपादन करने के लिये कही कही पन्त जी को विचार भाषा के द्वारा स्पष्ट रीति मे रख देने पडते है और उनमें कवि का हृदय पक्ष कम प्राप्त होता है। पन्त की इस परिवर्तित दिशा ने अपने आगामी चरण में और भी नवीन रूप ग्रहण किया। स्वयम् उन्ही की धारणा कुछ बदलती सी दिखाई देती है। 'पल्लव' का कवि 'कविता को प्राणो का सगीत' मानता है[२९] किन्तु 'आधुनिक कवि' मे वह सत्य को शिव में निहित कर देता है। पन्त फूल की परिणति फल में सत्य के नियमो द्वारा मानते है[३०]। किन्तु वास्तव मे फूल ही वह मूल उत्स है, है, जिसमे फल की प्राप्ति होती है। सम्भवत भावुक पन्त अपने वर्तमान के साथ इतना बढ गये कि उन्हें इसका ध्यान न रह गया। 'स्वर्णधूलि', 'स्वर्णग्राम' और 'उत्तरा' का कवि गाधी, अरविन्द, मार्क्स आदि के दर्शनो का प्रतिपादन करने मे भी लग गया। उसे सम्भवत कवि के सामाजिक दायित्व का अधिक ध्यान था।

पन्त की काव्यधारा ने कई मोड लिये किन्तु उनका आरम्भिक स्वरूप आज भी उत्कृष्ट है। सुन्दर चित्रण, भाषा की मूर्तिमत्ता, सजीव कल्पना, सरस अकन 'गुजन' और 'पल्लव' के कवि में ही प्राप्त होते है। प्रकृति और

---

२९. 'पल्लव' की भूमिका, पृष्ठ २१
३० 'आधुनिक कवि' की भूमिका, पृष्ठ ६

सौन्दर्य के प्रति तादात्म्य की भावना में निस्सन्देह पन्त प्रसाद से आगे हैं। जीवनदर्शन के प्रतिपादन में प्रसाद का कवि रूप सदा बना रहा। एक तटस्थ कलाकार की भांति उन्होंने समस्त विचारधारा को काव्य की आत्मा में मिला दिया, जिस प्रयास में पन्त जी को कम सफलता प्राप्त हुई है।

महादेवी—

महादेवी का पक्ष छायावादी कवियों में सबसे अधिक वैयक्तिक है। अपनी ही 'प्रत्येक श्वास का इतिहास' लिखने की उनकी व्याकुलता काव्य में प्रतिफलित हुई। वैयक्तिक अंश के उदात्तीकरण के लिये उन्होंने प्रतीक योजना और रहस्यभावना का अवलम्ब ग्रहण किया। प्रसाद ने यही कार्य दार्शनिक प्रतिपादन और व्यक्तित्व प्रसार के द्वारा किया। महादेवी की मूल भावना विरह है। इसके सहारे साधना-पथ पर बढ़ती हुई दिखाई देती है और तब तक चलते रहने का विचार करती है, जब तक लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती। आत्मा परमात्मा के क्रिया व्यापारों की अभिव्यक्ति के लिये उन्होंने प्रकृति के प्रतीकों को अपनाया जो भाव को स्वयम् व्यंजित कर देते हैं। पन्त के आरम्भिक प्रतीकों में कोमलता और सरसता है। प्रसाद के प्रतीक संस्कृत काव्य शैली पर निर्मित हैं और उनमें उदात्त भावना की ध्वनि निकलती है। महादेवी के दीप, रजनी, शतदल, भ्रमर, मन्दिर आदि प्रतीक साधना के परिचायक हैं। भावना के क्षेत्र में महादेवी छायावाद के कवियों में सबसे अधिक सीमित वातावरण में कार्य करती दिखाई देती हैं। प्रियतम के वियोग में पागल आत्मा उसे ही खोजती फिरती है। सम्पूर्ण काव्य में वेदना का यही धूमिल और निराश वातावरण दिखाई देता है। करुणा की अभिव्यंजना में महादेवी को इसी कारण सफलता प्राप्त हुई। 'यामा' के 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'सान्ध्यगीत' के चार प्रहरों में कवियित्री ने साधना के विभिन्न चरण अंकित किये हैं। जिज्ञासा और अतृप्ति के साथ अमर विश्वास, अपार करुणा कवियित्री के रहस्यवाद का प्राण बन गये हैं। उनका कथन है,

> पर शेष नहीं होगी यह, मेरे प्राणों की क्रीड़ा
> तुमको पीड़ा में ढूंढा, तुम में ढूंढूंगी पीड़ा।

महादेवी की रहस्य साधना का सीमित क्षेत्र अपने सत्य में ही अनट और अनन्त है। उनका सम्पूर्ण रहस्यवाद प्रतीकों के आधार पर निर्मित है और वे चिन्तन तथा भावना दोनों को ही वहन करते हैं। वैयक्तिक साधना तथा उनकी आन्तरिक अनुभूति के क्षेत्र में महादेवी और प्रसाद के स्वर दो विभिन्न दिशाओं

में प्रतीत होते हैं। महादेवी ने व्यक्तिगत पक्ष को आत्मा परमात्मा के प्रतीकों में बाधकर उसे रहस्यवाद की साधना भूमि पर पहुचा दिया। प्रसाद को अपने व्यक्तिगत अश का प्रसार करना पडा और उन्होने उसका उदात्तीकरण कर लिया। अनुभूति के क्षेत्र मे इन दोनो ही कलाकारो का वैयक्तिक अश प्रबल है। उसके सहारे यदि एक रहस्य की उच्च भाव भूमि पर पहुँच गया, तो दूसरा उस पर विजय प्राप्त कर आनन्दवाद की प्रतिष्ठा में सफल हुआ। विचारधारा के पृथक् होजाने से उनकी शैलिया भी किंचित भिन्न हो गई । समय समय पर उठने वाली भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिये कवियित्री ने केवल प्रगीतो का माध्यम अपनाया। इस प्रयास में उन्होने प्रसाद की भाति एक सजग कलाकार के रूप में कार्य किया। उन्हे बडी सावधानी से चित्रो मे रग भरने पडते हैं। इसी कारण मीरा की प्रेम भावना की सी तन्मयता अथवा विरह का ताप उनमें नही रह जाता। अलकृत प्रतीक और प्राजल भाषा प्रगीतो को अलकरण से बोझिल कर देते हैं। प्रसाद के प्रगीतो में देवीजी का सा प्रतीक विधान और अलकरण नही प्राप्त होता। साध्य साधक का अकन करती हुई वे 'दीपशिखा' मे कहती है

> **सब आँखों के आँखों के आंसू उजले, सबके सपनों में सत्य पला।**
> **जिसने उसको ज्वाला सौंपी, उसने इसमें मकरन्द भरा**
> **अनुराग लुटाता वह घुल घुल, देता झर यह सौरभ बिखरा**
> **दोनों सगी पथ एक किन्तु, कब दीप खिला, कब फूल जला।**

महादेवी का पथ रहस्यमय होने के कारण अन्य छायावादी कवियो से भिन्न है। प्रसाद की ही भाति उपनिषदो की अद्वैत कल्पना और बौद्ध दर्शन की करुणा को लेते हुये भी वे अपनी एकान्त साधना में ही तन्मय है।

आधुनिक काव्य में प्रसादजी महाकवि के साथ ही महाकाव्य के निर्माता भी है। उनका व्यक्तित्व क्रमश विकसित होता हुआ आगे बढता रहा। 'आसू' का वैयक्तिक प्रेम स्वयम् वेदना दर्शन की सूचना दे देता है, अन्त मे वह कामायनी के आनन्द में प्रकट हुआ। भावना के व्यापक प्रसार में प्रसाद का काव्य अपने युग की चेतना से अनुप्राणित है। 'निराला' जी की प्रतिभा गीतो तथा भावात्मक आख्यानो में स्वतन्त्र नियोजना करती है। पन्त का मर्म्मोनतम जीवन दर्शन पूर्ण मानवतावादी होकर काव्य में कई रूपो में —र आया है। वास्तव में कवि का कार्य सकेत कर देना है। वह अधिक

२९. 'पल्लव' गी मत का प्रतिपादन नही कर सकता। भावना और छन्द के

३० 'आधुनिक क' में ही उसे कलात्मक सृष्टि प्रस्तुत करनी पडती है। कही-

धीरे धीरे मनुष्य के जीवन में सभ्यता का प्रवेश होने लगा। जीवन मे धर्म के प्रति आस्था बढ़ गई। मनुष्य ने वन, सूर्य, अग्नि, वरुण आदि के अतिरिक्त देवताओं का पूजन आरम्भ किया। अब वह नगरो में आ बसा। उसने अन्य कलाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया। उसका वह नैसर्गिक वन-जीवन पीछे छूट रहा था। इस समय जिन धार्मिक ग्रन्थो की रचना हुई, उनका माध्यम प्रायः काव्य ही था। इनमें सर्वप्रथम स्थान वेदो का आता है। इन वैदिक ऋचाओ में विश्वकाव्य का सर्वप्रथम दर्शन लिखित रूप मे प्राप्त हुआ। एक साथ धर्म, जीवन और भावना का समन्वय काव्य मे प्रस्तुत किया गया। उसे अधिक गीतात्मकता प्रदान करने के आशय से अन्त मे सामवेद की भी रचना की गई, जिसमे सगीतात्मकता से भरी हुई गेय ऋचायें हैं। ईश्वर की स्तुति और प्रार्थना की भावना मे निकली हुई मानव की अनुभूतिया सभी सभ्य देशो मे सगृहीत कर ली गई। लगभग चार हजार ईसवी पूर्व लिखी गई 'दि बुक आफ डेड' मे भी मिश्र देश के निवासियो ने अपनी भक्ति का प्रकाशन प्रार्थनाओं द्वारा किया है। भारत, यूनान, रोम और चीन में धर्म भावना का प्रचार सर्वप्रथम आरम्भ हुआ। वेदो के पश्चात् यूनानियो ने काव्य को पहिचाना था[१]। यूनान मे होमर ने 'आडिसी' और 'इलियड' के द्वारा सर्वप्रथम धर्म से पृथक काव्य की परम्परा को जन्म दिया। सौन्दर्य के उपासक इस कवि ने चार सौ पचास ई० पू० इलियड मे यह कहा था कि ससार मे सर्वोपरि दो वस्तुयें हैं—युद्ध और प्रेम। रोम में सत्तर ई० पू० इनियड की रचना हुई। इसमे भी धार्मिक भावना का ही प्राधान्य था, किन्तु कवि ने देश की सीमाओं के बाहर भी झाकने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त उसमे आध्यात्मिक भावना पर प्रकाश डाला गया। होमर की वीरता, धर्म और सौन्दर्य-समन्वित भावनाओ ने उस काल की कविता को प्रभावित कर रक्खा था। वर्जिल को ही अपना आचार्य मानकर दान्ते ने 'डिवाइन कामेडी' की रचना की। उसमें युद्ध और पराक्रम पीछे छूट चुका था। पृथ्वी, नरक और स्वर्ग के अध्यायो मे उसने कर्म के आधार पर पाप पुण्य की विवेचना की। दान्ते की गणना ससार के उन प्रमुख कवियों मे की जाती है जो सुन्दर प्रेम-कहानियो के जन्मदाता हैं। उसने अपने उत्कृष्ट काव्य की रचना अपनी मृत प्रेयसी बिएट्रिस के लिये ही कर डाली थी। सौन्दर्य तथा वीरता का गायन होमर,

---

[१] "At a very early stage of their history Greeks had begun to collect the poems".

The Story of Mankind, by Hendrik Van Loon (1945), page 48.

पाश्चात्य काव्य और प्रसाद

साहित्य का निर्माण समाज और सस्कृति, देश और काल की पृष्ठभूमि पर होता है। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सास्कृतिक स्थिति साहित्य पर अपना प्रभाव डालती है। साहित्य यदि समाज का प्रतिविम्ब है, तो समाज साहित्य का आधार। इन दोनो का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। साहित्य के व्यापक क्षेत्र में कविता एक अधिक अन्तर्मुखी विषय है। सूक्ष्म मनोभावो और आन्तरिक वृत्तियो के चित्रण के कारण उसमें बाह्य वृत्तियो के प्रकाशन का अवसर अपेक्षाकृत कम रहता है। कवि को थोडी सी भूमि में एक विस्तृत नाटक का आयोजन करना पडता है। उसके पास केवल भावना और शब्दो के रग रहते है, जिनमे वह चित्र प्रस्तुत कर सकता है। अन्तर और वाह्य के सम्मिलन से प्रेरणा लेकर कविता को जन्म देने वाले कलाकार के सम्मुख अनेक समस्यायें रहती है। वह देश काल की अवहेलना नही कर सकता और साथ ही विस्तृत व्याख्या भी सम्भव नही। इस प्रकार कवि-कर्म अत्यन्त कठिन है। 'सौन्दर्य के उद्दीपन से जब जीवन के सचित अभाव अभिव्यक्ति के लिये फूट पडते है तभी तो कविता का जन्म होता है[१]।'

कवि और काव्य--

कविता का आरम्भ मानव के साथ ही हो चुका था। विश्व साहित्य में कविता का आविर्भाव बहुत पहिले हुआ। मानव ने अपनी आन्तरिक भावनाओ का सर्वप्रथम प्रकाशन सगीतात्मक कविता के द्वारा किया। विशेष अवसरो पर उल्लसित होकर उनका नृत्य करना इसका प्रमाण है। युद्ध काल में भी वे प्रयाण गीत गाते थे। विजयोन्माद में भी वह इसी का आश्रय लेते थे। इस प्रकार कविता के चिह्न आदिमानव की सभ्यता में भी मिलते है। 'कविता लेखन कला से अधिक प्राचीन है। यह अब निश्चित हो चुका है कि योरोपीय जातियो के लोकगीत, जिन्हे आज भी ग्रामीण कृषक बरबस ही गुनगुना उठते है, एक शाश्वत परम्परा है[२]।' आरम्भ में मनुष्य इन गीतो में अपने प्राणो का समस्त आवेग भर देने का प्रयत्न करता था। लोकगीतो में भावनाओ का नैसर्गिक प्रवाह है, जो अन्तस्तल से निर्झरिणी की भाति बहता रहता है।

---

१. विचार और अनुभूति (१९४४) डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ३

२. 'Poetry is far older than writing'

—The Outline of Literature (1940) by Drinkwater Page 32.

धीरे धीरे मनुष्य के जीवन मे सभ्यता का प्रवेश होने लगा। जीवन मे धर्म के प्रति आस्था बढ गई। मनुष्य ने वन, सूर्य, अग्नि, वरुण आदि के अतिरिक्त देवताओं का पूजन आरम्भ किया। अब वह नगरो मे आ बसा। उसने अन्य कलाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया। उसका वह नैसर्गिक वन-जीवन पीछे छूट रहा था। इस समय जिन धार्मिक ग्रन्थो की रचना हुई, उनका माध्यम प्राय काव्य ही था। इनमें सर्वप्रथम स्थान वेदो का आता है। इन वैदिक ऋचाओ में विश्वकाव्य का सर्वप्रथम दर्शन लिखित रूप मे प्राप्त हुआ। एक साथ धर्म, जीवन और भावना का समन्वय काव्य मे प्रस्तुत किया गया। उसे अधिक गीतात्मकता प्रदान करने के आशय से अन्त में सामवेद की भी रचना की गई, जिसमे सगीतात्मकता से भरी हुई गेय ऋचाये हैं। ईश्वर की स्तुति और प्रार्थना की भावना मे निकली हुई मानव की अनुभूतिया सभी सभ्य देशो मे सगृहीत कर ली गई। लगभग चार हज़ार ईसवी पूर्व लिखी गई 'दि बुक आफ डेड' मे भी मिश्र देश के निवासियों ने अपनी भक्ति का प्रकाशन प्रार्थनाओ द्वारा किया है। भारत, यूनान, रोम और चीन में धर्म भावना का प्रचार सर्वप्रथम आरम्भ हुआ। वेदो के पश्चात् यूनानियो ने काव्य को पहिचाना था[१]। यूनान मे होमर ने 'आडिसी' और 'इलियड' के द्वारा सर्वप्रथम धर्म से पृथक काव्य की परम्परा को जन्म दिया। सौन्दर्य के उपासक इस कवि ने चार सौ पचास ई० पू० इलियड मे यह कहा था कि ससार मे सर्वोपरि दो वस्तुयें हैं—युद्ध और प्रेम। रोम में सत्तर ई० पू० इनियड की रचना हुई। इसमे भी धार्मिक भावना का ही प्राधान्य था, किन्तु कवि ने देश की सीमाओ के बाहर भी झाकने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त उसमे आध्यात्मिक भावना पर प्रकाश डाला गया। होमर की वीरता, धर्म और सौन्दर्य-समन्वित भावनाओ ने उस काल की कविता को प्रभावित कर रक्खा था। वर्जिल को ही अपना आचार्य मानकर दान्ते ने 'डिवाइन कामेडी' की रचना की। उसमें युद्ध और पराक्रम पीछे छूट चुका था। पृथ्वी, नरक और स्वर्ग के अध्यायो मे उसने कर्म के आधार पर पाप पुण्य की विवेचना की। दान्ते की गणना ससार के उन प्रमुख कवियों मे की जाती है जो सुन्दर प्रेम-कहानियो के जन्मदाता है। उसने अपने उत्कृष्ट काव्य की रचना अपनी मृत प्रेयसी बिएट्रिस के लिये ही कर डाली थी। सौन्दर्य तथा वीरता का गायन होमर,

१. "At a very early stage of their history Greeks had begun to collect the poems".
The *Story of Mankind*, by Hendrik Van Loon (1948), page 43.

धर्म का गायन वर्जिल और प्रेम का गायन दान्ते ने आरम्भ किया। धर्म से प्रभावित इन सभी काव्यों मे मानवीयता के स्थान पर दैवी भावनाओ का अधिक प्रतिपादन है। इसी के पश्चात अनेक स्वरूपो में प्रस्तुत होने वाली बाइविल में भी कही कही कविता के दर्शन होते है। इस प्रकार मानवीय सभ्यता के आरम्भिक काल में ही कविता का विकास हो चुका था। वेदो के अतिरिक्त होमर, वर्जिल, दान्ते आदि कवियो की रचनायें प्राप्त होती है। धार्मिक होते हुये भी इनमें मानव जीवन की विस्तृत व्याख्या है। महाकवि वाल्मीकि का भी समय ६०० ई० पू० तथा वेदव्यास का ५०० ई० पू० माना जाता है।

काव्य और जीवन की घनिष्ठता के कारण धार्मिक भावना के प्रतिपादन मे भी काव्य का अवलम्ब ग्रहण किया गया। यही कारण है कि कवि को एक महत्वपूर्ण स्थान मिला। वह ऋषि, कृती, विधायक, देवदूत आदि कह कर पुकारा गया। साहित्य के क्षेत्र में इस महत्व का एक अन्य परिणाम भी हुआ। इन कवियो के नाम पर ही साहित्यिक युगो का निर्माण किया गया। होमर के नाम पर उस समय एक परम्परा ही चल पडी थी। उसकी मौलिकता इतनी स्पष्ट है कि वह दूर से ही झलक जाती है। आने वाली काव्य-परम्परा को उसने प्रभावित कर दिया। आज भी 'हेलेन' का सौन्दर्य साहित्य में अपना स्थान रखता है। उसके देवताओ में भी मानवीय भावनाओ का प्रतिपादन है। वर्जिल ने इटली के जीवन में एक नवीन क्रान्ति का सचार किया था जो दान्ते तक में विकसित होती रही। दान्ते स्वय अपने गुरु की सहायता से समस्त जीवन को देखता चला जाता है। प्राचीन काव्य परम्परा के अतिरिक्त मिल्टन, गेटे, शेक्सपियर पश्चिम में अपना युग स्थापित कर चुके है। चासर ने मध्ययुग में एक वार पुन प्राचीनता की स्थापना का प्रयत्न किया। पुनरुत्थान काल में शेक्सपियर ने अपने युग का सचालन किया था। जीवन के विस्तृत आधार पर अन्तर और बाह्य का जो सुन्दर अकन उसने किया, उससे आने वाले युग ने एक नवीन प्रेरणा प्राप्त की। उसके समस्त पात्र हमारे निकट प्रतीत होते है और हमारी समस्त सवेदनायें उनके साथ चली जाती है। २०० ई० पू० के कालिदास यदि प्रकृति के अन्तरतम को छू सके थे, तो सोलहवी शताब्दी के शेक्सपियर ने मानव जीवन का कोना कोना झाक डाला। राजा दुष्यन्त वियोग के दिनो में सानुमती से कहता है,

दर्शन सखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता॥

"यह तुमने क्या कुकर्म किया मित्र ! मैं तन्मय होकर सामने उपस्थित शकुन्तला के दर्शन का सुख ले रहा था। तुमने स्मरण दिलाकर मेरी प्रियतमा को चित्र मात्र कर दिया।"

शेक्सपियर का हैमलेट अपनी आन्तरिक भावनाओ से आजीवन युद्ध करता है। उसके मानसिक द्वन्द का निरूपण कर कवि ने मानव की मनोदशा का सफल अकन किया। कालिदास ने प्रकृति के प्रति अपनी समस्त भावनाओ का समावेश 'ऋतुसहार' मे कर दिया है। उनकी प्रकृति मानव की सहचरी बन गई है। शेक्सपियर की मानवता उनके साहित्य मे पग पग पर बोलती है। उसी के पश्चात मिल्टन ने भी एक बार प्राचीनता के पुनरुत्थान का प्रयत्न किया। वह आदर्शवाद की उच्च भूमि पर काव्य को ले जाना चाहता था। उसने यद्यपि धार्मिक प्रवचन नही दिये, किन्तु ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार किया। 'पैराडाइज लास्ट' और 'पैराडाइज् रिगेन्ड' के द्वारा उसने मानव और ईश्वर का सन्तुलन प्रस्तुत किया। उसे 'क्लासिकल' कवियो की श्रेणी में रक्खा जाता है। कीट्स, बाइरन, शेली आदि स्वच्छन्दतावादी कवियो के नाम से यद्यपि किसी युग की स्थापना नही हुई किन्तु उन्होने साहित्य की गीति परम्परा को जन्म दिया। सगीत और काव्य का सुन्दर सगम प्रथम बार उनके काव्य में मिला। उसमें अन्तर का प्रकाशन था, बाह्य कुछ दूर हो गया था। होमर, शेक्सपियर के पश्चात् एक बार पुन. जर्मनी के कवि गेटे ने मानव जीवन की विस्तृत भूमि पर अपने काव्य का सृजन किया। उसके 'वर्थर' की आन्तरिक अनुभूति के प्रकाशन ने जनता को पागल कर दिया था। गेटे के फाउस्ट का उच्छृङ्खल नायक उठता गिरता सच्चा मानव है। अपने फाउस्ट के आरम्भ में ही गेटे ने कहा था, "मुझे नीरव, स्वर्गिक प्रदेश मे ले चलो। जहा केवल कवि की निश्छल पवित्र ज्योति प्रकाशित रहती है। जहा प्रेम और मैत्री पल्लवित और पुष्पित होते हैं। जहा अपने अतीन्द्रिय करो से हमारे अन्तस्तल मे कोई आनन्द भर दे[४]।"

भारतीय काव्य परम्परा वैदिक युग से लेकर, वाल्मीकि, व्यास, कालिदास तक अपने प्राचीन स्वरूप में सुरक्षित है। सभी कवियो ने स्वर्णिम वैभव में काव्य रचना की। उनमे उल्लास है, जीवन है। पाश्चात्य कवियो की भाति

---

४. "Nay, lead me to that tranquil heavenly region,
Where only blossoms the Poet's pure delight;
Where love and friendship charm to bud and blossom,
With godlike hand, the bliss within our bosom".

—Faust

उनका भी युग रहा है। भारतीय ऋषि परम्परा का प्रतीक वाल्मीकि है। समस्त वर्णन आदर्शवादिता और एक उच्च भावना से अनुप्राणित है। व्यास में जीवन का सघर्ष स्पष्ट झलकने लगा। जीवन की समस्याये भौतिकता की ओर बढ़ने लगी थी। व्यास का महाभारत जीवन के व्यावहारिक धरातल पर निर्मित है। वाल्मीकि के युग का भ्रातृत्व आदर्श पीछे छूट चुका था। यहा तो भाई सुई की नोक बराबर भी भूभाग देने को प्रस्तुत न था। रामायण का युद्ध देव दानव का है, महाभारत का भाई और भाई का। कालिदास प्रेम और सौन्दर्य के गायक कवि है। उनकी प्रकृति अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य से प्रेम भावना का साथ देती चलती है। इसी भावना-विभेद के कारण कालिदास के राम और सीता वाल्मीकि से पृथक है। स्वर्णिम युग के इस सरस कलाकार की वाणी का माधुर्य समस्त कलाकौशल लेकर प्रस्तुत हुआ है[५]। प्रेम, सौन्दर्य की इस शाश्वत भावना के कारण ही विश्व में वह सबसे अधिक प्रसार पा सके। इस प्रकार सस्कृत के प्रमुख कवि अपना एक अस्तित्व रखते है। उनकी परम्परा है, उनके आदर्श है। हिन्दी में तुलसी, सूर, कबीर अपनी धारा और युग के सर्वश्रेष्ठ कवि होते हुये भी किसी परम्परा के जन्मदाता रूप में सम्मुख नही आते। वे अपनी परम्परा के सर्वोत्तम कलाकार है। उन्होने किसी न किसी का आचार्यत्व ग्रहण किया था। जायसी सूफी प्रेम पद्धति के सर्वोत्तम कवि है। किन्तु आगे चलकर भारतेन्दु ने पुन· अपना युग स्थापित कर एक बार कवि के क्रान्तिकारी, मौलिक स्वरूप का परिचय दिया। इस प्रकार कवि और काव्य का महत्व प्रत्येक देश और काल में रहा है। ये सभी एक परम्परा, युग और सम्यता के प्रतीक है। उन्होने समाज की गतिविधि का नियन्त्रण अपनी लेखनी से किया था। उन्हे हम हृदयवादी नेता कह सकते है। वेदो ने भी मानव को ज्ञान से मोक्ष तक ले जाने का प्रयास किया[६]। दान्ते और वर्जिल ने धार्मिक भावना का प्रसार किया। होमर ने सौन्दर्य, और युद्ध की समस्या पर प्रकाश डाला। मानवता और देवत्व का सगम उस युग की विशेपता है। गेटे ने प्रचलित रूढियो के विरुद्ध क्रान्ति की थी। तुलसी ने राम के मर्यादापुरुपोत्तम स्वरूप से जातीय पतन को रोका था। इस प्रकार काव्य ने समाज के साथ

---

५ "In Kalidas we have unquestionably the finest master of the Indian poetic style"

 History of Sanskrit Literature By Dr. A B Keith (1941) Page 101.

६. 'Veda is primarily knoweldge in general."

—Life in Ancient India - by Adolf Kaegi, Page 11

ही बढने का प्रयत्न किया है। वन के ऋषि से लेकर तुलसी के आदर्श मानव तक उसका प्रसार है। साहित्य जीवन की समालोचना करता है। काव्य के वास्तविक मूल्यांकन के लिये सामाजिक स्थिति का अध्ययन इसी दृष्टि से आवश्यक हो जाता है।

विश्वकाव्य—

विश्वकाव्य की दीर्घ परम्परा मे कवियो के अनेक स्वरूप सम्मुख आते है। भाव प्रकाशन के विभिन्न माध्यमो के अतिरिक्त देश-काल के अनुसार उनकी शैली भी पृथक है। पश्चिमी मे होमर की वीर भावना सौन्दर्य को भी साथ लेकर चलती है। दो सभ्यताओ और सस्कृतियो के सघर्ष मे हेलेन का सौन्दर्य भी महत्वपूर्ण है। भारत के सस्कृत कवि अस्त्र शस्त्र के युद्ध और रक्त-पात की अपेक्षा उसे देव-दानव युद्ध का स्वरूप देते है, जिसकी ध्वनि आध्यात्मिक है। आधुनिक युग में यही सघर्ष जीवन-सघर्ष का स्वरूप धारण कर लेता है। भौतिक जगत मे चलने वाला युद्ध मानव मे ही चलने लगा। मनुष्य का जीवन स्वयम् एक सतत सघर्ष है, और उसी का अकन कवि अपनी रचनाओ मे करता है। युद्ध और धर्म का स्थान मानव ने ग्रहण कर लिया है। ससार मे सर्वत्र प्रचलित धार्मिक भावना के माध्यम से मिल्टन और वाल्मीकि समान रूप से प्रशसित हो सकते है, किन्तु आधुनिक युग मानवीय भावनाओ को स्वीकार करता है। कालिदास के रूप वर्णन और सौन्दर्याकन की सार्वभौमिकता उसे विशिष्टता प्रदान करती है। जीवन की जटिल समस्याओ के मध्य भी न मरनेवाली मानव की सौन्दर्य भावना शकुन्तला के रूप गुण से आनन्दित होती है। कवि की सौन्दर्यचेतना अपने व्यापक प्रसार मे सफल है। पात्र और घटना देश काल के अनुरूप ही निर्मित होते है। हेलेन का सौन्दर्य एक युद्ध का सूत्रपात करता है, किन्तु शकुन्तला की रूपराशि प्रेम भावना का आलम्बन बनती है। 'पृथ्वीराजरासो' तथा 'पद्मावत' में सयोगिता और पद्मिनी युद्ध का कारण होते हुये भी सम्पूर्ण आधार नही बनती। वीरता प्रदर्शन तथा आध्यात्मिक निरूपण भी उसके उद्देश्य है। परिवर्तित बाह्य परिस्थितियो के बीच प्रवाहित मानवीय सत्य ही समस्त साहित्य को एक भूमि पर ले आता है। अंग्रेजी कवियो की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ हिन्दी के छायावाद के समीप प्रस्तुत की जाती है। भावोत्तेजना, गीतात्मकता, व्यक्तिवाद, रहस्यमयता, सौन्दर्योपासना आदि की समानता होने हुये भी छायावाद अपनी राष्ट्रीय चेतना को अधिक स्वीकार करता है। देश की भावना ने उसे पर्याप्त प्रभावित किया। परिवर्तित परिस्थितियों के ही कारण पन्त की काव्य

धारा मुड़ती चली गई। शैली ने अपने प्रेमदर्शन को काव्य में निरूपित करते हुये कहा, "पर्वत उच्च स्वर्ग का चुम्बन ले रहे है, लहरिया एक दूसरे को आलिंगन पाश मे वाधे हैं। कोई भी प्रसून साथी के अभाव में क्षमा नही किया जा सकता। अशुमाली की रश्मिया धरणी को आवद्ध कर लेती है। शशि की किरणें उदधि को चूम चूम लेती है। इस समस्त चुम्बन का मूल्य ही क्या, यदि मै तुम्हें न चूम लू[१]।" ऐन्द्रियता की गन्ध कवि की पक्तियो में प्राप्त हो जाती है। सौन्दर्य की एक अदम्य उत्तेजना उसमें दिखाई देती है। परम्परा के प्रतिक्रियास्वरूप उदित होने वाला छायावाद अपनी क्राति में भी अधिक मर्यादित रहा। स्वयम प्रसाद की ही रूप और शृगार भावना छाया-सकेतो को लेकर आरम्भ हुई। एक साधारण सा आवरण सर्वत्र पड़ा रहता है। उत्तेजना, ऐन्द्रियता अपने उन्मुक्त प्रवाह में नही बह पाती। अप्रस्तुत विधान और छाया-सकेतो द्वारा ही उसकी अभिव्यजना होती है। 'आसू' इसका अच्छा उदाहरण है कि किस प्रकार शृगार का परिष्कार किया जा सकता है। है। देश काल के अनुसार वस्तु और शैली में भी परिवर्तन हो जाता है। यूनानी, ईरानी, फारसी और भारतीय काव्य मे प्रकृति के उपादानो में भिन्नता प्राप्त होगी। बुलबुल, नाइटिन्गेल, कोकिला का स्वर कवियो को सदा से प्रेरणा देता रहा है, किन्तु उनमे देश की सीमाओ का स्थान है। प्रकृति को कवि भूमिका तथा पृष्ठभूमि के रूप मे भी अकित करते है। 'कुमारसम्भव' हिमालय की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित है। किन्तु अन्य कवि अपने देश की विभूति का ग्रहण करते है। कवि को अपने देश के कण कण से प्रीति होती है। उपमा के रूप में वह उन्ही वस्तुओ को ग्रहण कर लेता है। नरगिस और खजन दोनो ही नेत्रों की सौन्दर्यमयता के बोधक है। इस प्रकार कवि अपने देश और काल का प्रतिनिधित्व करता है।

देश-काल का बन्धन होते हुये भी विश्वकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां समान रहती हैं। उनका मूल स्वर बहुत अधिक भिन्न नहीं होता। मानव जीवन से प्रेरणा ग्रहण करने वाला कलाकार सत्य का निरूपण करता है। कवि-सत्य जीवन का सत्य होता है। कवि जितनी ही दृढता से मानव और जीवन के इस सत्य को अपनाता है, उसमें उतनी ही अधिक सवेदना आ जाती है। सत्य के द्वारा वह यथार्थ और आदर्श का समन्वय कर लेता है। कवि

---

१ "See the mountains kiss high heaven
And the waves clasp one another."
Love's Philosophy—Shelley.

का कर्तव्य सत्य का उद्घाटन, प्रतिपादन दोनों ही है। महाकवि का सत्य इतिहास की अपेक्षा अधिक महान होता है[८]। उसमें अनुभव और अनुभूति दोनों का सामंजस्य प्रतीत होता है। वह युग और देश की सीमाओं से आगे बढ़ जाता है। काव्य का सत्य, स्थिति का विश्लेषण करते हुये एक नवीन दिशा की ओर भी संकेत कर जाता है। आने वाली पीढ़ियाँ इस सत्य को दुहराया करती हैं। यथार्थ निरूपण तथा आदर्श संकेत का कार्य कवि मानव-सत्य का ग्रहण करने में ही कर पाता है। उसकी भूमि अत्यन्त सुदृढ़ होनी चाहिए, जहाँ वह सत्य का निरूपण कर सके। वियोग की स्थिति में विश्व के समस्त सच्चे प्रेमियों की स्थिति एक सी होती है। रोमियो और दुष्यन्त के प्रेम की पवित्रता, उसके ताप में अधिक अन्तर नहीं रह जाता। प्रेम को अन्धा तथा हृदय से देखने वाला कहकर शेक्सपियर ने केवल एक वास्तविक सत्य का ही निरूपण किया। स्वयं प्रसाद का प्रेम हृदय का पवित्र व्यापार है। कवि जीवन के जिस कठोर सत्य का निर्देश करता है, वही काव्य का प्राण होता है। कभी सूक्तियों के द्वारा, कभी केवल संकेत, ध्वनि मात्र से ही महान कलाकार इस कार्य को करते हैं। उनका सत्य एक साधारण उपदेशक अथवा प्रवचनकर्ता से भिन्न होता है। उनके चरित्र, स्वर सभी में एक प्रकार की ध्वनि निकला करती है। विश्व के महान कवियों के काव्य का सत्य महत्वपूर्ण होता है। प्रेरणा तथा अनुभूति का सत्य कवि को दृढ़ धरातल प्रदान करता है। अनुभूति की सच्चाई काव्य को शक्ति प्रदान करती है। इसके द्वारा काव्य प्राणवान और सजीव हो उठता है। गेटे ने अपनी अनुभूति को ही साहित्य में प्रतिपादित किया। इसी कारण राजाज्ञा होने पर भी वह युद्ध गीत न लिख सका। उसने कहा कि 'बिना घृणा किये मैं घृणा के गीत कैसे बना सकता हूँ।' प्रेरणा और अनुभूति के अतिरिक्त कवि अपने पात्रों और परिस्थितियों की योजना में भी सत्य का ही अवलम्बन अधिक ग्रहण करता है[९]। पात्रों की सजीवता ही संवेदना का उदय करती है। उनके साथ मानवीय भावों का तादात्म्य हो जाता है। कवि भावों के इसी सत्यांकन के द्वारा उद्दीपन में सफल होता है। अपने अनुभवों को प्रकाश में लाकर कवि संवेदना जाग्रत कर देता है। एमर्सन के अनुसार अपनी आन्तरिक अनुभूति का प्रकाशन करनेवाला व्यक्ति समग्र देश काल के

---

८. Judgment in Literature—Page 67

९. "All my works are fragments of a great confession"—Goethe.

लिये लिखता है[१०]। अनुभूति का सत्य ही 'आसू' की आत्मा है। प्रेम और उसकी तीव्रता का सम्पूर्ण ताप अपनी सजीवता लेकर आया है। कवि जीवन की कठोरता से प्रेरणा लेकर अनुभूति का ही प्रकाशन करता है :

मानव जीवन वेदी पर
परिणय हो विरह मिलन का
दुख-सुख दोनों नाचेंगे
है खेल आंख का मन का।

सम्पूर्ण जीवन-सत्य के आग्रह के साथ ही उसमें व्यापकता भी होना आवश्यक है। केवल व्यक्तिगत अनूभूतियो और भावो का प्रकाशन कवि को महानता नही प्रदान कर सकता। मनोवैज्ञानिक रीति से कवि को उसका उदात्तीकरण और परिष्कार करना पडता है जो कवि अपनी अनुभूतियो को उदात्त बनाने में जितना ही अधिक सफल होता है, उसकी रचना उतनी ही विशिष्ट होती है। सत्य को सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान करने में महान कवि सदा सफल होते है। यही कारण है कि उनका स्वर देशकाल की सीमाओ में नही बाधा जा सकता। देश, जाति, काल से प्रेरणा लेकर भी वे सत्य के व्यापक निरुपण में प्रयत्नशील होते है। वे सत्य को सपूर्ण इकाई के रूप मे ग्रहण करते है। किसी बधे बधाये सिद्धात को स्वीकार कर चलना इसी कारण उनके लिये सम्भव नही होता। ससार को खुली दृष्टि से देखने वाला कवि अपनी मौलिक उद्भावनायें करता है। उसका सत्य मानवीय भावनाओ का रस होता है। रस-निष्पत्ति के मूल में सत्य और उसके व्यापक प्रसार की ही भावना निहित है। भाव, विभाव, अनुभाव के सयोग से रस का सचार होता है। प्रसाद रस के अन्तर्गत आदर्श, यथार्थ, प्रेय, श्रेय का समन्वय देखते है। उन्होंने काव्य और विज्ञान के सत्य को विभिन्न बताते हुये कहा कि कवि 'सत्य के विराट' रूप का ही ग्रहण करता है[११]। जीवन की असाधारण अवस्थाओ को भी सामान्यता प्रदान करना कुशल कलाकार का गुण है। सार्वभौमिकता का आग्रह करने वाले पाश्चात्य साहित्यिको ने मानवीय भावों पर जोर दिया। फेबियन समाजवाद तथा प्रगतिवाद का साम्प्रदायिक, राजनैतिक स्वरूप भी मूलत सर्वजनीन साहित्य का ही आग्रह करता है। महान कवि बिना किसी मत और सिद्धान्त की सहायता के सर्वयुगीन, और सर्वदेशीय

---

१० 'He who writes for himself writes to an eternal audience'.
—Emerson

११ काव्य और कला, पृष्ठ १०

काव्य का निर्माता होता है । स्वयम् जार्ज थाम्पसन ने मार्क्सवाद और काव्य पर विचार करते समय 'कविता को लयमुक्त होने के कारण मुग्धकारी' स्वीकार किया[१२] । काव्य का यह व्यापक गुण, विस्तृत स्वरूप ही साधारणीकरण के अन्तर्गत आ जाता है । इस प्रकार किसी न किसी रूप मे काव्य में सार्वभौमिकता का समावेश अनिवार्य है। इसके अभाव में वह युग और काल के प्रवाह में खो जाता है। असंख्य कवियो का महत्व केवल ऐतिहासिक ही रह जाता है किन्तु होमर और कालिदास युग युगान्तर तक चलते रहते हैं। सार्वभौमिक सत्य के निरूपण ही ने शेक्सपियर और कालिदास को महानता प्रदान की । जर्मनी का गेटे शाकुन्तल पर रीझ उठा। रवीन्द्र की गीताजलि को यीट्स ने युग की सर्वश्रेष्ठ कृति कहा । महान कवि अपने व्यापक ,चिरन्तन सत्य के द्वारा सर्वत्र वन्दित होते हैं। जीवन के मूल तत्वों को पकड़कर चलने वाली कविता कभी सकीर्ण नहीं हो सकती । काव्यगत सत्य एवम् यथार्थ का व्यापक धरातल महान काव्य के अनिवार्य विषय है । वाल्मीकि की सीता को भवभूति ने अत्यन्त करुणामयी बनाकर चित्रित किया । राम के वियोग में वे क्षीण हो गई है

> परिपांडु दुर्बल कपोल सुन्दरम्
> दधती विलोल कबरी कमाननम् ।
> करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी
> विरह व्यथैव वनमेति जानकी ॥

—उत्तररामचरित, तृतीय अंक ।

वाल्मीकि के रामायण की परिस्थिति योजना सीता के प्रति सहानुभूति जागृत कर देती है। सती, पतिव्रता नारी को त्याग देना अनुचित है। राम के महान व्यक्तित्व के अनुरूप भी यह कार्य नहीं प्रतीत होता । किन्तु वे भी तो विवश है, क्योंकि लोकलज्जा का निर्वाह करना ज़रूरी है । यह 'विवशता' राम के व्यक्तित्व को नीचे नहीं गिर जाने देती, साथ ही सीता की वियोगदशा के प्रति सहानुभूति भी जागृत हो जाती है। दोनो कवि एक ही सत्य का ग्रहण करते हैं। मनु जिन परिस्थितियों में द्वारा श्रद्धा का त्याग कर देते हैं, उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर देने पर उन्हें अधिक दोषी नहीं कहा जा सकता । उनका मानसिक कमजोरी इनके लिये उत्तरदायी है। इसीलिये प्रसाद ने नियति का इतना अधिक आग्रह किया।

---

१२. "The language of poetry being rhythmical is hypnotic" Marxism and Poetry by George Thompson, page 26

दुष्यन्त को अपने अभिशाप का फल तो भोगना ही था, फिर वे शकुन्तला को किस प्रकार पहचान लेते। इन सभी परिस्थिति योजनाओ का साम्य उन्हें एक दूसरे के समीप लाकर व्यापकता प्रदान करता है। मानव मन का अन्त-विश्लेषण करने में सभी कवि एक दूसरे के अधिक समीप आ जाते हैं। मानव की सम्पूर्ण इकाई और उसका सत्य विभिन्न नही हो सकते और महान कवि उन्ही का ग्रहण करते हैं। जड चेतन, नारी पुरुष सभी में वे सर्वकालीनता आरोपित कर लेते है। प्रकृति का व्यापार भी अखड और शाश्वत होता है। सामाजिक परिवर्तन के साथ मानव की भौतिक समस्यायें बदलती है, किन्तु उसकी भावगत स्थिति में अधिक क्रातिकारी परिवर्तन नही होते । युगो से मानव अपनी उन्नति के लिये प्रयत्नशील है, और उसकी पराजय भी इस क्रम को समाप्त नही कर देती । मनुष्य के इस प्रयास का सर्वतोमुखी चित्रण महाकवि करता है। वह केवल किसी एक ही पक्ष का ग्रहण नही करता । प्रसाद का काव्य व्यक्ति से समष्टि तक जाने का एक सफल प्रयास है । 'झरना' की व्यक्तिगत निराशायें 'आसू' के वेदना दर्शन तक आकर अन्त में 'कामायनी' के विश्वजनीन आनन्द में परिणत होती है । कवि अन्त में सार्वभौमिकता को प्राप्त कर लेता है और यही उसकी सबसे बडी सफलता है। केवल प्रेम और विरह को लेकर चलने-वाला 'आसू' भी अन्त मे वेदना को दर्शन रूप में अकित कर समग्र ससार को अपनी परिधि मे बाध लेता है। 'कामायनी' की समस्त योजना सार्वभौमिक आधार पर की गई । कथा, पात्र, दार्शनिक निरूपण सभी के मूल में कवि की व्यापक दृष्टि निहित है। सम्पूर्ण मानवता को ही काव्य का विषय बनाया गया है । महाकवि गेटे मे भी इसी प्रकार का विकास दिखाई देता है । व्यक्तिगत अनुभूतियो को लेकर 'वर्थर' का लेखक 'फाउस्ट' के व्यापक जीवन दर्शन तक जाता है । स्वयम 'आसू' और 'वर्थर' के द्वितीय सस्करण में नवीन दर्शन की नियोजना हुई । अपने अन्तिम चरण मे भी सार्वभौमिक स्वर को काव्य में स्थान देने वाला कवि महानता प्राप्त करता है। इसी के साथ ही वह अपने समय से दूर नही रह सकता । कवि अपने युग का प्रतिनिधि होता है। एक ओर जहा उसकी भावना, अनुभूति, सवेदना विश्वजनीन धरातल पर होती है, वहाँ वह अपने युग का चित्र भी प्रस्तुत करता है । मार्क्सवादी आलोचक काडवेल काव्य को भाषा के माध्यम से व्यक्त होने वाली वस्तु स्वीकार करते है। भाषा के समाज की वस्तु होने के कारण काव्य भी अपनी सामाजिक परिस्थितियों से अनुप्राणित रहता है[१३]। महाकवि की रचनाओं में युग प्रतिबिम्बित

१३ Illusion and Reality—(Introduction) by Christopher Caudwell

रहता है। होमर यूनान, वर्जिल रोम, वाल्मीकि भारत की प्राचीन सभ्यता का निदर्शन कराते हैं। उस युग का समाज उनकी कृतियों में चित्रित है। वीर युग की युद्ध समस्या तथा जागृत सौन्दर्य भावना 'इलियड' की प्रेरणा बन कर आई। दान्ते की वियेट्रिस-कल्पना से ही स्पष्ट है कि धर्म के साथ ही नारी और प्रेम का भी समावेश होने लगा था। केवल यही नहीं, इग्लैंडके स्वच्छन्दतावादी कवियों की क्राति भावना में मध्यवर्ग का व्यक्तिवाद निहित है। गेटे ने जर्मनी के विद्रोही कलाकारों का प्रतिनिधित्व किया था। युग से अनुप्राणित कवि अपनी कृति में उसी का चित्रण करता है। वे चित्र धूमिल नहीं पड़ते, उनका चिरन्तन सत्य उन्हें अमरत्व देता है। युग का भौतिकवाद, विज्ञान, युद्ध, सभी कुछ महाकवि लेकर चलते हैं। 'कामायनी' का चिन्तन पक्ष अपने भीतर अनेक समस्याओं का समाधान लिये हुये है। युग की विभीषिका का अकन उसमें हुआ। जीवन की परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ मनु किसी सीमा तक आधुनिक मानव का प्रतिनिधित्व करता है। व्यापक दृष्टि रखने वाले प्रसाद ने वर्गगत संघर्ष को नहीं लिया। उन्होंने मन और मस्तिष्क के संघर्ष को चिरन्तन बनाया। 'संघर्ष' और 'इडा' सर्ग आधुनिक सभ्यता का चित्र प्रस्तुत करते हैं। काम के शाप में वर्तमान मानवता की विषमता आभासित होती है। मशीन इयता में लिप्त होकर व्यर्थ ही वर्ण तथा अनेक समस्याओं का सृजन कर रहा है। कोलाहल, कलह की वृद्धि है। आज का विश्व किसी प्रकार गिरता पड़ता चला जा रहा है। 'स्वजनों का विरोध' ही वर्ग संघर्ष का आभास दे देता है। शस्यश्यामला पृथ्वी दारिद्रमयी, दलिता होकर बिलख रही है। कवि ने काम की भविष्यवाणी द्वारा आधुनिक विषमता का चित्रण किया। रवीन्द्र के काव्य में देश की राष्ट्रीयता से अनुप्राणित क्रांति का स्वर है, तो साथ ही विश्व की स्थिति के अनुरूप मानवीयता तथा आध्यात्मिकता भी। 'कर्मयोगेतारसाथे एक हये घर्म पडुक झरे,' द्वार कर्मका संदेश देने वाली 'गीताजलि' उच्च भाव भूमि तक चली गई। इस युग का भारत एक ओर यदि अपने देश की जागृति में प्रयत्नशील, था, तो साथ ही अपनी सास्कृतिक चेतना में भी उसकी आस्था बढती जा रही थी। गाधी के रूप में भारत को एक महान व्यक्तित्व प्राप्त हुआ और हिन्दी का काव्य भी उससे बिना प्रभावित हुये न रह सका। अहिंसा, सत्य और प्रेम का निरूपण काव्य में विभिन्न प्रकार से हुआ। यूरोप मे विलियम बटलर यीट्स और उनके साथी सौन्दर्यमयी तथा रहस्यवादी भावनाओं को अभिव्यक्ति रहे थे। हिन्दी का छायावाद भी व्यक्ति-समाज के समन्वय में प्रयत्नशील था। केवल राष्ट्रीय भावना ही उसका लक्ष्य न था, वह विश्व को सम्पूर्ण इकाई के रूप देखने

लगा। प्रसाद ने भारतीय दर्शन को अपना विषय बनाया। एक सांस्कृतिक पुनरुत्थान की आवश्यकता का उन्होंने अनुभव किया। एक ओर यदि श्रद्धा मनु के माध्यम से समस्त त्रस्त और निराश मानवता को जीवन, जागृति, आशा, कर्म, शक्ति का संदेश देती है, तो साथ ही गांधी युग की विभूति तकली भी उसके हाथ में है। वह अहिंसा का भी उपदेश देती है। एक महान कलाकार की भांति प्रसाद ने अपने देश काल और युग की आवश्यकता को पहचाना। उन्होंने उससे प्रेरणा ली और बिखरी हुई चेतना में को एकसूत्र में बांधने का प्रयास किया।

कवि का कृतित्व--

प्राचीन काल में कवि को ऋषि की संज्ञा दी गई। उसे 'मनीषी' बताया गया। शेली ने भी उसे 'पैगम्बर' कहा। कवि और काव्य की अनेक परिभाषायें उसके उत्तरदायित्व और कर्तव्य को निरूपित करती हैं। युग का चित्रण करते हुये वह भावी का एक आदर्श स्वरूप भी निर्धारित करता है। आने वाले युगों में कवि की सूक्तियां बन जाती हैं। उसके स्वर में निराश मन को सान्त्वना प्राप्त होती है। काव्य केवल आनन्द ही नहीं देता, वरन् उसके चिन्तन में प्रश्नों के उत्तर भी मिल जाते हैं। 'जीवन संगीत' में लांगफेलो का कथन है—'भविष्य कितना भी सुन्दर हो उस पर विश्वास न करो। विगत अतीत को सदा के लिये सो जाने दो। जीवित वर्त्तमान में कार्य करते रहो। हृदय साथ हो और ऊपर ईश्वर रहे[१४]।' उच्चकोटि के कवि सत्य, मत का प्रतिपादन केवल संकेतों द्वारा कर देते हैं। उनके काव्य से एक प्रकार की ध्वनि निकला करती है। समस्त योजना ही इसमें सहयोग प्रदान करती है। काव्य के अन्त में जो ध्वनि अथवा समष्टिगत प्रभाव होता है, वही कलाकार के चिन्तन का परिचय दे देता है। स्थान-स्थान पर आने वाले निर्देश अन्त में समन्वित प्रभाव को प्रस्तुत करते हैं। कवि जिस लक्ष्य और उद्देश्य का प्रतिपादन करना चाहता है, उसके लिये वह आरम्भ से ही प्रयत्नशील दिखाई देता है। नाटक की रसनिष्पत्ति, काव्य की प्रभावान्विति अनायास ही अन्त में जाकर निर्मित नहीं हो जाती अथवा रचनाकार उपदेशक की भांति उसका प्रतिपादन नहीं करने लगता। सौन्दर्य के लिये होनेवाला इलियड का भीषण युद्ध अत्यधिक रक्तपात के पश्चात करुणा में समाप्त होता है। मृत्यु जीवन का कठोर सत्य बनकर आती है। अन्तिम समय में एकीलीज अपने शिविर में प्रभात तक विलाप करता दिखाई देता है। स्वयम् उसके मन में

---

१४ A Psalm of Life—by Longfellow.

पिता की मधुर स्मृतिया भर जाती है, वह आकुल हो उठता है। उस अवसर पर वन का कण-कण उस क्रन्दन से द्रवित हो जाता है। अन्त मे ट्राजन की स्त्रिया भी करुणविलाप करती है। चिता ही 'इलियड' का अन्त करती है। जीवन की नश्वरता, युद्ध का दारुण अन्त ही समाप्ति पर ध्वनित होता है। 'आडिसी' के अन्त मे यूलिसीज और उसके पिता लैटरीज का पुनर्मिलन हो जाता है। सुख और शान्ति की स्थापना अन्त मे हो जाती है। अनेक सघर्षों के पश्चात उनका यह मिलन अत्यन्त आनन्ददायी बनकर आता है। 'शाकुन्तल' मे दुष्यन्त-शकुन्तला का मिलन भी सुखदायी है। काव्य मे यथाअवसर अनेक सुन्दर भावो का प्रतिपादन करते हुये समाप्ति पर कवि अत्यन्त प्रभावशाली दृश्य उपस्थित करता है। अन्तिम समय मे यह दृश्य स्थायी बनकर रह जाता है। वह मस्तिष्क मे गूजता रहता है। दान्ते ने अपनी 'डिवाइन कामेडी' के अन्त मे नैसर्गिक प्रेम की प्रतिष्ठा कर दी। प्रसाद की कामायनी का अन्त श्रद्धा द्वारा प्राप्त समरसताजन्य आनन्द मे होता है। इसके अतिरिक्त स्थान स्थान पर जीवन के अनेक सत्यो का निरूपण कवि ने किया है। श्रद्धा के शब्दों मे अनेक नीतिया तथा सदेश निहित है। वह काम, कर्म, अहिसा तथा आशा का सदेश देती है। कवि का लक्ष्य आनन्दवाद है, जिसके प्रतिपादन मे वह अन्त मे सफल हुआ। जिस कवि का उद्देश्य जितना ही अधिक विशाल होता है, उसे उतनी ही अधिक महत्ता प्राप्त होती है। केवल महाकाव्यो मे ही नही, छोटे-छोटे गीत खण्डो का गीत भार भी उनकी महानता का परिचायक होता है। अपनी प्रसिद्धि कविता 'स्काई लार्क' के अन्त मे शेली कहता है:

'सिखा दो मुझे तनिक उल्लास
तुम्हें है जो कुछ भी प्रिय ज्ञान
लिये पागल का सा उन्माद
अधर से फूटे ऐसा गान
जिसे मै सुनता हूं प्रिय आज
वही जग में फिर गूजे तान'[१५]।"

प्रबन्धकाव्य मे अनेक स्थलो पर कवि सत्य का सकेत, निर्देश और प्रतिपादन कर सकता है, किन्तु गीतों मे तो उसका गीतभार ही सर्वस्व होता है। कीट्स की 'नाइटिंगेल' मे भी यही स्वर है। प्रसाद के गीत भी स्वयम् मे कोई घनीभूत भावना लिये रहते है। अनेक चित्रो तथा मानसिक द्वन्द्वों से अलकृत

१५. "Teach me half the gladness
That thy brain must know." —Shelley.

'प्रलय की छाया' से सौन्दर्य की पराजय और नारी की विवशता ध्वनित होती है। 'लहर' के छोटे-छोटे गीतो की प्रथम पक्ति से भी सत्य का आभास मिलता है। मधुप का गुनगनाकर कहानिया कह जाना किसी भूली हुई कहानी की याद है, और उसी को कवि कहता है। प्रसाद के काव्य में कोई न कोई ध्वनि और व्यजना प्राय रहती है। धीरे-धीरे उसमे व्यापकत्व आता जाता है। उनकी प्रभावन्विति के मूल में जीवन की अधिकाश समस्याओ का समाधान मिलता है। प्रसाद आनन्दवाद के प्रतिष्ठापक है। व्यावहारिक जीवन में उन्होने कर्म, साम्य का आग्रह किया। 'प्रेमपथिक' मे ही उन्होने प्रेम की व्यापक परिभापा प्रस्तुत की। वह ही उनके साहित्य का मूलाधार बनकर आई। उनका कथन है

> **इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रात भवन में टिक रहना**
> **किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसक आग राह नहीं**
> **अथवा उस आनन्दभूमि में जिसकी सीमा कहीं नहीं**
> **—प्रेमपथिक, पृष्ठ १७**

कवि अपने आदर्श, चिन्तन और सदेश को लेकर युगो तक जीवित रहता है। प्रसाद के काव्य मे इस दृष्टि से पर्याप्त बल और स्थिरता है। उन्होने अपने साहित्य के द्वारा एक जागरूक सदेश दिया। पग पग पर उनका चिन्तन बिखरा हुआ मिलता है। उन्होने अनेक प्राचीन दार्शनिक सत्यो को नवीन व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया जो युग के लिए पर्याप्त उपयोगी है।

भाव और विचार के साथ ही महान कवियो का कला तथा शैली पक्ष भी प्रौढ और स्थायी होता है। भावो और विचारो का प्रतिपादन करने मे वे कौशल्य का परिचय देते है। उनकी शैली भावो को भली भाति वहन कर लेती है, कही भी शिथिलता नही आने पाती। अभिव्यजना की एक विशेप पद्धति वे अपनाते है। हाउसमैन ने शैली और अभिव्यजना प्रणाली को महत्व देते हुये कहा कि 'काव्य केवल कथित वस्तु नही, किन्तु कथन की एक रीति है[१६]।' भारतीय साहित्यशास्त्र में भी रीति, ध्वनि, अलकार, वक्रोक्ति आदि अनेक सम्प्रदायो के मूल मे यही भावना निहित है। इसी के लिये अभिधा, लक्षणा, व्यजना की शब्दशक्तियो का निर्माण हुआ। कवि की भापा सरस, मधुर, अर्थमय, सगीत-युक्त, तथा चित्रमय होती है। उसके शब्दो से विशिष्ट अर्थ की व्यजना होती है। उनका शब्दचयन किंचित असाधारण होता है। प्रत्येक शब्द एक अर्थ रखता

---

१६. "Poetry is not the thing said, but a way of saying it"
—Alfred Edward Housman

हैं, और उनकी विशेष व्यंजना होती है। उनमें एक विचित्र प्रकार की शक्ति रहती है, जिससे काव्य सामान्य कथन नहीं रहने पाता। कतिपय कलाकारों को भाषा और शब्दचयन में विशेष सफलता प्राप्त होती है। दान्ते से उसका शब्द चयन ले लेने पर काव्य का सौन्दर्य ही नष्ट हो जाता है। प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर एक विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हुआ। स्थिति का अंकन करने में उसने शब्दों का सार्थक प्रयोग किया। दान्ते का गुरु वर्जिल तो शब्द-चयन में असाधारण प्रतिभासम्पन्न कवि है। 'इनियड' का शब्द विन्यास असाधारण और अद्वितीय है। कोलरिज का कथन था कि यदि वर्जिल से उसका शब्दचयन छीन लिया जाय, तो लगभग कुछ भी शेष नहीं रह जाता। समस्त क्लासिकल कवि अपने शब्दों का संग्रह प्रायः प्राचीन ग्रन्थों से करते हैं। उनकी भाषा अपने समय की भाषा से पृथक स्वरूप रखती है। वर्जिल, मिल्टन सभी कवियों की भाषा इसी प्रकार की है। स्वच्छन्दतावादी कवि भाषा की दृष्टि से अधिक स्वतन्त्रता का उपभोग करते हैं। उनकी भाषा में संगीतमयता, प्रवाह अधिक होते हैं। प्रबन्धकार भाषा को गम्भीर, सार्थक और गरिमामय बना लेते हैं। भाषा में प्रतीक, रूपक और अप्रस्तुत विधान की भी योजना होती है। सूफी कवियों ने हाला, प्याला, आदि प्रतीकों के द्वारा सम्पूर्ण काव्य सृजन किया। ये सभी प्रतीक एक विशेष आध्यात्मिक अर्थ के वाहक हैं। इनके माध्यम से उन्होंने मत का प्रतिपादन कर धार्मिक असहिष्णुता से अपनी रक्षा की। फारस और ईरान का काव्य प्रतीक-विधान में विशेष सफल रहा। साम्प्रदायिक आधार के अतिरिक्त उन्होंने देश काल के प्रतीक भी खोजे। उमर खैयाम के प्रतीक अपनी सजीवता और सरलता में शाश्वत हैं। उसने प्रणय को मदिरा के रूप में ग्रहण किया—

"प्रणय की मदिरा अत्यन्त लाभकर है। उससे शरीर, प्राणों को शक्ति प्राप्त होती है। उसके पीने से ही समस्त रहस्य ज्ञात हो जाता है। मैं तो मदिरा का केवल एक ही घूँट पीना चाहता हूँ। उसके अनन्तर न संसार-जीवन की इच्छा रहेगी और न मृत्यु की चिन्ता।"

महान कवि काव्य के प्रकृत, नैसर्गिक, स्वाभाविक स्वरूप का ही ग्रहण करते हैं। प्रतीकों का अधिक आग्रह उन्हें नहीं रहता। आरम्भ में प्रतीक सम्प्रदायगत विशेषताओं को लेकर चले, क्रमशः काव्य में उनका प्रवेश हुआ। किसी सम्प्रदाय विशेष की परम्परा को न लेकर चलनेवाले कवि अपने प्रतीकों, रूपकों, उपमाओं की स्वतन्त्र योजना करते हैं। उनके प्रतीक यथास्थान केवल चित्र रूप में अंकित होते हैं, अन्यथा भाषा का सहज रूप ही उन्हें ग्राह्य

होता है। प्रसाद की भापा किसी भी प्रबन्धकार की भाति गम्भीर और उदात्त है। उसमे सस्कृत तथा शिष्ट शब्दो का समावेश है, किन्तु भाव की सरसता मे यह किसी प्रकार का व्यवधान नही बन जाता। भापा का सहज प्रवाह कवि के गीतो मे मिल जाता है। चित्रकार रूप मे प्रसाद एक कुशल शब्द-शिल्पी दिखाई देते है। अपनी भाषा-तूलिका से चित्र निर्मित कर देते है। समस्त रूप तथा वस्तु वर्णन इसी कारण सजीव और प्राणवान बन गया। भापा के दो स्वरूपो का निर्देश करते हुये आई० ए० रिचर्ड्स ने भाषा को विशेप महत्व दिया[१०]। प्रसाद की भापा खडी बोली के समस्त सौष्ठव, माधुर्य और प्रौढता को लेकर प्रस्तुत हुई। वह उसका चरम विकास है, सर्वोत्कृष्ट स्वरूप। चिन्तन के क्षेत्र मे दार्शनिक अभिव्यक्ति के लिये उसमे पर्याप्त प्रौढता और गाम्भीर्य है। सरस भावनाओ का निरूपण मधुर भापा द्वारा हुआ प्रसाद ने सस्कृत से अपने शब्दचयन मे पर्याप्त प्रेरणा ली, किन्तु उसे नवीन कलेवर मे मधुर बनाया। आरम्भ मे भापा किचित शिथिल अवश्य थी, किन्तु क्रमश उसमे परिष्कार होता गया और 'कामायनी' मे वह प्राजल रूप मे आई। शैली मे अभिव्यजना प्रणाली को उन्होने साकेतिक, ध्वन्यात्मक और कही-कही छायात्मक भी कर दिया। इस छाया शैली के कारण भाव कही कही उलझे हुये प्रतीत होते, है और अनावरण की आवश्यकता पडती है।

चादनी सदृश खिल जाय कहीं
अवगुटन आज सवरता सा। (कामायनी, पृष्ठ ६८)

प्रसाद के भावो का वास्तविक सौन्दर्य पाने के लिये भापा के झीने आवरण को उठाना पडता है। भापा, शब्द की यह सज्जा, छायात्मकता भावो की सौन्दर्य वृद्धि मे सहायक होती है, उसे नवीन गरिमा से विभूपित करती है। प्रसाद की भापा मे लाक्षणिकता और व्यजना काव्य को उदात्त रूप देती है। शैली मे छन्दो का विधान भी महान काव्य का प्रमुख उपादान है। समय समय पर विभिन्न कवि अनेक छन्दो का प्रयोग करते है। प्रसाद ने छन्दो का नव निर्माण किया। उनके काव्य मे कई मिश्र छन्द मिलते है, जिनमें प्राचीन को नवीन रूप प्रदान किया गया। 'आसू' के छन्द ने हिन्दी मे एक नई परम्परा ही स्थापित कर दी, जिसका अनेक रूपो मे अनुसरण हुआ। शैली की दृष्टि से प्रसाद का स्थान विश्व के महान कवियो के समीप है। काव्य मे नाटकीय शैली का प्रयोग उन्होने बडी सफलता से किया। कविता मे नाटकीय तत्त्व का समावेश सजीवता ला देता है। भापा का निखरा हुआ रूप

१० Principles of Literary Criticism, page 261

एक सिद्धहस्त कलाकार की भाँति है। अभिव्यंजना की सहज शैली अपनी मार्मिकता, सजीवता को लेकर आई। प्रसाद की शैली एक ओर यदि प्राचीन परिपाटी का साथ देती है तो साथ ही वह स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के समीप है। प्रत्येक दृष्टि से उनमें प्राचीन-नवीन का एक संगम देखा जा सकता है। काव्य को स्थायी बनाने के लिये जिस कलात्मक सौष्ठव की अपेक्षा होती है, उसके पर्याप्त गुण प्रसाद के काव्य में मिल जाते हैं।

विश्व काव्य के महान कवियों में साम्य पाया जाता है। श्रेष्ठ काव्य के उपादानों को लेकर चलने वाले कवि एक दूसरे के निकट आ जाते हैं। उनमें देश काल का अन्तर कम रह जाता है। अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं को लेकर यद्यपि वे अमरत्व प्राप्त करते हैं, किन्तु मूलतः उनमें समानता होती है। होमर की हेलेन, दान्ते की बिएट्रिस, कालिदास की शकुन्तला, भवभूति की सीता, शेक्सपियर की जूलियट अपने व्यक्तित्व में स्थायी हैं, किन्तु उन सब में एक निकटता सुगमतापूर्वक स्थापित की जा सकती है। हेलेन अपने सौन्दर्य का अभिशाप ढोती हुई बन्दिनी बनी। उसकी सुन्दरता ही एक महान युद्ध का कारण हुई। बिएट्रिस नैसर्गिक प्रेम, स्वर्गिक ज्योति की प्रतिमा बन कर आई। वह कवि का पथ प्रदर्शन करती है। उसका व्यक्तित्व अत्यन्त महान है। एक ओर यदि वह प्रेमिका है, तो साथ ही देवी भी। शकुन्तला में वनवासिनी की नैसर्गिक छवि अंकित हुई। प्रकृति का रूप-यौवन उसे मिल गया। वन विहंगिनी की भाँति वह तपोवन में घूमती फिरती दिखाई देती है। कौमार्य का चित्र खींचते हुये कवि ने दुष्यन्त के मुख से कहलवाया :

> सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
> मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
> इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
> किमिव हि मधुराणां मंडनं नाकृतीनाम् ॥

"शैवालिनी से आच्छादित होकर भी सरसिज का सौन्दर्य नहीं मरता; चन्द्रमा की कालिमा भी उसकी सुन्दरता को बढ़ाती है। सुन्दरी वल्कल वस्त्रों में अत्यन्त शोभायमान हो रही है। वास्तव में सुन्दर शरीर पर सभी कुछ सुशोभित होता है।"

करुणामयी सीता नारी का सजग रूप लेकर आई। जूलियट प्रेम और उसकी विषमता का समस्त भार ढोती दिखाई देती है। महान कवियों की नारी अपनी व्यक्तिगत विशेषता से अलग है। 'कामायनी' में श्रद्धा की कल्पना भी कवि ने सर्वातिरिक्त स्वरूप में की। सौन्दर्य, गुण सभी उसमें घनीभूत

हो गये। सुन्दरता में वह गन्धर्व बालिका है, गुणो मे ऋपिका। इन महान कवियो की नारिया सुन्दर, उदात्त और महान है। पुरुप पात्रो के चित्रण मे भी एक साम्य मिल जाता है। पेरिस, दान्ते, दुष्यन्त, राम, रोमियो, फाउस्ट, मनु विभिन्न देश काल में निर्मित होकर भी निकट है। सौन्दर्य पर रीझ उठनेवाला पेरिस अन्तिम समय तक हेलेन के लिये प्रयत्नशील रहता है। उसकी सौन्दर्यभावना प्रेम मे परिणत हो जाती है। दान्ते तो स्वयम् महाकाव्य का नायक बनकर अपने स्नेह का प्रदर्शन करता है। बिएट्रिस मा की तरह उस पर दया करती है। दुष्यन्त भी अपनी प्रेयसी के प्रेम में पागल हो उठता है। राम का अधिक आदर्शवादी स्वरूप भी सीता की अवहेलना नही करता। रोमियो, फाउस्ट, मनु के चरित्र स्वच्छन्द प्रेमी रूप मे अकित हुये। नाटक के दुःखान्त हो जाने का कारण, नायक रोमियो की क्षणभर की भूल होती है। सोती हुई प्रेमिका को वह मृत समझ लेता है। मिलन के अवसर पर वह कहता है, "रजनी में प्रेमियो की भापा रजत का माधुर्य लेकर आती है, जैसे कर्ण के लिये कोमल सगीत[१८]।" फाउस्ट का उत्थान पतन भी सौन्दर्य, प्रेम को नहीं भूलता। मनु श्रद्धा की रूपराशि पर मुग्ध होकर अन्त में अपनी भूल स्वीकार करता है। वह अपनी समस्त जिज्ञासा से जीवन का रहस्य जान लेना चाहता है। कृतज्ञ होकर उसने श्रद्धा के रूप की अभ्यर्थना की। विश्व के महान कलाकारो की नारी-पुरुप समस्या की भाति कामायनी भी इस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करती है।

जनकवि की भापा सामान्य के अधिक समीप होती है। उसमें कलात्मक परिष्कार का अधिक आग्रह नही रहता। काव्य मे नाटक जनता के अधिक समीप पहुँचा। दर्शक उसके अभिनय से आनन्द ले लेते थे। स्वयम् अरस्तू ने महाकाव्य और नाटक पर विचार करते हुये इस ओर सकेत किया। नाटक जनसाधारण की वस्तु है, किन्तु महाकाव्य अधिक सुशिक्षित वर्ग ही समझ सकता है। जनकवि प्राय देश और जाति में अधिक लोकप्रिय हो जाते है। होमर को यूनान, तुलमी को भारत मे सामान्य जनता भी जानती है। वे जनकवि के रूप में प्रतिष्ठित है। किन्तु अन्य वर्ग के महान कवि सम्पूर्ण ससार की सुशिक्षित जनता के कवि होते है। दान्ते, कालिदास, मिल्टन, गेटे, शेली आदि का प्रसार विश्व के एक कोने मे लेकर दूसरे कोने तक है, यद्यपि सामान्य जन उनका आनन्द नही ले सकते। जनकवि जीवन की व्यावहारिक समस्याओ के चित्रण मे अधिक प्रयत्नशील रहता है। सास्कृतिक कवि जीवन की सूक्ष्मतम स्थिति तक

१८. "How silver-sweet sound lover's tongues by night
Like softest music to attending ears"

जाते हैं। मानव मन का अन्तर्द्वन्द्व उनकी कृतियों में स्थान प्राप्त करता है। ज
कवि सीधी, सादी, सपाट पगडंडी पर दौड़ता दिखाई देता है, जबकि विशेष
का कलाकार ऊँची, नीची भाव-भूमि पर भी चलता है। भाव, भाषा, शै
सभी दृष्टि से जनकवि का लक्ष्य उद्देश्य प्रतिपादन तथा अधिक से अ
व्यक्तियों में उसका प्रसार रहता है। अन्य कवि कलात्मक सौष्ठव, भाव नि
पण में अधिक प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। किन्तु सभी महान कवि चिरन
और शाश्वत जीवन-मूल्यों को लेकर चलते हैं। केवल उनकी अभिव्यक्ति
किंचित अन्तर पड़ जाता है। अपने आदर्श राज्य में काव्य की आवश्यकता
न स्वीकार करनेवाला प्लेटो राज्य की भौतिक समृद्धि पर अधिक ध्यान दे
है। सभ्यता के विकास के साथ ही साथ सामान्य विशेष का अन्तर भी मिटता ज
है, और दोनो वर्ग एक दूसरे के निकट आ जाते हैं। प्रसाद का स्थान जनक
अथवा सामान्य जनता के कवियों के समीप नहीं रक्खा जा सकता। उन
भाषा, शैली कलात्मक और परिष्कृत है। किन्तु अंग्रेजी के स्वच्छन्दताव
कवियों की भांति उन्होंने एकांगी दृष्टिकोण नहीं रखा। जीवन
व्यावहारिक रूप भी उन्होंने लिया। काव्य में यह पक्ष सांकेतिक रूप में
व्यंजित हुआ। उसका अधिक विस्तृत विवेचन उनके नाटकों, कहानियों
उपन्यासों में प्राप्त होता है। काव्य में प्रसाद एक उच्च भाव भूमि का आ
करते हैं। जीवन की सूक्ष्मतम समस्याओं को उन्होंने ग्रहण किया। गीतों में
मनोभावना घनीभूत होकर आई, किन्तु 'कामायनी' में उसे व्यापक प्रसार
अवसर मिला। प्रसाद उसमें सभी समस्याओं पर विस्तृत विवेचना न
सके, अन्यथा कलात्मक दृष्टि से वह इतनी महान (क्लासिक) न हो
उन्होंने संकेत मात्र कर दिया और सभी प्रश्नों के उत्तर में अपनी समर
और आनन्द कल्पना को प्रस्तुत किया। समरसता के अन्तर्गत अवि
प्रहेलिकाओं को उन्होंने सुलझाया। आनन्दवाद को जीवन के चरम लक्ष्य रू
अंकित किया। कवियों की सांस्कृतिक परम्परा को प्रसाद ने आगे बढ़ाया,
इस दिशा में उनकी देन पर्याप्त है। काव्य के अतिरिक्त नाटक, कहानी,
न्यास आदि में भी उनका यही दृष्टिकोण व्यंजित होता है। सर्वत्र एक स
माध्यम दिखाई देता है, जो अपने जीवन दर्शन को प्रौढ़ता लेकर चलता है।
दृष्टिकोण में निरन्तर विकास होता गया और 'कामायनी' में उसकी स
अभिव्यक्ति हुई।

होमर, वर्जिल—

पाश्चात्य काव्य के अन्तर्गत समय समय पर नई धारायें चलती रहीं। सभ
और संस्कृति के विकास के साथ ही उनमें स्थान और देश का परिवर्तन

हुआ । सभ्यता की दृष्टि से पश्चिम में यूनान में सर्वप्रथम जागरण आया । यह चेतना मिश्र देश से होती हुई आई थी । बेबीलोन, मेसोपोटामिया आदि मे सभ्यता के चिन्ह दिखाई देने लगे थे । जिस समय हिब्रू में साहित्य का निर्माण हो रहा था, यूनान मे उसका अधिक विकास हुआ । लगभग एक सहस्त्र ईसवी पूर्व ही होमर की महान परम्परा चल पडी जिसने काव्य धारा को आगे बढाया । उसके महाकाव्य की एक एक कथा प्रेरणा का विपय बन गई । होमर केवल काव्य की पश्चिमी धारा का जन्मदाता ही नही, आज भी उसका उत्कृष्ट कलाकार है । 'होमर' शब्द एक विशिष्ट अर्थ का व्यजक बन गया है । हेलेन का सौन्दर्य, एकीलीज का पराक्रम, पेरिस की विवशता, यूलिसीज की असाधारणता, सभी का व्यक्तित्व अनोखा है । परिस्थिति योजना मे होमर को असाधारण प्रतिभा प्राप्त है । अरस्तू ने अपने 'काव्यशास्त्र' में महाकाव्य की चर्चा करते हुये होमर को महत्वपूर्ण स्थान दिया । समीक्षक एक ओर यदि 'इलियड' में महाकाव्य का सम्पूर्ण वैभव पाते हैं तो साथ ही उन्हे 'आडिसी' मे स्वच्छन्दतावाद का प्रथम रूप दिखाई देता है । होमर की कहानिया स्वतन्त्र काव्य का विपय बन गई । उसमें यूनान का समस्त काव्य उत्कर्ष पुष्पित हुआ । हेक्टर का कथन है, "मैं जानता हूँ मेरे मन और मस्तिष्क मे ऐसा भीपण झझावात आयेगा, जब कि पवित्र ट्राय अपने उच्च शिखर गिराकर आसू बहायेगा ।" जिस परम्परावादी प्रणाली का आरम्भ होमर से हुआ था, उसी में वर्जिल, मिल्टन आदि ने कार्य किया । होमर का काव्य वैभव आज भी विश्व का आदर्श है, किन्तु कवि प्रसाद का कृतित्व उससे भिन्न है । कथा का अधिक विन्यास उनमें नही मिलता और न वे वाह्य सघर्ष का ही अधिक निरूपण करते हैं । वीर युग की परम्परा का पालन उन्होंने नहीं किया । हेलेन के सौन्दर्य से भी श्रद्धा की रूपरेखा भिन्न है । वह केवल सुन्दर ही नहीं, सर्वगुणसम्पन्न भी है । 'कामायनी' मे 'इलियड' की भाति नाटकीय तत्व का समावेश अवश्य हुआ, किन्तु वह कवि की स्वतत्र नियोजना है । यूनान से क्रमश सभ्यता और सस्कृति रोम की ओर बढी और इटली देश में साहित्यिक उत्कर्प आरम्भ हुआ । ग्रीक भापा के स्थान पर लैटिन का अधिक प्रचार हुआ । अथेन्स, स्पार्टा का ही महत्व रोम को प्राप्त हुआ । ईसवी शताब्दी के आरम्भ होने से पूर्व ही इटली राज्य का अधिक विस्तार होने लगा था । प्रथम ईसवी पूर्व मे वर्जिल ने अपने 'इनियड' से काव्य की एक नई दिशा प्रस्तुत की । होमर की भाति उसे भी अपने देश से अत्यधिक अनुराग था और उसकी कृति मे राष्ट्रीय भावना दिखाई देती है । देश की प्रकृति ही काव्य की पृष्ठभूमि का कार्य करती है । रोम का समस्त वैभव उसमे वर्णित

है। 'इनियड' के आरम्भ में ही कवि सूचना देता है कि वह रोम के शक्तिशाली पूर्वजों का यशोगान करने की अभिलाषा रखता है। ट्राय की कथा को लेकर उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति की। उसका नायक इनियस ट्राय का ही अवशिष्ट प्राणी है। वह सौन्दर्यदेवी वीनस का पुत्र है। ट्राजन के पतन की कथा भी वही सुनाता है। उसके हाथों टरनस की समाप्ति के साथ काव्य का अन्त होता है। वर्जिल ने अपने काव्य में धार्मिक, आध्यात्मिक तत्व का भी प्रवेश कराया। अनेक देवी, देवता समय समय पर कथानक में आते है। होमर के वीरता और पराक्रम का स्थान धार्मिक भावना को मिल जाता है। वीनस अपने पुत्र इनियस के लिये देवी देवताओं से प्रार्थना करती है। वर्जिल शब्दचयन में अत्यन्त दक्ष और प्रवीण है। भाषा पर उसका अबाध अधिकार है, और किसी भी श्रेष्ठ कलाकार की भांति उसकी कृतियों में भाषा का चरम उत्कर्ष प्राप्त होता है। 'डिडो' का प्रवेश प्रेम भावना को भी स्थान देता है। 'चतुर्थ पर्व' में उसकी मानसिक स्थिति का अकन है। होमर से प्रभावित वर्जिल ने भाषा का अधिक परिष्कार किया। इसी कारण साहित्यिक कवियों ने अपने कलात्मक विकास में उससे पर्याप्त प्रेरणा ली।

दान्ते--

वर्जिल के शिष्य दान्ते ने एक नवीन धारा को लेकर काव्य क्षेत्र में प्रवेश किया। अपने महाकाव्य 'डिवाइन कामेडी' में वह वर्जिल को अपने पथ-प्रदर्शक रूप में स्वीकार करता है। दान्ते ने मानसिक स्थिति का भी समावेश किया। हृदय की भावनाओं का वह अकन करता है। अपने व्यक्तिगत जीवन में उसने प्रेम का जो अनुभव किया था, वही उसकी स्थायी अनुभूति और संवेदना हो गई। 'कामेडी' में एक एक कर असंख्य पात्र आते जाते है और वर्जिल के द्वारा दान्ते उनकी व्याख्या कराता है। धर्म और प्रेम का समन्वय उसकी विशिष्टता है और उसने बिएट्रिस के रूप में प्रेम और सौन्दर्य का नैसर्गिक स्वरूप प्रस्तुत किया। प्रेयसी बिएट्रिस 'नैसर्गिक, दैवी प्रेम का ही प्रतीक' बनकर काव्य में प्रतिष्ठित हुई। कवि के मार्ग-चक्षु खोलकर जब वर्जिल चला जाता है, तब वह सौन्दर्यमयी नारी ही कवि का पथ प्रदर्शन कर अन्त में उच्च भावभूमि पर ले जाती है। नरक, पैरगटरी, और स्वर्ग अंशों में वर्जिल ने अपनी अनन्य अनुभूतियों को स्थान दिया और उसके अनेक शब्द चित्र अत्यन्त सजीव हैं। सत्य और कल्पना का सुन्दर समन्वय 'कामेडी' के कथा निरूपण में प्राप्त होता है। अलौकिक तत्व का समावेश कथा योजना में अधिक हुआ। वर्जिल और बिएट्रिस के निर्देश मात्र से ही बाधा विघ्न समाप्त हो जाते है,

सुन्दर दृश्य सम्मुख आते है। 'डिवाइन कामेडी' में कतिपय आलोचकों को आदि से अन्त तक दान्ते के अनुभव ही बिखरे दिखाई देते है। कामेडी की विशद कल्पना मे असख्य व्यक्ति, क्रियाव्यापार प्राप्त होते है। युग के अनेक विद्वान, वीर और धर्मात्मा स्वर्ग मे दिखाई देते है। नरक मे समस्त कुकर्मी, अधर्मी, अनाचारी मिल जाते है। पाप और पुण्य की विवेचना तथा उसका परिणाम अकित करने मे कवि की दृष्टि धार्मिक अधिक है। विएट्रिस की कल्पना स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो के समीप है, जो नैसर्गिक प्रेम का प्रतीक बनकर आई। अखड ज्योति, अपार प्रकाश, अमर प्रेम की स्थापना 'कामेडी' के अन्त मे हो जाती है। सत्य की प्रतिष्ठा ही उसका उद्देश्य है। काव्य मे दो दो पथ प्रदर्शक भटके मानव को मार्ग निर्देश करते है। कवि दान्ते स्वयम् समस्त मानवीय दुर्बलताओ को लिय हुये है। धर्म और प्रेम के द्वारा मानव को अन्त मे स्वर्ग, सत्य तथा प्रकाश की प्राप्ति हो जाती है। कवि अपने लक्ष्य मे सफल होत है। उसने एक सार्वभौमिक सत्य का प्रतिपादन अवश्य किया, किन्तु उसमे धार्मिक भावना की भी गन्ध आ गई। नारी के भव्य, उदार और नैसर्गिक स्वरूप का अकन भी कवि की मौलिक उद्भावना है, अन्यथा परम्परावादी काव्य मे नारी के प्रेम का समावेश अधिक अनिवार्य वस्तु न थी[१६]। भाषा और शैली की प्रौढता 'कामेडी' मे वर्जिल का ही अनुसरण अधिक करती है। दान्ते वर्जिल की परम्परा का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप बनकर आया और उसने विषय के क्षेत्र मे परम्परावादी और स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो का एक समन्वय प्रस्तुत किया। उसका काव्य-विषय मानव जीवन के अधिक निकट हो गया और वाह्य वर्णन के साथ ही आन्तरिक निरूपण को भी स्थान मिला। विएट्रिस के स्नेह और उसकी आकस्मिक मृत्यु ने कवि के प्राणो मे जो वेदना भर दी थी, वह एक महान काव्य की प्रेरणा बन गई। व्यक्तिगत भावना का यह उदात्ती-करण भी काव्य के क्षेत्र मे एक नवीन प्रयोग के रूप मे देखा जा सकता है।

दान्ते और प्रसाद की मानवीय भावनाओ मे सामीप्य प्रतीत होता है। 'कामेडी' और 'कामायनी' की भूमिका में भी पर्याप्त साम्य है। दान्ते की भाति मनु भी साधारण मानव का प्रतीक है। प्रसाद ने व्यक्तिगत अश का उदात्तीकरण कर दिया और अपनी कल्पना एक सामाजिक धरातल पर प्रस्तुत की। दान्ते आरम्भ मे स्वयम् को पथभ्रष्ट पथिक के रूप मे चित्रित करता है। 'कामेडी' का प्रारम्भ ही क्षुब्ध वातावरण मे होता है

---

१६ [illegible] glish Literature, page 72

"जीवन की जिस पगडंडी पर मानव चलता है, उसी में मैंने स्वयम् को पथभ्रष्ट तथा सघन अन्धकारपूर्ण वन में पाया, क्योंकि मुझे पथ ही नहीं दिखाई देता था।"

'कामायनी' के प्रलयकालीन मनु की भी अवस्था लगभग यही है। दान्ते ने कवि वर्जिल को अखंड ज्ञान का प्रतीक माना है। बिएट्रिस नैसर्गिक ज्योति बनकर आती है। आरम्भ में वर्जिल कवि दान्ते को ज्ञान और चेतना देकर उसकी बुद्धि को जागृत करता है। पाप पुण्य का समस्त लेखा वह प्रस्तुत करता है। उसे नरक की विभीषिका दिखाता हुआ ले जाता है। ज्ञान से जो प्रकाश दान्ते को मिलता है उसे अमर सत्य, चिरन्तन आनन्द में बिएट्रिस परिवर्तित कर देती है। 'कामायनी' श्रद्धा को हृदय का प्रतीक मानकर भी सम्पूर्ण उदात्त भावनाओं को उसमें समाविष्ट कर देती है। उसके द्वारा मनु को जीवन के चरम उद्देश्य आनन्द की उपलब्धि हो जाती है। आरम्भ में दान्ते वर्जिल से दया की भिक्षा मांगता है। वह अपनी समस्त दुर्बलता उसके समक्ष रख देता है और सम्पूर्ण विश्वास उस पर टिका देता है। इसी अवसर पर वह 'सर्वोच्च ज्योति', 'शाश्वत आनन्द' को अपने काव्य का लक्ष्य बताता है। कवि बिएट्रिस का चित्र प्रस्तुत करते हुये कहता है :

"उसकी दृष्टि तारिका से भी अधिक प्रकाशमान थी। उसने धीरे-धीरे सौहार्द से अपनी अतीन्द्रिय तथा मृदुल भाषा में कहना आरम्भ किया[२०]।" श्रद्धा का प्रथम चित्र भी 'कामायनी' में इसी भांति आया है :

सुना यह मनु ने मधु गुंजार
मधुकरी का सा जब सानन्द
किये मुख नीचा कमल समान
प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छन्द।

(कामायनी, पृष्ठ ४५)

दान्ते को अपनी प्रेयसी के स्वरों से नव जीवन प्राप्त हुआ। उस दशा का वर्णन स्वयम् कवि ने इस सुन्दर रूपक से किया :

'मानो हेमन्त की शीतमयी निशा के अनन्तर सूर्य की प्रथम किरणों के

---

२०. "More brilliant than the star her glances glowed
And gently and serenly she began
With voice angelic, in her own sweet mode"
(Canto II, Line 55).

स्पर्श से ही किसी सकुचित, अर्द्धनिमीलित पुष्प की पखुरिया विकसित हो उठी हो[२१]।"

मनु की भी समस्त निराशा और जडता श्रद्धा समाप्त कर देती है। वह उन्हे काम का व्यापक सदेश देकर कर्म मे नियोजित करती है। बिएट्रिस लूसिया के द्वारा मेरी का उपदेश पाती है कि वह अपने प्रेमी कवि की सहायता करे, किन्तु श्रद्धा का आगमन अधिक स्वाभाविक और नाटकीय है। इसी के पश्चात् विएट्रिस फिर अधिक समय तक कथानक के साथ चलती हुई नही दिखाई देती। वर्जिल नरक के पश्चात वैतरणी में भी उसका पथ प्रदर्शन करता चला जाता है। धीरे धीरे वे दोनो ईडन के उपवन में पहुँचते है। इसी के कुछ समय पूर्व वर्जिल दान्ते को विएट्रिस का आभास दे देता है कि अब शीघ्र ही उसे उसकी छवि माधुरी देखने को मिलेगी। वैतरणी के तीसरे पर्व मे दान्ते को विचित्र प्रकाश दिखाई पडता है। चारो ओर प्रार्थनायें हो रही है। रथ पर स्वच्छ आवरण के भीतर एक नारी है, देवतागण प्रसून की वर्षा कर रहे हैं। उसकी साध पूरी होती है, वह अपनी विएट्रिस को पहिचान लेता है। इसी समय कवि अपनी भूल स्वीकार कर लेता है कि उससे विलग हो जाने के पश्चात वह ससार के छल, माया, मोह, भोग मे फसा रहा। मनु ने भी श्रद्धा को पाकर अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित की थी .

तुम देवि आह कितनी उदार
यह मातृमूर्ति है निर्विकार। (कामायनी, पृष्ठ २४९)

दान्ते की विएट्रिस भी कवि के लिये मा की भाति बन जाती है[२२]। इस अवसर पर प्रेयसी के सौन्दर्य मे स्वर्गिक ज्योति प्रकाशित हो उठती है, उसका रूप अलौकिक, अनुपम हो जाता है। यही नही, उसकी दासिया भी आवेदन करती है कि वह अपनी आन्तरिक छवि प्रकाशित कर दे ताकि दान्ते पृथ्वी पर जाकर मानव जाति को उसके गुणो का सुन्दर परिचय दे। विएट्रिस का अत्यन्त उदात्त रूप कवि ने इस अवसर पर प्रस्तुत किया है। एक विचित्र

---

२१ "Even as the flowerets by the chill of night
Bended and closed, when brightens them the sun
Uplift both stem and petal to the light"—Divine Comedy

२२ Whence Beatrice, with a sigh of pity, mild,
Lending her eyes upon me with such glance,
As a mother castes on her delirious child
Paradiso, 1st Canto

आभा बिखरती दिखाई देती है। नारी की रूपमाधुरी से छवि की किरणे फूटती है। विएट्रिस उसे अनेक रहस्य भी समझाती है। इस प्रकार वैतरणी के अन्त में कवि की प्रेयसी का प्रवेश होता है। उसके आगमन के कुछ ही क्षण अनन्तर दान्ते स्वर्ग के द्वार पर पहुंच जाता है। 'दर्शन' के अन्त में मनु की भी स्थिति इसी प्रकार है। उनके लोचन निर्निमेष हो जाते है।

स्वर्ग के आरम्भ मे ही दान्ते विएट्रिस की अलौकिक शक्ति का आभास दे देता है। उसके नेत्रो मे असाधारण प्रकाश है[२३]। वह कवि की शंका का समाधान करती चलती है। उसी ने बताया कि अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी करना घोर पाप है। निष्काम आत्मा कभी पराजित नही होती। सत्य ही ज्ञान की तृप्ति कर सकता है। वह ईसाई मत का प्रतिपादन भी इसी के साथ करती है। दान्ते अपनी सम्पूर्ण जिज्ञासा मे प्रश्न करता है और वह उसका उत्तर देती जाती है। धीरे धीरे वे स्वर्ग के अन्तरतम प्रदेश मे पहुँचते जाते है। विएट्रिस कई लोको से उसे घुमाती ले जाती है, जहा अनेक आत्माये मिलती है। वह अपने तरल हास मे कवि का सन्ताप हर लेती है। मार्ग मे अनेक सन्त महात्माओ से भेंट होती है। विएट्रिस आशा, विश्वास की परिभाषा करती है। स्वर्गिक संगीत से कवि आनन्दित, आत्मविस्मृत हो उठता है। स्वर्ग के दृश्य स्पष्ट होते चले जाते है। कवि मे न विएट्रिस के अपार सौन्दर्य का अंकन करने की शक्ति है और न वह उस अलौकिक आनन्द की ही अभिव्यक्ति कर सकता है। अन्त मे मेरी तथा सन्त बरनर्ड भी आ जाते है। स्वर्ग का राजदरबार दिखाई देता है। काव्य की समाप्ति पर वह प्रेम को महान कहता है[२४]। स्वर्ग के सम्पूर्ण चित्र मे विएट्रिस की अलौकिक छवि और ज्योति प्रस्फुटित होती रहती है। वह मानव के प्रतिरूप दान्ते को आनन्द तथा स्वर्ग की अन्तिम सीमा तक ले जाती है। 'रहस्य' सर्ग मे श्रद्धा भी मनु को इसी प्रकार उच्च भावभूमि तक पहुँचाती है। मनु को अत्यधिक शिथिलता आ रही है, वे स्वयम् को निस्सम्बल, भग्नाश पथिक की भांति पाते है, जिसका सारा साहस छूट गया हो। इसी अवसर पर विएट्रिस की भांति श्रद्धा के अधरो पर मधुर हास खेल जाता है

---

२३ Beatrice gazed at me with eyes that speak
flashes of love, divine of radiance.—Paradiso, 4th Canto.

२४. "Here vigour failed the lofty fantasy
But my volition now, and my desires,
Were moved like wheel revolving evenly
By Love that moves the sun and starry tres".

वह विश्वास भरी स्मिति निश्छल
श्रद्धा-मुख पर झलक उठी थी। (कामायनी, पृष्ठ २५९)

मनु इच्छा, ज्ञान, कर्म के विचित्र लोक देखकर श्रद्धा से प्रश्न करता है। वह इनके चित्र प्रस्तुत कर गुणो से अवगत कराती है। उसने इन सभी की परिभाषा की, और इसके साथ ही आने वाले अन्य उपादानो का भी रहस्य समझाया। अन्त मे श्रद्धा की स्मिति से उनमे समन्वय हो जाता है, एक अलौकिक दृश्य ही प्रस्तुत होता है। इस प्रकार 'कामायनी' का 'रहस्य' सर्ग 'डिवाइन कामेडी' के 'स्वर्ग पर्व' के समीप प्रतीत होता है। दान्ते के काव्य मे पात्रो, घटनाओ का अधिक विवेचन है, किन्तु प्रसाद ने भावनाओ के केन्द्रीकरण पर ध्यान रक्खा। 'कामायनी' का आनन्द 'कामेडी' के आध्यात्मिक तथा धार्मिक सुख-शान्ति की ही भाति है। दोनो काव्य मानव-जीवन के प्रतिनिधि रूपो को ही लेकर चलते है और प्रेम, सत्य से समन्वित नारी अपने उदात्त रूप मे आती है। गिरते पडते अन्त मे प्राणी आनन्द को प्राप्त कर लेता है। रूपक रूप में 'डिवाइन कामेडी' तथा 'कामायनी' की ध्वनि मनुष्य की सुख-शान्ति ही है। धर्म का अधिक आग्रह होने के कारण दान्ते ने धार्मिकता, पौराणिकता, आध्यात्मिकता का भी निरूपण किया। प्रसाद का क्षेत्र अधिक दार्शनिक है, उसमे जीवन की आधुनिक समस्याये भी आ जाती है। वस्तु वर्णन मे 'कामेडी' का क्षेत्र विशाल है। उसमें युग के पापी, अधर्मी, राजा आदि आ जाते है। वह होमर, ओनिड, लूकान, होरेस आदि के नाम भी गिनाती है। असख्य पात्र उसमे आते जाते रहते है। 'कामायनी' भाव निरूपण मे अधिक प्रयत्नश[illegible] होती है। दो विभिन्न युग के इन कलाकारो की प्रेरणा [illegible] उन दोनो की स्वतन्त्र उद्भाव[illegible] से प्रभावित दान्ते अपने देश [illegible] को पुण्य भूमि मानता है। [illegible] श्रद्धा अधिक विस्तृत [illegible] और 'कामेडी' एक ही दिश[illegible] जाती है, तो अन्य धार्मिक, 'कामेडी' कलात्मक [illegible] यनी। उसमे वर्णनात्मकता [illegible] पर भाव अभिव्यजना मे प्रौढ है। 'कामेडी' में सुन्दर परिभाषाये की।

त्मिक मिलन है[२५]। 'कामायनी' भी अन्त मे 'अखड आनन्द' की प्रतिष्ठा करती है जब कि सभी 'समरस' हो जाते है। दोनो ही काव्य उदात्त कल्पना, उच्च आदर्श लेकर चले।

अंग्रेजी काव्य—

अँग्रेजी की काव्य परम्परा का आरम्भ एग्लोसैक्सन युग मे ही हो जाता है। किन्तु नार्मनो के अधिकार से सभ्यता के एक नवीन स्वरूप का प्रवेश हुआ। इसी के साथ फ्रास की छाया भी इगलैण्ड पर पड रही थी। लैटिन और फ्रेंच प्रयोग मे आ रही थी। एक ओर यदि अँग्रेजी का काव्य ग्रीस और रोम की प्राचीन परम्परा से प्रभावित था, तो साथ ही स्वच्छन्दतावादी प्रेममूलक प्रवृत्तिया भी उसमे प्रवेश कर रही थी। चासर को अँग्रेजी काव्य का पिता कहा जाता है। लगभग १३६० ई० मे उसने साहित्य मे प्रवेश किया। अपने समय के समाज का चित्रण उसने किया और उसके काव्य मे उस काल की अँग्रेजी सभ्यता प्रतिबिम्बित होती है। अपने प्रबन्धकाव्य 'केन्टरबरी टेल्स' मे उसने अनेक पात्रो की नियोजना की। उन सभी को उसने विभिन्न परिस्थितियो मे रक्खा। सभी तीर्थयात्री दो दो कहानिया कहते हुये चले जाते है। बडी कुशलता से कथा कही जाती है। इन्ही के माध्यम से जीवन की अनेक समस्याये सम्मुख आती है और उनका समाधान भी होता है। प्रत्येक प्रकार की स्थिति का समावेश उसमे किया गया। अधिक मौलिक उद्भावनाओ के न होते हुये भी चासर ने अंग्रेजी काव्य को आरम्भ मे ही प्रौढ शैली, शिष्ट भाषा प्रदान की और परम्परा को सुदृढ किया। काव्य मे प्रेम और सौन्दर्य का समावेश भी मानव की अन्य स्वाभाविक प्रवृत्तियो के साथ ही हुआ। केन्टरबरी के निकट तीर्थयात्रियों के पहुचने पर कवि कहता है, 'उस माधुर्य को देखकर उसे अपार प्रसन्नता हुई।' भावना के क्षेत्र मे कवि ने युग से प्रेरणा ली और शैली को गम्भीर बनाया। सानेट लिखने मे उसे पर्याप्त सफलता मिली। वह कलात्मक सौष्ठव तथा परिपक्वता से अंग्रेजी को उसके आरम्भिक काल मे समृद्ध कर गया।

चासर के पश्चात इगलैण्ड मे नव जागरण के आगमन तक अधिक प्रतिभा-सम्पन्न कवि नही दिखाई देते। पन्द्रहवी शताब्दी मे साहित्य, कला, विज्ञान प्रत्येक क्षेत्र मे जागरण आरम्भ हुआ। इटली मे मैकियावेली आदि ने नवीन चेतना को जन्म दिया। वहा के कवि एरियास्टो (Ariosto)

२५. "Love truly considered and subtly analysed is nothing but spiritual union between the soul and beloved object."
—Purgatorio—18th Canto-(Melville, B. Anderson's note)

वह विश्वास भरी स्मिति निश्छल
श्रद्धा-मुख पर झलक उठी थी। (कामायनी, पृष्ठ २५९)

मनु इच्छा, ज्ञान, कर्म के विचित्र लोक देखकर श्रद्धा से प्रश्न करता है। वह इनके चित्र प्रस्तुत कर गुणो से अवगत कराती है। उसने इन सभी की परिभाषा की, और इसके साथ ही आने वाले अन्य उपादानो का भी रहस्य समझाया। अन्त मे श्रद्धा की स्मिति से उनमे समन्वय हो जाता है, एक अलौकिक दृश्य ही प्रस्तुत होता है। इस प्रकार 'कामायनी' का 'रहस्य' सर्ग 'डिवाइन कामेडी' के 'स्वर्ग पर्व' के समीप प्रतीत होता है। दान्ते के काव्य मे पात्रो, घटनाओ का अधिक विवेचन है, किन्तु प्रसाद ने भावनाओ के केन्द्रीकरण पर ध्यान रक्खा। 'कामायनी' का आनन्द 'कामेडी' के आध्यात्मिक तथा धार्मिक सुख-शान्ति की ही भाति है। दोनो काव्य मानव-जीवन के प्रतिनिधि रूपो को ही लेकर चलते है और प्रेम, सत्य से समन्वित नारी अपने उदात्त रूप में आती है। गिरते पडते अन्त में प्राणी आनन्द को प्राप्त कर लेता है। रूपक रूप में 'डिवाइन कामेडी' तथा 'कामायनी' की ध्वनि मनुष्य की सुख-शान्ति ही है। धर्म का अधिक आग्रह होने के कारण दान्ते ने धार्मिकता, पौराणिकता, आध्यात्मिकता का भी निरूपण किया। प्रसाद का क्षेत्र अधिक दार्शनिक है, उसमें जीवन की आधुनिक समस्याये भी आ जाती है। वस्तु वर्णन में 'कामेडी' का क्षेत्र विशाल है। उसमें युग के पापी, अधर्मी, राजा आदि आ जाते है। वह होमर, ओविड, लूकान, होरेस आदि के नाम भी गिनाती है। असख्य पात्र उसमें आते जाते रहते है। 'कामायनी' भाव निरूपण मे अधिक प्रयत्नशील प्रतीत होती है। दो विभिन्न युग के इन कलाकारो की प्रेरणा, कल्पना मे पर्याप्त समानता है, यद्यपि उन दोनो की स्वतन्त्र उद्भावनाये है। मध्ययुग की धार्मिक प्रवृत्तियो से प्रभावित दान्ते अपने देश इटली का भी अत्यधिक आग्रह करता है। वह उसी को पुण्य भूमि मानता है। प्रसाद ने मानवता को ग्रहण किया। उनके मनु और श्रद्धा अधिक विस्तृत भावभूमि पर निर्मित हुये। प्रतीक रूप मे 'कामायनी' और 'कामेडी' एक ही दिशा मे पहुँचती है। एक आनन्दवाद की चरम सीमा पर जाती है, तो अन्य धार्मिक, आध्यात्मिक उत्कर्ष पर। अपनी विशाल योजना में 'कामेडी' कलात्मक सौष्ठव मे उतनी परिपक्व न हो सकी, जितनी कि कामायनी। उसमे वर्णनात्मकता अधिक है, किन्तु 'कामायनी' मनोवैज्ञानिक आधार पर भाव अभिव्यजना मे प्रयत्नशील है। उसका चिन्तन तथा दार्शनिक पक्ष प्रौढ है। 'कामेडी' में भी दान्ते ने इच्छा, ज्ञान, आशा, श्रद्धा आदि की सुन्दर परिभाषाये की। उसके अनुसार प्रेम आत्मा तथा प्रियतम का आध्या-

त्मिक मिलन है[२५]। 'कामायनी' भी अन्त मे 'अखड आनन्द' की प्रतिष्ठा करती है जब कि सभी 'समरस' हो जाते है। दोनो ही काव्य उदात्त कल्पना, उच्च आदर्श लेकर चले।

अंग्रेजी काव्य—

अँग्रेजी की काव्य परम्परा का आरम्भ एग्लोसैक्सन युग से ही हो जाता है। किन्तु नार्मनो के अधिकार से सभ्यता के एक नवीन स्वरूप का प्रवेश हुआ। इसी के साथ फ्रास की छाया भी इगलैण्ड पर पड रही थी। लैटिन और फ्रेंच प्रयोग में आ रही थी। एक ओर यदि अँग्रेजी का काव्य ग्रीस और रोम की प्राचीन परम्परा से प्रभावित था, तो साथ ही स्वच्छन्दतावादी प्रेममूलक प्रवृत्तिया भी उसमे प्रवेश कर रही थी। चासर को अँग्रेजी काव्य का पिता कहा जाता है। लगभग १३६० ई० में उसने साहित्य मे प्रवेश किया। अपने समय के समाज का चित्रण उसने किया और उसके काव्य मे उस काल की अँग्रेजी सभ्यता प्रतिबिम्बित होती है। अपने प्रबन्धकाव्य 'केन्टरबरी टेल्स' मे उसने अनेक पात्रो की नियोजना की। उन सभी को उसने विभिन्न परिस्थितियो मे रक्खा। सभी तीर्थयात्री दो दो कहानिया कहते हुये चले जाते है। बडी कुशलता से कथा कही जाती है। इन्ही के माध्यम से जीवन की अनेक समस्याये सम्मुख आती है और उनका समाधान भी होता है। प्रत्येक प्रकार की स्थिति का समावेश उसमें किया गया। अधिक मौलिक उद्भावनाओ के न होते हुये भी चासर ने अँग्रेजी काव्य को आरम्भ में ही प्रौढ शैली, शिष्ट भाषा प्रदान की और परम्परा को सुदृढ किया। काव्य मे प्रेम और सौन्दर्य का समावेश भी मानव की अन्य स्वाभाविक प्रवृत्तियो के साथ ही हुआ। केन्टरबरी के निकट तीर्थयात्रियों के पहुँचने पर कवि कहता है, 'उस माधुर्य को देखकर उसे अपार प्रसन्नता हुई।' भावना के क्षेत्र मे कवि ने युग से प्रेरणा ली और शैली को गम्भीर बनाया। सानेट लिखने मे उसे पर्याप्त सफलता मिली। वह कलात्मक सौष्ठव तथा परिपक्वता से अँग्रेजी को उसके आरम्भिक काल मे समृद्ध कर गया।

चासर के पश्चात इगलैण्ड मे नव जागरण के आगमन तक अधिक प्रतिभा-सम्पन्न कवि नही दिखाई देते। पन्द्रहवी शताब्दी मे साहित्य, कला, विज्ञान प्रत्येक क्षेत्र मे जागरण आरम्भ हुआ। इटली मे मैकियावली आदि ने नवीन चेतना को जन्म दिया। वही के कवि एरियोस्टो (Ariosto)

[२५] "Love truly considered and subtly analysed is nothing but spiritual union between the soul and beloved object."
—Purgatorio—18th Canto-(Melville, B. Anderson's note)

ने नव जागरण के आरम्भिक गीत गाये। उसका स्वर था कि 'प्रेम करनेवाला अधिक काल तक रहता है। जीवन और सभी कुछ समाप्त हो जाने पर भी वह प्रेम और सेवा करता जाता है[२६]।' फ्रास से होती हुई यह नव चेतना, इगलैण्ड में आई। इगलैण्ड के इतिहास मे ट्यूडर-काल इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। काव्य के क्षेत्र में इस समय यूनान, रोम की प्रसिद्ध रचनाओ का अनुवाद हुआ। होमर, वर्जिल, दान्ते अँग्रेजी जनता के अधिक निकट आ गये। जागरण के प्रथम प्रहर मे अनेक प्रयोग हुए और एलिजाबेथ के स्वर्ण युग मे उसका व्यवस्थित स्वरूप प्रकट हुआ। अनेक दृष्टियो से द्वितीय चरण अधिक प्रगतिशील और मानवता के निकट सम्पर्क मे था[२७]। वायट (Wyatt) अग्रेजी के सानेट रचयिताओ में प्रथम स्थान प्राप्त करता है। उसने गान, शोकगीत आदि की भी रचना की। 'प्रेमी की अनुनय' आदि उसकी कृतियो में भावना-अभिव्यक्ति का सुन्दर समन्वय हुआ। सोलहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे स्पेन्सर अँग्रेजी काव्य के नवीन स्वरूप का प्रतिष्ठापक हुआ। उसने अपने 'शेफर्ड्स कैलेन्डर' (Shepheardes Calendar) मे प्रेम, वियोग, आदि की विभिन्न भावनाओ को सजोया। 'दि टियर्स आफ दि म्यूज़ेज' (The Tears of The Muses) आदि अन्य छोटी रचनाओ मे भी उसके नवीन प्रयोग मिल जाते है। लगभग बीस वर्षों की साधना का परिणाम स्पेन्सर का सर्वोत्तम काव्य 'फेयरी क्वीन' है। पाप पुण्य का शाश्वत सघर्ष अधिक काव्यात्मक रूप में यहा अभिव्यजित हुआ। वर्जिल की पौराणिकता दान्ते की धार्मिकता पीछे छूट जाती है। उसमें नवोदित प्रोटेस्टेट भावना की अधिक छाया पडी। मानवतावादी प्रवृत्तियो का उस पर प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। यद्यपि वह देश की राष्ट्रीयता और गौरव से भी अनुप्राणित है। कलात्मक दृष्टि से 'फेयरी क्वीन' मे अनेक सजीव चित्र समन्वित है। 'इपथल्मियन' मे सुन्दर अभिव्यजना हुई.

'ऐ मेरे प्रिय प्रेम, तुम इतनी देर क्यो सोते रहे, जबकि वास्तव मे तुम्हे जग जाना चाहिये था[२८]।

रूपको, प्रतीको का अत्यधिक समावेश कही कही भावना को आदर्शवादिता,

---

२६ "But he that loves indeed remaineth fast And loves and serves when life and all is past"—Ariosto

२७ A Critical History of English Poetry—by Grierson, page 67

२८ "Ah, my deere love, why do ye sleepe thus long
When meeter were that ye should now awake."—Epithalamion.

नैतिकता से बोझिल कर देता है। फेयरीक्वीनमें स्थान-स्थान पर आदेश-वाक्य मिलते हैं, जिनमें दार्शनिक मत का प्रतिपादन हुआ। स्पेन्सर के काव्य में अनेक वस्तुओं का समन्वय देखा जा सकता है। जागरण युग का आरम्भिक कवि होने के कारण प्राचीन और नवीन का संगम स्वाभाविक ही था। नारी-ईश्वर के प्रेम में अलौकिक सामंजस्य का प्रयास कई गीतों में उसने किया। 'फेयरी क्वीन' के अन्त में वह एक अखंड, अपरिवर्तनशील स्थिति की प्रतिष्ठा करता है। अपनी शैली और भाषा में उसने कविपिता चासर के प्रयुक्त अनेक शब्दों को ग्रहण किया और उसके काव्य में प्राचीन शब्द पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। एक रूपक के रूप में प्रस्तुत होने वाली उसकी 'फेयरी क्वीन' को कई दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। उसमें इतिहास, वीरता, धर्म, प्रेम के पक्ष आ जाते हैं और नीति की चर्चा तो स्थान स्थान पर मिलती है। स्पेन्सर अलंकरण का इतना आग्रह नहीं करता, जितना कि नीति और धर्म का। चार्ल्स लैम्ब, लीहट ने उसे 'कवियों का कवि' कहकर पुकारा। प्रसाद का दार्शनिक निरूपण काव्य में एकाएकार होकर आया। वह भावों के साथ हिलमिल गया है, उसमें बाह्य बौद्धिक निरूपण अधिक नहीं दिखाई देता। स्पेन्सर की भांति प्रसाद भी चिन्तनशील कवि हैं और उनका काव्य अनेक सत्य प्रतिपादित करता चलता है, किन्तु कलात्मक सौष्ठव को साथ लेकर। 'फेयरी क्वीन' का रूपक आरोपित अथवा अध्यवसित है, उसे प्रतिपादित करना पड़ता है। 'कामायनी' का रूपक काव्य से पृथक् अस्तित्व नहीं रखता। वह उसकी ध्वनि बनकर आया। परिस्थिति, पात्र, चरित्रचित्रण की कुशल योजना ही एक सुन्दर रूपक की सृष्टि कर देती है। कवि अपनी ओर से उस रूपक को स्पष्ट करने का प्रयत्न नहीं करता।

स्पेन्सर को मिल्टन, ड्रायडन, पोप, कीट्स आदि कवियों ने अपना गुरु स्वीकार किया। उन्होंने उससे प्रेरणा प्राप्त की। स्पेन्सर के ही समकालीन सिडनी ने स्वयम् काव्य की परिभाषा करते हुये कहा कि उसमें ज्ञान का समावेश आवश्यक है। एलिजाबेथ युग में शीर्ष स्थान शेक्सपियर को प्राप्त है, जिसने अपनी सूक्ष्म अभिव्यंजना से साहित्य में सजीव पात्रों को जन्म दिया। उसने व्यापक मानव को अपने काव्य का विषय बनाया और चरित्र चित्रण में उसे असाधारण सफलता प्राप्त हुई। हैमलेट जैसे आन्तरिक द्वन्द्व से भरे हुये पात्रों का उसने निर्माण किया। मानव की अन्तर्निहित संवेदनाओं का शेक्सपियर ने अपने काव्य में किया। उसके चरित्र अपनी सजीवता लेकर आते हैं। एक सम्पन्न सजग कलाकार की भांति शेक्सपियर मानव जीवन के व्यापक स्तम्भ पर हाथ रखता दिखाई देता है। दुखान्त नाटकों

में उसने मानवीय भावो को आरोपित कर दिया। आरम्भिक नाटको की उत्तेजना 'हैमलेट' मे आकर किंचित स्थिर हो जाती है। उसमें भाव और विचार का सुन्दर सामजस्य हुआ। नायक हैमलेट अपनी दुर्बलताओ से युद्ध करता है। वह अपने मित्र होरेशियो से कहता है, 'इस पृथ्वी और स्वर्ग में ऐसी अनेक वस्तुये है, जिनकी कल्पना तुम्हारे दर्शन में नही की जाती'[२९]। शेक्सपियर भावना, विचार, कल्पना की दृष्टि से समय के साथ उत्कर्ष की ओर बढता गया। भावोत्तेजना का स्थान चिन्तन और बौद्धिकता को मिला। जूलियट और पोर्शिया में यही अन्तर है। नाटककार शेक्सपियर की भाति प्रसाद ने भी नाटको की रचना की। उनके ऐतिहासिक नाटक ही अधिक है किन्तु उन्होने पात्रों में सजीवता और मानवीय भावनाये आरोपित की। नारी पात्रो की भावुकता मे दोनो कवि समीप दिखाई देते है। डेस्डिमोना और देवसेना, पोर्शिया और अलका में एक साम्य स्थापित किया जा सकता है। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व भी दोनों कवियो का विषय है। शेक्सपियर ने मानव के अन्तरतम को देखने का प्रयत्न किया[३०]। प्रसाद का चरित्राकन भी इसी के अनुरूप हुआ। नाटको में भी स्थान-स्थान पर कविता का समावेश है, जिनके माध्यम से कवि ने अपनी भावुकता की अभिव्यजना की। सानेट-लेखक के रूप में शेक्सपियर ने प्रेम को ही अपना प्रमुख विषय बनाया। अपनी सानेट 'अन्धा प्रेम' में वह कहता है

'ओ छली प्रेम, तू आसूओ से मुझे अन्धा रख, जब तक कि नेत्र तेरी भूल खोजते हुये तुझे पा न ले।'

नाटक तथा कविता दोनो का ही निर्माण करने वाले इन कलाकारो ने मानव की अनुभूतियो को प्रधानता दी, इसी कारण उनके चरित्र अपनी विशेषताओं से अलकृत है। रगमच के कारण शेक्सपियर जनता तक पहुँचने मे समर्थ हुआ, किन्तु प्रसाद एक साहित्यिक कवि के रूप मे प्रतिष्ठित है।

मिल्टन—

शेक्सपियर के पश्चात मिल्टन मे परम्परावादी कविता का पुनर्जागरण हुआ। प्राचीन सस्कृति और साहित्य का आभास देने वाला यह अन्तिम कलाकार अपनी

---

२९ "There are more things in heaven and earth, Horatio
Than are dreamt of in your philosophy"—Hamlet

३०. Shakspeare, His Mind and Art—Page 73

प्रेरणा के लिये रोम से वर्जिल तक गया। वह स्वयम् कई प्राचीन भाषाओं का विद्वान था। उसने पाप पुण्य की प्राचीन समस्या को लिया और धार्मिकता का प्रभाव उसमें देखा जा सकता है। अधिक साहित्यिक और सांस्कृतिक धरातल होने के कारण ही काव्य में गम्भीरता आ गई। उसने अपने चिन्तन पक्ष को प्रौढता प्रदान करने में स्पेन्सर की विचारधारा का भी अवलम्ब ग्रहण किया। अपने महाकाव्य 'पैराडाइज़लास्ट' में उसने ईश्वर मानव, पुण्य पाप की समस्याओं को लिया। महाकाव्य के आरम्भ में ही कवि सूचित करता है कि वह मनुष्य के प्रति ईश्वर के समस्त व्यवहार न्यायोचित ठहराना चाहता है

'मैं चिरन्तन रक्षा कर सकू और मनुष्य के प्रति ईश्वर के कर्मों को न्यायोचित बताऊं[११]।'

मानव की शाश्वत समस्या को लेकर उसने काव्य का निर्माण किया। आदम ईव मानवता के प्रतीक बनकर आये हैं। अपने कुकर्मों के कारण शैतान स्वर्ग से पृथ्वी पर गिरा दिया गया है। वह ईश्वर से आजीवन संघर्ष की प्रतिज्ञा करता है। पृथ्वी पर ही नव निर्माण करने वाले देवदूतों का नेता बनकर वह अपना बदला लेना चाहता है। इधर ईश्वर आदम और ईव को बतला देता है कि उनका पतन भी शैतान के ही कारण होगा, इसलिये सतर्क रहना आवश्यक है। मानवता के इस युगल का कवि ने अत्यन्त चित्र सुन्दर खींचा है। वे दोनों 'इडन गार्डन' में घूम रहे हैं

'हाथ में हाथ लेकर वह अतीव सुन्दर जोड़ी घूम रही थी। आज तक प्रेम के अंचल में ऐसी अभूतपूर्व जोड़ी न देखी गई थी। आदम मनुष्यों में सब से उत्तम था और ईव अतीव सुन्दर पुत्री[१२]।'

मानवता के आरम्भ की समस्या को लेते हुये भी मिल्टन ने अपने महाकाव्य को धार्मिक रूप दे दिया। उसमें ईसा के प्रभुत्व का आग्रह अधिक है। 'कामायनी' दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के साथ भी अधिक नवीन और व्यावहारिक है। मनु के पथभ्रष्ट होने का प्रमुख कारण उनकी संकुचित मनोवृत्ति, सामञ्जस्य का अभाव है। किलात आकुलि केवल एक दान में ही उनके मन में अहिंसा

---

११ "I may assert Eternal Providence,
And justify the ways of God to men"—Paradise Lost.

१२. "So hand in hand they pass'd the loveliest pair
That ever since in love's embraces met,
Adam the goodliest man of men since born
His sons, the fairest of her daughters Eve"

वर्डस्वर्थ ने 'लिरिकल बैलेड्स' की भूमिका में कवि को शिक्षक के अधिक समीप स्वीकार किया। कविता समस्त ज्ञान का जीवन तथा सर्वोत्कृष्ट आत्मा है[३४]। उसकी कविता का चिन्तन भावना और अनुभूति के साथ ही एकाकार होकर आता है, वह स्पेन्सर, मिल्टन आदि कवियों की भांति किसी वस्तु को ऊपर से कम आरोपित करता है। सम्पूर्ण दृश्य की ध्वनि अन्त में एक उच्च भावभूमि के अनुकूल होती है। कविता अपना संकेत स्वयम् प्रकट कर देती है। भावों को सरल और मार्मिक भाषा वहन करती चली जाती है। अपने 'ओड' लिखने में उसे विशेष सफलता हुई। 'टिन्टर्न अबे' आदि रचनाओं में उसकी रहस्यवादी प्रवृत्तियां मिल जाती हैं

'तारतम्य की शक्ति से शान्त दृष्टि तथा आनन्द की अपार शक्ति से ही हम वस्तुओं के जीवन में देखते हैं।'

वर्डस्वर्थ की भांति प्रसाद का प्रकृति के साथ तादात्म्य नहीं है। प्रत्येक प्राकृतिक वस्तु के प्रति उनकी रागात्मक वृत्तियां नहीं जागृत होतीं। वे प्रकृति का उपयोग मानवीय भावनाओं के प्रकाशन-माध्यम रूप में करते हैं। अनेक प्रतीक भी उन्हें उसी से मिल जाते हैं। उनकी प्रकृति वर्डस्वर्थ की भांति स्वतन्त्र वस्तु-वर्णन का विषय अधिक न बन सकी, वे प्रकृति के कवि नहीं हैं। काव्य के अन्त में स्वाभाविक रीति से आनेवाली आध्यात्मिक, रहस्यात्मक ध्वनि दोनों ही कवियों में प्राप्त होती है। उसके लिये वे किसी अन्य अर्थ को आरोपित नहीं करते। वर्डस्वर्थ का मानव प्रकृति के हेतु है किन्तु प्रसाद की प्रकृति मानव के साथ ही साथ चलती है। वर्डस्वर्थ एक स्थान पर कहता है—"यदि तुम निश्चित ही अपनी ज्योति स्वर्ग से ग्रहण करते हो, तो हे कवि, तुम्हीं उसके स्थान पर प्रकाशित होते जाओ और सन्तुष्ट रहो।" अपनी विचारधारा में प्रसाद वर्डस्वर्थ की भांति 'वैज्ञानिक क्रान्ति' के समर्थक हैं। वर्डस्वर्थ का साथी कॉलरिज काव्य की प्रेरणा के लिये मानव की अधिक सूक्ष्म मनोभावनाओं में जाता दिखाई देता है। उनका कथन था कि 'कवि के हृदय और बुद्धि का समन्वय भली भांति होना आवश्यक है। उसे प्रकृति के अधिक व्यापक स्वरूप से एकाकार होना चाहिये[३५]।' उसने काव्य में मनोविज्ञान का समावेश किया और मानव की सूक्ष्म अनुभूतियों के अंकन

---

३४. "Poetry is the breath and finer spirit of all knowledge"
—Wordsworth.

३५. "A poet's heart and intellect should be combined, intimately combined and unified with the great appearances of nature."
—Biographia Literaria, The Poet's Defence—Page 481.

की भावना जगा देते है, क्योकि वह दुर्बल मनोवृत्ति से भरा है। वास्तविक शैतान तो उसके हृदय ही मे वास करता है। 'पैराडाइज लास्ट' मे आदम ईव को समझाता है, उसका स्थान उच्च है। 'कामायनी' की श्रद्धा अधिक महत्व-शालिनी है। मिल्टन बाइबिल से बहुत अधिक प्रभावित है और उसके महाकाव्य पर उसकी छाया है। ग्यारहवें पर्व में माइकेल प्रलय और जलप्लावन की भी चर्चा करता है, जिसमे केवल आदम बच गया था। आदम ईव की जोडी मनु-श्रद्धा की भाति ही प्रतीत होती है, किन्तु कवियो के दृष्टिकोण में अन्तर है। परम्परावादी मिल्टन भाव, भाषा, शैली सभी मे अपनी परम्परा का अधिक अनुसरण करता है। प्रसाद नवीन प्रवृत्तियो को लेकर चलते है। मिल्टन ने 'पैराडाइज रिगेन्ड' की भी रचना की, किन्तु कला की दृष्टि से वह अधिक सफल न हो सकी। मानवता की कथा लेकर चलनेवाले महाकाव्य 'पैराडाइज-लास्ट' और 'कामायनी' युग के अनुरूप श्रेष्ठ कृतिया है। मिल्टन में धार्मिकता का आग्रह अधिक है, किन्तु प्रसाद का पक्ष दार्शनिक है, और इस दृष्टि से वे स्पेन्सर के निकट है।

रोमान्टिक काव्य का प्रथम चरण—

मिल्टन के पश्चात् इगलैण्ड मे कविता का प्रवाह किंचित मन्द पड गया। ड्रायडन और पोप का नाम उसके बाद उल्लेखनीय है। जान्सन के समय मे गद्य का निर्माण अधिक हुआ। गोल्डस्मिथ ने अवश्य 'ट्रैवलर', 'डेजर्टेड विलेज', 'हर्मिट' आदि की रचना की। इन छोटे छोटे कथा-काव्यो मे उसने प्रकृति और प्रेम का सुन्दर निरूपण किया। अठारहवी शताब्दी ने विक्टोरिया के शासनकाल में नवीन धारा के कवियो को जन्म दिया। प्रकृति से प्रेरणा ग्रहण करने वाला वर्डस्वर्थ उसके कण कण मे सजीवता भरता हुआ दिखाई देता है। वह एक तादात्म्य स्थापित कर उससे शिक्षा ग्रहण करता है। वह प्रकृति से प्रतीक लेकर अपनी भाषा को अलकृत नही करता, किन्तु वह मानवीय भावनाओ के साथ ही चलती है। उसका कथन है, 'आकाश मे इन्द्रधनुप देखते ही मेरा हृदय आन्दोलित हो उठता है। मेरा जीवन जब आरम्भ हुआ था, तब भी यही स्थिति थी। मैं आज मनुष्य हो गया हूँ, यही दशा है। मैं वृद्ध हो जाऊँ तब भी ऐसा ही हो, अथवा जीवन का अन्त ही हो जाय[३२]।'

---

३२ 'My heart leaps up when I behold
A rainbow in the sky
So was it when my life began
So is it now when I am a man,
So be it when I shall grow old
Or let me die." —Wordsworth.

वर्ड्स्वर्थ ने 'लिरिकल बैलेड्स' की भूमिका में कवि को शिक्षक के अधिक समीप स्वीकार किया। कविता समस्त ज्ञान का जीवन तथा सर्वोत्कृष्ट आत्मा है[३४]। उसकी कविता का चिन्तन भावना और अनुभूति के साथ ही एकाकार होकर आता है, वह स्पेन्सर, मिल्टन आदि कवियों की भांति किसी वस्तु को ऊपर से कम आरोपित करता है। सम्पूर्ण दृश्य की ध्वनि अन्त में एक उच्च भावभूमि के अनुकूल होती है। कविता अपना संकेत स्वयम् प्रकट कर देती है। भावों को सरल और मार्मिक भाषा वहन करती चली जाती है। अपने 'ओड' लिखने में उसे विशेष सफलता हुई। 'टिन्टर्न अबे' आदि रचनाओं में उसकी रहस्यवादी प्रवृत्तियां मिल जाती हैं

'तारतम्य की शक्ति से शान्त दृष्टि तथा आनन्द की अपार शक्ति से ही हम वस्तुओं के जीवन में देखते हैं।'

वर्ड्स्वर्थ की भांति प्रसाद का प्रकृति के साथ तादात्म्य नहीं है। प्रत्येक प्राकृतिक वस्तु के प्रति उनकी रागात्मक वृत्तियां नहीं जागृत होतीं। वे प्रकृति का उपयोग मानवीय भावनाओं के प्रकाशन-माध्यम रूप में करते हैं। अनेक प्रतीक भी उन्हें उसी से मिल जाते हैं। उनकी प्रकृति वर्ड्स्वर्थ की भांति स्वतन्त्र वस्तु-वर्णन का विषय अधिक न बन सकी, वे प्रकृति के कवि नहीं हैं। काव्य के अन्त में स्वाभाविक रीति से आनेवाली आध्यात्मिक, रहस्यात्मक ध्वनि दोनों ही कवियों में प्राप्त होती है। उसके लिये वे किसी अन्य अर्थ को आरोपित नहीं करते। वर्ड्स्वर्थ का मानव प्रकृति के हेतु है किन्तु प्रसाद की प्रकृति मानव के साथ ही साथ चलती है। वर्ड्स्वर्थ एक स्थान पर कहता है—"यदि तुम निश्चित ही अपनी ज्योति स्वर्ग से ग्रहण करते हो, तो हे कवि, तुम्हीं उसके स्थान पर प्रकाशित होते जाओ और सन्तुष्ट रहो।" अपनी विचारधारा में प्रसाद वर्ड्स्वर्थ की भांति 'वैयक्तिक क्रान्ति' के समर्थक हैं। वर्ड्स्वर्थ का साथी कोलरिज काव्य की प्रेरणा के लिये मानव की अधिक सूक्ष्म मनोभावनाओं में जाता दिखाई देता है। उसका कथन था कि 'कवि के हृदय और बुद्धि का समन्वय भली भांति होना आवश्यक है। उसे प्रकृति के अधिक व्यापक दृश्यों से एकाकार होना चाहिये[३५]।' उसने काव्य में मनोविज्ञान का समावेश किया और मानव की सूक्ष्म अनुभूतियों के अंकन

---

३४ "Poetry is the breath and finer spirit of all knowledge"
—Wordsworth.

३५ "A poet's heart and intellect should be combined, intimately combined and unified with the great appearances of nature."
—Biographia Literaria, The Poet's Defence—Page 161.

के प्रति एक आसक्ति लेकर आया । बौद्धिकता का समावेश भी उसमें पर्याप्त मात्रा मे था और भावना के द्वारा स्थिति मे एक समन्वय किया गया । एक ओर जहा उसमें व्यक्तिवाद का आग्रह था, वही सौन्दर्य का व्यापक दृष्टिकोण भी था । हिन्दी छायावाद का जन्म एक नई चेतना के रूप में हुआ । साहित्य की रूढिवादी पगडडी को उसने छोड दिया । आदर्श के साथ ही उसमें यथार्थ का भी ग्रहण था । राष्ट्रीय भावना के समावेश ने अतीत के प्रति एक अनुराग उत्पन्न किया । मानवीय भावनाओ को अधिक स्वीकार करने के कारण ही छायावाद की प्रवृत्तिया रहस्यवाद के निकट प्रतीत होती है । अग्रेजी साहित्य का स्वच्छन्दतावाद हिन्दी के छायावाद से इस प्रकार किंचित भिन्न रूप में प्रस्तुत हुआ । स्वच्छन्दतावाद अपने देश की व्यावसायिक क्रान्ति तथा फ्रास और जर्मनी की नवीन विचारधाराओ से प्रभावित था। इगलैण्ड के मध्यमवर्ग ने उसमें प्रमुख भाग लिया और उसने उसका अधिक स्वागत भी किया । शिक्षित समाज ने ही उसे अपनाया । सौन्दर्य के प्रति अधिक अनुराग होने के कारण स्वच्छन्दतावाद ने नारी , प्रेम, यौवन को अपने काव्य का विपय बनाया । माध्यम के लिये, अभिव्यक्ति के साधन रूप में उन्होंने गीत को स्वीकार किया। व्यक्तिगत अनुभूतियो को लेकर कल्पना के सहारे काव्य-निर्माण छोटे-छोटे गीतो मे होने लगा, जिनमे एक किसी ही भावना की अभिव्यजना होती थी । छायावाद की प्रवत्तिया राष्ट्रीयता के अधिक समीप होने के कारण अतीत की सास्कृतिक, ऐतिहासिक परम्परा से अधिक प्रभावित थी । सस्कृत की काव्य परम्परा का आभास भी उनमे देखा जा सकता है । स्वयम् प्रसाद की आरम्भिक कृतिया कालिदास से अनुप्राणित थी । राष्ट्रीय चेतना के साथ ही दार्शनिक प्रतिपादन भी छायावाद की विशेपता है । उसने भाव, भापा शैली के क्षेत्र मे सूक्ष्म वस्तुओ को लेकर कार्य किया । गीतात्मक शैली की प्रमुखता तथा सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण होते हुये भी छायावाद का सास्कृतिक पक्ष अधिक प्रबल था । इगलैण्ड के स्वच्छन्दतावाद ने साहित्य के विभिन्न क्षेत्रो मे कार्य किया । काव्य मे वाइरन, शेली, कीट्स प्रमुख है।

वाइरन--

वाइरन ने अपने जीवन काल मे ही पर्याप्त स्याति प्राप्त की । उसके काव्य में कल्पना शक्तिशालिनी होकर आती है । भावो की तीव्रता का पूर्ण आवेग उसमें देखने को मिलता है । विद्रोह और क्रान्ति की दृष्टि से वाइरन का स्थान स्वच्छन्दतावादी कवियो में प्रमुख है। अपने व्यक्तित्व और कृतित्व दोनो ही मे वह एक विद्रोही कलाकार था । पूर्ववर्ती कवियो की भाति वह

आध्यात्मिकता अथवा नैतिकता को आरोपित नहीं करता। भावना का प्रवेग, सौन्दर्य ही उसके काव्य में सशक्त होकर आते हैं। उसमें स्थान स्थान पर अन्योक्ति और वक्रोक्ति का भी आभास मिलता है। इटली के प्रवास में उसने अत्यन्त सुन्दर गीतों की रचना की, जिसमें उसके हृदय का आन्तरिक झंझावात भी स्पष्ट हो उठा। बाइरन को अपने भाव प्रकाशन के लिये अधिक अलंकरण की आवश्यकता नहीं पड़ी। भावों में इतना वेग रहता है कि वे नैसर्गिक धारा की भांति फूट पड़ते हैं। आवेग, सौन्दर्य उनका शृंगार बन जाता है। 'आल फार लव' नामक गीत में वह कहता है

"किसी महान कथा की बात मुझसे मत करो। हमारे यौवन की घड़ियां ही उत्कर्ष की हैं। बाइस वर्ष की हरीतिमा और मधुरता सम्पूर्ण सम्मान से भी मूल्यवान है।"

प्रेरणा के लिये बाइरन के मुख्य विषय अतीत, यौवन और प्रेम थे। 'डान जुआन' आदि रचनाओं में इटली के कलाकारों की छाया स्पष्ट हो उठी है। अतीत स्पष्ट रूप से उसे प्रभावित करता प्रतीत होता है। यौवन की उद्दामता और उसका आवेग कुछ कम हो जाता है। स्वयम् महाकवि गेटे को बाइरन के व्यक्तित्व और काव्य ने प्रभावित किया। भावों का स्वच्छन्द प्रवाह और उसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति के ही कारण बाइरन को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। आजीवन वह विद्रोही रहा और अन्त में उसे देश का भी परित्याग करना पड़ा। काव्य में प्रतिबिम्बित उसका व्यक्तित्व इतना शक्तिशाली है कि समस्त स्वच्छन्दतावाद की काव्यधारा में वह स्वतन्त्र स्थान रखता है। उसके काव्य पर उसके विद्रोही व्यक्तित्व की छाया है। सौन्दर्यवादी के उन्मुक्त रूप में उसने लिखा

"वह अपने सौन्दर्य में चलती है, मानो निरभ्र वातावरण तथा नक्षत्रमण्डित आकाश से भरी रजनी[३०]।"

बाइरन की उपमायें और प्रतीक भी भावों की भांति एक विचित्र अल्हड़ता से भरे हुये हैं, जिनमें कवि का उन्मुक्त, बन्धनविहीन स्वरूप स्पष्ट हो गया है। बाइरन के आभिजात्य संस्कारों ने उसके काव्य में एक वेग, प्रखरता, स्वच्छन्दता ला दी, जिन्हें उसके विद्रोह ने और भी बल दिया। प्रसाद की भावनाओं पर भाषा और शैली का सुन्दर अलंकरण रहता है जो आवेश को किंचित मन्थर कर देता है। सौन्दर्य प्रेम और शृंगार की भावनायें छाया

---

३० "She walks in beauty, like the night
Of cloudless climes and starry skies."

की भाति आगे बढती दिखाई देती है। जहा कही प्रसाद की भावना, कल्पना बन्धनविहीन और स्वच्छन्द हो गई है, बाइरन के काव्य का उन्मुक्त प्रवाह देखा जा सकता है। प्रसाद ने भाषा के द्वारा भावो का अधिक से अधिक परिष्कार और शृगार किया। बाइरन की भाति उनकी काव्यधारा वनविहगिनी सी नही दौडती। अपने युग और काल के अनुरूप उसकी गति है। प्रसाद बाइरन की भाति एक विद्रोही कलाकार न थे, यद्यपि उन्हें क्रातिकारी कहा जा सकता है। उन्होने नवीन पथ का निर्माण किया। सौन्दर्य के स्वच्छन्द गीतो में बाइरन का सा आवेग मिल जाता है। सुवासिनी के गीत में पूर्ण प्रवाह है

हे लाज भरे सौन्दर्य बता दो
मौन बने रहते हो क्यों ?

'कामायनी' में मनु अपने आवेश में बन्धनविहीन होने की कामना करते है। किसी प्रकार का नियन्त्रण उन्हें स्वीकार नहीं। वे 'उन्मुक्त पुरुष' होकर 'अवरुद्ध श्वास' नही ले सकते। श्रद्धा के स्नेहपाश भी उन्हे बाधने मे असमर्थ होते है। उनका मन विद्रोह कर उठता है। मनु का विद्रोही रूप बाइरन की स्वच्छन्दता के अधिक समीप है। इस अवसर पर 'कामायनी' की अभिव्यक्ति भी स्वच्छन्द हो उठी। मनु अपने आवेश में कहते है

देखा क्या तुमने कभी नहीं
स्वर्गीय सुखों पर प्रलय नृत्य
फिर नाश और चिरनिद्रा है
तब इतना क्यो विश्वास सत्य।'

इडा के साथ भी मनु का स्वरूप अधिक उन्मुक्त हो उठता है। बाइरन की भी स्वच्छन्दता इस अवसर पर आभासित हो जाती है और दोनो कवि एक दूसरे के निकट आ जाते है। प्रसाद दार्शनिक चिन्तन को प्रमुखता देते है, किन्तु बाइरन आवेग और विद्रोह को। प्रसाद आदर्शवादी है, किन्तु बाइरन नही।

शेली—

बाइरन की भाति शेली मे भी विद्रोही प्रवृत्तिया थी। विश्वविद्यालय-जीवन मे ही उसने 'नास्तिकता की आवयकता' पर निबन्ध लिखा। स्वयम् कवि की परिभाषा करते हुये उसने कहा, 'कवि का कर्तव्य देवदूत का सा होता है। वह केवल वर्तमान ही को नही ग्रहण करता, और न केवल उन्ही नियमों को खोजता है, जिसके अनुसार आधुनिक समस्यायें सुलझाई जाय किन्तु वह भविष्य को वर्तमान में ही ले आता है। उसके विचारो मे नवीनतम पुष्प

और फल के बीच निहित रहते है[४०]। शेली के काव्य में सुकुमार भावना कोमल कल्पना को स्थान मिला। समस्त दयनीयता, विडम्बना के प्रति उसकी बौद्धिक सहानुभूति थी और उसका काव्य इसी से अनुप्राणित है। प्रेम और सहानुभूति की भावना उसके गीतों का प्रमुख गुण है। करुणा की एक धूमिल छाया भी इसी के साथ घूमती दिखाई देती है। शेली की निराशा का क्रमिक विकास ही उसे एक अधिक व्यापक क्षेत्र तक ले गया। अपनी व्यक्तिगत करुणा, निराशा और प्रपीडन से उसने विश्व की वेदना को देखा और द्रवित हो उठा। एक ओर यदि प्रणय के गीत है, तो साथ ही विश्व के प्रति भी उसकी समस्त करुणा है। अपने प्रसिद्ध प्रगीत 'स्काईलार्क' में वह पछी से एक आत्मीयता सी स्थापित कर लेता है। वह उससे प्रसन्नता, आनन्द की भिक्षा मागता है ताकि सम्पूर्ण ससार को अपने मधुर सगीत से परिप्लावित कर दे। पछी के मानवीकरण द्वारा कवि ने भावो को सुकुमारता से भर दिया। इसी प्रकार भागते हुये समय पर उसे दुख होता है। यह स्वर्णिम पल अब कभी भी लौटकर न आवेगे—

'दिन और रात का उल्लास न जाने कहाँ चला गया। नवल मधुमास, ग्रीष्म और शिशिर वृद्ध होकर मेरे छोटे से मन को शोक और पीड़ा से भर देते है, किन्तु उल्लास कभी नही आता; ओह, अब कभी नही आता[४१]।'

छोटे छोटे गीतो मे एकान्तप्रियता, निराशा की जिस भावना का सकेत है, उसमे करुणा की ही भावना प्रबल है। ससार के उत्थान पतन और क्षण क्षण में परिवर्तित रूप पर द्रवित हो उठना स्वाभाविक है। स्वयम् अतीत की स्मृतिया प्रसाद को अत्यधिक प्रिय रही है। वे कहते है.

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे
जब सावन-घन सघन बरसते
इन आखो की छाया भर थे। लहर, पृष्ठ २७।

विश्व के प्रति सहानुभूति की भावना इतनी प्रबल हो उठी, कि शेली ने जड़ता में चेतनता का आरोप किया। वह सभी से सहयोग प्राप्त करना चाहता है। काव्य के द्वारा शेली ने मानवता को सुन्दर भावनाओं से भर देने का प्रयास किया। उसका ध्यान आन्तरिक तृप्ति की ओर था। 'रिवोल्ट आफ इस्लाम' तथा

४०. "Poet has essentially the character of a prophet.."
The Poet's Defence by Shelley.

४१. "Out of the day and night, A joy has taken flight.."
A Lament by Shelley.

'प्रोमेथियस अन्वाउन्ड' जैसी लम्बी रचनाओ में कवि का मानवीय दृष्टिकोण अधिक स्पष्ट हुआ। चन्द्रमा, अप्सरा, पृथ्वी आदि के अनेक प्रतीको के प्रयोग से उसने 'प्रोमेथियस अन्वाउन्ड' के सुन्दर रूपक का निर्माण किया। प्रोमेथियस स्वयम् मानवता के कल्याण का उद्देश्य रखता है। जब अप्सरायें उसे छोडकर चली जाती है, तव प्रकृति की सुषमा ही उसका साथ देती है। समस्त काव्य की ध्वनि ही प्रेम का व्यापक प्रतिपादन है

'एक साथ अनेक ध्वनिया प्रतिध्वनित हुई, स्वतन्त्रता, आशा, मृत्यु और विजय। अनायास ही वे शून्य आकाश मे विलीन भी हो गई। सर्वत्र एक ही ध्वनि थी, वह प्रेम की आत्मा थी [४२]।'

इसी प्रकार 'रिवोल्ट आव इस्लाम' मे भी उसका कथन है, "भाग्य, काल, समय, अवसर तथा परिवर्तन इन सभी के वश में सर्वस्व है, किन्तु अनादि प्रेम नही [४३]।"

शेली की भावनाये सूक्ष्म, कोमल और सरस है। प्रसाद भी मानवीय करुणा का प्रतिपादन करते है किन्तु उनमें शक्ति और विश्वास का आग्रह है। 'अशोक की चिन्ता' आदि कविताओं में आने वाली बौद्धदर्शन की करुणा अन्त में जीवन दर्शन की नियोजना मे सफल होती है। अकन की सूक्ष्मता में प्रसाद, शेली की शैलियाँ किंचित पृथक है, किन्तु दोनो ही कवि मानव जीवन में करुणा, प्रेम के समावेश से सुख शान्ति की कामना करते है। 'प्रोमेथियस अन्वाउन्ड' का नाट्य रूपक 'कामायनी' के समीप प्रस्तुत किया जा सकता है। भावना और विचार में समन्वय की दृष्टि से भी उनमें पर्याप्त साम्य है। अपने विचारो का प्रतिपादन वे स्वाभाविक रीति से करते है, कही भी काव्य मे वाधा नही पडती। काव्य का दर्शन और सत्य भावनाओ के साथ एकाकार हो जाता है और कवि अपने सदेश, सकेत में सफल होते है। केवल उत्तेजना के आधार पर काव्य निर्माण करनेवाले कवियो मे उनकी गणना नही हो सकती। वे विचारक और कवि दोनो ही है।

---

४२ "There was mingled many a cry—
Freedom Hope Death Victory
One sound beneath, around, above
Was moving, it was the soul of Love"—Prometheus Unbound.

४३ "All things are subject but eternal love"
—The Revolt of Islam.

कीट्स—

कीट्स के रूप में स्वच्छन्दतावाद को सौन्दर्य का अन्यतम उपासक मिला। वह सौन्दर्य और मादकता का गायक है। यौवन के प्रथम प्रहर में ही फेनी ब्राउन से प्राप्त होनेवाली निराशा ने उसे सुन्दरता के ताप का बोध कराया। प्रेयसी को लिखे गये पत्रों में उसने अपनी आत्मा ही भर दी। कविता उसका आदि और अन्त बन गया, वह उसके अभाव में एक क्षण भी न रह सकता था। अपनी समस्त मादकता उसने गीतों में ही भर दी। उसके अनुसार 'सौन्दर्य की वस्तु चिरन्तन आनन्द देती है।'

कीट्स ने काव्य को ही सुख की वस्तु मान लिया। उसके लिये वह एक कला है, जिस पर सतत प्रयास के द्वारा ही अधिकार प्राप्त किया जा सकता है[४४]। गीतकार रूप में कीट्स ने अत्यन्त प्राजल शब्दों का व्यवहार किया। वह अपने शब्दों के द्वारा सुन्दर से सुन्दर चित्र बनाने में सफल हुआ। शब्दशिल्प में, सौन्दर्यांकन में कीट्स निस्सन्देह अद्वितीय है। प्रसाद और कीट्स दोनों की लेखनी तूलिका की भांति चलती है। वे दृश्य सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं और उनकी आभिजात्य भाषा इसमें सहयोग प्रदान करती है। कभी कभी कीट्स को सौन्दर्य एक इन्द्रजाल, स्वप्न की भांति प्रतीत होता है। वह सौन्दर्य में विभोर और स्तम्भित हो उठता है। सौन्दर्य स्वयम् साकार हो जाता है। अपने प्रसिद्ध ओड 'नाइटिन्गेल' में वह कहता है

"जहां सौन्दर्य अपने ज्योतित नेत्र रखने में असमर्थ हैं अथवा नवीन प्रेम उन पर कल के लिए तड़प उठता है।"

गीतों के अतिरिक्त लम्बी रचनाओं में उसने प्राचीन काव्य से प्रेरणा ग्रहण की। एन्डीमियन, लेमिया, दि ईव आव सेंट एग्नीज़ आदि में प्राचीन प्रभाव स्पष्ट है। कीट्स का सौन्दर्यवाद ही उसके काव्य का प्राण है। प्रसाद की सौन्दर्यभावना दर्शनसमन्वित होने के कारण ऐन्द्रियता से बच जाती है।

नया युग—

स्वच्छन्दतावाद की परम्परा के कवि अपनी विशेष प्रवृत्तियां रखते हैं। वर्ड्स्वर्थ ने प्रकृति को अपनाया। प्रकृति का समस्त क्रिया व्यापार ही उनके काव्य का विषय है। कोलरिज जीवन की सम्पूर्ण इकाई को दृढ़ता से ग्रहण करता है। सत्य और दर्शन का निरूपण भी उसने काव्य में इसी दृष्टि से किया।

४४. A Critical History of English Poetry, Page 172.

बाइरन का व्यक्तित्व अन्य कवियो की अपेक्षा अधिक विद्रोही है। शेली मानवता को प्रेम से प्लावित कर देना चाहता है। उसके गीत का मूल स्वर ही प्रेम है। कीट्स सौन्दर्यवादी है। सौन्दर्य और मादकता उसके गीतो में प्रतिबिम्बित है। स्वच्छन्दतावादियो के पश्चात् विक्टोरिया युग में टेनिसन, राबर्ट ब्राउनिंग, स्विनबर्न, रोजेटी, मेथ्यू आर्नल्ड आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन कवियो के साथ ही काव्य में यथार्थवादी प्रवृत्तियो का प्रवेश आरम्भ हो गया। समाज की बदलती हुई परिस्थितियो ने भौतिक समस्याओ का समावेश कराया। जीवन के सर्वांगीण निरूपण का अधिकाधिक आग्रह होने लगा। टेनिसन की रचनाओ में ही वर्णनात्मकता का आभास मिलता है। 'ब्रुक' आदि कवितायें भी वस्तु वर्णन को लेकर चलती है। राबर्ट ब्राउनिंग की रचनायें अपेक्षाकृत भावना का अधिक आश्रय लेती है। 'रात्रि में मिलन और प्रात का वियोग' आदि रचनाओ में भावुकता स्पष्ट है[४५]। उसमें पौरुष का आग्रह भी अधिक है, जो सर्वत्र आशा देखता है। स्विनबर्न में भी वही जागृत आशावाद दिखाई देता है। 'मार्चिग साग' में वह कहता है

'उठो, क्योकि भोर जग गया है। सभी आत्मायें तृप्त हो जाय। खेत, डगर और बन्दीगृह से भी आ जाओ, क्योकि प्रीतिभोज सा फैला है। जियो, क्योकि सत्य जी रहा है, उठो, क्योकि रात्रि मर चुकी है।'

रोजेटी में निराशावाद अधिक है। वह रहस्योन्मुख भी होने लगती है। मैथ्यू आर्नल्ड में कवि और आलोचक का सम्मिलित व्यक्तित्व है। फ्रास में विक्टर ह्यूगो, वाल्टायर आदि कलाकारो ने काव्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। राबर्ट ब्रिजेज ने 'टेस्टामेंट आफ ब्यूटी' मे अनेक दार्शनिक तथ्यो का समावेश किया। उसका चिन्तन पक्ष अत्यन्त प्रौढ़ है। सौन्दर्य के प्रतिपादन मे धार्मिक अवलम्ब भी ग्रहण किया गया। विश्वास और आस्था पर कविता अधिक जोर देती है। कवि इसके लिये अपने दार्शनिक तर्क प्रस्तुत करता है। वह कही कही कवि की अपेक्षा दार्शनिक अधिक हो जाता है। इसी कारण उसमें बौद्धिकता का समावेश है। आरम्भ में ही कवि सौन्दर्य की व्याख्या करता है

"सौन्दर्य उसकी सर्वोत्कृष्टता का मौलिक उद्देश्य, लक्ष्य तथा शान्तिपूर्ण आदर्श है[४६]।"

---

४५ "Meeting at night, Parting at morning"
—Robert Browning

४६ 'Beauty is the prime motive of all His excellence,
His aim and peaceful purpose"

'टेस्टामेन्ट आव ब्यूटी' तर्क की अपेक्षा श्रद्धा को अधिक महत्व देती है। तर्क केवल समस्याओं की वृद्धि करता है। कवि का कथन है :

"प्रायः हम सौन्दर्य से ज्ञान पर जाते हैं, किन्तु तर्क से कभी सौन्दर्य नहीं पाते[४०]।"

'आध्यात्मिक प्रेम' और 'नैसर्गिक सौन्दर्य' की भावना का प्रतिपादन सर्वत्र है। 'कामायनी' श्रद्धा में ही प्रेम, सौन्दर्य, विश्वास के उदात्त रूप को समन्वित कर देती है। दोनों कवि तर्क को प्रश्रय न दे कर श्रद्धा को महत्व देते है।

इंग्लैण्ड में सभ्यता के विकास के साथ ही क्रमशः गद्य का अधिक निर्माण होने लगा। बीसवीं शताब्दी के कवियों में यीट्स और टी० एस० इलियट का नाम प्रमुख है। अपनी जन्मभूमि आयरलैंड की प्रकृति से प्रेरणा लेकर यीट्स ने आरम्भिक रचनायें प्रस्तुत की जिनमें रहस्यवादी प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं। काव्य में प्रतीक विधान के द्वारा यीट्स ने ऐन्द्रियता की भावना को छिपाने का प्रयत्न किया, किन्तु कहीं कहीं वह स्पष्ट हो उठी। वह क्रमशः आदर्श से यथार्थ की ओर बढ़ता दिखाई देता है और इसी कारण उसमें रहस्यवाद का पूर्ण विकास न हो सका। गीतिनाट्यों में प्रेम और नारी की ही भावनायें प्रबल हैं, जिनमें उसकी बौद्धिकता भी आ गई है। बीसवीं शताब्दी में भी अपनी प्राचीन काव्य-परम्परा और राष्ट्रीय संस्कृति से ही वह अधिक प्रभावित रहा। टी० एस० इलियट मैथ्यू आर्नल्ड की भांति कवि और आलोचक है। नए प्रतीकों का निर्माता है। 'वेस्टलैण्ड' के गीतों में 'ईश्वरविहीन संसार' के प्रति क्रन्दन की भावनायें हैं। अपनी विचारधारा को वह नाटकों में अधिक स्पष्ट कर सका। इस प्रकार आधुनिक युग के काव्य में नए प्रयोग चलते दिखाई देते हैं। कवि सांस्कृतिक पुनरुत्थान में प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं। स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व की भावनायें काव्य में प्रविष्ट होने लगी हैं। प्राचीनता और नवीनता का समन्वय किपलिंग की कविता में है। जीवन और काव्य को एक दूसरे के अधिक समीप ले आने में आधुनिक कवि प्रयत्नशील है। बीसवीं शताब्दी के लगभग आरम्भ में उदित होने वाले छायावाद की परिस्थितियां इंग्लैण्ड से भिन्न थीं। राजनैतिक क्षेत्र में राष्ट्रीय भावना के साथ ही सांस्कृतिक चेतना का भी अधिक आग्रह किया जा रहा था। पूर्व ही राजा राममोहनराय, तिलक, विवेकानन्द, गांधी राजनीति के साथ ही सभ्यता और संस्कृति में भी पुनरुत्थान के लिये प्रयत्नशील थे। छायावाद पर

---

४० "Verily by Beauty it is that we come at Wisdom,
yet not by Reason at Beauty."

ओर यदि राष्ट्रीयता से अनुप्राणित है, तो साथ ही उसमे प्राचीन सस्कृति, दर्शन और साहित्य का नवीनतम रूप भी है। काव्य निर्माण मे छायावाद जीवन, प्रकृति, राष्ट्रीयता के समन्वय को अधिक अपनाता हुआ दिखाई देता है और भावना के साथ ही कलापक्ष का अधिक परिष्कार उसमे हुआ।

गेटे—

इगलैण्ड के अतिरिक्त योरप के अन्य देशो में भी काव्य निर्माण एक उच्च स्तर पर हुआ। स्वयम् अँग्रेजी स्वच्छन्दतावाद पर फ्रान्स का प्रभाव है। फ्रान्स मे विक्टर ह्यूगो, वाल्टायर आदि कलाकारो ने काव्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। अठारहवी शताब्दी में गेटे ने योरोपीय साहित्य पर अपने महान व्यक्तित्व का पर्याप्त प्रभाव डाला। उसकी बहुमुखी प्रतिभा का निर्माण क्रान्तिकारी विचारधारा, राष्ट्रीय भावना तथा मानवतावाद के समन्वय से हुआ। उसका सम्पूर्ण साहित्य जीवन के अनुभव पर आश्रित है, जिसे वह सदा व्यापकता की ओर लेता चला गया। उसने व्यक्तिगत अनुभवो का उदात्तीकरण कर, उन्हे अधिक विस्तृत भाव भूमि पर प्रस्तुत किया। अठारहवी शताब्दी के मध्य में जर्मनी की बौद्धिक क्रान्ति का नेतृत्व स्वयम् गेटे ही कर रहा था। अपने विचारो से वह युगान्तकारी परिवर्तन कर देना चाहता था। बाल्यकाल में ही उसने ईश्वर में सन्देह किया। उसके लिये मानव ही सबसे महान वस्तु है और उसका समस्त साहित्य मानवता के विभिन्न रूपो का ही प्रतिपादन करता है। एन्जिल्स ने मार्क्स को इस विषय मे लिखा था, 'गेटे ईश्वर की चर्चा नही करना चाहता। यह शब्द ही उसे सुख नही देता। वह केवल मानवता में ही प्रसन्न रहता है। उसने मानवता को धर्म के बन्धन से मुक्त किया, और यही उसकी महानता है। इस दृष्टि से प्राचीन श्रेष्ठ लेखक, अथवा शेक्सपियर भी उसकी समकक्षता मे नहीं आते[४८]।' गेटे का काव्य प्रत्येक दिशा से जीवन का अध्ययन है। व्यक्तिगत आन्तरिक अनुभूति से लेकर समग्र विश्व तक उसके चिन्तन मे दिखाई देते है। भावो के प्रकाशन के लिये उसके पास अनेक माध्यम थे। थे। कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, लेख, पत्र के अतिरिक्त वह एक चित्रकार और मूर्तिकार भी था। विज्ञान के क्षेत्र मे उसने रगो पर कार्य किया और वह जीवविज्ञान तथा वनस्पतिशास्त्र का भी विद्वान था। गेटे जर्मन साहित्य का वास्तविक प्रणेता है, जिसने देश को एक राष्ट्रीय साहित्यिक परम्परा दी। आरम्भिक रचनाओ मे व्यक्तिगत प्रेम और सामाजिक विद्रोह की भावना अधिक

---

४८ Literature and Art, by Marx and Engels, Page 80

प्रबल है।" 'सारोज आफ वर्थर' में अपने मित्र जेरुसलम की आत्महत्या तथा स्वयम् उसकी निराशा की प्रेरणा है। इस छोटे से उपन्यास में अनुभूति की सच्चाई, भावों की तीव्रता, प्रेम की पीड़ा, निराशा इतनी अधिक है कि वह मर्म को स्पर्श करता है। लेखक कहता है, 'मनुष्य की शक्ति सीमित है, वह केवल एक सीमा तक ही आनन्द अथवा कष्ट भोग सकता है; उससे आगे बढ़कर वह समाप्त हो जाता है। यह नैतिक शक्ति अथवा दुर्बलता का प्रश्न नहीं, किन्तु देखना यह है कि हम कितना मानसिक अथवा शारीरिक कष्ट सहन कर सकते हैं। केवल अपने जीवन का अन्त कर लेने के कारण किसी को कायर कहना मैं व्यर्थ समझता हूँ, क्योंकि वह रोग से भी मर सकता है।' धीरे धीरे गेटे की भावना और विचारधारा में विकास होता चला गया। प्रेम, निराशा और विद्रोह की प्रवृत्तियां जीवनदर्शन की ओर बढ़ती हैं। कवि मानव जीवन को दृढ़ता से पकड़ लेता है और एक दार्शनिक की भांति समस्याओं का समाधान करता चलता है। अपने उपन्यास 'विल्हेम मीस्टर' (Wilhelm Meister) की रचना में उसने लगभग बावन वर्ष लगाये। इस बृहत् ग्रन्थ में उसने देश और युग की अनेक समस्याओं को लिया। मनुष्य जीवन की सफलता पर लेखक ने उसमें विचार किया।

गेटे ने अपने जीवन की समस्त साधना 'फाउस्ट' महानाटक में निहित कर दी। लगभग अट्ठावन वर्षों में इस कृति को कवि ने दो भागों में सम्पन्न किया। उसके व्यक्तित्व का विकास इसमें दिखाई देता है। उसकी सम्पूर्ण प्रतिभा, कला, और विचारधारा का समावेश 'फाउस्ट' में हुआ। नायक फाउस्ट मानवजीवन की यथार्थ परिस्थितियों से निर्मित है। जीवन की आन्तरिक अभिलाषाओं के साथ ही वह सदा मानवता के साथ चलना चाहता है। मारगेरेट से उसका प्रेम यदि एक व्यक्तिगत भावना है, तो वह जीवन की व्यापकता को भी नहीं छोड़ देता। उसका व्यक्तित्व आधुनिक युग के संघर्षशील व्यक्ति का सा है, जो जीवन के उत्थान और पतन से निर्मित होता है। अनुवादक अल्बर्ट जी० लैथम ने भूमिका में कहा है, 'फाउस्ट एक आकांक्षामयी आत्मा है, जो समस्त ज्ञान, सम्पूर्ण शक्ति की, बिना परिणाम की चिन्ता किये हुये, कामना करती है। उसने स्वयम् को समस्त नैतिक और धार्मिक नियमों के बन्धन से मुक्त कर लिया और अपने युग की चेतना का ही प्रतीक प्रतीत होता है[४९]।' आरम्भ में ही फाउस्ट का मानसिक द्वन्द्व दिखाई देता है। दर्शन, नीतिशास्त्र, रोग-निदान

[४९] "Faust the ambitious spirit who aspired after all knowledge and all power, reckless of consequences, and should in rest free from all trammels of moral or religious law, seemed the very incarnation of the spirit of the times."

Introduction by Albert G. Latham, Page 53.

आदि का अध्ययन कर भी वह मूर्ख ही बना रहा, वास्तविक सुख शान्ति न मिल सकी। वह नरक और दानव की चिन्ता नही करता। जीवन को प्रत्येक दिशा से देख लेने के लिये वह सदा व्याकुल रहता है। सुख और शान्ति की खोज मे पृथ्वी का कण कण छान डालता है। उसके मन में प्रश्न उठता है, 'क्या मै स्वयम् ईश्वर हूँ,' और इसी के साथ उसकी जिज्ञासाओ की वृद्धि होती जाती है। आरम्भ का लम्बा कथन उसकी मानसिक स्थिति को स्पष्ट कर देता है। प्रेतात्मा से वह कह उठता है, 'मेरे अन्तरतम मे भावनाओ का ज्वार सा बढता चला आ रहा है। सागर के तूफान की भाति मेरी चेतना स्तब्ध हो गई है। मुझे अनुभव हो रहा है कि मेरा हृदय अपरिमेय शक्ति से खिचा चला जा रहा है। समग्र जीवन केवल परिस्थिति पर निर्भर है, किन्तु मुझे चलना है, आगे बढना है।' फाउस्ट अपने को ईश्वर का ही प्रतिविम्ब मानकर चलता है। धूलि को सव कुछ मानकर वह कहता है, कि मै कीट की भाति उसी में पलता रहता हूँ। फाउस्ट का व्यक्तित्व यथार्थ मानव का है, जो अपने सम्पूर्ण पौरुष और सत्य के साथ जीवन से सघर्ष करता है। उसके भापण और कथन की प्रत्येक पक्ति से उसका व्यक्तित्व आभासित होता है तथा वह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व लेकर आगे बढता है। धर्म, नीति की सीमाएँ उसे नही वाध सकती, फिर भी वह पूर्ण मानवीय है, पृथ्वी का पुत्र है। चारो ओर की विपमताओ में भी वह सचेत रहता है[५०]। मारगरेट से उसका प्रेम हृदय के पवित्र व्यापार के रूप में है। वह अनायास ही उस युवती पर आकृष्ट हो उठता है। हृदय में उसके प्रति एक सवेदना सी जग जाती है। फाउस्ट अपने प्राणो का समस्त ताप लेकर उस नारी से प्रेम करता है। नारी और पुरुप के सम्वन्ध की व्याख्या गेटे ने अपनी आन्तरिक अनुभूति के सत्य से प्रस्तुत की। फाउस्ट प्रेम-विभोर सा हो जाता है। मारगेरेट से वह 'मा का दुलार' मागता है। अपने महान नाटक में कवि ने जीवन के आदि अन्त को निहित कर दिया। अनुभूति का सत्य और भावो की तीव्रता विराट भावभूमि पर प्रस्तुत किए गए है। अपने जीवन दर्शन का रस उसने सम्मुख रख दिया। अन्त मे वह मानव और पृथ्वी को ही सत्य रूप मे स्वीकार करता है और कहता है, 'यहा पृथ्वी का समस्त अभाव पूर्णता प्राप्त करता है[५१]।' फाउस्ट का अन्त उसका पराभव अथवा पतन नही है। अन्तिम

---

५० "More deeply-deep night seemeth to enfold me
Yet clear the daylight shines within mine heart"
—Faust 2nd Part V Act

५१ 'Earth's insufficiency here finds perfection'

समय में भी वह प्रत्येक दिवस से सफलता की कामना करता है। उसका चिर सहचर मेफिस्टाफिल्स भी उसके पौरुष और त्याग की सराहना करता है।

'कामायनी' के मनु का व्यक्तित्व संघर्षशील फाउस्ट के अधिक निकट है। गेटे और प्रसाद का आरम्भिक चरण व्यक्तिगत जीवनानुभूतियों से अनुप्राणित है। प्रसाद की आन्तरिक वेदना 'आसू' में 'सारोज़ आव वर्थर' की भांति ही प्रस्फुटित हुई। जीवन की वेदना, निराशा और पीडा को दोनों ही कलाकार एक जीवन दर्शन के रूप में चित्रित करते हैं। निराशा का व्यापक प्रसार ही उसकी सफलता है। दोनों ही महाकवियों ने अपनी अनुभूतियों का अधिक से अधिक उदात्तीकरण किया और व्यक्तित्व को जीवन की सम्पूर्णता के निकट ले जाने का प्रयत्न करते रहे। 'आसू' का कवि 'कामायनी' और 'वर्थर' का लेखक 'फाउस्ट' तक चला जाता है। मानवता के समर्थक इन कलाकारों ने परम्परा से पृथक एक नवीन जीवन दर्शन की नियोजना की, जिसमें युग की परिस्थिति दिखाई देती है। वर्थर के नवीन संस्करण में निराशा एक सार्वभौमिक धरातल पर आ जाती है। लेखक अपनी आन्तरिक पीडा को सर्वत्र देखता है। 'आसू' अपने वर्तमान रूप में विश्व की करुणा को अपना लेता है। दोनों ही महाकवियों की करुणा निरन्तर विकसित और प्रगतिशील होती चली जाती है। गेटे के महान उपन्यास 'विल्हेम मीस्टर' में जीवन की अनेक समस्याओं का प्रतिपादन हुआ। प्रसाद की कहानियां, उपन्यास, नाटक भी जीवन के विभिन्न पक्षों को छूते चलते हैं। अन्त में अपनी सम्पूर्ण साधना की अभिव्यक्ति उन्होंने अन्तिम कृतियों में कर दी। मनु के मानसिक झंझावात और फाउस्ट के अन्तर्द्वन्द्व में पर्याप्त साम्य है। आरम्भ में ही चारों ओर बिखरी हुई प्रकृतिराशि को देखकर फाउस्ट का कुतूहल जग जाता है। वह स्वयम् कह उठता है, 'सिर पर ही घनराशि उमड़ती आ रही है, चन्द्रमा अपना आभा छिपाये लिये जाता है, दीपक का भी अन्त हो रहा है[५२]।' मनु भी प्रलय के भीषण दृश्य से उद्विग्न हो उठते हैं। निसन्देह फाउस्ट का चरित्र अधिक विद्रोही है। वह स्वयम् ईश्वर है, समग्र मानवता ही उसके लिये ईश्वर है। प्रसाद की मानवीयता विद्रोहिणी नहीं है; वह ईश्वर की सत्ता स्वीकार करते हैं। स्वयम् मनु 'विराट' का संकेत कर देता है। गेटे ने श्रद्धा को महत्व देते हुये कहा, 'वह प्रसन्न है जिसका हृदय पवित्र, सुन्दर विश्वास से सम्पन्न है[५३]। फाउस्ट और मार-

५२. "Clouds gather overhead
The moon withdraws her light
The lamp is dying."

५३. "Happy whose breast with pure good faith is filled."—Faust

गेरेट के प्रेम में उतना ही ताप है, जितना मनु और श्रद्धा के स्नेह में। मानव को सर्वोपरि मानकर चलनेवाले दोनो ही कलाकार नारी को एक महान स्थान देते है। फाउस्ट का अन्त 'नारी के चिरन्तन प्रेम' से होता है और कामायनी भी श्रद्धाजन्य आनन्दवाद का प्रतिपादन करती है। नाटक को दुखान्त रूप मे प्रस्तुत करने के कारण जीवन के सघर्षो से जूझते हुये नायक फाउस्ट का अन्त हो जाता है। 'कामायनी' शैवागम के आनन्दवाद का निरूपण करती हुई मिलनभूमि पर चली जाती है। गेटे का दृष्टिकोण यथार्थवादी अधिक है, किन्तु प्रसाद मे आदर्श के प्रति एक सामान्य मोह दिखाई देता है। भावना के व्यापक प्रसार मे प्रसाद का व्यक्तित्व गेटे की अपेक्षा कम विस्तृत है किन्तु उसमे कलात्मक सौष्ठव का प्रयास अधिक है। गेटे मे जर्मनी की परम्परा, सस्कृति का आग्रह अधिक है। प्रसाद भारतीय और राष्ट्रीय होते हुये भी जीवन के सूक्ष्म तन्तुओ को ग्रहण करते है और अपने मनोवैज्ञानिक विश्लेपण मे आगे बढ जाते है। सहज, स्वाभाविक शैली और पद्धति लेकर चलने वाले इन दोनो ही कलाकारो ने अपने युग की चेतना को पहिचाना और साहित्य मे उसकी सरस और मार्मिक अभिव्यक्ति की। उनका काव्य जीवन से अनुप्राणित है और उसमे उसी का स्वर थिरकता रहता है। गेटे ने अपने दीर्घ जीवन मे साहित्य को अनेक अमूल्य निधियो से भर दिया। प्रसाद ने अल्पकाल मे ही पर्याप्त साहित्य सृजन किया, जो उनकी कीर्ति को स्थायी रखने के लिये पर्याप्त है। विश्व साहित्य मे गेटे का व्यक्तित्व और साहित्य प्रसाद के अधिक निकट रखकर देखा जा सकता है।

पुश्किन——

रूस के साहित्यिक रगमच पर उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ मे पुश्किन का उदय हुआ। फ्रान्स की आक्रमणकारी नीति और सम्राट् जार का समय था। स्वयम् पुश्किन और जार के सम्बन्ध बहुत अच्छे न थे और कवि की स्त्री उसकी चिन्ता का कारण बन गई थी। एक बार किसी समय उसने अपनी पत्नी नेटालिया को लिखा था, 'मेरे मित्र, अब समय आ गया, समय आ गया मेरा शिथिल मन शान्ति माँगता है। तेज दिन जल्दी जल्दी भाग रहे है, एक एक क्षण घटता जाता है। जीवन के अपर्याप्त कण और हम तुम भी निश्चिन्त है, केवल जीवित रहने का विचार कर सकते है[५४]।'

---

[५४] 'Tis time, my friend, tis time
The weary heart craves peace,
The swift days scurry past,
And with each day decrease Live's scanty particles,
While, heedless, you and I Think but to live
And lo, all turns to dust we die"

आरम्भिक रचनाओं में पुश्किन की मानसिक स्थिति की विह्वलता दिखाई देती है। आन्तरिक अनुभूति को किसी दर्शन अथवा चिन्तन से सज्जित करने का बौद्धिक प्रयास उसमें नहीं मिलता। भावनाओं को सरल भाषा द्वारा प्रस्तुत करके प्रभाव स्थापित करने में पुश्किन को असाधारण सफलता प्राप्त हुई। बाइरन की भाँति उसकी भावनायें और अनुभूतियाँ स्वच्छन्द रूप में आती हैं; कवि उन पर किसी प्रकार के अन्य अलंकरण अथवा आरोप का प्रयास नहीं करता। गीतों का भावावेश ही उसे गति प्रदान करता है। उसकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ अधिक प्रतीकों और रूपकों का भी आग्रह नहीं करतीं। अनुभूति का सत्य, ताप और सरल प्रकाशन गीतों को सजीव कर देता है। 'जागरण रात्रि की कविता' में उसने लिखा है 'निद्रा मुझसे दूर भागती जा रही है, किंचित भी प्रकाश शेष नहीं रह गया। अन्धकार पृथ्वी को शान्तिपूर्वक समेट रहा है। केवल शिथिल पल ही रजनी के धीमे क्षणों में बोलते हैं[५५]।' प्रसाद का 'जीवन निशीथ के अन्धकार' गीत इसके निकट प्रतीत होता है। पुश्किन गीतों में गेटे की भाँति अपनी आन्तरिक अनुभूतियों का प्रकाशन करता है। गेटे ने चिन्तन और दर्शन से अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों का उदात्तीकरण कर लिया। पुश्किन की स्वच्छन्दता गीतों में प्रत्यक्ष माध्यम से आती है, उनमें किसी प्रकार का आरोप नहीं। देश से निष्कासित होने पर पुश्किन को अनेक प्रकार के व्यक्तियों से मिलने का अवसर मिला। धीरे धीरे उनके गीतों का व्यक्तिगत अंश भी कम होने लगा। उसने कथाकाव्य और गीतिनाट्य को अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। 'रसलन एण्ड लुडमिला' (Ruslan and Ludmila) से उसे पर्याप्त ख्याति प्राप्त हुई। 'दि राबर ब्रदर्स', 'दि फाउन्टेन आव बैखसिरी (The Fountain of Bakhchisary), 'दि प्रिज़नर इन काकेशस', 'दि जिप्सीज़' आदि में पुश्किन ने अपनी आन्तरिक अनुभूति का अधिक प्रसार किया। धीरे धीरे काव्य में यथार्थ का प्रवेश होने लगा। 'एवगेनी ओनेगिन' (Evgany Onegin) के 'काव्यात्मक उपन्यास' में पुश्किन का समन्वित व्यक्तित्व सम्मुख आता है। इसमें विकास की रेखायें स्पष्ट हो गई हैं। नायक के चरित्र का निर्माण नाटकीय प्रणाली से हुआ। आस पास के वातावरण से उसे सुख शान्ति नहीं मिलती, वह छटपटाता रहता है। लेन्स्की (Lensky), तनिया (Tanya or Tatyana), ओल्गा (Olga) का प्रवेश कथानक को बढ़ाता है।

५५. 'Sleep… me, the… light…'
—Verses written During a Sleepless Night.

नायक का इन सभी से परिचय होता है। आल्गा कवि की प्रेमिका है। तनिया ओनेगिन की ओर आकृष्ट होकर अपना प्रेम-प्रदर्शन करती है। वह उसके प्यार को स्वीकार करने मे असमर्थ है, केवल यही कहता है, 'तुम्हारी पूर्णता मेरे लिये व्यर्थ है, मै सर्वथा उसके अयोग्य हूँ।' एक दिन लेसकी से क्षुब्ध होकर ओनेगिन उसकी प्रेमिका, छोटी वहिन आल्गा के साथ आनन्द लेता है। इसी अवसर पर लेसकी का ओनेगिन के साथ द्वन्द होता है और लेसकी का अन्त हो जाता है। ओनेगिन भाग खडा होता है और पागलो की भाति इधर उधर घूमना है। तनिया भी कई वार उसे देखने आती है। अन्त मे अधिक निराश होकर वह एक धनिक से विवाह कर लेती है। अब स्वयम् नायक उसके प्रेम का भिखारी वन जाता है। वह वारम्वार उसे पत्र लिखता है, किन्तु उत्तर नही पाता। एक दिन स्वयम् जाकर उसके पैरो पर गिर पडता है। तनिया अब भी उसे प्रेम करती है, किन्तु विवश है। अत्यन्त करुण स्वर मे वह यही कहती है, 'मै तुम्हे प्यार करती हूँ, फिर तुम मेरे प्यार को मलिन क्यो करते हो। मै पराई हो गई हूँ और उस क्षण तक मुझे सदा उसी के साथ रहना है, जव तक कि मर नही जाती[५६]।' प्रिय प्रेमी सदा के लिये विदा ले लेते है और करुण अन्त आता है। कवि कहता है, "वह प्रसन्न है, जो शीघ्र ही जीवन के प्रीतिभोज से उठकर चल दिया और प्याले मे छलकती हुई मदिरा के कण नही पी सका। जिसने भूली हुई जीवन गाथा को नही पढा और अनायास ही अनजान मे विदा ले लेता है, जैसा मैने अपने ओनेगिन के साथ किया।"

स्वच्छन्दतावाद और परम्परावाद के सन्धिस्थल पर खडे हुए कवि में तीव्रता, ताप और सत्य एक मानवीय सवेदना से भरे रहते है। प्राजल भाषा और छायात्मक शृगार का प्रयोग करते हुये भी प्रसाद मे अनुभति का वही रूप है, किन्तु गेटे की भाति उन्होने उसका विकास किया। भारतीय जीवन तथा आधुनिक मनोविज्ञान से प्रभावित मनु का व्यक्तित्व अपनी यथार्थता और मानसिक स्थिति मे ओनेगिन से अधिक शक्तिसम्पन्न है। पुश्किन जीवन के प्रत्येक अनुभव को लिपिवद्ध करने का प्रयत्न करता है। जीवन का प्रत्येक क्षण उसे नवीन प्रेरणा देता है, किन्तु प्रसाद का चिन्तन उनमें अधिक वौद्धिकता और दार्शनिकता भर देता है। अपनी स्वच्छन्द भावधारा मे गीतकार प्रसाद और पुश्किन एक दूसरे के समीप आ जाते है। जैन्को लेवरिन का कथन है कि 'पुश्किन की विचारधारा रूसी साहित्य मे उसके अनन्तर भी चली आ रही

---

५६. "I love you (why sophisticate it)
But I'm another's pledged, and I
To him stay constant, till I die."

है। स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद का समन्वय उसकी कृतियों में हुआ[१७]।' जीवन की अनेक विषमताओं ने रूस के इस कलाकार को प्रेरणा दी और अन्त में उसने अपनी आन्तरिक भावनाओं का प्रसार किया। व्यक्तिगत अनुभूति के क्षेत्र में गेटे, पुश्किन और प्रसाद एक दूसरे के निकट प्रतीत होते हैं। एक दीर्घ जीवन का उपभोग करने वाला गेटे अपनी भावनाओं को अधिक व्यापक और विस्तृत कर सका। प्रसाद ने दर्शन के योग से उसे उदात्त बनाया। केवल अड़तीस वर्ष के जीवन में ही अत्यन्त करुण और निर्मम रीति से मरने वाले पुश्किन ने अपना हृदय खोलकर साहित्य में रख दिया।

मूल्यांकन--

पाश्चात्य काव्य की बिखरी हुई दीर्घ परम्परा में समाज और समय की गति के साथ काव्य की धारा प्रवाहित होती रही। विश्वकाव्य में पूर्व और पश्चिम के कवियों का प्रमुख योग है और उन्होंने काव्य की परम्परा को प्रभावित किया। होमर, दान्ते, मिल्टन, शेक्सपियर, बाइरन, गेटे का व्यक्तित्व आज भी अद्वितीय है। विश्वकाव्य से प्रकट है कि महान कलाकारों में एक निकट साम्य स्थापित किया जा सकता है। संसार को अपनी अन्तर्भेदिनी दृष्टि से देखने वाले महान कलाकार जीवन के व्यापक क्षेत्र में कार्य करते हैं। उनका लक्ष्य और उद्देश्य ऊँचा होता है। अपने महान व्यक्तित्व से वे समग्र साहित्य पर छा जाते हैं। आने वाली पीढ़ियाँ और युग उनकी रचनाओं में जीवन पाते हैं। कला की दृष्टि से वे अभिव्यंजना के सरल माध्यम को ही स्वीकार करते हैं, जिसमें भावों का अधिकाधिक प्रकाशन होता रहे। चेस्टरटन का कथन है कि कोई कारण नहीं है कि दो स्वतन्त्र कवि एक ही कल्पना और विचार के विषय में स्वतन्त्र रीति से न सोचें[१८]। इस दृष्टि से प्रसाद विश्व के महान कवियों के समीप होते हुये भी, किसी बंधी हुई परम्परा का अनुकरण नहीं करते। वास्तव में महान कलाकारों को किसी सीमा अथवा वाद के बन्धनों में नहीं बांधा जा सकता। समग्र मानवता और जीवन उनकी परिधि में आ जाते हैं। उनके लिये जड़ भी चेतन हो उठते हैं। कवि का व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता रहता है। प्रसाद भावना के क्षेत्र में प्रेममूलक कल्पना को लेकर चलते

---

१७. Pushkin and Russian Literature by Janko Lavrin, (Hodder & Stoughton Ltd. London 1947), Page 200.

१८. "There is no reason why two independent poets should not think of the same image or idea quite independently." G. K. Chesterton.

है। उनकी प्रेम -कल्पना साधारण स्वच्छन्दतावादी कलाकारो से आगे बढ जाती है। मानवीय होने के साथ ही उसमें दर्शन और रहस्य का भी योग है, जो आनन्द तक जाता है। अपनी व्यक्तिगत भावनाओ का भी उन्होंने अधिकाधिक प्रसार किया और अनुभूति व्यापक होती गई। महान कलाकारो की भाति उनका व्यक्तित्व विकसित होता गया। वे मानव जीवन के कवि हैं। उसके अन्तरतम की भूख और प्यास से लेकर भौतिक समस्या तथा भावी लक्ष्य तक को वे काव्य में चित्रित करते हैं। भाषा-योजना में प्रसाद परिष्कार अधिक करते हैं। यूरोप के परम्परावादी कलाकारो की भाति उनका शब्द-चयन अधिक परिष्कृत है। मिल्टन और वर्जिल के शब्द विन्यास की भाति वह शिष्ट है। रूपयोजना मे प्रसाद की कल्पनाये सौन्दर्यवादी कलाकारो के समान अत्यन्त मधुर, सजीव होती हुई भी छायात्मक अधिक हुई। उन पर सुन्दर, झीना आवरण सा पडा रहता है। विश्व की महाकाव्य परम्परा मे 'कामायनी' का एक स्वतन्त्र स्वरूप है। महाकवियो ने समय समय पर अपने महाकाव्य से विश्व को एक नवीन सदेश दिया है। युग की विखरी हुई समस्याओ को लेकर उन्होंने अपने महाकाव्य का निर्माण किया। एक और यदि उनमें राष्ट्र और युग की सम्पूर्ण चेतना है, तो साथ ही जीवन के शाश्वत उपादान भी है, जिनसे आनेवाली परम्परा को वल मिलता है। आज कवि किसी ऐसे तत्व की खोज में प्रयत्नशील है जो युग की विभीषिकाओ का समाधान कर सके। 'कामायनी' का प्रेममूलक जीवन दर्शन, आनन्दवाद तथा मानवीय दृष्टिकोण पथ-प्रदर्शन कर सकता है। प्रसाद एक सजग कलाकार के रूप मे सम्मुख आते है। एक ओर यदि राष्ट्रीय चेतना की आवश्यकता थी, तो साथ ही बीसवी शताब्दी का भारत गाधी के रूप मे विश्व की महान विभूति को भी प्रस्तुत कर रहा था। वे राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता दोनो को साथ ही साथ लेकर चल रहे थे। जवाहरलाल नेहरू ने 'भारत की खोज' मे कहा है, कि राष्ट्रीय भावना विकसित होकर सार्वभौमिक वनती जा रही थी[५०]। प्रसाद का कवि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, राष्ट्रीयता तथा मानवीयता को लेकर चलता है। युगसन्धि पर खडे हुये गेटे, पुश्किन, शेली आदि से उनका अधिक साम्य है। वे सास्कृतिक जीवन के प्रतीक है और उनका काव्यात्मक सदेश किसी भी सकुचित सीमा के परे हैं।

---

५० The Discovery of India Page 45-46

परिशिष्ट

प्रसाद-काव्य की मूल चेतना

कवि संदेशवाहक होता है। वह युगों तक अपनी भावनाओं के द्वारा जीवित रहता है और उसकी कृतियों में साहित्य को प्रेरणा तथा विश्व को नव-जीवन प्राप्त होता है। कवि के मन और मस्तिष्क में संसार को देखने के अनन्तर एक विचित्र प्रतिक्रिया होती है, जिसे वह अपनी रचना में प्रकाशित कर देता है। जो कवि जीवन को जितनी अधिक दृढ़ता से पकड़ता है, उसकी कृति उतनी ही अधिक जीवनदायिनी होती है। एक सीमित क्षेत्र में कार्य करने वाला कलाकार इसी कारण समाज के एक विशेष वर्ग का ही मनोरंजन कर सकता है। महान कवियों का चिन्तन व्यापक होता है और वे जीवन की चिरन्तन समस्याओं को लेकर चलते हैं। उनकी विचारधारा संकेत रूप में आगे बढ़ती है और वे इंगित मात्र से ही अपने उद्देश्य की व्यंजना कर देते हैं। काव्य में प्रवाहित कवि की विचारधारा उसका संदेश होती है। कालिदास की सूक्तियाँ प्रसिद्ध हैं, किन्तु इनमें कवि किसी प्रवचन का सहारा नहीं लेता। काव्य की विचारधारा सदा भावना को साथ लेकर चलती है[1]।

प्रसाद का सम्पूर्ण साहित्य एक सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित है। वे युग, देश, समाज और मानव की जिन समस्याओं को उठाते हैं, उनका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि विषय की विस्तृत विवेचना के लिये उन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानी, निबन्ध आदि में गद्य के माध्यम से विचार किया, किन्तु काव्य में भी उनकी मूल चेतना का आभास प्राप्त होता है। प्रसाद की सामाजिक विचारधारा का अधिक स्पष्ट रूप 'कंकाल' और 'तितली' में दिखाई देता है। समाज का नग्न स्वरूप उन्होंने इन उपन्यासों में अंकित किया। धार्मिक आडम्बर, सामाजिक विषमता आदि को उन्होंने स्पष्ट रूप में सामने रखा। नाटकों में प्रसादजी का दृष्टिकोण ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक अधिक है। इतिहास से नाटककार राष्ट्र की खोई हुई चेतना को लौटा लाना चाहते थे। उनका विश्वास था कि इतिहास का पुनर्जागरण राष्ट्रीय उत्थान के लिये आवश्यक है। देश की परम्परा, सभ्यता, और संस्कृति उसे नवजीवन प्रदान करती है। प्रसाद ने सांस्कृतिक पुनरुत्थान का ही प्रयत्न किया। काव्य में उनका दृष्टिकोण दार्शनिक अधिक है। अपने व्यक्तिवादी रूप में भी वे वेदना, करुणा तथा

---

1. The Study of Poetry-by H. W. Garrod, Page 37.

प्रेम दर्शन की अभिव्यक्ति करते हैं। क्रमश एक उच्च भावभूमि पर जाते हुये प्रसाद आत्मवाद, आनन्दवाद तथा आध्यात्मिक भावना को अपनाते हैं। 'कामायनी' का दार्शनिक कलाकार अपनी विचारधारा को आध्यात्मिक कलेवर प्रदान करता है, यद्यपि उसका व्यावहारिक पक्ष प्रवल रहता है। इस प्रकार काव्य में प्रसाद की विचारधारा और मूल चेतना अनेक दिशाओ मे प्रवाहित प्रतीत होती है।

इतिहास और संस्कृति--

इतिहास भविष्य का पथ प्रदर्शन करता है, और कोई भी जाति अपने अतीत पर गर्व करती है। प्रसाद का जन्म उस विपम अवसर पर हुआ था, जव कि पाश्चात्य सभ्यता देश मे अपना प्रभाव डाल रही थी। उन्होने राष्ट्र के इतिहास से उज्ज्वल दृष्टान्त लेकर उन्नत परम्परा सम्मुख रक्खी। नाटको और कहानियो की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है। इतिहास के भग्नावशेषो से उन्होंने कथावस्तु ग्रहण की और उसी के माध्यम से जातीय गौरव स्थापित किया। भरत, कुरुक्षेत्र, महाराणा का महत्व, अशोक की चिन्ता, प्रलय की छाया आदि की प्रेरणा भारतीय इतिहास से ली गई है। दर्शन, अध्यात्म आदि का ग्रहण भी उसमे किया गया। मूलत प्रसाद जी राष्ट्रीय कलाकार हैं, जो इतिहास के अन्वेपण मे प्रयत्नशील हुये। उन्होने एक बिखरी हुई सामग्री का उपयोग किया। नाटको मे भारतीय वैभव को अंकित करने के अतिरिक्त उन्होंने 'कामायनी' की पृष्ठभूमि भी भारतीय इतिहास को बनाया। प्रथम मानव का जन्म इसी वसुन्धरा पर हुआ था। मातृगुप्त के 'भारतगीत' में कवि ने देश के इतिहास को सचित कर देने का प्रयत्न किया। वह कहता है —

हिमालय के आगन में उसे, प्रथम किरणो का दे उपहार
उषा ने हँस अभिनन्दन किया, और पहनाया हीरक हार।

* * *

किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं
हमारी जन्मभूमि थी यही, कहीं से आये थे हम नहीं।

—स्कन्दगुप्त, पृष्ठ १६२

प्रसादजी का विश्वास है कि भारत ही आर्य जाति की जननी है। मूल आर्य सप्तसिन्धु में निवास करते थे। यहीं से वे पूर्व और पश्चिम की दिशाओ मे अग्रसर हुये तथा अपने मतो का प्रचार भी करने गये। सदानीरा के आगे बढ कर पूर्व में जानेवाला दल आत्मवादी था। पश्चिम के आर्या के दो विभागो

का प्रतिनिधित्व क्रमश इन्द्र और वरुण ने किया। आर्यो के आरम्भिक स्वरूप पर विचार करते हुये प्रसाद जी ने लिखा है कि—"आत्मा से आनन्द भोग का, भारतीय आर्यों ने अधिक स्वागत किया[२]।" आर्यों के पूर्वज मनु का निरूपण करने में भी कवि ने इतिहास का ध्यान रक्खा। आधुनिक परिस्थितियों में निर्मित आदिपुरुष का चरित्र उस आर्य की भांति है, जो जीवन से संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ता है। इतिहास के प्रति प्रसाद का मोह इतना अधिक है कि विदेशी बालिका कार्नेलिया भी 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' का गीत गाने लगती है। उसे भी इस देश की भूमि से प्यार हो जाता है। आदिपुरुष मनु को हिमालय के उत्तुंग शिखर पर प्रतिष्ठित कर कवि ने मानसरोवर में सभ्यता का विकास भी दिखला दिया। इतिहास से कवि को अपार सामग्री प्राप्त हुई।

इतिहास के साथ ही भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति भी कवि का अनुराग है। वास्तव में इतिहास, संस्कृति और सभ्यता एक दूसरे के अधिक समीप हैं, और उनमें एक विभाजन रेखा खींच देना कठिन है। इस दृष्टि से प्रसाद में इन सभी का समन्वित स्वरूप देखा जा सकता है। भारतीय इतिहास को प्रकाश में लाने के साथ ही कलाकार ने प्राचीन संस्कृति और सभ्यता को भी नवजीवन प्रदान करने का प्रयत्न किया। एक सांस्कृतिक पुनरुत्थान की रेखायें उनके साहित्य में सब से अधिक बलवती है। देश के इतिहास, संस्कृति के प्रति उन्हें जो मोह था, उसकी अभिव्यंजना के लिये उन्होंने कई अवलम्ब ग्रहण किये। कथावस्तु के अतिरिक्त आदर्श पात्रों की नियोजना भी उन्होंने की। बाबा रामनाथ, दाण्ड्यायन, चाणक्य आदि पात्र संस्कृति के प्रतीक बनकर आये हैं। महाराणा का आदर्श पराक्रम, चाणक्य की अदम्य नीति अपने सम्मुख सभी को नतमस्तक करा लेती है। हिन्दू धर्म से उन्होंने दर्शन का ग्रहण ही अधिक किया और बौद्धों की करुणा, शैवागम का प्रत्यभिज्ञादर्शन भी उनके काव्य में स्पष्ट दिखाई देते हैं। प्रसादजी देश की वास्तविक सांस्कृतिक प्रतिष्ठा में प्रयत्नशील प्रतीत होते हैं। वे भारतीय आत्मवाद तथा सार्वभौमिकता के ही पक्षपाती हैं। सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक मनु का चित्र प्रस्तुत करते हुए उन्होंने उसमें 'स्वस्थ रक्त' को प्रवाहित किया। कामायनी में मानव संस्कृति की विजय घोषित की गई है।

दार्शनिक प्रवृत्तियां

प्रसाद की दार्शनिक प्रवृत्तियां क्रमशः विकसित हुई हैं। उन्होंने

---

२. काव्य और कला, पृष्ठ २०

समस्याओ के मूल में जाकर उन पर विचार किया। अपने गहन अध्ययन, चिन्तन और मनन से वे जिन निष्कर्षो पर पहुँचे थे, उन्हें काव्य में प्रकाशित कर दिया। मनुष्य और जीवन को एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में उन्होने स्वीकार किया। प्रसाद को उपनिषद् दर्शन ने अधिक प्रभावित किया। 'चित्राधार' में प्राप्त होने वाली जिज्ञासाओ मे दर्शन के प्रति कवि का कुतूहल प्रतीत होता है। प्रकृति के विभिन्न क्रियाव्यापारो के पीछे कौन सी शक्ति कार्य करती है ? मनु ने प्रलय के अनन्तर इसी आकुलता से अनेक प्रश्न किये थे। जीवन और जगत, प्रकृति और पुरुष के प्रति जिज्ञासा की इस भावना का उत्तर दर्शन से ही प्राप्त होता है। समस्त जगत और प्रकृति चिरन्तन शक्ति की छाया मात्र है। अणु-अणु में उसकी सत्ता व्याप्त है। श्रद्धा कहती है—

'चिति का स्वरूप यह नित्य जगत'

ससार विश्वात्मा की अभिव्यक्ति मात्र है। वह उसके महान व्यक्तित्व का प्रकाशन है। जीवन के कण कण में आनन्द खोजकर उसी में अपने अस्तित्व को विलीन कर देना ही श्रेयस्कर है। उपनिषदो में अद्वैत भावना का प्रतिपादन वडे जोर से किया गया है। प्रसाद भी भेद-भाव की सराहना नही करते। 'प्रेम-पथिक' में दोनो प्रणयी जव एक दूसरे में अपनी सत्ता विलीन कर देते है, तो विरह का दुख भी नही प्रतीत होता। 'अह' और 'इद' का समन्वय ही आनन्द का सृजन करता है। जव तक मनु अपने व्यक्तिवाद को लेकर इधर-उधर भटकता रहता है, उसे परितोप नही होता। अन्त में अद्वैत भावना से ही वह आनन्द प्राप्त करता है। उपनिषदो की अद्वैत भावना ही मनु के इन शब्दो मे साकार हो उठी है—

अपना ही अणु अणु कण कण
द्वयता ही तो विस्मृति है।

—कामायनी, पृष्ठ २८९

उपनिपदो की अद्वैत भावना की भाति प्रसाद ने शैवागम से समरसता को भी ग्रहण किया। जीवन मे समन्वय की नितान्त आवश्यकता है। विरोधी शक्तिया आपस में सघर्ष करती हुई अपनी शक्ति नष्ट करती रहती है। इनको एक ही ओर नियोजित करने मे जीवन सुखी हो सकता है। प्रसाद ने अपने समस्त साहित्य में इसी समन्वय दृष्टि अथवा समरसता की भावना से काम लिया। श्रद्धा इच्छा, क्रिया, ज्ञान में समन्वय स्थापित कर देती है और तभी आनन्द की उत्पत्ति होती है। प्राचीन दर्शन का सत, रज, तम इसी अवसर पर समन्वित हो जाता है। 'कामायनी' के अलग अलग चित्रण

मे तीनों लोक अपूर्ण प्रतीत होते है, किन्तु समन्वित होते ही उनका रूप मंगलकारी हो जाता है। समरसता के व्यावहारिक पक्ष से कवि ने जीवन की अधिकांश समस्याओं को सुलझाया। आनन्द की कल्पना प्रसाद को शैवागम मे प्राप्त हुई। समस्त सृष्टि मे व्याप्त शिवतत्व को ग्रहण कर लेने पर प्रत्येक प्राणी आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। विश्व शिव का ही प्रसाद है और उसी के ताण्डव नर्त्तन से सम्पूर्ण स्वाप, ताप भस्म हो जाते है .—

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो
इच्छा, ज्ञान, क्रिया मिल लय थे।

—कामायनी, पृ० २७३

व्यष्टि का समष्टि मे पर्यवसान तथा व्यक्तित्व का अधिकाधिक प्रसार शैव दर्शन का ही व्यावहारिक रूप है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की पारदर्शिनी पुतलियां मनुष्य को भ्रम में डाल देती है। मानव शिव की कृपा से ही इनसे मुक्ति प्राप्त कर सकता है। शैवागमो से समरसता, शक्ति-भावना तथा आनन्दवाद की प्रेरणा प्रसाद को प्राप्त हुई और उन्होंने काव्य की सरस कल्पना से उसे व्यक्त किया। 'इरावती' मे उन्होंने स्पष्ट कहा कि 'अवसाद को आर्यजाति से हटाने के लिये आनन्दवाद की प्रतिष्ठा करनी होगी[१]।'

'लहर' मे बौद्ध दर्शन से सम्बन्धित कई कवितायें है। 'अजातशत्रु' मे भी गौतमबुद्ध का चरित्र आया है। बौद्धो के करुणादर्शन से प्रसाद विशेष प्रभावित प्रतीत होते है। बौद्ध प्रत्येक वस्तु को क्षणिक, नाशवान और दुखमय मानते है। वे प्राणिमात्र पर दया करने का सदेश देते है। 'आंसू' में करुणादर्शन एक स्वतन्त्र चिन्तन पर अवलम्बित है किन्तु उसमे बौद्धो की करुणा का प्रभाव अवश्य है। प्रणयी अपनी करुणा और वेदना की सकुचित सीमा से बाहर निकल कर विश्व भर मे आंसू बरसाने लगता है। 'अजातशत्रु' की वासवी भी कहती है .—

मानव-हृदय भूमि करुणा से सींच कर
बोधन-विवेक-बीज अंकुरित कीजिये।

—अजातशत्रु, पृष्ठ ९१

'करुणालय' में जिस करुणा की भावना के बीज निहित है, उसी का पूर्ण विकास 'अजातशत्रु' मे हुआ। 'अशोक की चिन्ता' कविता का मूल स्वर भी

---

१. 'इरावती', पृष्ठ २७

समस्याओ के मूल में जाकर उन पर विचार किया। अपने गहन अध्ययन, चिन्तन और मनन से वे जिन निष्कर्षो पर पहुँचे थे, उन्हें काव्य में प्रकाशित कर दिया। मनुष्य और जीवन को एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में उन्होने स्वीकार किया। प्रसाद को उपनिपद् दर्शन ने अधिक प्रभावित किया। 'चित्राधार' में प्राप्त होने वाली जिज्ञासाओ में दर्शन के प्रति कवि का कुतूहल प्रतीत होता है। प्रकृति के विभिन्न क्रियाव्यापारो के पीछे कौन सी शक्ति कार्य करती है ? मनु ने प्रलय के अनन्तर इसी आकुलता से अनेक प्रश्न किये थे। जीवन और जगत, प्रकृति और पुरुष के प्रति जिज्ञासा की इस भावना का उत्तर दर्शन से ही प्राप्त होता है। समस्त जगत और प्रकृति चिरन्तन शक्ति की छाया मात्र है। अणु-अणु मे उसकी सत्ता व्याप्त है। श्रद्धा कहती है—

'चिति का स्वरूप यह नित्य जगत'

ससार विश्वात्मा की अभिव्यक्ति मात्र है। वह उसके महान व्यक्तित्व का प्रकाशन है। जीवन के कण कण में आनन्द खोजकर उसी में अपने अस्तित्व को विलीन कर देना ही श्रेयस्कर है। उपनिपदो में अद्वैत भावना का प्रतिपादन वडे जोर से किया गया है। प्रसाद भी भेद-भाव की सराहना नही करते। 'प्रेम-पथिक' में दोनो प्रणयी जब एक दूसरे में अपनी सत्ता विलीन कर देते है, तो विरह का दुख भी नही प्रतीत होता। 'अह' और 'इद' का समन्वय ही आनन्द का सृजन करता है। जब तक मनु अपने व्यक्तिवाद को लेकर इधर-उधर भटकता रहता है, उसे परितोप नही होता। अन्त में अद्वैत भावना से ही वह आनन्द प्राप्त करता है। उपनिषदो की अद्वैत भावना ही मनु के इन शब्दो में साकार हो उठी है—

अपना ही अणु अणु कण कण
द्वयता ही तो विस्मृति है।

—कामायनी, पृष्ठ २८९

उपनिपदो की अद्वैत भावना की भाति प्रसाद ने शैवागम से समरसता को भी ग्रहण किया। जीवन मे समन्वय की नितान्त आवश्यकता है। विरोधी शक्तिया आपस मे सघर्प करती हुई अपनी शक्ति नप्ट करती रहती है। इनको एक ही ओर नियोजित करने से जीवन सुखी हो सकता है। प्रसाद ने अपने समस्त साहित्य में इसी समन्वय दृप्टि अथवा समरसता की भावना से काम लिया। श्रद्धा इच्छा, क्रिया, ज्ञान में समन्वय स्थापित कर देती है और तभी आनन्द की उत्पत्ति होती है। प्राचीन दर्शन का सत, रज, तम इसी अवसर पर समन्वित हो जाता है। 'कामायनी' के अलग अलग चित्रण

मे तीनो लोक अपूर्ण प्रतीत होते है, किन्तु समन्वित होते ही उनका रूप मगलकारी हो जाता है। समरसता के व्यावहारिक पक्ष से कवि ने जीवन की अधिकाश समस्याओं को सुलझाया। आनन्द की कल्पना प्रसाद को शैवागम से प्राप्त हुई। समस्त सृष्टि में व्याप्त शिवतत्व को ग्रहण कर लेने पर प्रत्येक प्राणी आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। विश्व शिव का ही प्रसाद है और उसी के ताण्डव नर्त्तन से सम्पूर्ण स्वाप, ताप भस्म हो जाते है :—

> स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो
> इच्छा, ज्ञान, क्रिया मिल लय थे।
>
> —कामायनी, पृ० २७३

व्यष्टि का समष्टि मे पर्यवसान तथा व्यक्तित्व का अधिकाधिक प्रसार शैव दर्शन का ही व्यावहारिक रूप है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की पारदर्शिनी पुतलिया मनुष्य को भ्रम में डाल देती है। मानव शिव की कृपा से ही इनसे मुक्ति प्राप्त कर सकता है। शैवागमो से समरसता, शक्ति-भावना तथा आनन्दवाद की प्रेरणा प्रसाद को प्राप्त हुई और उन्होने काव्य की चरम कल्पना मे उसे व्यक्त किया। 'इरावती' में उन्होने स्पष्ट कहा कि 'अवसान को आर्यजाति से हटाने के लिये आनन्दवाद की प्रतिष्ठा करनी होगी[३]।'

'लहर' मे बौद्ध दर्शन से सम्बन्धित कई कवितायें है। 'अजातशत्रु' में भी गौतमबुद्ध का चरित्र आया है। बौद्धो के करुणादर्शन से प्रसाद विशेष प्रभावित प्रतीत होते है। बौद्ध प्रत्येक वस्तु को क्षणिक, नाशवान और दुखमय मानते है। वे प्राणिमात्र पर दया करने का सदेश देते है। 'आसू' में करुणादर्शन एक स्वतन्त्र चिन्तन पर अवलम्बित है, किन्तु उसमे बौद्धो की करुणा का प्रभाव अवश्य है। प्रणयी अपनी करुणा और वेदना की सकुचित सीमा से बाहर निकल कर विश्व भर मे आसू बरसाने लगता है। 'अजातशत्रु' की वासवी भी कहती है :—

> मानव-हृदय भूमि करुणा से सींच कर
> बोधन-विवेक-बीज अंकुरित कीजिये।
>
> —अजातशत्रु, पृष्ठ [illegible]

'करुणालय' में जिस करुणा की भावना के बीज निहित है, उसी का पूर्ण विकास 'अजातशत्रु' में हुआ। 'अशोक की चिन्ता' कविता का मूल स्वर भी

---

३. 'इरावती', पृष्ठ २७

समस्याओ के मूल में जाकर उन पर विचार किया। अपने गहन अध्ययन, चिन्तन और मनन से वे जिन निष्कर्षो पर पहुँचे थे, उन्हें काव्य में प्रकाशित कर दिया। मनुष्य और जीवन को एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में उन्होने स्वीकार किया। प्रसाद को उपनिषद् दर्शन ने अधिक प्रभावित किया। 'चित्राधार' में प्राप्त होने वाली जिज्ञासाओ में दर्शन के प्रति कवि का कुतूहल प्रतीत होता है। प्रकृति के विभिन्न क्रियाव्यापारो के पीछे कौन सी शक्ति कार्य करती है? मनु ने प्रलय के अनन्तर इसी आकुलता से अनेक प्रश्न किये थे। जीवन और जगत, प्रकृति और पुरुष के प्रति जिज्ञासा की इस भावना का उत्तर दर्शन से ही प्राप्त होता है। समस्त जगत और प्रकृति चिरन्तन शक्ति की छाया मात्र है। अणु-अणु मे उसकी सत्ता व्याप्त है। श्रद्धा कहती है—

'चिति का स्वरूप यह नित्य जगत'

ससार विश्वात्मा की अभिव्यक्ति मात्र है। वह उसके महान व्यक्तित्व का प्रकाशन है। जीवन के कण कण में आनन्द खोजकर उसी में अपने अस्तित्व को विलीन कर देना ही श्रेयस्कर है। उपनिषदो में अद्वैत भावना का प्रतिपादन वडे जोर से किया गया है। प्रसाद भी भेद-भाव की सराहना नही करते। 'प्रेम-पथिक' में दोनो प्रणयी जव एक दूसरे में अपनी सत्ता विलीन कर देते है, तो विरह का दुख भी नही प्रतीत होता। 'अह' और 'इद' का समन्वय ही आनन्द का सृजन करता है। जव तक मनु अपने व्यक्तिवाद को लेकर इधर-उधर भटकता रहता है, उसे परितोप नही होता। अन्त में अद्वैत भावना से ही वह आनन्द प्राप्त करता है। उपनिपदो की अद्वैत भावना ही मनु के इन शब्दो में साकार हो उठी है—

अपना ही अणु अणु कण कण
द्वयता ही तो विस्मृति है।

—कामायनी, पृष्ठ २८९

उपनिपदो की अद्वैत भावना की भाति प्रसाद ने शैवागम से समरसता को भी ग्रहण किया। जीवन मे समन्वय की नितान्त आवश्यकता है। विरोधी शक्तिया आपस मे सघर्प करती हुई अपनी शक्ति नप्ट करती रहती है। इनको एक ही ओर नियोजित करने मे जीवन सुखी हो सकता है। प्रसाद ने अपने समस्त साहित्य मे इसी समन्वय दृप्टि अथवा समरसता की भावना से काम लिया। श्रद्धा इच्छा, क्रिया, ज्ञान में समन्वय स्थापित कर देती है और तभी आनन्द की उत्पत्ति होती है। प्राचीन दर्शन का सत, रज, तम इसी अवसर पर समन्वित हो जाता है। 'कामायनी' के अलग अलग चित्रण

में तीनों लोक अपूर्ण प्रतीत होते हैं, किन्तु समन्वित होते ही उनका रूप मंगलकारी हो जाता है। समरसता के व्यावहारिक पक्ष से कवि ने जीवन की अधिकांश समस्याओं को सुलझाया। आनन्द की कल्पना प्रसाद को शैवागम से प्राप्त हुई। समस्त सृष्टि मे व्याप्त शिवतत्व को ग्रहण कर लेने पर प्रत्येक प्राणी आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। विश्व शिव का ही प्रसाद है और उसी के ताण्डव नर्त्तन से सम्पूर्ण स्वाप, ताप भस्म हो जाते हैं :—

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो
इच्छा, ज्ञान, क्रिया मिल लय थे।

—कामायनी, पृ० २७३

व्यष्टि का समष्टि में पर्यवसान तथा व्यक्तित्व का अधिकाधिक प्रसार शैव दर्शन का ही व्यावहारिक रूप है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की पारदर्शिनी पुतलियां मनुष्य को भ्रम में डाल देती हैं। मानव शिव की कृपा से ही इनसे मुक्ति प्राप्त कर सकता है। शैवागमों से समरसता शक्ति-भावना तथा आनन्दवाद की प्रेरणा प्रसाद को प्राप्त हुई और उन्होंने काव्य की सरस कल्पना में उसे व्यक्त किया। 'इरावती' में उन्होंने स्पष्ट कहा कि 'अवसान को आर्यजाति से हटाने के लिये आनन्दवाद की प्रतिष्ठा करनी होगी[१]।'

'लहर' में बौद्ध दर्शन से सम्बन्धित कई कवितायें हैं। 'अजातशत्रु' में भी गौतमबुद्ध का चरित्र आया है। बौद्धों के करुणादर्शन से प्रसाद विशेष प्रभावित प्रतीत होते हैं। बौद्ध प्रत्येक वस्तु को क्षणिक, नाशवान और दुःखमय मानते हैं। वे प्राणिमात्र पर दया करने का संदेश देते हैं। 'आंसू' में करुणादर्शन एक स्वतन्त्र चिन्तन पर अवलम्बित है किन्तु उसमें बौद्धों की करुणा का प्रभाव अवश्य है। प्रणयी अपनी करुणा और वेदना की संकुचित सीमा से बाहर निकल कर विश्व भर में आंसू बरसाने लगता है। 'अजातशत्रु' की वासवी भी कहती है :—

मानव-हृदय भूमि करुणा से सींच कर
बोधन-विवेक-बीज अंकुरित कीजिये।

—अजातशत्रु, पृष्ठ ९१

'करुणालय' में जिस करुणा की भावना के बीज निहित हैं, उसी का पूर्ण विकास 'अजातशत्रु' में हुआ। 'अशोक की चिन्ता' कविता का मूल स्वर भी

---

१. 'इरावती', पृष्ठ २७

बौद्धदर्शन से प्रभावित है। कोमल भावनाओ को अपने चिन्तन में स्थान देने के कारण प्रसाद ने करुणा को विशेष महत्व दिया।

प्रसाद के काव्य में किसी धार्मिक सिद्धान्त का प्रतिपादन अथवा प्रचार नही है। उन्होने किसी साम्प्रदायिक वातावरण में कार्य नही किया। विभिन्न दर्शनो से अपने चिन्तन पक्ष को प्रौढ करते हुये वे क्रमश आगे बढे। उनका आध्या- त्मवादी दृष्टिकोण भी स्वच्छ और सजग है तथा उसमें किसी प्रकार की पलायनवादिता नही दिखाई देती। प्रसाद जीवन को एक सग्राम के रूप मे स्वीकार करते है। आपत्तियो से हार जाना कायरता है। किन्तु चिन्तनशील कलाकार इस भौतिक परिधि से आगे बढता हुआ भी दिखाई देता। जीवन को एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में स्वीकार करना ही अधिक उचित है। श्रद्धा इसी 'भूमा' की चर्चा करते हुये मनु से कहती है —

> यही दुख सुख विकास का सत्य
> यही भूमा का मधुमय दान।
>
> —कामायनी, पृष्ठ ५४

आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध पर विचार करते हुये प्रसाद ने उसके व्याव-हारिक पक्ष को अधिक गहण किया। वे वैराग्य अथवा निवृति के पक्षपाती नही हे, वरन् जीवन मे कर्म को ही प्रधानता देते है और इस दृष्टि से गीता के कर्म-वाद के अधिक समीप है। कर्म की परिभापा करते हुये प्रसादजी ने 'निष्काम कम' को प्रतिष्टित नही किया। वे कर्म के व्यापक प्रसार पर जोर देते है, जिसके अन्तर्गत समस्त मानवता आ जाती है। काम की व्यापक परिभापा के मल मे भी उनका यही उद्देश्य है। उन्होने वैदिक काल के भव्य रूप को पुन प्रति-ष्ठित किया।

प्रेम-कल्पना—

प्रसाद मलत प्रेम और सौन्दर्य के कलाकार है। आदि से अन्त तक उनके साहित्य मे प्रेम का स्वर थिरकता रहता है। प्रेम का स्वच्छन्द रूप कवि ने गहण किया, इसी कारण वह साधारण स्वच्छन्दतावादी कवियो से एक पृथक भाव-भमि पर पहुच जाता है। प्रसाद का प्रेम अशरीरी, अतीन्द्रिय और निमल है। 'आंसू' मे अपनी व्यक्तिगत भावनाओं का प्रकाशन करते हुये भी वे किसी ऐसे धरातल पर नही आ जाते जहा प्रणय केवल दो व्यक्तियो के मध्य उलझकर रह जाता है। प्रेम के प्रति व्यापक दृष्टिकोण ही कवि को सतत गति-मान करता रहता है। अपनी प्रेम कल्पना को प्रसाद ने दर्शन के योग से और

भी प्राजल बना दिया। 'प्रेमपथिक' में प्रेम का आदर्श रूप प्रस्तुत करते हुये कवि कहता है—

> किन्तु न परिमित करो प्रेम,
> सौहार्द, विश्वव्यापी कर दो ।
>
> —प्रेमपथिक, पृष्ठ २४

व्यक्ति का व्यक्ति से प्रेम केवल एक शारीरिक आकर्षण अथवा वासना के आधार पर कवि ने चित्रित नहीं किया। प्रेम तो दो हृदयों का मधुर मिलन है, जिसमें एक दूसरे का व्यक्तित्व अपनी पृथक सत्ता खो देता है। प्रेम के साथ ही प्रसाद सौन्दर्य को भी 'चेतना का उज्ज्वल वरदान' मानते हैं। प्रेम के प्रति इस उदात्त कल्पना के कारण ही प्रणयी जीवन की उच्चतम भावभूमि तक चला जाता है। व्यक्ति से आरम्भ होकर यह प्रेम भावना मानव तक प्रसरित होती है। प्रेम साधारण प्रणय की भांति नहीं है, जो केवल दो प्राणियों के बीच की वस्तु बन जाता है, किन्तु उसका क्षेत्र असीम है। मनु को प्रेम करने वाली श्रद्धा सम्पूर्ण मानवता के कल्याण की कामना करती है। प्रेम कल्पना में मनोविज्ञान और दर्शन से भी प्रसाद जी ने सहायता ली और उसे आदर्श रूप में चित्रित किया।

नारी-पुरुष की समस्या चिरन्तन है। आधुनिक युग में उसका स्वरूप और भी जटिल हो गया। प्रसाद जी पुरुष को किंचित कठोर और नारी को कोमल भावनाओं की प्रतिमूर्ति भी मान लेते हैं। नारी-रूप का अंकन करने में उनका दृष्टिकोण एक आदर्शवादी कलाकार का सा रहा है। नारी को उन्होंने एक उच्च स्थान दिया। श्रद्धा, देवसेना आदि नारियों का चरित्र अत्यन्त महान है। वे अपने प्रत्येक स्वरूप में विजय प्राप्त करती हैं और आकर्षण का केन्द्र बन जाती हैं। मनु का समस्त पौरुष श्रद्धा के चरणों पर नत-शिर सा दिखाई देता है। [illegible] —

सर्वोत्कृष्ट स्वरूप 'माता' का है, जिसमें उसका प्रेम विस्तृत हो जाता है। नारी-पुरुष की समस्या को एक चिरन्तन प्रश्न के रूप में प्रसादजी ने स्वीकार किया और उसका उत्तर दिया।

राष्ट्रीयता और मानवीयता

भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रति अनुराग के मूल में प्रसादजी की राष्ट्रीय भावना कार्य करती है। वे एक ऐसे युग में उत्पन्न हुये थे, जब कि देश दासता के बन्धनो से मुक्त होने का प्रयत्न कर रहा था। अन्य कलाकारो की भांति उन्होने भी इसमे सहयोग दिया। उनकी भावना साधारण राष्ट्रीयतावादी कवि से किंचित भिन्न है। मैथिलीशरण गुप्त में देश की राष्ट्रीयता का स्पष्ट स्वरूप प्राप्त होता है। प्रसाद का दृष्टिकोण सांस्कृतिक अधिक है। वे किसी क्रान्तिकारी कवि की भाति उद्बोधन गीत नही गाने लगते, किन्तु क्रमश एक ऐसी परिस्थिति की योजना करते है, जिसमें राष्ट्र की संस्कृति और परम्परा का चित्र हो। 'स्कन्दगुप्त' मे मातृगुप्त ने जो राष्ट्रीय गान गाया है, उसमें भी कवि ने देश के एक दीर्घ इतिहास को लिपिबद्ध करने का ही प्रयास किया। नाटको में राष्ट्रीय भावना अवश्य अधिक प्रत्यक्ष रूप मे प्रस्तुत हुई, किन्तु काव्य में वह सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर सांकेतिक रूप मे आई। उनका स्वर रवीन्द्र के अधिक समीप है।

प्रसाद की सम्पूर्ण व्यापक विचारधारा के पीछे उनका मानवीय स्वर है। जीवन के शाश्वत और चिरन्तन उपादानो को लेकर ही उन्होने काव्य का निर्माण किया। महान कलाकार जीवन के जिन अंशो का अंकन करते है, वे विविध और चिरन्तन होते है। समाज और युग परिवर्तित हो जाते है, किन्तु मानवीय भावनाओ में क्रान्तिकारी अन्तर नही आता। सुख-दुख, प्रेम-घृणा, जीवन-मरण आदि की भावनाये बनी ही रहती है। जो कलाकार जितना ही अधिक महान होता है, वह जीवन की उतनी ही विस्तृत समस्याओ पर विचार करता है। प्रसाद भी मानव को सर्वोपरि स्वीकार करते है। मनु मानवता का ही प्रतीक है। उसकी आन्तरिक भावनायें व्यक्तिगत न होकर समाजगत है। वे मानव-मन का प्रतिनिधित्व करती है और उनमे जीवन की विविधता है। श्रद्धा के द्वारा कवि ने मनु को जो जागृत संदेश सुनवाया, वह समस्त पथभ्रष्ट का मानवता का पथ प्रदर्शन कर सकता है। कवि का कथन है—

यह नीड मनोहर कृतियो का
यह विश्व कर्म-रंगस्थल है

है परम्परा लग रही यहा
ठहरा जिसमें जितना बल है ।

प्रसाद जो सदेश देते है, वह सम्पूर्ण मानवता के लिये होता है । 'कामायनी' महाकाव्य मे उनका मानवतावाद अपने अत्यन्त प्राजल रूप मे आया है । सर्वत्र मानवता के लिये अनेक मगलमय सदेश मिलते है । 'इडा' और 'सघर्ष' सर्गों मे आधुनिक वैज्ञानिकता, भौतिकवाद और विषमता का चित्रण कवि ने किया है । वह इससे मुक्ति पाने का उपाय भी प्रस्तुत करता है और समरसता का मार्ग दिखाता है । श्रद्धा मनु को समझाती है कि दूसरो को हँसते देखकर सदा प्रसन्न रहो । सब कुछ अपने मे भरकर मनुष्य व्यक्तित्व का विकास नही कर सकता । वसुधा मे करुणा का प्रसार ही वास्तविक सुख-सन्तोष है । इस दृष्टि से प्रसाद किंचित प्रगतिशील है । मार्क्सवादी आलोचक जार्ज थाम्पसन ने आधुनिक कविता की आलोचना करते हुये लिखा है कि वह अत्यधिक व्यक्तिवादी हो गई है और उसने जीवन के स्रोत से अपना सम्पर्क ही खो दिया है ।[8] महान कवियो की भाति प्रसाद का काव्य जीवन से अनुप्राणित है और जीवन की अभिव्यक्ति ही उसका उद्देश्य है ।

प्रसाद-काव्य की चेतना अपने युग, समाज और इतिहास से प्रभावित है । प्रसाद एक जागरूक कलाकार है और परिस्थिति की अवहेलना नही करते । उन्होने एक व्यापक रगमच पर कार्य किया और बिखरी हुई सामग्री को एक सूत्र मे बाधने का प्रयास करते हुये उन्हे देखा जा सकता है । विश्व के महान कलाकारो के समीप उनके सम्पूर्ण कृतित्व को रखने से प्रतीत होता है कि प्रसाद की प्रवृत्तिया श्रेष्ठ निर्माता की सी है और उनमें मानव-मूल्य है । उनके साहित्य मे समाज, देश, सस्कृति दर्शन आदि अनेक विषयो पर अनन्य विचार बिखरे हुये मिलते है, जिनसे उनकी महान चिन्तन-प्रतिभा का आभास प्राप्त होता है ।

———

८ Marxism and Poetry—Page 58.

उपसंहार

कवि और काव्य का मूल्यांकन इस आधार पर होता है कि युग तथा साहित्य को उनकी देन क्या है। कवि ने अपनी रचना में किन शाश्वत भावनाओं को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। जो कलाकार जीवन के अधिकाधिक पक्षों का अंकन करता है, उसे एक व्यापक दृष्टि रखनी पड़ती है। महान कवि एक विस्तृत भूमि पर कार्य करते हैं। वे जीवन का कोना-कोना झांक डालते हैं और उनकी कल्पना जड़-चेतन, पशु-पक्षी सभी को अपनी सीमा में ले आती है। अपनी प्रतिभा के सहारे वे व्यापक भावना का प्रकाशन भी अत्यन्त सफलतापूर्वक करते हैं। उनकी शैली अपने लक्ष्य का प्रतिपादन कुशलता से कर लेती है। कवि और अन्य साधारण लेखक के विषय-प्रकाशन में अन्तर होता है। कवि एक सांकेतिक कलाकार है, वह केवल निर्देश कर देता है, अधिक व्याख्या का उसे अवसर नहीं। 'काव्यप्रकाश' के अनुसार ध्वनि काव्य ही अधिक उत्तम होता है[1]। कवि को एक साधारण रंगमंच पर केवल भावना और भाषा से ही चित्र का निर्माण करना पड़ता है। अनुभूति का सत्य, भावना की सफल अभिव्यक्ति, युग-चेतना का ग्रहण और स्वस्थ जीवन दर्शन, कवि की महानता के परिचायक हैं।

आरम्भिक चरण--

प्रसाद का काव्य-निर्माण एक क्रमिक विकास के रूप में हुआ। वे स्वच्छन्दतावादी कलाकारों की भांति न थे जो अपने प्रथम विद्रोही स्वर में ही साहित्य की प्रचलित परम्परा को प्रकम्पित कर देते हैं। प्रसादजी क्रियाशील रचनाकार हैं। उन्होंने क्रमशः अपने लक्ष्य तक जाने का प्रयास किया और उनका प्रत्येक चरण एक नई कला का सूचक है। उन्होंने अपनी प्रतिभा को उत्तरोत्तर विकसित किया, और समस्त अध्ययन सामग्री का उपयोग करते गये। 'चित्राधार' का कवि रीतिकालीन परम्परा से प्रभावित है। रसाल, चन्द्रोदय, शारदीय शोभा आदि विषय प्राचीन ही हैं। आख्यानक कविताओं की विषय-सामग्री भी कालिदास आदि से प्राप्त की गई है। प्रसाद इस अवसर पर किसी आदर्श की खोज करते दिखाई देते हैं। साथ ही उनकी अभिरुचि

---

1 'इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथितः'

—काव्यप्रकाश।

नवीन वस्तुओ की ओर भी है। विसर्जन, कल्पना-सुख, नीरव प्रेम आदि कवितायें उनकी नई दिशा का सूचक है। आरम्भ में ही प्रसाद को भावना और अनुभूति को अधिक दृढता से ग्रहण करते देखा जा सकता है। वे जिस आधारभूमि पर खडे है, उसका क्षेत्र सीमित नही है और कवि में जिज्ञासा की भावना उसे आगे की ओर ले जाती है। वह प्रत्येक वस्तु के रहस्य को जानने के लिये आकुल है। आख्यानक कविताओ में भी वस्तु वर्णन की अपेक्षा भावना की ओर अधिक ध्यान दिया गया। प्रसाद के आरम्भिक चरण में ही उनके व्यक्तित्व का पूर्ण परिचय नही प्राप्त होता किन्तु उसमें विकास की रेखाये अवश्य निहित है।

'कानन कुसुम' का कवि भाव, भाषा, छन्द सभी दृष्टियो से अधिक स्वतन्त्र हो जाता है। 'इसमे रगीन और सादे, सुगन्धवाले और निर्गन्ध, मकरन्द से भरे हुये, पराग मे लिपटे हुये सभी तरह के कुसुम है[२]।' इसमे कवि ने कई प्रकार के प्रयोग किये, जिन्हे आगे चलकर उसने विकसित किया। नमस्कार, करुणाकुज, मर्मकथा, हृदयवेदना, सौन्दर्य, एकान्त, रमणी हृदय आदि अनेक ऐसे विषय है, जिन्हे छायावाद की प्रमुख वस्तु कहा जा सकता है। किन्तु इन नवीन विषयो के अतिरिक्त निशीथ नदी, जलविहारिणी आदि में प्राचीनता का प्रभाव है। 'कानन कुसुम' का कवि अपने व्यक्तित्व के निर्माण मे प्रयत्नशील है। भावनाओ मे आन्तरिक अनुभृति का प्रवेश हो रहा है और व्यक्तिगत अश भी उसमे दिखाई देने लगता है। कवि का 'मानस युद्ध' व्यक्त हो उठा है और वह उसकी भावुकता को और भी उद्दीप्त कर देता है। 'रमणी-हृदय' की विवेचना के साथ ही प्रेम की उदात्त परिभाषा भी प्राप्त होती है। प्रकृति और मानवीय भावनाओ के तादात्म्य का आरम्भ भी इसी अवसर पर हुआ और अन्त मे कवि की यह कल्पना एक जीवन दर्शन मे प्रस्तुत हुई। प्रकृति के कण कण मे किसी अज्ञात प्रियतम का आभास दार्शनिक प्रवृत्तियो का समावेश कराता है। कवि का कथन है—

> निस्तब्धता ससार की उस पूर्ण से है मिल रही—
> पर जड प्रकृति सब जीव ने सब ओर ही अनमिल रही।
>
> 'एकान्त में', काननकुसुम, पृष्ठ ५३

'काननकुसुम' की आख्यानक कविताओ की प्रेरणा यद्यपि प्रसादजी को प्राचीन ग्रथो से प्राप्त हुई तथापि उनमे उन्होने अपनी मौलिक उद्भावनाओ

---

२. 'कानन-कुसुम' की भूमिका में प्रसाद।

को प्रकाशित किया। 'चित्रकूट' में उन्हें अधिक सफलता प्राप्त हुई। भाषा का सुन्दर चयन और नवीन कल्पना उसमें स्पष्ट दिखाई देते हैं। 'पानी में कुमुदिनीनाथ का उदय रत्नाकर के सुधा-कलश अथवा मन में धीरे-धीरे उठनेवाली नई आशा की भाँति है।' चित्र निर्माण की कुशलता भी इस कविता में प्राप्त होती है। राम के अंक में सोती हुई जानकी का दृश्य, तथा प्रभात वर्णन कवि ने किया—

> नील गगन सम राम, अहा अंक में चन्द्रमुख
>
> अनुपम शोभाधाम, आभूषण थे तारका।
>
> * * *
>
> कलियाँ कुसुम की थी लजाई प्रथम स्पर्श शरीर से
>
> चिटकी बहुत जब छेड़ छाड़ हुआ समीर अधीर से

'कानन-कुसुम' में सवैया, कवित्त के स्थान पर नवीन छन्दों को अपनाया गया। इस प्रकार कवि नव निर्माण में प्रयत्नशील दिखाई देता है।

आख्यानक कविता—

प्रसादजी आरम्भ से ही आख्यानक कविताओं की ओर उन्मुख रहे होते हैं। प्रेमपथिक, महाराणा का महत्व, करुणालय आदि में उन्होंने विस्तृत प्रयोग किये। कवि का लक्ष्य साधारण आख्यानक काव्यों की भाँति किसी कथा का वर्णन नहीं है, किन्तु उनके द्वारा उसने अपनी शैली का परिष्कार किया। कथा भावों को गति देने का कार्य भी करती है। इन आख्यानक कविताओं में कवि को भाव-प्रदर्शन में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। 'प्रेमपथिक' में प्रेम के विराट और भव्य रूप का अंकन किया गया। कवि का यह प्रेम दर्शन क्रमशः गतिमान होता जाता है। 'करुणालय' में करुणा की भावना को महत्व प्राप्त हुआ। यही करुणा क्रमशः व्यापक होती जाती है और बौद्ध दर्शन से मिलकर स्वतन्त्र विचारधारा की नियोजना करता है। 'महाराणा का महत्व' में भारत के स्वतन्त्र सेनानी का चरित्र चित्रण किया गया है। कवि का दृष्टिकोण इस अवसर पर आदर्शवादी हो गया। अतुकान्त छन्दों में लिखी गई ये आख्यानक कविताएँ कवि के लिये एक प्रयोगशाला और पृष्ठभूमि का कार्य करती हैं, जिनसे आगे चलकर वह 'कामायनी' के निर्माण में सफल हो सका। इनमें प्रबन्धकार की कला का यद्यपि अभाव है, किन्तु भाव-व्यंजना में किसी प्रकार [illegible] की सरसता मिल जाती है।

नवीन वस्तुओ की ओर भी है। विसर्जन, कल्पना-सुख, नीरव प्रेम आदि कवितायें उनकी नई दिशा का सूचक है। आरम्भ में ही प्रसाद को भावना और अनुभूति को अधिक दृढता से ग्रहण करते देखा जा सकता है। वे जिस आधार-भूमि पर खडे है, उसका क्षेत्र सीमित नही है और कवि में जिज्ञासा की भावना उसे आगे की ओर ले जाती है। वह प्रत्येक वस्तु के रहस्य को जानने के लिये आकुल है। आख्यानक कविताओ में भी वस्तु वर्णन की अपेक्षा भावना की ओर अधिक ध्यान दिया गया। प्रसाद के आरम्भिक चरण में ही उनके व्यक्तित्व का पूर्ण परिचय नही प्राप्त होता किन्तु उसमें विकास की रेखायें अवश्य निहित है।

'कानन कुसुम' का कवि भाव, भाषा, छन्द सभी दृष्टियो से अधिक स्वतन्त्र हो जाता है। 'इसमें रगीन और सादे, सुगन्धवाले और निर्गन्ध, मकरन्द से भरे हुये, पराग में लिपटे हुये सभी तरह के कुसुम है[२]।' इसमे कवि ने कई प्रकार के प्रयोग किये, जिन्हे आगे चलकर उसने विकसित किया। नमस्कार, करुणाकुज, मर्मकथा, हृदयवेदना, सौन्दर्य, एकान्त, रमणी हृदय आदि अनेक ऐसे विषय है, जिन्हे छायावाद की प्रमुख वस्तु कहा जा सकता है। किन्तु इन नवीन विषयो के अतिरिक्त निशीथ नदी, जलविहारिणी आदि में प्राचीनता का प्रभाव है। 'कानन कुसुम' का कवि अपने व्यक्तित्व के निर्माण मे प्रयत्नशील है। भावनाओ मे आन्तरिक अनुभूति का प्रवेश हो रहा है और व्यक्तिगत अश भी उसमे दिखाई देने लगता है। कवि का 'मानस युद्ध' व्यक्त हो उठा है और वह उसकी भावुकता को और भी उद्दीप्त कर देता है। 'रमणी-हृदय' की विवेचना के साथ ही प्रेम की उदात्त परिभाषा भी प्राप्त होती है। प्रकृति और मानवीय भावनाओ के तादात्म्य का आरम्भ भी इसी अवसर पर हुआ और अन्त मे कवि की यह कल्पना एक जीवन दर्शन मे प्रस्तुत हुई। प्रकृति के कण कण मे किसी अज्ञात प्रियतम का आभास दार्शनिक प्रवृत्तियो का समावेश कराता है। कवि का कथन है—

> निस्तब्धता ससार की उस पूर्ण से है मिल रही—
> पर जड प्रकृति सब जीव में सब ओर ही अनमिल रही।
>
> 'एकान्त में', काननकुसुम, पृष्ठ ५३

'काननकुसुम' की आख्यानक कविताओ की प्रेरणा यद्यपि प्रसादजी को प्राचीन ग्रथो मे प्राप्त हुई तथापि उसमे उन्होने अपनी मौलिक उद्भावनाओ

---

२. 'कानन-कुसुम' की भूमिका में प्रसाद।

को प्रकाशित किया। 'चित्रकूट' में उन्हें अधिक सफलता प्राप्त हुई। भाषा का सुन्दर चयन और नवीन कल्पना उनमें स्पष्ट दिखाई देते हैं। 'प्राची में कुमुदिनीनाथ का उदय रत्नाकर के सुधा-कलश अथवा मन में धीरे-धीरे उठनेवाली नई आशा की भाँति है।' चित्र निर्माण की कुशलता भी इन कविता में प्राप्त होती है। राम के अंक में सोती हुई जानकी का दृश्य, तथा प्रभात वर्णन कवि ने किया—

नील गगन सम राम, अहा अंक में चन्द्रमुख
अनुपम शोभाधाम, आभूषण ये तारका।

. . .

कलियाँ कुसुम की थी लजाई प्रथम स्पर्श शरीर से
चिटकीं बहुत जब छेड़छाड़ हुआ समीर अधीर से

'कानन-कुसुम' में सवैया, कवित्त के स्थान पर नवीन छन्दों को अपनाया गया। इस प्रकार कवि नव निर्माण में प्रयत्नशील दिखाई देता है।

आख्यानक कविता—

प्रसादजी आरम्भ से ही आख्यानक कविताओं की ओर उन्मुख [illegible] हैं। प्रेमपथिक, महाराणा का महत्व, करुणालय आदि में उन्होंने विस्तार प्रयोग किये। कवि का लक्ष्य साधारण आख्यानक काव्यों की भाँति किसी कथा का वर्णन नहीं है, किन्तु उनके द्वारा उसने अपनी शैली का परिष्कार किया। कथा भावों को गति देने का कार्य भी करती है। इन आख्यानक कविताओं में कवि को भाव-प्रदर्शन में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। 'प्रेमपथिक' में प्रेम के विराट और भव्य रूप का अंकन किया गया। कवि का यह प्रेम दर्शन क्रमशः गतिमान होता जाता है। 'करुणालय' में करुणा की भावना को महत्व प्राप्त हुआ। यहाँ करुणा क्रमशः व्यापक होती जाती है और बौद्ध दर्शन से मिलकर स्वतन्त्र विचारधारा की नियोजना करती है। 'महाराणा का महत्व' में भारत के स्वतन्त्र सेनानी का चरित्र चित्रण किया गया है। कवि का दृष्टिकोण इस अवसर पर आदर्शवादी हो गया। अतुकान्त छन्दों में लिखी गई ये आख्यानक कविताएँ कवि के लिये एक प्रयोगशाला और पृष्ठभूमि का काम करती हैं, जिनसे आगे चलकर वह 'कामायनी' के निर्माण में सफल हो सका। इनमें प्रबन्धकार का [illegible], किन्तु भाव-[illegible] में [illegible] मिल जाती है।

'आंसू'—

प्रसाद के काव्य विकास मे 'आसू' का विशेप महत्व है। हिन्दी के विरह काव्यो की परम्परा का एक नया रूप उसके द्वारा प्रस्तुत हुआ। गीतिकाव्य का सम्पूर्ण वैभव उसमें प्राप्त हो जाता है। कलाकार सफल तूलिका से अपनी आन्तरिक पीडा का प्रकाशन करते हुये देखा जाता है। किन्तु इस वेदना का अन्त एक साधारण प्रेमी की आत्माभिव्यक्ति में नही हो जाता। अपने नवीन कलेवर मे 'आसू' वेदना दर्शन के द्वारा एक सार्वभौमिक सदेश देता है। कवि के व्यक्तित्व का यह विकास उसके सुनिश्चित भविष्य का सूचक है। व्यक्तिवाद से आरम्भ होने वाली वेदनानुभूति मानवता तक चली जाती है। प्रसाद को अपनी वैयक्तिक अनुभूतियो से सदा युद्ध करते हुये देखा जा सकता है। अन्त मे उन्होने इस पर विजय प्राप्त की। अपने कला पक्ष मे आसू की भावधारा मे मर्म को स्पर्श कर लेने की अद्भुत क्षमता है, जो उसे एक श्रेष्ठ विरह-काव्य की श्रेणी मे ले जाती है। छाया-सकेतो तथा सजीव उपमानो के द्वारा नारी का रूप वर्णन कल्पना की विलक्षण प्रतिभा का परिणाम है। उसमें जीवन का सम्पूर्ण ताप, मादकता और विडम्बना है, किन्तु सृजनशील कलाकार इन सभी के ऊपर अपने जीवन दर्शन को प्रतिष्ठित कर देता है। 'करुणा कलित हृदय' की विकल रागिनी अन्त मे अपने आसू 'विश्व सदन' में वरसा देना चाहती है। एक महान कवि की भाति उन्होने अपने वैयक्तिक पक्ष का उन्नयन किया। 'आसू' का कवि भाव और कला की दृष्टि से महान कलाकारों के निकट है।

गीत-सृष्टि—

प्रसाद की गीत-सृष्टि का आरम्भिक स्वरूप किंचित शिथिल और मन्थर था। 'झरना' का कवि अपनी दुर्वलताओ को नही छिपा पाता। भावना के क्षेत्र मे वैयक्तिक पक्ष अधिक है और उसका उदात्तीकरण वह नही कर पाता। कहीं-कहीं भावो का प्रकाशन अत्यन्त साधारण रूप में आ जाता है। 'किसी पर मरना, यह भी दुख है' आदि पक्तियो मे उर्दू शैली की छाया भी प्रतीत होती है। 'झरना' अनुभूति के सत्य मे प्रौढ है और इसी कारण कवि को एक ऐसी सुदृढ भूमि प्राप्त हो जाती है, जिसके सहारे वह आगे बढ सकता है। 'विषाद' म वह कहता है—

> निर्झर कौन बहुत बल खाकर
>
> बिलखाता ठुकराता फिरता ?

नाटककार के रूप मे प्रसाद का व्यक्तित्व महान है, किन्तु इस अवसर पर भी वे कवि-हृदय की अभिव्यक्ति कर ही देते है। भावुक पात्रो की योजना के अतिरिक्त गीतो में भी भावुकता का प्राधान्य है। गीत भावुक पात्रो की मनोदशा का परिचय देते है। कथानक के क्रमिक विकास से उनका अधिक सबध नही रहता। इनमे विभिन्न प्रकार की भावनाओ का समावेश हुआ, किन्तु अधिकाश प्रणय गीत ही है और उनका उद्देश्य पात्रो के अन्तरतम का प्रकाशन है। 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' आदि कतिपय राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित गीतो के अतिरिक्त सभी गीतो में व्यक्तिगत अनुभूतिया ही प्राप्त होती है। देवसेना, मालविका के साथ ही मातृगुप्त आदि को भी गीतो से प्रेम है और वे भाव-विभोर होकर गाते है। शैली की दृष्टि से इन गीतो मे सगीतमयता अधिक है और उन्हे शास्त्रीय रीति से स्वर-लिपि मे बाधा जा सकता है। नाटको के गीतो मे प्रसाद ने गीतिकाव्य के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये और कई गीतो को उनकी प्रतिनिधि रचनाओ के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है। 'हे लाज भरे सौन्दर्य बता दो', 'आह वेदना, मिली विदाई' आदि गीत कवि की सुन्दर सृष्टि है। नाटको मे अनेक प्रयोगो के कारण ही प्रसाद 'कामायनी' को भी गीति-तत्व से भर सके। उनके गीतो मे इतनी शक्ति है, कि वे केवल भावोच्छ्वास बनकर ही नही रह जाते, उनमें चिन्तन का भी समावेश हो जाता है।

कामायनी--

'कामायनी' प्रसाद के सम्पूर्ण व्यक्तित्व से निर्मित हुई। उसमे कवि की कला का चरमोत्कर्ष है और वह उसके जीवन-चिन्तन से अनुप्राणित है। इस महाकाव्य की दार्शनिक रेखाये आरम्भ मे ही प्राप्त होती है। कवि ने इन्ही को विकसित और पल्लवित किया। 'चित्राधार' मे ही शिव के प्रति एक भक्ति-भावना का परिचय प्राप्त होता है[१]। 'प्रेमपथिक' में भी 'शिव समष्टि' की चर्चा है। कुलगत शैव भावना को क्रमश प्रसाद ने एक जीवन दर्शन मे परिणत कर लिया। 'कामायनी' मे इच्छा, ज्ञान, क्रिया का समन्वय प्रत्यभिज्ञा दर्शन से प्रेरित है। समरसता तथा आनन्द की कल्पना कवि को यही से प्राप्त हुई और उसने उन्हे अधिकाधिक व्यावहारिक रूप मे प्रस्तुत किया। 'कामायनी' का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण 'कामना' नाटक में भी दिखाई देता है। सभी पात्र एक विशेष मनोविकार का प्रतिनिधित्व करते है और अन्त मे

---

१ चित्राधार, पृष्ठ २९

आनन्द की प्रतिष्ठा होती है। मानवीय भावनाओं के प्रति प्रसाद आरम्भ से ही सजग रहे और उन्होंने भावना का अंकन करने में सफलता प्राप्त की। 'कामायनी' का कवि मानव मन की व्याख्या करता है और अन्त में उसमें आनन्द की प्रतिष्ठा करा देता है। उसमें कृतिकार का एक समन्वयवादी दृष्टिकोण रहा है और हृदय-बुद्धि, नारी-पुरुष सभी का समन्वय हो जाता है। समरसता अथवा समन्वय में ही आनन्द का सृजन होता है। इस आनन्द को मानवता के कल्याण में नियोजित करना ही कलाकार का मुख्य उद्देश्य है। प्रसाद एक मानवतावादी के रूप में 'कामायनी' में आते हैं, जो जीवन को सर्वांग सम्पूर्ण तथा मानवता को सुखी बनाने में प्रयत्नशील हैं। समरसता समस्याओं का उत्तर दे देती है। व्यक्तिगत अनुभूतियों से ऊपर उठकर 'कामायनी' के कवि ने विचार किया। जीवन की शाश्वत प्रहेलिका पर उन्होंने अपना मन्तव्य दिया। भावना क्षेत्र में कामायनीकार व्यापक दृष्टिकोण लेकर प्रस्तुत हुआ। कला की दृष्टि से कामायनी का कवि अत्यन्त प्रौढ़ है। उसकी भाषा और कल्पना भावना को वहन कर ले जाती है। वह एक सफल कलाकार की भांति प्रवाहमयता के साथ आगे बढ़ता दिखाई देता है। चित्र-काव्य के प्रति प्रसादजी की अभिरुचि आरम्भ से ही थी, 'कामायनी' में उसका उन्मुक्त रूप है। मनु, श्रद्धा, इड़ा के चित्र प्रस्तुत करने में रूप, गुण, भाव का अंकन कवि कर देता है। प्रकृति और मन की विभिन्न अवस्था को चित्रित करने में भी वह कुशल है। काव्य और दर्शन के सुन्दर संयोग से निर्मित 'कामायनी' प्रसाद के महान कृतित्व का प्रतिनिबिम्ब करती है।

प्रगति—

प्रसाद निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर रहे। आरम्भ की वैयक्तिक चेष्टाओं का क्रमशः उन्होंने उदात्तीकरण किया, अन्त में उनका निर्वैयक्तिक पक्ष सामने आया। प्रत्येक महान कलाकार की भांति उन्होंने अपनी व्यक्तिगत भावनाओं पर विजय प्राप्त की और उनका स्वर जगत से एकाकार हो गया। अपनी विकासशील प्रवृत्तियों के कारण ही प्रसाद नवीन मार्गों का उद्घाटन करते गये। आरम्भ में उनमें भावना का अतिशय आग्रह था, और धीरे चिन्तन-मनन के द्वारा बौद्धिकता आती गई। [illegible] विश्वास से वह [illegible] सम्पूर्ण राष्ट्र में [illegible] देना चाहता था। [illegible]

कर रहा है। उसके जीवन की साध अधिक प्रकाश और सौन्दर्य में समा गई। अन्तिम समय मे उसने कहा—'अधिकाधिक प्रकाश।''[४] 'सारोज आफ वर्थर' से लेकर 'फाउस्ट' तक उसके जीवन की एक महान साधना छिपी हुई है प्रसाद के आरम्भिक और अन्तिम चरण के मध्य अनेक प्रयास और प्रयोग प्राप्त होते है, जिनके द्वारा वे 'कामायनी' की महानता तक आ सके। भावना की दृष्टि से उनका क्षेत्र अधिकाधिक विस्तीर्ण होता गया, और कला क्रमश प्रौढ होती गई।

पसाद मूलत दार्शनिक प्रवृत्तियो के कलाकार है। अपने जीवनानुभव तथा अध्ययन को उन्होने काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया। कल्पना और अनुभूति के योग से उन्होने जिन आदर्शो का निर्माण किया, उनमे जीवन-दर्शन को सन्निहित कर देने का प्रयत्न है। नारी का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप श्रद्धा है। मनु एक उत्थान-पतन से भरा प्राणी है, जिसकी आकाक्षा सदा ऊपर उठने को रहती है। प्रसाद ने 'आसू' में व्यक्तिगत प्रेम-भावना को एक व्यापक धरातल पर लाकर प्रस्तुत किया। क्रमश उनकी यह कल्पना ससार की करुणा को भी अपनाती गई। 'लहर' के बौद्ध दर्शन से प्रभावित गीतो में उसका अधिक स्पष्ट स्वरूप सम्मुख आता है। प्रसाद के जीवन दर्शन की पृष्ठभूमि सास्कृतिक अवश्य है, किन्तु वह युग की चेतना को साथ लेकर चलती है। समरसता, आनन्दवाद, श्रद्धामय नारी सभी का नवीन स्वरूप उन्होने प्रस्तुत किया। मानववादी कलाकार का कथन है—

> चुन-चुन ले रे, कन-कन से
> जगती की सजग व्यथायें
>
> —आसू

प्रसाद केवल भावोच्छ्वास अथवा भावुकता पर जीवित रहनेवाले कवि नही है। उनका काव्य जीवन मे प्रेरणा लेकर उसी के लिये कार्य करता है। जीवन को उन्होने दृढता के साथ अपनी भावना से समन्वित कर दिया और अनेक समस्याओ पर अपना मन्तव्य देते गये। जीवन को वे 'ईश का रहस्य वरदान' कहते है और उसका उपभोग तथा उपयोग आवश्यक समझते है। प्रसाद का जीवन -दर्शन मानवता के कल्याण में नियोजित होता है।

'प्रसाद' का काव्य अपने युग की चेतना से प्रभावित है। आधुनिक समय की बौद्धिकता, भौतिकवाद तथा विज्ञानवाद के अतिवाद से त्रस्त मानवता के लिये उन्होने 'कामायनी' मे श्रद्धाजन्य विश्वास और सहृदयता को सम्मुख रक्खा। रक्खा। 'इडा' सर्ग म काम के मुख से कवि ने ससार की विषमता का ही वर्णन

---

४ Lu m, Biographies of Famous Men—Article on Goethe

कराया है। सारस्वत प्रदेश समस्त विश्व का प्रतीक सा बन जाता है। गांधी-युग के प्रसाद सत्य, अहिंसा के साथ ही व्यावहारिक समरसता और आनन्दवाद को भी उपस्थित करते हैं। आधुनिक युग का संघर्ष केवल दो राष्ट्रों अथवा शक्तियों के मध्य में नहीं है। कवि ने इस समस्या के मूल में जाकर विचार किया। वास्तव में मानव की प्रवृत्तियां ही आपस में संघर्ष कर रही हैं। उसके मन और मस्तिष्क में निरन्तर युद्ध चल रहा है[1]। नारी-पुरुष, आदर्श-यथार्थ, देव-दानव, मन-मस्तिष्क में समन्वय स्थापित करके आनन्द को प्रसाद ने प्रतिष्ठित किया। भौतिकवाद में पली हुई सारस्वत प्रदेश की प्रजा ने स्वयम् अपने नियामक मनु के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। अन्त में श्रद्धा द्वारा ही स्थिति का सुधार होता है। श्रद्धा वह कल्याणकारिणी शक्ति है, जिससे कवि ने आधुनिक युग की अधिकांश समस्याओं का उत्तर दिया। राजनीति में होने वाला राजा-प्रजा का संघर्ष भी 'कामायनी' में होता है। इस अवसर पर दोनों में समन्वय पर प्रसाद ने अधिक जोर दिया। युग की चेतना को ज्यों-ज्यों वे पहचानते गये, उनका स्वर अधिक बौद्धिक होता गया और उन्होंने अपने मानवीय दृष्टिकोण को सामने रक्खा। प्रसाद इतिहास की पृष्ठभूमि में रहकर आगे बढ़ते हैं। देश की संस्कृति और परम्परा के आधार पर ही वे नव-निर्माण में संलग्न होते हैं। नाटकों को उन्होंने इन ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का प्रमुख विषय बनाया। प्रसादजी अपने साहित्य के द्वारा एक ओर यदि युग की चेतना को प्रस्तुत कर देना चाहते हैं, तो साथ ही वे एक सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भी कामना करते हैं।

प्रसाद-काव्य का अवलोकन करने पर अनेक विचार हमें प्राप्त होते हैं, जिनमें कवि की विचारधारा निहित है। करुणा के महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिये उन्होंने 'करुणालय' की रचना की। [illegible] की मूल प्रेरणा कवि को बौद्ध दर्शन से प्राप्त हुई। समाज के पददलित प्राणों पर करुणा करने का सन्देश देते हैं। देश और जाति का स्वाभाविक गर्व होते हुए भी प्रसाद में सहिष्णुता और व्यापक भावना है, जो उन्हें मानवता के विस्तृत क्षेत्र पर ले जाकर प्रतिष्ठित करती है। 'चन्द्रगुप्त' की कार्नेलिया 'अरुण यह मधुमय देश हमारा', का राष्ट्रीय गान गाती है। 'स्कन्दगुप्त' का [illegible] आर्य-जाति के गौरव का गान करता है। देश के प्रति कवि का [illegible] है, किन्तु वह सम्पूर्ण मानवजाति को एक कुटुम्ब के रूप में [illegible] करता है। [illegible]

१. 'मस्तिष्क हृदय के हो विरुद्ध, दोनों में हो सद्भाव नहीं'

—'इड़ा' सर्ग।

और जीवन के विषय मे कवि ने अनेक सदेश दिये है, जिनके मूल में एक दार्शनिक कवि का चिन्तन बोलता दिखाई देता है।

व्यापक भावना के अतिरिक्त प्रसाद में कलात्मक परिपक्वता भी एक महान कवि की भाति है। वे प्रवन्धकार तथा गीतकार दोनो ही रूपो में सम्मुख आते है। आख्यानक कविताओ में ही प्रबन्धकाव्य के प्रति उनकी अभिरुचि दिखाई देती है, किन्तु 'कामायनी' मे आकर उनकी सम्पूर्ण प्रतिभा मुखर हो उठी। गीनो मे प्रणय, देश-प्रेम, दर्शन आदि अनेक प्रकार की भावनाओ को उन्होने सन्निहित कर दिया। भावना-प्रकाशन मे विविध प्रकार के छन्दो का उन्होने प्रयोग किया और इसके लिये उन्हे स्वतत्र योजना भी करनी पडी। अतुकान्त कविताओ मे उन्होने सफलतापूर्वक कार्य किया। प्रसाद का शब्द भाण्डार भारी है, और सस्कृत के अनेक तत्सम शब्द उसमे मिलते है। उनकी भाषा एक परम्परावादी कलाकार की सी है, जिसमें शब्दो का चरमोत्कर्ष प्राप्त होता है। भाषा के द्वारा कवि ने भावनाओ का परिष्कार किया और वह वासना आदि का अकन भी कर सका। उपमा तथा प्रतीक की योजना मे प्रसाद की मौलिक उद्भावनाये अधिक है। अपनी कल्पना के द्वारा उन्होने नूतन चित्रो को निर्मित किया। मनोविकारो को भी वे अपने लेखनी से चित्रित कर सके। प्रसाद प्राय सकेत से काम ले लेते है, उन्हे अधिक व्याख्या करने की आवश्यकता नही पडती और न वे अधिक विस्तार मे ही जाते है। वे किसी वस्तु के अन्तराल मे प्रवेश कर उसके मूल तत्व को जानने का प्रयत्न करते है। भावना पर जोर देने के कारण वे वाह्याडम्बर अथवा अलकरण का आग्रह नही करते। यद्यपि उनकी अभिव्यजना को सरल नही कहा जा सकता, किन्तु उसमे कवि का दृष्टिकोण भावाभिव्यजक तथा रसवादी अधिक है। वे चमत्कारवादी कलाकार की भाति शब्दो की क्रीडा नही करते। सास्कृतिक धरातल पर कार्य करने के कारण 'प्रसाद' का साहित्य सामान्य पाठक के लिये किंचित कठिन प्रतीत होता है, किन्तु विश्व के महान कलाकार होमर, दान्ते, मिल्टन, गेटे, कालिदास आदि के विषय मे भी यही कहा जा सकता है।

प्रसाद का व्यक्तित्व बहुमुखी है। कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध सभी क्षेत्रों मे उन्होने कार्य किया। अल्प आयु मे ही उन्होने अनेक ग्रन्थो की रचनाकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। इसमे सन्देह नही कि सम्पूर्ण साहित्य मे उनका कवि रूप ही प्रधानता प्राप्त करता है। सर्वत्र वे कवि प्रतीत होते है। नाटको के भावुक पात्र, अनेक गीत, स्वगत भाषण सभी मे भावुक कवि के दर्शन होते है। ऐतिहासिक पात्रो को उन्होने कल्पना के

द्वारा नवजीवन प्रदान किया। वे प्राचीन होकर भी इसी युग के प्रतीत होते हैं। मातृगुप्त, देवसेना आदि चरित्रों की कल्पना प्रसाद के कवि-हृदय द्वारा ही सम्भव थी। कहानियों में भी कल्पना का अंश अधिक है। उन्हें गीतात्मक कहानियां (Lyrical stories) कहना अधिक उपयुक्त होगा। यथार्थ को प्रस्तुत करने में भी प्रसाद अपने आदर्श का ध्यान रखते हैं। 'तितली' तथा 'कंकाल' उपन्यासों में उन्होंने समाज की वर्णव्यवस्था, धर्म, राजनीति, ग्राम आदि अनेक सामयिक समस्याओं पर विचार किया। अधूरा उपन्यास 'इरावती' अपने इस अपूर्ण स्वरूप में सभी साहित्य का गौरव है। उसका आरम्भ ही अत्यन्त काव्यात्मक है[१]। प्रसाद का बहुमुखी व्यक्तित्व एक दार्शनिक और कवि के संयोग से निर्मित है। प्रसाद के सम्पूर्ण कृतित्व पर एक विहंगम दृष्टि डालने के पश्चात उन्हें विश्व के शीर्ष कवियों के निकट स्थान देना पड़ता है। महान कवि अपने पीछे ऐसे पदचिन्ह छोड़ जाते है, जिन पर भविष्य के कलाकार चलने का प्रयत्न करते हैं। उनसे साहित्य और समाज को नवीन प्रेरणा प्राप्त होती है और वे आदर्श रूप में देखे जाते हैं। प्रसाद का साहित्य एक सांस्कृतिक सीमा के अन्तर्गत आ जाता है और उसके प्रसार की भी एक सीमा स्वीकार करनी पड़ती है किन्तु उसकी मूल चेतना का क्षेत्र व्यापक है। प्रसाद अपने कृतित्व में महान हैं, और श्रेष्ठ कलाकारों का सा उनका व्यक्तित्व है।

---

१. 'उसकी आंखें आशाविहीन सन्ध्या और उदास विहीन उषा की तरह काली और रतनारी थीं....' – इरावती।

प्रसाद-पुस्तकालय

पुस्तकों की यह सूची प्रसाद जी के सुपुत्र श्री रत्नशंकर प्रसाद तथा कवि के मित्र डा० राजेन्द्र शर्मा के सौजन्य से प्राप्त हुई है। प्रस्तुत पुस्तकें आज भी प्रसाद-मन्दिर के पुस्तकालय में संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त प्रसाद जी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा तथा कारमाइकेल आदि पुस्तकालयों के सदस्य थे और बराबर वहाँ से पुस्तकें लेकर पढ़ा करते थे। यहाँ पर केवल कुछ पुस्तकों का ही नाम दिया जा रहा है। आशा है इससे पाठकों को प्रसाद-साहित्य के अनुशीलन में कुछ सहायता प्राप्त हो सकेगी :

संस्कृत

ऋग्वेद संहिता
शतपथ ब्राह्मण
तन्त्रालोक
सर्वदर्शन-संग्रह
ध्वन्यालोक
छान्दोग्य उपनिषद्
शिवसूत्र विमर्शिनी
शिवस्तुति
श्रीमद्भगवद्गीता
विष्णु पुराण
दुर्गासप्तशती
अभिज्ञानशाकुन्तल
ऋतुसंहार
मालविकाग्निमित्र
स्वप्नवासवदत्ता
दुअग्नि
उत्तररामचरित
मत्स्यपुराण
सौन्दर्यलहरी
बृहदारण्यक उपनिषद्
पंचतन्त्र
श्रीमद्भागवत पुराण
सर्वसिद्धान्त संग्रह
शृंगारतिलक
वाल्मीकि रामायण
बृहत्संहिता
गाथा सप्तशती
योगसर्वस्व
रघुवंश
कुमारसम्भव
विक्रमोर्वशी
कादम्बरी
राजतरंगिणी
मुद्राराक्षस

महावीर चरित
प्रसन्नराघव
भामिनीविलास
पार्वती परिणय
नखशिखान्तम्
गीतगोविन्द
छन्दोर्णवपिंगल
आनन्दकोष
रसपचाध्यायी
अनर्घराघवम
काव्य प्रकाश
काव्यालकार
मेघदूत
अथर्ववेद

मृच्छकटिक
पारिजातहरण चम्पू
भोजप्रवन्ध
नैषधीयचरित
चाणक्यनीति दर्पण
गगालहरी
रसमजरी
अमरकोष
काव्यमजूषा
काव्यादर्श
अभिनवभारती
शृगारप्रकाश
नाट्य-शास्त्र

हिन्दी साहित्य

बिहारी और देव
कबीरदास बीजक
भ्रमरगीत
मैथिलकोकिल विद्यापति
रामचन्द्रिका
सूरपचरत्न
शृगार दर्पण
हम्मीररासो
दोहावली
महाभारत
कृष्णार्जुन युद्ध
सत्यहरिश्चन्द्र नाटक
हिन्दी शब्दसागर
हिन्दी नवरत्न
सुकवि सकीर्तन
विश्वसाहित्य
रानी केतकी की कहानी

सक्षिप्त पद्मावत
भूषण ग्रन्थावली
तुलसी ग्रन्थावली
मतिराम ग्रन्थावली
रामचरित-मानस
सिद्धविलास
शकुन्तला
बिहारी सतसई
चन्द्रालोक
रहीम कवितावली
भक्तनामावली
चन्द्रावली
चन्द्रिका
भाषा-विज्ञान
कोशोत्सव स्मारक सग्रह
मिश्रबन्धु विनोद
निबन्ध परिचय

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति
एकान्तवासी योगी
कविताकौमुदी
कविता कलाप
कविता कुसुम
त्रिवेणी
पुनर्मिलन
प्रेम द्वादशी
कवितावली
रूपकरत्नावली
श्रान्तपथिक
कालिदास की निरंकुशता
प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन
अलंकार चन्द्रिका
हिन्दी
चित्रांगदा
रंगभूमि
सुजान रसखान

इतिहास और राजनीति

भारतवर्ष का इतिहास
जर्मनी का इतिहास
मौर्य्य साम्राज्य का इतिहास
भारतवर्षीय राज्यदर्पण
हिन्दू राजतन्त्र
अलबरूनी का भारत
प्राचीन मुद्रा
देश-दर्शन
बुन्देलखण्ड केसरी
मुहम्मद
सम्राट् विक्रमादित्य
राजस्थान का इतिहास
नई राजनीति
रूस का इतिहास
सारनाथ का इतिहास
ह्वेनसांग
मुगलों के अन्तिम दिन
चक्रवर्ती चन्द्रगुप्त
अशोक
रजिया
जब अंग्रेज आए
काश्मीर दर्शन
चीन का इतिहास
जापान का इतिहास
भारतीय इतिहास का भौगोलिक आधार
इंगलैण्ड का इतिहास
बौद्धकालीन भारत
गुरुगोविन्द सिंह
भारत की विदुषी नारियाँ
समुद्रगुप्त
हुमायूँनामा
सिकन्दरशाह
सन् '५७ का गदर
प्रवीण दृष्टि में नवीन भारत
पृथ्वीराज चरित्र
शेरशाह
भारत के प्राचीन राजवंश
मेरी रूस यात्रा
महाराणा प्रतापसिंह
शाहजहाँ
सिंहलविजय
एशिया में प्रभात
आदर्श दरबार
फाहियान

अन्य विषय

समस्यापूर्ति मजरी
रस कुसुमाकर
शैवमोहिनी
वुद्धदेव
वेनिस का वाका
.कुरान
ईश्वरीय न्याय
जातक कथामाला
यूरोपीय दर्शन
नवरस
महाकवि दाग और उनका काव्य
यौन विज्ञान
वैज्ञानिक अद्वैतवाद
स्त्रियो की स्वाधीनता
दिव्य जीवन
सिद्धविलास
सूक्तिमुक्तावली
सुन्दरी विलास
नखशिख
नागरी प्रचारिणी लेखमाला
धर्म और विज्ञान
महामाया
विश्ववोध
दर्शन स्तर
दागे जिगर

पुनर्जन्म
कर्मयोग
पश्चिमी तर्क
कविरत्न मीर
सकल्प शक्ति, उसका सयम और विकास
धर्मतत्व
महाकवि नज़ीर
प्रेमसाम्राज्य
दर्शन परिचय
धर्म और जातीयता
राजस्थानी सगीत
गुरुमुखी
ब्राह्मी लिपि
बिहार का साहित्य
मौलाना हाली और उनका काव्य
अहिंसा दिग्दर्शन
महाकवि गालिव और उनका काव्य
महाकवि अकवर और उर्दू काव्य
भगवद्‌गीता
यौवन, सौन्दर्य और प्रेम
ग्राम्यगीतो का नमूना
गणित और क्षेत्र व्यवहार

English.

Plutarch's Lives.
Indian Images.
Chamber's Etymological English Dictionary.
The Message of Zoro Aster.
Lancelot and Elaine.
Don Juan.
History of Rome.
The Hindu Sociology.
Pope
Robinson Crusoe.
Geography of N.W. Provinces and Oudh.
First Step in Euclid.
Anglo Oriental Series of English Readers
From Dawn to Dust
Hindi Manuscripts of 1900, 1901, 1902
History of Greece.
A Brief Sketch of History of India.
Shakespeare.
The Story of Atlantis and the Lost Lemuria.
Arabian Nights.

सहायक ग्रन्थ

प्रसाद की कृतियाँ

कविता ... १. चित्राधार

२ करुणालय.

३. कानन-कुसुम.

४ प्रेमपथिक.

५ महाराणा का महत्व.

६. आंसू

७ झरना.

८ लहर

९ कामायनी

नाटक ... १० राज्यश्री

११. विशाख.

१२ अजातशत्रु

१३ जनमेजय का नागयज्ञ.

१४. कामना.

१५ स्कन्दगुप्त.

१६. एक घूंट

१७ चन्द्रगुप्त

१८ ध्रुवस्वामिनी

कहानी ... १९ छाया.

२० प्रतिध्वनि

२१ आकाशदीप

२२. आंधी.

२३. इन्द्रजाल

उपन्यास .. २४ कंकाल

२५ तितली

२६. इरावती.

अन्य ... २७ काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध.

प्रसाद की आलोचना

जयशकर प्रसाद	श्री नन्द दुलारे वाजपेयी ।
प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन	डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ।
कामायनी-सौन्दर्य	डा० फतेहसिंह ।
कामायनी-अनुशीलन	श्री रामलाल सिंह ।
प्रसाद की विचारधारा	डा० रामरतन भटनागर ।
आँसू तथा अन्य कृतिया	श्री विनयमोहन शर्मा ।

हिन्दी साहित्य

हिन्दी साहित्य का इतिहास	श्री रामचन्द्र शुक्ल ।
रस-मीमासा	श्री रामचन्द्र शुक्ल ।
चिन्तामणि	श्री रामचन्द्र शुक्ल ।
त्रिवेणी	श्री रामचन्द्र शुक्ल ।
वाङमय-विमर्श	श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ।
हिन्दी का सामयिक साहित्य	श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ।
हिन्दी-साहित्य की भूमिका	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ।
विचार और वितर्क	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ।
आधुनिक साहित्य	श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ।
हिन्दी का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा ।
विचार और अनुभूति	डा० नगेन्द्र ।
हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास	डा० भगीरथ मिश्र ।
हिन्दी कविता में युगान्तर	डा० सुधीन्द्र ।
आधुनिक काव्यधारा	डा० केसरीनारायण शुक्ल ।
आधुनिक काव्यधारा का सास्कृतिक स्रोत	डा० केसरीनारायण शुक्ल ।
छायावाद-युग	श्री शम्भूनाथ सिंह ।
गीति-काव्य	श्री रामखेलावन पाण्डेय ।
प्रकृति और काव्य	डा० रघुवश ।
प्रेमचन्द—घर में	श्रीमती शिवरानी प्रेमचन्द ।
गीतिका	श्री निराला ।
गुञ्जन	श्री पन्त ।
पल्लव	श्री पन्त ।
आधुनिक कवि	श्री पन्त ।

यामा : श्रीमती महादेवी वर्मा ।
आधुनिक कवि : श्रीमती महादेवी वर्मा ।
महादेवी का विवेचनात्मक गद्य : श्री गगाप्रसाद पाण्डेय ।
साकेत . श्री गुप्त ।
प्रियप्रवास : श्री हरिऔध ।
साहित्य-सतरण : श्री इलाचन्द्र जोशी ।

अन्य विषय

कवि-रहस्य : डा० गगानाथ झा ।
गीताजलि : श्री रवीन्द्र ।
साहित्य . श्री रवीन्द्र ।
काव्य-दर्पण . श्री रामदहिन मिश्र ।
सस्कृत साहित्य का इतिहास . श्री बलदेव उपाध्याय ।
भारतीय साहित्य-शास्त्र . श्री बलदेव उपाध्याय ।
तसव्वुफ अथवा सूफीमत श्री चन्द्रबली पाण्डेय ।
काग्रेस का इतिहास : डा० पट्टाभि सीतारमैया ।
ईरान के सूफी कवि ।

संस्कृत

ऋग्वेद ।
अथर्ववेद ।
ईशावास्योपनिषद् ।
वृहदारण्यक उपनिषद् ।
छान्दोग्य उपनिषद् ।
शतपथ ब्राह्मण ।
मत्स्य पुराण
वायु पुराण ।
हरिवंश पुराण ।
विष्णु पुराण ।
रामायण ।
महाभारत ।
तत्त्वालोक ।
शिवसूत्र विमर्शिनी ।

मनुस्मृति ।
श्रीमद्भगवद्गीता ।
अभिज्ञान-शाकुन्तल ।
रघुवश ।
ऋतु-सहार ।
मेघदूत ।
गीतगोविन्द ।

नाटय-शास्त्र	भरत ।
साहित्य-दर्पण	· विश्वनाथ ।
काव्यादर्श	दडी ।
काव्यालकार	भामह ।
उत्तर-रामचरित	भवभूति ।
किरातार्जुनीय	: भारवि ।
काव्य-प्रकाश	, मम्मट ।
रसगगाधर	: पडितराज जगन्नाथ ।

पत्र-पत्रिकाएं

सरस्वती, इन्दु, जागरण, हस, विशालभारत, हिमालय, नईधारा, सगम, सुमित्रा, कोशोत्सव स्मारक सग्रह आदि ।

ENGLISH

Literature Of The West.

Shakspere	Edward Dowden.
Oxford Lectures on Poetry.	A.C Bradley.
The Testament of Beauty	Robert Bridges.
The Epic of Gilgamesh.	
English Critical Essays CCXL.	: Joseph Addison.
A Book of Narrative Verse:	Treble.
The Growth of Literature	H M Chadwick & N.K. Chadwick.
The Freedom of Poetry.	Darec Stanford.
Convention and Revolt in Poetry	John Livingston Lowes.
A History of English Literature.	Emile Legous & Louis Cazamian.
Principles of Literary Criticism.	: I.A. Richards.
A Critical History of English Poetry	Grierson
Aristotle's Poetics.	Butcher.
The Epic	: Abercrombie.
Judgement in Literature	N. Basil Worsfold.
Marxism and Poetry.	: George Thompson.
Illusion and Reality.	· C. Caudwell.
What is a Classic ?	: T S. Eliot.
Lives of English Poets.	Samuell Johnson.
Heritage of Symbolism	: C M. Bowra

Title	Author
The Name and Nature of Poetry	A E Housman.
The Poet's Defence	. J Bronowski
Mysticim in English Poetry	Spurgeon
Pushkin and Russian Literature	Janco Lavrin
Divine Comedy	Dante
Paradise Lost	Milton
Iliad	Homer
Odyssey	Homer
Aenied	Virgil
Sorrows of Werther	Goethe
Faust	Goethe.
The Life and work of Goethe	: G Robertson
The History of Man-Goethe	Emile Ludwig.
The Outline of Literature	John Drinkwater.
The Book of Epic	H A Gnerber
The Study of Poetry	A R Entwistle

Works of Shelley, Keats, Byron, Wordsworth, Pushkin and others under reference

Literature Of The East

Title	Author
A History of Classical Sanskrit Literatrue	M Krishnamachariar
The History of Sanskrit Literature	Dr A B Keith
History of Sanskrit Poetics	Dr S K De
Telgu Literature	· P T Raju

Bengali Literature. Anandshanker & Lila Ray.
The Hymns of Rigveda. . Dr Griffith.
Indian Song of Songs . Edwin Arnold.
Gitanjali : Rabindranath Tagore.
Personality. . Rabindranath Tagore.
Flood Legend in Sanskrit Literature · Dr. Suryakant.
Rabindranath Tagore . Edward Thompson.
A History of Indian Literature. : Winternitz.
Tagore. . R I. Paul

Philosophy, Psychology.

Indian Philosophy. : Radhakrishnan.
Sacred Books of the East · Max Muller
A Constructive Survey of Upnishdic Philosophy . R D Ranade.
Arctic Home in Vedas. . B G. Tilak
The Twelve Principal Upnishads. : Mitra & Cowell.
Sufism. . A J Arbery.
A Manual of Psychology : G.F. Stout
Basic Writings of Sigmund Freud . Dr. A A Brill.
An Outline of Psychology W Mc. Dougall.
The Hormic Theory. : P.S. Naidu
Indian Aesthetics . Dr. K C Pandey.
Abhinavagupta. : Dr. K C. Pande.
Kashmir Saivism. : J C. Chaterji.
History of Aesthetics. . B Bosanquet.
Mysticism : Underhill.
Modern Man in Search of Soul. : C G. Jung

Studies in Islamic Mysticism	R.A. Nicholson
Saiva School of Hinduism	S Shivapad Sundaram
Bible	

History, Politics

History of British India	P E Roberts
Modern Indian Culture	D P Mukerji
A Short History of the World	H G Wells
Anthropology	E B Taylor
The Story of Mankind	Hendrik Van Loon
Life in Ancient India	Adolf Kaegi
Discovery of India	Jawaharlal Nehru.
An Autobiography	Jawaharlal Nehru
The History of the Congress	Pattabhi Sitaramayya
The Riddle of the Universe	Ernest Haeckal.
India-A Short Cultural History	H G Robinson
Nonviolence in Peace and War	Mahatma Gandhi
A Political and Cultural History of Europe	H J Hayes

General

Radioactivity and Surface History of Earth	J Jolly
Geology of India	D N Wadia
Dating the Past	Zeuner
Bible of the World	R O Bellow
Encyclopaedia of Religion and Ethics	